प्रकाशक
पन्नालाल गुप्त
सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय,
बनारस सिटी

मुद्रक
मथुराप्रसाद गुप्त
'श्री' यन्त्रालय, सचीचौतरा, काशी

प्रकाशकीय निवेदन

सहृदय पाठकगण !

आज दो वर्ष बाद रामायणका युद्धकाण्ड लेकर हम आपकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। इतने विलम्बका क्या कारण है, यह लिखनेसे कोई लाभ नहीं है; क्योंकि कारण बिना तो कोई कार्य होताही नहीं। हम भी आपको सदैव कुछ-न-कुछ कारण लिखने तथा अनेक प्रतिज्ञाएँभी करते आये हैं; परन्तु उन्हें हम पूरा नहीं कर सके; इसमें भी कुछ कारण अवश्य है। अस्तु, आपसे हमारी इस समय केवल इतनीही प्रार्थना है कि आप 'भगवानकी ऐसीही इच्छा थी' समझकर संतोष एवं धैर्य्य धारण करें।

कितनेही महानुभावोंने विलम्बके लिए हमें अनेक कटुवाक्य लिखे हैं, अनेक सज्जन हमसे बहुत रुष्ट हो गये हैं; परन्तु हम तो यही समझते हैं कि वे हमारी परिस्थितिसे परिचित नहीं हैं, यदि वे हमारी परिस्थितिसे परिचित होते तो कदापि इन शब्दों का प्रयोग न करते।

सस्ती-साहित्य-पुस्तकमाला का इतना सस्ता मूल्य रखकर जो विपत्ति हम भोग रहे हैं, उसे लिखना अरण्य-रोदन है; क्योंकि आपसे हमने जो आशा की थी उसे आपने पूरी नहीं की अर्थात् हमें आपने दो हजार स्थायी ग्राहक नहीं दिये।

अभी इसी युद्धकाण्डके लिए हमें जितना युद्ध करना पड़ा है, हमें जितनी विपत्ति सहनी पड़ी है और जितना दुःख भोगना पड़ा है—वह वर्णनातीत है। आरम्भमें चार फार्म छपनेपर इसकी छपायी तीन महीने तक रुकी रही; इससे कितनी हमारी हानि हुई, यह हमीं अनुभव कर रहे हैं। हम तो केवल भगवानके ही भरोसे इस क्षेत्र में डटे हैं, अन्यथा कभीके विमुख हो गये होते।

अब रामायण का केवल उत्तरकाण्ड बाकी है। उसके लिए पूज्य शास्त्रीजीने १५ जनवरीसे काशी आकर टीका करनेके लिए कहा है। यदि वे किसी अज्ञात झंझटमें न फँस गये और टीका शीघ्र कर सके, तो उत्तरकाण्ड भी मार्च तक प्रकाशित हो जायगा। उत्तरकाण्डके लिए हमें आप बार-बार न लिखें। जोलोग स्थायीग्राहक हैं, उनके पास तो हम छपतेही स्वतः सूचना भेज देंगे, व्यर्थ लिखा-पढ़ी करके समय और पैसा नष्ट न करें। हाँ, जोलोग स्थायीग्राहक नहीं हैं, वे अवश्यही तैयार होनेपर भेज देनेके लिए हमें लिख सकते हैं।

अन्तमें हमें एक बात और कहनी है कि अब हम अपनी पुस्तकमालामें श्रीमद्भागवत और योग-वासिष्ठ प्रकाशित करनेका आयोजन कर रहे हैं। अतः आपसे हम यह आशा करते हैं कि आपलोग हमें कम-से-कम एक-एक स्थायी ग्राहक अवश्य बना दें।

आशा है आप हमारी आशा, निराशामें न परिणत कर, पूर्ण करनेकी चेष्टा करेंगे।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा १९२८ — पन्नालाल गुप्त

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

है, इसलिए कि दूकानदार, छोटे-बड़े, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध प्रायः सभी हमसे अधिक-से-अधिक कमीशन चाहते हैं। साधारण कमीशनपर वेचनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि आप इस मालाके स्थायी ग्राहक अवश्य बनें।

हमारी मालाकी प्रत्येक पुस्तकका मूल्य एक रुपयेमें साधारण साइज़के ५१२ पृष्ठके हिसाबसे होता है। स्थायी ग्राहकोंको तो वह लगभग ७०० पृष्ठके पड़ जाता है।

इस पुस्तक-मालाके ग्राहक बननेके नियम

१—एक रुपया प्रवेश-शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमें मिलती है।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तक प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य, विषय आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उनका उत्तर आनेपर पुस्तक वी० पी०से भेज दी जायगी।

५—जिनलोगोंको पुस्तक न लेनी हो, वे सूचनापत्र पाते ही उत्तर दें, वी० पी० लौटानेसे उनके नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक् कर दिये जायँगे। यदि वे पुनः नाम लिखाना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

नोट—ग्राहकोंको चाहिए कि सूचनापत्रका उत्तर, चाहे पुस्तक मँगानी हो अथवा न मँगानी हो, अवश्य दे दिया करें और प्रत्येक पत्रमें अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखा करें।



सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

बंकिम-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)—बंकिमबाबूके 'आनन्दमठ', 'लोकरहस्य' तथा 'देवी चौधरानी, का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५१२। मूल्य १), सजिल्द १।-)॥। द्वितीय संशोधित संस्करण शीघ्र छपेगा।

गोरा—जगद्विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'गोरा' नामक पुस्तकका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ६८८। मूल्य १।-)॥, सजिल्द १॥=)। द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी।

बंकिम-ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड)—बंकिमबाबूके 'सीताराम' तथा 'दुर्गेशनंदिनी' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १=)। द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी।

चंडीचरण-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)—अर्थात् टामकाकाकी कुटिया Uncle Tom's Cabin के आधारपर स्वर्गीय चण्डीचरणसेन-लिखित 'टामकाकार कुटीर' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५६२। मूल्य १=)॥, सजिल्द १॥)।

बंकिम-ग्रन्थावली (तृतीय खण्ड)—बंकिमबाबूके 'कृष्णकान्तेर विल', 'कपाल-कुण्डला' तथा 'रजनी' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १=)।

चण्डीचरण-ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड)—चण्डीचरणसेन-लिखित 'दीवान गंगागोविंदसिंह'-का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या २६०। मूल्य ॥)।

वाल्मीकीय रामायण (बालकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके १९२, अर्थात् साधारण साइजके ३८४। संशोधित द्वितीयावृत्ति मूल्य ॥।)।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके ३८४, अर्थात् साधारण साइज के ७६८। मूल्य १॥)।

वाल्मीकीय रामायण (अरण्यकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके २०८, अर्थात् साधारण साइजके ४१६। मूल्य ॥।-)।

वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धाकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके २०८, अर्थात् साधारण साइजके ४१६। मूल्य ॥।-)।

वाल्मीकीय रामायण (सुन्दरकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके २४०, अर्थात् साधारण साइजके ४८०। मूल्य ॥।=)।

वाल्मीकीय रामायण (युद्धकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके ४६४, अर्थात् साधारण साइजके ९२८। मूल्य १॥।-)।

वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकांड)—शीघ्र छपेगा।

भारत में अभी तक इतनी सस्ती उपयोगी कोई भी ग्रन्थमाला नहीं है। हमारा विचार इससे भी सस्ते मूल्यमें इस मालामें वेद, वेदान्त (उपनिषद् आदि), दर्शन (सांख्ययोग, न्याय आदि), पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, वैद्यक, कलाकौशल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवनचरित्र, उपन्यास, नाटक, काव्य, भूगर्भशास्त्र आदि सभी विषयोंकी पुस्तकें निकालनेका है।

राजारानी

इस नाटकके लेखक संसारके सर्वश्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं। अनुवादक बा० मुरारिदास अग्रवाल। भूमिका-लेखक हिन्दीके विद्वान् एवं सम्मेलन-पत्रिकाके भूतपूर्व सम्पादक तथा साहित्य-विहार, अनुराग-वाटिका, भावना आदिके लेखक श्रीवियोगीहरि लिखते हैं—

"यह नाटक अपने ढंगका एक है, इसमें सन्देह नहीं। नाटकमें सामयिकताके साथ ही स्थायित्व भी है। विचारलहरीकी आरोही अवरोही देखते ही बनता है।......एकका प्रेमकी—प्रेम क्या मोहकी—अतिसे पतन दिखाया गया है, तो दूसरेका लक्ष्यहीन कर्मकी अतिसे सर्वनाश कराया गया है......समाज और राष्ट्रके लिए कवीन्द्रकी यह उत्कृष्ट कल्पना कितनी उपयोगिनी है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। अनुवाद सुन्दर, सरस और यथार्थ हुआ है।"

सुन्दर मोटे कागजपर छपी पुस्तकका मूल्य ॥।)।

विसर्जन

मूल लेखक—रवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक मुरारिदास अग्रवाल, संशोधक तथा भूमिका-लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल। जगन्मान्य रवीन्द्रबाबूकी पुस्तककी उत्तमताके सम्बन्धमें हमें कुछ कहना नहीं है। यह एक अहिंसात्मक करुणरस पूर्ण नाटक है। इसमें जीव-बलिका निषेध किया गया है। पुस्तकके भाव बड़े ऊँचे दर्जेके हैं। मूल्य ॥)

सफाई और स्वास्थ्य

दुनियाँमें स्वास्थ्य बड़ी चीज है। इसके बिना मनुष्य, जीता हुआ भी, मुर्देसे बदतर है। इस छोटी-सी पुस्तिकामें स्वास्थ्य-लाभ-सम्बन्धी सभी आवश्यकीय बातें बतलायी गयी हैं। स्वास्थ्यकी पहली सीढ़ी सफाई है। अधिकतर बीमारियाँ गन्दगीकी वजहसे ही पैदा होती हैं। गन्दगीसेही नाना प्रकारके हानिकारक विषैले कीड़े, जोकि रोगके घर होते हैं, उत्पन्न होते हैं, वायु दूषित हो जाती है। इन्हीं सब रोगोंके घर मूल कारणोंसे बचानेके लिए प्रस्तुत पुस्तिका लिखी गयी है। सी० पी० के शिक्षाविभागने इसे अपने यहाँ बालक-बालिकाओंके पुस्तकालयके लिए भी स्वीकृत कर लिया है *(Vide Order No. 8918 Dated 23-12-25)* पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ।)।

बाल-मनोरंजन

इसमें बालकोंके लिए शिक्षाप्रद मनोरञ्जक कहानियोंका संग्रह है। पुस्तककी भाषा बड़ी ही सरल है। दो भागोंमें समाप्त हुई है। मूल्य प्रत्येक भागका ।=)

This book is sanctioned as a Prize and Library Book in Middle Schools of Central Provinces and Berar. —*Vide Order No. 9754, Dated 17-12-29*

धातु दौर्बल्य, उसके लक्षण और चिकित्सा

आजकल असमयमें जो लोग अपने दुराचारों या अनैसर्गिक कर्मोंके कारण पुरुषत्वहीन हो जाते हैं वा इन्द्रिय-सम्बन्धी अन्य लज्जाजनक भयङ्कर बीमारियोंके शिकार बन जाते हैं, उन्हींके लिए यह पुस्तक लिखी गयी है। इसके जरिये उन भोलेभाले बच्चोंका जीवन भी सुधर सकता है, जिन्होंने बुरी सोहबतमें पड़कर अपना स्वास्थ्य खराब करना शुरू कर दिया है और जो अब चेत रहे हैं। इसमें १५ अध्याय हैं। १ उपक्रमणिका, २ मूत्रनालीप्रदाह और उत्तेजनाके कारण होनेवाला शुक्रमेद, ३ हस्तमैथुन छुड़ानेका उपाय और उससे उत्पन्न रोगोंकी चिकित्सा, ४ स्वप्नदोष, ५ अधिक इन्द्रिय-संचालन और शुक्रमेद, ६ विवाहित अवस्थामें अति स्त्रीप्रसंग, ७ अस्वाभाविक वीर्यपातका फल, ८ सर्वाङ्ग दूषित करनेवाला शुक्रमेद आदि। इसके जरिए बिना डाक्टर-वैद्यके रोग अच्छे हो सकते हैं। मूल्य ॥)

महाभारत-संहिता की विशेषताएँ

१–भाषा सरल, सरस और मुहाविरेदार। पढ़ते समय उपाख्यान का आनन्द मिलता है।

२–इससे सस्ता संस्करण आज तक नहीं निकला।

३–रंगीन चित्र तथा सादे चित्रों की अधिकता।

४–हिन्दी टीका के साथ ही साथ मूल का रसास्वादन।

५–खण्डशः प्रकाशित होने से लोगों का एकबार अधिक खर्च से बचाव।

६–डबलक्राउन अठपेजी के एक सौ अट्ठाइस पृष्ठ का मूल्य केवल एक रुपया साथ ही सुन्दर चित्रों का संग्रह, फिर इन विशेषताओं के होते हुए भी आप इसके स्थायी ग्राहक क्यों नहीं बनते?

७–कथाओं का अभिप्राय तथा विशद आलोचना।

यह महाभारत प्रतिमास खण्ड खण्ड निकलेगा। एक खण्ड में बड़े साइज के १२८ पेज रहेंगे। साथ ही रंगीन चित्र और कई सादे चित्र प्रति अंक में रहेंगे। इसके साथ ही साथ ऊपर का टाइटिल पेज बड़ा ही आकर्षक होगा। इन सब सुविधाओं के रहते हुए भी प्रति अंक का मूल्य केवल एक रुपया है, तिसपर भी स्थायी ग्राहकों को विशेष सुविधाएँ हैं।

स्थायी ग्राहकों को विशेष सुविधा

१–महाभारत के प्रत्येक अंक का मूल्य १) होगा।

२–जो सज्जन स्थायी शुल्क १) देंगे, वे ही महाभारत के स्थायी ग्राहक समझे जायँगे।

३–स्थायी ग्राहकों को २५ सैकड़ा कमीशन मिलेगा।

४–महाभारत के अंक वी० पी० से नहीं भेजे जायँगे। मूल्य मनिआर्डर द्वारा ही भेजना चाहिए।

५–अग्रिम, साल भर का मूल्य जो एक बार दे देंगे, उनसे पोस्टेज कुछ नहीं लिया जायगा।

६–स्थायी शुल्क के साथ साल भर या छः महीने का १०) या ५॥) रुपया जमा करनेवालों को बारह या छः अंक बिना किसी खर्चे के भेज दिया जाया करेंगे।

७–जो एक बार रुपया नहीं देना चाहेंगे, उनकी सेवा में अंक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना भेज दी जायगी ॥।-) का मनिआर्डर आने पर अंक उनकी सेवा में भेज दिया जायगा।

८–जो सज्जन रजिस्ट्री से अंक मँगाना चाहें उन्हें १) का मनिआर्डर करना चाहिए।

९–पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम, पता साफ साफ लिखना चाहिए।

निवेदक
महाभारत विभाग,

ओझा-बन्धु-आश्रम, इलाहाबाद

हिन्दी भाषान्तर सहित

महाभारत-संहिता

महाभारत हिन्दुओं का बड़ा मान्य ग्रन्थ है। हिन्दू महाभारत को वेदों के समान मान्य समझते हैं। वे इसे पंचम वेद कहते हैं। महाभारत हिन्दू जाति का सच्चा इतिहास है। महाभारत में हिन्दू जाति के उन महापुरुषों की कथा लिखी गई है जो अपने समय में अपनी जाति के इतिहास बनानेवाले हो गये हैं।

महाभारत में उस संसार-प्रसिद्ध महायुद्ध का वर्णन है जो सत्य और न्याय की रक्षा के लिए हुआ था, जो दुर्बल और सबल में हुआ था, जो कुटिल नीति और धर्म नीति में हुआ था। एक पक्ष में साम्राज्य की शक्ति थी, सामन्त तथा मित्र राज्यों की सम्मिलित सेना थी, दूसरे पक्ष में सत्य था, धर्म था और थे धर्मरक्षक श्रीभगवान्। धर्मात्मा दुर्बल, बलवानों पर किस प्रकार विजयी होते हैं यह जानना हो तो महाभारत पढ़िए। भगवान् श्रीकृष्ण की नीति, अर्जुन के पराक्रम तथा भीम के बल का यदि परिचय पाना हो तो महाभारत पढ़िए।

कोई धर्म ऐसा नहीं, कोई कथा ऐसी नहीं, जिसका वर्णन महाभारत में न हो। जिस गीता का संसार में इतना नाम है, जिस गीता के उपदेश-प्रभाव से हजारों लाखों मनुष्य अपनी ज्ञान-पिपासा बुझा चुके हैं और बुझाते हैं, वह भी महाभारत का ही एक अंश है। एक यही गीता क्या, महाभारत में न मालूम कितनी गीताएँ भरी पड़ी हैं।

जिस जाति के पास अपना पुराना इतिहास नहीं, जिस जाति के पास अपने पूर्वजों के महत्त्वपूर्ण चरितों का संग्रह नहीं, वह जाति मुर्दा है और वह जाति कभी सभ्य संसार में अपना सिर ऊँचा नहीं उठा सकती।

हिन्दी-भाषी संसार को इसके पहले कई टीकाएँ तथा अनुवाद पढ़ने और देखने को मिले होंगे। यह बात जानते हुए भी इस द्रव्य-श्रम और समय साध्य कार्य में हाथ डालने को हम क्यों तयार हुए, उसे आप लोगों को बताना हम आवश्यक समझते हैं—

महाभारत के जिन संस्करणों की हमने चर्चा की है, उनमें किसी में मूल का बहिष्कार करके केवल अनुवाद मात्र ही पाठकों को दिया गया है। उस अनुवाद के सम्बन्ध में कुछ न कह कर हम केवल यही कहना चाहते हैं कि वह अनुवाद ऐसा मालूम पड़ता है मानों पाठक को प्रकाश से हटाकर अन्धकार की ओर लिये जा रहा हो। इसके अतिरिक्त मूल में जो आनन्द है उसके रसास्वादन से पाठक बिलकुल ही वंचित रह जाते हैं और इस प्रकार मूल ग्रन्थ से बड़ी दूर चले जाते हैं। जो एक आध संस्करण सटीक निकले भी हैं, उनकी भाषा पण्डिताऊ, आकार पुराने ढंग का और मूल्य बहुत अधिक है। इन सब कमियों की पूर्ति करने का प्रयत्न हमने इस प्रयत्न द्वारा किया है।

इसकी विशेषताएँ इस पृष्ठ के पहले देखिए।

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

युद्धकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् । रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥
कृतं हनूमता कार्यं सुमहद्भुवि दुर्लभम् । मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥
नहि तं परिपश्यामि यस्तरेत महोदधिम । अन्यत्र गरुडाद्वायोरन्यत्र च हनूमतः ॥ ३ ॥
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । अप्रधृष्यां पुरीं लङ्कां रावणेन सुरक्षिताम् ॥ ४ ॥
प्रविष्टः सत्त्वमाश्रित्य जीवन्को नाम निष्क्रमेत् । को विशेत्सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ॥ ५ ॥
यो वीर्यबलसंपन्नो न समः स्याद्धनूमतः । भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत् ।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च ॥ ६ ॥
यो हि भृत्यो नियुक्तः सन्भर्त्रा कर्मणि दुष्करे । कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥
यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् । भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ ८ ॥

उत्तमता पूर्वक कहे हनुमानके वचन सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥ पृथिवीमें जिस कामको सिद्ध करना दुर्लभ है, हनुमान, तुमने वह काम सिद्ध किया । पृथिवीके दूसरे आदमी तो मनसे भी इस कामको नहीं कर सकते ॥ २ ॥ मैं ऐसा किसीको नहीं देखता जो समुद्रको पार कर जाय; गरुड, वायु और हनुमानको छोड़ कर ॥ ३ ॥ लङ्काकी रक्षा रावण करता है अतएव देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नाग भी उसपर आक्रमण नहीं कर सकते । उस नगरीमें अपने बलके भरोसे प्रवेश करके कौन मनुष्य जीता हुआ निकल सकता है । राक्षसोंके द्वारा सुरक्षित अतएव बड़े कष्टसे प्रवेश करनेके योग्य उस लंका नगरीमें कौन प्रवेश कर सकता है जो हनुमानके समान बलवान् और पराक्रमी न हो । अपनी गतिके अनुरूप बलके द्वारा समुद्र-लंघन आदि कामोंको करके हनुमानने भृत्योंके करने योग्य सुग्रीवका बड़ा काम किया ॥ ४-५-६ ॥ स्वामीके द्वारा कठिन काममें नियुक्त भृत्य यदि अनुरागसे उस कामको करे तो वह पुरुषोत्तम कहा जाता है ॥ ७ ॥ कार्यमें नियुक्त जो भृत्य,

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद्यः समाहितः। भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ ९ ॥
तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता। न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥१०॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः। वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः ॥११॥
इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति। यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥१२॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः। मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ॥१३॥
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे। हनूमन्तं कृतात्मानं कृतवाक्यमुपागतम् ॥१४॥
ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः। हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥१५॥
सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम्। सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥१६॥
कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः। हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः ॥१७॥
यद्यप्येष तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम। समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम् ॥१८॥
इत्युक्त्वा शोकसंभ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः। हनूमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत् ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

निर्दिष्ट कार्यके अतिरिक्त स्वामीके प्रिय कार्योंको नहीं करता, उसके करनेके योग्य और समर्थ होकर भी नहीं करता, वह मध्यम कहा जाता है। अर्थात् जिस कामको करनेके लिए कहा जाता है वही करता है ॥ ८ ॥ योग्य और समर्थ होकर भी जो भृत्य स्वामीकी आज्ञाके अनुसार काम नहीं करता, वह अधम भृत्य कहा जाता है ॥ ९ ॥ स्वामीके द्वारा कार्यमें नियुक्त होकर हनुमानने कार्य सिद्ध किया, सीताके पता लगानेको वह गया था पर इन्होंने अन्य आवश्यक कार्य भी किये। इन्होंने कोई निन्दित काम करके अपनेको छोटा नहीं बनाया और सुग्रीवको भी प्रसन्न किया ॥ १० ॥ अपने भृत्य-धर्मके पालन द्वारा सीताका पता लगाकर हनुमानने मेरी, महाबली लक्ष्मणकी और रघुवंशकी रक्षाकी ॥ ११ ॥ ऐसा प्रिय संवाद सुनानेवाले हनुमानके योग्य पारितोषिक मैं नहीं दे रहा हूँ, यह मुझ दीनके मनको बहुत दुःख दे रहा है ॥ १२ ॥ पारितोषिकके इस अवसरपर अपना सर्वस्व यह आलिंगन मैं महात्मा हनुमानको देता हूँ ॥ १३ ॥ ऐसा कहते कहते रामचन्द्रका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया और उन्होंने कार्य साधकर आये हुए हनुमानका आलिंगन किया ॥ १४ ॥ पुनः थोड़ी देरतक ध्यान करके सुग्रीवको सुनाकर रामचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ सीताका पता लग गया, यह बड़ाही उत्तम काम हुआ पर समुद्रका स्मरण करके मेरा मन पुनः दुःखी हो गया ॥ १६ ॥ अधिक जल वाले अतएव पार करनेके अयोग्य समुद्रके पार ये एकत्र किये हुए वानर कैसे जाँयगे ॥ १७ ॥ यद्यपि सीताके ये वृत्तान्त हनुमानने मुझे सुनाये, पर वानरोंके समुद्र पार जानेका क्या जवाब होगा ॥ १८ ॥ शत्रुसंहारकारी रामचन्द्र हनुमानसे ऐसा कहकर शोकसन्तप्त हुए और ध्यानस्थ हो गये ॥ १९ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पहला सर्ग समाप्त।

द्वितीयः सर्गः २

तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् । उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ १ ॥
किं त्वया तप्यते वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा । मैवं भूस्त्यज संतापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ २ ॥
संतापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव । प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥ ३ ॥
मतिमाञ्शास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव । त्यजेमां प्राकृतां बुद्धिं कृतात्मेवार्थदूषिणीम् ॥ ४ ॥
समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम् । लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥ ५ ॥
निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः । सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥ ६ ॥
इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः । त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् ।
एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चापि दृढो मम ॥ ७ ॥
विक्रमेण समानेष्ये सीतां हत्वा यथा रिपुम् । रावणं पापकर्माणं तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ८ ॥
सेतुरत्र यथा बद्धयेद्यथा पश्येम तां पुरीम् । तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तां हि पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम् । हतं च रावणं युद्धे दर्शनादवधारय ॥१०॥
अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरे च वरुणालये । लङ्का न मर्दितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥११॥
सेतुबन्धः समुद्रे च यावल्लङ्कासमीपतः । सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्युपधारय ।
तथा हि समरे वीरा हरयः कामरूपिणः ॥१२॥

शोकक्षीण दशरथपुत्र रामचन्द्रसे श्रीमान सुग्रीव शोक दूर करनेवाले वचन बोले ॥ १ ॥ वीर, साधारण मनुष्योंके समान आप क्यों दुखी हो रहे हैं, आप ऐसे न हों; सन्ताप छोड़ें, जिसप्रकार कृतघ्न मैत्री छोड़ता है ॥ २ ॥ सीताका समाचार मिल जानेपर और शत्रुके घरका पता मिल जानेपर तुम्हारे दुःखका कोई कारण मैं नहीं देखता ॥ ३ ॥ आप बुद्धिमान हैं, शास्त्रज्ञ हैं, विचावान हैं और पण्डित हैं, आप इस छोटे विचारको हटावें, यह कार्यसिद्धिका बाधक है ॥ ४ ॥ बड़े बड़े मगरोंवाले समुद्रको पार करके हमलोग लंकापर चढ़ जायँगे और तुम्हारे शत्रुका नाश करेंगे ॥ ५ ॥ उत्साहहीन दीन और शोक सन्तप्त मनुष्यके सब मनोरथ नष्ट हो जाते हैं और वह दुख पाता है ॥ ६ ॥ ये वीर और सब प्रकारसे योग्य वानर सेनापति आपके कार्यके लिए आगमें प्रवेश करनेका भी उत्साह रखते हैं । यह बात मैं इनके उत्साह देखकर जानता हूँ और मैं समझता भी ऐसाही हूँ ॥७॥ पापी शत्रु रावणको पराक्रमसे मारकर जिस प्रकार हमलोग सीताको ले आवें, वैसा उपाय आप करें ॥८॥ जिस तरह समुद्रपर सेतु बँधे, हमलोग राक्षसराजकी उस नगरीको देख सकें, राघव, आप वैसा प्रबन्ध करें ॥ ९ ॥ त्रिकूट पर्वतपर वर्तमान उस नगरीको देखनेके पश्चात् युद्धमें रावण दिखायी पड़ा और मारा गया, ऐसा आप समझें ॥ १० ॥ वरुणके निवासस्थान भयानक समुद्रपर बिना सेतु बनाये इन्द्रसहित देवता तथा असुरोंके बिगाड़े भी लंकाका कुछ बिगड़ नहीं सकता ॥ ११ ॥ लंकाके पास तक जब समुद्रमें सेतुरचना हो जायगी, तब आप समझें कि हमारी समूची सेना समुद्रपार चली जायगी और हमलोग विजयी हो जाँयगे, ऐसा आप समझें; क्योंकि हमारे वानर युद्धमें वीर हैं और अनेक रूप धारण करनेवाले हैं ॥ १२ ॥

तदलं विक्लवां बुद्धिं राजन्सर्वार्थनाशनीम् । पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिञ्शोकः शौर्यापकर्षणः ॥१३॥
यत्तु कार्यं मनुष्येण शौटीर्यमवलम्ब्यताम् । तदलंकरणायैव कर्तुर्भवति सत्वरम् ॥१४॥
अस्मिन्काले महाप्राज्ञ सत्त्वमातिष्ठ तेजसा । शूराणां हि मनुष्याणां त्वद्विधानां महात्मनाम् ।
विनष्टे वा प्रनष्टे वा शोकः सर्वार्थनाशनः ॥१५॥
तत्त्वं बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थकोविदः । मद्विधैः सचिवैः सार्धमरिं जेतुं समर्हसि ॥१६॥
नाहं पश्याम्यहं कंचित्त्रिषु लोकेषु राघव । गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥१७॥
वानरेषु समासक्तं न ते कार्यं विपत्स्यते । अचिराद्द्रक्ष्यसे सीतां तीर्त्वा सागरमक्षयम् ॥१८॥
तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब्य भूपते । निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ॥१९॥
लङ्घनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपतेः । सहास्माभिरिहोपेतः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ॥२०॥
लङ्घिते तत्र तैः सैन्यैर्जितमित्येव निश्चिनु । सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्यवधार्यताम् ॥२१॥
इमे हि हरयः शूराः समरे कामरूपिणः । तानरीन्विधमिष्यन्ति शिलापादपवृष्टिभिः ॥२२॥
कथंचित्परिपश्यामि लङ्घितं वरुणालयम् । हतमित्येव तं मन्ये युद्धे शत्रुनिबर्हण ॥२३॥
किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान् । निमित्तानि च पश्यामि मनो मे संप्रहृष्यति ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अतएव राजन्! इन शोकप्रधान विचारोंका आप परित्याग करें क्योंकि इनसे कार्य नष्ट होते हैं। शोकसे मनुष्योंकी शूरता नष्ट हो जाती है ॥ १३ ॥ मनुष्योंको शूरतायुक्त कार्य ही हाथमें लेना चाहिए, क्योंकि शीघ्रतापूर्वक जो कार्य किया जाता है, उससे कर्ताकी शोभाही होती है ॥ १४ ॥ नष्ट या खोये हुए पदार्थोंके लिए आपके समान शूर महात्माओंका शोक करना सब कार्योंको नष्ट कर देता है, अतएव हे महाप्राज्ञ! इस समय आप तेजस्वी बनकर धैर्य धारण करें ॥ १५ ॥ अतएव हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, सब शास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले, अब आप हमारे समान सचिवोंको लेकर शत्रुको जीतनेका उद्योग कीजिए ॥ १६ ॥ राघव, तीनों लोकोंमें ऐसा किसीको नहीं देखता, जो धनुष लेनेपर युद्धमें आपके सामने खड़ा रह सके ॥ १७ ॥ वानरोंके जिम्मे सौंपा आपका कोई कार्य नष्ट होने न पावेगा, आप शीघ्रही विशाल समुद्रको पारकर सीताको देखेंगे ॥ १८ ॥ अब शोक करना छोड़कर आप क्रोध कीजिए, उद्योग न करनेवाले क्षत्रिय अभागी होते हैं, क्रोधीसे सभी डरते हैं ॥ १९ ॥ नदीपति समुद्रको पार करनेका सूक्ष्म विचार हमलोगोंके साथ मिलकर कीजिए ॥ २० ॥ समुद्र पार कर लेनेपर हमारी सेना विजयिनी होगी, यह आप निश्चय समझिए, हमारी समस्त सेना पार जायगी और जीतेगी यह आप जान लें ॥ २१ ॥ ये हमारे वीर वानर युद्धमें अनेक रूप धर सकते हैं, ये छोटे-छोटे वानर विशालकाय हो सकते हैं, ये पत्थर और पेड़ बरसाकर शत्रुओंको नष्ट कर देंगे ॥ २२ ॥ शत्रुनाशन, हमलोग किसी तरह समुद्रके पार चले आयँ तो युद्धमें शत्रुको मार गिरावें, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २३ ॥ अधिक कहनेसे क्या लाभ, आप सब प्रकारसे विजयी होंगे, ऐसे ही शकुन हो रहे हैं, मेरा मन उत्साहयुक्त है ॥ २४ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांडका दूसरा सर्ग समाप्त ।

तृतीयः सर्गः ३

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् । प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन च । सर्वथापि समर्थोऽस्मि सागरस्यास्य लङ्घने ॥ २ ॥
कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद्ब्रवीष्व मे । ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर ॥ ३ ॥
बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि । गुप्तिकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च ॥ ४ ॥
यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान् । सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि ॥ ५ ॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्मारुतात्मजः । वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥ ६ ॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्म विधानतः । गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥ ७ ॥
राक्षसाश्च यथा स्निग्धा रावणस्य च तेजसा । परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ॥ ८ ॥
विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च । एवमुक्त्वा कपिश्रेष्ठः कथयामास तत्त्ववित् ॥ ९ ॥
हृष्टप्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला । महती रथसंपूर्णा रक्षोगणनिषेविता ॥१०॥
दृढबद्धकपाटानि महापरिघवन्ति च । चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहान्ति च ॥११॥
तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च । आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते ॥१२॥
द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः । शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ॥१३॥

हेतुयुक्त और यथार्थ सुग्रीवके वचन सुनकर रामचन्द्रने उसीके अनुसार काम करनेका निश्चय किया और वे हनुमानसे बोले ॥ १ ॥ तपस्याके प्रभावसे सेतु बांधने, समुद्रको शोखने तथा इसके पार जानेमें मैं सर्वथा समर्थ हूँ ॥ २ ॥ प्रवेश करनेके अयोग्य उस लंका नगरीके कितने दुर्ग हैं (नगररक्षाके लिए बनी खाइ चारदीवारीको दुर्ग कहते हे) मैं उन सबको देखनेके समान स्पष्ट समझ लेना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ उसकी सेनाका परिमाण द्वारोंको प्रवेशके अयोग्य बनाने वाले उपाय, लंकाकी रक्षाके साधन तथा राक्षसोंके घर तुमने सावधानीसे ठीक ठीक देखे हैं वह सब यथावत् तुम मुझसे कहो, तुम कहनेके सर्वथा योग्य हो ॥ ४-५ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ वायुपुत्र हनुमान उनसे पुनः वचन बोले ॥ ६ ॥ सुनिए ! लंकाको दुर्गम बनानेवाले कौनसे उपाय हैं, उसकी रक्षाके गुप्त साधन क्या हैं, किस प्रकार राक्षस उसकी रक्षा करते हैं, यह सब मैं यथावत् कहता हूँ ॥ ७ ॥ रावणके प्रभावसे राक्षस उससे प्रेम करते हैं, लंकाका उत्कृष्ट ऐश्वर्य और समुद्रकी भयंकरता भी मैं कहूँगा ॥ ८ ॥ पैदल और सवारी सेनाका भी मैं वर्णन करूँगा, ऐसा कहकर तत्ववेत्ता कपिश्रेष्ठ हनुमान बोले; वे कहने लगे ॥ ९ ॥ लंकानिवासी बड़े सुखी हैं, मतवाले हाथियोंसे वह भरी हुई है, वह राक्षसोंके द्वारा रक्षित लंका, रथोंसे परिपूर्ण है ॥ १० ॥ उसके चार बड़े विशाल द्वार हैं जिनमें मजबूत किवाड़ लगे हुए हैं, उनपर बड़े बड़े परिघ रखे हुए हैं ॥ ११ ॥ उन द्वारोंपर बाण और पत्थर फेंकनेके यन्त्र लगे हुए हैं, ये यन्त्र बड़े पुष्ट और विशाल हैं, आक्रमणके लिये आई सेनाको राक्षस वहीं रोक देते हैं ॥ १२ ॥ उन द्वारोंपर राक्षसोंके द्वारा बनाई मजबूत लोहेकी भयानक और काली सैकड़ों शतघ्नियाँ हैं ॥ १३ ॥

सौवर्णस्तु महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः । मणिविद्रुमवैदूर्यमुक्ताविरचितान्तरः ॥१४॥
सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः । अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः ॥१५॥
द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः । यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपङ्क्तिभिः ॥१६॥
त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागते सति । यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ॥१७॥
एकस्त्वकम्प्यो बलवान्संक्रमः सुमहादृढः । काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभितः ॥१८॥
स्वयं प्रकृतिमापन्नो युयुत्सू राम रावणः । उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ॥१९॥
लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा । नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम् ॥२०॥
स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव । नौपथश्चापि नास्त्यत्र निरुद्देशश्च सर्वशः ॥२१॥
शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा । वाजिवारणसंपूर्णा लङ्का परमदुर्जया ॥२२॥
परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च । शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः ॥२३॥
अयुतं रक्षसामत्र पूर्वद्वारं समाश्रितम् । शूलहस्ता दुराधर्षाः सर्वे खड्गाग्रयोधिनः ॥२४॥

सोनेकी उसकी चारदीवारी है, जिसका तोड़ना बड़ा ही कठिन है, मणि, विद्रुम, वैदूर्य आदि के काम उस चारदीवारीमें किये हुए हैं ॥ १४ ॥ उस नगरके चारों ओर खाई है, जिसमें अगाध जल है, मगर है, मछलियां हैं, उसका जल ठंढा है, वह खाई महा भयंकर और शत्रुओंका विनाश करनेवाली है ॥ १५ ॥ उन द्वारोंपर चार बड़े विशाल संक्रम बने हुए हैं (आने जानेके मार्गको संक्रम कहते हैं । शायद द्वारके पास खाईपरके पुलके लिए यहां संक्रम शब्दका प्रयोग किया गया है) उनमें यंत्र लगे हुए हैं, उनके पास बड़े बड़े घरोंकी कतारें हैं ॥१६॥ बाहरी सेना आनेपर उन यन्त्रोंके द्वारा वह खाईमें फेंक दी जाती है इस प्रकार वे संक्रम उस नगरकी रक्षा करते हैं, (खाईमें फेंक देनेसे मतलब शायद पुल हटा लेनेसे है, वे पुल ऐसे बने होंगे कि जब चाहे हटा ले) ॥ १७ ॥ उनमें एक संक्रम तो बड़ा ही मजबूत है, वहां बड़ी सेना रहती है अतएव शत्रु वहां कुछ कर नहीं सकता । सोनेके अनेक खंभे और चौतरे बने हुए हैं जिनसे उसकी शोभा होती है ॥ १८ ॥ राम, युद्धकी इच्छा रखनेवाला रावण स्वयं सावधान होकर सेनाका निरीक्षण करनेमें तत्पर और सावधान रहता है ॥१९॥ लंकामें प्रवेशका कोई अवलम्ब नहीं है अर्थात ऊंचे पर्वतशिखरपर वह बसी हुई है, चढ़नेके लिए कोई सीढ़ी नहीं है अतएव उसमें प्रवेशका कोई अवलम्ब नहीं है, वह देवताओंकी बनायी हुई है, अतएव भयानक है, वह चारों ओरसे विशाल नदीसे घिरी हुई है, त्रिकूट पर्वतपर है और चारों ओरसे चारदीवारी बनी हुई है, इसप्रकार लंकाके ये चार दुर्ग हैं अर्थात् प्रवेशके बाधक हैं ॥ २० ॥ समुद्रके उसपार वह नगरी है, समुद्रका पाट बहुत ही लम्बा है, नावसे जानेका भी वहाँ मार्ग नहीं है, समुद्रकी विशालताके कारण दिग्ज्ञान न रहनेसे किधर जाना है, इसका पता लगाना भी कठिन है ॥ २१ ॥ पर्वतके शिखरपर वह दुर्गम नगरी बसायी गयी है, वह देव-नगरके समान है, हाथी घोड़ोंसे वह नगरी भरी हुई है लंकाका जीतना बड़ाही कठिन है ॥ २२ ॥ दुरात्मा रावणकी नगरी उस लंकापुरीको परिखाएँ शतघ्नियां और अनेक प्रकारके यन्त्र सुशोभित करते हैं ॥ लंकाके पूर्व द्वारपर दश हजार राक्षस हैं; वे सब शूल-धारण करते हैं और तलवारसे लड़ते हैं, इनका सामना करना कठिन है ॥ २४ ॥

नियुतं रक्षसामत्र दक्षिणद्वारमाश्रितम् । चतुरङ्गेण सैन्येन योधास्तत्राप्यनुत्तमाः ॥२५॥
प्रयुतं रक्षसामत्र पश्चिमद्वारमाश्रितम् । चर्मखड्गधराः सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ॥२६॥
न्यर्बुदं रक्षसामत्र उत्तरद्वारमाश्रितम् । रथिनश्चाश्ववाहाश्च कुलपुत्राः सुपूजिताः ॥२७॥
शतशोऽथ सहस्राणि मध्यमं स्कन्धमाश्रिताः । यातुधाना दुराधर्षाः साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ॥२८॥
ते मया संक्रमा भग्नाः परिखाश्चावपूरिताः । दग्धा च नगरी लङ्का प्राकाराश्चावसादिताः ॥२९॥
येन केन तु मार्गेण तराम वरुणालयम् । हतेति नगरी लङ्का वानरैरुपधार्यताम् ॥३०॥
अङ्गदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान्पनसो नलः । नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव ॥३१॥
प्लवगाना हि गत्वा तां रावणस्य महापुरीम् । सपर्वतवनां भित्त्वा सखातां च सतोरणाम् ।
सप्राकारां सभवनामानयिष्यन्ति राघव ॥३२॥
एवमाज्ञापय क्षिप्रं बलानां सर्वसंग्रहम् । मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः । ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥
यन्निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः । क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २ ॥

चतुरंगिणी सेनाके साथ एक लाख श्रेष्ठ राक्षस योधा लंकाके दक्षिण द्वारपर रहते हैं ॥ २५ ॥ पश्चिम द्वारपर दस लाख सैनिक रहते हैं वे ढाल तलवार धारण करते हैं तथा सब अस्त्रोंके जाननेवाले हैं ॥ २६ ॥ उत्तर द्वारपर एक अर्ब राक्षस हैं, वे रथी और घुड़सवार हैं, वे कुलीन तथा प्रतिष्ठित हैं ॥ २७ ॥ पराजित न होनेवाले कई हजार राक्षस नगरके बीचमें रहते हैं, सब मिलाकर पूरे एक करोड़ राक्षस लंकामें रहते हैं ॥ २८ ॥ मैंने उन सक्रमोंको तोड़ दिया है, परिखा भर दी है, लंका नगरी जला दी है और चारदीवारी तोड़ दी है ॥ २९ ॥ महाराज सुग्रीवके बतलाये उपायोंमें से किसी उपायसे हम लोग समुद्र पार कर लेंगे, तब वानरोंके द्वारा स्वयं लंका नष्ट हो जायगी, यह आप निश्चित समझें ॥ ३१ ॥ अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, पनस, नल, नील और सेनापति सुग्रीव इतने ही लंकाको नष्ट करनेके लिए पर्याप्त हैं, बाकी सेनासे आपको क्या करना है ॥ ३१ ॥ अंगद आदि वानर रावणकी महानगरीमें जाकर पर्वत वन, खाई तोरण, चारदीवारी, भवनोंके साथ उस नगरीको तोड़ कर सीताको ले आवेंगे ॥ ३२ ॥ सेनामें श्रेष्ठ अंगद आदि वानरोंको आप शीघ्र आज्ञा दें और यात्राके योग्य मुहूर्तमें आप भी प्रस्थान करें ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड का तीसरा सर्ग समाप्त ।

हनुमानके वचन यथाक्रम और यथावत् सुनकर महातेजस्वी सत्यपराक्रम राम बोले ॥ १ ॥ भयानक राक्षसकी जिस लंका पुरीकी बात तुम कह रहे हो, उसका शीघ्र ही मैं नाश करूँगा, यह

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय । युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥ ३ ॥
सीतां हृत्वा तु तद्यातु क्वासौ यास्यति जीवितः । सीता श्रुत्वाभियानं मे आशामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वामृतमिवातुरः ॥ ४ ॥
उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते । अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ॥ ५ ॥
निमित्तानि च पश्यामि यानि प्रादुर्भवन्ति वै । निहत्य रावणं सीतामानयिष्यामि जानकीम् ॥ ६ ॥
उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिदं मम । विजयं समनुप्राप्तं शंसतीव मनोरथम् ॥ ७ ॥
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः । उवाच रामो धर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥ ८ ॥
अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम् । वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥ ९ ॥
फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा । पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय ॥ १० ॥
दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम् । राक्षसाः परिरक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः ॥ ११ ॥
निम्नेषु वनदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः । अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहितं बलम् ॥ १२ ॥
यत्तु फल्गु बलं किंचित्तदत्रैवोपपद्यताम् । एतद्धि कृत्यं घोरं नो विक्रमेण प्रयुज्यताम् ॥ १३ ॥
सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः । कपिसिंहाः प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥

मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ २ ॥ सुग्रीव, इसी समय यात्राकी तयारी करो क्योंकि यह यात्राके योग्य मुहूर्त है, सूर्य दिनके मध्यमें आगये हैं ॥ ३ ॥ सीताको हरकर वह राक्षस चला गया है तो चला जाय, पर जीवित रहनेपर वह कहाँ जा सकता है, लंकापर मेरे आक्रमणकी बात सुनकर सीता भी जीवन धारण करनेमें आशावती हो जायगी, जिस प्रकार अन्त समयमें अमृतको छूने और अमृतको पीनेसे रोगीके जीवनकी आशा होजाती है (एक अमृत शब्द किसी औषधिका वाचक है) ॥ ४ ॥ आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है, कल चन्द्रमा हस्तपर आ जायगा । सुग्रीव, सब सेनाके साथ हमलोग आज ही प्रस्थान करें ॥ ५ ॥ जिन शकुनोंसे मंगल होता है वैसे शकुन मैं देख रहा हूँ, रावणको मारकर मैं सीताको लाऊँगा ॥ ६ ॥ इन शकुनोंके अतिरिक्त मेरी यह आँख फरक रही है, जो विजय और मनोरथकी सिद्धि बतलाती है ॥ ७ ॥ लक्ष्मण और सुग्रीवने रामचन्द्रकी बातोंकी प्रशंसा की, अर्थज्ञ और धर्मज्ञ रामचन्द्र पुनः बोले ॥ ८ ॥ बलवान सौ हजार वानरोंके साथ नील इस सेनाके आगे आगे मार्ग देखनेके लिए चलें ॥ ९ ॥ सेनापति नील, तुम उस मार्गसे सेनाको ले जाओ जिसमें फलमूल मिले, ठंढा जल हो तथा जहाँ मधु मिल सके ॥ १० ॥ यदि दुरात्मा राक्षस रास्तेके फलमूल-जल आदि नष्ट करना चाहें तो तुम सावधान रहकर फलमूल आदिकी उनसे रक्षा करना ॥ ११ ॥ गढ़ों, सघनवनों और वनोंमें कूदकर वानर शत्रुकी छिपी सेनाका पता लगावें अर्थात् कहीं ऐसा न हो कि हमारी सेना आगे जाय और छिपी शत्रुसेना पीछेसे आक्रमण कर दे ॥ १२ ॥ जो सैनिक कमजोर हों, वे यहीं किष्किन्धामें हीं रहें क्योंकि हमलोगोंका यह युद्ध बड़ा भयानक होगा, अतएव यह वीरोंके ही द्वारा होना चाहिए ॥ १३ ॥ समुद्र-धाराके समान भयानक सेनाके अग्रभागमें सैकड़ों हजारों वानरसिंह चलें ॥ १४ ॥

गयश्च गिरिसंकाशो गवयश्च महाबलः। गवाक्षश्चाग्रतो यातु गवां दृप्त इवर्षभः ॥१५॥
यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतां पतिः। पालयन्दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥१६॥
गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः। यातु वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥१७॥
यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन्। अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥१८॥
अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः। सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥१९॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः। ऋक्षराजो महाबाहुः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥२०॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः। व्यादिदेश महावीर्यो वानरान्वानरर्षभः ॥२१॥
ते वानरगणाः सर्वे समुत्पत्य महौजसः। गुहाभ्यः शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ॥२२॥
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः। जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥२३॥
शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चायुतैरपि। वारणाभैश्च हरिभिर्ययौ परिवृतस्तदा ॥२४॥
तं यान्तमनुयान्ती सा महती हरिवाहिनी। हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभि पालिताः ॥२५॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः। क्ष्वेलन्तो निनदन्तश्च जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ॥२६॥
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च। उद्वहन्तो महावृक्षान्मञ्जरी पुञ्जधारिणः ॥२७॥

गौओंके यूथके आगे जिस प्रकार मस्त साँड़ चलता है, उसी प्रकार पर्वतके समान विशाल गज, महाबली गवय और गवाक्ष सेनाके आगे आगे चले ॥ १५ ॥ वानरोंके श्रेष्ठ सेनापति ऋषभवानरी सेनाके दाहिने भागमें रहकर उसकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ बलवान गन्धमादन गन्धहस्तिके समान पराजित होनेके अयोग्य हैं (जिसको गन्धसे दूसरे हाथी भाग जाते हैं उसे गन्धहस्ति कहते हैं) वे वानरी सेनाके बायें भागमें रहकर उसकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ जिसप्रकार ऐरावतपर चढ़कर इन्द्र चलता है, उसी प्रकार हनुमानपर चढ़कर सेनाके बीचमें मैं चलूँगा, जिससे सेना प्रसन्न होती चले ॥ १८ ॥ सार्वभौम नामक हाथीपर जैसे यक्षराज कुबेर चलते हैं, उसी प्रकार अंगदपर चढ़कर शत्रुके लिए यमराजके समान लक्ष्मण चलें ॥ १९ ॥ जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी ये तीन वानर तथा महाबाहु ऋक्षराज सेनाके पीछेके भागकी रक्षा करें ॥ २० ॥ राघवके वचन सुनकर महाबली सेनापति सुग्रीवने वानरोंको आज्ञा दी ॥ २१ ॥ सुग्रीवकी आज्ञा पाकर वे सब महाबली वानर गुहाओं और शिखरोंसे उछलकर शीघ्र आने लगे ॥ २२ ॥ अनन्तर वानर सेनापति सुग्रीव और लक्ष्मणके निवेदन करनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र सेनाके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ हाथीके समान विशालकाय असंख्य वानरोंके साथ रामचन्द्र चले ॥ २४ ॥ रामचन्द्रके पीछे पीछे वह विशाल वानरी सेना चली। सुग्रीवके द्वारा पालित वे वानर सन्तुष्ट और प्रसन्न थे, वे वानर रक्षाके लिए कूदते हुए दौड़ आते थे, कोई मा ' देखनेके लिए दौड़कर आगे चला जाता था, कोई गर्जन करता था, कोई सिंहगर्जन करता था और कोई साधारण बातचीत। इस प्रकार वे सब दक्षिण दिशामें चले ॥ २५-२६ ॥ वे मीठे और सुगन्धित फलोंको खाते, मंजरीसे लदे बड़े बड़े

अन्योन्यं सहसा दृप्ता निर्वहन्ति क्षिपन्ति च । पतन्तश्चोत्पतन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान् ॥२८॥
रावणो नो निहन्तव्यः सर्वे च रजनीचराः । इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपतः ॥२९॥
पुरस्तादृषभो नीलो वीरः कुमुद एव च । पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह ॥३०॥
मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च । बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतः शत्रुनिबर्हणः ॥३१॥
हरिः शतबलिर्वीरः कोटिभिर्दशभिर्वृतः । सर्वामेको ह्यवष्टभ्य ररक्ष हरिवाहिनीम् ३२॥
कोटीशतपरीवारः केसरी पनसो गजः । अर्कश्च बहुभिः पार्श्वमेकं तस्याभिरक्षति ॥३३॥
सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैर्बहुभिरावृतौ । सुग्रीवं पुरतः कृत्वा जघनं संररक्षतुः ॥३४॥
तेषां सेनापतिर्वीरो नीलो वानरपुंगवः । संयतश्चरतां श्रेष्ठस्तद्बलं पर्यवारयत् ॥३५॥
बलीमुखः प्रजङ्घश्च जम्भोऽथ रभसः कपिः । सर्वतश्च ययुर्वीरास्त्वरयन्तः प्लवंगमान् ॥३६॥
एवं ते हरिशार्दूला गच्छन्ति बलदर्पिताः । अपश्यन्त गिरिश्रेष्ठं सह्यं गिरिशतायुतम् ॥३७॥
सरांसि च सुफुल्लानि तटाकानि वराणि च । रामस्य शासनं ज्ञात्वा भीमकोपस्य भीतवत् ॥३८॥
वर्जयन्नगराभ्याशांस्तथा जनपदानपि । सागरौघनिभं भीमं तद्वानरबलं महत् ॥३९॥
निःससर्प महाघोरं भीमघोषमिवार्णवम् । तस्य दाशरथेः पार्श्वे शूरास्ते कपिकुञ्जराः ॥४०॥
तूर्णमापुप्लुवुः सर्वे सदश्वा इव चोदिताः । कपिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते नरर्षभौ ॥४१॥

वृक्षोंको उठाये दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २७ ॥ वे बलगर्वित वानर परस्पर पीठपर चढ़ा कर ले चलते हैं, गिरा देते हैं, कोई गिरते हुएपर चढ़ जाते हैं और दूसरे दूसरोंको गिरा देते हैं ॥ २८ ॥ कई वानर रामचन्द्रके पास जाकर, गर्जकर कहने लगे कि हमलोग रावण तथा सब राक्षसोंको मारेंगे ॥ २९ ॥ ऋषभ, नील और वीर कुमुद अनेक सहकारी वानरोंके साथ आगे आगे रास्ता ठीक करते जाते थे ॥ ३० ॥ रामचन्द्र लक्ष्मण और सुग्रीव उस वानरी सेनाके बीचमें थे अनेक बलवान विशालकाय वानर उनलोगोंको घेरे हुए थे ॥ ३१ ॥ शतबलि नामक वीर वानर सौ करोड़ वानरोंके साथ अकेला ही उस समस्त वानरी सेनाकी रक्षा करता था ॥ ३२ ॥ सौ करोड़ साथियोंके साथ केसरी और पनस सेनाके एक भागकी रक्षा करते थे और अनेक वानरोंके साथ गज तथा अर्क सेनाके दूसरे भागकी रक्षा करते थे ॥ ३३ ॥ बहुतेरे भालुओंके साथ सुषेण और जाम्बवान सुग्रीवको आगे करके सेनाके पिछले भागकी रक्षा करते थे ॥ ३४ ॥ वानर-श्रेष्ठ वीर सेनापति नील स्वयं संयत होकर इधर उधर उपद्रव करनेवाले वानरोंको रोकते थे ॥ ३५ ॥ बलीमुख प्रजंघ, जम्भ और रभस ये सब ओरके वानरोंको शीघ्र चलनेके लिए कहते थे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार वे बलमत्त वानर-श्रेष्ठ चले, उनलोगोंने सह्यनामक श्रेष्ठ पर्वतको देखा, जिसके पास सैकड़ों पर्वत थे ॥ ३७ ॥ भयानक क्रोधवाले रामचन्द्रकी—मार्गमें कोई उपद्रव न करना कोई नुकसान न करना—इस आज्ञासे डर हुए वे वानर विकसित वापी, सुन्दर तालाव नगर तथा गांवसे अलग रहकर वह वानरी सेना भीम-गर्जन करने वाली समुद्रधाराके समान गर्जन करती हुई चली, वे वानर प्रेरित अच्छे घोड़ेके समान शीघ्र रामचन्द्रके पास आये। अंगद और हनुमानपर चढ़कर चलते हुए राम तथा लक्ष्मण दो बड़े ग्रहोंसे युक्त चन्द्रमा और

महद्भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्रहाभ्यां चन्द्रभास्करौ । ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन सुपूजितः ॥४२॥
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां । तमङ्गदगतो रामं लक्ष्मणः शुभया गिरा ॥४३॥
उवाच परिपूर्णार्थं पूर्णार्थप्रतिभानवान् । हृतामवाप्य वैदेहीं क्षिप्रं हत्वा च रावणम् ॥४४॥
समृद्धार्थः समृद्धार्थामयोध्यां प्रतियास्यसि । महान्ति च निमित्तानि दिवि भूमौ च राघव ॥४५॥
शुभानि तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये । अनुवाति शिवो वायुः सेना मृदुहितः सुखः ॥४६॥
पूर्णवल्गुस्वराश्चेमे प्रवदन्ति मृगद्विजाः । प्रसन्नाश्च दिशः सर्वा विमलश्च दिवाकरः ॥४७॥
उशना च प्रसन्नार्चिरनु त्वां भार्गवो गतः । ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्चिष्मन्तः प्रकाशन्ते ध्रुवं सर्वे प्रदक्षिणम् ॥४८॥
त्रिशङ्कुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः । पितामहः पुरोऽस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥४९॥
विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे । नक्षत्रं परमस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥५०॥
नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमतिपीड्यते । मूलो मूलवता स्पृष्टो धूप्यते धूमकेतुना ॥५१॥
सर्वं चैतद्विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम् । काले कालगृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम् ॥५२॥
प्रसन्नाः सुरसाश्चापो वनानि फलवन्ति च । प्रवान्ति नाधिका गन्धा यथर्तुकुसुमा द्रुमाः ॥५३॥

सूर्यके समान मालूम पड़ते थे । सुग्रीव और लक्ष्मणके द्वारा प्रशंसित रामचन्द्र अपनी सेनाके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चले । अंगदपर बैठे हुए लक्ष्मण रामचन्द्रसे मंगलमय वचन बोले, शकुनोंके द्वारा मनोरथके पूरे होनेका ज्ञान रखनेवाले लक्ष्मण सफलमनोरथ रामचन्द्रसे बोले । हरी हुई सीताको शीघ्रही पाकर रावणको मारकर और सफलमनोरथ होकर तुम अयोध्यामें लौट आवोगे और अयोध्याके भी मनोरथ पूरे होंगे क्योंकि राम, आकाश और पृथिवीमें अनुकूल शकुन हो रहे हैं ॥ ३८...४५ ॥ मैं सभी शुभ शकुन देख रहा हूँ जो आपकी मनोरथ सिद्धिकी सूचना देते हैं सेनाके अनुकूल धीरे-धीरे सुखकारी वायु चल रही है ॥ ४६ ॥ ये पशु पक्षी कानोंके सुखदायक पूरे स्वरमें आपके अनुकूल बोल रहे हैं, दिशायें प्रसन्न हैं और सूर्य मेघमुक्त हैं ॥ ४७ ॥ भृगुपुत्र शुक्र भी उज्वल प्रकाशयुक्त होकर आपके पृष्ठभागमें हैं, सप्तर्षियोंसे युक्त ध्रुव भी शुभ्र प्रकाश फैला रहा है और प्रकाशयुक्त सप्तर्षि उसकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं ॥ ४८ ॥ हम इक्ष्वाकुवंशियोंके पितामह त्रिशंकु भी अपने पुरोहित विश्वामित्रके साथ तुम्हारे आगे विमल प्रकाश फैला रहे हैं ॥ ४९ ॥ इक्ष्वाकुवंशियोंके कुलनक्षत्र दो विशाखाएं भी किसी ग्रह के आक्रमण से रहित होकर प्रकाशित हो रही हैं ॥ ५० ॥ राक्षसोंका नक्षत्र जिसके देवता राक्षस हैं अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, वह पासवाले धूमकेतुसे नितान्त संतप्त हो रहा है ॥ ५१ ॥ राक्षसोंके विनाशके लिए यह उपस्थित हुआ है क्योंकि जो कालवशवर्ती होता है उसीका नक्षत्र, ग्रहोंके द्वारा पीड़ित होता है ॥ ५२ ॥ जल मीठा और स्वच्छ है, वन फलोंसे भरा है, गन्धयुक्त वायु धीरे धीरे बह रही है, ऋतुके वृक्ष फूल रहे हैं ॥ ५३ ॥

व्यूढानि कपिसैन्यानि प्रकाशन्तेऽधिकं प्रभो। देवानामिव सैन्यानि सङ्ग्रामे तारकामये।
एवमार्य समीक्ष्यैतत्प्रीतो भवितुमर्हसि ॥५४॥

इति भ्रातरमाश्वास्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत्। अथावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम हरिवाहिनी ॥५५॥
ऋक्षवानरशार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैरपि। कराग्रैश्चरणाग्रैश्च वानरैरुद्धतं रजः ॥५६॥
भीममन्तर्दधे लोकं निवार्य सवितुः प्रभाम्। सपर्वतवनाकाशां दक्षिणां हरिवाहिनी ॥५७॥
छादयन्ती ययौ भीमा द्यामिवाम्बुदसंततिः। उत्तरन्त्याश्च सेनायाः सततं बहुयोजनम् ॥५८॥
नदीस्रोतांसि सर्वाणि सस्यन्दुर्विपरीतवत्। सरांसि विमलाम्भांसि द्रुमाकीर्णांश्च पर्वतान् ॥५९॥
समान्भूमिप्रदेशांश्च वनानि फलवन्ति च। मध्येन च समन्ताच्च तिर्यक्चाधश्च साविशत् ॥६०॥
समावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः। ते हृष्टवदनाः सर्वे जग्मुर्मारुतरंहसः ॥६१॥
हरयो राघवस्यार्थे समारोपितविक्रमाः। हर्षं वीर्यं बलोद्रेकान्दर्शयन्तः परस्परम् ॥६२॥
यौवनोत्सेकजाद्दर्पाद्विविधांश्चक्रुरध्वनि। तत्र केचिद्द्रुतं जग्मुरुत्पेतुश्च तथापरे ॥६३॥
केचित्किलकिलां चक्रुर्वानरा वनगोचराः। प्रास्फोटयंश्च पुच्छानि संनिजघ्नुः पदान्यपि ॥६४॥
भुजान्विक्षिप्य शैलांश्च द्रुमानन्ये बभञ्जिरे। आरोहन्तश्च शृङ्गाणि गिरीणां गिरिगोचराः ॥६५॥
महानादान्प्रमुञ्चन्ति क्ष्वेडामन्ये प्रचक्रिरे। ऊरुवेगैश्च ममृदुर्लताजालान्यनेकशः ॥६६॥

तारकवधके युद्धमें सजी देवसेनाके समान सजी हुई यह वानरी सेना अधिक शोभित होती है। आर्य, यह सब देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिए ॥ ५४ ॥ इस प्रकार भाईको प्रसन्न करते हुए लक्ष्मण प्रसन्न होकर भाईसे बोले। अनन्तर समस्त पृथिवीमें व्याप्त होकर वानरी सेना चली जिनके नख और दाँत ही आयुध थे, ऐसे भालु और वानरोंके पैरों और हाथोंसे खूब धूल उड़ायी गयी, जिसने सूर्यकी किरणोंको छिपाकर समस्त लोकको छिपा लिया, उस धूलसे पर्वत, वन, आकाश और दक्षिण दिशा ढक गयी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वह विशाल सेना पृथिवीको ढांककर चली, जिस प्रकार मेघसमूह आकाशको ढांक लेते हैं। उस सेनाके नदी पार करनेके समय नदियोंकी धारायेँ उलटी बहने लग गयीं, थोड़ी दूरतक नहीं, किन्तु बहुत योजन तक, वे धारायेँ विपरीत-गामिनी हो गयीं। वह वानरी सेना विमल जलवाले तालाबोंके बीचसे होकर वृक्षयुक्त पर्वतोंपर, तिरछे समतल भूमिपर, फैलकर तथा फलवाले वनमें नीचे होकर चली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वह बड़ी सेना पृथिवीपर फैलकर चली वायुके समान चलने वाले वानर प्रसन्न होकर चले ॥ ६१ ॥ रामचन्द्रके कार्यके लिए वानरोंका पराक्रम बढ़ गया था वे प्रसन्नता बल और पराक्रम आपसमें दिखलाते जाते थे ॥ ६२ ॥ जवानीके जोशमें वे रास्तेमें अनेक तरहकी मस्ती करते जाते थे, उनमें कई तेजीसे चलने लगे और कई उछलने लगे ॥ ६३ ॥ वनमें रहनेवाले कई वानर किलकिल शब्द करने लगे। कई पूँछ और कई पैर पटकने लगे ॥ ६४ ॥ उनमें दूसरे वनवासी वानर हाथ फैलाकर वृक्षों तथा पर्वत शिखरोंपर चढ़ते समय पर्वतोंको तोड़ने लगे ॥ ६५ ॥ कई सिंहनाद करने लगे, कई एक खास तरहकी हँसी हँसने लगे और कईओंने बड़े वेगसे लताओंकी तनोंको मसल डाला ॥६६॥

जृम्भमाणाश्च विक्रान्ता विचिक्रीडुःशिलाद्रुमैः। ततः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्च सहस्रशः ॥६७॥
वानराणां सुघोराणां श्रीमत्परिवृता मही। सा स्म याति दिवारात्रं महती हरिवाहिनी ॥६८॥
प्रहृष्टमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभिपालिताः। वानरास्त्वरिता यान्ति सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।
प्रमोक्षयिषवः सीतां मुहूर्तं क्वापि नावसन् ॥६९॥
ततः पादपसंबाधं नानावनसमायुतम्। सह्यपर्वतमासाद्य वानरास्ते समारुहन् ॥७०॥
काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च। पश्यन्नपि ययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ॥७१॥
चम्पकांस्तिलकांश्चूतानप्रसेकान्सिन्दुवारकान्। तिनिशान्करवीरांश्च भजन्ति स्म प्लवंगमाः ॥७२॥
अशोकांश्च करञ्जांश्च प्लक्षन्यग्रोधपादपान्। जम्बुकामलकान्नागान्भजन्ति स्म प्लवंगमाः ॥७३॥
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः। वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवाकिरन्ति तान् ॥७४॥
मारुतः सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः। षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥७५॥
अधिकं शैलराजस्तु धातुभिस्तु विभूषितः। धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायुवेगेन घट्टितः ॥७६॥
सुमहद्वानरानीकं छादयामास सर्वतः। गिरिप्रस्थेषु रम्येषु सर्वतः संप्रपुष्पिताः ॥७७॥
केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च मनोरमाः। माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च पुष्पिताः ॥७८॥
चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला वकुलास्तथा। रञ्जकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥७९॥
चूताः पाटलिकाश्चैव कोविदाराश्च पुष्पिताः। मुचुलिन्दार्जुनाश्चैव शिंशपाः कुटजास्तथा ॥८०॥
हिन्तालास्तिनिशाश्चैव चूर्णका नीपकास्तथा। नीलाशोकाश्च सरला अङ्कोलाः पद्मकास्तथा ॥८१॥

कई पराक्रमी वानर अंगड़ाई लेकर वृक्षों और पत्थरोंसे खेलते हुए चले. इस प्रकार सैकड़ों हजारों करोड़ों वानरोंसे सुन्दर भूमि ढक गयी, वह विशाल सेना दिनरात चलती थी ॥६७-६८॥ सुग्रीवके द्वारा रक्षित वे सब वानर प्रसन्न और तृप्त थे. सभी युद्धके लिये उत्सुक थे अतएव वे बड़े वेगसे चल रहे थे; सभी सीताको मुक्त करना चाहते थे इसलिए मार्गमें एक मुहूर्त भी उन लोगोंने विश्राम न किया ॥ ६९ ॥ अनन्तर सघन वृक्षोंसे युक्त तथा नाना वनों वाले सह्य पर्वतके पास पहुँचकर वानर उसपर चढ़ गये ॥ ७० ॥ सह्य और मलय पर्वतोंको वनों, नदियों और सोतोंको देखते हुए ही रामचन्द्र चले अर्थात् इनकी शोभा देखनेके लिए उन्होंने कहीं विश्राम नहीं किया ॥ ७१ ॥ चम्पक, तिलक, आम, प्रसेक, सिन्दुवार, तिनश, करवीर वृक्षों पर वानर चढ़ गये ॥ ७२ ॥ अशोक, करंज, प्लक्ष, न्यग्रोध, जम्बू, आँवला आदि वृक्षोंपर अन्य वानर चढ़ गये ॥७३॥ जो वानर सुन्दर पत्थरोंपर बैठे थे उनपर वायुके द्वारा कम्पित अनेक वृक्ष पुष्पवृष्टि कर रहे थे ॥ ७४ ॥ मधुर गन्धवाले वनमें झंकार करने वाले भ्रमरोंसे युक्त चन्दनके समान शीतल और सुखकारी वायु बहती थी ॥ ७५ ॥ वह सह्य पर्वत गैरिक आदि धातुओंसे अधिक विभूषित हुआ, धातुओंकी उड़ी धूलने वायुके द्वारा उड़कर वानरी सेनाको ढांक लिया; रमणीय पर्वत चारों ओर फूले चिरबिल्व, मधूक बिल्व, वंजुल, बकुल, रंज, तिलक, नागवृक्ष, आम, पाटली कोविदार, मुचुलिन्द, अर्जुन शिंशपा, कुटज, हिन्ताल, तिनिश, चूर्णक, नीपक, नीलाशोक, सरल, अङ्कोल,

प्रीयमाणैः प्लवङ्गैस्तु सर्वे पर्याकुलीकृताः । वाप्यस्तस्मिन्गिरौ रम्याः पल्वलानि तथैव च ॥८२॥
चक्रवाकानुचरिताः कारण्डवनिषेविताः । प्लवैः क्रौञ्चैश्च संकीर्णा वराहमृगसेविताः ॥८३॥
ऋक्षैस्तरक्षुभिः सिंहैः शार्दूलैश्च भयावहैः । व्यालैश्च बहुभिर्भीमैः सेव्यमानाः समन्ततः ॥८४॥
पद्मैः सौगन्धिकैः फुल्लैः कुमुदैश्चोत्पलैस्तथा । वारिजैर्विविधैः पुष्पै रम्यास्तत्र जलाशयाः ॥८५॥
तस्य सानुषु कूजन्ति नानाद्विजगणास्तथा । स्नात्वा पीत्वोदकान्यत्र जले क्रीडन्ति वानराः ॥८६॥
अन्योन्यं प्लावयन्ति स्म शैलमारुह्य वानराः । फलान्यमृतगन्धीनि मूलानि कुसुमानि च ॥८७॥
बभञ्जुर्वानरास्तत्र पादपानां मदोत्कटाः । द्रोणमात्रप्रमाणानि लम्बमानानि वानराः ॥८८॥
ययुः पिबन्तः स्वस्थास्ते मधूनि मधुपिङ्गलाः । पादपानवभञ्जन्तो विकर्षन्तस्तथा लताः ॥८९॥
विधमन्तो गिरिवरान्प्रययुः प्लवगर्षभाः । वृक्षेभ्योऽन्यत्तु कपयो नदन्तो मधुदर्पिताः ॥९०॥
अन्ये वृक्षान्प्रपद्यन्ते प्रपिबन्त्यपि चापरे । बभूव वसुधा तैस्तु संपूर्णा हरिपुंगवैः ।
यथा कलमकेदारैः पक्वैरिव वसुंधरा ॥९१॥
महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः । आरुरोह महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥९२॥
ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः । कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकुलम् ॥९३॥
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् । आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥९४॥
अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम् । रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥९५॥

पक्क, वृक्षोंको वानरने प्रसन्न होकर रौंद डाला; उस पर्वतपर तालाब तथा छोटे छोटे तालाब थे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ जिनमें चक्रवाक विचर रहे थे, जलमुर्गे भरे हुए थे, जल-कौए और क्रौंच इधर उधर फैले हुए थे, तीरपर जंगली सूअर थे ॥ ८३ ॥ भयानक भालू, सिंह, बाघ और भयानक दुष्ट अनेक हाथी तीरपर विचर रहे थे, उन तालाबोंमें नीलकमल, रक्तकमल, श्वेतकमल तथा जलमें फूलनेवाले अन्य अनेक फूल फूले हुए थे, जिनसे वे तालाब बड़े सुन्दर मालूम होते थे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उस पर्वतपर अनेक पक्षी बोल रहे थे और वानर तालाबके जलमें स्नान करके वहाँ जलक्रीडा करने लगे ॥ ८६ ॥ पर्वतपर चढ़कर वानर एक दूसरेको उछालने लगे, मदमस्त वानर अमृततुल्य गन्धवाले फलों और फूलोंको नष्ट करने लगे, वृक्षोंको तोड़ते, लताओंको खींचते हुए वानर, द्रोण परिमाण (करीब अढ़ाई सेर) मधु पीकर तथा सुस्थ होकर आगे चले ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कई वानर पर्वतोंमें आग लगाते हुए चले, कई दर्पित वानर वृक्षोंसे मधु लेकर गर्जन करने लगे, कई वृक्षोंपर चढ़ गये और कई मधु पीने लगे, समूची पृथिवी वानरोंसे भर गयी, मानों पृथ्वी पके धानसे भर गयी हो ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ राजीवलोचन राम महेन्द्र पर्वतके पास जाकर महाबाहु वे वृक्षोंसे शोभित शिखर वाले उस पर्वतपर चढ़े ॥ ९२ ॥ शिखरपर चढ़कर दशरथ-पुत्र रामने कछुए और मछलियोंसे भरे समुद्रको देखा ॥ ९३ ॥ वे मलय और सह्य नामक दो बड़े पर्वतोंको लांघकर क्रमशः घोर गर्जन करने वाले समुद्रके पास आए ॥ ९४ ॥ महेन्द्र पर्वतसे उतरकर हर्ष देने वालोंमें

अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः । वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥९६॥
एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् । इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमुपस्थिता ॥९७॥
अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पतिः । न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ॥९८॥
तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह । यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥९९॥
इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्शितः । रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत्तदा ॥१००॥
सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुंगव । संप्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने ॥१०१॥
स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् । गच्छन्तु वानराः शूरा ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥१०२॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः । सेनां निवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥१०३॥
विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् । मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः ॥१०४॥
वेलावनमुपागम्य ततस्ते हरिपुंगवाः । निविष्टाश्च परं पारं काङ्क्षमाणा महोदधेः॥१०५॥
तेषां निविशमानानां सैन्यसंनाहनिःस्वनः । अन्तर्धाय महानादमर्णवस्य प्रशुश्रुवे ॥१०६॥
सा वानराणां ध्वजिनी सुग्रीवेणाभिपालिता । त्रिधा निविष्टा महती रामस्यार्थपराभवत् ॥१०७॥
सा महार्णवमासाद्य हृष्टा वानरवाहिनी । वायुवेगसमाधूतं पश्यमाना महार्णवम् ॥१०८॥

श्रेष्ठ रामचन्द्र और सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ समुद्र तीरके सर्वोत्तम वनमें चले ॥ ९५ ॥ सदा उठनेवाली जलराशिसे जहांकी पथरीली जमीन धो दी गयी है उस विशाल तीर भूमिपर आकर रामचन्द्र बोले ॥ ९६ ॥ अब हमलोग समुद्रके पास चले आये, जिस बातकी चिन्ता हमलोग पहले करते थे उस चिन्ताका समय अब उपस्थित हुआ ॥ ९७ ॥ यह सुन्दर तीरवाला नदी-नाथ समुद्र है, बिना कोई उपाय किये उसके पार जाना सम्भव नहीं ॥ ९८ ॥ इस कारण हम यहीं ठहरें और विचार करें जिससे यह वानरी सेना समुद्रके उस पार चली जाय ॥ ९९ ॥ यही सोचकर सीताहरणसे महा दुःखी महाबाहु रामने समुद्र-तीर जाकर निवास करनेकी आज्ञा दी ॥ १०० ॥ हे वानरश्रेष्ठ तीरपर समस्त सेनाको ठहरनेकी आज्ञा दो, अब हमलोगोंके समुद्रके पार जानेके उपाय निश्चित करनेके लिये विचार करनेकी आवश्यकता है ॥ १०१ ॥ कोई भी सेनापति अपनी अपनी सेना छोड़कर कहीं दूसरी जगह न जायँ क्योंकि हमलोगोंको शत्रुओंकी ओरसे गुप्त भय है अतएव वीर वानर अपनी सेनाकी रक्षाके लिये जायँ ॥ १०२ ॥ रामके वचन सुनकर सुग्रीव तथा लक्ष्मणने समुद्र तीरपर वृक्षोंकी छायामें सेना ठहरायी ॥ १०३ ॥ समुद्रके पास ही वह सेना मधुके समान जलवाले मनोरम दूसरे समुद्रके समान मालूम पड़ती थी ॥ १०४ ॥ समुद्र पार जानेकी इच्छा रखनेवाले वानरोंने समुद्र तीरके वनमें विश्राम किया ॥ १०५ ॥ तीरपर ठहरी हुई सेनाके चलने फिरनेका शब्द समुद्रके घोरगर्जनको छिपाकर सुन पड़ने लगा ॥ १०६ ॥ सुग्रीवके द्वारा रक्षित वह वानरी सेना जो रामचन्द्रके कार्यके लिए एकत्र हुई थी, तीन जगह ठहरायी गयी अर्थात् तीन जातिके वानर उस सेनामें थे और वे अलग अलग ठहराये गये ॥ १०७ ॥ वह वानरी सेना समुद्र तीरपर आकर

दूरपारमसंबाधं रक्षोगणनिषेवितम् । पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥१०९॥
चण्डनक्रग्राहघोरं क्षपादौ दिवसक्षये । हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ॥११०॥
चन्द्रोदये समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् । चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिंगिलैः ॥१११॥
दीप्तभोगैरिवाकीर्णं भुजंगैर्वरुणालयम् । अवगाढं महासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ॥११२॥
सुदुर्गं दुर्गमार्गं तमगाधमसुरालयम् । मकरैर्नागभोगैश्च विगाढा वातलोलिताः ॥
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रहृष्टा जलराशयः ॥११३॥
अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बुमहोरगम् । सुरारिनिलयं घोरं पातालविषयं सदा ॥११४॥
सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् । सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥११५॥
संपृक्तं नभसाप्यम्भः संपृक्तं च नभोऽम्भसा । तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले ॥११६॥
समुत्पतितमेघस्य वीचिमालाकुलस्य च । विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥११७॥
अन्योन्यैरहताःसक्ताःसस्वनुर्भीमनिःस्वनाः । ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाम्बरे ॥११८॥
रत्नौघजलसंनादं विषक्तमिव वायुना । उत्पतन्तमिव क्रुद्धं यादोगणसमाकुलम् ॥११९॥

और वायुके द्वारा उसको कम्पित देखकर प्रसन्न हुई ॥१०८॥ जिसका पार बहुत चौड़ा है, जिसके बीचमें ठहरनेका कोई आधार नहीं, जिसमें राक्षसोंका निवास है, उस समुद्रको देखकर वानर सेनापति वहाँ ठहर गये ॥ १०९ ॥ जो नक्र और ग्राहके कारण भयंकर है, दिनको समाप्ति और रात्रिके प्रारम्भमें फेनराशिसे हँसता हुआ सा तथा लहरियोंसे नाचता हुआ सा मालूम पड़ता है ॥ ११० ॥ जो चन्द्रोदयके समय प्रत्येक लहरमें चन्द्रमाके प्रतिबिम्बित होनेसे चन्द्रमय दीख पड़ता है और जो प्रचंड वायुके समान वेगवाले बड़े बड़े ग्राह तथा तिमि तिमिंगिलसे भरा हुआ है ॥ १११ ॥ उसमें प्रदीप्त फणावाले सर्प रहते हैं, अन्य अनेक बड़े बली जलचर प्राणी भरे हुए हैं तथा अनेक पर्वत छिपे हुए हैं ॥ ११२ ॥ असुरोंका निवास-स्थान यह समुद्र अगाध है, जलचरोंके द्वारा दुर्गम है, नौका आदिके द्वारा भी इसका पार जाना असम्भव है, मकर तथा सर्पके शरीरके समान मालूम पड़नेवाली ये लहरियाँ प्रसन्नताके साथ ऊपर उठतीं और नीचे जाती हैं ॥ ११३ ॥ चमकीले जलके छोटे छोटे कण बिखेरे अमृत चूर्णके समान मालूम पड़ते हैं, जिसमें बड़े बड़े सर्प हैं, जिसमें राक्षस निवास करते हैं और जो पातालके समान गहरा है ॥ ११४ ॥ इस प्रकार सागर आकाशके समान और आकाश सागरके समान मालूम पड़ता है, सागर और आकाशमें कोई भेद दिखायी नहीं पड़ता है ॥ ११५ ॥ सागरका जल आकाशको छू गया है और आकाश सागरको छू रहा है, अतएव तारा तथा रत्न युक्त दोनों एक समान मालूम पड़ते हैं ॥ १ ६ ॥ आकाशमें मेघ उठ रहे हैं और सागरमें लहरियाँ उठ रहीं हैं अतएव सागर और आकाशमें कोई भेद दिखायी नहीं पड़ता ॥ ११७ ॥ सागरकी लहरियाँ आपसमें टकराकर भयंकर गर्जन कर रही हैं, मानो आकाशमें नगाड़े बजते हों ॥ ११८ ॥ वायु-ग्रस्त होनेके समान रत्नोंको बाहर फेंकनेवाली लहरियोंके शब्दके द्वारा शब्द करता हुआ, जलचर जीवोंसे युक्त सागर, मानों क्रोध

ददृशुस्ते महात्मानो वाताहतजलाशयम् । अनिलोद्धूतमाकाशे प्रलपन्तमिवोर्मिभिः ॥१२०॥
ततो विस्मयमापन्ना हरयो ददृशुः स्थिताः । भ्रान्तोर्मिजालसंनादं प्रलोलमिव सागरम् ॥१२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

सा तु नीलेन विधिवत्स्वारक्षा सुसमाहिता । सागरस्योत्तरे तीरे साधु सा विनिवेशिता ॥ १ ॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तत्र वानरपुंगवौ । विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थं सर्वतोदिशम् ॥ २ ॥
निविष्टायां तु सेनायां तीरे नदनदीपतेः । पार्श्वस्थं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति । मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते ॥ ४ ॥
न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च । एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ॥ ५ ॥
वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश । त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः ॥ ६ ॥
तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये । हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत् ॥ ७ ॥
तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविमलार्चिषा । रात्रिंदिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना ॥ ८ ॥

करके ऊपर उठ रहा हो, ऐसे सागरको उन महात्माओंने देखा उसका जल वायुके द्वारा कंपा दिया गया था और वायुके द्वारा आकाशमें उठा दिया गया था वह अपनी लहरियोंसे मानो प्रलाप कर रहा हो ॥ ११९ ॥ १२० ॥ जिसमें लहरियोंके उठनेसे गर्जन हो रहा है अतएव जो चंचल हो गया है उस सागरको वानरोंने विस्मित होकर देखा ॥ १२१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

स्वयं आत्मरक्षाकरनेवाली तथा सावधान उस सेनाको नीलने समुद्रके उत्तर तीरपर उत्तमतासे ठहराया ॥ १ ॥ मैन्द और द्विविद ये दोनों वानरश्रेष्ठ रक्षाके लिए उस सेनाके चारोओर घूमते थे ॥ २ ॥ नदनदियोंके स्वामी समुद्रके तीरपर सेनाके यथावत् ठहर जानेपर पास बैठे लक्ष्मणको देखकर रामचन्द्र बोले ॥ ३ ॥ समय बीतनेसे शोक कम हो जाता है यह उसका स्वभाव है पर मेरा शोक तो सीताके वियोगमें दिनोदिन बढ़ रहा है ॥ ४ ॥ प्रिया मुझसे दूर है इसका मुझे दुख नहीं है और न इसका ही दुख है कि वह हरी गयी है, मैं यही सोच रहा हूँ कि वहाँ उसकी उमर ढलती जाती है ॥ ५ ॥ हवा तुम उस दिशामें बहो जहाँ प्रिया सीता है उसके अंगोंको छूकर मुझे भी छुओ, जिसप्रकार घर्मतप्त मनुष्य चन्द्रमाकी ओर देखकर शीतल होता है उसी प्रकार तुमसे गात्रस्पर्श होनेसे मुझे शान्ति मिलेगी ॥ ६ ॥ पीए विषके समान वह बात मेरे हृदयको जला रही है जोकि हरणके समय मेरी प्रियाने "हा नाथ" कहा था ॥ ७ ॥ कामाग्निसे दिनरात मेरा शरीर जल रहा है इसके लिए प्रियाका वियोग लकडीका काम दे रहा है और उसकी चिन्ता

अवगाह्यार्णवं स्वप्स्ये सौमित्रे भवता विना । एवं च प्रज्वलन्कामो न मां सुप्तं जले दहेत् ॥ ९ ॥
बह्वेतत्कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम् । यदहं सा न वामोरूरेकां धरणिमाश्रितौ ॥१०॥
केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः । उपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम् ॥११॥
कदा नु खलु सुश्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम् । विजित्य शत्रून्द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम् ॥१२॥
कदा सुचारुदन्तोष्ठं तस्याः पद्ममिवाननम् । ईषदुन्नाम्य पास्यामि रसायनमिवातुरः ॥१३॥
तौ तस्याः सहितौ पीनौ स्तनौ तालफलोपमौ । कदा नु खलु सोत्कम्पौ हसन्त्या मां भजिष्यतः ॥१४॥
सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती । मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति ॥१५॥
कथं जनकराजस्य दुहिता मम च प्रिया । राक्षसीमध्यगा शेते स्नुषा दशरथस्य च ॥१६॥
अविक्षोभ्याणि रक्षांसि सा विधूयोत्पतिष्यति । विधूय जलदान्नीलाञ्शशिलेखा शरत्स्विव ॥१७॥
स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च । भूयस्तनुतरा सीता देशकालविपर्ययात् ॥१८॥
कदा नु राक्षसेन्द्रस्य निधायोरसि सायकान् । शोकं प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम् ॥१९॥
कदा नु खलु मे साध्वी सीतामरसुतोपमा । सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं जलम् ॥२०॥
कदा शोकमिमं घोरं मैथिलीविप्रयोगजम् । सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा ॥२१॥
एवं विलपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमतः । दिनक्षयान्मन्दवपुर्भास्करोऽस्तमुपागतः ॥२२॥

उस आगकी विमल ज्वाला है ॥ ८ ॥ लक्ष्मण मैं तुम्हारे विना अर्थात् अकेला समुद्रमें जाकर सो जाता हूँ ऐसा करनेसे यह प्रज्वलित काम जलमें मुझे देरसे न जला सकेगा ॥९॥ मैं और वह सीता दोनों एकही पृथिवी पर हैं इतना भी एक कामीके लिए बहुत है इतनेसे भी वह जीवन धारण कर सकता है ॥ १० ॥ सीता जीवित है यह जो मैं सुनता हूँ इसीसे जीवित हूँ जिसप्रकार सजल क्यारीके साथवाली निर्जल क्यारीके पौधे भी हरे रहते हैं ॥ ११ ॥ कब शत्रुको जीतकर सुश्रोणि कमलायताक्षी सीताको प्रवृद्ध राजलक्ष्मीके समान देखूंगा ॥ १२ ॥ सुन्दर दाँत और ओष्टवाला कमलतुल्य उसका मुख थोड़ा ऊपर उठाकर पीऊंगा जिसप्रकार रोगी रसायन पीता है ॥ १३ ॥ हँसती हुई सीताके दोनों, तालफलके समान मोटे, सटे हुए तथा कुछ कांपते हुए स्तन कब मेरी सेवा करेंगे ॥ १४ ॥ भूरे अपांगवाली राक्षसोंके बीच पड़ी हुई सती सीता स्वामीके रहते भी स्वामी-हीनाके समान अपना रक्षक किसीको नहीं पाती ॥ १५ ॥ जनकराजकी कन्या मेरी प्रिया और राजा दशरथकी पुत्रवधू सीता राक्षसियोंके बीचमें कैसे सोती होगी ॥ १६ ॥ दुराधर्ष राक्षसोंका नाश करके सीता अपना उद्धार करेगी, जिस प्रकार शरत्कालमें शशिकला नीले मेघोंको भेदकर निकलती है ॥ १७ ॥ सीता स्वभावसे ही दुर्बल है अब देशकालके विपरीत होनेसे तथा शोक और भोजन न करनेके कारण वह अधिक दुबली हो गयी होगी ॥ १८ ॥ राक्षसेन्द्रकी छातीमें बाण रखकर अपने मनका शोक दूरकर कब मैं सीताका शोक दूर करूँगा ॥ १९ ॥ देवकन्याके समान साध्वी सीता कब उत्कण्ठित होकर मेरे गले लग जायगी और आनन्दजनित अश्रु बहावेगी ॥ २० ॥ जानकीके वियोगसे उत्पन्न इस भयंकर शोकका त्याग मैं कब करूँगा जिसतरह मनुष्य मैले वस्त्रका त्याग करता है ॥ २१ ॥ बुद्धिमान रामचन्द्र इसप्रकार विलाप कर रहे थे उसी समय

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः संध्यामुपासत । स्मरन्कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना । अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्ह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः॥ १ ॥
धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी । तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी ॥ २ ॥
प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रवरा राक्षसा हताः । आविला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता ॥ ३ ॥
किं करिष्यामि भद्रं वः किं वो युक्तमनन्तरम् । उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत् ॥ ४ ॥
मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः । तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः ॥ ५ ॥
त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः । तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ॥ ६ ॥
मन्त्रस्त्रिभिर्हि संयुक्तः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये । मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वाधिकैः ॥ ७ ॥
सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान्प्रवर्तयेत् । दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥
एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः । एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ ९ ॥

दिन समाप्त होनेसे क्षीणतेज होकर सूर्य अस्तगामी हुए ॥ २२ ॥ लक्ष्मणके आश्वासन देनेपर शोकसे व्याकुल रामचन्द्रने कमलनेत्रा सीताका स्मरण करते हुए सन्ध्योपासन किया ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

इन्द्रके समान महात्मा हनुमानके द्वारा किये उत्कट और भयदायी काम देखकर राक्षसेन्द्र रावण सब राक्षसोंसे बोला उस समय लज्जासे उसका मस्तक नीचा होगया था ॥ १ ॥ उस एक वानरने अतितेजस्विनी लंकापुरीमें प्रवेश किया इसपर आक्रमण किया और जनकपुत्री सीताको देखा ॥ २ ॥ हनुमानने लंकाका सर्वश्रेष्ठ देवमन्दिर तोड़ा, श्रेष्ठ राक्षसोंको मारा और समस्त लंका पुरीको उसने जला दिया ॥ ३ ॥ इसके विषयमें आपलोग क्या करना उचित समझते हैं आपलोग आगेका वह काम बतलावें जो प्रारम्भ करके उत्तमतासे सिद्ध किया जा सके तथा मैं क्या करूं यह भी बतलावें ॥ ४ ॥ मनस्वी कहते हैं कि युद्धमें विजय उत्तम सलाहसे और युक्तिसे होती है अतएव रामचन्द्रके प्रति हमलोगोंको किस उपायको काममें लाना चाहिए यह मैं आपलोगोंसे जानना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ उत्तम मध्यम और अधम तीन तरहके पुरुष संसारमें होते हैं मैं इन सबके गुणदोष कहता हूँ ॥ ६ ॥ योग्यमित्रों, समान सुखदुखवाले बान्धवों अथवा इनसे भी अधिक हित-कारियोंसे मिलकर जो तीन गुणोंसे युक्त सलाह करता है तथा उसीके अनुसार दैवके सहारे कार्य प्रारम्भ करता है उसको उत्तम पुरुष कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ अकेला ही कर्तव्य निश्चित करे धर्ममें

गुणदोषौ न निश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् । करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत्स नराधमः ॥१०॥
यथेमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमाः । एवं मन्त्रोऽपि विज्ञेय उत्तमाधममध्यमः ॥११॥
ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा । मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ॥१२॥
बह्वीरपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णयः । पुनर्यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ॥१३॥
अन्योन्यमतिमास्थाय यत्र संप्रतिभाष्यते । न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ॥१४॥
तस्मात्सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः । कार्यं संप्रतिपद्यन्तामेतत्कृत्यं मतं मम ॥१५॥
वानराणां हि धीराणां सहस्रैः परिवारितः । रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥१६॥
तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् । तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः ॥१७॥
समुद्रमुच्छोषयति वीर्येणान्यत्करोति वा । तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं संमन्त्र्यतां मम ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

आस्था रखे और अकेला ही कार्य करे उसको मध्यम पुरुष कहते हैं ॥ ९ ॥ गुणदोषोंका जो निश्चय न करे देवताका जो आश्रय न करे केवल करूँगा इस आग्रहसे कार्य प्रारम्भ करे और अन्तमें उपेक्षा करदे वह अधम पुरुष है ॥ १० ॥ जिस प्रकार पुरुष उत्तम मध्यम और अधम होते हैं उसीप्रकार उपाय भी तीन प्रकारके उत्तम मध्यम और अधम होते हैं ॥ ११ ॥ एकमत होकर शास्त्रीय दृष्टिसे सब मन्त्री कार्यमें लग जायँ वह उत्तम उपाय है ॥ १२ ॥ भिन्न भिन्न मत प्रकाशित करके जहां मन्त्रिगण एकमत हों और कर्तव्य निर्णय करें उसे मध्यम उपाय कहते हैं ॥ १३ ॥ जिस उपायके विषयमें मन्त्रिगण भिन्न-भिन्न मत रखते हों और अपना महत्व जनानेके लिए भाषण करते हों उनके एकमत होनेपर भी कल्याणके लक्षण दिखायी न पड़ें उसे अधम उपाय कहते हैं ॥१४॥ अतएव हे बुद्धिश्रेष्ठ ! निश्चित विचार करके उत्तम उपाय आपलोग एकमत होकर बतलावें, मैं उसीके अनुसार कार्य करूँगा ॥ १५ ॥ उपाय निश्चित करना आवश्यक है क्योंकि हजारों वानरोंको साथ लेकर रामचन्द्र हमलोगोंपर आक्रमण करनेके लिए लंकापुरीमें आरहे हैं ॥ १६ ॥ अपने अनुरूप छोटे भाई सेना तथा अनुगामियोंके साथ बलपूर्वक सुखसे रामचन्द्र समुद्र पार करेंगे यह निश्चित है ॥ १७ ॥ पार करनेके लिए वे समुद्रको सोख लेंगे या और कोई उपाय करेंगे; ऐसी स्थितिमें वानरोंके साथ विरोध होनेपर नगर और सेनाके लिए जो हितकारी हो, वह आपलोग एकमत होकर निश्चित करें, उपाय बतलावें ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
द्विषत्पक्षमविज्ञाय नीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः । राजन्परिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टिशकुन्तलम् ॥ २ ॥
सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते भवान् । त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ॥ ३ ॥
कैलासशिखरावासी यक्षैर्बहुभिरावृतः । सुमहत्कदनं कृत्वा वश्यस्ते धनपः कृतः ॥ ४ ॥
स महेश्वरसख्येन श्लाघमानस्त्वया विभो । निर्जितः समरे रोषाल्लोकपालो महाबलः ॥ ५ ॥
विनिपात्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य विनिगृह्य च । त्वया कैलासशिखराद्विमानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥
मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता । दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुंगव ॥ ७ ॥
दानवेन्द्रो महाबाहो वीर्योत्सिक्तो दुरासदः । विगृह्य वशमानीतः कुम्भीनस्याः सुखावहः ॥ ८ ॥
निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् । वासुकिस्तक्षकः शङ्खो जटी च वशमाहृताः ॥ ९ ॥
अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुनः । त्वया संवत्सरं युद्ध्वा समरे दानवा विभो ॥१०॥
स्वबलं समुपाश्रित्य नीता वशमरिंदम । मायाश्चाधिगतास्तत्र बह्वयो वै राक्षसाधिप ॥११॥
शूराश्च बलवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे । निर्जितास्ते महाभाग चतुर्विधबलानुगाः ॥१२॥
मृत्युदण्डमहाग्राहं शाल्मलीद्रुममण्डितम् । कालपाशमहावीचिं यमकिंकरपन्नगम् ॥१३॥
महाज्वरेण दुर्धर्षं यमलोकमहार्णवम् । अवगाह्य त्वया राजन्यमस्य बलसागरम् ॥१४॥

राक्षसेन्द्रके ऐसा कहनेपर महाबली वे राक्षस हाथ जोड़कर राक्षसेन्द्र रावणसे बोले ॥१॥ बुद्धिहीन तथा नीति-ज्ञान-रहित वे राक्षस शत्रुपक्षके बलका विना जानेही बोले, राजन्! परिघ शक्ति तलवार, शूल, पट्टिश, भाले आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त बहुत बड़ी सेना हमलोगोंके पास है फिर आप चिन्ता क्या करते हैं, भोगवती नगरीमें जाकर आपने युद्धमें नागोंको जीता है ॥ २-३ ॥ यक्षोंसे घिरा रहनेवाले कैलास शिखरपर रहनेवाले कुबेरको आपने बहुत बड़ा युद्ध करके अपने अधीन कर लिया है ॥ ४ ॥ शिवकी मित्रताके कारण प्रतिष्ठा पाये हुए उस महाबली लोकपाल कुबेरको आपने क्रोध करके युद्धमें जीत लिया है ॥ ५ ॥ यक्षोंके झुंडको युद्ध करके भयभीत करके तथा उन्हें मारकर कैलासशिखरसे इस विमानको आप ले आये ॥ ६ ॥ भयसे आपसे मैत्री चाहता हुआ दानवेन्द्र मयने अपनी कन्या स्त्री बनानेके लिए आपको दी ॥ ७ ॥ हे कुम्भीनसीके सुख देनेवाले महाबाहो, बलमदमें चूर दुरासद दानवेन्द्रको आपने युद्ध करके अपने वश किया ॥ ८ ॥ महाबाहो पातालमें जाकर आपने वासुकी, तक्षक, शंख और जटी आदि नागोंको आपने अपने वश किया और जीता ॥ ९ ॥ विभो! एक वर्षतक युद्ध करके नष्ट न होनेवाले बलवान शूर ब्रह्मासे वर पाये हुए दानवोंको आपने केवल अपने बलसे अधीन बनाया और वहाँ आपने अनेक तरहकी माया भी सीखी ॥ १० ॥ ११ ॥ चतुरंगिणी सेना रखनेवाले वरुणके शूर और बली पुत्रोंको आपने युद्धमें जीता है ॥ १२ ॥ यमलोकरूपी सागरको मथित करके आपने विपुल जय पाया है, इस सागरमें यमदण्ड महाग्राहके समान है सेमल वृक्ष जिसमें भरे हैं; कालपाश लहरियोंके समान है

जयश्च विपुलः प्राप्तो मृत्युश्च प्रतिषेधितः । सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकास्तत्र सुतोषिताः ॥१५॥
क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्यपराक्रमैः । आसीद्वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥१६॥
तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे । प्रसह्य ते त्वया राजन्हताः समरदुर्जयाः ॥१७॥
तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान् । अयमेको महाराज इन्द्रजित्क्षपयिष्यति ॥१८॥
अनेन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम् । इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः ॥१९॥
शक्तितोमरमीनं च विनिकीर्णान्त्रशैवलम् । गजकच्छपसंबाधमश्वमण्डूकसंकुलम् ॥२०॥
रुद्रादित्यमहाग्राहं मरुद्वसुमहोरगम् । रथाश्वगजतोयौघं पदातिपुलिनं महत् ॥२१॥
अनेन हि समासाद्य देवानां बलसागरम् । गृहीतो दैवतपतिर्लङ्कां चापि प्रवेशितः ॥२२॥
पितामहनियोगाच्च मुक्तः शम्बरवृत्रहा । गतस्त्रिविष्टपं राजन्सर्वदेवनमस्कृतः ॥२३॥
तमेव त्वं महाराज विसृजेन्द्रजितं सुतम् । यावद्वानरसेनां तां सरामां नयति क्षयम् ॥२४॥
राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात् । हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

यमदूत सर्पके समान हैं महाज्वरके कारण जिसमें प्रवेश करना कठिन है आपने उस युद्धमें यमराजकी सेनाको परास्त किया मृत्युको दूर किया आपके इस युद्धसे समस्त लोक सन्तुष्ट हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इन्द्रके समान पराक्रमी अनेक वीर क्षत्रियोंसे पृथिवी भरी थी मानों बड़े बड़े वृक्षोंसे पृथिवी भरी हो, राजन् समरमें जीतनेके अयोग्य उन वीरोंको बलात्कारसे आपने जीता, रामचन्द्र बल उत्साह आदिसे उन क्षत्रियोंके समान नहीं हैं फिर इनके जीतनेमें कौन सन्देह है? ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ महाराज आप तो बैठेही रहें आपको मेहनत करनेकी जरूरत ही क्या है ये अकेले इन्द्रजित ही इन सब वानरोंका नाश कर देंगे ॥ १८ ॥ महाराज इन्होंने शिवका श्रेष्ठ यज्ञ करके उनसे परम दुर्लभ वर पाया है ॥ १९ ॥ इन्होंने देवसेनारूपी समुद्रको मथित करके देवपति इन्द्रको पकड़ लिया और उन्हें ये लंकामें ले आये । इस समुद्रमें शक्ति तोमर मछलीके समान थे, निकालकर फेंकी गयी अतड़ियां सेवारके समान थीं हाथी रूपी कछुओंसे वह समुद्र भरा हुआ था घोड़े मेंढकके समान थे रुद्र आदित्य बड़े ग्राहके समान थे मरुत् और वसुगण सर्पके समान थे रथ घोड़े तथा हाथी जलके समान थे और पैदल सैनिक तीरके समान ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ पितामहकी आज्ञासे शम्बर तथा वृत्रको मारनेवाले इन्द्रको इन्द्रजितने छोड़ दिया तब वह स्वर्गमें गया और देवताओंने उसका सत्कार किया ॥ २३ ॥ महाराज आप अपने पुत्र इन्द्रजित्को भेज दीजिए, वे राम सहित वानरी सेनाको नष्ट कर देंगे ॥ २४ ॥ राजन् छोटे आदमीके द्वारा आयी यह आपत्ति आपके योग्य नहीं है अतएव आप इसकी चिन्ता न करें, आप रामचन्द्रका वध करेंगे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

ततो नीलाम्बुदप्रख्यः प्रहस्तो नाम राक्षसः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा ॥ १ ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः । सर्वे धर्षयितुं शक्याः किं पुनर्मानवौ रणे ॥ २ ॥
सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता । नहि मे जीवतो गच्छेज्जीवन्स वनगोचरः ॥ ३ ॥
सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् । करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान् ॥ ४ ॥
रक्षां चैव विधास्यामि वानराद्रजनीचर । नागमिष्यति ते दुःखं किंचिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥
अब्रवीत्तमसंक्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः । इदं न क्षमणीयं हि सर्वेषां नः प्रधर्षणम् ॥ ६ ॥
अयं परिभवो भूयः पुरस्यान्तःपुरस्य च । श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेन्द्रप्रधर्षणम् ॥ ७ ॥
अस्मिन्मुहूर्ते गत्वैको निवर्तिष्यामि वानरान् । प्रविष्टान्सागरं भीममम्बरं वा रसातलम् ॥ ८ ॥
ततोऽब्रवीत्सुसंक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रो महाबलः । प्रगृह्य परिघं घोरं मांसशोणितदूषितम् ॥ ९ ॥
किं नो हनूमता कार्यं कृपणेन तपस्विना । रामे तिष्ठति दुर्धर्षे सुग्रीवेऽपि सलक्ष्मणे ॥१०॥
अद्य रामं ससुग्रीवं परिघेण सलक्ष्मणम् । आगमिष्यामि हत्वैको विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥११॥
इदं ममापरं वाक्यं शृणु राजन्यदिच्छसि । उपायकुशलो ह्येव जयेच्छत्रूनतन्द्रितः ॥१२॥
कामरूपधराः शूराः सुभीमा भीमदर्शनाः । राक्षसानां सहस्राणि राक्षसाधिप निश्चिताः ॥१३॥

नीले मेघके समान काला वीर, सेनापति प्रहस्त नामका राक्षस हाथ जोडकर रावणसे बोला ॥ १ ॥ महाराज, युद्धमें देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प ये सभी परास्त किये जा सकते हैं फिर ये दो मनुष्य क्या वस्तु हैं ॥ २ ॥ हनुमानने जो किया है उसका कारण हमारी कमजोरी नहीं है किन्तु उस समय हम विलासमें मत्त थे शत्रुके आक्रमणकी ओरसे लापरवा थे उसी समय हनुमान् हमलोगोंको धोखा दे गया नहीं तो हमारे जीतेजी उस वनवासीमें क्या शक्ति थी जो जीता यहाँसे लौट जाय ? ॥ ३ ॥ आपकी आज्ञा हो तो समुद्र तककी भूमिके वन, पर्वत आदिको वानरहीन बना दूँ ॥ ४ ॥ मैं वानरसे आपकी रक्षा करूँगा, अपने अपराधका दण्ड आपको भोगना न पड़ेगा ॥ ५ ॥ दुर्मुख नामका राक्षस क्रोध करके बोला यह हमलोगोंका पराजय है और क्षमा करनेके अयोग्य है, वानरका यह उत्पात, नगरका, राजमहलका तथा राक्षसराजका भी अपमान है, इन सबका पराजय है । इसी समय अकेला जाकर भयंकर आकाश समुद्र अथवा पाताल जहाँ भी वानर हों मैं उन्हें लौटा दूँगा ॥ ६॥ ७ ॥ ८॥ रक्त, मांससे सना हुआ भयानक परिघ घुमाता हुआ महाबली वज्रदंष्ट्र नामका राक्षस क्रोध करके बोला ॥ ९ ॥ दरिद्र बेचारा हनुमानसे हमें क्या करना है जब कि रणदुर्मद राम, लक्ष्मण और सुग्रीव वर्तमान हैं ॥१०॥ अकेला ही वानरी सेनाको क्षुभित करके परिघसे राम लक्ष्मण और सुग्रीवको मारकर मैं लौट आऊँगा ॥११॥ राजन्! यदि आप चाहें तो यह मेरी दूसरी बात सुनलें, जो उपायमें निपुण होता है वही तत्पर होकर शत्रुको जीत सकता है ॥ १२ ॥ राक्षसाधिप, भयानक काम करनेवाले और देखनेमें भी भयानक

काकुत्स्थमुपसंगम्य विवृतं मानुषं वपुः । सर्वे ह्यसंभ्रमा भूत्वा ब्रुवन्तु रघुसत्तमम् ॥१४॥
प्रेषिता भरतेनैव भ्रात्रा तव यवीयसा । स हि सेनां समुत्थाप्य क्षिप्रमेवोपयास्यति ॥१५॥
ततो वयमितस्तूर्णं शूलशक्तिगदाधराः । चापबाणासिहस्ताश्च त्वरितास्तत्र यामहे ॥१६॥
आकाशे गणशःस्थित्वा हत्वा तां हरिवाहिनीम् । अश्मशस्त्रमहावृष्ट्या प्रापयाम यमक्षयम् ॥१७॥
एवं चेदुपसर्पेतामनयं रामलक्ष्मणौ । अवश्यमपनीतेन जहतामेव जीवितम् ॥१८॥
कौम्भकर्णिस्ततो वीरो निकुम्भो नाम वीर्यवान् । अब्रवीत्परमक्रुद्धो रावणं लोकरावणम् ॥१९॥
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन संगताः । अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥२०॥
सुग्रीवं सहनूमन्तं सर्वांश्चैवात्र वानरान् । ततो वज्रहनुर्नाम राक्षसः पर्वतोपमः ॥२१॥
क्रुद्धः परिलिहन्सृक्कां जिह्वया वाक्यमब्रवीत् । स्वैरं कुर्वन्तु कार्याणि भवन्तो विगतज्वराः ॥२२॥
एकोऽहं भक्षयिष्यामि तां सर्वां हरिवाहिनीम् ।स्वस्थाःक्रीडन्तु निश्चिन्ता पिबन्तु मधु वारुणम्॥२३॥
अहमेको वधिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् । साङ्गदं च हनूमन्तं सर्वांश्चैवात्र वानरान् ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

हजारों वीर राक्षस आपके यहाँ हैं, ये सब इच्छानुसार रूप धर सकते हैं ॥ १३ ॥ ये सब पहचानमें न आने योग्य मनुष्यरूप धरकर रामचन्द्रके पास जायँ और निडर होकर उनसे कहें आपके छोटे भाई भरतने हमलोगोंको भेजा है वे सेना सहित आपके पास आ रहे हैं इस बातको सुनकर राम सेना छोड़कर शीघ्रही लौट पड़ेंगे ॥१४॥१५॥ अनन्तर हमलोग भी शूल, शक्ति, गदा, धनुष, बाण, तलवार लेकर रास्तेमें रामचन्द्रके पास पहुंचेंगे ॥ १६ ॥ हमलोग आकाशमें टोलियोंमें बंटकर रहेंगे और पत्थर तथा अस्त्र बरसाकर वानरीसेनाको नष्ट करदेंगे ॥ १७ ॥ यदि हमलोगोंका कपट राम, लक्ष्मणको मालुम भी हो जाय तौभी सेनाके विना उनलोगोंको प्राण देने पड़ेंगे ॥ १८ ॥ अनन्तर कुम्भकर्णका पुत्र निकुम्भ नामका बलवान राक्षस क्रोध करके लोकको रुलानेवाले रावणसे बोला ॥ १९ ॥ ये सबलोग महाराजके साथ यहीं रहें मैं अकेला ही राम और लक्ष्मणको मार डालूंगा ॥ २० ॥ सुग्रीव हनुमान तथा अन्य वानरोंको भी मारूंगा, अनन्तर वज्रहनु नामका पर्वतके समान विशालशरीर राक्षस क्रोध करके दोनों ओठोंके जोड़को जीभसे चाटते हुए बोला–आपलोग निश्चिन्त होकर अपना अपना काम करें, मैं अकेलाही उस समूची वानरी सेनाको खा डालूंगा आपलोग निश्चिन्त होकर क्रीडा करें और शराब पीयें ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ मैं अकेलाही सुग्रीव, लक्ष्मण, राम, अंगद, हनुमान तथा सब वानरोंको मार डालूंगा ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

ततो निकुम्भो रभसः सूर्यशत्रुर्महाबलः । सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च महापार्श्वमहोदरौ ॥ १ ॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः । इन्द्रशत्रुश्च बलवांस्ततो वै रावणात्मजः ॥ २ ॥
प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः । धूम्राक्षोऽथ निकुम्भश्च दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥ ३ ॥
परिघान्पट्टिशाञ्शूलान्प्रासाञ्शक्तिपरश्वधान् । चापानि च सुबाणानि खड्गांश्च विपुलाञ्शितान् ॥४॥
प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः । अब्रुवन्रावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा ॥ ५ ॥
अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् । कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता ॥ ६ ॥
तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनःप्रत्युपवेश्य तान् ॥ ७ ॥
अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते । तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥
प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च । विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः ॥ ९ ॥
अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् । जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ ॥१०॥
समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् । गतिं हनूमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा ॥११॥
बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः । परेषां सहसावज्ञा न कर्तव्या कथंचन ॥१२॥
किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा । आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनः ॥१३॥
खरो यद्यतिवृत्तस्तु स रामेण हतो रणे । अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम् ॥१४॥

अनन्तर निकुम्भ, रभस, महाबली, सूर्यशत्रु सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, दुर्धर्ष, रश्मिकेतु, बलवान रावणपुत्र, इन्द्रशत्रु प्रहस्त, विरूपाक्ष, महाबली वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, निकुम्भ, दुर्मुख आदि राक्षस परिघ, पट्टिश, शूल, प्रास, परशु, अच्छे बाणोंवाले धनुष, पानीदार तलवार लेकर और आगे आकर तेजसे जलते हुए क्रोध करके बोले ॥ १-२-३-४-५ ॥ आजही हम राम सुग्रीव लक्ष्मण और उस हनुमानको मारेंगे जिसने लंका उजाड़ी है ॥ ६ ॥ उन अस्त्रधारियोंको रोककर तथा यथास्थान बैठाकर विभीषण हाथ जोड़कर रावणसे बोले ॥ ७ ॥ जो कार्य साम दान और भेद इन तीन उपायोंसे सिद्ध न हो उसको सिद्ध करनेके लिए नीतिशास्त्रज्ञोंने पराक्रमको काममें लाना उचित बतलाया है ॥ ८ ॥ जो शत्रु असावधान हो, किसीके द्वारा उसपर आक्रमण हुआ हो, अथवा रोगी हो, इनपर सोच समझकर उचित रीतिसे विक्रमका प्रयोग यदि किया जाय तो अवश्य सफलता मिले ॥ ९ ॥ रामचन्द्र तो वैसे नहीं हैं वे तो सावधान हैं जीतनेके लिए आक्रमण करने आरहे हैं उनके पास सेना है उनका यह आक्रमण विना समझे बूझे केवल क्रोधके कारण नहीं है उन पराजयके अयोग्य रामका तुमलोग पराजय करना चाहते हो ॥ १० ॥ नदनदीपति भयानक समुद्रको पार करनेवाले हनुमानके वेगको कौन जान सकता है अथवा उसकी कल्पना कर सकता है ॥ ११ ॥ जिसकी सेना और पराक्रम अधिक हो राक्षसों, उसका सहसा तिरस्कार करना उचित नहीं ॥ १२ ॥ यशस्वी जिस रामकी स्त्रीका राक्षसराजने जनस्थानसे हरण किया है उसने हमलोगोंका पहले कौन अपकार किया था ॥ १३ ॥ कहा जाता है कि रामने खरको मारा

एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद्भवेत । आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृते नु किम् ॥१५॥
न तु क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना । वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥१६॥
यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम् । पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली ॥१७॥
यावत्सुघोरा महती दुर्धर्षा हरिवाहिनी । नावस्कन्दति नो लङ्कां तावत्सीता प्रदीयताम् ॥१८॥
विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः । रामस्य दयिता पत्नी न स्वयं यदि दीयते ॥१९॥
प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम । हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥२०॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसंनिभान्नवाग्रपुङ्खान्सुदृढान्नृपात्मजः ।
सृजत्यमोघान्विशिखान्वधाय ते प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥२१॥
त्यजाशु कोपं सुखधर्मनाशनं भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम् ।
प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥२२॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । विसर्जयित्वा तान्सर्वान्प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

है पर खर तो उनको मारनेके लिए उनके पास गया था अपने प्राणोंकी रक्षा तो सभी प्राणी शक्तिभर करते ही हैं अतएव आत्मरक्षाके लिए रामने खरको मारा तो क्या बुरा किया ॥ १४ ॥ यदि खरवधके कारण जानकीका हरण किया गया है तो अब जानकीके कारण हमलोगोंका बड़ा अनिष्ट होनेवाला है अतएव उसको यहाँसे हटादेना ही अच्छा है झगड़ेका काम क्यों किया जाय ॥ १५ ॥ धर्मात्मा तथा पराक्रमी उस रामचन्द्रसे निरर्थक वैर करना उचित नहीं अतएव उन्हें आप जानकी दे दें ॥ १६ ॥ जबतक हाथी घोड़े तथा अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण इस नगरीको अपने बाणोंसे नष्ट नहीं करते तभी तक जानकीको उन्हें लौटा देना चाहिए ॥ १७ ॥ जबतक विशाल अपराजेय और भयानक वानरी सेना हमलोगोंकी नगरीको नष्ट-भ्रष्ट नहीं करती तभी तक हमलोगोंको सीता लौटा देनी चाहिए ॥ १८ ॥ यदि स्वयं रामचन्द्रकी प्रिय स्त्री उनको नहीं लौटायी जायगी तो यह नगरी तथा सब राक्षस नष्ट हो जायँगे ॥ १९ ॥ मैं आपसे विनय करता हूँ, भाई होनेके कारण मैं हित और तथ्य आपसे कह रहा हूँ आप मेरी बात मानें, सीता रामचन्द्रको लौटा दें ॥ २० ॥ आपके वधके लिए जबतक राजपुत्र राम शरत्सूर्यके समान उज्ज्वल नये धारवाले मजबूत और अमोघ बाणोंको नहीं छोड़ते, उसके पहले ही रामको जानकी दे दीजिए ॥ २१ ॥ सुख और धर्मको नष्ट करनेवाले क्रोधको आप छोड़ें, प्रेम और कीर्ति बढ़ानेवाले धर्मका ग्रहण करें, आप प्रसन्न हों जिससे हमलोग पुत्र तथा बान्धवोंके सहित जी सकें, आप रामचन्द्रको जानकी लौटा दें ॥ २२ ॥ विभीषणके वचन सुनकर राक्षसेश्वर रावण सबलोगोंको विदा करके अपने विश्रामगृहमें चला गया ॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

ततः प्रत्युषसि प्राप्ते प्राप्तधर्मार्थनिश्चयः । राक्षसाधिपतेर्वेश्म भीमकर्मा विभीषणः ॥ १ ॥
शैलाग्रचयसंकाशं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् । सुविभक्तमहाकक्षं महाजनपरिग्रहम् ॥ २ ॥
मतिमद्भिर्महामात्रैरनुरक्तैरधिष्ठितम् । राक्षसैराप्तपर्याप्तैः सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ३ ॥
मत्तमातङ्गनिःश्वासैर्व्याकुलीकृतमारुतम् । शङ्खघोषमहाघोषं तूर्यसंवाधनादितम् ॥ ४ ॥
प्रमदाजनसंबाधं प्रजल्पितमहापथम् । तप्तकाञ्चननिर्यूहं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥
गन्धर्वाणामिवावासमालयं मरुतामिव । रत्नसंचयसंबाधं भवनं भोगिनामिव ॥ ६ ॥
तं महाभ्रमिवादित्यस्तेजोविस्तृतरश्मिवान् । अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः ॥ ७ ॥
पुण्यान्पुण्याहघोषांश्च वेदविद्भिरुदाहृतान् । शुश्राव सुमहातेजा भ्रातुर्विजयसंश्रितान् ॥ ८ ॥
पूजितान्दधिपात्रैश्च सर्पिर्भिः सुमनोक्षतैः । मन्त्रवेदविदो विप्रान्ददर्श स महाबलः ॥ ९ ॥
स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानः स्वतेजसा । आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम् ॥१०॥
स राजदृष्टिसंपन्नमासनं हेमभूषितम् । जगाम समुदाचारं प्रयुज्याचारकोविदः ॥११॥
स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसंनिधौ । उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥१२॥
प्रसाद्य भ्रातरं ज्येष्ठं सान्त्वेनोपस्थितक्रमः । देशकालार्थसंवादि दृष्टलोकपरावरः ॥१३॥

धर्म और अर्थका निश्चयात्मक ज्ञान रखनेवाले विभीषण कठोर वचन कहनेका निश्चय करके राक्षसराजके घर गये ॥ १ ॥ राक्षसराजका घर पर्वतशिखरके समूहके समान था और पर्वतके समान ऊँचा था अलग अलग बड़े बड़े कमरे बने हुए थे तथा बड़े विद्वान उसमें रहते थे । बुद्धिमान राजामें अनुराग रखनेवाले प्रधान राजकर्मचारी वहाँ रहते थे अधिक संख्यक विश्वसनीय राक्षस उसकी रक्षा करते थे मतवाले हाथियोंकी सांससे वहाँकी हवा महक उठी थी, महान शंखध्वनि हो रही थी अनेकों ढोल बज रहे थे, स्त्रियोंसे वह परिपूर्ण था सड़कपर आदमियोंके बात करनेकी आवाज हो रही थी, चमकीले सोनेके दो चौतरे निकसारके दोनों ओर बने हुए थे, तोरण, वितान आदिसे वह खूब सजा हुआ था, गन्धर्वोंके निवास-स्थानके समान और देवताओंके निवासस्थानके समान वह भवन था । संचित रत्नोंसे परिपूर्ण वह घर नागोंके घरके समान मालूम पड़ता था । जिस प्रकार विस्तृत किरणोंवाले सूर्य महामेघमें प्रवेश करते हैं उसी प्रकार महाद्युति वीर विभीषणने बड़े भाईके घरमें प्रवेश किया ॥ २-३-४-५-६-७ ॥ भाईकी विजयके उद्देश्यसे वेदज्ञोंके द्वारा किये पवित्र पुण्याहघोष तेजस्वी विभीषणने सुने ॥ ८ ॥ दधिपात्र घी पुष्प अक्षतसे पूजित वेदज्ञोंको महाबली विभीषणने देखा ॥ ९ ॥ वहाँके राक्षसों द्वारा अभिनन्दित विभीषणने आसनपर बैठे हुए अपने तेजसे प्रकाशमान कुवेरके छोटे भाई रावणको प्रणाम किया ॥ १० ॥ शिष्टाचार जाननेवाले विभीषण उस समयके राजोचित आचार करके राजाके द्वारा आँखके इशारेसे बतलाये आसनपर बैठे ॥ ११ ॥ वे महात्मा रावणसे एकान्तमें मन्त्रियोंके सामने अत्यन्त हितकारी तथा प्रमाणोंके द्वारा निश्चित वचन बोले, संसारके ऊंचनीचका ज्ञान

यदाप्रभृति वैदेही संप्राप्तेह परंतप । तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः ॥१४॥
सस्फुलिङ्गः सधूमार्चिः सधूमकलुषोदयः । मन्त्रसन्धुक्षितोऽप्यग्निर्न सम्यगभिवर्धते ॥१५॥
अग्निष्ठेष्वग्निशालासु तथा ब्रह्मस्थलीषु च । सरीसृपाणि दृश्यन्ते हव्येषु च पिपीलिकाः ॥१६॥
गवां पयांसि स्कन्नानि विमदा वरकुञ्जराः । दीनमश्वाः प्रहेषन्ते न च ग्रासाभिनन्दिनः ॥१७॥
खरोष्ट्राश्वतरा राजन्भिन्नरोमाः स्रवन्ति च । न स्वभावेऽवतिष्ठन्ते विधानैरपिचिन्तिताः ॥१८॥
वायसाः सङ्घशः क्रूरा व्याहरन्ति समन्ततः । समवेताश्च दृश्यन्ते विमानाग्रेषु सङ्घशः ॥१९॥
गृध्राश्च परिलीयन्ते पुरीमुपरि पीडिताः । उपपन्नाश्च संध्ये द्वे व्याहरन्त्यशिवं शिवाः ॥२०॥
क्रव्यादानां मृगाणां च पुरीद्वारेषु सङ्घशः । श्रूयन्तेविपुलाघोषाःसविस्फूर्जितनिःस्वनाः॥२१॥
तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम् । रोचये वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ॥२२॥
इदं च यदि वा मोहाल्लोभाद्वा व्याहृतं मया । तत्रापि च महाराज न दोषं कर्तुमर्हसि ॥२३॥
अयं हि दोषः सर्वस्य जनस्यास्योपलक्ष्यते । रक्षसां राक्षसीनां च पुरस्यान्तःपुरस्य च ॥२४॥
प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ।
अवश्यं च मया वाच्यं यद्दृष्टमथवा श्रुतम् । संविधाय यथान्यायं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥२५॥

रखनेवाले विभीषण अपने समयपर देशकाल-अनुकूल वचन बड़े भाईको प्रसन्न करके नम्रता पूर्वक बोले ॥१२-१३॥ हे परन्तप, सीता जबसे लंकामें आयी है तभीसे हमलोगोंके लिए अशुभ शकुन हो रहे हैं ॥ १४ ॥ मन्त्रोंके द्वारा विधिवत् हवन करनेपर भी आग अच्छी तरह नहीं बढ़ती, उससे चिनगारियाँ उड़ती हैं, धूमिल लपटें निकलती हैं और धूएंके साथ आग जलती है ॥१५॥ रसोईघर अग्निशाला तथा वेदाध्ययनके घरमें सांप दिखायी पड़ते हैं और हवनसामग्रियोंमें चींटियां देख पड़ती हैं ॥ १६ ॥ गायोंका दूध सूखा हुआसा होता है, हाथी मदहीन हो गये हैं, घोड़े खाने पर भी पुनः खानेकी इच्छा रखते हैं तथा दीनता-पूर्वक हिनहिनाते हैं ॥ १७ ॥ गधे और खच्चरोंके रोएं खड़े होगये हैं और उनकी आंखोंसे आंसू गिर रहा है, वे अच्छी चिकित्साके द्वारा उपचार करनेपर भी अच्छे नहीं होते ॥ १८ ॥ चारों ओर टोलीके टोली कौए बोलते हैं और वे एकत्र होकर भवनके ऊपर बैठते हैं ॥ १९ ॥ गीध भी इकट्ठे होकर नगरके ऊपर पास आकर मंडलाकार घूमते हैं और दोनों संध्या नगरके पास आकर सियारिन अमंगल बोलती हैं ॥ २० ॥ नगर द्वारपर हिंस्र तथा अन्य वनजन्तु एकत्र वज्रघोषके समान शब्द करते हैं ॥ २१ ॥ ऐसी अवस्थामें मुझे तो यही प्रायश्चित्त अच्छा मालूम पड़ता है और मैं इसको पसन्द भी करता हूँ कि रामचन्द्रको जानकी दे दी जाय ॥ २२ ॥ यदि अज्ञान अथवा प्राणरक्षाके लोभसे ऐसा कहा हो तो भी उसके दोषोंकी ओर ध्यान न देकर महाराज मेरे परामर्शके अनुसार कार्य करेंगे ॥ २३ ॥ ये जो अशुभ शकुन दिखायी पड़ते हैं वे सभीके लिए हैं राक्षसों राक्षसियों और राजमहलके लिए भी हैं ॥ २४ ॥ आपके कानोंतक इस बातके पहुंचानेके लिए किसी मन्त्रीने प्रयत्न नहीं किया, पर मैं चुप कैसे रहता, जैसा मैंने देखा, जैसा सुना, वह सब मैंने आपसे कहा, अब विचार करके जो उचित हो वह

इति समन्त्रिणां मध्ये भ्राता भ्रातरमूचिवान् । रावणं रक्षसां श्रेष्ठं पथ्यमेतद्विभीषणः ॥२६॥

हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं व्यतीतकालायतिसंप्रति क्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत ॥२७॥
भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् ।
सुरैः सहेन्द्रैरपि संगरे कथं ममाग्रतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो महाबलः संयति चण्डविक्रमः ।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

स बभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः । असन्मानाच्च सुहृदां पापः पापेन कर्मणा ॥ १ ॥
अतीव कामसंपन्नो वैदेहीमनुचिन्तयन् । अतीतसमये काले तस्मिन्वै युधि रावणः ।
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥
स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम् । उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम् ॥ ३ ॥
तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् । प्रययौ रक्षसां श्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥ ४ ॥

आप करें ॥ २५ ॥ इस प्रकार मन्त्रियोंके बीच भाई विभीषणने राक्षसाधिप भाई रावणसे हितकारी वचन कहे ॥ २६ ॥ तीनों कालोंमें हितकारी सप्रमाण कोमल और अर्थ युक्त विभीषणके वचन सुनकर रावणको बड़ा क्रोध आया तथा अपनी बातपर अड़नेवाले उसने यह उत्तर दिया ॥ २७ ॥ मैं कहींसे भी भय नहीं देख रहा हूँ, रामचन्द्र जानकीको नहीं पासकेंगे, इन्द्र सहित देवताओंको साथ लेकर भी लक्ष्मणाग्रज राम युद्धमें मेरे सामने नहीं ठहर सकते ॥ २८ ॥ देवसैन्यका नाश करनेवाला युद्धमें परम पराक्रमी महाबली रावणने हित कहनेवाले भाईसे ऐसा कहकर उन्हें विदा किया ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

विभीषण आदि मित्रोंके अनादरसे, सीताहरणरूप पापसे और सीताके अनुरागसे कर्तव्य-ज्ञान-हीन पापी रावण बहुत चिन्तित हो गया ॥ १ ॥ रावण सीतापर मोहित हो गया था, वह उन्हें अपने पास रखना चाहता था अतएव विभीषणके कहनेके अनुसार यद्यपि युद्धकाल बीत गया था, तथापि अन्य मित्रों और मन्त्रियोंसे परामर्श करके उसने युद्ध करना ही उचित समझा ॥ २ ॥ सोनेकी जाली तथा मणि-विद्रुमसे भूषित रथपर रावण बैठा, उसमें सिखाये घोड़े जुते हुए थे ॥ ३ ॥ महामेघके समान शब्द करनेवाले उस बड़े रथपर बैठकर राक्षसश्रेष्ठ दशानन सभाकी

असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्ततः । राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥
नानाविकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः । पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य ययुस्तदा ॥ ६ ॥
रथैश्चातिरथाः शीघ्रं मत्तैश्च वरवारणैः । अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्च वाजिभिः ॥ ७ ॥
गदापरिघहस्ताश्च शक्तितोमरपाणयः । ततस्तूर्यसहस्राणां संजज्ञे निःस्वनो महान् ॥ ८ ॥
तुमुलः शङ्खशब्दश्च सभां गच्छति रावणे । स नेमिघोषेण महान्सहसाभिनिनादयन् ॥ ९ ॥
राजमार्गं श्रिया जुष्टं प्रतिपेदे महारथः । विमलं चातपत्रं च प्रगृहीतमशोभत ॥१०॥
पाण्डुरं राक्षसेन्द्रस्य पूर्णस्ताराधिपो यथा । हेममञ्जरिगर्भे च शुद्धस्फटिकविग्रहे ॥११॥
चामरव्यजने तस्य रेजतुः सव्यदक्षिणे । ते कृताञ्जलयः सर्वे रथस्थं पृथिवीस्थिताः ॥१२॥
राक्षसा राक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववन्दिरे । राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिंदमः ॥१३॥
आससाद महातेजाः सभां विरचितां तदा । सुवर्णरजतास्तीर्णां विशुद्धस्फटिकान्तराम् ॥१४॥
विराजमानो वपुषा रुक्मपट्टोत्तरच्छदाम् । तां पिशाचशतैः षड्भिरभिगुप्तां सदाप्रभाम् ॥१५॥
प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा । तस्याः स वैदूर्यमयं प्रियकाजिनसंवृतम् ॥१६॥
महत्सोपाश्रयं भेजे रावणः परमासनम् । ततः शशासेश्वरवद्दूताँल्लघुपराक्रमान् ॥१७॥
समानयत मे क्षिप्रमिहैतान्राक्षसानिति । कृत्यमस्ति महज्जाने कर्तव्यमिति शत्रुभिः ॥१८॥

ओर गया ॥ ४ ॥ राक्षसेन्द्रके आगे ढाल-तलवार लेकर तथा सब अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित होकर राक्षस चले ॥ ५ ॥ बहुतसे राक्षस रावणके पीछे तथा बगलमें उसको घेरकर चले, कइयोंका वेश बड़ाही विकृत था, कई अनेक आभूषण पहने हुए थे ॥ ६ ॥ गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, परशु और शूल हाथोंमें लेकर अतिरथ रथपर, कई मतवाले हाथीपर और कई नाचते हुए घोड़ेपर चढ़कर रावणके साथ चले, अनन्तर हजारों बाजोंके शब्द होने लगे ॥ ७-८ ॥ रावणके सभामें जाते समय शंखकी ध्वनि हुई, रथके शब्दसे सुन्दर राजमार्गको प्रतिध्वनित करता हुआ रावणका वह रथ चला, जिसपर श्वेत छत्र लगा हुआ था, जिसकी शोभा निराली थी, पूर्ण चन्द्रमाके समान रावणका वह छत्र शोभता था, दाहिने और बायें दो चामर लगे हुए थे, वे स्फटिकके समान श्वेत थे और सोनेकी मंजरियां उसमें लगी हुई थीं, रथपर बैठे हुए रावणको पृथिवीपर खड़े होकर राक्षसोंने हाथ जोड़कर तथा माथा झुकाकर प्रणाम किया, इस प्रकार राक्षसोंके द्वारा स्तुति, जयजयकार और आशीर्वाद पाता हुआ रावण सभाभवनमें गया जो उसी समय सजायी गयी थी उसमें सोने और चांदीके चौतरे बने हुए थे, नीचेकी फर्श स्फटिककी बनी हुई थी जिसमें सोनेका काम किया हुआ, वस्त्र बिछे हुए थे, छ सौ पिशाच उसकी रक्षा करते थे और रत्नोंसे सदा वह प्रकाशित रहती थी, विश्वकर्माके बनाये उस सभाभवनमें सुन्दर शरीरवाले महातेजस्वी रावणने प्रवेश किया, रावण उत्तम आसनपर बैठा, उस आसनमें वैदूर्यमणिका अधिक काम किया हुआ था, मुलायम और रोंआदार मृगचर्म बिछा हुआ था तथा बड़ा मसनद लगा हुआ था, अल्पपराक्रमी दूतोंसे रावण स्वामीके समान बोला ॥ ९-१७ ॥ शत्रुओंके साथ बड़ा काम करना है, यह मैं जानता हूँ अतएव

राक्षसास्तद्वचः श्रुत्वा लङ्कायां परिचक्रमुः । अनुगेहमवस्थाय विहारशयनेषु च ।
उद्यानेषु च रक्षांसि चोदयन्तो ह्यभीतवत् ॥ १९ ॥
ते रथान्तचरा एके दृप्तानेके दृढान्हयान् । नागानेकेऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः ॥२०॥
सा पुरी परमाकीर्णा रथकुञ्जरवाजिभिः । संपतद्भिर्विरुरुचे गरुत्मद्भिरिवाम्बरम् ॥२१॥
ते वाहनान्यवस्थाय यानानि विविधानि च । सभां पद्भिः प्रविविशुः सिंहा गिरिगुहामिव ॥२२॥
राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु राज्ञा ते प्रतिपूजिताः । पीठेष्वन्ये बृसीष्वन्ये भूमौ केचिदुपाविशन् ॥२३॥
ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात् । यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम् ॥२४॥
मन्त्रिणश्च यथामुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः । अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः ॥२५॥
समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा । सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ॥२६॥

ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं रथं वरं हेमविचित्रिताङ्गम् ।
शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥ २७ ॥
स पूर्वजायावरजः शशंस नामाथ पश्चाच्चरणौ ववन्दे ।
शुकः प्रहस्तश्च तथैव तेभ्यो ददौ यथार्हं पृथगासनानि ॥ २८ ॥
सुवर्णनानामणिभूषणानां सुवाससां संसदि राक्षसानाम् ।
तेषां परार्ध्यागुरुचन्दनानां स्रजां च गन्धाः प्रववुः समन्तात् ॥ २९ ॥

इन राक्षसोंको शीघ्र यहां ले आओ ॥ १८ ॥ वे राक्षस रावणके वचन सुनकर लंकामें घूमने लगे, प्रत्येक घरमें, बागमें, निःशंक होकर वे जाते और चाहे कोई विहार करता हो अथवा सोता हो, तौ भी रावणके पास जानेके लिए उससे कहते ॥ १९ ॥ उन राक्षसोंमें से कई रथपर चढ़कर, कई घोड़ेपर चढ़कर, कई हाथीपर चढ़ और कई पैदल ही चले ॥ २० ॥ रथ घोड़े और हाथीसे वह नगरी भर गयी, उड़ते पक्षियोंसे भरे आकाशके समान वह नगरी शोभित हुई ॥ २१ ॥ अनेक तरहकी सवारियोंको बाहरही छोड़कर उनलोगोंने पैरोंसेही सभाभवनमें प्रवेश किया, जिस प्रकार सिंह पर्वतकी गुफामें प्रवेश करता है ॥ २२ ॥ उनलोगोंने राजाके चरण छुए, राजाने उनके प्रणाम ग्रहण करके उन्हें अभिनन्दित किया, कोई पीढोंपर, कोई चटाइयोंपर और कोई ज़मीनपर ही बैठा ॥ २३ ॥ राजाकी आज्ञासे राजसभामें आकर उन राक्षसोंने राक्षसाधिप रावणकी यथायोग्य पूजा की ॥ २४ ॥ कृत्यनिश्चय करनेमें पण्डित बुद्धि द्वारा देखनेवाले तथा अन्यगुणोंसे युक्त सलाहकार और कार्य-करनेवाले मन्त्री तथा अनेकों वीर स्वामीके कार्यको सुखपूर्वक सिद्ध करनेके लिए उस सुवर्णमयी सभामें आये ॥ २५-२६ ॥ सुवर्णमंडित विशाल अच्छे घोड़े जुते हुए रथपर बैठकर महात्मा यशस्वी विभीषण बड़े भाईकी सभामें गये ॥ २७ ॥ पहले अपना नाम बतलाकर छोटे भाईने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया, प्रहस्त और शुकने भी वैसाही किया, रावणने इन सबको अलग अलग योग्य आसन दिया ॥ २८ ॥ सुन्दर वस्त्र पहन कर, विविध मणिजड़ित आभूषण पहनकर, सभामें आये हुए राक्षसोंके

न चुक्रुशुर्नानृतमाह कश्चित्सभासदो नापि जजल्पुरुच्चैः ।
संसिद्धार्थाः सर्व एवोग्रवीर्या भर्तुः सर्वे ददृशुश्चाननं ते ॥ ३० ॥
स रावणः शस्त्रभृतां मनस्विनां महाबलानां समितौ मनस्वी ।
तस्यां सभायां प्रभया चकाशे मध्ये वसूनामिव वज्रहस्तः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२

स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिंजयः । प्रबोधयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥
सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः । योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २ ॥
स प्रहस्तः प्रणीतात्मा चिकीर्षन्राजशासनम् । विनिक्षिप्य बलं सर्वं बहिरन्तश्च मन्दिरे ॥ ३ ॥
ततो विनिक्षिप्य बलं सर्वं नगरगुप्तये । प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥ ४ ॥
विहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव । कुरुष्वाविमनाः क्षिप्रं यदभिप्रेतमस्ति ते ॥ ५ ॥
प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहितैषिणः । सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥ ६ ॥
प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभे हिताहिते । धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ ७ ॥
सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा । मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥ ८ ॥

अगरु, चन्दन तथा मालाकी गन्ध चारोंओर फैलने लगी ॥ २९ ॥ सभामें कोई सभासद किसीको पुकारता तथा कोई झूठ न बोलता था, कोई चिल्लाकर भी नहीं बोलता था, सभीके मनोरथ पूरे हुए थे, सभी बलवान थे और सभी स्वामी रावणका मुँह देख रहे थे ॥ ३० ॥ महाबली मनस्वी शस्त्रधारियोंकी सभामें रावण अपनी प्रभासे वसुओंके बीच इन्द्रके समान शोभता था ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांडका ग्यारहवां सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥



युद्धविजयी रावण उस समस्त सभाको देखकर सेनापति प्रहस्तको उसने समझाया ॥ १ ॥ सेनापति अस्त्रशस्त्रमें निपुण रथी, गजारोही, अश्वारोही और पैदल इन चार प्रकारके अपने योधाओंको नगररक्षाके लिए आपको आज्ञा देनी चाहिए ॥२॥ यशी प्रहस्त राजाज्ञाके पालनकी इच्छासे नगररक्षाके लिए सेनाको आज्ञा देकर पुनः रावणके समीप आया, नगररक्षाके लिए सेनाका यथास्थान नियोग करके प्रहस्त रावणके सामने जाकर बैठा और बोला ॥ ३-४ ॥ आपकी सेनाका उचित नियोग मैंने कर दिया, अब जैसी आपकी इच्छा हो वह आप प्रसन्न होकर करें ॥ ५ ॥ राज्यका हित चाहनेवाले प्रहस्तका वचन सुनकर सुख चाहनेवाले रावणने मित्रोंके बीचमें कहा ॥ ६ ॥ धर्म अर्थ और कामविषयक कठिनाई उपस्थित होनेपर प्रिय, अप्रिय, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख हित, अहितका निर्णय करनेकी शक्ति आपलोग रखते हैं ॥ ७ ॥ परामर्शके द्वारा कर्तव्य निर्णय

ससोमग्रहनक्षत्रैर्मरुद्भिरिव वासवः । भवद्भिरहमत्यर्थं वृतः श्रियमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥
अहं तु खलु सर्वान्वः समर्थयितुमुद्यतः । कुम्भकर्णस्य तु स्वप्नान्नेममर्थमचोदयम् ॥१०॥
अयं हि सुप्तः षण्मासान्कुम्भकर्णो महाबलः । सर्वशस्त्रभृतां मुख्यः स इदानीं समुत्थितः ॥११॥
इयं च दण्डकारण्याद्रामस्य महिषी प्रिया । रक्षोभिश्चरितोद्देशादानीता जनकात्मजा ॥१२॥
सा मे न शय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी । त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीतासदृशी तथा ॥१३॥
तनुमध्या पृथुश्रोणी शरदिन्दुनिभानना । हेमबिम्बनिभा सौम्या मायेव मयनिर्मिता ॥१४॥
सुलोहिततलौ श्लक्ष्णौ चरणौ सुप्रतिष्ठितौ । दृष्ट्वा ताम्रनखौ तस्या दीप्यते मे शरीरजः ॥१५॥
हुताग्नेरर्चिःसंकाशामेनां सौरीमिव प्रभाम् । उन्नसं विमलं वल्गु वदनं चारुलोचनम् ॥१६॥
पश्यंस्तदवशस्तस्याः कामस्य वशमेयिवान् । क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च ॥१७॥
शोकसन्तापनित्येन कामेन कलुषीकृतः । सा तु संवत्सरं कालं मामयाचत भामिनी ॥१८॥
प्रतीक्षमाणा भर्तारं राममायतलोचना । तन्मया चारुनेत्रायाः प्रतिज्ञातं वचः शुभम् ॥१९॥
श्रान्तोऽहं सततं कामाद्यातो हय इवाध्वनि । कथं सागरमक्षोभ्यं तरिष्यन्ति वनौकसः ॥२०॥
बहुसत्त्वझषाकीर्णं तौ वा दशरथात्मजौ । अथवा कपिनैकेन कृतं नः कदनं महत् ॥२१॥
दुर्ज्ञेयाः कार्यगतयो ब्रूत यस्य यथामति । मानुषान्नो भयं नास्ति तथापि तु विमृश्यताम् ॥२२॥

करके आपलोगोंने मेरे जितने काम प्रारम्भ किये हैं वे कभी विफल नहीं हुए हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार चन्द्र ग्रह नक्षत्र और देवताओंके साथसे इन्द्र राजलक्ष्मीका उपभोग करते हैं, उसी प्रकार आपलोगोंके साथसे मैं भी राजलक्ष्मीका उपभोग करता हूँ ॥ ९ ॥ मैं तो आपलोगोंसे पहले ही यह बात कहना चाहता था, पर कुम्भकर्णके सोते रहनेके कारण कहनेमें विलम्ब हुआ ॥ १० ॥ महाबली समस्त शस्त्रधारियोंमें प्रधान कुम्भकर्ण छः महीनों तक सोता रहा, अभी उठा है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रकी प्रिय महारानी जनकपुत्री सीताको मैं उस जनस्थानसे ले आया हूँ, जहाँ राक्षस रहते हैं ॥१२॥ अलसगामिनी सीता मेरे पलंगपर नहीं आती। मेरे लिए तीनों लोकोंमें जैसी सीता है, वैसी दूसरी नहीं है ॥१३॥ उसकी कमर पतली, पीछेका भाग मोटा, मुँह शरत्‌के चन्द्रमाके समान सुन्दर है, वह सुवर्णप्रतिमाके समान रमणीय, मयनिर्मित मायाके समान सुन्दरी है ॥ १४ ॥ लाल तल और नखवाले उसके समतल चरण मेरे कामको बढ़ाते हैं ॥ १५ ॥ हुत अग्निकी दीप्तिके तथा सूर्यकी प्रभाके समान उस सीताको देखकर मेरा काम बढ़ता है। ऊँची नाक और मनोहर आँखोंवाला सुन्दर मुँह देखकर मैं कामके अधीन हो गया हूँ। क्रोध तथा हर्ष दोनों समयोंमें समानरूपसे रहनेवाले, कान्तिको नष्ट करनेवाले और शोक-सन्तापको सदा बढ़ानेवाले कामने मुझे व्यथित कर दिया है। सुन्दरी सीताने एक वर्षकी अवधि मुझसे माँगी थी, विशालाक्षी सीताने यह अवधि अपने पति रामकी प्रतीक्षाके लिए माँगी थी। मैंने सुन्दरनेत्रा सीताकी अवधि स्वीकार कर ली थी ॥१६—१९॥ रास्ता चले घोड़ेके समान मैं कामसे परिश्रान्त हो गया हूँ। पार करनेके अयोग्य इस समुद्रको वानर कैसे पार करेंगे तथा अनेक प्राणी और मछलियोंवाले समुद्रको दशरथके वे दोनों पुत्रही कैसे पार करेंगे? किन्तु यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि एक ही वानर हम लोगोंकी ऐसी दुर्दशा कर गया ॥ २०—२१ ॥ कार्यसिद्धिका उपाय

तदा देवासुरे युद्धे युष्माभिः सहितोऽजयम् । ते मे भवन्तश्च तथा सुग्रीवप्रमुखान्हरीन् ॥२३॥
परे पारे समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ । सीतायाः पदवीं प्राप्य सम्प्राप्तौ वरुणालयम् ॥२४॥
अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ । भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥२५॥
नहि शक्तिं प्रपश्यामि जगत्यन्यस्य कस्यचित् । सागरं वानरैस्तीर्त्वा निश्चयेन जयो मम ॥२६॥
तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम् । कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥२७॥

यदा तु रामस्य सलक्ष्मणस्य प्रसह्य सीता खलु सा इहाहृता ।
सकृत्समीक्ष्यैव सुनिश्चितं तदा भजेत चित्तं यमुनेव यामुनम् ॥२८॥

सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव । विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥२९॥
न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन । न स सन्तप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥३०॥
अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च । क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥३१॥
यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति । पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥३२॥
चपलस्य तु कृत्येषु प्रसमीक्ष्याधिकं बलम् । छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥३३॥
त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम् । दिष्ट्या त्वां नावधीद्रामो विषमिश्रमिवामिषम् ॥३४॥

जाना नहीं जाता, अतएव जिसको जो ठीक मालूम पड़े, वह वैसा कहे । मनुष्यसे मुझे कोई भय नहीं है, तथापि विचार तो करनाही चाहिए ॥ २२ ॥ देवासुरसंग्राममें आपलोगोंके साथसे मैंने विजय पायी, वे आपलोग आज भी मेरे वैसेही सहायक हैं। वे दोनों राजपुत्र, सीताका पता पाकर, सुग्रीव आदि वानरोंको आगे करके समुद्रके उस पार आये हुए हैं ॥ २३—२४ ॥ जिसप्रकार सीताको लौटाना न पड़े और वे राजपुत्र मारे जायँ, ऐसा विचार आपलोग निश्चित करें और निश्चित कर्तव्य बतलावें ॥ २५ ॥ वानरोंके द्वारा समुद्र पार करके मुझे जीतनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है, अतएव मेरी विजय निश्चित है ॥ २६ ॥ कामवशीभूत रावणका विलाप सुनकर कुम्भकर्णने क्रोध किया और वह बोला ॥ २७ ॥ लक्ष्मणसहित रामकी सीताको आप तात्कालिक विचार करके जब यहाँ हर लाये हैं, उसी समय आपको इसका विचार भी करना चाहिए था। जिस प्रकार यमुना यामुन-ह्रदमें कृष्णावतारके समय ही जाती है ॥ २८ ॥ महाराज आपने यह जो कुछ किया है, सब अनुचित है । इस कामके करनेके पहलेही आपको हम लोगोंसे परामर्श करना उचित था ॥ २९ ॥ मन्त्रियोंके साथ परामर्श करके जो राजा नीति निश्चित करता है और उसीके अनुसार न्यायपूर्वक राजकार्य करता है, उसे कभी पश्चात्ताप नहीं होता ॥३०॥ मन्त्रियोंसे विना परामर्श किये केवल अपनी इच्छासे जो अन्यायकार्य किये जाते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, जिसप्रकार मारण मोहन आदि पाप कार्योंके लिए हवन की हुई हवि ॥ ३१ ॥ जो पहले किये जानेवाले कार्योंको पीछे करना चाहता है और पीछे किये जानेवाले कार्योंको पहले करता है, उसे नीति-अनीतिका कुछ भी ज्ञान नहीं होता ॥ ३२ ॥ विषयलोलुप अतएव असमीक्ष्यकारीका अधिक बल देखकर भी शत्रुकार्योंमें छिद्र देखा करते हैं, जिस प्रकार हंस क्रौंच पर्वतको लाँघनेके लिए उसका विल ढूँढ़ते हैं ॥ ३३ ॥ तुमने परिणाम विना सोचे समझे यह बहुत बड़ा काम प्रारम्भ कर दिया है । यह खुशीकी बात है कि विषमिश्रित अन्नके समान रामचन्द्रने तुमको

तस्मात्त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः। अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥३५॥
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव निशाचर। यदि शक्रविवस्वन्तौ यदि पावकमारुतौ।
तावहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ॥३६॥
गिरिमात्रशरीरस्य महापरिघयोधिनः। नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाद्वै पुरंदरः ॥३७॥
पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति। ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस ॥३८॥
वधेन वै दाशरथेः सुखावहं जयं तवाहर्तुमहं यतिष्ये।
हत्वा च रामं सह लक्ष्मणेन खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥३९॥
रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं कुरुष्व कार्याणि हितानि विज्वरः।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः। मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगव्यालनिषेवितम्। न पिबेन्मधु सम्प्राप्य स नरो बालिशो भवेत् ॥ २ ॥
ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण। रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु ॥ ३ ॥
बलात्कुक्कुटवृत्तेन प्रवर्तस्व महाबल। आक्रम्याक्रम्य सीतां वै तां भुङ्क्ष्व च रमस्व च ॥४॥

मारा नहीं ॥ ३४ ॥ अतएव तुमने प्रबल शत्रुसे अनुचित कार्य प्रारम्भ किया है, पर मैं तुम्हारे शत्रुको मारकर शान्ति कर दूँगा ॥ ३५ ॥ निशाचर! तुम्हारे शत्रुओंको मैं मारूँगा, चाहे वह इन्द्र हो, सूर्य अग्नि हो या पवन कुबेर हो या वरुण, मैं उसे लड़ाऊँगा ॥ ३६ ॥ पर्वतके समान विशाल शरीर और महापरिघसे युद्धकरनेवाले मेरे गर्जनको सुनकर इन्द्र भी डर जाय ॥ ३७ ॥ वह राम, एक बाणसे मारकर जबतक, दूसरा बाण मारेगा, उसके पहलेही मैं उसका रक्त पी लूँगा, तुम विश्वास रखो ॥ ३८ ॥ दशरथके पुत्रोंके वधसे सुखदायक जय तुम्हें देनेका मैं प्रयत्न करूँगा। लक्ष्मणके सहित रामको मार डालूँगा और समस्त प्रधान वानरोंको खा डालूँगा ॥ ३९ ॥ इच्छापूर्वक विहार करो, बढ़िया शराब पीओ, निःशंक होकर हितकारी कार्य करो, मेरे द्वारा रामका वध होनेपर सीता सदाके लिए तुम्हारे वश हो जायगी ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

रावण क्रोधित है यह जानकर महाबली महापार्श्व थोड़ी देर सोचकर और हाथ जोड़कर बोला ॥ १ ॥ जो मनुष्य हिंस्र पशु, दुष्ट हाथी आदिसे भरे हुए वनमें जाकर और वहाँ मधु पाकर उसको नहीं पीता वह मूर्ख है अर्थात् मधुरूपिणी सीताको पाकर यदि आपने उसका हरण किया तो यह कोई बुरी बात नहीं हुई ॥ २ ॥ शत्रुनिबर्हण, आप स्वयं समर्थ हैं, आपका नियामक कौन है! शत्रुओंका सिर झुकाकर आप सीताके साथ रमण करें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार मुर्गा छलसे मुर्गीपर आक्रमण करता और उसे वशमें करता

लब्धकामस्य ते पश्चादागमिष्यति किं भयम् । प्राप्तमप्राप्तकालं वा सर्वं प्रतिविधास्यसे ॥ ५ ॥
कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः । प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥ ६ ॥
उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं वा कुशलैः कृतम् । समतिक्रम्य दण्डेन सिद्धिमर्थेषु रोचये ॥ ७ ॥
इह प्राप्तान्वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल । वशं शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः । तस्य संपूजयन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
महापार्श्व प्रवदतो रहस्यं किंचिदात्मनः । चिरवृत्तं तदाख्यास्ये यदवाप्तं पुरा मया ॥१०॥
पितामहस्य भवनं गच्छन्तीं पुञ्जिकस्थलाम् । चञ्चूर्यमाणामद्राक्षमाकाशेऽग्निशिखामिव ॥११॥
सा प्रसह्य मया भुक्ता कृता विवसना ततः । स्वयंभूभवनं प्राप्ता लोलिता नलिनी यथा ॥१२॥
तच्च तस्य तथा मन्ये ज्ञातमासीन्महात्मनः । अथ संकुपितो वेधा मामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥
अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि । तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥१४॥
इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम् । नारोहये बलात्सीतां वैदेहीं शयने शुभे ॥१५॥
सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः । नैतद्दाशरथिर्वेद ह्यासादयति तेन माम् ॥१६॥
को हि सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशये । क्रुद्धं मृत्युमिवासीनं संबोधयितुमिच्छति ॥१७॥

है, उसी प्रकार आप भी सीतापर बलपूर्वक आक्रमण करें (वात्स्यायन 'कौक्कुटवृत्त' उसको कहते हैं, जहाँ क्रुद्ध स्त्रीपर बलपूर्वक आक्रमण किया जाय, 'क्रुद्धामाक्रम्य भोगस्तु कौक्कुटः सोपि सौख्यदः') ॥ ४ ॥ जब आप अपना मनोरथ पूर्ण कर लेंगे तब आपको भयही क्या होगा । सावधान या असावधान, किसी भी दशामें, कोई भय होगा भी तो उसका प्रतीकार किया जायगा ॥ ५ ॥ महाबली इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण हम लोगोंके साथ मिलकर वज्रधारी इन्द्रको भी हटा सकते हैं ॥६॥ नीतिनिपुणोंके द्वारा किये साम दान भेदको छोड़कर केवल दण्डके द्वाराही कार्य सिद्ध करनेकी बात मुझे पसन्द है ॥ ७ ॥ महाबल ! यहाँ आये आपको समस्त शत्रुओंको हमलोग शस्त्रसे वशमें करेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ महापार्श्वके ऐसा कहनेपर राजा रावण उसकी बातोंकी प्रशंसा करके बोले ॥ ९ ॥ महापार्श्व ! बहुत दिनों पहले जो मैंने पाया है वह अपना रहस्य मैं कहता हूँ ॥ १० ॥ पुंजिकस्थला नामकी अप्सरा आकाशमार्गसे पितामहके यहाँ जारही थी । वह मेरे भयसे छिपतीसी जा रही थी, अग्नि-शिखाके समान जलानेवाली उस अप्सराको मैंने देखा ॥ ११ ॥ मैंने बलपूर्वक उसके साथ भोग किया और उसे नंगी कर दिया । मसली हुई कमलिनीके समान ब्रह्मदेवके यहाँ वह गयी ॥ १२ ॥ मैं समझता हूँ कि मेरा यह काम महात्मा ब्रह्मदेवको मालूम हो गया था, अतएव क्रोध करके उन्होंने मेरे लिए कहा—आजसे यदि किसी दूसरी स्त्रीपर बलपूर्वक आक्रमण करोगे, तो तुम्हारा मस्तक सौ टुकड़े हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं ॥१३—१४॥ उसी शापके डरसेही सती सीताको बलपूर्वक मैं उसके योग्य पलंगपर नहीं ले जाता ॥ १५ ॥ मेरा वेग समुद्रके समान है और गति वायुके समान है, इस बातको शायद दाशरथि राम नहीं जानता, इसीलिए सेना लेकर वह मेरी ओर बढ़ रहा है ॥ १६ ॥ कौन मनुष्य जानकर गिरिगुहामें सोये सिंहको या सोयी मृत्युको जगानेके समान चुपचाप बैठे मुझको जगावेगा, ऐसा साहस करना किसी जानकारके लिए सम्भव नहीं है ॥ १७ ॥

न मत्तो निर्गतान्बाणान्द्विजिह्वान्पन्नगानिव । रामः पश्यति संग्रामे तेन मामभिगच्छति ॥१८॥
क्षिप्रं वज्रसमैर्बाणैः शतधा कार्मुकच्युतैः । राममादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥१९॥
तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः । उदितः सविता काले नक्षत्राणां प्रभामिव ॥२०॥
न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा युधास्मि शक्यो वरुणेन वा पुनः ।
मया त्वियं बाहुबलेन निर्जिता पुरा पुरी वैश्रवणेन पालिता ॥२१॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः १४

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि ।
विभीषणो राक्षसराजमुख्यमुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम् ॥१॥
वृतो हि बाह्वन्तरभोगराशिश्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः ।
पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोऽतिकायः सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥२॥
यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति वलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः ।
दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥३॥
यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता राक्षसपुङ्गवानाम् ।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥४॥

द्विजिह्व सर्पके समान मुझसे निकले बाणोंको रामचन्द्रने नहीं देखा है, इसीसे वे आ रहे हैं ॥ १८ ॥ धनुषसे निकले सैकड़ों वज्रके समान बाणोंसे मैं रामचन्द्रको जला दूँगा, जिस प्रकार दहकते अङ्गारोंसे हाथी जलाया जाता है ॥ १९ ॥ बड़ी सेनाके साथ जाकर मैं रामकी समस्त सेनाको जलाकर मार डालूँगा, जिस प्रकार सूर्य उदित होकर नक्षत्रोंकी शोभा नष्ट कर देता है ॥ २० ॥ सहस्रनेत्र इन्द्र या वरुण युद्धमें मुझे नहीं जीत सकते । मैंने अपने बाहुबलसे ही कुबेरके द्वारा पालित यह नगरी जीती थी ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

निशाचरेन्द्र रावणके ये वचन सुनकर तथा कुम्भकर्णके गर्जन सुनकर विभीषण रावणसे हितकारी और अर्थयुक्त वचन बोले ॥ १ ॥ यह सीतारूपी सर्प किसने तुम्हारे गलेमें बाँध दिया है । सीताके दोनों बाहुओंके बीचका भाग अर्थात् छाती उस सर्पका शरीर है, चिन्ताही इस सर्पका विष है, मुस्कुराहट तीखे दाँत हैं, पाँच अँगुलियाँ इसके पाँच मस्तक हैं । राजन् ! यह विशाल शरीरका महासर्प किसने तुम्हारे गलेमें बाँध दिया है ॥ २ ॥ पर्वतशिखरके समान ऊँचे, दाँत नखके आयुधवाले वानर जबतक लंकापर आक्रमण नहीं करते, तभीतक आप रामचन्द्रको जानकी लौटा दें ॥ ३ ॥ रामके चलाये, वायुके समान वेगवाले वज्रतुल्य, बाण जबतक राक्षसोंके माथा नहीं पकड़ते, तभी तक आप रामचन्द्रको जानकी दे दें ॥ ४ ॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरौ वा ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः स्थातुं समर्था युधि राघवस्य ॥५॥
जीवंस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सवित्राप्यथवा मरुद्भिः ।
न वासवस्याङ्कगतो न मृत्योर्नभो न पातालमनुप्रविष्टः ॥६॥
निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे ।
न नो भयं विद्म न दैवतेभ्यो न दानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥७॥
न यक्षगन्धर्वमहोरगेभ्यो भयं न संख्ये पतगोरगेभ्यः ।
कथं नु रामाद्भविता भयं नो नरेन्द्रपुत्रात्समरे कदाचित् ॥८॥
प्रहस्तवाक्यं त्वहितं निशम्य विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी ।
ततो महार्थं वचनं बभाषे धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥९॥
प्रहस्त राजा च महोदरश्च त्वं कुम्भकर्णश्च यथार्थजातम् ।
ब्रवीति रामं प्रति तन्न शक्यं यथा गतिः स्वर्गमधर्मबुद्धेः ॥१०॥
वधस्तु रामस्य मया त्वया च प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा ।
कथं भवेदर्थविशारदस्य महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य ॥११॥
धर्मप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः ।
पुरोऽस्य देवाश्च तथाविधस्य कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥१२॥

राजन्! कुम्भकर्ण इन्द्रजित् महापार्श्व महोदर निकुम्भ कुम्भ तथा अतिकाय ये सब युद्धमें रामचन्द्रके सामने नहीं ठहर सकते हैं ॥ ५ ॥ जीते-जी तुम रामसे अपनी रक्षा नहीं कर सकते, चाहे सूर्य तुम्हारी रक्षा करें या वायु। इन्द्र या मृत्युसे भी रक्षित होकर तुम अपनी रक्षा नहीं कर सकते। आकाशमें या पातालमें जाओ, पर तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती ॥ ६ ॥ विभीषणके वचनको सुनकर प्रहस्त बोला—हमलोग किसीसे डरते नहीं, न देवताओंसे न दानवोंसे, न और किसीसे हमलोग डरते हैं ॥ ७ ॥ हमलोगोंको यक्ष गन्धर्व सर्प गरुड़से भी भय नहीं है, फिर राजपुत्र रामसे युद्धमें हमलोगोंको कैसे भय हो सकता है ॥ ८ ॥ अहितकारी प्रहस्तके वचन सुनकर राजाका हित चाहनेवाला और धर्मार्थकाममें निपुण विभीषण बहुतही अर्थयुक्त वचन प्रहस्तसे बोला ॥ ९ ॥ प्रहस्त! राजा महोदर कुम्भकर्ण और तुम जो बातें कहते हो, वह रामचन्द्रके सामने कर नहीं सकते, वे केवल तुम्हारी बातें ही हैं, जिसप्रकार अधर्मी स्वर्गमें नहीं जा सकता ॥ १० ॥ प्रहस्त! हम तुम तथा समस्त राक्षस मिलकर भी कार्यदक्ष रामचन्द्रका वध नहीं कर सकते हैं, जिसप्रकार विना नौकाके मनुष्य समुद्र-पार नहीं जा सकता ॥ ११ ॥ राम अन्य पुरुषार्थोंमें धर्मको ही प्रधान माननेवाले हैं, वे महारथ हैं (अपनी तथा सारथीकी रक्षा करता हुआ जो शत्रुओंका नाश करे वह महारथ कहा जाता है), जन्मसे ही उन्हें सर्वाधिक पराक्रम प्राप्त हुआ है, सबको प्रसन्न रखनेवाले तथा विराध कबन्ध वालि आदि प्रसिद्ध वीरोंको मारनेवाले रामचन्द्रके युद्धमें देवता भी मूढ़ हो जाते हैं, अर्थात्

तीक्ष्णा न तावत्तव कङ्कपत्रा दुरासदा राघवविप्रमुक्ताः ।
भित्त्वाशरीरं प्रविशन्ति बाणाः प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम् ॥१३॥
भित्त्वा न तावत्प्रविशन्ति कायं प्राणान्तिकास्तेऽशनितुल्यवेगाः ।
शिताः शरा राघवविप्रमुक्ताः प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम् ॥१४॥
न रावणो नातिबलस्त्रिशीर्षो न कुम्भकर्णस्य सुतो निकुम्भः ।
न चेन्द्रजिद्दाशरथिं प्रवोढुं त्वं वा रणे शक्रसमं समर्थः ॥१५॥
देवान्तको वापि नरान्तको वा तथातिकायोऽतिरथो महात्मा ।
अकम्पनश्चापि समानसारः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥१६॥
अयं च राजा व्यसनाभिभूतो मित्त्रैरमित्त्रप्रतिमैर्भवद्भिः ।
अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थे तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी ॥१७॥
अनन्तभोगेन सहस्रमूर्ध्ना नागेन भीमेन महाबलेन ।
बलात्परिक्षिप्तमिमं भवन्तो राजानमुत्क्षिप्य विमोचयन्तु ॥१८॥
यावद्धि केशग्रहणात्सुहृद्भिः समेत्य सर्वैः परिपूर्णकामैः ।
निगृह्य राजा परिरक्षितव्यो भूतैर्यथा भीमबलैर्गृहीतः ॥१९॥
सुवारिणा राघवसागरेण प्रच्छाद्यमानस्तरसा भवद्भिः ।
युक्तस्त्वयं तारयितुं समेत्य काकुत्स्थपातालमुखे पतन्सः ॥२०॥

रामके व्यापारोंको वे भी नहीं समझ सकते ॥ १२ ॥ प्रहस्त ! रामचन्द्रके छोड़े हुए कङ्कपत्रवाले तीखे बाण जबतक तुम्हारे शरीर छेदकर नहीं घुसते, तभी तक तुम बढ़-बढ़कर बातें बोल रहे हो ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके छोड़े प्राण लेनेवाले वज्रतुल्य वेगवाले तीखे बाण तुम्हारे शरीरको भेदकर नहीं घुसते, इसीसे तुम इस प्रकार बढ़बढ़कर बोल रहे हो ॥ १४ ॥ युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी रामचन्द्रको, रावण, अतिबल त्रिशीर्ष कुम्भकर्णका पुत्र निकुम्भ अथवा इन्द्रजित्, कोई भी सह सकनेमें समर्थ नहीं है ॥ १५ ॥ बड़े रथ और शरीरवाले तथा पर्वततुल्य पराक्रमी देवान्तक नरान्तक अतिकाय अकम्पन आदि भी युद्धमें रामके सामने नहीं ठहर सकते ॥ १६ ॥ यह अहङ्कारसे चूर अतएव असमीक्ष्यकारी राजा रावण राक्षसोंके नाशके लिए आपके समान शत्रुतुल्य मित्रोंसे सेवित हो रहा है और वह स्वभावका उग्र है ॥ १७ ॥ विशालशरीर एवं हजार मस्तकवाले महाबली भयानक सर्पके द्वारा आपके राजा घिर गये हैं। आपलोग इनकी रक्षा करें अर्थात् रामसे विरोध भयानक साँपसे घिरनेके समान है ॥ १८ ॥ आप सबलोगोंने राजासे बहुत लाभ उठाये हैं, आपलोगोंको चाहिए कि एकमत होकर, भीमबली भूतोंके द्वारा ग्रहीत पुरुषके समान, बलपूर्वक राजाको रोकें और शत्रुद्वारा उनका केश-ग्रहण न होने दें अथवा जबतक वे आपका केश पकड़कर अपमानित न करें तबतक आप रोकें ॥ १९ ॥ यह राजा चरित्ररूपी सुन्दर जलवाले लक्ष्मणरूपी समुद्रमें डूबने जारहा है, उसके बाद बड़वानलरूपी रामचन्द्रके पराक्रममें जलने जा रहा है, आप सबलोग मिलकर

इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य ।
सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम् ॥२१॥
परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम् ।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या वदेत्क्षमं स्वामिहि सतं मन्त्री ॥२२॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

पञ्चदशः सर्गः १५

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य ।
ततो महात्मा वचनं बभाषे तत्रेन्द्रजिन्नैरृतयूथमुख्यः ॥१॥
किं नाम ते तातकनिष्ठ वाक्यमनर्थकं वै बहुभीतवच्च ।
अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न जातः सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात् ॥२॥
सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण शौर्येण च तेजसा च ।
एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो विमुक्तो विभीषणस्तातकनिष्ठ एषः ॥३॥
किं नाम तौ मानुषराजपुत्रावस्माकमेकेन हि राक्षसेन ।
सुप्राकृतेनापि निहन्तुमेतौ शक्यौ कुतो भीषयसे स्म भीरो ॥४॥

रोकिए, इसी समय रोकनेसे लाभ हो सकता है ॥ २० ॥ समस्त राक्षसयुक्त इस नगरके और मित्रोंसहित राजाके कल्याणके लिए बहुत समझ-बूझकर यह हितकारी पथ्य मैं दे रहा हूँ, कि राजपुत्र रामको वे जानकी लौटा दें ॥ २१ ॥ मन्त्री को चाहिए कि वह शत्रु और अपने बलकी परीक्षा करे, स्थान देखे, क्षय और वृद्धि का अनुमान करे, इसी प्रकार अपने पक्षकी भी मजबूतियों और कमजोरियोंका विचार करे, फिर स्वामीको उचित परामर्श दे, जो स्वामीके लिए योग्य हो तथा हितकारी हो। शत्रुका क्षय होता हो और अपनी वृद्धि, उस समय आक्रमण करना चाहिए। शत्रुकी समृद्धि हो और अपना ह्रास उस, समय सन्धि कर लेनी चाहिए और जब दोनों बराबर हों उस समय चुप रहना चाहिए ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥



बृहस्पतिके समान बुद्धिमान विभीषणके वचन, किसी प्रकार कष्टसे, सुनकर राक्षससेनाका प्रधान महात्मा इन्द्रजित् बोला ॥ १ ॥ हे कनिष्ठ तात ! आपकी ये बातें अनर्थक हैं, क्योंकि कोई इन्हें मान नहीं सकता और ये भयभीत होकर कही हुई हैं। जो इस कुलमें उत्पन्न नहीं है, किसी छोटे कुलमें उत्पन्न है, वह भी ऐसी बातें न कह सकता है और न कर सकता है ॥ २ ॥ इस कुलमें यही एक कनिष्ठ तात विभीषणही बल वीर्य पराक्रम धैर्य शूरता और तेजसे रहित हैं ॥३॥ हम लोगोंके एक साधारण राक्षसके द्वारा भी वे दोनों राजपुत्र मारे जा सकते हैं; फिर भीरु जो कोई चीज नहीं, उसका नाम लेकर आप क्यों डरवा रहे हैं ॥ ४ ॥

त्रिलोकनाथो ननु देवराजः शक्रो मया भूमितले निविष्टः।
मयापिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः सर्वे तदा देवगणाः समग्राः ॥५॥
ऐरावतो निःस्वनमुन्नदन्स निपातितो भूमितले मया तु।
विकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य वित्रासिता देवगणाः समग्राः ॥६॥
सोऽहं सुराणामपि दर्पहन्ता दैत्योत्तमानामपि शोककर्ता।
कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न शक्तो मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः ॥७॥
अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महौजसस्तद्वचनं निशम्य।
ततो महार्थं वचनं बभाषे विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥८॥
न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः।
तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाशनाय वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम् ॥९॥
पुत्रप्रवादेन तु रावणस्य त्वमिन्द्रजिन्मित्रमुखोऽसि शत्रुः।
यस्येदृशं राघवतो विनाशं निशम्य मोहादनुमन्यसे त्वम् ॥१०॥
त्वमेव वध्यश्च सुदुर्मतिश्च स चापि वध्यो य इहानयत्त्वाम्।
बालं दृढं साहसिकं च योऽद्य प्रावेशयन्मन्त्रकृतां समीपम् ॥११॥
मूढोऽप्रगल्भोऽविनयोपपन्नस्तीक्ष्णस्वभावोऽल्पमतिर्दुरात्मा।
मूर्खस्त्वमत्यन्तसुदुर्मतिश्च त्वमिन्द्रजिद्बालतया ब्रवीषि ॥१२॥
को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशानर्चिष्मतः कालनिकाशरूपान्।

त्रिलोकनाथ इन्द्रको स्वर्गसे हटाकर पृथिवीमें कैद करनेकी शक्ति मैं रखता हूँ, समस्त देवता मुझसे भयभीत होकर दिशाओंमें भाग गये ॥ ५ ॥ गर्जते हुए ऐरावतको जमीनमें पछाड़कर मैंने बलपूर्वक उसके दाँत उखाड़ लिये और समस्त देवताओंको डरवा दिया ॥ ६ ॥ मैं देवताओंके भी दर्प चूर करनेवाला, श्रेष्ठ दैत्योंको भी शोकयुक्त करनेवाला पराक्रमी वीर हूँ, फिर साधारण मनुष्य इन राजपुत्रोंको मैं क्यों नहीं मार सकता हूँ ॥ ७ ॥ पराजित होनेके अयोग्य महाबली इन्द्रतुल्य इन्द्रजितके वचन सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण गंभीरार्थक वचन बोले ॥ ८ ॥ तात ! तुम बालक हो, आज भी तुम्हारी बुद्धि परिणत नहीं हुई है, अतएव तुम्हारे परामर्शपर आस्था नहीं की जा सकती, इसी कारण अपने नाशके लिए अर्थहीन बहुत सी बात बक गये हो ॥ ९ ॥ इन्द्रजित्, तुम रावणके पुत्र कहलानेवाले और मित्रके समान मालूम पड़नेवाले शत्रु हो, क्योंकि रावणके रामसे होनेवाले विनाशकी बात सुनकर भी अज्ञानसे तुम उसे दूर करनेका प्रयत्न नहीं करते ॥ १० ॥ दुर्मति ! तुम्हींको दण्ड देना चाहिए, इस सभामें जो तुमको ले आया है उसको दण्ड देना चाहिए, साहसी हठी बालक ! तुमको यहाँ सलाहकारोंकी सभामें जो ले आया उसको दण्ड देना चाहिए ॥ ११ ॥ तुम्हें कर्तव्य अकर्तव्यका ज्ञान नहीं है, तुम्हारी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई है, अविनयी हो, तुम्हारा स्वभाव उग्र है, तुम अल्पबुद्धि हो, तुम्हारा मन तुम्हारे अधीन नहीं है, तुम असमीक्ष्यकारी हो, अतएव अत्यन्त दुर्बुद्धि हो। इन्द्रजित् ! तुम बालक होनेके कारण ऐसा कह रहे हो ॥१२॥ ब्रह्मदण्डके समान मालूम

सहेत वाणान्यमदण्डकल्पान्समक्षमुक्तान्युधि राघवेण ॥१३॥
धनानि रत्नानि सुभूषणानि वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान् ।
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं वसेम राजन्निह वीतशोकाः ॥१४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥



षोडशः सर्गः १६

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम् । अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥१॥
वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च । न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥२॥
जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस । हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥३॥
प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस । ज्ञातयोऽप्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥४॥
नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः । प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥५॥
श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने पुरा । पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणुष्व गदतो मम ॥६॥
नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः । घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥७॥
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः । कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥८॥

पड़नेवाले, प्रकाशमान ज्वालायुक्त कालके समान भासित होनेवाले, यमदण्डके तुल्य सामने छोड़े हुए रामचन्द्रके बाणको युद्धमें कैसे सहोगे ॥ १३ ॥ राजन् ! धन, रत्न, उत्तम भूषण, वस्त्र, दिव्य मणि और देवी सीता रामचन्द्रको अर्पित करके हमलोग शोकरहित होकर इस नगरीमें निवास करें ॥ १४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥



श्रवणसुखदायक और हितकारी विभीषणके वचन सुनकर, कालप्रेरित रावण उनसे कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ शत्रुके साथ रहा जा सकता है, क्रुद्ध सर्पके साथ भी रहा जा सकता है, पर मित्रनामधारी शत्रुपक्षपातीके साथ रहना अनुचित है ॥ २ ॥ राक्षस ! सब लोकमें प्रसिद्ध ज्ञातिका स्वभाव मैं जानता हूँ, वे अपनी ज्ञातिवालेका दुःख देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ यदि ज्ञातिके किसीने राज्य प्राप्त कर लिया है, जो राज्यका रक्षक है, जो विद्वान है, धर्मात्मा है, ज्ञातिवाले इनका तिरस्कार करते हैं और शूरको पराजित करते हैं ॥ ४ ॥ ज्ञातिके लोग आततायी होते हैं, ये छिपकर विरोधाचरण करते हैं, अतएव ये बड़े भयानक होते हैं, आपसमें एक दूसरेको विपत्तिग्रस्त देखकर प्रसन्न होते हैं अतएव ज्ञातिके लोग भयानक कहे गये हैं ॥ ५ ॥ हाथी बाँधनेका पाश लेकर आते हुए मनुष्योंको देखकर पद्मवन के हाथियोंने एक श्लोक कहा था यह मैंने बूढ़ोंके मुँहसे सुना है, वही कहता हूँ, सुनो ॥ ६ ॥ हमारे लिए अग्नि, अन्य प्रकारके शस्त्र तथा पाश भयानक नहीं हैं, किन्तु भयानक हैं स्वार्थी ज्ञातिवाले ॥ ७ ॥ येही हमारे पकड़नेके उपाय बतलावेंगे। सब

विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम् । विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥ ९ ॥
ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः । ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥१०॥
यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः । न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥११॥
यथा शरदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम् । न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथानार्येषु सौहृदम् ॥१२॥
यथा मधुकरस्तर्षाद्रसं विन्दन्न तिष्ठति । तथा त्वमपि तत्रैव तथानार्येषु सौहृदम् ॥१३॥
यथा मधुकरस्तर्षात्काशपुष्पं पिबन्नपि । रसमत्र न विन्देत तथानार्येषु सौहृदम् ॥१४॥
यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः । दूषयत्यात्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम् ॥१५॥
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर । अस्मिन्मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसन ॥१६॥
इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः । उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥१७॥
अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः । अन्तरिक्षगतः श्रीमान्भ्राता वै राक्षसाधिपम् ॥१८॥
स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि । ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो नच धर्मपथे स्थितः ।
इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ॥१९॥
सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन । न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥२०॥
सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः । अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥२१॥

दुखोंसे बढ़कर मैं ज्ञातिभयको अधिक कष्ट मानता हूँ ॥ ८ ॥ गौओंमें देवता और पितरोंको तृप्त करनेके द्रव्य हैं ही, ज्ञातिओंसे भय है ही, स्त्रियोंमें चपलता है ही और ब्राह्मणों में तपस्या है ही ॥ ९ ॥ लोग मेरा आदर करते हैं, मैंने ऐश्वर्य पाया है और मैं शत्रुओंके सिरपर हूँ, यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता, क्योंकि तुम ज्ञाति हो ॥ १० ॥ जिसप्रकार कमलपत्रपर गिरे जलबिन्दु उसपर नहीं ठहरते, उसी प्रकार अधमोंकी मैत्री भी स्थायी नहीं होती ॥ ११ ॥ जिस प्रकार वर्षामें बरसने और गरजनेवाले मेघ शरत्में पानी नहीं बरसाते, उसी प्रकार अधमोंकी मैत्री भी निष्फल होती है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार भ्रमर अभिलाषसे पुष्परस पीता है और चल देता है, उसी प्रकारके तुम भी हो । अधमोंकी मैत्री ऐसी ही होती है॥१३॥जिस प्रकार भ्रमर अभिलाषसे काश-पुष्पको पीता है, पर वहाँ रस नहीं पाता, अधमोंकी मैत्री भी वैसीही है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार हाथी स्नान करता है, पुनः सूँड़से धूल लेकर अपना शरीर गन्दा कर देता है, उसी प्रकार अधमोंकी मैत्री भी है ॥ १५ ॥ निशाचर ! यदि कोई दूसरा इस तरहकी बातें कहता तो वह इस समयतक जीता न होता, कुलकलङ्क ! तुमको धिक्कार है ॥१६॥ उचित कहनेवाले विभीषणसे उसने ऐसे कठोर वचन कहे । विभीषण चार राक्षसोंके साथ सभासे उठकर आकाशमें चले गये ॥ १७ ॥ भाई विभीषणको क्रोध आ गया और आकाशमें जाकर वे राक्षसाधिप रावणसे बोले ॥ १८ ॥ तुम धर्मपर स्थित नहीं हो, फिर भी बड़े भाई होनेके कारण पिताके समान मान्य हो तुम जो चाहो कहो क्योंकि तुम भ्रममें हो अतएव बड़े होनेपर भी तुम्हारे इन कठोर वचनोंको मैं नहीं सहूँगा ॥१९॥ हे दशानन ! हितकामनासे कहे हुए नीतियुक्त वचन कालवशीभूत चञ्चल मनुष्य ग्रहण नहीं करते ॥ २० ॥ राजन् ! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य सुलभ हैं, पर अप्रिय हितकारी वचन कहने-

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः । न नश्यन्तमुपेक्षे त्वां प्रदीप्तं शरणं यथा ॥२२॥
दीप्तपावकसङ्काशैः शितैः काञ्चनभूषणैः । न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ॥२३॥
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च नरा रणे । कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥२४॥
तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता । आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ॥
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥२५॥
निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा न रोचते ते वचनं निशाचर ।
परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः । आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥१॥
तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतह्रदाम् । गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः ॥२॥
ते चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमविक्रमाः । तेऽपि वर्मायुधोपेता भूषणोत्तमभूषिताः ॥३॥
स च मेघाचलप्रख्यो वज्रायुधसमप्रभः । वरायुधधरो वीरो दिव्याभरणभूषितः ॥४॥
तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः । वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥५॥

वाले और सुननेवाले दोनों दुर्लभ हैं ॥ २१ ॥ सब प्राणियोंको हरण करनेवाले कालके पाशमें तुम बँध गये हो, नष्ट होते हुए तुम्हारी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता, जिस प्रकार जलते हुए घरकी उपेक्षा नहीं की जाती ॥ २२ ॥ आगके समान दहकते सोना मढ़े हुए रामके तीखे बाणोंसे मरा तुमको देखना मैं नहीं चाहता ॥ २३ ॥ शूर, बलवान्, अस्त्रनिपुण मनुष्य भी कालवश होकर बालूकी भीतके समान रणमें नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥ बड़ा समझकर हितकी इच्छासे जो मैंने कहा है उसे आप क्षमा करें, अब राक्षसोंके साथ इस नगरीकी तथा अपनी रक्षा करें. आपका कल्याण हो मैं जा रहा हूँ, मेरे न रहनेसे आप सुखी हों ॥ २५ ॥ निशाचर ! हितैषी मैंने आपको रोका, पर मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगती, क्योंकि गतायु मनुष्य मृत्युके समय मित्रोंका कहा नहीं मानते ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ।

रावणसे ऐसा कठोर वचन कहकर उसका छोटा भाई विभीषण, जहाँ लक्ष्मण-सहित रामचन्द्र थे, वहाँ एक मुहूर्तमें ही चला आया ॥ १ ॥ आकाशमें मेरुशिखरके समान विभीषणको जलती हुई विद्युत्के समान पृथिवीपर से वानराधिपोंने देखा ॥ २ ॥ विभीषणके वे चार अनुचर भी बड़े पराक्रमी कवच आयुधोंसे युक्त तथा उत्तम भूषणोंसे भूषित थे ॥ ३ ॥ विभीषण भी मेघ और पर्वतके समान थे, इन्द्रके समान उनका तेज था, उनके आयुध श्रेष्ठ थे, और वे दिव्य आभूषण धारण किये हुए थे ॥ ४ ॥ चार मंत्रियोंके साथ पाँचवें विभीषणको देखकर वानराधिप तथा पराजित न होनेवाले, सुग्रीव बुद्धिमान वानरोंके साथ विचार करने

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु वानरांस्तानुवाच ह । हनुमत्प्रमुखान्सर्वानिदं वचनमुत्तमम् ॥६॥
एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः । राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान्हन्तुं न संशयः ॥७॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः । शालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥८॥
शीघ्रं व्यादिश नो राजन्वधायैषां दुरात्मनाम् । निपतन्ति हता यावद्धरण्यामल्पचेतनाः ॥९॥
तेषां संभाषमाणानामन्योऽयं च विभीषणः । उत्तरं तीरमासाद्य स्वस्थ एव व्यतिष्ठत ॥१०॥
स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान् । सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य स्वस्थ एव विभीषणः॥११॥
रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः । तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥१२॥
तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम् । रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥१३॥
तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्चान्यदर्शयम् । साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥१४॥
स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः । उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥१५॥
सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः । त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥१६॥
निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने । सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥१७॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः । लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥१८॥
प्रविष्टः शत्रुसैन्यं हि प्राप्तः शत्रुरतर्कितः । निहन्यादन्तरं लब्ध्वा उलूको वायसानिव ॥१९॥

लगे ॥ ५ ॥ थोड़ी देर सोचकर वे हनुमान आदि उन सब वानरोंसे यह उत्तम वचन बोले ॥६॥ देखो, सब अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित यह राक्षस चार राक्षसोंके साथ हमलोगोंको मारनेके लिए आरहा है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ वे सब श्रेष्ठ वानर सुग्रीवके वचन सुनकर शालवृक्ष और पर्वतके बड़े-बड़े टुकड़े लेकर बोले ॥८॥ राजन् ! इन पापियोंके वधकी शीघ्र आज्ञा दीजिए, जबतक ये दुर्बल पृथिवीपर न उतरने पावें ॥९॥ वे इस प्रकार परस्पर बातें कर रहे थे, पर उनकी बातोंपर ध्यान न देकर समुद्रके उत्तर तीरपर आकर विभीषण आकाश मेंही ठहर गये ॥ १० ॥ सुग्रीव तथा अन्य वानरोंको देखकर आकाशसे ही महाबुद्धिमान् विभीषण ऊँचे स्वरमें बोले ॥ ११ ॥ रावण नामका पापी जो राक्षसेश्वर है मैं उसीका छोटा भाई विभीषण नामका हूँ ॥ १२ ॥ उसीने जटायुको मारकर जनस्थानसे सीताका हरण किया है । उसीने विवश और दीना सीताको रोक रखा है और राक्षसियोंको उनकी रक्षाके लिए नियुक्त किया है ॥ १३ ॥ मैंने अनेक कारण बतलाकर उससे कहा कि यही अच्छा है कि रामको सीता लौटा दी जाय ॥ १४ ॥ पर कालप्रेरित रावणने मेरी बात न मानी, यद्यपि मैं उसके हितकी बात कह रहा था, जिस प्रकार मरनेवाला औषध नहीं लेता ॥१५॥ रावणने हित कहनेके कारण मुझे कठोर वचन कहे और दासोंके समान उसने मेरा अपमान किया, इसीसे पुत्रों और स्त्रियोंको छोड़कर मैं रामचन्द्रकी शरण आया हूँ ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंको शरण देनेवाले महात्मा रामचन्द्रसे जाकर कहो कि विभीषण आया है ॥ १७ ॥ ये वचन सुनकर सुग्रीव शीघ्रतापूर्वक जाकर लक्ष्मणके सामने रामचन्द्रसे जल्दी-जल्दी बोले ॥ १८ ॥ शत्रुकी सेनामें रहनेवाला एक शत्रु अकस्मात् हमारी सेनामें आगया है, मौका पाकर वह हमलोगोंको, मार डालेगा जिस प्रकार उल्लू कौओंको मार

मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि । वानराणां च भद्रं ते परेषां च परंतपः ॥२०॥
अन्तर्धानगता ह्येते राक्षसाः कामरूपिणः । शूराश्च निकृतिज्ञाश्च तेषां जातु न विश्वसेत् ॥२१॥
प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम् । अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः॥२२॥
अथ वा स्वयमेवैषच्छिद्रमासाद्य बुद्धिमान् । अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित्प्रहरेदपि ॥२३॥
मित्राटविबलं चैव मौलभृत्यबलं तथा । सर्वमेतद्बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ॥२४॥
प्रकृत्या राक्षसो ह्येष भ्राताऽमित्रस्य वै प्रभो । आगतश्च रिपुः साक्षात्कथमस्मिंश्च विश्वसेत् ॥२५॥
रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः । चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥२६॥
रावणेन प्रणीतं हि तमवेहि विभीषणम् । तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥२७॥
राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः । प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥२८॥
वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह । रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥२९॥
एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः । वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥३०॥
सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः । समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान्कपीन् ॥३१॥
यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति । वाक्यं हेतुमदत्यर्थं भवद्भिरपि च श्रुतम् ॥३२॥
सुहृदामर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सदा । समर्थेनोपसंदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥३३॥

डालता है ॥ १९ ॥ वानरोंकी रक्षा और शत्रुओंके नाशके लिए आपको कर्तव्याकर्तव्य-विचार, सेनासंचालन, निश्चित उपायोंको कार्यरूपमें परिणत करने, शत्रुके वृत्तान्तका ज्ञान रखने आदिमें सावधान रहना चाहिए, तभी कल्याण होगा ॥ २० ॥ ये राक्षस इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं, ये अदृश्य होकर चल सकते हैं, ये वीर होते हैं, कपटपूर्वक प्रहार करते हैं, इनका कभी विश्वास न करें ॥ २१ ॥ यह राक्षसेन्द्र रावणका गुप्त दूत हो सकता है और हम लोगोंमें मिलकर भेद कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ अथवा यह बुद्धिमान स्वयं ही अवसर देखकर हम विश्वासियोंपर शायद प्रहार कर दे ॥ २३ ॥ मित्र उदासीन सेना, अधीन राजाओंकी भेजी सेना, तत्काल नौकर रखे हुओंकी सेनाका संग्रह किया जा सकता है, पर शत्रुसेनाका संग्रह करना उचित नहीं ॥ २४ ॥ प्रभो ! यह जातिका राक्षस है, शत्रुका भाई है, यह शत्रु स्वयं आया है इसपर विश्वास कैसे किया जा सकता है ॥ २५ ॥ रावणका छोटा भाई विभीषण चार राक्षसोंके साथ आपकी शरण आया है। मैं समझता हूँ कि रावणने इसे अपना दूत बनाकर भेजा है, उचित काम करनेवालोंमें श्रेष्ठ, मेरी समझसे उसको दण्ड देना ही उचित है ॥ २६–२७ ॥ रावणके कहनेसे बुरी नीयतसे यह आया है, कपटसे अपनेको छिपाकर आपका विश्वासी बनकर आपपर प्रहार करना चाहता है ॥ २८ ॥ यह विभीषण क्रूर रावणका भाई है, इसे कठोर दण्ड देकर साथियोंके साथ मार डालना चाहिए ॥ २९ ॥ वाक्यका अर्थ समझनेवाले सेनापति सुग्रीव शीघ्रतापूर्वक बोलनेमें कुशल रामचन्द्रसे ऐसा कहकर चुप हो गये ॥ ३० ॥ सुग्रीवके ये वचन सुनकर रामचन्द्र पास बैठे हुए हनुमान आदि वानरोंसे बोले ॥ ३१ ॥ वानरराजने रावणके छोटे भाईके सम्बन्धमें जो युक्तिपूर्ण बातें कही हैं, वे आप लोगोंने भी सुनी हैं ॥ ३२ ॥ मित्रोंका कल्याण चाहनेवाले बुद्धिमान और विचार करनेमें समर्थ पुरुषोंको चाहिए कि वे कर्तव्याकर्तव्य सन्देह उत्पन्न होनेपर उपदेश दें ॥ ३३ ॥

इत्येवं परिपृष्टास्ते स्वं स्वं मतमतन्द्रिताः। सोपचारं तदा राममूचुः प्रियचिकीर्षवः ॥३४॥
अज्ञातं नास्ति ते किंचित्त्रिषु लोकेषु राघव। आत्मानं पूजयन्राम पृच्छस्यस्मान्सुहृत्तया ॥३५॥
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो धार्मिको दृढविक्रमः। परीक्ष्यकारी स्मृतिमान्निसृष्टात्मा सुहृत्सु च॥३६॥
तस्मादेकैकशस्तावद्ब्रुवन्तु सचिवास्तव। हेतुतो मतिसम्पन्नाः समर्थाश्च पुनस्तथा ॥३७॥
इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः। विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः ॥३८॥
शत्रोः सकाशात्सम्प्राप्तः सर्वथा तर्क्य एव हि। विश्वासनीयः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः॥३९॥
छादयित्वात्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः। प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान्भवेत् ॥४०॥
अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह। गुणतः संग्रहं कुर्याद्दोषतस्तु विसर्जयेत् ॥४१॥
यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम्। गुणान्वापि बहूञ्ज्ञात्वा संग्रहः क्रियतां नृप ॥४२॥
शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत्। क्षिप्रमस्मिन्नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम् ॥४३॥
प्रणिधाय हि चारेण यथावत्सूक्ष्मबुद्धिना। परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्यायं परिग्रहः ॥४४॥
जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः। वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद्दोषवर्जितम् ॥४५॥
बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद्विभीषणः। अदेशकाले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥४६॥

रामचन्द्रके ऐसा पूछने पर रामका प्रिय चाहनेवाले वे उत्साहित होकर अपना-अपना मत कहने लगे ॥ ३४ ॥ राघव, तीनों लोकोंमें आपको अज्ञात कुछ भी नहीं है, आप अपने मित्र होनेका गौरव हम लोगोंको देनेके लिए ऐसा पूछ रहे हैं ॥ ३५ ॥ आप सत्यव्रत, शूर, धार्मिक, दृढविक्रम, परीक्ष्यकारी, उपकारोंको स्मरण रखनेवाले और मित्रोंपर विश्वास रखनेवाले हैं ॥ ३६ ॥ अतएव बुद्धिमान, विचार प्रकट करनेमें समर्थ मन्त्री एक-एक करके युक्तिपूर्ण अपना-अपना मत प्रकट करें ॥ ३७ ॥ वानरोंके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान अङ्गद रामचन्द्रसे बोले—विभीषण की परीक्षा लेनी चाहिए ॥ ३८ ॥ यह शत्रुके यहाँसे आया है, अतएव इसपर सन्देह होना स्वाभाविक है, सहसा इसपर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए ॥ ३९ ॥ दुष्ट लोग अपनेको छिपाया करते हैं और मौका पाकर प्रहार करते हैं, जिससे बड़ी हानि होती है ॥ ४० ॥ अर्थ-अनर्थका विचारकर भलाई-बुराई समझकर उद्योग करना चाहिए। काम करनेके पहले परिणाम देख लेना चाहिए। गुण दीख पड़े तो संग्रह करना चाहिए, दोष मालूम होने पर त्याग करना चाहिए ॥ ४१ ॥ यदि उसमें बड़े दोष हों तो उसका निःशङ्क होकर त्याग कर दीजिए, राजन्! यदि बहुतसे गुण मालूम पड़े तो उसका संग्रह कर लीजिए ॥ ४२ ॥ शरभ नामक वानर सोच-विचारकर अर्थयुक्त वचन बोला—नरश्रेष्ठ! शीघ्रही विभीषणके पीछे हमलोगों को गुप्त दूत नियत कर देना चाहिए ॥४३॥ गुप्त दूत भेजकर तथा सूक्ष्म-बुद्धि उस दूतके परीक्षा कर लेनेपर, यदि नीतियुक्त मालूम पड़े, तो आप विभीषणको आश्रय दे दीजिएगा ॥ ४४ ॥ शास्त्र-दृष्टिसे विचार करके बुद्धिमान जाम्बवान दोष-रहित तथा गुणयुक्त वचन बोले ॥४५॥ पापी रावणसे हम लोगोंका इस समय वैर है और यह वहींसे आया है। इसके आनेका न तो यह समय है और न स्थान है, लङ्कापर चढ़ाई हो रही है, इसे इस समय वहीं रहना चाहिए। इसके बड़े भाईपर सङ्कट आया है, इसे उसके पास रक्षाके लिए रहना चाहिए पर यह यहाँ आया है, अतएव इसपर

ततो मैन्दस्तु सम्प्रेक्ष्य नयापनयकोविदः । वाक्यं वचनसम्पन्नो बभाषे हेतुमत्तरम् ॥४७॥
अनुजो नाम तस्यैष रावणस्य विभीषणः । पृच्छयतां मधुरेणायं शनैर्नरपतीश्वर ॥४८॥
भावमस्य तु विज्ञाय तत्त्वतस्तं करिष्यसि । यदि दुष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ ॥४९॥
अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान्सचिवोत्तमः । उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु ॥५०॥
न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् । अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥५१॥
न वादान्नापि संघर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः । वक्ष्यामि वचनं राजन्यथार्थं रामगौरवात् ॥५२॥
अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव । तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया नह्युपपद्यते ॥५३॥
ऋते नियोगात्सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते । सहसा विनियोगोऽपि दोषवान्प्रतिभाति मे ॥५४॥
चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव । अर्थस्यासंभवात्तत्र कारणं नोपपद्यते ॥५५॥
अदेशकाले सम्प्राप्त इत्ययं यद्विभीषणः । विवक्षा तत्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथामति ॥५६॥
एष देशश्च कालश्च भवतीह यथा तथा । पुरुषात्पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि ॥५७॥
दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि । युक्तमागमनं ह्यत्र सदृशं तस्य बुद्धितः ॥५८॥
अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन्पृच्छ्यतामिति । यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥५९॥

सन्देह तो करना ही चाहिए ॥ ४६ ॥ नीति और अनीति समझनेवाला तथा उत्तम वक्ता मैन्द सोचकर उत्तम युक्तिपूर्ण वचन बोला ॥ ४७ ॥ यह विभीषण उसी रावणका छोटा भाई है अतएव मीठे वचनोंके द्वारा इससे रावणके वचन पूछने चाहिए ॥ ४८ ॥ इसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझकर जो उचित हो वही आप कीजिएगा। बुद्धिपूर्वक आप इसका विचार कीजियेगा कि यह दुष्ट है कि नहीं ॥ ४९ ॥ शास्त्रोंके ज्ञानका संस्कार रखनेवाले हनुमान संक्षिप्त कोमल मधुर तथा अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ५० ॥ आप बुद्धिमान हैं, विचार करनेमें निपुण हैं, बोलनेमें दक्ष हैं, आपको कौन उपदेश दे सकता है, बृहस्पति भी यदि बोलें तो वे आप से अच्छा नहीं बोल सकते अर्थात् जो मैं कह रहा हूँ वह आपको उपदेश देनेकी इच्छासे नहीं कहता ॥ ५१ ॥ अपनी तार्किक शक्ति प्रकाशित करनेके लिए, दूसरोंसे अपनी श्रेष्ठता बतलानेके लिए, अपनी बुद्धिमत्ताके अहङ्कार प्रकाशनके लिए अथवा बोलनेका शौक पूरा करनेके लिए, मैं नहीं बोल रहा हूँ; किन्तु रामचन्द्रके आदरके लिए जो समझता हूँ वह बोलता हूँ ॥ ५२ ॥ अर्थानर्थके निर्णयकी जो बात आपके सचिवोंने कही है उसमें मैं दोष देख रहा हूँ कि इसका पता लगानेका कोई उपाय नहीं है ॥ ५३ ॥ बिना किसी कार्यमें नियोगके उसकी सामर्थ्यका पता नहीं लग सकता, पर सहसा किसी काममें नियोग कर देना भी उचित नहीं ॥ ५४ ॥ गुप्तचर नियुक्त करनेकी जो बात सचिवोंने कही है, पर मेरी समझसे उसकी कोई आवश्यकताही नहीं है। दूत भेजा जाता है, कहीं दूर छिपी बात पता लगानेके लिए। यहाँ तो ऐसी कोई बात नहीं है ॥५५॥ यह असमयमें आया है और वहाँ आया है जहाँ जाना न चाहिए,—यह जो कहा गया है इसके सम्बन्धमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरा यह कहना है आप सुनें ॥ ५६ ॥ रावणकी अपेक्षा आपको उत्तम पुरुष समझकर तथा दोनोंके गुण-दोषोंकी परीक्षा करके देशकालके अनुसार जो करना था वही उसने किया ॥ ५७ ॥ रावणकी दुष्टता तथा आपका पराक्रम देखकर अपनी बुद्धिके द्वारा विचार करके वह आया है, और यह उसीकी बुद्धिके अनुकूल है ॥ ५८ ॥ अज्ञात

पृच्छ्यमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान्वचः । तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम् ॥६०॥
अशक्यं सहसा राजन्भावो बोद्धुं परस्य वै । अन्तरेण स्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम् ॥६१॥
नतस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता । प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥६२॥
अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति । न चास्य दुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः॥६३॥
आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् । बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥६४॥
देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर । सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम् ॥६५॥
उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम् । वालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम् ॥६६॥
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः । एतावत्तु पुरस्कृत्य विद्यते तस्य संग्रहः ॥६७॥
यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्यार्जवं प्रति । प्रमाणं त्वं हि शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह । प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम् ॥१॥

मनुष्योंके द्वारा उससे पुछवानेकी जो बात कही गयी है, उसके सम्बन्धमें मेरा एक बहुतही परीक्षित मत है ॥ ५९ ॥ कोई बुद्धिमान् सहसा पूछनेसे शङ्कित हो सकता है, अतएव वह कुछ उत्तर भी न देगा । यदि पूछनेवालेका स्वरूप उसे मालूम हो जाय, यदि वह उसे मित्रका भेजा समझ ले, तो भी पूछनेसे वह दुःखी ही होगा, इस समय पूछकर पता लगानेका उद्देश्य नष्ट हो जायगा ॥६०॥ राजन् ! दूसरेका अभिप्राय सहसा समझ लेना सम्भव नहीं है । हाँ, दीर्घ कालतक परीक्षा करके व्यवहारमें स्वरभेद की निपुणतापूर्वक देखनेसे इसका पता लग सकता है ॥ ६१ ॥ जैसा यह बोल रहा है उससे इसके दुष्टभाव होनेका पता नहीं लगता । इसका मुख भी प्रसन्न है, इससे मुझे इसके विषयमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ मनमें कपट रखनेवाला, निःशङ्क और प्रफुल्लमुख होकर, पास नहीं आसकता, इसके वचन भी दूषित नहीं हैं, अतएव इसके सम्बन्ध में मुझे कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ भीतरके भावके समान ही मनुष्य की आकृति हो जाती है, आकार छिपाना भी कोई चाहे तो वह छिपा नहीं सकता । आकार ही मनुष्यके भीतरके छिपे भाव प्रकाशित कर देता है ॥ ६४ ॥ अतएव विभीषणका यहाँ आना देश-कालके विरुद्ध नहीं कहा जा सकता । देश-कालके अनुरूप कार्य यदि विधिपूर्वक किया जाय तो शीघ्रही सफल हो जाता है ॥ ६५ ॥ आपके उद्योग को देखकर, रावणके दुर्व्यवहारोंको देखकर, वालिका मारा जाना और सुग्रीवका अभिषेक सुनकर, राज्यपानेकी कामनासे समझ-बूझकर ही वह आपके पास आया है । इन बातोंसे तो उसे आश्रय देना ही उचित जान पड़ता है ॥ ६६—६७ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार राक्षसके निर्दोष होनेके सम्बन्धमें मैंने कहा, आप बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, मेरी बातें सुन लेनेपर, आगे आप जो उचित समझें, वह करें ॥ ६८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अपने मनकी बात वायुपुत्र हनुमानके मुँहसे सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस

ममापि च विवक्षास्ति काचित्प्रतिविभीषणम् । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥२॥
मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन । दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥३॥
सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च । ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥४॥
स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः । ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥५॥
को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् । वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु ॥६॥
ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् । इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥७॥
अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च । न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥८॥
अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यथात्र प्रतिभाति मा । प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सर्वराजसु ॥९॥
अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्यश्च कीर्तिताः । व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥१०॥
अपापास्तत्कुलीनाश्च मानयन्ति स्वकान्हितान् । एष प्रायो नरेन्द्राणां शङ्कनीयस्तु शोभनः ॥११॥
यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च । तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥१२॥
न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः । पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः ॥१३॥
अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति सङ्गताः । प्रणादश्च महानेषोऽन्योन्यस्य भयमागतम् ॥
इति भेदं गमिष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः ॥ ॥१४॥

प्रकार उत्तर दिया। विभीषणके विषयमें मुझे भी कुछ कहना है, मैं चाहता हूँ कि मेरा कल्याण चाहनेवाले आप सबलोग भी उसे सुनें ॥ २ ॥ मित्रभावसे आये विभीषणका त्याग मैं कभी नहीं कर सकता। सम्भव है, उसमें दोष हो, पर दोषी शरणागतका भी ग्रहण करना सज्जनोंके लिए निन्दित नहीं है ॥ ३ ॥ रामचन्द्रकी कही बातोंको कहकर और विचार करके वानरश्रेष्ठ सुग्रीव हितकर वचन बोले ॥ ४ ॥ यह दुष्ट है या दुष्ट नहीं है, इसका विचार नहीं करना है, किन्तु यह राक्षस है और ऐसे दुःखके समयमें इसने अपने भाईका त्याग किया है, फिर कौन ऐसा हो सकता है जिसका त्याग यह न करे! सुग्रीवके वचन सुनकर तथा सब वानरों को देखकर मुस्कराते हुए सत्यपराक्रम रामचन्द्र पवित्रात्मा लक्ष्मणसे बोले ॥ ५—६—७ ॥ शास्त्रोंका विना अध्ययन किये और वृद्धोंकी विना सेवा किये ऐसी बात कोई नहीं कह सकता, जैसी बात वानरराजने कही है ॥ ८ ॥ भाईके त्यागकी जो बात आप कह रहे हैं वह सब राजाओंमें प्रसिद्ध है, लोकप्रसिद्ध भी है, मैं जैसा समझ रहा हूँ इसका कारण बहुत ही सूक्ष्म है ॥ ९ ॥ कुलवाले तथा समीप रहनेवाले समय-विशेषमें शत्रु हो जाते हैं, अतएव दुख पड़नेपर शत्रुता साधनेके लिए प्रहार करते हैं, विभीषण भी उसी कुलवालेके भयसे यहाँ आया है ॥१०॥ बुराई न चाहनेवाले ज्ञातिको और लोग अपना हितकारी समझते हैं, पर राजालोग उसी ज्ञातिपर, भलेही वह हितकारी हो, सन्देह करते हैं अर्थात् संभव है रावण विभीषणपर सन्देह करता हो, जिससे यह हमारे पास आया हो ॥११॥ शत्रुपक्षके ग्रहण करनेका जो दोष तुमने बतलाया है, उसके सम्बन्धमें शास्त्रीय मत मैं कहता हूँ, सुनो ॥१२॥ विभीषण राज्य चाहता है, हमलोग न तो उसके ज्ञातिके हैं और न उसके समीप रहनेवाले हैं अतएव हम लोगोंसे उसकी स्वाभाविक शत्रुता नहीं हो सकती। राक्षस बुद्धिहीन होते हैं विना कारण भी वे नुकसान पहुँचाते हैं यह ठीक है, पर उनमें भले भी तो होते हैं; विभीषण विवेकी है, इस कारण इसका ग्रहण करना चाहिये ॥ १३ ॥ हमारे साथ सम्मिलित होनेपर

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः। मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ॥१५॥
एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः। उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥
रावणेन प्रणिहितं तमवेहि निशाचरम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥१७॥
राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः। प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते विश्वस्ते मयि वाऽनघ ॥१८॥
लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह। रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥१९॥
एवमुक्त्वा रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो वाहिनीपतिः। वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥२०॥
स सुग्रीवस्य तद्वाक्यं रामः श्रुत्वा विमृश्य च। ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ॥२१॥
स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः। सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ॥२२॥
पिशाचान्दानवान्यक्षान्पृथिव्यां चैव राक्षसान्। अङ्गुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥२३॥
श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः। अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ॥२४॥
स हि तं प्रतिजग्राह भार्याहर्तारमागतम्। कपोतो वानरश्रेष्ठ किंपुनर्मद्विधो जनः ॥२५॥
ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा। शृणु गाथा पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना ॥२६॥
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्। न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥२७॥

विभीषण निश्चिन्त हो जायगा। वह सुखी हो जायगा। विभीषण की यह चिल्लाहट, राक्षसोंका परस्पर भयभीत होना बतला रही है, अतएव इनमें विरोध होना निश्चित है, विभीषण इसी विरोधके कारण आया है ॥ १४ ॥ मित्र, सभी भाई भरतके समान नहीं होते, पिताके सभी पुत्र हमारे समान नहीं होते और न सभी मित्र आपके समान होते हैं १५ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान सुग्रीव लक्ष्मणके साथ प्रणत होकर और उठकर यह वचन बोले ॥ १६ ॥ इस राक्षसको आप रावणका भेजा दूत समझें। हे समर्थ, मैं तो इसे दण्ड देना उचित समझता हूँ ॥ १७ ॥ राक्षस कुटिल बुद्धिके होते हैं, रावणकी आज्ञासे हम लोगोंका समाचार जाननेके लिए यह आया है। सन्देह दूर होनेपर विश्वासी बनकर यह आपपर तथा मुझपर प्रहार करेगा ॥ १८ ॥ महाबाहो ! अथवा यह लक्ष्मणपर प्रहार करेगा, अतएव सचिवोंके साथही इसका भी वध करना चाहिए, यह विभीषण क्रूर राक्षस रावणका भाई है ॥ १९ ॥ वाक्यका अर्थ समझनेवाले रामचन्द्रसे बोलनेमें निपुण सेनापति सुग्रीव इस प्रकार कहकर चुप हो गये ॥ २० ॥ रामचन्द्रने सुग्रीवके उस वचनको सुना, उसपर विचार किया, अनन्तर वे वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे सुन्दर वचन बोले अर्थात् विचारपूर्ण वचन बोले ॥ २१ ॥ यह राक्षस भला हो या बुरा, पर क्या यह मेरा थोड़ा भी अनिष्ट कर सकता है, किसी प्रकार भी क्या यह मेरी बुराई कर सकता है ? ॥२२॥ वानरश्रेष्ठ, यदि मैं चाहूँ तो पृथिवीके पिशाचों दानवों यक्षों और राक्षसोंको अँगुलीके इशारेसे मार सकता हूँ ॥ २३ ॥ सुना जाता है कि एक कबूतरकी शरण उसका शत्रु आया। उसने उसका विधिपूर्वक आदर किया और अपना मांस उसे भोजनके लिए दिया ॥२४॥ उस कबूतरने अपनी स्त्रीके हरण करनेवाले इस शत्रुको आदरके साथ लिया। फिर मेरे समान आदमीके लिए तो कहना ही क्या ? अर्थात् जब पक्षीने शरणागत-पालनका धर्म इस प्रकार निभाया, तो हम मनुष्योंको तो और दृढ़तासे उसका पालन करना चाहिए ॥ २५ ॥ कण्व ऋषिके पुत्र सत्यवादी परमर्षि कण्डुने पहले एक धार्मिक कथा कही है, तुम सुनो ॥ २६ ॥ परंत। दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर शरण चाहते हुए

आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः । अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥२८॥
स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति । स्वया शक्त्या यथान्यायं तत्पापं लोकगर्हितम् ॥२९॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः । आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥३०॥
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे । अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥३१॥
करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोवचनमुत्तमम् । धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात्तु फलोदये ॥३२॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥३३॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया । विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥३४॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः ॥३५॥
किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे । यत्त्वमार्य प्रभाषेथाः सत्त्ववान्सत्पथे स्थितः ॥३६॥
मम चाप्यन्तरात्माऽयं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् । अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥३७॥
तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव । विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥३८॥

ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य तद्धरीश्वरेणाभिहितं नरेश्वरः ।
विभीषणेनाशु जगाम सङ्गमं पतत्त्रिराजेन यथा पुरन्दरः ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

शत्रुको भी दयाके लिए नहीं मारना चाहिए ॥ २७ ॥ आर्त हो अथवा अहङ्कारी यदि शत्रु अपने शत्रुकी शरण आवे, तो श्रेष्ठ मनुष्योंको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥ २८ ॥ यदि वह मनुष्य भयसे मोहसे अथवा किसी प्रकारकी इच्छासे उस शत्रुकी रक्षा अपनी शक्तिसे नहीं करता, तो उसको पाप होता है और वह पाप लोकमें निन्दित है ॥ २९ ॥ शरणमें आया हुआ मनुष्य यदि रक्षकके सामने ही नाश हो जाय, तो वह अरक्षित शरणागत उसका समस्त पुण्य लेकर चला जाता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार शरणमें आये हुए की रक्षा न करनेमें बड़े दोष हैं, उससे अकीर्ति होती है, परलोक नष्ट होता है और बल-वीर्यका नाश होता है ॥३१॥ मैं कण्डुके उत्तम वचनका पालन करूँगा, जिसके फलकाल में धर्म यश तथा परलोकमें सुख होता है ॥३ ॥ जो शरणमें आकर एक बार भी "मैं तुम्हारा हूँ" कह देता है उन समस्त प्राणियोंको मैं आश्रय देता हूँ। यह मेरा व्रत है, मेरा नियम है ॥ ३३ ॥ वानरश्रेष्ठ, उसको तुम ले आओ, मैंने उसे आश्रय दिया। सुग्रीव, वह विभीषण हो या स्वयं रावण ही, मैंने उसे आश्रय दिया ॥३४॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव मैत्रीभावसे पूर्ण होकर उनसे बोले ॥ ३५ ॥ हे धर्मज्ञराज-शिरोमणि आर्य! आप जो ऐसा कह रहे हैं इसमें आश्चर्य क्या है, आप शक्तिमान हैं और सन्मार्गपर स्थित हैं ॥३६॥ मेरा मन भी विभीषणको शुद्ध समझता है, लक्षणोंसे तथा इसके चेहरेके भावसे यह शुद्ध मालूम पड़ता है, यह परीक्षित है ॥ ३७ ॥ रामचन्द्र! अतएव शीघ्र ही विभीषण हमलोगोंके साथ समान होकर रहे और बुद्धिमान विभीषण हमलोगोंका मित्र भी बने ॥ ३८ ॥ सुग्रीवके वचन सुनकर रामचन्द्र सुग्रीवको साथ लेकर विभीषणसे शीघ्र ही मिले, जिस प्रकार गरुड़से इन्द्र मिले थे ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १६

राघवेणाभये दत्ते संनतो रावणानुजः। विभीषणो महाप्राज्ञो भूमिं समवलोकयत् ॥१॥
खात्पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह। स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ॥२॥
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः। अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः ॥३॥
धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम्। अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥४॥
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः। परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥५॥
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥६॥
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव। आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥७॥
एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा। रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥८॥
अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम्। राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥९॥
रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान्। कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥१०॥
राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः। कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥११॥
बद्धगोधाङ्गुलित्रश्च अवध्यकवचो युधि। धनुरादाय यस्तिष्ठन्नदृश्यो भवतीन्द्रजित् ॥१२॥
संग्रामे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम्। अन्तर्धानगतः श्रीमानिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥१३॥

रामचन्द्रके आश्रय देनेपर विनयी रावणानुज बुद्धिमान विभीषण पृथिवीकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥ प्रसन्न होकर वह अपने अनुचरोंके साथ आकाशसे पृथिवी पर आया, धर्मात्मा वह विभीषण रामचन्द्रके सामने उतरा ॥ २ ॥ चारों राक्षसोंके साथ वह रामचन्द्रके चरणोंपर गिर पड़ा और वह विभीषण रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला। उसके वे वचन धर्मयुक्त, सामयिक और प्रसन्न करनेवाले थे। मैं रावणका छोटा भाई हूँ, उसने मेरा अपमान किया है ॥ ३-४ ॥ आप सब प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, मैं आपकी शरण आया हूँ। लङ्का मैंने छोड़ दी, मित्रों और धनको छोड़ दिया ॥ ५ ॥ अब मेरा राज्य जीवन और सुख आपके ही अधीन हैं। विभीषणके ये वचन सुनकर रामचन्द्र बोले। प्रेमपूर्ण आँखोंसे उसे देखते हुए रामचन्द्रने वचनोंसे उसे धैर्य दिया, पुनः वे बोले—तुम राक्षसोंके बलाबल यथार्थ मुझसे कहो, उनका कितना बल है, कौनसी कमजोरी है, यह बतलाओ ॥६—७॥ पुण्यात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर वह राक्षस रावणके सब प्रकारके बलका वर्णन करने लगा ॥ ८ ॥ राजपुत्र! ब्रह्माके वरके प्रभावसे रावण, गन्धर्व नाग पक्षी तथा अन्य समस्त प्राणियोंके लिए, अवध्य है। उसे कोई भी मार नहीं सकता ॥ ९ ॥ बड़ा भाई कुम्भकर्ण है, वह बड़ा पराक्रमी और तेजस्वी है। युद्धमें इन्द्रके समान है ॥ १० ॥ रावणका सेनापति प्रहस्त है, शायद आपने उसे सुना हो, जिसने कैलासके युद्धमें मणिभद्रको पराजित किया था ॥ ११ ॥ धनुषकी प्रत्यंचाके आघातसे अँगुलियोंकी रक्षा करनेके लिए जो गोधा (एक प्रकार का सामरिक उपकरण) और अभेद्य कवच धारण करनेवाला इन्द्रजित है वह युद्धमें अदृश्य हो जाता है अर्थात् अदृश्य होकर युद्ध करता है ॥ १२ ॥ रामचन्द्र, उचित तरहसे मोरचाबन्द युद्ध में हवनके द्वारा अग्निको प्रसन्न करके, इन्द्रजित अदृ-

महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः । अनीकपास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥१४॥
दशकोटिसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् । मांसशोणितभक्ष्याणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥१५॥
स तैस्तु सहितो राजा लोकपालानयोधयत् । सह देवैस्तु ते भग्ना रावणेन दुरात्मना ॥१६॥
विभीषणस्य तु वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः । अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥१७॥
यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण । आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥१८॥
अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम् । राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे ॥१९॥
रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः । पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥२०॥
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम् । अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥२१॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । शिरसा वन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेव प्रचक्रमे ॥२२॥
राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे । करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥२३॥
इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् । अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय ॥२४॥
तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् । राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥२५॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् । मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥२६॥
तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवंगमाः । प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥२७॥

श्य हो जाता है और शत्रुको मारता है ॥ १३ ॥ उस इन्द्रजितके अधीन सेनापति महोदर, महापार्श्व और अकम्पन हैं, ये युद्धमें लोकपालोंके समान हैं ॥ १४ ॥ इच्छानुसार रूप बनानेवाले और मांस, रक्त खानेवाले दस करोड़ राक्षस लङ्कामें रहते हैं ॥१५॥ राजा रावणने उन राक्षसोंके साथ लोकपालोंके साथ युद्ध किया, दुरात्मा रावणने देवताओंके साथ लोकपालोंको भी युद्धसे भगा दिया ॥१६॥ रघुश्रेष्ठ रामचन्द्र विभीषणके वचन सुनकर तथा स्वयं मनसे उनपर विचारकर बोले ॥ १७ ॥ विभीषण ! रावणकी वीरताकी जो बातें तुमने बतलायी हैं उन्हें मैं ठीक-ठीक समझता हूँ ॥ १८ ॥ मैं प्रहस्त और पुत्रके साथ रावणको मारकर तुमको राजा बनाऊँगा, सुनो यह सत्य है ॥ १९ ॥ रसातल या पाताल अथवा ब्रह्माके पास ही रावण क्यों न चला जाय, जीता हुआ वह मुझसे बच नहीं सकता ॥२०॥ युद्धमें पुत्र भृत्य और बान्धवोंके साथ रावणको विना मारे मैं अयोध्यामें प्रवेश नहीं करूँगा, यह बात मैं अपने तीनों भाइयोंकी शपथ करके कहता हूँ ॥ २१ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रके ये वचन सुनकर और मस्तकसे उन्हें प्रणाम करके धर्मात्मा विभीषण इस प्रकार कहने लगा ॥ २२ ॥ राक्षसोंके वध और लङ्काके जीतनेमें मैं आपकी जीवन-पर्यन्त सहायता करूँगा और इसके लिए मैं रावणकी सेनामें भी प्रवेश करूँगा ॥ २३ ॥ ऐसे वचन कहते हुए विभीषणका आलिङ्गन करके प्रसन्नतापूर्वक रामने लक्ष्मणसे कहा कि समुद्रसे जल लाओ और उस जलसे बुद्धिमान् विभीषणको शीघ्र ही राक्षसोंके राजाके रूपमें अभिषेक करो, क्योंकि मैं इनपर प्रसन्न हूँ। मतलब यह कि मेरी प्रसन्नताके फल देनेवाले तुम हो ॥२४—२५॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे प्रधान-प्रधान वानरोंके सामने लक्ष्मणने विभीषणका राज्याभिषेक किया ॥ २६ ॥ रामचन्द्रकी शीघ्र ही विभीषणपर ऐसी प्रसन्नता देखकर, वानर हर्षध्वनि करने लगे और महात्मा रामचन्द्रको साधुवाद देने लगे ॥ २७ ॥ हनु-

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम्। कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम्।
सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम्॥ ॥२८॥
उपायैरभिगच्छाम यथा नदनदीपतिम्। तराम तरसा सर्वे ससैन्या वरुणालयम् ॥२९॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषणः। समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥३०॥
खानितः सगरेणायमप्रमेयो महोदधिः। कर्तुमर्हति रामस्य ज्ञातेः कार्यं महोदधिः ॥३१॥
एवं विभीषणेनोक्तं राक्षसेन विपश्चिता। आजगामाथ सुग्रीवो यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥३२॥
ततश्चाख्यातुमारेभे विभीषणवचः शुभम्। सुग्रीवो विपुलग्रीवः सागरस्योपवेशनम् ॥३३॥
प्रकृत्या धर्मशीलस्य रामस्यास्याप्यरोचत। सलक्ष्मणं महातेजाः सुग्रीवं च हरीश्वरम् ॥३४॥
सत्क्रियार्थं क्रियादक्षं स्मितपूर्वमभाषत। विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ॥३५॥
सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान्मन्त्रविचक्षणः। उभाभ्यां संप्रधार्यार्थं रोचते यत्तदुच्यताम् ॥३६॥
एवमुक्तौ ततो वीरावुभौ सुग्रीवलक्ष्मणौ। समुदाचारसंयुक्तमिदं वचनमूचतुः ॥३७॥
किमर्थं नौ नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव। विभीषणेन यत्तूक्तमस्मिन्काले सुखावहम् ॥३८॥
अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन्वरुणालये। लङ्का नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥३९॥
विभीषणस्य शूरस्य यथार्थं क्रियतां वचः। अलं कालात्ययं कृत्वा सागराय नियुज्यताम्॥
यथा सैन्येन गच्छाम पुरीं रावणपालिताम्॥ ॥४०॥

मान और सुग्रीवने विभीषणसे पूछा कि वली वानरोंकी सेनाके साथ हम लोग अक्षोभ्य समुद्र कैसे पार कर सकेंगे ?॥ २८ ॥ वे कौनसे उपाय हैं जिनसे हमलोग समुद्रके पास मार्ग माँगनेके लिए जायँगे और शीघ्रतापूर्वक सेनाके साथ उसका पार कर सकेंगे ? ॥ २९ ॥ ऐसा कहनेपर धर्मात्मा विभीषणने उत्तर दिया कि राजा रामचन्द्रको समुद्रकी शरणमें जाना चाहिये ॥ ३० ॥ यह विशाल समुद्र राजा सगरका खुदवाया हुआ है। रामचन्द्र समुद्रके ज्ञाति हैं, वह इनका काम करेगा ॥ ३१ ॥ विद्वान् राक्षस विभीषणके ऐसा कहनेपर, सुग्रीव जहाँ राम और लक्ष्मण थे वहाँ आये ॥ ३२ ॥ लम्बी गर्दनवाले सुग्रीव विभीषणके हितकारी वचन कहने लगे अर्थात् समुद्रकी शरण जानेवाली विभीषणकी बात उन्होंने कही ॥ ३३ ॥ स्वभावतः धर्मशील रामचन्द्रको भी यह बात अच्छी लगी। उन्होंने कार्यदक्ष लक्ष्मण और वानराधीश सुग्रीवसे उनका सम्मान करनेके लिए हँसकर कहा—लक्ष्मण! सुग्रीवकी सलाह मुझे पसन्द आती है ॥ ३४—३५ ॥ लक्ष्मण, तुम और सुग्रीव दोनों ही पण्डित हो, परामर्श देनेमें निपुण हो, अतएव तुम दोनों विचार करके जो अच्छा मालूम हो वह कहो ॥ ३६ ॥ वीर सुग्रीव और लक्ष्मण दोनों रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर शिष्टाचारयुक्त वचन बोले ॥ ३७ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र, इस समय विभीषणने जो सुखदायक वचन कहा है वह किसलिए हम लोगोंको अच्छा न लगेगा ॥ ३८ ॥ इस भयानक वरुणके निवासस्थान समुद्रमें विना पुल बाँधे लङ्का नहीं पायी जा सकती है। इन्द्रसहित देवताओंके द्वारा पाना भी उसका सम्भव नहीं ॥ ३९ ॥ वीर विभीषणके उचित वचनके अनुसार आप कार्य करें, विलम्ब करना व्यर्थ है। आप समुद्रसे मार्ग की प्रार्थना करें, जिससे रावणपालित नगरीमें सेनाके साथ हमलोग जा सकें ॥ ४० ॥

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः । संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥



विंशः सर्गः २०

ततो निविष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम् । ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान् ॥१॥
चारो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः । तां दृष्ट्वा सर्वतोऽव्यग्रां प्रतिगम्य स राक्षसः ॥२॥
आविश्य लङ्कां वेगेन राजानमिदमब्रवीत् । एष वै वानरर्क्षौघो लङ्कां समभिवर्तते ॥३॥
अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः । पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४॥
उत्तमौ रूपसम्पन्नौ सीतायाः पदमागतौ । एतौ सागरमासाद्य संनिविष्टौ महाद्युते ॥५॥
बलं चाकाशमावृत्य सर्वतो दशयोजनम् । तत्त्वभूतं महाराज क्षिप्रं वेदितुमर्हसि ॥६॥
तव दूता महाराज क्षिप्रमर्हन्ति वेदितुम् । उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदो वात्र प्रयुज्यताम् ॥७॥
शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । उवाच सहसा व्यग्रः सम्प्रधार्यार्थमात्मनः ॥
शुकं साधु तदा रक्षो वाक्यमर्थविदां वरम् ॥ ॥८॥
सुग्रीवं ब्रूहि गत्वाशु राजानं वचनान्मम । यथासंदेशमक्लीबं श्लक्ष्णया परया गिरा ॥९॥

उन दोनोंके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र समुद्रके तीर पर जाकर बैठ गए, जहाँ कुशासन बिछा हुआ था, वेदीपर दीप्तिमान् हुताशनके समान रामचन्द्र उस समय मालूम पड़ने लगे ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥१९॥



सुग्रीवके द्वारा रक्षित सेनाको समुद्रके तीरपर स्थित वीर्यवान् शार्दूल नामक राक्षसने आकर देखा ॥ १ ॥ यह दुरात्मा राक्षसराज रावणका गुप्त दूत था। उस सजी हुई सेनाको देखकर वह राक्षस लौट गया ॥२॥ शीघ्र लङ्का पहुँचकर उसने राजा रावणसे कहा कि वानरों और भालुओंका यह समूह लङ्का की ओर आ रहा है ॥ ३ ॥ यह प्रवेश करनेके योग्य तथा अनगिणत समूह दूसरे समुद्रके समान मालूम होता है, ये दोनों दशरथके पुत्र हैं, राम और लक्ष्मण दोनों भाई हैं, ॥ ४ ॥ ये श्रेष्ठ सुन्दर हैं और सीताके उद्धारके लिए आये हैं, ये दोनों समुद्र तीरपर आकर ठहर गये हैं ॥ ५ ॥ इनकी सेना दस योजन तक मैदानमें फैली हुई है, यह यथार्थ बात है, महाराज! आप इसको अच्छी तरह समझ लें ॥ ६ ॥ महाराज! आपके दूत शीघ्र ही इसका पता लगावें। आप उचित समझें, सीताको लौटा दें, या साम अथवा भेदका प्रयोग करें ॥ ७ ॥ शार्दूलके वचन सुनकर राक्षसेश्वर रावण घबड़ा गया और अपना कर्तव्य निश्चित कर शीघ्र ही वह अभिप्राय समझनेवाले शुक नामक राक्षससे बोला ॥ ८ ॥ तुम शीघ्र ही जाकर मेरी ओरसे राजा सुग्रीवसे कहो, जैसा मैं कहूँ वैसे ही तुम जाकर कहो, दबंगईके साथ, पर कोमल और सुनने योग्य वाणीसे

त्वं वै महाराजकुलप्रसूतो महाबलश्चर्क्षरजः सुतश्च ।
न कश्चनार्थस्तव नास्त्यनर्थस्तथापि मे भ्रातृसमो हरीश ॥१०॥
अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः । किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम् ॥११॥
नहीयं हरिभिर्लङ्का प्राप्तुं शक्या कथंचन । देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नरवानरैः ॥१२॥
स तदा राक्षसेन्द्रेण सन्दिष्टो रजनीचरः । शुको विहङ्गमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥१३॥
स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम् । संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥१४॥
सर्वमुक्तं यथादिष्टं रावणेन दुरात्मना । तत्प्रापयन्तं वचनं तूर्णमाप्लुत्य वानराः ॥१५॥
प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं लोप्तुं हन्तुं च मुष्टिभिः । सर्वैः प्लवंगैः प्रसभं निगृहीतो निशाचरः ॥१६॥
गगनाद्भूतले चाशु प्रतिगृह्यावतारितः । वानरैः पीड्यमानस्तु शुको वचनमब्रवीत् ॥१७॥
न दूतान्घ्नन्ति काकुत्स्थ वार्यन्तां साधु वानराः । यस्तु हित्वा मतं भर्तुः स्वमतं सम्प्रधारयेत् ॥
अनुक्तवादी दूतः सन्स दूतो वधमर्हति ॥१८॥
शुकस्य वचनं रामः श्रुत्वा तु परिदेवितम् । उवाच मावधिष्टेति घ्नतः शाखामृगर्षभान् ॥१९॥
स च पत्रलघुर्भूत्वा हरिभिर्दर्शितेऽभये । अन्तरिक्षे स्थितो भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥२०॥
सुग्रीव सत्त्वसम्पन्न महाबलपराक्रम । किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः ॥२१॥
स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा प्लवङ्गमानामृषभो महाबलः ।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य चारं शुकं शुद्धमदीनसत्त्वः ॥२२॥

कहो ॥९॥ आप राजकुलमें उत्पन्न हुए हैं, ऋक्षराजके पुत्र हैं और महाबली हैं, आपका हमसे न कोई मतलब सिद्ध होनेवाला है और न कोई बुराई की ही सम्भावना है। फिर भी आप मेरे भाईके समान हैं, इसलिए कि हम दोनों राजकुलके हैं ॥ १० ॥ बुद्धिमान् राजपुत्रकी स्त्रीका जो मैंने हरण किया, सुग्रीव ! उससे आपका क्या आना जाना है, आप किष्किन्धा लौट जाँय ॥ ११ ॥ वानर किसी प्रकार भी इस लङ्कामें नहीं पहुँच सकते। गन्धर्वों और देवोंके लिए भी यहाँ आना सम्भव नहीं, फिर नरवानरोंकी तो क्या बात ? ॥ १२ ॥ राक्षसेन्द्र का सन्देश लेकर शुक पक्षी होकर शीघ्र ही आकाशमें उड़ा ॥ १३ ॥ सागरके उपर ही उपर बहुत दूर जाकर आकाशसे ही सुग्रीव को लक्ष्य करके यह वचन बोला ॥ १४ ॥ दुरात्मा रावणने जैसा सन्देश कहा था वह सब उसने कहा, सन्देश कहते हुए उस राक्षसको शीघ्रही कूदकर वानरोंने पकड़ लिया, कोई उसके पंख उखाड़ने लगे और कोई उसको मुक्कोंसे मारने लगे, सब वानरोंने उस राक्षसको बलपूर्वक पकड़ लिया ॥ १५–१६ ॥ आकाशसे उतारकर उनलोगोंने उसे पृथिवीपर रखा। वानरोंके द्वारा पीड़ित होनेपर शुक बोला ॥ १७ ॥ राघव ! दूत नहीं मारे जाते, आप वानरोंको रोकें, जो स्वामीका सन्देश न कहकर अपने मनकी बातें कहता है वही, बिना कही बात कहनेवाला, दूत मारा जाना चाहिए ॥ १८ ॥ शुकके वचन और विलाप सुनकर रामचन्द्रने उसको मारनेवाले वानरोंसे कहा कि इसे न मारो ॥ १९ ॥ वानरोंसे अभय पानेपर छोटे पंखवाला होकर वह आकाशमें उड़ा और वहींसे पुनः बोला ॥२०॥ हे सत्यसम्पन्न, महाबली और महापराक्रमी सुग्रीव लोकको रुलानेवाले रावणसे जाकर मैं आपकी ओरसे क्या कहूँगा ॥ २१ ॥ वानरोंके स्वामी

न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि ।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धस्ततोऽसि वालीव वधार्ह वध्यः ॥२३॥
निहन्म्यहं त्वां ससुतं सबन्धुं सज्ञातिवर्गं रजनीचरेश ।
लङ्कां च सर्वां महता बलेन सर्वैः करिष्यामि समेत्य भस्म ॥२४॥
न मोक्ष्यसे रावण राघवस्य सर्वैः सहेन्द्रैरपि मूढ गुप्तः ।
अन्तर्हितः सूर्यपथं गतोऽपि तथैव पातालमनुप्रविष्टः ॥
गिरीशपादाम्बुजसङ्गतो वा हतोऽसि रामेण सहानुजस्त्वम् ॥२५॥
तस्य ते त्रिषु लोकेषु न पिशाचं न राक्षसम् । त्रातारं नानुपश्यामि न गन्धर्वं न चासुरम् ॥२६॥
अवधीस्त्वं जरावृद्धं गृध्रराजं जटायुषम् । किं नु ते रामसांनिध्ये सकाशे लक्ष्मणस्य च ॥
हृता सीता विशालाक्षी यां त्वं गृह्य न बुध्यसे ॥२७॥
महाबलं महात्मानं दुराधर्षं सुरैरपि । न बुध्यसे रघुश्रेष्ठं यस्ते प्राणान्हरिष्यति ॥२८॥
ततोऽब्रवीद्वालिसुतोऽप्यङ्गदो हरिसत्तमः । नायं दूतो महाप्राज्ञ चारकः प्रतिभाति मे ॥२९॥
तुलितं हि बलं सर्वमनेन तव तिष्ठता । गृह्यतां मागमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते ॥३०॥
ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्पत्य बलीमुखाः । जगृहुश्च बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत् ॥३१॥

वानरश्रेष्ठ महाबली सुग्रीव राक्षसके ऐसा कहनेपर उसे राक्षसराजका गुप्त दूत जानकर छलहीन वचन बोले ॥ २२ ॥ तुम मेरे मित्र नहीं हो, दयाके पात्र नहीं हो, और न मुझपर तुम्हारा कुछ उपकार ही है, मेरे प्रिय भी नहीं हो । मित्र बान्धवोंके साथ तुम रामचन्द्रके शत्रु हो, अतएव बालीके समान तुम वध करनेके योग्य हो ॥ २३ ॥ हे राक्षसेश, ज्ञातिबन्धु और पुत्रोंके साथ मैं तुम्हें मारूँगा, बड़ी सेना तथा राम आदि सबको साथ लेकर तुम्हारी समस्त लङ्काको मैं जला दूँगा ॥ २४ ॥ मूर्ख रावण, रामचन्द्रसे तुम्हारा छुटकारा होना सम्भव नहीं, इन्द्र आदिके रक्षा करनेपर भी तुम्हारा बचना सम्भव नहीं है । तुम छिप जाओ, सूर्यमार्गमें जाओ, पातालमें जाओ अथवा शिवके चरणकमलोंमें लीन हो जाओ, फिर भी राम भाइयोंके साथ तुमको मारेंगे ॥ २५ ॥ पिशाच, राक्षस, गन्धर्व, असुर तीनों लोकोंमें किसीको भी मैं ऐसा नहीं देखता जो तुम्हारी रक्षा कर सके ॥ २६ ॥ वृद्ध गृद्ध्रराज जटायुको तुमने किसलिए मारा ? राम और लक्ष्मणके सामने क्या तुमने सीताका हरण किया ? (अर्थात् जटायुको मारकर तुमने कोई वीरता नहीं दिखलायी, चोरीसे एक स्त्रीका हरण करनेमें भी कोई वीरता नहीं) । आज भी तुम समझ नहीं रहे हो । अपने दुष्कर्मोंके बुरे परिणामका ध्यान तुम्हें आज भी नहीं है ॥ २७ ॥ महाबली देवताओंके द्वारा भी अपराजेय रघुश्रेष्ठ महात्मा रामचन्द्रको आज भी तुम नहीं समझ रहे हो, वे तुम्हारा प्राण हरण करेंगे ॥ २८ ॥ वानरश्रेष्ठ अंगद बोले, महाप्राज्ञ ! यह दूत नहीं है, किन्तु चार मालूम पड़ता है ॥२९॥ यहाँ ठहरा-ठहरा इसने आपकी समूची सेनाका पता लगा लिया है । इसे पकड़ लेना चाहिये, जिससे लङ्का न जाने पावे, मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है ॥ ३० ॥ राजाकी आज्ञासे वानरोंने कूदकर उसे पकड़ लिया, और अनाथके

शुकस्तु वानरैश्चण्डैस्तत्र तैः सम्पीडितः। व्याचुक्रोश महात्मानं रामं दशरथात्मजम्॥
लुप्येते मे बलात्पक्षौ भिद्येते मे तथाक्षिणी॥३२॥
यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम्। एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतम्॥
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद्यदि जीवितम्॥३३॥
नाघातयत्तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवितम्। वानरानब्रवीद्रामो मुच्यतां दूत आगतः॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे विंशः सर्गः॥२०॥

एकविंशः सर्गः २१

ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः। अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः॥१॥
बाहुं भुजङ्गभोगाभमुपधायारिसूदनः। जातरूपमयैश्चैव भूषणैर्भूषितं सदा॥२॥
मणिकाञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः। भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा॥३॥
चन्दनागुरुभिश्चैव पुरस्तादभिसेवितम्। बालसूर्यप्रकाशैश्च चन्दनैरुपशोभितम्॥४॥
शयने चोत्तमाङ्गेन सीतायाः शोभितं पुरा। तक्षकस्येव संभोगं गङ्गाजलनिषेवितम्॥५॥
संयुगे युगसङ्काशं शत्रूणां शोकवर्धनम्। सुहृदां नन्दनं दीर्घं सागरान्तव्यपाश्रयम्॥६॥
अस्यता च पुनः सव्यं ज्याघातविहतत्वचम्। दक्षिणो दक्षिणं बाहुं महापरिघसंनिभम्॥७॥

समान विलाप करते हुए उसे बाँधा॥ ३१॥ क्रोधी वानरोंने शुकको बहुत पीड़ा दी। तब वह दशरथपुत्र महात्मा रामचन्द्रको पुकारने लगा—ये मेरे पंख उखाड़ रहे हैं तथा आँखें फोड़ रहे हैं॥ ३२॥ जिस रातको मैं मरूँगा और जिस रातको पैदा हुआ हूँ, इसके बीचके समयमें जो मैंने पाप किये हैं वे सब पाप आपको हों, यदि मेरे प्राण निकल जाँय अर्थात् यदि आप इन वानरोंको न रोकें और इनके कारण मेरे प्राण निकल जाँय, तो आप मेरे पापोंके भागी हों॥ ३३॥ उसका विलाप सुनकर रामचन्द्रने उसका वध रोकवा दिया और वे वानरोंसे बोले कि आए हुये इस दूतको छोड़ दो॥ ३४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त॥ २०॥

अनन्तर समुद्रके तीरपर कुश बिछाकर रामचन्द्र उसपर बैठे और समुद्रको हाथ जोड़कर पूर्व ओर मुँहकर सो गए अर्थात् प्रार्थना करने लगे॥ १॥ सर्पके समान, सुवर्णके भूषणोंसे भूषित, बाहु सिरके नीचे रखकर रामचन्द्र सो गए॥ २॥ मणिजटित सुवर्ण केयूर तथा मोतीके उत्तम भूषणोंसे भूषित और श्रेष्ठ स्त्रियों (धात्री आदि) के द्वारा अनेक बार स्पष्ट बाहुपर मस्तक रखकर रामचन्द्र सो गए॥३॥ वे बाहु चन्दन अगरु तथा बालसूर्यके समान चन्दनसे शोभित होते थे। शयनकालमें सीताके मस्तकसे वे बाहु पहले शोभित होते थे। मानो तक्षकका शरीर गङ्गाजलसे शोभित हुआ है॥५॥ जुआठके समान वे बाहु युद्धमें शत्रुओंके शोक बढ़ानेवाले और मित्रोंको आनन्द देनेवाले हैं, लम्बे हैं और समुद्रपर्यन्तकी भूमि जिनके सहारे वर्तमान हैं॥६॥ बाण चलानेके कारण ज्याके आघातसे जिसकी त्वचा छिल गयी है ऐसे, महापरिघके समान

गोसहस्रप्रदातारं ह्युपधाय भुजं महत्। अद्य मे तरणं वाथ मरणं सागरस्य वा ॥ ८ ॥
इति रामो धृतिं कृत्वा महाबाहुर्महोदधिम्। अधिशिश्ये च विधिवत्प्रयतोऽत्र स्थितो मुनिः॥ ९ ॥
तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले। नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोऽभिजग्मतुः ॥१०॥
स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः। उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम् ॥११॥
न च दर्शयते रूपं मन्दो रामस्य सागरः। प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥१२॥
समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः। समीपस्थमुवाचेदं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥१३॥
अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यः स्वयम्। प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ॥१४॥
असामर्थ्यफला ह्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः। आत्मप्रशंसिनं दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ॥१५॥
सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः सत्कुरुते नरम्। न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ॥१६॥
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि। अद्य मद्बाणनिर्भग्नैर्मकरैर्मकरालयम् ॥१७॥
निरुद्धतोयं सौमित्रे प्लवद्भिः पश्य सर्वतः। भोगिनां पश्य भोगानि मया भिन्नानि लक्ष्मण॥१८॥
महाभोगानि मत्स्यानां करिणां च करानिह। सशङ्खशुक्तिकाजालं समीनमकरं तथा ॥१९॥
अद्य युद्धेन महता समुद्रं परिशोषये। क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः ॥२०॥
असमर्थं विजानाति धिक्क्षमामीदृशे जने। न दर्शयति साम्ना मे सागरो रूपमात्मनः ॥२१॥

विशाल दहिने हाथको सिरके नीचे रखकर रामचन्द्र सोए ॥ ७ ॥ हजारों गौओंका दान जिस भुजाने किया है उस भुजाको सिरके नीचे रखकर तथा यह प्रतिज्ञा करके कि आज हमलोग समुद्रके पार जायँगे अथवा समुद्रकी मृत्यु होगी, सो गए ॥ ८ ॥ इस प्रकार धैर्य धरके महाबाहु रामचन्द्र नियमपूर्वक शुद्ध होकर चुपचाप समुद्रतीरपर सो गए ॥ ९ ॥ इस प्रकार पृथिवीपर कुशबिछाकर सोए हुए सावधानीसे नियमोंका पालन करते हुए रामचन्द्रको तीन रात्रियाँ व्यतीत हुईं ॥ १० ॥ इस प्रकार नीति जाननेवाले धर्मवत्सल रामचन्द्रने विधिपूर्वक समुद्रतीरपर तीन रात रहकर नदिनाथ समुद्रका ध्यान किया ॥११॥ विधिपूर्वक यथायोग्य रामचन्द्रके द्वारा पूजा पानेपर भी मूर्ख समुद्र रामचन्द्रके सामने नहीं आया ॥ १२ ॥ तब उनको समुद्रपर क्रोध आया, उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे पास बैठे हुए शुभलक्षण लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥ १३ ॥ यह समुद्रका अहंकार है जो वह सामने नहीं आता है, शान्ति, क्षमा, सरलता और प्रियवादिता ये सज्जनोंके गुण हैं, बुरे आदमियोंके प्रति इनका उपयोग निरर्थक है। वे शान्ति, क्षमा रखनेवालोंको असमर्थ समझ लेते हैं, अपनी प्रशंसा आप करनेवाला, दुश्चरित्र, अधर्ममें साहस रखनेवाला, अपनी प्रसिद्धिके लिए इधर उधर दौड़नेवाला तथा सब प्राणियोंको दण्ड देनेवाला जनताके द्वारा सत्कार पाता है। शान्तिसे कीर्ति नहीं प्राप्त हो सकती और न यश मिल सकता है। लक्ष्मण इस संसारमें शान्तिके द्वारा युद्धमें विजय भी प्राप्त नहीं हो सकती। आज मेरे बाणोंसे मारे गए मगर समुद्रके जलपर दिखाई पड़ेंगे जिनसे समुद्रका जल छिप जायगा। तुम वैसे समुद्रको देखो। मेरे बाणोंके द्वारा मारे गये सर्पोंके विशाल शरीरको देखो ॥१४-१५-१६-१७-१८॥ मछलियोंके विशाल शरीर, हाथियोंके सूँड़, शंख, सीप, मछलियों, मगर आदिको मेरे बाणोंके द्वारा मरे हुए तुम देखो ॥१९॥ आज विकट युद्ध करके मैं समुद्रको सोख लूँगा, यह समुद्र क्षमा करनेके कारण मुझको असमर्थ समझ रहा है। ऐसोंके प्रति क्षमाका उपयोग धिक्कारयोग्य है। सामके द्वारा यह

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् । समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः ॥२२॥
अद्याक्षोभ्यमपि क्रुद्धः क्षोभयिष्यामि सागरम् । वेलासु कृतमर्यादं सहस्रोर्मिसमाकुलम् ॥२३॥
निर्मर्यादं करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् । महार्णवं क्षोभयिष्ये महादानवसङ्कुलम् ॥२४॥
एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः । बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥२५॥
सम्पीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शनैर्जगत् । मुमोच विशिखानुग्रान्वज्रानिव शतक्रतुः ॥२६॥
ते ज्वलन्तो महावेगास्तेजसा सायकोत्तमाः । प्रविशन्ति समुद्रस्य जलं वित्रस्तपन्नगम् ॥२७॥
तोयवेगः समुद्रस्य समीनमकरो महान् । स बभूव महाघोरः समारुतरवस्तथा ॥२८॥
महोर्मिजालचलितः शङ्खजालसमावृतः । सधूमः परिवृत्तोर्मिः सहसासीन्महोदधिः ॥२९॥
व्यथिताः पन्नगाश्चासन्दीप्तास्या दीप्तलोचनाः । दानवाश्च महावीर्याः पातालतलवासिनः ॥३०॥
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तथा । विन्ध्यमन्दरसङ्काशाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥३१॥
आघूर्णिततरङ्गौघः संभ्रान्तोरगराक्षसः । उद्वर्तितमहाग्राहः सघोषो वरुणालयः ॥३२॥

ततस्तु तं राघवमुग्रवेगं प्रकर्षमाणं धनुरप्रमेयम् ।
सौमित्रिरुत्पत्य विनिःश्वसन्तं मामेति चोक्त्वा धनुराललम्बे ॥३३॥
एतद्विनापि ह्युदधेस्तवाद्य सम्पत्स्यते वीरतमस्य कार्यम् ।
भवद्विधाः क्रोधवशं न यान्ति दीर्घं भवान्पश्यतु साधुवृत्तम् ॥३४॥

सामने नहीं आया ॥ २०–२१ ॥ लक्ष्मण, धनुष ले आओ और सर्पके समान भयंकर बाण लाओ, आज मैं समुद्रको सोख लूँगा और वानर पैरोंसे चलकर समुद्रको पार करेंगे ॥ २२ ॥ आज क्रोध करके अक्षोभ्य समुद्रको भी मैं क्षुभित कर दूँगा । जिस समुद्रमें हजारों लहरियाँ उठती हैं और जो अपने तीरोंसे मर्यादित है, उसकी उस मर्यादाको मैं अपने बाणोंसे तोड़ दूँगा । अनेक महादानवोंसे युक्त समुद्रको क्षुभित कर दूँगा ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर हाथमें धनुष लेकर रामचन्द्र क्रोधसे आँखें फाड़कर प्रलयकालकी अग्निके समान उत्तेजित होकर समझाने-बुझानेके बाहर हो गए ॥ २५ ॥ भयानक धनुषको खूब नवाकर और उससे जगतको कँपाकर, उससे उन्होंने उग्र बाण छोड़े । जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोड़ता है ॥२६॥ वे उत्तम बाण जलते हुए तथा रामचन्द्रके तेजसे बड़े वेगपूर्वक समुद्रके जलमें घुसे, जिससे समुद्रीसर्प भयभीत हो गए ॥२७॥ मीन मकरके साथ तथा वायुके शब्दके साथ वह समुद्रका जलवेग बड़ा भयानक हो गया ॥२८॥ समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरियाँ उठने लगीं, शंखसमूहसे उसका जल ढँक गया । धूँआ उठने लगा तथा उन स्थानोंसे भी लहरियाँ उठने लगीं, जहाँसे पहले नहीं उठती थीं ॥ २९ ॥ चमकीले मुख आँखवाले सर्प व्यथित हुए, पातालमें रहनेवाले महाबली दानव भी व्यथित हुए ॥ ३० ॥ समुद्रकी लहरियाँ, जिनके साथ नक्र और मगर आदि उठते थे, विन्ध्य और मन्दर पर्वतोंके समान ऊँची हजारोंकी संख्यामें उठने लगीं ॥ ३१ ॥ समुद्रकी लहरियाँ चक्कर खाने लगीं, सर्प और राक्षस घबड़ा गए । बड़े-बड़े ग्राह ऊपर फेंक दिए गए और समुद्रसे घोर शब्द उठने लगा ॥ ३२ ॥ अनन्तर रामचन्द्र बड़े वेगसे अमोघ धनुष खींचने लगे और लम्बी साँस लेने लगे । उसी समय उनके पास जाकर नहीं नहीं कहते हुए लक्ष्मणने उनका धनुष पकड़ लिया ॥३३॥ समुद्रका नाश

अन्तर्हितैश्चापि तथान्तरिक्षे ब्रह्मर्षिभिश्चैव सुरर्षिभिश्च ।
शब्दः कृतः कष्टमिति ब्रुवद्भिर्मामेति चोक्त्वा महता स्वरेण ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥२१॥

द्वाविंशः सर्गः २२

अथोवाच रघुश्रेष्ठः सागरं दारुणं वचः । अद्याहं शोषयिष्यामि सपातालं महार्णवम् ॥१॥
शरनिर्दग्धतोयस्य परिशुष्कस्य सागर । मया निहतसत्त्वस्य पांसुरुत्पद्यते महान् ॥२॥
मत्कार्मुकनिसृष्टेन शरवर्षेण सागर । परं तीरं गमिष्यन्ति पद्भिरेव प्लवङ्गमाः ॥३॥
विचिन्वन्नाभिजानासि पौरुषं नापि विक्रमम् । दानवालय सन्तापं मत्तो नाम गमिष्यसि ॥४॥
ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य ब्रह्मदण्डनिभं शरम् । संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबलः ॥५॥
तस्मिन्विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने । रोदसी सम्पफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे ॥६॥
तमश्च लोकमावव्रे दिशश्च न चकाशिरे । प्रतिचुक्षुभिरे चाशु सरांसि सरितस्तदा ॥७॥
तिर्यक्च सह नक्षत्रैः संगतौ चन्द्रभास्करौ । भास्करांशुभिरादीप्तं तमसा च समावृतम् ॥८॥
प्रचकाशे तदाकाशमुल्काशतविदीपितम् । अन्तरिक्षाच्च निर्घाता निर्जग्मुरतुलस्वनाः ॥९॥

किए विना भी वीरश्रेष्ठ आपका कार्य सिद्ध हो सकता है, आपके समान मनुष्य क्रोधके अधीन नहीं होते, अतएव सदा सज्जनोचित मार्गका आप अवलम्बन करें ॥ ३४ ॥ अन्तरिक्षमें छिपे हुए बड़े जोरसे "दुख है" ऐसा कहते हुए ब्रह्मर्षि और देवर्षियोंने भी 'नहीं, नहीं' ऐसा कहा । अर्थात् समुद्रका नाश रामचन्द्र न करें, उनलोगोंने ऐसी प्रार्थना की ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२१॥

इस प्रकार समुद्री प्राणियोंकी पीड़ा निवारण करनेके अनन्तर रामचन्द्र समुद्रसे कठोर वचन बोले—आज मैं पातालसहित समुद्रको सोख लूँगा ॥ १ ॥ मेरे वाणसे जल जल जायगा, समुद्र सूख जायगा । उसके सब प्राणी मर जायँगे और खूब धूल उड़ेगी ॥ २ ॥ मेरे धनुषसे छूटेवाणोंकी वर्षासे ही वानर पैरोंसे चलकर समुद्रके उसपार चले जायँगे ॥ ३ ॥ दानवालय समुद्र, तुम विपुल जलराशि और रत्नराशि आदिके कारण मेरा पुरुषार्थ और पराक्रम नहीं जानते, अतएव तुम मत्त हो गये हो, इसके लिए तुम्हें सन्ताप करना पड़ेगा ॥ ४ ॥ ब्रह्मदण्डके समान वाणको ब्रह्मास्त्रसे संयुक्त करके और उसको उत्तम धनुषपर रख कर महावली रामचन्द्रने खींचा ॥ ५ ॥ उस धनुष के खीचते ही पृथिवी और आकाश मानों फटने लगे और पर्वत काँपने लगे ॥ ६ ॥ समस्त लोकमें अन्धकार फैल गया । दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं । तालाब और नदियाँ क्षुभित हो गयीं ॥ ७ ॥ चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्रोंके साथ टकरा गये, सूर्यकी किरणोंके द्वारा प्रकाशित होनेपर भी समस्त संसार अन्धकारसे आवृत हो गया ॥ ८ ॥ उस समय सैकड़ों उल्काओंसे प्रदीप्त

वपुःप्रकर्षेण ववुर्दिव्यमारुतपङ्क्तयः । बभञ्ज च तदा वृक्षाञ्जलदानुद्वहन्मुहुः ॥१०॥
आरुजंश्चैव शैलाग्राञ्शिखराणि बभञ्ज च । दिवि च स्म महावेगाः संहताः समहास्वनाः ॥११॥
मुमुचुर्वैद्युतानग्नींस्ते महाशनयस्तदा । यानि भूतानि दृश्यानि चुक्रुशुश्चाशनेः समम् ॥१२॥
अदृश्यानि च भूतानि मुमुचुर्भैरवस्वनम् । शिश्यिरे चाभिभूतानि संत्रस्तान्युद्विजन्ति च ॥१३॥
संप्रविव्यथिरे चापि न च पस्पन्दिरे भयात् । सह भूतैः सतोयोर्मिः सनागः सहराक्षसः ॥१४॥
सहसाभूत्ततो वेगाद्भीमवेगो महोदधिः । योजनं व्यतिचक्राम वेलामन्यत्र संप्लवात् ॥१५॥
तं तथा समतिक्रान्तं नातिचक्राम राघवः । तमुद्धतममित्रघ्नो रामो नदनदीपतिम् ॥१६॥
ततो मध्यात्समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः । उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः ॥१७॥
पन्नगैः सह दीप्तास्यैः समुद्रः प्रत्यदृश्यत । स्निग्धवैदूर्यसंकाशो जाम्बूनदविभूषणः ॥१८॥
रक्तमाल्याम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः । सर्वपुष्पमयीं दिव्यां शिरसा धारयन्स्रजम् ॥१९॥
जातरूपमयैश्चैव तपनीयविभूषणैः । आत्मजानां च रत्नानां भूषितो भूषणोत्तमैः ॥२०॥
धातुभिर्मण्डितः शैलो विविधैर्हिमवानिव । आघूर्णिततरङ्गौघः कालिकानिलसंकुलः ॥२१॥
गङ्गासिन्धुप्रधानाभिरापगाभिः समावृतः । सागरः समुपक्रम्य पूर्वमामन्त्र्य वीर्यवान् ।

आकाश प्रकाशित हुआ और अन्तरिक्षसे भयानक शब्दवाले वज्र निकले ॥ ९ ॥ दिव्य मारुतोंकी श्रेणि वेगसे वहने लगी, वृक्षोंको तोड़ने लगीं और मेघोंको इधर-उधर फैलाने लगीं ॥ १० ॥ पर्वतके शिखरोंको पीड़ित किया और छोटे-छोटे पर्वतोंको तोड़ दिया. घोर शब्दवाली महावेगवती और आकाशमण्डलमें आपसमें मिली हुई वे बड़ी विद्युत् वैद्युतअग्नि बरसाने लगी। जो प्राणी दृश्यमान थे वे विद्युतके समान गर्जन करने लगे ॥ ११—१२ ॥ जो प्राणी दिखायी न पड़ते थे वे भयानक शब्द करने लगे। जो उसकी चपेटमें आगये वे सो गये, डर गये और उद्विग्न हो गए ॥ १३ ॥ वे चिन्तासे दुखित हो गए, भयसे निश्चल हो गए। प्राणियोंके साथ, सर्पों और राक्षसोंके साथ ऊँची लहरियोंवाला समुद्र उस बाणके वेगसे बड़ा वेगवान् हो गया, अतएव तीरको डाँककर एक योजन इधर-उधर फैल गया ॥ १४—१५ ॥ इस प्रकार तीरके बाहर होकर इधर-उधर फैलते हुए समुद्रको रामचन्द्रने नहीं रोका ॥ १५ ॥ उस उद्धत समुद्रके फैलनेपर भी रामचन्द्र वहीं ज्योंके त्यों खड़े रहे। वहाँसे हटे नहीं ॥ १६ ॥ अनन्तर समुद्रके बीचसे स्वयं वह समुद्र निकला, जिस प्रकार मेरुके उदयाचलसे सूर्य निकलते हैं ॥ १७ ॥ चिकनी वैदूर्य मणिके समान और सुवर्णभूषणसे भूषित समुद्र प्रदीप्त मुखवाले साँपोंके साथ दीख पड़ा ॥ १८ ॥ लाल मालाएँ और लाल वस्त्र वह पहने हुए था, कमलनेत्रके समान उसकी सुन्दर आँखें थीं और सब प्रकारके पुष्पोंसे बनी माला वह सिरपर धारण किये हुए था ॥ १९ ॥ खानसे उत्पन्न होनेवाले सुवर्णों और जड़ाईके योग्य कठोर सुवर्णोंके भूषणोंसे (खानके सुवर्णको जातरूप कहते हैं और उस कठोर सुवर्णको तपनीय कहते हैं जिसमें जड़ाईका काम किया जा सके), जिसमें समुद्री रत्न जड़े हुए थे, वह समुद्र भूषित था ॥ २० ॥ अतएव अनेक प्रकारकी धातुओंसे सुशोभित हिमवान् पर्वतके समान समुद्र मालूम पड़ता था। उस समुद्रमें तरङ्गमालाएँ चक्कर काट रहीं थीं और वह मेघसमूहसे भरा हुआ था। गङ्गा सिन्धु आदि

अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं शरपाणिनम् ॥२२॥
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च राघव । स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ॥२३॥
तत्स्वभावो ममाप्येष यदगाधोऽहमप्लवः । विकारस्तु भवेद्गाध एतत्ते प्रवदाम्यहम् ॥२४॥
न कामान्न च लोभाद्वा न भयात्पार्थिवात्मज । रागान्नक्राकुलजलं स्तम्भयेयं कथंचन ॥२५॥
विधास्ये येन गन्तासि विषहिष्येऽप्यहं तथा । न ग्राहा विधमिष्यन्ति यावत्सेना तरिष्यति ।
हरीणां तरणे राम करिष्यामि यथा स्थलम् ॥२६॥
तमब्रवीत्तदा रामः शृणु मे वरुणालय । अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम् ॥२७॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा महाशरम् । महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥२८॥
उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतरो मम । द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥२९॥
उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः । आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥३०॥
तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः । अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः ॥३१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः । मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥३२॥
तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् । निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥३३॥
ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता । तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात् ॥३४॥

प्रधान नदियाँ उससे मिल रही थीं। वह समुद्र रामचन्द्रके पास जाकर, उन्हें सम्बोधित कर तथा हाथ जोड़कर बाण धारण करनेवाले रामचन्द्रसे बोला ॥२२॥ रामचन्द्र! पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि ये अपने स्वभावमें सदा वर्तमान रहते हैं। ये सनातनसृष्टिक्रमको नहीं छोड़ते ॥ २३ ॥ अतएव मेरा भी यह स्वभाव है कि मैं अगाध हूँ, मेरे पास कोई नहीं जा सकता। यदि मेरी थाह लग जाय, यदि लोग मेरा पार करने लगें तो यह विकार कहा जायगा, सृष्टिक्रमकी प्रतिकूलता होगी, यह मैं आपको सूचित करता हूँ ॥ २४ ॥ राजपुत्र! इच्छासे, लोभसे, भयसे या अनुरागसे किसी प्रकार भी मैं अपने जलको सूखने न दूँगा, क्योंकि उसमें मगर आदि अनेक प्राणी रहते हैं ॥ २५ ॥ जिससे तुम पार जा सको, मुझे भी कष्ट न हो, मेरे प्राणियोंको भी खेद न हो और तुम्हारी समस्त सेना उतर जाय इसका उपाय मैं बतलाऊँगा। वानरोंके पार जानेके लिए जमीन बनानेकी विधि मैं बतलाऊँगा ॥ २६ ॥ रामचन्द्रने उससे कहा—हे वरुणालय! मेरा यह अमोघ बाण कहाँ छोड़ा जाय ॥ २७ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर तथा उस विशाल बाणको देखकर तेजस्वी समुद्र रामचन्द्रसे बोला ॥ २८ ॥ मेरे उत्तरकी ओर बहुत ही पवित्र द्रुमकुल्य नामक प्रदेश है। जिस प्रकार आप संसारमें प्रसिद्ध हैं उस प्रकार वह प्रदेश भी प्रसिद्ध है ॥ २९ ॥ वहाँ बहुतसे अहीर आदि दस्यु (चोर) रहते हैं, वे देखनेमें भयानक हैं, उनके कर्म भी वैसेही भयानक हैं, वे सब मेरा जल पीते हैं ॥ ३० ॥ उन पापियोंसे मेरा स्पर्श होता है जो मेरे लिए असह्य है, आप इस अमोघ बाणको वहीं छोड़ें ॥ ३१ ॥ महात्मा समुद्रके ये वचन सुनकर उस जलते हुए बाणको रामचन्द्रने समुद्रको देखनेके बाद छोड़ा ॥ ३२ ॥ वज्रके समान रामचन्द्रका वह बाण जहाँ गिरा वह स्थान मरुके नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ३३ ॥ बाणसे पीड़ित होकर पृथिवी आर्त्तनाद करने लगी और पृथिवी-

स बभूव तदा कूपो व्रण इत्येव विश्रुतः। सततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते ॥३५॥
अवदारणशब्दश्च दारुणः समपद्यत। तस्मात्तद्बाणपातेन अपः कुक्षिष्वशोषयत् ॥३६॥
विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरुकान्तारमेव च। शोषयित्वा तु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥
वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ॥३७॥
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः। बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः ॥३८॥
एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतो मरुः। रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था बभूव ह ॥३९॥
तस्मिन्दग्धे तदा कुक्षौ समुद्रः सरितां पतिः। राघवं सर्वशास्त्रज्ञमिदं वचनमब्रवीत् ॥४०॥
अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः। पित्रा दत्तवरः श्रीमान्प्रीतिमान्विश्वकर्मणः ॥४१॥
एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः। तमहं धारयिष्यामि यथा ह्येष पिता तथा ॥४२॥
एवमुक्त्वोदधिर्नष्टः समुत्थाय नलस्ततः। अब्रवीद्वानरश्रेष्ठो वाक्यं रामं महाबलम् ॥४३॥
अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे मकरालये। पितुः सामर्थ्यमासाद्य तत्त्वमाह महोदधिः ॥४४॥
दण्ड एव परो लोके पुरुषस्येति मे मतिः। धिक्क्षमामकृतज्ञेषु सान्त्वं दानमथापि वा ॥४५॥
अयं हि सागरो भीमः सेतुकर्मदिदृक्षया। ददौ दण्डभयाद्गाधं राघवाय महोदधिः ॥४६॥
मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा। मया तु सदृशः पुत्रस्तव देवि भविष्यति ॥४७॥

के उस घावके कारण उसीके द्वारा पृथिवीसे जल निकला ॥ ३४ ॥ वह बाणके आघातसे बना हुआ बिल व्रण नामसे प्रसिद्ध हुआ और वह एक कूँआके समान हो गया। उससे सदा पानी निकलने लगा जो समुद्रके समान मालूम पड़ता था ॥ ३५ ॥ पृथिवीके फटनेका शब्द बड़ा ही भयानक हुआ। उस बाणके गिरनेसे पृथिवीगर्भका समस्त जल सूख गया ॥ ३६ ॥ वह प्रदेश मरुभूमिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवतुल्य पराक्रमी विद्वान् दशरथपुत्र रामने जल सुखाकर उस मरुको वरदान दिया ॥ ३७ ॥ यह मरु पशुओंका हितकारी, अल्परोगवाला, फल-मूल-रससे युक्त, स्नेहयुक्त पदार्थोंवाला, बहुत दूधवाला, अनेक प्रकारकी ओषधियोंवाला और सुगन्धयुक्त हो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रके वरसे अनेक गुणोंसे युक्त वह मरु हो गया तथा एक सुन्दर देश हो गया ॥ ३९ ॥ उस प्रदेशके जल जानेपर नदीनाथ समुद्र सर्वशास्त्रज्ञ रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला ॥ ४० ॥ ये सौम्य नल विश्वकर्माके पुत्र हैं, पिताने इन्हें वर दिया है और आपके लिए इनमें प्रेम भी है। ॥ ४१ ॥ ये महोत्साही नल मुझपर पुल बनावें। मैं उस पुलको धारण करूँगा। नल अपने पिताके समान ही इस कार्यमें दक्ष हैं ॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर समुद्र चला गया। अनन्तर वानरश्रेष्ठ नल उठकर महाबली रामचन्द्रसे बोला ॥ ४३ ॥ मैं पिताकी शक्तिसे इस विशाल समुद्रपर पुल बना सकूँगा। समुद्रने ठीक कहा है ॥ ४४ ॥ अकृतज्ञोंके विषयमें दण्डसेही कार्य सिद्ध हो सकता है, ऐसा मैं समझता हूँ, अतएव उनके विषयमें क्षमा, दाम, साम आदि उपाय धिक्कारके योग्य हैं ॥ ४५ ॥ इस भयानक सागरने दण्डके भयसे ही पुलका बाँधा जाना देखनेके लिए रामचन्द्रसे अपने थाह हो जानेकी बात कही है ॥ ४६ ॥ मन्दराचल पर्वतपर मेरी माताको विश्वकर्माने वर दिया था कि, 'देवि'! तुम्हारा पुत्र मेरे

औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा । न चाप्यहमनुक्तो वः प्रब्रूयामात्मनो गुणान् ॥ ४८ ॥
समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये । तस्मादद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः ॥ ४९ ॥
ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवाः । अभिपेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥ ५० ॥
ते नगान्नगसंकाशाः शाखामृगगणर्षभाः । बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥ ५१ ॥
ते सालैश्चाश्वकर्णैश्च धवैर्वंशैश्च वानराः । कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिशैरपि ॥ ५२ ॥
बिल्वकैः सप्तपर्णैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः । चूतैश्चाशोकवृक्षैश्च सागरं समपूरयन् ॥ ५३ ॥
समूलांश्च विमूलांश्च पादपान्हरिसत्तमाः । इन्द्रकेतूनिवोद्यम्य प्रजह्रुर्वानरास्तरून् ॥ ५४ ॥
तालान्दाडिमगुल्मांश्च नारिकेलविभीतकान् । करीरान्बकुलान्निम्बान्समाजह्रुरितस्ततः ॥ ५५ ॥
हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः । पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥ ५६ ॥
प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धृतम् । समुत्पपात चाकाशमपासर्पत्ततः पुनः ॥ ५७ ॥
समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः । सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥ ५८ ॥
नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः । स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥ ५९ ॥
दण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथापरे । वानरैः शतशस्तत्र रामस्याज्ञापुरःसरैः ॥ ६० ॥
मेघाभैः पर्वताभैश्च तृणैः काष्ठैर्बबन्धिरे । पुष्पिताग्रैश्च तरुभिः सेतुं बध्नन्ति वानराः ॥ ६१ ॥
पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान्गिरीणां शिखराणि च । दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्य दानवसंनिभाः ॥ ६२ ॥

समान होगा' मैं विश्वकर्मासे उत्पन्न हुआ उनका पुत्र हूँ, और उन्हींके समान हूँ ॥ ४७ ॥ यह बात मुझे याद दिलायी गयी है, अतएव समुद्रने जो कहा है वह ठीक है। बिना किसीके कहे मैं अपने गुण आप-लोगोंके सामने प्रकाशित न करता ॥ ४८ ॥ मैं समुद्रपर पुल बाँधनेकी शक्ति रखता हूँ, अतएव आज ही वानरगण समुद्रपर पुल बाँधे ॥ ४९ ॥ अनन्तर रामचन्द्रकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक सैकड़ों हजारों वानर जङ्गलमें घुस गए ॥ ५० ॥ पर्वतके समान ऊँचे वे वानर वृक्षोंको तोड़ने लगे और पर्वतपरसे पत्थर समुद्रमें फेंकने लगे ॥ ५१ ॥ साल, अश्वकर्ण, धव, बाँस, कुटज, अर्जुन, ताल, तिलक, तिनिश, बिल्व, सप्तपर्ण, पुष्पित कर्णिकार, आम और अशोक इन वृक्षोंसे वानरोंने समुद्रको भर दिया ॥ ५२, ५३ ॥ वे वानर जड़के साथ अथवा बिना जड़वाले वृक्षोंको उखाड़कर इन्द्रध्वजाके समान फेंकने लगे ॥ ५४ ॥ ताल, दाड़िम, गुल्म, नारिकेल, बहेड़ा, करीर, बकुल, नीम इन सब वृक्षोंको वानर इधर-उधरसे ले आए ॥ ५५ ॥ विशाल शरीरवाले महाबली वानर पर्वतोंको तोड़कर हाथीके समान बड़े पत्थर यंत्रोंकी सहायतासे समुद्रके किनारे ले आए ॥ ५६ ॥ पत्थरोंके गिरनेसे समुद्रका जल सहसा आकाशकी ओर चला और पुनः लौटकर स्व-स्थान चला आया ॥ ५७ ॥ बड़े-बड़े पत्थर गिराकर वानरोंने समुद्रको क्षुभित कर दिया। अन्य कई वानरोंने सौ योजन लम्बा सूत पकड़ा ॥ ५८ ॥ नलने समुद्रके बीचमें बड़ा पुल बनाया। भयङ्कर कर्म करनेवाले अन्य वानरोंने भी इसमें सहायता दी ॥ ५९ ॥ कई वानर दण्ड (नापनेका गज) लिए हुए थे और कई रामचन्द्रकी आज्ञासे सामग्री जुटाते थे ॥ ६० ॥ मेघके समान तथा पर्वतके समान काष्ठों, तृणों और पुष्पित वृक्षोंसे वानरोंने समुद्रपर पुल बाँधा ॥ ६१ ॥ पर्वतके समान पत्थर तथा पर्वतोंके शिखर लेकर दौड़ते हुए

शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां तत्र पात्यताम्। बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ ॥६३॥
कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश। प्रहृष्टैर्गजसङ्काशैस्त्वरमाणैः प्लवङ्गमैः ॥६४॥
द्वितीयेन तथैवाह्ना योजनानि तु विंशतिः। कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः ॥६५॥
अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे। त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च ॥६६॥
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि वा। योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्ततः ॥६७॥
पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः। योजनानि त्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्य वै ॥६८॥
स वानरवरः श्रीमान्विश्वकर्मात्मजो बली। बबन्ध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥६९॥
स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये। शुशुभे सुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥७०॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। आगम्य गगने तस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥७१॥
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्। ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥७२॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः। तमचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं लोमहर्षणम् ॥७३॥
ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम्। तानि कोटिसहस्राणि वानराणां महौजसाम् ॥७४॥
बध्नन्तः सागरे सेतुं जग्मुः पारं महोदधेः। विशालः सुकृतः श्रीमान्सुभूमिः सुसमाहितः ॥७५॥
अशोभत महान्सेतुः सीमन्त इव सागरे। ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः ॥७६॥
परेषामभियानार्थमतिष्ठत्सचिवैः सह। सुग्रीवस्तु ततः प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥७७॥

वानर दानवके समान मालूम पड़ते थे ॥ ६२ ॥ पर्वतों और पत्थरोंके गिरनेसे समुद्रमें बड़ा भयानक शब्द होता था ॥ ६३ ॥ हाथीके समान वानरोंने प्रसन्न होकर शीघ्रतापूर्वक पहले दिन चौदह योजन तक पुल बनाया ॥ ६४ ॥ भीमकाय महाबली वानरोंने दूसरे दिन बीस योजनतक पुल बनाया ॥ ६५ ॥ शीघ्रता करनेवाले वानरोंने तीसरे दिन इक्कीस योजन पुल बाँधा ॥ ६६ ॥ महावेगवान् वानरोंने चौथे दिन बाईस योजनतक पुल बाँधा ॥ ६७ ॥ शीघ्रतापूर्वक काम करनेवाले वानरोंने पाँचवें दिन उस पारके तीरतक तेईस योजन पुल बाँधा ॥ ६८ ॥ विश्वकर्माका पुत्र बली वानरश्रेष्ठ नलने समुद्रपर पुल बाँधा, क्योंकि जैसा इसका पिता है वैसाही यह भी है ॥ ६९ ॥ समुद्रपर नलका बनाया हुआ वह सेतु बड़ाही सुन्दर मालूम होता था, जैसे आकाशमें छायापथ ॥ ७० ॥ अनन्तर देवता, गंधर्व, सिद्ध और परम ऋषि आकाशमें आकर उस अद्भुत कामको देखनेके लिए उपस्थित हुए ॥ ७१ ॥ दस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा नलका बनाया हुआ वह दुष्कर पुल देवता तथा गन्धर्वोंने देखा ॥ ७२ ॥ अचिन्तनीय तथा अशक्य, आश्चर्यकारक और रोमांच उत्पन्न करनेवाले समुद्रके इस सेतुको बहुत दूरतक उछलते हुए, साधारण उछलते हुए और गर्जन करते हुए वानरोंने तथा अन्य सब प्राणियोंने देखा। हजार करोड़ महाबली वानरोंका समूह पुल बाँधता हुआ समुद्रपार गया। वह पुल बड़ा विशाल था, अच्छी तरह बना था, अतएव शोभन मालूम होता था। वहाँकी भूमि समतल थी और कहीं बिल वगैरह भी नहीं था। वह समुद्रकी चोटीके समान मालूम होता था। अनन्तर हाथमें गदा लेकर समुद्रके उस पार विभीषण अपने साथियोंके साथ इसलिए खड़े हुए कि

हनूमन्तं त्वमारोह अङ्गदं त्वथ लक्ष्मणः । अयं हि विपुलो वीर सागरो मकरालयः ॥७८॥
वैहायसौ युवामेतौ वानरौ धारयिष्यतः । अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्रामः सलक्ष्मणः॥७९॥
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः । अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवङ्गमाः॥८०॥
सलिलं प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे । केचिद्वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः ॥८१॥
घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् । भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥८२॥
वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना । तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ॥८३॥

तदद्भुतं राघवकर्म दुष्करं समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः ।
उपेत्य रामं सहसा महर्षिभिस्तमभ्यषिञ्चन्सुशुभैर्जलैः पृथक् ॥८४॥
जयस्व शत्रून्नरदेवमेदिनीं ससागरां पालय शाश्वतीः समाः ।
इतीव रामं नरदेवसत्कृतं शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥८५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३

निमित्तानि निमित्तज्ञो दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः । सौमित्रिं सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च । बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण ॥ २ ॥
लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् । प्रबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ ३ ॥

शत्रु आक्रमण कर के पुल तोड़ न दे । अनन्तर सुग्रीवने सत्यपराक्रम रामचन्द्रसे कहा कि आप हनुमानकी पीठपर चढ़ें और लक्ष्मण अङ्गदकी पीठपर, क्योंकि यह समुद्र बहुत विशाल है ॥ ७३ ७४, ७५, ७६, ७७ ७८ ॥ ये दोनों आकाशमें चलनेवाले हैं । ये आपलोगोंको ले चलेंगे । उस सेनाके आगे श्रीमान् रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ धनुष लेकर चले ॥ ७९ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्र सुग्रीवके साथ चले और वानरोंमें कोई बीचसे और कोई बगलसे चला ॥ ८० ॥ कोई जलमें कूद गया, कोई रास्तेपर चला और कोई आकाशमार्गसे गरुड़के समान चला ॥ ८१ ॥ सागर पार करनेवाली उस वानरी सेनाके शब्दसे समुद्रका भयङ्कर नाद छिप गया ॥ ८२ ॥ वानरोंकी वह सेना नलके पुलसे समुद्रके पार गयी । राजा सुग्रीवने फल-मूल तथा जलसे पूर्ण तीरपर उसे ठहराया ॥ ८३ ॥ रामचन्द्रका वह दुष्कर काम देखकर देवता, सिद्धों, चरणों और महर्षियोंके साथ शीघ्रही रामचन्द्रके पास आये और उनलोगोंने पृथक्-पृथक् जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ८४ ॥ नरदेव ! शत्रुओंको जीतो, सागरपर्यन्त पृथिवीका बहुत दिनोंतक पालन करो—इस प्रकार सुन्दर अनेक वचनोंसे उनलोगोंने ब्राह्मणोंके द्वारा प्रशंसित रामचन्द्रका अभिनन्दन किया ॥ ८५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ।

लक्ष्मणके बड़े भाई शुभाशुभके शकुन जाननेवाले रामचन्द्र निमित्तोंको देखकर तथा लक्ष्मणका आलिङ्गन कर बोले ॥ १ ॥ जल, फलवाले वन देखकर सेनाका विभाग करके हमलोग इसे ठहरावें ॥ २ ॥ वीर भालु, वानर और राक्षसोंके विनाशका तथा लोकके विनाशका भयङ्कर भय उपस्थित हुआ है ॥ ३ ॥

वाताश्च कलुषा वान्ति कम्पते च वसुन्धरा । पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति च महीरुहाः ॥ ४ ॥
मेघाः क्रव्यादसङ्काशाः परुषाः परुषस्वनाः । क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥ ५ ॥
रक्तचन्दनसङ्काशा सन्ध्या परमदारुणा । ज्वलतः प्रपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥ ६ ॥
दीना दीनस्वराः क्रूराः सर्वतो मृगपक्षिणः । प्रत्यादित्यं विनर्दन्ति जनयन्तो महद्भयम् ॥ ७ ॥
रजन्यामप्रकाशस्तु सन्तापयति चन्द्रमाः । कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो लोकक्षय इवोदितः ॥ ८ ॥
ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषस्तु लोहितः । आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ ९ ॥
रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च । युगान्तमिव लोकानां पश्य शंसन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥
काकाः श्येनास्तथा नीचा गृध्राः परिपतन्ति च । शिवाश्चाप्यशुभान्नादान्नदन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥
शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः । भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ १२ ॥
क्षिप्रमद्यैव दुर्धर्षां पुरीं रावणपालिताम् । अभियाम जवेनैव सर्वैर्हरिभिरावृताः ॥ १३ ॥
इत्येवमुक्त्वा धन्वी स रामः संग्रामधर्षणः । प्रतस्थे पुरतो रामो लङ्कामभिमुखो विभुः ॥ १४ ॥
सविभीषणसुग्रीवाः सर्वे ते वानरर्षभाः । प्रतस्थिरे विनर्दन्तो धृतानां द्विषतां वधे ॥ १५ ॥
राघवस्य प्रियार्थं तु सुतरां वीर्यशालिनाम् । हरीणां कर्मचेष्टाभिस्तुतोष रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

धूलसे लिपटी हवा बह रही है, पृथिवी काँपती है, पर्वतशिखर हिल रहे हैं, पेड़ गिर रहे हैं ॥ ४ ॥ मेघ राक्षसोंके समान कठोर मालूम पड़ते हैं। उनका गर्जन भी कठोर हो गया है। वे क्रूर रुधिरके बूँदोंके साथ भयङ्कर वर्षा करते हैं ॥ ५ ॥ रक्तचन्दनके समान यह सन्ध्या बड़ी भयानक मालूम पड़ती है। जलतेहुए सूर्यसे आग गिर रही है ॥ ६ ॥ दीन तथा दीनवाणी बोलनेवाले ये पशुपक्षी सवेरे और सन्ध्याको भय उत्पन्न करनेवाले शब्द बोलते हैं ॥ ७ ॥ रातमें प्रकाशहीन चन्द्रमा सन्ताप उत्पन्न करता है। चन्द्रमण्डलके प्रान्तभागकी काली और लाल किरणें लोकभयकी सूचना देती हैं ॥ ८ ॥ विमल सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दीख पड़ता है। छोटा, रूखा, कुत्सित तथा लाल परिवेश (सूर्य-चन्द्रमण्डल-के चारों ओरका घेरा) दीख पड़ता है ॥ ९ ॥ धूलि-पटलसे आच्छादित होनेके कारण नक्षत्र निष्प्रभके समान मालूम पड़ते हैं। लक्ष्मण, ये प्रलयकालकी सूचना देनेवाले हैं ॥ १० ॥ काक, बाज और नीच गीध उड़ रहे हैं। सियारिन भी भङ्कर अशुभ बोल रही है ॥ ११ ॥ पर्वतों और खुले हुए शूल, तलवार तथा राक्षसोंसे यह भूमि भर जायगी। मांस और रुधिरका कीचड़ हो जायगा ॥ १२ ॥ शीघ्रही आजही दुर्धर्ष रावणरक्षित नगरीपर हमलोग वेगसे समस्त वानरोंके साथ आक्रमण कर दें ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर धनुष लेकर संग्राम-विजयी रामचन्द्र लङ्काकी ओर आगे-आगे चले ॥ १४ ॥ विभीषण और सुग्रीव आदि वानरश्रेष्ठ गर्जन करते हुए शत्रुके वधके लिए प्रस्थित हुए ॥ १५ ॥ रामचन्द्रके प्रिय कार्यके लिए बलवान वानरोंके आचरण और उद्योग देखकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

---:*:---

चतुर्विंशः सर्गः २४

सा वीरसमिती राज्ञा विरराज व्यवस्थिता। शशिना शुभनक्षत्रा पौर्णमासीव शारदी ॥१॥
प्रचचाल च वेगेन त्रस्ता चैव वसुन्धरा। पीड्यमाना बलौघेन तेन सागरवर्चसा ॥२॥
ततः शुश्रुवुराक्रुष्टं लङ्कायां काननौकसः। भेरीमृदङ्गसंघुष्टं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥३॥
बभूवुस्तेन घोषेण संहृष्टा हरियूथपाः। अमृष्यमाणास्तद्घोषं विनेदुर्घोषवत्तरम् ॥४॥
राक्षसास्तत्प्लवङ्गानां शुश्रुवुस्तेऽपि गर्जितम्। नर्दतामिव दृप्तानां मेघानामम्बरे स्वनम् ॥५॥
दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम्। जगाम मनसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥६॥
अत्र सा मृगशावाक्षी रावणेनोपरुध्यते। अभिभूता ग्रहेणेव लोहिताङ्गेन रोहिणी ॥७॥
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य समुद्वीक्ष्य च लक्ष्मणम्। उवाच वचनं वीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥८॥
आलिखन्तीमिवाकाशमुत्थितां पश्य लक्ष्मण। मनसेव कृतां लङ्कां नगाग्रे विश्वकर्मणा ॥९॥
विमानैर्बहुभिर्लङ्का सङ्कीर्णा रचिता पुरा। विष्णोः पदमिवाकाशं छादितं पाण्डुभिर्घनैः ॥१०॥
पुष्पितैः शोभिता लङ्का वनैश्चित्ररथोपमैः। नानापतङ्गसंघुष्टफलपुष्पोपगैः शुभैः ॥११॥
पश्य मत्तविहङ्गानि प्रलीनभ्रमराणि च। कोकिलाकुलखण्डानि दोधवीति शिवोऽनिलः ॥१२॥

राजा रामचन्द्रने उस वीर सेनाको व्यूह बनाकर सजाया, जिससे वह इस प्रकार शोभित होने लगी, अनेक नक्षत्रोंसे पूर्ण शरदकी पूर्णिमा जिस प्रकार चन्द्रमा द्वारा शोभित होती है ॥ १ ॥ वह सेना सागरके समान थी, उसके भारसे पृथिवी दबी, वह वेगसे काँपने लगी और भयभीत हुई ॥ २ ॥ वनजान वानरोंने लङ्कामें चिल्लानेका शब्द सुना जो भेरी तथा मृदङ्गके शब्दोंमें मिलकर रोंगटे कँपानेवाला तथा भयानक हो गया था ॥ ३ ॥ उस चिल्लाहटसे वानर प्रसन्न हुए, तथा उस शब्दको न सहसकनेके कारण वे और भी जोर-जोरसे चिल्लाने लगे ॥ ४ ॥ राक्षसोंने भी वानरोंके उस गर्जनको सुना। उन्हें मालूम हुआ कि आकाशमें मेघ गर्ज रहे हैं ॥ ५ ॥ दाशरथी रामचन्द्रने भी लङ्काको देखा, जो अनेक प्रकारकी ध्वजा तथा पताकाओंसे सुशोभित थी। उसे देखकर रामचन्द्र दुखी मनसे सीताके पास पहुँचे, अर्थात् उन्होंने सीताका स्मरण किया ॥ ६ ॥ मृगशावाक्षी सीताको रावणने यहीं कैद कर रखा है, जिस प्रकार मङ्गल ग्रहसे रोहिणी तारा अवरुद्ध होती है ॥ ७ ॥ वे बहुत देरतक दुःखकी लम्बी साँस लेते रहे। पुनः वे लक्ष्मणकी ओर देखकर उस समयका अपना हितकारी, अर्थात् उस समय जिससे उन्हें प्रसन्नता होती थी वह, वचन बोले ॥ ८ ॥ ऊँचे उठीहुई इस लङ्काको देखो, मानो यह आकाशको छू रही हो। मालूम होता है कि इस पर्वत-शिखरपर विश्वकर्माने इसे मनसे ही बनाया हो (मनसे बनायी चीज बहुत ही सुन्दर होती है, इसी सुन्दरताको बतलानेके लिये मनसे बनायी कहा गया है) ॥ ९ ॥ सफेद मेघोंसे भरे विष्णुपद आकाशके समान यह लङ्का नगरी भी अनेक विमानोंसे परिपूर्ण है (सतमहले मकानको विमान कहते हैं) ॥ १० ॥ चित्ररथके समान पुष्पित वनोंसे यह नगरी शोभित हो रही है। अनेक तरहके सुन्दर पक्षी बोल रहें हैं तथा विविध फल-फूल लग रहें हैं ॥ ११ ॥ कोकिलोंसे भरे वृक्षसमूहको मन्दवायु कँपा रहा है, उन वृक्षों-

इति दाशरथी रामो लक्ष्मणं समभाषत । बलं च तत्र विभजच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१३॥
शशास कपिसेनां तां बलादादाय वीर्यवान् । अङ्गदः सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जयः ॥१४॥
तिष्ठेद्वानरवाहिन्या वानरौघसमावृतः । आश्रितो दक्षिणं पार्श्वमृषभो नाम वानरः ॥१५॥
गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः । तिष्ठेद्वानरवाहिन्याः सव्यं पक्षमधिष्ठितः ॥१६॥
मूर्ध्नि स्थास्याम्यहं यत्तो लक्ष्मणेन समन्वित। जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ॥१७॥
ऋक्षमुख्या महात्मानः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः। जघनं कपिसेनायाः कपिराजोऽभिरक्षतु ॥
पश्चार्धमिव लोकस्य प्रचेतास्तेजसा वृतः ॥१८॥
सुविभक्तमहाव्यूहा महावानररक्षिता । अनीकिनी सा विबभौ यथा द्यौः साभ्रसंप्लवा॥१९॥
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाणि महतश्च महीरुहान् । आसेदुर्वानरा लङ्कां मिमर्दयिषवो रणे ॥२०॥
शिखरैर्विकिरामैनां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा । इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरिपुङ्गवाः ॥२१॥
ततो रामो महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् । सुविभक्तानि सैन्यानि शुक एष विमुच्यताम्॥२२॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा वानरेन्द्रो महाबलः । मोचयामास तं दूतं शुकं रामस्य शासनात्॥२३॥
मोचितो रामवाक्येन वानरैश्च निपीडितः । शुकः परमसंत्रस्तो रक्षोधिपमुपागमत् ॥२४॥
रावणः प्रहसन्नेव शुकं वाक्यमुवाच ह । किमिमौ ते सितौ पक्षौ लूनपक्षश्च दृश्यसे ॥२५॥

पर मतवाले पक्षी बैठे हैं, और भौंरे लिपटे हैं ॥ १२ ॥ दाशरथी रामचन्द्रने लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा और उसी समय उन्होंने युद्धनियमके अनुसार सेनाका भी विभाग किया ॥ १३ ॥ पराक्रमी रामचन्द्रने उस बड़ी सेनामेंसे कुछको लेकर एक वानरी सेना बनायी और उससे कहा कि नीलके साथ अजेय अङ्गद व्यूहकी छाती पर रहें ॥ १४ ॥ वानर समूहसे रक्षित होकर ऋषभ नामक वानर वानरी सेनाके दाहिने भागमें रहें ॥ १५ ॥ मतवाले हाथीके समान पराजित न होनेवाला गन्धमादन नामक वानर भी सेनाके दहिने भागमें रहें ॥ १६ ॥ लक्ष्मणके साथ सावधान होकर मैं सेनाके सिरेपर रहूँगा। महात्मा सुषेण जाम्बवान् और वेगदर्शी ये तीन प्रधान वानर सेनाके बीचकी रक्षा करें। वानरराज सुग्रीव कपिसेनाके जघनकी रक्षा करें, जिस प्रकार तेजस्वी वरुण पश्चिम दिशाकी रक्षा करते हैं ॥ १७–१८ ॥ इस प्रकार करीनेके साथ सजायी गयी बलवान् वानरोंके द्वारा रक्षित वह महासेना, प्रलयकालीन मेघोंसे युक्त आकाशके समान मालूम हुई ॥ १९ ॥ युद्धमें लंकाको मसलनेकी इच्छा रखनेवाले वानर पर्वतोंके बड़े-बड़े शिखर तथा बड़े वृक्षोंको लेकर चले ॥ २० ॥ वानरोंने मनमें निश्चय किया कि पर्वतके शिखर गिराकर इस लंकाको नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे, अथवा मुक्कोंसे राक्षसोंको मार डालेंगे ॥ २१ ॥ अनन्तर तेजस्वी रामचन्द्रने सुग्रीवसे कहा कि अब व्यूह बन गया, अब रावणके दूत उस शुकको छोड़ दो ॥ २२ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर महाबली वानरराजने रामचन्द्रकी आज्ञासे शुक नामक दूतको छोड़ दिया ॥ २३ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे छोड़ा गया वह शुक राक्षसाधिप रावणके पास पहुँचा, वानरोंने उसे बहुत दुख दिया था, जिससे वह भयभीत हो गया था ॥ २४ ॥ रावण हँसकर उससे बोला—तुम्हारे वे श्वेत पङ्ख क्या हुए, तुम तो छिन्न-

कच्चिन्नानेकचित्तानां तेषां त्वं वशमागतः । ततः स भयसंविग्नस्तेन राज्ञाभिचोदितः ॥
वचनं प्रत्युवाचेदं राक्षसाधिपमुत्तमम् ॥२६॥
सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रुवं ते वचनं तथा । यथासंदेशमक्लिष्टं सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा॥२७॥
क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्य दृष्टमात्रः प्लवङ्गमैः । गृहीतोऽस्म्यपि चारब्धो हन्तुं लोप्तुं च मुष्टिभिः॥२८॥
न ते संभाषितुं शक्या संप्रश्नोऽत्र न विद्यते । प्रकृत्या कोपनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप॥२९॥
स च हन्ता विराधस्य कबन्धस्य खरस्य च । सुग्रीवसहितो रामः सीतायाः पदमागतः ॥३०॥
स कृत्वा सागरे सेतुं तीर्त्वा च लवणोदधिम् । एष रक्षांसि निर्धूय धन्वी तिष्ठति राघवः ॥३१॥
ऋक्षवानरसंघानामनीकानि सहस्रशः । गिरिमेघनिकाशानां छादयन्ति वसुंधराम् ॥३२॥
राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च । नैतयोर्विद्यते संधिर्देवदानवयोरिव ॥३३॥
पुरा प्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु । सीतां चास्मै प्रयच्छाशु युद्धं वापि प्रदीयताम्॥३४॥
शुकस्य वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् । रोषसंरक्तनयनो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥३५॥
यदि मां प्रति युद्ध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः । नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥३६॥
कदा समभिधावन्ति मामका राघवं शराः । वसन्ते पुष्पितं मत्ता भ्रमरा इव पादपम् ॥३७॥
कदा शोणितदिग्धाङ्गं दीप्तैः कार्मुकविच्युतैः । शरैरादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥३८॥

पक्ष-से दीख पड़ते हो ॥ २५ ॥ क्या तुम चञ्चल चित्त उन वानरोंके वशमें हो गये थे ? राजा रावणके द्वारा प्रेरित होनेपर भयसे व्याकुल वह शुक उस राक्षसाधिप रावणसे इस प्रकार बोला ॥ २६ ॥ समुद्रके उत्तर तीरपर जाकर मधुरवचनसे वानरोंको प्रसन्न करते हुए मैंने आपका कहा हुआ वह सुन्दर सन्देश सुनाया ॥ २७ ॥ देखते ही क्रोध करके वानरोंने मुझे पकड़ लिया और मुक्कोंसे मारने लगे तथा मुझे काटने लगे ॥ २८ ॥ उनसे तो कुछ पूछा ही नहीं जा सकता था, वे तो बातें करनेही लायक न थे, क्योंकि वे स्वभावसे ही तीखे तथा क्रोधी हैं ॥ २९ ॥ विराध, कबन्ध और खरके मारनेवाले वे रामचन्द्र सीताको ढूँढ़ते हुए सुग्रीवके साथ आये हैं ॥ ३० ॥ पुल बनाकर समुद्रको पारकरके धनुर्धारी रामचन्द्र राक्षसोंको तृण समझकर वहाँ वर्तमान हैं ॥ ३१ ॥ पर्वत तथा मेघोंके समान वानर भालुओंकी हजारों सेनाएँ पृथिवी-पर फैली हैं, मानो उनसे पृथिवी ढँक गयी है ॥ ३२ ॥ राक्षसों और वानरोंकी सेनामें परस्पर सन्धि नहीं हो सकती, जिस प्रकार देवता और दानवोंमें सन्धि नहीं होती ॥ ३३ ॥ जबतक वे लङ्काकी चारदीवारी-तक नहीं आते तभीतक आप अपना कर्तव्य निश्चित करलें, या तो उन्हें सीता सौंपदें या युद्धके लिए तयार हो जायँ ॥ ३४ ॥ शुकके वचन सुनकर रावण बोला । क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयी थीं, मानों वह आँखोंसे जला रहा हो ॥ ३५ ॥ यदि देवता दानव और गन्धर्व मुझसे युद्ध करें, यदि समूचा लोक मुझपर दबाव डाले, तोभी मैं सीताको नहीं दूँगा ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार वसन्त ऋतुमें मतवाले भौंरे पुष्पित वृक्षपर दौड़ते हैं, उसी प्रकार मेरे बाण रामचन्द्रकी ओर कब दौड़ेंगे ! ॥ ३७ ॥ कब मैं अपने चमकीले और धनुषसे छूटे हुए बाणोंके द्वारा रामचन्द्रके रुधिराक्त शरीरको जलाऊँगा, जिस प्रकार मशालके द्वारा हाथी

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः । ज्योतिषामिव सर्वेषां प्रभामुद्यन्दिवाकरः ॥३९॥
सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे बलम् । न च दाशरथिर्वेद तेन मां योद्धुमिच्छति ॥४०॥
न मे तूणीशयान्बाणान्सविषानिव पन्नगान् । रामः पश्यति संग्रामे तेन मां योद्धुमिच्छति ॥४१॥
न जानाति पुरा वीर्यं मम युद्धे स राघवः । मम चापमयीं वीणां शरकोणैः प्रवादिताम् ॥४२॥
ज्याशब्दतुमुलां घोरामार्तगीतमहास्वनाम् । नाराचतलसंनादां नदीमहितवाहिनीम् ॥
अवगाह्य महारङ्गं वादयिष्याम्यहं रणे ॥४३॥
न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा युद्धेऽस्मि शक्यो वरुणेन वा स्वयम् ।
यमेन वा धर्षयितुं शराग्निना महाहवे वैश्रवणेन वा स्वयम् ॥ ४४ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः २५

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे । अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥१॥
समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् । अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥२॥
सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथंचन । अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम् ॥३॥

जलाया जाता है ॥ ३८ ॥ मैं अपने महान् बलके द्वारा रामचन्द्रके बलको ढँक लूँगा, जिस प्रकार सूर्य उदित होतेही सब प्रकारके तेजोंकी प्रभाको छीन लेता है. ॥ ३९ ॥ रामचन्द्र समुद्रके समान मेरे वेगको और वायुके समान मेरे बलको नहीं जानते, इसी कारण वे मुझसे युद्ध करना चाहते हैं ॥ ४० ॥ विषैले सर्पके समान तूणीरमें सोनेवाले मेरे बाणोंको रामचन्द्रने युद्ध में नहीं देखा है, इसी कारण वे मुझसे युद्ध करना चाहते हैं ॥ ४१ ॥ रामचन्द्रको पहलेसे मेरे पराक्रमका ज्ञान नहीं है, उन्होंने मेरी धनुषरूपी वीणाको नहीं देखा है जो, बाणोंसे बजायी जाती है ॥ ४२ ॥ प्रत्यंचाके शब्दही जिसके भयानक शब्द हैं, दुःखके गानही जिसके फैलनेवाले शब्द हैं, बाण-तलसे उठनेवाले शब्दही जिसके नाद हैं। वह नदीरूप शत्रुसेनाही एक रंगशाला है उसमें प्रवेश करके मैं बाजा बजाऊँगा ॥ ४३ ॥ युद्धमें मैं सहस्राक्ष इन्द्रके द्वारा, स्वयं वरुणके द्वारा, यम या कुबेरके द्वारा बाणाग्निसे नहीं जलाया जा सकता ॥४४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२४॥

सेनाके साथ रामचन्द्रके समुद्रपार करनेपर अर्थात् इसकी खबर पानेपर रावण शुक और सारण नामक अपने सचिवोंसे बोला ॥ १ ॥ कठिनतासे पार करनेयोग्य समुद्रको समस्त वानरी सेनाने पार किया और रामचन्द्रने समुद्रपर पुल बनाया—यह अभूतपूर्व है, आजतक ऐसा काम किसीने नहीं किया था ॥ २ ॥ समुद्रपर सेतु बनानेकी बातका मैं किसी प्रकार विश्वास नहीं कर सकता । मैं तो उस वानरी

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ । परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवंगमाः ॥४॥
मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सङ्गताः । ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवंगमाः ॥५॥
स च सेतुर्यथा बद्धः सागरे सलिलार्णवे । निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥६॥
रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च । लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः ॥७॥
कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महात्मनाम् । तच्च ज्ञात्वा यथातत्त्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः ॥८॥
इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ । हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥९॥
ततस्तद्वानरं सैन्यमचिन्त्यं लोमहर्षणम् । संख्यातुं नाध्यगच्छेतां तदा तौ शुकसारणौ ॥१०॥
तत्स्थितं पर्वताग्रेषु निर्झरेषु गुहासु च । तरमाणं च तीर्णं च तर्तुकामं च सर्वशः ॥११॥
निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् । तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ॥१२॥
तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः । आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥१३॥
तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ । लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरंजय ॥१४॥
तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तथा । कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥१५॥
आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहिताबुभौ । परिज्ञातुं बलं सर्वं तदिदं रघुनन्दन ॥१६॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः । अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥१७॥
यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः । यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥१८॥

सेनाकी संख्या जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ इस कारण आप दोनों छिपकर वानरी सेनामें जाँय और सेनाकी संख्या, उसका पराक्रम, प्रधान वानर, राम और सुग्रीवके मन्त्री जो उनके साथ आये हैं, जो सेनाके आगे चलते हैं तथा जो वानर वीर हैं, रामचन्द्रने समुद्रपर किस प्रकार पुल बनाया है, महात्मा वानरोंकी सेनाका सन्निवेश, वीर लक्ष्मण और राम क्या करना चाहते हैं, उनके अस्त्र-शस्त्र क्या हैं, वे कैसे पराक्रमी हैं—इन बातोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें ॥ ४-७ ॥ उन महात्मा वानरोंका सेनापति कौन है इस बातको ठीक-ठीक जानकर आपलोग मेरे पास आवें ॥ ८ ॥ रावणकी ऐसी आज्ञा पाकर शुक और सारण दोनों वीर राक्षस वानरका रूप बनाकर वानरी सेनामें गये ॥ ९ ॥ वे दोनों शुक और सारण उस विशाल तथा भयानक सेनाकी संख्या नहीं कर सके ॥ १० ॥ वह सेना पर्वतशिखरोंपर निर्झर और गुहाओंतक फैली थी, कुछ लोग समुद्र पार कर चुके थे, कुछ लोग पार कर रहे थे और कुछ पार करना चाहते थे ॥ ११ ॥ भयङ्कर नाद करनेवाले कुछ सैनिक ठहर गये थे और कुछ ठहर रहे थे। दोनों राक्षसोंने उस अजेय सेनाको देखा ॥ १२ ॥ तेजस्वी विभीषणने छिपे उन राक्षसोंको देख लिया, उन्होंने उन्हें पकड़कर रामचन्द्रसे कहा ॥ १३ ॥ उस राक्षसराजके ये दोनों मन्त्री हैं। इनके नाम शुक और सारण हैं। हे शत्रुके नगर जीतने-वाले, ये दोनों गुप्तदूत बनकर लङ्कासे आये हैं ॥ १४ ॥ वे दोनों बहुत दुखी तथा अपने जीवनसे निराश हो गये थे, वे रामचन्द्रको देखकर हाथजोड़कर डरते-डरते उनसे बोले ॥ १५ ॥ रघुनन्दन, हम दोनों रावणके भेजनेसे यहाँ आये हैं, आपकी सेनाका पता लगानेके लिए हमलोग आये हैं ॥ १६ ॥ उनकी बातें सुनकर सब प्राणियोंके हित चाहनेवाले रामचन्द्र हँसकर उनसे बोले ॥ १७ ॥ यदि तुमलोगोंने सेना

अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः। विभीषणो वा कात्स्न्येंन पुनः संदर्शयिष्यति ॥१९॥
न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति। न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हतः॥२०॥
प्रच्छन्नौ च विमुञ्चैमौ चारौ रात्रिंचरावुभौ। शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षिणौ॥२१॥
प्रविश्य महतीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः। वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम॥२२॥
यद्बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि। तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः॥२३॥
श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्। रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया॥२४॥
क्रोधं भीममहं मोक्ष्ये ससैन्ये त्वयि रावण। श्वः काल्ये वज्रवान्वज्रं दानवेष्विव वासवः॥२५॥
इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ। जयेति प्रतिनन्द्यैनं राघवं धर्मवत्सलम्॥२६॥
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम्। विभीषणगृहीतौ तु वधार्थं राक्षसेश्वर॥२७॥
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा। एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः॥२८॥
लोकपालसमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः। रामो दाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणश्च विभीषणः॥२९॥
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः। एते शक्ताः पुरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्॥३०॥
उत्पाट्य संक्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः। यादृशं तद्धि रामस्य रूपं प्रहरणानि च॥३१॥

देख ली हो, हमलोगोंके बलका भी पता पा लिया हो, यदि रावणके कहे कामकर लिये हों, तो तुमलोग स्वेच्छापूर्वक जा सकते हो॥ १८॥ यदि कुछ देखना बाकी रह गया हो तो पुनः देख लो। विभीषण तुमलोगोंको सब अच्छी तरह दिखा देंगे॥ १९॥ तुमलोग पकड़े गये हो, इसलिए अपने जीवनके लिए भयभीत न होओ, क्योंकि शस्त्रहीन पकड़े गये दूत वध करनेके अयोग्य हैं॥ २०॥ विभीषण, ये राक्षस गुप्तदूत छिपकर हमलोगोंकी कमजोरीका पता लगाते थे, सुग्रीव आदिको फोड़ना चाहते थे, इस प्रकार ये शत्रुपक्षके हैं तथापि इन्हें छोड़ दो॥ २१॥ विशाल नगरी लङ्कामें जाकर कुबेरके छोटे भाई और राक्षसोंके राजा रावणसे तुमलोग, जैसा मैं कहता हूँ वैसा, कहना॥२२॥ जिस बलके घमंडमें आकर तुमने रामचन्द्रकी सीताका हरण किया है, अब वह बल, अपनी सेना तथा बान्धवोंके साथ, अच्छी तरह दिखावें॥ २३॥ कल प्रातःकाल मैं अपने बाणोंसे तोरण और चारदीवारीके साथ समस्त लङ्कानगरीका नाश कर दूँगा और राक्षसी सेनाका भी नाश कर दूँगा। तुम लोग देखना॥ २४॥ रावण कल प्रातःकाल सेनाके साथ तुमपर क्रोध करूंगा, जिस प्रकार वज्रधारी इन्द्र दानवोंपर वज्र छोड़ते हैं॥ २५॥ रामचन्द्रके ऐसा सन्देश कहनेपर शुक और सारण दोनों धर्मवत्सल रामचन्द्रका जयशब्दसे अभिनन्दन किया॥ २६॥ लङ्कानगरीमें आकर राक्षसाधिप रावणसे बोले—राक्षसेश्वर! हमलोगोंको विभीषणने वधके लिए पकड़ लिया था॥ २७॥ अमित तेजस्वी धर्मात्मा रामचन्द्रने हमको देख लिया और छुड़वा दिया। ये चारों पुरुषश्रेष्ठ यदि एक स्थानपर इकट्ठे हो जाँय, जो लोकपालोंके समान वीर अस्त्रनिपुण तथा दृढ़पराक्रमी हैं, दशरथपुत्र श्रीमान् राम-लक्ष्मण, विभीषण और तेजस्वी इन्द्रके समान पराक्रमी सुग्रीव, तो समस्त लङ्कापुरीको तोरण तथा चारदीवारीके साथ उखाड़कर फेंक सकते हैं, और वानर अलग बैठे रहें। रामचन्द्रका जैसा रूप है, जैसे अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि वे अकेलेही समस्त लङ्कानगरीका नाश कर देंगे, वे तीनों बैठेही

वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः। रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥३२॥
प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महात्मनां वनौकसां संप्रति योद्धुमिच्छताम्।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥२५॥



षड्विंशः सर्गः २६

तद्वचः सत्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम्। निशम्य रावणो राजा पर्यभाषत सारणम् ॥१॥
यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवाः। नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोकभयादपि ॥२॥
त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिः पीडितो भृशम्। प्रतिप्रदानमद्यैव सीतायाः साधु मन्यसे ॥३॥
को हि नाम सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति। इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥४॥
आरुरोह ततः श्रीमान्प्रासादं हिमपाण्डुरम्। बहुतालसमुत्सेधं रावणोऽथ दिदृक्षया ॥५॥
ताभ्यां चराभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्च्छितः। पश्यमानः समुद्रं तं पर्वतांश्च वनानि च ॥६॥
ददर्श पृथिवीदेशं सुसंपूर्णं प्लवंगमैः। तदपारमसह्यं च वानराणां महाबलम् ॥७॥
आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम्। एषां के वानरा मुख्याः के शूराः के महाबलाः ॥८॥

रहें। राम, लक्ष्मण और सुग्रीवके द्वारा उस सेनाकी रक्षा होती है इस कारण देवता और असुरोंके लिए भी उस सेनासे युद्धकरना असंभव हो गया है ॥ २८—३२ ॥ युद्धकी इच्छा रखनेवाले वानरोंकी उस सेनाके योद्धा प्रसन्न हैं, रामचन्द्रमें अनुराग रखनेवाले हैं, इनसे विरोध करना व्यर्थ है, आप सुलह करलें, रामचन्द्रको सीता देदें ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥



सारणका कहा वह सच्चा और तेजस्वी वचन सुनकर राजा रावण सारणसे बोला ॥ १ ॥ देवता, दानव और गन्धर्व मुझसे युद्ध करें अथवा सब लोकोंका दबाव भी मुझपर पड़े तौभी मैं सीताको नहीं दूँगा ॥ २ ॥ भाई, तुमको वानरोंने बहुत सताया है इसी कारण तुम आज ही सीताको लौटा देनेको अच्छा समझ रहे हो ॥ ३ ॥ कौन शत्रु यद्धमें मुझको जीत सकता है?—ऐसा कठोर वचन कहकर राक्षस-राज रावण बर्फके समान श्वेत अटारीपर सेना देखनेके लिए चढ़ा। वह अटारी कई ताल (वृक्ष) ऊँची थी ॥ ४—५ ॥ उन दोनों दूतोंके साथ अत्यन्त क्रुद्ध रावण पर्वत, वन तथा समुद्रको देखने लगा ॥ ६ ॥ उसने देखा कि समूची पृथिवी वानरोंसे भर गयी है। वानरोंकी वह सेना विशाल थी और उसका आक्रमण सहने-के अयोग्य था ॥ ७ ॥ उस सेनाको देखकर रावणने सारणसे पूछा—इनमें कौन वानर प्रधान है, कौन शूर है

के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः । केषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः ॥९॥
सारणाचक्ष्व मे सर्वं किंप्रभावाः प्लवंगमाः । सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः ॥१०॥
आवभाषेऽथ मुख्यज्ञो मुख्यांस्तत्र वनौकसः । एष योऽभिमुखो लङ्कां नर्दंस्तिष्ठति वानरः ॥११॥
यूथपानां सहस्रेण शतेन परिवारितः । यस्य घोषेण महता सप्राकारा सतोरणा ॥१२॥
लङ्का प्रतिहता सर्वा सशैलवनकानना । सर्वशाखामृगेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥१३॥
बलाग्रे तिष्ठते वीरो नीलो नामैष यूथपः । बाहू प्रगृह्य यः पद्भ्यां महीं गच्छति वीर्यवान् ॥१४॥
लङ्कामभिमुखः कोपादभीक्ष्णं च विजृम्भते । गिरिशृङ्गप्रतीकाशः पद्मकिंजल्कसंनिभः ॥१५॥
स्फोटयत्यतिसंरब्धो लांगूलं च पुनः पुनः । यस्य लांगूलशब्देन स्वनन्ति प्रदिशो दश ॥१६॥
एष वानरराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः । युवराजोऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे ॥१७॥
वालिनः सदृशः पुत्रः सुग्रीवस्य सदा प्रियः । राघवार्थे पराक्रान्तः शक्रार्थे वरुणो यथा ॥१८॥
एतस्य सा मतिः सर्वा यद्दृष्टा जनकात्मजा । हनूमता वेगवता राघवस्य हितैषिणा ॥१९॥
बहूनि वानरेन्द्राणामेष यूथानि वीर्यवान् । परिगृह्याभियाति त्वां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥२०॥
अनुवालिसुतस्यापि बलेन महता वृतः । वीरस्तिष्ठति संग्रामे सेतुहेतुरयं नलः ॥२१॥
ये तु विष्टभ्य गात्राणि क्ष्वेडयन्ति नदन्ति च । य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्दनवासिनः ॥२२॥
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् । श्वेतो रजतसंकाशश्चपलो भीमविक्रमः ॥२३॥

और कौन बली है ॥ ८ ॥ इनमें कौन सेनाके आगे चलता है, कौन सदा उत्साही है, सुग्रीव किसकी सलाह मानता है, इनमें कौन प्रधान सेनापति है ॥ ९ ॥ इन वानरोंका कैसा प्रभाव है, यह सब, हे सारण ! तुम मुझसे कहो । इस प्रकार रावणके पूछनेपर सारण प्रधान वानरोंको बतलाने लगा, क्योंकि वह जानता था कि कौन प्रधान है । यह जो वानर लङ्काकी ओर मुँह करके गर्ज रहा है, ॥ १०, ११ ॥ जिसके साथ एक लाख सेना है, जिसके गर्जनसे प्राकार और तोरण पर्वत तथा वनसहित लङ्कानगरीकी शोभा नष्ट हो गयी है, और जो सब वानरोंके अधिपति महात्मा सुग्रीव तथा सेनाके आगे चलता है वह सेनापति नील है । जो पराक्रमी हाथ बाँधकर पैरोंसे पृथिवीपर चलता है, जो क्रोध करके लङ्काकी ओर अँगड़ाई लेता है, जो पर्वतशिखरके समान विशाल है, कमलकेशरके समान जिसका वर्ण है, जो क्रोधके कारण बार-बार पूँछ पटक रहा है और जिसके शब्दसे दशों दिशाएँ प्रतिध्वनित होती हैं, यह युवराज अङ्गद है जिसका अभिषेक वानरराज सुग्रीवने किया है, वह युद्धके लिए तुम्हें बुला रहा है ॥१२—१७॥ यह वालिका पुत्र अपने पिताके समान है, रामचन्द्रके लिए पराक्रम करनेको तयार है, जिस प्रकार इन्द्रके लिए वरुण तयार रहते हैं ॥ १८ ॥ इसीकी बुद्धिका वह प्रभाव था जो रामचन्द्रके हितकारी वेगवान् हनुमानने सीताका पता लगाया ॥ १९ ॥ पराक्रमी यह अनेक वानरोंके यूथ लेकर अपनी सेनासे तुमको मसलनेके लिये आता है ॥२०॥ वालिपुत्र अङ्गदके पीछे बड़ी भारी सेनाके साथ जो वीर युद्धके लिए तैयार है वह नल है और उसी-ने सेतु बनाया है ॥ २१ ॥ शरीरको फैलाकर जो क्रीड़ा करते हैं तथा गर्जन करते हैं ये चन्दनवासी वीर वानर इसी नलके साथ हैं । वह श्वेत नामक वानर बड़ा पराक्रमी और चंचल है, यह चाँदीके समान स्वच्छ वानर

बुद्धिमान्वानरः शूरस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः ॥२४॥
विभजन्वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन्। यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्येति पर्वतम् ॥२५॥
नाम्ना संरोचनो नाम नानानगयुतो गिरिः। तत्र राज्यं प्रशास्त्येष कुमुदो नाम यूथपः ॥२६॥
योऽसौ शतसहस्राणि सहर्षं परिकर्षति। यस्य वाला बहुव्यामा दीर्घलांगूलमाश्रिताः ॥२७॥
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरदर्शनाः। अदीनो वानरश्चण्डः संग्राममभिकाङ्क्षति।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २८ ॥
यस्त्वेष सिंहसंकाशः कपिलो दीर्घकेसरः। निभृतः प्रेक्षते लङ्कां दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥२९॥
विन्ध्यं कृष्णगिरिं सह्यं पर्वतं च सुदर्शनम्। राजन्सततमध्यास्ते स रम्भो नाम यूथपः।
शतं शतसहस्राणां त्रिंशच्च हरिपुङ्गवाः ॥३०॥
यं यान्तं वानरा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः। परिवार्यानुगच्छन्ति लंकां मर्दितुमोजसा ॥३१॥
यस्तु कर्णौ विवृणुते जृम्भते च पुनः पुनः। न तु संविजते मृत्योर्न च सेनां प्रधावति ॥३२॥
प्रकम्पते च रोषेण तिर्यक्च पुनरीक्षते। पश्य लाङ्गूलविक्षेपं क्ष्वेडत्येष महाबलः ॥३३॥
महौजसा वीतभयो रम्यं साल्वेयपर्वतम्। राजन्सततमध्यास्ते शरभो नाम यूथपः ॥३४॥
एतस्य बलिनः सर्वे विहारा नाम यूथपाः। राजञ्छतसहस्राणि चत्वारिंशत्तथैव च ॥३५॥
यस्तु मेघ इवाकाशं महानावृत्य तिष्ठति। मध्ये वानरवीराणां सुराणामिव वासवः ॥३६॥

अपनी सेनासे लङ्काको मसल डालना चाहता है ॥ २२-२३ ॥ यह वानर बुद्धिमान और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वीर है, यह सुग्रीवके पास आकर शीघ्र लौट जाता है, ॥ २४ ॥ यह वानरी सेनाका विभाग करता है तथा सैनिकोंको प्रसन्न करता है, यही श्वेत नामक वानर है। गोमती तीरके रमणीय पर्वतपर जो प्रयाण करता है, जिस पर्वतका नाम संरोचन है, जिसमें छोटे-छोटे अनेक पर्वत हैं, उसीपर यह कुमुद नामका सेनापति राज्य करता है ॥२५-२६॥ जिसके साथ एक लाख सेना है और जिसकी लम्बी पूँछपर लम्बे-लम्बे वाल हैं, ॥ २७ ॥ जिसके वाल लाल, पीले, श्वेत और काले हैं इधर-उधर फैले हैं तथा देखनेमें भयानक हैं, यह चण्ड नामक वानर है, जो कभी दीन नहीं होता। यह भी युद्ध करना चाहता है तथा अपनी सेनासे लंकाको मसल डालना चाहता है ॥२८॥ जो यह सिंहके समान पीला है तथा जिसके गलेके वाल लम्बे-लम्बे हैं, जो ध्यान लगाकर लंकाको देख रहा है मानों आँखोंसे लंकाको जलाना चाहता हो, विन्ध्य, कृष्ण और देखनेमें सुन्दर सह्य इन पर्वतोंपर सदा निवास करता है वह रम्भनामका सेनापति है। इसके साथ एक लाख एकसौ तीस वानर रहते हैं ॥२९-३०॥ ये भयानक क्रोधी और विकट पराक्रमी वानर रामके साथ अपने पराक्रमसे लंकाको मसल डालनेके लिए चलते हैं ॥३१॥ जो कानोंको फटफटाता है वारवार जँभाई लेता है, जो मृत्युसे भी नहीं डरता तथा सेनाकी ओर नहीं जाता, ॥३२॥ जो क्रोधसे काँप रहा है तथा तिरछे देखता है, जो महाबली पूँछ पटककर खेलता है, ॥३३॥ अधिक पराक्रमके कारण जो निर्भय रहता है, राजन्! वह शरभ नामक सेनापति है तथा रमणीय साल्वेय पर्वतपर सदा निवास करता है ॥ ३४ ॥ इस वीरके एक लाख चालीस सेनापति हैं, जो सभी विहार कहे जाते हैं ॥ ३५ ॥ जो विशाल वानर मेघके समान आकाशतक फैला हुआ है, जो वीर वानरोंमें देवताओं

भेरीणामिव संनादो यस्यैष श्रूयते महान्। घोषः शाखामृगेन्द्राणां संग्राममभिकाङ्क्षताम् ॥३७॥
एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम्। युद्धे दुष्प्रसहो नित्यं पनसो नाम यूथपः ॥३८॥
एनं शतसहस्राणां शतार्धं पर्युपासते। यूथपा यूथपश्रेष्ठं येषां यूथानि भागशः ॥३९॥
यस्तु भीमां प्रवल्गन्तीं चमूं तिष्ठति शोभयन्। स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः ॥४०॥
एष दर्दुरसंकाशो विनतो नाम यूथपः। पिबंश्चरति यो वेणां नदीनामुत्तमां नदीम् ॥४१॥
षष्टिः शतसहस्राणि बलमस्य प्लवंगमाः। त्वामाह्वयति युद्धाय क्रथनो नाम वानरः ॥४२॥
विक्रान्ता बलवन्तश्च यथा यूथानि भागशः। यस्तु गैरिकवर्णाभं वपुः पुष्यति वानरः ॥४३॥
अमवत्य सदा सर्वान्वानरान्बलदर्पितः। गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधादभिवर्तते ॥४४॥
एनं शतसहस्राणि सप्ततिः पर्युपासते। एषैवाशंसते लंकां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥४५॥
एते दुष्प्रसहा वीरा येषां संख्या न विद्यते। यूथपा यूथपश्रेष्ठास्तेषां यूथानि भागशः ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशः सर्गः २७

तांस्तु ते सम्प्रवक्ष्यामि प्रेक्षमाणस्य यूथपान्। राघवार्थे परिक्रान्ता ये न रक्षन्ति जीवितम् ॥१॥
स्निग्धा यस्य बहुव्यामा दीर्घलांगूलमाश्रिताः। ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥२॥

में इन्द्रके समान मालूम पड़ता है, ॥ ३६ ॥ भेरीके समान जिसका शब्द सुन पड़ता है, युद्धचाहनेवाले वानरोंका भी गर्जन सुन पड़ता है, ॥ ३७ ॥ यह श्रेष्ठ पारियात्र पर्वतपर रहता है, यह युद्धमें असह्य है, यह पनस नामका सेनापति हैं ॥ ३८ ॥ इसके पास पचास हजार सेना है। इसके सेनापति अपने प्रधान सेनापतिकी सेवा करते हैं, इनकी सेनाएँ अलग-अलग हैं ॥ ३९ ॥ जो लम्बी-चौड़ी उछलती हुई सेनाके मध्यमें रहकर उसको शोभित करता है और जो समुद्रतीरपर दूसरे समुद्रके समान वर्तमान है, ॥ ४० ॥ गङ्गातीरके दर्दुर नामक पर्वतके समान विशाल यह विनत नामका सेनापति है, जो नदियोंमें श्रेष्ठ वेणा नदीका जल पीता है ॥ ४१ ॥ साठ हजार वानर इसकी सेनामें हैं। तुमको युद्धके लिए क्रथन नामक वानर बुला रहा है ॥४२॥ बलवान् और वेगवान् इसके सेनापति हैं, सेना भी इसकी ऐसी ही है और अलग-अलग है। जिस वानरका शरीर गेरुके समान लाल है, जो बलके अहंकारसे सदा सब वानरोंका तिरस्कार करता है, वह गवय नामक सेनापति है और वह क्रोध करके तुम्हारी ओर आ रहा है ॥ ४३, ४४ ॥ एक लाख सत्तर वानर इसकी सेनामें हैं, यह भी अपनी सेनासे लंकाको मसलना चाहता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार ये सभी वीर युद्धमें सहनेके अयोग्य हैं, इनकी संख्या नहीं की जा सकती। ऐसे ही सेनापति तथा प्रधान सेनापति हैं और इनकी सेनाएँ भी अलग-अलग हैं ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

आप सेनापतियोंको देख रहे हैं इसलिए मैं उनका परिचय दूँगा जो अपने जीवनकी चिन्ता छोड़कर युद्ध करनेके लिए उद्यत है, ॥ १ ॥ जिसकी लम्बी पूँछपर लम्बे और चिकने बाल हैं, जो लाल,

प्रगृहीताः प्रकाशन्ते सूर्यस्येव मरीचयः । पृथिव्यां चानुकृष्यन्ते हरो नामैष वानरः ॥३॥
यं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः । वृक्षानुद्यम्य सहसा लङ्कारोहणतत्पराः ॥४॥
यूथपा हरिराजस्य किंकराः समुपस्थिताः । नीलानिव महामेघांस्तिष्ठतो यांस्तु पश्यसि ॥५॥
असिताञ्जनसंकाशान्युद्धे सत्यपराक्रमान् । असंख्येयाननिर्देश्यान्परं पारमिवोदधेः ॥६॥
पर्वतेषु च ये केचिद्विषयेषु नदीषु च । एते त्वामभिवर्तन्ते राजन्नृक्षाः सुदारुणः ॥७॥
एषां मध्ये स्थितो राजा भीमाक्षो भीमदर्शनः। पर्जन्य इव जीमूतैः समन्तात्परिवारितः ॥८॥
ऋक्षवन्तं गिरिश्रेष्ठमध्यास्ते नर्मदां पिबन् । सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रो नामैष यूथपः ॥९॥
यवीयानस्य तु भ्राता पश्यैनं पर्वतोपमम् । भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टश्च पराक्रमे ॥१०॥
स एष जाम्बवान्नाम महायूथपयूथपः । प्रशान्तो गुरुवर्ती च संप्रहारेष्वमर्षणः ॥११॥
एतेन साह्यं तु महत्कृतं शक्रस्य धीमता । देवासुरे जाम्बवता लब्धाश्च बहवो वराः ॥१२॥
आरुह्य पर्वताग्रेभ्यो महाभ्रविपुलाः शिलाः । मुञ्चन्ति विपुलाकारा न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥१३॥
राक्षसानां च सदृशाः पिशाचानां च रोमशाः । एतस्य सैन्या बहवो विचरन्त्यमितौजसः ॥१४॥
य एनमभिसंरब्धं प्लवमानमवस्थितम् । प्रेक्षन्ते वानराः सर्वे स्थितं यूथपयूथपम् ॥१५॥
एष राजन्सहस्राक्षं पर्युपास्ते हरीश्वरः । बलेन बलसंयुक्तो रम्भो नामैष यूथपः ॥१६॥

पीले, काले और सफेद हैं और जो इधरउधर बिखरे हुए हैं। वह वानर भयानक काम करनेवाला है ॥२॥ जिसके बालसूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रहे हैं और जमीनमें घसिट रहे हैं वह हर नामका वानर है ॥३॥ सैकड़ों हजारों वानर लंकापर आक्रमण करनेकी इच्छासे जिसके पीछे पेड़ लेकर चलते हैं ॥४॥ वे यूथप हैं और सुग्रीवके किंकर हैं। नीले मेघके समान जिनको बैठे आप देख रहे हैं जो अञ्जनके समान काले हैं ये सच्चे पराक्रमी हैं, समुद्रके उस पारकर धूलिके समान असंख्येय हैं और जिनका पृथक्-पृथक् परिचय देना असम्भव है, ये पर्वतों, देशों और नदियोंके तीरपर रहते हैं, ये भयानक भालु आक्रमण करनेके लिए आ रहे हैं ॥५-७॥ इनके बीचमें इनका राजा है जिसकी आँखें भयानक हैं और जो देखनेमें भयानक है, मेघोंसे घिरे पर्जन्य (वृष्टिके देवता) के समान मालूम पड़ता है ॥ ८ ॥ पर्वतश्रेष्ठ ऋक्षवान्पर यह रहता है और नर्मदाका जल पीता है। सब भालुओंका यह राजा और सेनापति है इसका नाम धूम्र है ॥ ६ ॥ इसके छोटे भाईको देखो, जो पर्वतके समान विशाल है, इसका रूप भी भाईहीके समान है और पराक्रममें यह उससे बड़ा है ॥ १० ॥ इसका नाम जाम्बवान् है। यह सेनापतियोंका सेनापति है, यह शान्त गुरु सेवक और युद्धमें क्रोधी हैं ॥ ११ ॥ इस जाम्बवान्ने देवासुर संग्राममें इन्द्रकी बड़ी सहायता की थी, जिससे इसको बहुतसे वर मिले थे ॥ १२ ॥ इसके अनेक सैनिक हैं और वे बड़े पराक्रमी हैं। राक्षसों और पिशाचोंके समान वे क्रूर हैं उनके लम्बे-लम्बे बाल हैं, पर्वत-शिखरोंसे ये मेघके समान विशाल पत्थर फेंकते हैं और मृत्युसे भी नहीं डरते ॥ १३-१४ ॥ जो यह कूद रहा है और क्रोधी-सा मालूम पड़ता है तथा जिस प्रधान सेनापतिकी ओर सभी वानर देख रहे हैं, इसका नाम रम्भ है, यह सेनापति बड़ा बलवान् है, राजन्-

यः स्थितं योजने शैलं गच्छन्पार्श्वेन सेवते । ऊर्ध्वं तथैव कायेन गतःप्राप्नोति योजनम् ॥१७॥
यस्मात्तु परमं रूपं चतुष्पात्सु न विद्यते । श्रुतः संनादनो नाम वानराणां पितामहः ॥१८॥
येन युद्धं तदा दत्तं रणे शक्रस्य धीमता । पराजयश्च न प्राप्तः सोऽयं यूथपयूथपः ॥१९॥
यस्य विक्रममाणस्य शक्रस्येव पराक्रमः । एष गन्धर्वकन्यायामुत्पन्नः कृष्णवर्त्मना ॥२०॥
तदा देवासुरे युद्धे साह्यार्थं त्रिदिवौकसाम् । यत्र वैश्रवणो राजा जम्बूमुपनिषेवते ॥२१॥
यो राजा पर्वतेन्द्राणां बहुकिंनरसेविनाम् । विहारसुखदो नित्यं भ्रातुस्ते राक्षसाधिप ॥२२॥
तत्रैष रमते श्रीमान्बलवान्वानरोत्तमः । युद्धेष्वकत्थनो नित्यं क्रथनो नाम यूथपः ॥२३॥
वृतः कोटिसहस्रेण हरीणां समवस्थितः । एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥२४॥
यो गङ्गामनुपर्येति त्रासयन्गजयूथपान् । हस्तिनां वानराणां च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥२५॥
एष यूथपतिर्नेता गर्जन्गिरिगुहाशयः । गजान्रोधयते वन्यानारुजंश्च महीरुहान् ॥२६॥
हरीणां वाहिनीमुख्यो नदीं हैमवतीमनु । उशीरबीजमाश्रित्य मन्दरं पर्वतोत्तमम् ॥२७॥
रमते वानरश्रेष्ठो दिवि शक्र इव स्वयम् । एनं शतसहस्राणां सहस्रमभिवर्तते ॥२८॥
वीर्यविक्रमदृप्तानां नर्दतां बाहुशालिनाम् । स एष नेता चैतेषां वानराणां महात्मनाम्॥२९॥
स एष दुर्धरो राजन्प्रमाथी नाम यूथपः । वातेनेवोद्धतं मेघं यमेनमनुपश्यसि ॥३०॥
अनीकमपि संरब्धं वानराणां तरस्विनाम् । उद्धूतमरुणाभासं पवनेन समन्ततः ॥३१॥

यह अपनी सेनासे इन्द्रकी सहायता करता है ॥ १५-१६ ॥ जो एक योजन लम्बा है, चलनेके समय जो बगलसे पर्वतको छूता जाता है और जिसका शरीर एक योजन लम्बा है, ॥ १७ ॥ जिससे बड़ा रूप चार पैरवाले पशुओंमें नहीं है, इसका नाम सन्नादन है तथा यह वानरोंका पितामह कहा जाता है ॥ १८ ॥ जिस बुद्धिमानने इन्द्रके साथ युद्ध किया था और पराजित नहीं हुआ था, वही प्रधान सेनापति यह सन्नादन है ॥ १९ ॥ जो युद्धके लिए प्रस्थान करते समय इन्द्रके समान मालूम पड़ता है, यह गन्धर्वकन्यामें अग्निसे उत्पन्न हुआ है ॥ २० ॥ देवासुरसंग्राममें देवताओंकी सहायताके लिए यह उत्पन्न किया गया था । राक्षसाधिप ! अनेक किन्नर जिसकी सेवा करते हैं, जो बड़े-बड़े पर्वतोंका राजा है और जहाँ कुबेर जम्बू वृक्षके पास निवास करते हैं और जो तुम्हारे भाई कुबेरका सदाके लिए सुखकारी विहारस्थान है, वहीं यह बली वानरश्रेष्ठ विहार करता है, युद्धमें यह अपनी प्रशंसा नहीं करता, इसका नाम क्रथन है और यह सेनापति है । इसके साथ एक करोड़ एक हजार वानर रहते हैं, यही अपनी सेनासे लङ्काको मसलनेकी इच्छा रखता है ॥ २१—२४ ॥ वानर और हाथियोंके पुराने वैरका स्मरण करके गङ्गातीरपर गजयूथपतियोंको भयभीत करता है, पर्वत-कन्दराओंमें रहनेवाला यह सेनापति नेता बनकर वृक्षोंको तोड़कर हाथियोंका मार्ग रोक देता है, हाथियोंसे वृक्षोंको और वृक्षोंसे हाथियोंको मारता है, यह वानरश्रेष्ठ वानरी-सेनाका प्रधान सेनापति है, यह मन्दर पर्वतके उशीरबीज नामक शिखरपर विहार करता है, जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्र विहार करता है । उत्साही और पराक्रमी एक हजार लाख वानरोंका यह नेता है ॥ २५-२९ ॥ यह युद्धमें अजेय प्रमाथी नामका सेनापति है, जिसको आप वायुसे उड़ाये मेघके समान देख रहे हैं ॥ ३० ॥

विवर्तमानं बहुशो यत्रैतद्बहुलं रजः। एते सितमुखा घोरा गोलांगूला महाबलाः॥३२॥
शतं शतसहस्राणि दृष्ट्वा वै सेतुबन्धनम्। गोलांगूलं महाराज गवाक्षं नाम यूथपम्॥३३॥
परिवार्याभिनर्दन्ते लङ्का मर्दितुमोजसा। भ्रमराचरिता यत्र सर्वकालफलद्रुमाः॥३४॥
यं सूर्यस्तुल्यवर्णाभमनुपर्येति पर्वतम्। यस्य भासा सदा भान्ति तद्वर्णा मृगपक्षिणः॥३५॥
यस्य प्रस्थं महात्मानो न त्यजन्ति महर्षयः। सर्वकामफला वृक्षाः सर्वे फलसमन्विताः॥३६॥
मधूनि च महार्हाणि यस्मिन्पर्वतसत्तमे। तत्रैष रमते राजन्रम्ये काञ्चनपर्वते॥३७॥
मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः। षष्टिर्गिरिसहस्राणि रम्याः काञ्चनपर्वताः॥३८॥
तेषां मध्ये गिरिवरस्त्वमिवानघ रक्षसाम्। तत्रैके कपिलाः श्वेतास्ताम्रास्या मधुपिङ्गलाः॥३९॥
निवसन्त्यन्तिमगिरौ तीक्ष्णदंष्ट्रा नखायुधाः। सिंहा इव चतुर्दंष्ट्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः॥४०॥
सर्वे वैश्वानरसमा ज्वलदाशीविषोपमाः। सुदीर्घाञ्चितलांगूला मत्तमातंगसंनिभाः॥४१॥
महापर्वतसंकाशा महाजीमूतनिःस्वनाः। वृत्तपिङ्गलनेत्रा हि महाभीमगतिस्वनाः॥४२॥
मर्दयन्तीव ते सर्वे तस्थुर्लङ्कां समीक्ष्य ते। एष चैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति वीर्यवान्॥४३॥
जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति वीर्यवान्। नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजञ्शतवलीति यः॥४४॥
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम्। विक्रान्तो बलवाञ्छूरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः॥४५॥

वेगवान् वानरोंकी जो क्रोधित सेना आप देख रहे हैं, उस सेनासे उड़ायी हुई लालधूलि जहाँ देख पड़ती है और जिसे वायु चारों ओर फैला रहा है, वहीं प्रमाथी है। ये काले मुँहवाले महाबली और भयानक हैं, इनकी पूँछ गोपुच्छके समान है॥ ३१, ३२॥ सेतुका बाँधा जाना देखकर एक लाख सेना गोपुच्छ जातिके गवाक्ष नामक सेनापतिको घेरकर गर्जन कर रही है, यह सेना अपने पराक्रमसे लङ्काको मसलना चाहती है। जिस पर्वतके सर्वकाल-फलनेवाले वृक्ष भ्रमरोंसे घिरे रहते हैं, अपने समान प्रकाशमान जिस पर्वतके पास सूर्य भ्रमण करता है, जिसके प्रकाशसे वहाँके पशु-पक्षी भी उसीके वर्णके समान मालूम पड़ते हैं, जिसकी चट्टानोंको महात्मा महर्षि कभी नहीं छोड़ते, जहाँके वृक्ष समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं तथा सब कालमें फलते हैं, जिस पर्वतपर उत्तम मधु प्राप्त होता है, उसी रमणीय सुवर्णपर्वतपर यह विहार करता है॥ ३३—३७॥ यह वानर सेनापतियोंका प्रधान है और इसका नाम केसरी है। साठ हज़ार रमणीय सुवर्णपर्वत हैं, उनमें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिस प्रकार राक्षसोंमें आप श्रेष्ठ हैं। उन्हीं पर्वतोंके अन्तिम पर्वतपर धूसर श्वेत लाल मुँहवाले तथा मधुके समान पीले वानर रहते हैं, उनके दाँत तीखे हैं और नख उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, सिंहके समान उनके चार दाँत हैं, बाघके समान वे भयानक हैं, सभी अग्निके समान उग्र हैं और कुपित सर्पके समान हैं, लम्बी और सुन्दर उनकी पूँछ है, वे मतवाले हाथीके समान हैं। वे पर्वतके समान ऊँचे हैं, मेघके समान उनका गर्जन है, गोल और पीली उनकी आँखे हैं, उनके चलनेका भयङ्कर शब्द होता है। लंकाको देखकर वे उसे उखाड़ देना चाहते हैं, उनके बीचमें उनका पराक्रमी सेनापति है॥ ३८, ४३॥ वह पराक्रमी अपनी विजयके लिए सूर्यकी उपासना करता है। राजन्! पृथिवीमें वह शतबलीके नामसे प्रसिद्ध है॥ ४४॥ यह अपनी सेनासे लंकाको उखाड़ डालना चाहता

रामप्रियार्थं प्राणानां दयां न कुरुते हरिः । गजो गवाक्षो गवयो नलो नीलश्च वानरः ॥४६॥
एकैकमेव योधानां कोटिभिर्दशभिर्वृतः । तथान्ये वानरश्रेष्ठा विन्ध्यपर्वतवासिनः ॥
न शक्यन्ते बहुत्वात्तु संख्यातुं लघुविक्रमाः ॥४७॥
सर्वे महाराज महाप्रभावाः सर्वे महाशैलनिकाशकायाः ।
सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

सारणस्य वचः श्रुत्वा रावणं राक्षसाधिपम् । बलमादिश्य तत्सर्वं शुको वाक्यमथाब्रवीत् ॥१॥
स्थितान्पश्यसि यानेतान्मत्तानिव महाद्विपान् । न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान्सालान्हैमवतानिव ॥२॥
एते दुष्प्रसहा राजन्बलिनः कामरूपिणः । दैत्यदानवसंकाशा युद्धे देवपराक्रमाः ॥३॥
एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च । तथा शङ्कुसहस्राणि तथा वृन्दशतानि च ॥४॥
एते सुग्रीवसचिवाः किष्किन्धानिलयाः सदा । हरयो देवगन्धर्वैरुत्पन्नाः कामरूपिणः ॥५॥
यौ तौ पश्यसि तिष्ठन्तौ समानौ देवरूपिणौ । मैन्दश्च द्विविदश्चैव ताभ्यां नास्ति समो युधि ॥६॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातावमृतप्राशिनावुभौ । आशंसेते यथा लङ्कामेतौ मर्दितुमोजसा ॥७॥

है, पराक्रमी, बलवान्, शूर और अपने पुरुषार्थका यह भरोसा करनेवाला है ॥ ४५ ॥ यह वानर रामचन्द्रका प्रिय कार्य करनेके लिए अपने प्राणोंपर भी दया नहीं करता, गज गवय गवाक्ष नल और नील ये उनके नाम हैं ॥ ४६ ॥ इनमें एक-एक वानरवीर दस करोड़ सेनाका स्वामी है । विन्ध्य पर्वतपर रहनेवाले और भी अनेक वानर हैं । वे बहुत हैं, इस कारण उनकी संख्या नहीं की जा सकती ॥ ४७ ॥ महाराज, ये सभी बड़ेही प्रभावशाली हैं, बड़े पर्वतके समान विशाल शरीरवाले हैं, ये सभी एक क्षणमें समस्त पृथिवीको पर्वतोंसे भर सकते हैं ॥ ४८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२७॥

इस प्रकार रामचन्द्रकी सेनाका परिचय देकर जब सारण चुप हो गया, तब शुक राक्षसाधिप रावणसे बोला ॥ १ ॥ मतवाले हाथियोंके समान, गङ्गातीरके वटवृक्षोंके समान तथा हिमालयके सालवृक्षोंके समान जिनको आप बैठे हुए देखते हैं, राजन् ! रणमें इनका तेज असह्य है, ये बली हैं और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हैं, ये युद्धमें दैत्यदानवोंके समान क्रूर और देवताओंके समान पराक्रमी हैं ॥ २, ३ ॥ सुग्रीवके सचिवोंकी संख्या नव पाँच और सातसे गुणित कोटि सहस्र हैं तथा शंकुसहस्र हैं और सौवृन्द उसके मन्त्री हैं, जो सदा किष्किन्धामें रहते हैं, ये वानर देवता और गन्धर्वसे उत्पन्न हुए हैं, इच्छानुसार रूप धर सकते हैं ॥४,५॥ देवताके समान जो वे दोनों बैठे हुए हैं जिन्हें आप देख रहे हैं, वे मैन्द और द्विविद हैं, इनके समान युद्धमें वीर दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥ ब्रह्माकी आज्ञा पानेसे ये अमृत खाने लगे हैं, ये अपने

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् । यो बलात्क्षोभयेत्क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः ॥८॥
एषोऽभिगन्ता लङ्कायां वैदेह्यास्तव च प्रभो । एनं पश्य पुरा दृष्टं वानरं पुनरागतम् ॥९॥
ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः । हनूमानिति विख्यातो लंघितो येन सागरः ॥१०॥
कामरूपो हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः । अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः ॥११॥
उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा बालः किल बुभुक्षितः । त्रियोजनसहस्रं तु अध्वानमवतीर्य हि ॥१२॥
आदित्यमाहरिष्यामि न मे क्षुत्प्रतियास्यति । इति निश्चित्य मनसा पुप्लुवे बलदर्पितः ॥१३॥
अनाधृष्यतमं देवमपि देवर्षिराक्षसैः । अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ ॥१४॥
पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले । किंचिद्भिन्ना दृढहनुर्हनूमानेष तेन वै ॥१५॥
सत्यमागमयोगेन ममैष विदितो हरिः । नास्य शक्यं बलं रूपं प्रभावो वानुभाषितुम् ॥१६॥
एष आशंसते लङ्कामेको मथितुमोजसा । येन जाज्वल्यतेऽसौ वै धूमकेतुस्तवाद्य वै ॥
लङ्कायां निहितश्चापि कथं विस्मरसे कपिम् ॥१७॥
यस्यैषोऽनन्तरः शूरः श्यामः पद्मनिभेक्षणः । इक्ष्वाकूणामतिरथो लोके विश्रुतपौरुषः ॥१८॥
यस्मिन्न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते । यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ॥१९॥
यो भिन्द्याद्गगनं बाणैर्मेदिनीं वापि दारयेत् । यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ॥२०॥

पराक्रमसे लङ्काको मसल डालनेकी इच्छा रखते हैं ॥ ७ ॥ मदस्रावी हाथीके समान जिसको बैठे आप देख रहे हैं, यह वानर क्रोध करनेपर अपने बलसे समुद्रको भी क्षुभित कर सकता है, यही लङ्कामें आया था, सीताके पास और तुम्हारे पास, यह वानर पुनः आया है, इसको आपने पहले देखा है, पुनः इसे आप देखिये, ॥ ८, ९ ॥ यह केसरीका ज्येष्ठ पुत्र है, वायुपुत्रके नामसे प्रसिद्ध है, यह हनुमानके नामसे भी प्रसिद्ध है, इसीने समुद्र लाँघा था, ॥ १० ॥ यह वानरश्रेष्ठ कामरूप है, अपनी इच्छाके अनुरूप यह रूप बना सकता है, यह बलवान् और रूपवान् है, इसकी गति कहीं रुकती नहीं जैसे वायुकी गति नहीं रुकती ॥ ११ ॥ यह बाल्यावस्थामें एकबार भूखा था, इसने समझा कि फल आदिसे मेरी भूख नहीं जायगी, इसलिए सूर्यकोही ले आऊँ, ऐसा निश्चय इसने उगते सूर्यको देखकर किया और तीन हजार योजन राह तै करके यह कूद पड़ा ॥ १२, १३ ॥ देवता, ऋषि और राक्षसोंके भी छूनेके अयोग्य सूर्यदेवको न पाकर यह उदयाचल पर्वतपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ पत्थरपर गिरनेके कारण इस वानरका ओष्ठ कुछ टेढ़ा हो गया और दृढ़ हो गया, इसी कारण इसका नाम हनुमान पड़ा ॥ १५ ॥ मैं इस वानरको इसके पूर्व इतिहासके साथ जानता हूँ, इसके बल, रूप और प्रभावका वर्णन करना अशक्य है ॥ १६ ॥ यह अकेलाही अपने बलसे लङ्काको मथित कर देना चाहता है, जिस वानरने तुम्हारे तेजसे तेजहीन बने अग्निको भी धधका दिया था, उसको तुम आजही क्यों भूल रहे हो ? ॥ १७ ॥ हनुमानके पासही जो साँवला शूर बैठा है, जिसकी आँखें कमलपत्रके समान हैं, यह इक्ष्वाकुवंशमें अतिरथ है अर्थात् इसका रथ कभी जीता नहीं गया है, इसका पराक्रम संसारमें प्रसिद्ध है, ॥ १८ ॥ जिसमें धर्म सदा वर्तमान रहता है, जो धर्मका अतिक्रमण नहीं करता, जो ब्राह्म अस्त्र तथा वेदोंको जानता है तथा वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ है, ॥ १९ ॥ जो बाणोंसे आकाशको तोड़ सकता है, पृथिवीको छेद सकता है और जिसका क्रोध मृत्युके समान है तथा जिसका पराक्रम इन्द्रके

यस्य भार्या जनस्थानात्सीता चापहृता त्वया। स एष रामस्त्वां राजन्योद्धुं समभिवर्तते ॥२१॥
यस्यैष दक्षिणे पार्श्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभः। विशालवक्षास्ताम्राक्षो नीलकुञ्चितमूर्धजः ॥२२॥
एषो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहिते रतः। नये युद्धे च कुशलः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥२३॥
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तश्च जयी बली। रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥२४॥
नह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति। एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान् ॥२५॥
यस्य सव्यमसौ पक्षं रामस्याश्रित्य तिष्ठति। रक्षोगणपरिक्षिप्तो राजा ह्येष विभीषणः ॥२६॥
श्रीमता राजराजेन लङ्कायामभिषेचितः। त्वामसौ प्रतिसंरब्धो युद्धायैषोऽभिवर्तते ॥२७॥
यं तु पश्यति तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम्। सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारममितौजसम् ॥२८॥
तेजसा यशसा बुद्धया बलेनाभिजनेन च। यः कपीनतिवभ्राज हिमवानिव पर्वतः ॥२९॥
किष्किन्धां यः समध्यास्ते दुर्गां सगहनद्रुमाम्। दुर्गां पर्वतदुर्गम्यां प्रधानैः सह यूथपैः ॥३०॥
यस्यैषा काञ्चनी माला शोभते शतपुष्करा। कान्ता देवमनुष्याणां यस्यां लक्ष्मीःप्रतिष्ठिता॥३१॥
एतां मालां च तारां च कपिराज्यं च शाश्वतम्। सुग्रीवो वालिनं हत्वा रामेण प्रतिपादितः॥३२॥
शतं शतसहस्राणां कोटिमाहुर्मनीषिणः। शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते ॥३३॥
शतं शङ्कुसहस्राणां महाशङ्कुरिति स्मृतः। महाशङ्कुसहस्राणां शतं वृन्दमिहोच्यते ॥३४॥

समान है, ॥ २० ॥ जिसकी स्त्री सीताको तुम जनस्थानसे हर लाये हो, राजन्! वेही राम तुमसे युद्ध करनेके लिए आरहे हैं ॥ २१ ॥ इनके दक्षिण भागमें शुद्ध सुवर्णके समान जो दीप्तिशील हैं, जिसकी चौड़ी छाती, लाल आँखें, काले और घुघुराले बाल हैं, इसका नाम लक्ष्मण है, ये अपने भाईके प्रिय और हित करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, नीति और युद्धमें ये निपुण हैं तथा शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं। ये रामचन्द्रके शत्रुको सह नहीं सकते, इनको जीतना कठिन है, ये शत्रुको जीत लेते हैं, ये पराक्रमी विजयी और बली हैं। ये रामचन्द्रके दाहिने बाँह हैं और उनके बाहर रहनेवाले प्राण हैं। रामचन्द्रके कार्यके लिए ये अपने जीवनकी भी चिन्ता नहीं करते, ये युद्धमें समस्त राक्षसोंको मारनेकी इच्छा रखते हैं ॥ २२—२५ ॥ जो रामचन्द्रकी बाँयी ओर बैठे हैं, जिनका त्याग राक्षसोंने किया है, वे राजा विभीषण हैं ॥ २६ ॥ राजाओंके राजा श्रीमान् रामचन्द्रने इनका लंकाके राज्यपर अभिषेक किया है, ये तुम्हारे ऊपर क्रोध करके युद्ध करनेके लिए आरहे हैं ॥ २७ ॥ जिनको अचल पर्वतके समान आप बीचमें बैठे हुए देखते हैं, वे सब वानरराजोंके स्वामी हैं तथा बड़े पराक्रमी हैं ॥ २८ ॥ तेज, यश, बुद्धि, बल और कुलके द्वारा ये वानरोंमें श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार पर्वतोंमें हिमवान ॥ २९ ॥ ये दुर्गम किष्किन्धामें रहते हैं, जो सघन वृक्षोंसे घिरी हुई है यह पर्वतके शिखरपर बसी हुई है अतएव जहाँ प्रवेश कठिन है, यह वहीं अपने सेनापतियोंके साथ रहते हैं ॥ ३० ॥ जिसकी सोनेकी माला शोभती है, जो सौ कमलोंकी बनी हुई है, जो माला देवता तथा मनुष्योंको प्रिय है और जो सदा शोभित होती रहती है ॥ ३१ ॥ यह माला, तारा और वानरराज्य ये सब रामचन्द्रने वालिको मारकर सुग्रीवको दिया है ॥ ३२ ॥ सौ हजारका एक लाख होता है, सौ लाखका एक करोड़ होता है। सौ हजार करोड़का एक शंकु होता है ॥ ३३ ॥ सौ हजार शंकुका

शतं वृन्दसहस्राणां महावृन्दमिति स्मृतम् । महावृन्दसहस्राणां शतं पद्ममिहोच्यते ॥३५॥
शतं पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम् । महापद्मसहस्राणां शतं खर्वमिहोच्यते ॥३६॥
शतं खर्वसहस्राणां समुद्रमभिधीयते । शतं समुद्रसाहस्रं महौघमिति विश्रुतम् ॥३७॥
एवं कोटिसहस्रेण शङ्कूनां च शतेन च । महाशङ्कुसहस्रेण तथा वृन्दशतेन च ॥३८॥
महावृन्दसहस्रेण तथा पद्मशतेन च । महापद्मसहस्रेण तथा खर्वशतेन च ॥३९॥
समुद्रेण च तेनैव महौघेन तथैव च । एष कोटिमहौघेन समुद्रसदृशेन च ॥४०॥
विभीषणेन वीरेण सचिवैः परिवारितः । सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमनुवर्तते ॥
महाबलवृतो नित्यं महाबलपराक्रमः ॥४१॥
इमां महाराज समीक्ष्य वाहिनीमुपस्थितां प्रज्वलितग्रहोपमाम् ।
ततः प्रयत्नः परमो विधीयतां यथा जयः स्यान्न परैः पराभवः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

शुकेन तु समादिष्टान्दृष्ट्वा स हरियूथपान् । लक्ष्मणं च महावीर्यं भुजं रामस्य दक्षिणम् ॥१॥
समीपस्थं च रामस्य भ्रातरं च विभीषणम् । सर्ववानरराजं च सुग्रीवं भीमविक्रमम् ॥२॥
अङ्गदं चापि बलिनं वज्रहस्तात्मजात्मजम् । हनूमन्तं च विक्रान्तं जाम्बवन्तं च दुर्जयम् ॥३॥
सुषेणं कुमुदं नीलं नलं च प्लवगर्षभम् । गजं गवाक्षं शरभं मैन्दं च द्विविदं तथा ॥४॥

एक महाशंकु होता है सौ हजार महाशंकुका एक वृन्द होता है ॥ ३४ ॥ सौ हजार वृन्दका महावृन्द होता है । सौ हजार महावृन्दका पद्म होता है ॥ ३५ ॥ सौ हजार पद्मका महापद्म होता है । सौ हजार महापद्मका खर्व होता है ॥ ३६ ॥ सौ हजार खर्वका एक समुद्र होता है । सौ हजार समुद्रका महौघ होता है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार हजार करोड़ सौ शंकु, हजार महाशंकु तथा सौ वृन्द, हजार महावृन्द तथा सौ पद्म, हजार महापद्म तथा सौ खर्व, हजार समुद्र तथा सौ महौघ तथा करोड़ महौघ वानर इसके सहायक हैं । समुद्रके समान गम्भीर विभीषण भी इनके साथ हैं, वह वानरराज सुग्रीव तुमसे युद्ध करने आरहा है । इसके पास बहुत बड़ी सेना है और यह स्वयं बड़ा पराक्रमी है ॥ ३८—४१ ॥ महाराज क्रूरग्रहके समान आयी हुई इस सेनाको देखकर आप वैसा प्रयत्न कीजिए जिससे आपकी जीत हो, पराजय न हो ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

———:*:———

शुकके बतलाये वानर सेनापतियोंको देखकर रामके दाहिने हाथ महाबली लक्ष्मणको, रामके समीप बैठे अपने भाई विभीषणको, भयंकर पराक्रमी सब वानरोंके राजा सुग्रीवको, इन्द्रके पुत्रके पुत्र बलवान् अङ्गदको, पराक्रमी हनुमानको दुर्जय जाम्बवान्‌को, वानरश्रेष्ठ सुषेण कुमुद नील नल, गज, गवाक्ष, शरभ,

किंचिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः । भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ ॥५॥
अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ । रोषगद्गदया वाचा संरब्धं परुषं तथा ॥६॥
न तावत्सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः । विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहे प्रग्रहे प्रभोः ॥७॥
रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम् । उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम् ॥८॥
आचार्या गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः । सारं यद्राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते ॥९॥
गृहीतो वा न विज्ञातो भारोऽज्ञानस्य वाह्यते । ईदृशैः सचिवैर्युक्तो मूर्खैर्दिष्ट्या धराम्यहम् ॥१०॥
किं नु मृत्योर्भयं नास्ति मां वक्तुं परुषं वचः । यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम् ॥११॥
अप्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः । राजदण्डपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥१२॥
हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसिनौ । यदि पूर्वोपकारैर्मे क्रोधो न मृदुतां व्रजेत् ॥१३॥
अपध्वंसत नश्यध्वं संनिकर्षादितो मम । नहि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम् ॥
हतावेव कृतघ्नौ द्वौ मयि स्नेहपराङ्मुखौ ॥१४॥
एवमुक्त्वा तु सव्रीडौ तौ दृष्ट्वा शुकसारणौ । रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥१५॥
अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् । उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः ॥
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥१६॥

मैन्द और द्विविदको देखकर रावणका हृदय कुछ व्याकुल हुआ। उसने क्रोध करके बात खतम होनेपर वीर शुक और सारणको डाँटा ॥ १-५ ॥ वे दोनों नम्रतापूर्वक सिर झुकाये बैठे थे। रावण उनसे क्रोधपूर्ण स्वरमें कठोर वचन बोला ॥६॥ नौकरी करनेवाले मन्त्रियोंके लिए यह उचित नहीं है कि वे दण्ड देने तथा अनुग्रह करनेकी शक्ति रखनेवाले स्वामीके सामने अप्रिय वचन बोले ॥ ७ ॥ जो शत्रु प्रतिकूल है तथा युद्ध करनेके लिए आग्रही है, बिना प्रसङ्गके उसकी स्तुति करना क्या तुम दोनोंको उचित था ? ॥ ८ ॥ आचार्य गुरु तथा वृद्धोंकी सेवा तुमलोगोंने व्यर्थही की; क्योंकि राजनीतिका सार तुम लोगोंको मालूम न हुआ ॥ ९ ॥ तुमलोगोंने राजनीति शास्त्र पढ़ा, पर तुम समझ न सके, इसीसे अज्ञानका बोझ ढोरहे हो, तुम लोगोंके समान मूर्ख सचिवोंके साथ रहनेपर भी जो मेरा राज्य आज तक बचा हुआ है, यही भाग्यकी बात है ! ॥ १० ॥ मेरे सामने कठोर वचन कहते हुए तुमलोगोंको मृत्युका भी भय न रहा। तुमलोगोंको मालूम है कि मेरे शासनकालमें जिह्वा ही उत्तम और निकृष्ट फल देती है अर्थात् प्रिय बोलनेवाला पुरस्कृत होता है और अप्रिय बोलनेवाला दण्डित ॥ ११ ॥ वनके वृक्ष आग लगनेपर भी बच सकते हैं, पर राजदण्डके घेरेमें आये अपराधी नहीं बच सकते ॥ १२ ॥ शत्रुपक्षके प्रशंसा करनेवाले पापियोंको मैं अवश्य मारता, यदि इनके पहलेके उपकारोंसे मेरा क्रोध ठंढा नहीं हो जाता ॥ १३ ॥ तुम दोनों मेरे सामनेसे चले जाओ, तुमलोगोंका नाश हो। तुम्हारे उपकारोंको स्मरण करता हूँ, इसलिए मार नहीं रहा हूँ, अथवा तुम दोनों कृतघ्न हमारे स्नेहके हट जानेसे आप-ही-आप मर जाओगे ॥ १४ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर शुक और सारण वे दोनों लज्जित हुए और रावणका जय-जयकार करते हुए वहाँसे चले गये ॥ १५ ॥ रावण पास बैठे हुए महोदरसे बोला—मेरे दूतोंको शीघ्र बुलाओ। रावणके ऐसा कहनेपर महोदरने दूतोंको रावणकी

ततश्चाराः संत्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् । उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषा ॥१७॥
तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः । चरान्प्रत्यायिकाञ्शूरान्धीरान्विगतसाध्वसान् ॥१८॥
इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम् । मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः॥१९॥
कथं स्वपिति जागर्ति किमद्य च करिष्यति । विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः ॥२०॥
चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः । युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥२१॥
चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् । शार्दूलमग्रतः कृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥२२॥
ततस्तं तु महात्मानं चारा राक्षससत्तमम् । कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥२३॥
ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ । प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥२४॥
प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविह्वलाः । ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ॥२५॥
विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया । शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः ॥२६॥
मोक्षितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवंगमैः । अनृशंसेन रामेण मोक्षिता राक्षसाः परे ॥२७॥
वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः । पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥२८॥
ततो दशग्रीवमुपस्थितास्ते चारा बहिर्नित्यचरा निशाचराः ।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनं न्यवेदयन्रामबलं महाबलाः ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

आज्ञा शीघ्र सुना दी ॥ १६ ॥ अनन्तर राजाकी आज्ञासे दूत शीघ्र ही हाथ जोड़कर उपस्थित हुए और जय-जयकार तथा आशीर्वादसे उनलोगोंने राजाको प्रसन्न किया ॥ १७ ॥ राक्षसाधिप रावण उन दूतोंसे, जो विश्वासी शूर धीर तथा निर्भय थे, बोला— ॥ १८ ॥ रामचन्द्र क्या करना चाहते हैं, यह जाननेके लिए तुम लोग जाओ । जो लोग रामचन्द्रके परामर्शदाता हैं तथा जो प्रेमसे उनके साथ आये हैं यह भी तुम लोग जानो ॥ १९ ॥ रामचन्द्र कैसे सोते हैं, कैसे जागते हैं और आज क्या करना चाहते हैं, यह सब अच्छी तरह जानकर तुमलोग लौट आओ ॥ २० ॥ दूतके द्वारा शत्रुकी सब बातें जान लेनेपर विद्वान् राजा थोड़ेही प्रयत्नसे शत्रुको जीत लेता है ॥२१॥ प्रसन्न उन दूतोंने शार्दूलको आगे करके रावणकी प्रदक्षिणा की ॥ २२ ॥ महात्मा राक्षसश्रेष्ठ रावणकी प्रदक्षिणा करके वे दूत राम और लक्ष्मणके पास गये ॥ २३ ॥ उन दूतोंने सुवेल पर्वतके पास राम लक्ष्मणको, सुग्रीव तथा विभीषणके साथ, छिपकर देखा ॥२४॥ वे दूत उस वानरी सेनाको देखकर भयभीत हो गये । धर्मात्मा राक्षसराज विभीषणने उन्हें देख लिया ॥२५॥ छिपे हुए उन दूतोंको विभीषणने अनायासही पकड़ लिया । विभीषणने एक शार्दूल राक्षसको ही पकड़वाया, क्योंकि वही सबसे बड़ा पापी था ॥ २६ ॥ वानर उसे मारने लगे, पर रामने उसे छुड़वा दिया । दयालु रामचन्द्रने अन्य राक्षसोंको भी छुड़वा दिया ॥ २७ ॥ पराक्रमी वानरोंने उन राक्षसोंको बहुत कष्ट दिया इस कारण वे हाँफते हुए तथा बेहोश-से लङ्का पहुँचे ॥२८॥ वे राक्षसदूत रावणके पास आये, जो परराष्ट्रका वृत्तान्त जाननेके लिए सदा बाहर रहते हैं । उन बली दूतोंने रावणसे कहा कि रामचन्द्र सुवेल पर्वतके पास हैं ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः । सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥
चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् । जातोद्वेगोऽभवत्किंचिच्छार्दूलं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
अयथावच्च ते वर्णो दीनश्चासि निशाचर । नासि कच्चिदमित्राणां क्रुद्धानां वशमागतः ॥ ३ ॥
इति तेनानुशिष्टस्तु वाचं मन्दमुदीरयन् । तदा राक्षसशार्दूलं शार्दूलो भयविक्लवः ॥ ४ ॥
न ते चारयितुं शक्या राजन्वानरपुंगवाः । विक्रान्ता बलवन्तश्च राघवेण च रक्षिताः ॥ ५ ॥
नापि संभाषितुं शक्याः संप्रश्नोऽत्र न लभ्यते । सर्वतो रक्ष्यते पन्था वानरैः पर्वतोपमैः ॥ ६ ॥
प्रविष्टमात्रे ज्ञातोऽहं बले तस्मिन्नविचारिते । बलाद्गृहीतो रक्षोभिर्बहुधास्मि विचारितः ॥ ७ ॥
जानुभिर्मुष्टिभिर्दन्तैस्तलैश्चाभिहतो भृशम् । परिणीतोऽस्मि हरिभिर्बलमध्ये अमर्षणैः ॥ ८ ॥
परिणीय च सर्वत्र नीतोऽहं रामसंसदि । रुधिरस्राविदीनाङ्गो विह्वलश्चलितेन्द्रियः ॥ ९ ॥
हरिभिर्वध्यमानश्च याचमानः कृताञ्जलिः । राघवेण परित्रातो मामेति च यदृच्छया ॥ १० ॥
एष शैलशिलाभिस्तु पूरयित्वा महार्णवम् । द्वारमाश्रित्य लङ्काया रामस्तिष्ठति सायुधः ॥ ११ ॥
गरुडव्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः । मां विसृज्य महातेजा लङ्कामेवातिवर्तते ॥ १२ ॥
पुरा प्राकारमायाति क्षिप्रमेकतरं कुरु । सीतां वापि प्रयच्छाशु युद्धं वापि प्रदीयताम् ॥ १३ ॥
मनसा तत्तदा प्रेक्ष्य तच्छ्रुत्वा राक्षसाधिपः । शार्दूलं सुमहद्वाक्यमथोवाच स रावणः ॥ १४ ॥

रामचन्द्र सुवेल पर्वतके पास ठहरे हैं, उनकी सेना अजेय है, यह बात दूतोंने रावणसे कही ॥ १ ॥ चारोंके कहनेसे यह बात जानकर कि रामचन्द्र आ गये हैं, रावण व्याकुल हुआ और वह शार्दूलसे बोला ॥ २ ॥ तुम्हारा रंग फीका पड़ गया है, तुम उदास-से मालूम पड़ते हो, क्रुद्ध शत्रुओंके हाथ तो नहीं पड़ गये थे ? ॥ ३ ॥ रावणके ऐसा पूछनेपर भय-व्याकुल शार्दूल राक्षसश्रेष्ठ रावणसे धीरे-धीरे बोला ॥ ४ ॥ राजन् ! उन वानरोंकी गुप्त बातोंका पता लगाना कठिन है, क्योंकि वे सभी पराक्रमी और बली हैं तथा रामचन्द्रके द्वारा सुरक्षित हैं ॥ ५ ॥ किसीसे बात भी नहीं की जा सकती, प्रश्न भी नहीं पूछे जा सकते; क्योंकि पर्वतके समान वानर सभी रास्ते रोके हुए हैं ॥ ६ ॥ विचारशील उस सेनामें मैं जैसेही घुसा, वैसेही विभीषणके दलवालोंने मुझे पहचान लिया । उन्होंने जबरदस्ती मुझे पकड़ लिया और चारों ओर घुमाया ॥ ७ ॥ जानु, मुक्का, दाँत तथा थप्पड़से क्रोधी वानरोंने मुझे बहुत मारा और सेनामें मुझे घुमाकर बतलाया कि यह दूत है ॥ ८ ॥ चारों ओर घुमाकर वे मुझे रामचन्द्रकी सभामें ले गये । उस समय मेरे शरीरसे रुधिर बह रहा था, मैं मूर्छित था । मूर्छा टूटनेपर उनसे रक्षाकी प्रार्थना कर रहा था ॥ ९ ॥ वानर मुझे मार रहे थे और मैं प्रार्थना कर रहा था, उस समय वानरोंको रोककर रामचन्द्रने मेरी रक्षा की ॥ १० ॥ पत्थरोंसे समुद्रको भरकर रामचन्द्र सेनाके साथ लङ्काके द्वारपर आये हुए हैं ॥ ११ ॥ उन्होंने गरुड़व्यूह बनाया है, वे चारों ओरसे वानरोंसे घिरे हुए हैं, मुझे मुक्त करके वे लङ्काकी ओर आ रहे हैं ॥ १२ ॥ जब तक वे लङ्काके पास आते हैं, तभी तक आप इन दो बातोंमेंसे एक अवश्य करें । या तो सीताको देदें या युद्धके लिए तयार हो जायँ ॥ १३ ॥ यह सुनकर राक्षसाधिप रावणने मनमें विचार किया और वह शार्दूलसे बोला ॥ १४ ॥ यदि

यदि मां प्रतियुद्ध्यन्ते देवगन्धर्वदानवाः । नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥१५॥
एवमुक्त्वा महातेजा रावणः पुनरब्रवीत् । चरिता भवता सेना केऽत्र शूराः प्लवङ्गमाः ॥१६॥
किंप्रभाः कीदृशाः सौम्य वानरा ये दुरासदाः । कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्याहि सुव्रत ॥१७॥
तथात्र प्रतिपत्स्यामि ज्ञात्वा तेषां बलाबलम् । अवश्यं खलु संख्यानं कर्तव्यं युद्धमिच्छता ॥१८॥
अथैवमुक्तः शार्दूलो रावणेनोत्तमश्चरः । इदं वचनमारेभे वक्तुं रावणसंनिधौ ॥१९॥
अथर्क्षरजसः पुत्रो युधि राजन्सुदुर्जयः । गद्गदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्बवानिति विश्रुतः ॥२०॥
गद्गदस्याथ पुत्रोऽन्यो गुरुपुत्रः शतक्रतोः । कदनं यस्य पुत्रेण कृतमेकेन रक्षसाम् ॥२१॥
सुषेणश्चात्र धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीर्यवान् । सौम्यः सोमात्मजश्चात्र राजन्दधिमुखः कपिः ॥२२॥
सुमुखो दुर्मुखश्चात्र वेगदर्शी च वानरः । मृत्युर्वानररूपेण नूनं सृष्टः स्वयंभुवा ॥२३॥
पुत्रो हुतवहस्यात्र नीलः सेनापतिः स्वयम् । अनिलस्य तु पुत्रोऽत्र हनूमानिति विश्रुतः ॥२४॥
नप्ता शक्रस्य दुर्धर्षो बलवानङ्गदो युवा । मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ बलिनावश्विसंभवौ ॥२५॥
पुत्रा वैवस्वतस्याथ पञ्च कालान्तकोपमाः । गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥२६॥
दश वानरकोट्यश्च शूराणां युद्धकाङ्क्षिणाम् । श्रीमतां देवपुत्राणां शेषं नाख्यातुमुत्सहे ॥२७॥
पुत्रो दशरथस्यैष सिंहसंहननो युवा । दूषणो निहतो येन खरश्च त्रिशिरास्तथा ॥२८॥
नास्ति रामस्य सदृशो विक्रमे भुवि कश्चन । विराधो निहतो येन कबन्धश्चान्तकोपमः ॥२९॥

देवता, दानव तथा गन्धर्व भी युद्ध करें, समस्त लोक मुझपर दबाव डालें तो भी मैं सीताको नहीं लौटाऊँगा ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर महातेजस्वी रावण पुनः बोला—आपने तो वह सेना देखी है, उसमें कौन-कौन वानर वीर हैं ॥१६॥ जो वानर महावीर हैं उनका प्रभाव कैसा है, वे कैसे हैं, वे किसके पुत्र हैं, किसके पौत्र हैं ? यह सब ठीक-ठीक मुझसे कहो ॥ १७ ॥ उनका बलाबल जानकर हम अपना कर्तव्य निश्चित करेंगे। युद्ध करनेवालोंको शत्रुका पता अवश्य लगाना चाहिए ॥ १८ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर दूतश्रेष्ठ शार्दूल रावणसे इस प्रकार कहने लगा ॥ १९ ॥ जाम्बवान् नामसे प्रसिद्ध अजेय वीर ऋक्षराजका औरस और गद्गदका क्षेत्रज पुत्र हैं ॥ २० ॥ गद्गदका एक और पुत्र है जिसका नाम धूम्र है, जिस वानरके पुत्र हनुमानने अकेले राक्षसोंको व्याकुल किया था, वह केसरी इन्द्रके गुरु बृहस्पतिका पुत्र है ॥ २१ ॥ धर्मात्मा और बलवान् सुषेण धर्मका पुत्र है, सुशील दधिमुख नामका वानर चन्द्रमाका पुत्र है ॥ २२ ॥ सुमुख और दुर्मुख ये दो वानर अपना-अपना वेग देखते हैं। ब्रह्माने मृत्युकी सृष्टि वानर रूपमें की है ॥ २३ ॥ नील सेनापति अग्निका पुत्र है और हनुमान वायुका पुत्र है ॥ २४ ॥ बली युवा और अजेय अङ्गद इन्द्रका पौत्र है, मैन्द और द्विविद ये दोनों बली अश्विनीकुमारोंके पुत्र हैं ॥ २५ ॥ प्रलयके यमराजके समान ये गवय, गवाक्ष, गज, शरभ और गन्धमादन पाँचों यमराजके पुत्र हैं ॥ २६ ॥ युद्ध चाहनेवाले वीर वानर दस करोड़ हैं, वे सभी देवताओंके पुत्र हैं, दूसरोंका परिचय मैं नहीं दे सकता ॥ २७ ॥ सिंहके समान बलिष्ठ यह युवा दशरथका पुत्र है, जिसने युद्धमें दूषण खर और त्रिशिराको मारा है ॥ २८ ॥ रामके समान पृथिवीमें दूसरा पराक्रमी नहीं है, इन्होंने यमतुल्य कबन्ध और विराधको मारा है ॥ २९ ॥

वक्तुं न शक्तो रामस्य गुणान्कश्चिन्नरः क्षितौ। जनस्थानगता येन तावन्तो राक्षसा हताः ॥३०॥
लक्ष्मणश्चात्र धर्मात्मा मातंगानामिवर्षभः। यस्य बाणपथं प्राप्य न जीवेदपि वासवः ॥३१॥
श्वेतो ज्योतिर्मुखश्चात्र भास्करस्यात्मसंभवौ। वरुणस्याथ पुत्रोऽथ हेमकूटः प्लवंगमः ॥३२॥
विश्वकर्मसुतो वीरो नलः प्लवगसत्तमः। विक्रान्तो वेगवानत्र वसुपुत्रः स दुर्धरः ॥३३॥
राक्षसानां वरिष्ठश्च तव भ्राता विभीषणः। प्रतिगृह्य पुरीं लङ्कां राघवस्य हिते रतः ॥३४॥
इति सर्वं समाख्यातं तथा वै वानरं बलम्। सुवेलेऽधिष्ठितं शैले शेषकार्ये भवान्गतिः ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्चराः। सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥
चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम्। जातोद्वेगोभवत्किंचित्सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः। अयं नो मन्त्रकालो हि संप्राप्त इति राक्षसाः ॥ ३ ॥
तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन्द्रुतम्। ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह ॥ ४ ॥
मन्त्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत्तदनन्तरम्। विसर्जयित्वा सचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् ॥ ५ ॥
ततो राक्षसमादाय विद्युज्जिह्वं महाबलम्। मायाविनं महामायं प्राविशद्यत्र मैथिली ॥ ६ ॥

पृथिवीमें कोई भी मनुष्य रामचन्द्रके गुणोंका वर्णन नहीं कर सकता, जिसने जनस्थानके उतने राक्षसोंको मारा है ॥ ३० ॥ धर्मात्मा लक्ष्मण गजराजके समान हैं, इनके बाणके सामने आनेपर इन्द्र भी नहीं बच सकता ॥ ३१ ॥ श्वेत और ज्योतिर्मुख सूर्यके पुत्र हैं। हेमकूट नामका वानर वरुणका पुत्र है ॥ ३२ ॥ वानरश्रेष्ठ वीर नल विश्वकर्माका बेटा है। दुर्धर नामका पराक्रमी और वेगवान् वानर वसुका पुत्र है ॥३३॥ राक्षसोंमें श्रेष्ठ आपका भाई विभीषण रामचन्द्रसे लङ्काका अधिकार पाकर उनका हितकारी बना है ॥ ३४ ॥ सुवेल पर्वतपर ठहरी हुई वानरी सेनाके विषयमें, जो मुझे मालूम था, आपको बतलाया, आगे आप जो उचित समझें करें ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३० ॥

रावणके अन्य दूतोंने भी आकर उससे कहा कि रामचन्द्र सुवेल पर्वतपर ठहरे हुए हैं ॥ १ ॥ दूतोंसे यह सुनकर कि रामचन्द्र अपनी सेनाके साथ आये हैं वह थोड़ासा व्याकुल हुआ और अपने सहायकोंसे इस प्रकार बोला ॥ २ ॥ सभी मन्त्री सावधान होकर आवें, क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिए परामर्श करनेका है ॥ ३ ॥ रावणकी आज्ञा सुनकर सभी मन्त्री शीघ्र आये। उनके आनेपर रावणने उनसे परामर्श किया ॥४॥ आगेके कर्तव्यके विषयमें उसने मन्त्रियोंसे परामर्श करके उन्हें जानेके लिए कहा, पुनः वह अपने महलमें गया ॥ ५ ॥ मायावी और महाबली विद्युज्जिह्व नामक राक्षसको लेकर वह वहाँ गया जहाँ सीता थीं

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः । मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ॥ ७ ॥
शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर । मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः । दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे ॥ ९ ॥
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् । अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः ॥१०॥
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः । ततो दीनामदीनार्हां ददर्श धनदानुजः ॥११॥
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले । भर्तारं समनुध्यान्तीमशोकवनिकां गताम् ॥१२॥
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरदूरतः । उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षं नाम कीर्तयन् ॥१३॥
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् । सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे॥१४॥
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः । छिन्नं ते सर्वथा मूलं दर्पश्च निहतो मया ॥१५॥
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि । विसृजैतां मतिं मूढे किं मृतेन करिष्यसि ॥१६॥
भवस्व भद्रे भार्याणां सर्वासामीश्वरी मम । अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि ॥
शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ॥१७॥
समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः । वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः ॥१८॥
संनिविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् । बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे ॥१९॥
अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् । सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः ॥२०॥

॥६॥ माया जाननेवाले विद्युज्जिह्वसे रावण बोला—हम दोनों जनकपुत्री सीताको मायाके द्वारा मोहित करें ॥ ७ ॥ बाण चढ़ा हुआ धनुष और रामचन्द्रका मायाका बना मस्तक लेकर तुम हमारे पास आओ ॥ ८ ॥ ऐसा कहनेपर विद्युज्जिह्व राक्षसने बड़े अच्छे ढंगसे अपनी माया दिखायी ॥ ९ ॥ राजा रावण इससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गहने उसको इनाममें दिये । अनन्तर वह राक्षसोंका अधिपति महाबली रावण सीताको देखनेकी इच्छासे अशोकवाटिकामें गया, वहाँ उसने दुःख पानेके अयोग्य सीताको दुःखी देखा, सीता शोकके कारण सिर झुकाये जमीनपर बैठी थी, उस अशोक वाटिकामें बैठकर वह अपने पतिका ध्यान कर रही थीं ॥ १०, १२ ॥ भयानक राक्षसियाँ उसके पास बैठी थीं, प्रसन्नता दिखाता हुआ रावण सीताके पास जाकर इस प्रकार बोला ॥ १३ ॥ उसने धृष्टतापूर्वक सीतासे इस प्रकार कहा—मेरी प्रार्थनाकी तुम जिसके कारण उपेक्षा करती थी, खरको मारनेवाला वह तुम्हारा पति मारा गया, अब तुम्हारी जड़ कट गयी और तुम्हारा अहङ्कार भी मैंने चूर्ण कर दिया ॥ १४—१५ ॥ सीते ! दुःखके कारण तुम अब मेरी स्त्री हो जाओ, मूढ़े ! अपना हठ छोड़ दे, मरनेसे तुमको क्या लाभ होगा ॥ १६ ॥ तुम मेरी समस्त स्त्रियोंकी स्वामिनी बनो । पतिके मारे जानेसे तुम्हारा वह मतलब जाता रहा, जिससे तुम हमें स्वीकार नहीं करती थी । तू अपनेको पण्डित समझनेवाली मूर्खा है, तेरा पुण्य भी थोड़ा है, फिर तेरा मनोरथ पूरा कैसे हो ? वृत्रासुरके वधके समान भयंकर अपने पतिके वधकी बातें सुनो ॥ १७ ॥ रामचन्द्र मुझको मारनेके लिए समुद्रतीरपर आये थे, वानरोंकी बड़ी सेना लेकर वे आये थे ॥ १८ ॥ अपनी बड़ी सेनाके द्वारा समुद्रके उत्तर तीरको पीड़ित करके रामचन्द्र सन्ध्याके समय वहाँ जाकर ठहरे ॥ १९ ॥ आधी रात हो गयी थी,

तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम । बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥२१॥
पट्टिशान्परिघांश्चक्रानृष्टीन्दण्डान्महायुधान् । बाणजालानि शूलानि भास्वरान्कूटमुद्गरान् ॥२२॥
यष्टीश्च तोमरान्प्रासांश्चक्राणि मुसलानि च । उद्यम्योद्यम्य रक्षोभिर्वानरेषु निपातिताः ॥२३॥
अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना । असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥२४॥
विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया । दिशं प्रव्राजितः सैन्यैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह ॥२५॥
सुग्रीवो ग्रीवया सीते भग्नया प्लवगाधिपः । निरस्तहनुकः सीते हनूमान्राक्षसैर्हतः ॥२६॥
जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन्निहतो युधि । पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा ॥२७॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तौ वानरवरर्षभौ । निःश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परीवृतौ ॥२८॥
असिना व्यायतौ छिन्नौ मध्ये ह्यरिनिषूदनौ । अनुष्टणति मेदिन्यां पनसः पनसो यथा ॥२९॥
नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्यां दरीमुखः । कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजन्सायकैर्हतः ॥३०॥
अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः । परितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतितोऽङ्गदः ॥३१॥
हरयो मथिता नागै रथजालैस्तथापरे । शयाना मृदितास्तत्र वायुवेगैरिवाम्बुदाः ॥३२॥
प्रसृताश्च परे त्रस्ता हन्यमाना जघन्यतः । अनुद्रुतास्तु रक्षोभिः सिंहैरिव महाद्विपाः ॥३३॥
सागरे पतिताः केचित्केचिद्गगनमाश्रिताः । ऋक्षा वृक्षानुपारूढा वानरैर्व्यतिमिश्रिताः ॥३४॥

रामचन्द्र रास्ता चलनेके कारण अपनी सेनाके साथ सुखपूर्वक सोये थे, उस समय मेरे दूतोंने जाकर उनकी सेनाका पता लगाया ॥ २० ॥ प्रहस्तके द्वारा सजायी मेरी बड़ी सेनाने रामचन्द्रकी सेनाको तथा राम-लक्ष्मणको उसी रातको मार डाला ॥ २१ ॥ पट्टिश, परिघ, चक्र, ऋष्टि, दण्ड, महायुध बाण, शूल, चमकीला मुद्गर, यष्टि, तोमर, प्रास, चक्र, मुसल आदि अस्त्रोंको उठाकर राक्षसोंने वानरोंको मारा ॥ २२, २३ ॥ रामचन्द्र सो रहे थे, उसी समय शिक्षित शत्रुहन्ता माल्यवान्ने जाकर आसानीसे तलवारसे रामचन्द्रका सिर काट लिया ॥ २४ ॥ विभीषण वहाँ आया और वह भी आसानीसे पकड़ा गया। लक्ष्मण वानरी सेना लेकर छिपनेके लिए भाग गया ॥ २५ ॥ वानराधिप सुग्रीव गला कट जानेसे सो रहा है। हनुमानको भी राक्षसोंने मार डाला ॥ २६ ॥ जाम्बवान् घुटनोंके बल चल रहा था, वह भी युद्धमें मारा गया। वह पट्टिशोंके द्वारा काटा गया और कटे पेड़के समान गिर पड़ा ॥२७॥ वानरोंमें प्रधान मैन्द और द्विविद दोनों रुधिरसे भींग जानेके कारण साँस लेने लगे और रोने लगे ॥ २८ ॥ शत्रुको मारनेवाले और विशाल शरीरवाले वे दोनों बीचसे काट डाले गये। पनस नामका वानर पनस फलके समान फटकर साँस ले रहा है (पनस कटहलको कहते हैं) ॥ २९ ॥ दरीमुख नामका वानर गुफामें बाणोंसे मारा गया। तेजस्वी कुमुदभी बिलबिला रहा था वह भी बाणोंसे मारा गया ॥ ३० ॥ अङ्गद अनेक बाणोंसे राक्षसोंके द्वारा मारा गया। खून उगलता हुआ वह जमीनपर गिर पड़ा ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार वायुसे मेघ हटा दिये जाते हैं उसी प्रकार सोये हुए वानर हाथियों तथा रथोंसे कुचल दिये गये ॥ ३२ ॥ बहुतसे वानर पीछेकी ओरसे मारे जानेके कारण डरकर भाग गये, राक्षसोंने उन्हें दौड़ाया जिस प्रकार सिंह हाथियोंको दौड़ाता है ॥ ३३ ॥ बहुतसे समुद्रमें डूब गये, बहुतसे आकाशमें उड़ गये। वानरोंके साथ भालु वृक्षोंपर चढ़ गये

सागरस्य च तीरेषु शैलेषु च वनेषु च। पिङ्गलास्ते विरूपाक्षैः राक्षसैर्बहवो हताः ॥३५॥
एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया। क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥३६॥
ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः। सीतायामुपशृण्वत्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥३७॥
राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय। येन तद्राघवशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥३८॥
विद्युज्जिह्वस्तदा गृह्य शिरस्तत्सशरासनम्। प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतःस्थितः ॥३९॥
तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम्। विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं समीपपरिवर्तिनम् ॥४०॥
अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः। अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणां साधु पश्यतु ॥४१॥
एवमुक्तं तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम्। उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥४२॥
रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत्। त्रिषु लोकेषु विख्यातं रामस्यैतदिति ब्रुवन् ॥४३॥
इदं तत्तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमावृतम्। इह प्रहस्तेनानीतं तं हत्वा निशि मानुषम् ॥४४॥
स विद्युज्जिह्वेन सहैव तच्छिरो धनुश्च भूमौ विनिकीर्यमाणः।
विदेहराजस्य सुतां यशस्विनीं ततोऽब्रवीत्तां भव मे वशानुगा ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम्। सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातं च हनूमता ॥ १ ॥

॥ ३४ ॥ समुद्रतीर वनों और पर्वतोंपर उन पीले वानरोंको भयानक आँखवाले राक्षसोंने मारा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार तुम्हारा पति सेनाके साथ मेरी सेनाके द्वारा मारा गया और उसका रुधिरसे सना सिर आया है ॥ ३६ ॥ अनन्तर दुर्धर्ष राक्षसराज रावण सीताको सुनाकर राक्षसियोंसे बोला ॥ ३६ ॥ कठोर कर्म करने वाले विद्युज्जिह्व नामक राक्षसको बुलाओ, जो रामचन्द्रका सिर युद्ध क्षेत्रसे ले आया है ॥ ३८ ॥ विद्युजिह्व रामचन्द्रका वह सिर और धनुष बाण लेकर आया तथा रावणको प्रणाम करके खड़ा हो गया ॥ ३९ ॥ पास खड़े हुए लम्बी जीभवाले विद्युज्जिह्वसे राजा रावण बोला ॥ ४० ॥ रामचन्द्रका सिर सीताके सामने ले आओ, अपने पतिकी दयनीय अन्तिम अवस्था यह देखे ॥ ४१ ॥ ऐसा कहे जानेपर वह राक्षस रामचन्द्रका सुन्दर सिर सीताके सामने रखकर वहाँसे चला गया ॥ ४२ ॥ रावणने विद्युज्जिह्वके हाथसे वह चमकीला धनुष छीन लिया और उसने कहा कि यही त्रिलोकमें विख्यात रामचन्द्रका धनुष है ॥ ४३ ॥ यही तुम्हारे रामका धनुष है जो चढ़ा हुआ है, जिसे उस मनुष्यको रातमें मारकर माल्यवान् ले आया है ॥ ४४ ॥ अनन्तर विद्युज्जिह्वने सिर और रावणने वह धनुष शीघ्रही सीताके सामने रख दिये और यशस्विनी सीतासे वह बोला—अब तुम मेरे अधीन हो जाओ ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

सीताने उस उत्तम धनुष तथा सिरको देखकर तथा हनुमानके कहे राम सुग्रीवके सम्बन्धकी बात

नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् । केशान्केशान्तदेशं च तं च चूडामणिं शुभम् ॥ २ ॥
एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता । विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा ॥ ३ ॥
सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः । कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥ ४ ॥
आर्येण किं तु कैकेय्याः कृतं रामेण विप्रियम् । यन्मया चीरवसनं दत्वा प्रव्राजितो वनम् ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी । जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥ ६ ॥
सा मुहूर्तात्समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम् । तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥
हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत । इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥ ८ ॥
प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते । सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥ ९ ॥
महद्दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे । यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ॥१०॥
सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव । वत्सला ते यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता ॥११॥
उद्दिष्टं दीर्घमायुस्ते दैवज्ञैरपि राघव । अनृतं वचनं तेषामल्पायुरसि राघव ॥१२॥
अथवा नश्यति प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतस्तव । पचत्येनं तथा कालो भूतानां प्रभवो ह्ययम् ॥१३॥
अदृष्टं मृत्युमापन्नः कस्मात्त्वं नयशास्त्रवित् । व्यसनानामुपायज्ञः कुशलो ह्यसि वर्जने ॥१४॥
तथा त्वं संपरिष्वज्य रौद्रयातिनृशंसया । कालरात्र्या मयाच्छिद्य हृतः कमललोचनः ॥१५॥

याद करके, वैसीही आँखें, पतिके मुखके समान उस मुखका रङ्ग, वैसाही ललाट, वैसेही केश तथा सुन्दर चूडामणि आदि चिन्होंके द्वारा पहचानकर सीता बहुतही दुःखित हुई और वह कुररीके समान विलाप करती हुई केकयीकी निन्दा करने लगी ॥ १-३ ॥ केकयी तेरा मनोरथ पूर्ण हो, कुलनन्दन मारा गया, कलही तूने समस्त कुलका नाश करदिया ॥ ४ ॥ मेरे पति रामचन्द्रने केकयीकी कौन बुराई की थी जो उसने उन्हें मेरे साथ वल्कल वस्त्र देकर वन भेजा ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर बिचारी सीता काँपती हुई पृथिवीपर गिर पड़ी, जिस प्रकार कटी कदली (केला) गिर पड़ती है ॥ ६ ॥ थोड़ी देरमें अपनेको सम्भालकर तथा होशमें आकर विशालाक्षी सीता उस सिरको लेकर विलाप करने लगी ॥ ७ ॥ मेरा सर्वनाश हुआ, महाबाहो वीर व्रतके पालनेवाले तुम्हारी इस अवस्थाको मैंने देखा, विधाताने मुझे विधवा बना दिया ॥ ८ ॥ स्त्रीका पहले मरना पतिके अभाग्यकी बात है अतएव साधु चरित्रवाली मेरे सामने आपका चला जाना आपके लिए अच्छाही हुआ ॥ ९ ॥ मैं कठोर दुःख भोग रही थी, शोकसागरमें डूब रही थी, आप मेरी रक्षाके लिए तैयार हुए थे सो आप भी मारे गये ॥ १० ॥ वह मेरी सास कौशल्या, जिसका तुमपर स्नेह था वह, भी आज तुम्हारे विना वत्सहीन गौके समान बना दी गई है ॥ ११ ॥ राघव, ज्योतिषियोंने तुम्हें दीर्घायु बतलाया था, उनका कहना झूठा निकला, क्योंकि आप अल्पायु हुए ॥ १२ ॥ बुद्धिमान होनेपर भी आपकी बुद्धि नष्ट हो गई थी क्या, अथवा प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला कालही प्रत्येक प्राणिको उसका कर्म फल देता है ॥ १३ ॥ आप तो नीतिशास्त्र जाननेवाले हैं, दुःखोंको दूर करनेके उपाय भी आपको मालूम हैं, आप एक निपुण व्यक्ति हैं, फिर अचिन्तित मृत्युके वश आप कैसे हुए । सोते समय कैसे मारे गये ॥ १४ ॥ हे कमललोचन, क्रूर और नृशंस उस कालरात्रिने आलिङ्गन करके आपको मुझसे छीन

इह शेषे महाबाहो मां विहाय तपस्विनीम् । प्रियामिव यथा नारीं पृथिवीं पुरुषर्षभ ॥१६॥
अर्चितं सततं यत्नाद्गन्धमाल्यैर्मया तव । इदं ते मत्प्रियं वीर धनुः काञ्चनभूषितम् ॥१७॥
पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ । सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः ॥१८॥
दिवि नक्षत्रभूतं च महत्कर्म कृतं तथा । पुण्यं राजर्षिवंशं त्वमात्मनः समुपेक्षसे ॥१९॥
किं मां न प्रेक्षसे राजन्किं वा न प्रतिभाषसे । बालां बालेन संप्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम् ॥२०॥
संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया । स्मर तन्मम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ॥२१॥
कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर । अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम् ॥२२॥
कल्याणै रुचिरं गात्रं परिष्वक्तं मयैव तु । क्रव्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपरिकृष्यते ॥२३॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः । अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं न तु लप्स्यसे ॥२४॥
प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् । परिप्रक्ष्यति कौशल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥२५॥
स तस्याः परिपृच्छन्त्या वधं मित्रबलस्य ते । तव चाख्यास्यते नूनं निशायां राक्षसैर्वधम् ॥२६॥
सा त्वां सुप्तं हतं ज्ञात्वा मां च रक्षोगृहं गताम् । हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव ॥२७॥
मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवात्मजः । रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान्गोष्पदे हतः ॥२८॥
अहं दाशरथेनोढा मोहात्स्वकुलपांसनी । आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥२९॥

लिया ॥ १४ ॥ महावाहो पुरुषश्रेष्ठ, मुझ दुःखिनीको छोड़कर आप प्रिय स्त्रीके समान पृथिवीका आलिङ्गन करके सो रहे हैं ॥ १६ ॥ मैंने आपके जिस धनुषका गन्ध माल्यके द्वारा सदा पूजाकी है, वीर ! आपका वही यह सुवर्णभूषित धनुष है जो मेरा बड़ा प्रिय है ॥ १७ ॥ हे निष्पाप, मेरे श्वसुर और अपने पिता दशरथके तथा अन्य पितरोंके साथ आप अवश्यही स्वर्गमें मिल गये हैं ॥ १८ ॥ आकाशस्थ नक्षत्रके समान प्रकाशमान आपने बहुत बड़ा काम किया है, पर अपने पवित्र राजर्षि वंशकी आपने उपेक्षा क्यों की, उसे छोड़कर आप चले क्यों गये ॥ १९ ॥ राजन् ! आप हमारी ओर क्यों नहीं देखते हमसे क्यों नहीं बोलते, आपकी और हमारी बाल्यावस्थामें ही विवाह हुआ था और मैं सदा आपके साथ रही ॥ २० ॥ पाणिग्रहणके समय आपने साथ रहनेकी प्रतिज्ञा की थी, काकुत्स्थ, आप इसे स्मरण करें और दुःखिनी मुझको भी अपने साथ ले चलें ॥ २१ ॥ हे श्रेष्ठ गतिमान्, दुःखिनी मुझको छोड़कर इस लोकसे दूसरे लोकमें क्यों चले गये ॥ २२ ॥ मङ्गलमय वस्तुओंसे भूषित आपके शरीरको मैंने ही आलिङ्गन किया था। उस शरीरको माँस खानेवाले राक्षस इस समय घसीट रहे हैं ॥ २३ ॥ भरपूर दक्षिणावाले यज्ञ आपने किया है, फिर यज्ञीय अग्निके द्वारा आपका अन्तिम संस्कार क्यों नहीं हो रहा है ॥ २४ ॥ हम तीन आदमी एक साथ वनमें आये थे, उनमें शोकसे दुःखिनी कौशल्या अकेला लक्ष्मणको ही लौटा देखेगी ॥ २५ ॥ वे जब पूछेंगी तब लक्ष्मण रात्रिमें राक्षसोंके द्वारा आपके मित्रोंका तथा आपका वध कहेंगे ॥ २६ ॥ सोनेके समय आपका मारा जाना तथा राक्षसके घरमें मेरा रहना जब वे सुनेंगी तब उनका हृदय फट जायगा और वे मर जाँयगी ॥ २७ ॥ मुझ दुष्टाके कारणसे राजपुत्र बलवान् रामचन्द्र समुद्र पार करके गोष्पदमें मारे गये। अर्थात् खर आदिको मारनेवाले रामचन्द्र माल्यवान्के द्वारा मारे गये ॥ २८ ॥ राजा दसरथके पुत्र रामचन्द्रने अज्ञानसे जिस कुलनाशिनीसे ब्याह किया था, उनकी वही स्त्री मैं आर्यपुत्र

नूनमन्यां मया जातिं वारितं दानमुत्तमम् । याहमद्यैव शोचामि भार्या सर्वातिथेरिह ॥३०॥
साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण । समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥३१॥
शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय । रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥३२॥
इतीव दुःखसंतप्ता विललापायतेक्षणा । भर्तुः शिरो धनुश्चैव ददर्श जनकात्मजा ॥३३॥
एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः । अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥३४॥
विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च । न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥३५॥
अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपस्थितः । तेन दर्शनकामेन अहं प्रस्थापितः प्रभो ॥३६॥
नूनमस्ति महाराज राजभावात्क्षमान्वित । किंचिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥३७॥
एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् । अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ॥३८॥
स तु सर्वं समर्थ्यैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मनः । सभां प्रविश्य विदधे विदित्वा रामविक्रमम् ॥३९॥
अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् । जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥४०॥
राक्षसेन्द्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भीमविक्रमैः । समर्थयामास तदा रामकार्यविनिश्चयम् ॥४१॥
अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः । अब्रवीत्कालसदृशो रावणो राक्षसाधिपः ॥४२॥
शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे । समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥४३॥

रामचन्द्रकी मृत्युका कारण बनी ॥ २९ ॥ अवश्यही मैंने पूर्व जन्ममें उत्तम दान नहीं दिया है, जिस कारण सबके मनोरथ पूर्ण करनेवाले रामचन्द्रकी स्त्री होकर भी मैं शोकमग्न हो रही हूँ ॥ ३० ॥ रावण, अच्छी बात है, रामके ऊपर रखकर मेरा भी वध करो, इस प्रकार पत्नीको पतिके साथ मिला दो, तुम इतना मेरा उत्तम कल्याण करो ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रके सिरसे मेरा सिर उनके शरीरसे मेरा शरीर मिलादो, रावण ! मैं अपने महात्मा पतिका अनुगमन करूँगी ॥ ३२ ॥ विशालाक्षी सीताने इसी प्रकार दुःखसे पीड़ित होकर विलाप किया, और पतिका सिर तथा धनुष देखा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जब सीता विलाप कर रही थी उस समय वहाँ अशोकवाटिकामें प्रहस्तका भेजा सेनाका एक राक्षस हाथ जोड़कर अपने स्वामीके पास आया ॥ ३४ ॥ 'महाराजकी जय हो' ऐसा कहकर उसने प्रणाम किया तथा उसको प्रसन्न करके बोला कि सेनापति प्रहस्त आये हुए हैं ॥ ३५ ॥ अपने साथियोंके साथ प्रहस्त आपके पास आये हैं, वे आपका दर्शन करना चाहते हैं, इसीलिए उन्होंने आपके पास मुझे भेजा है ॥ ३६ ॥ राज्यकार्यसे अनवसरमें आये हुओंको भी क्षमा करनेवाले महाराज, निश्चय कोई आवश्यक काम आगया है, अतएव आप उनको दर्शन दें ॥ ३७ ॥ राक्षसके कहनेपर रावण अशोकवाटिका छोड़कर मन्त्रियोंको दर्शन देनेके लिए चला ॥ ३८ ॥ मन्त्रियोंके साथ अपने कार्योंकी उत्तम व्यवस्था कर रामचन्द्रका पराक्रम जान कर रावण सभामें गया और वहाँ उसने विचार किया ॥ ३९ ॥ वह सिर तथा वह उत्तम धनुष रावणके जानेके समयही वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ ४० ॥ राक्षसेन्द्र रावणने अपने भयङ्कर पराक्रमी मन्त्रियोंके साथ रामविषयक अपने कर्तव्यका निश्चय किया ॥ ४१ ॥ पास बैठे हुए हितैषी अपने समस्त सेनापतियोंसे कालके समान राक्षसाधिप रावण बोला ॥ ४२ ॥ डंकेपर चोट करके सैनिकोंको शीघ्र एकत्र करो, पर एकत्र होनेका कारण उन्हें न

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वचस्तदैव दूताः सहसा महद्बलम् ।
समानयंश्चैव समागतं च न्यवेदयन्भर्तरि युद्धकाङ्क्षिणि ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी । आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखी ॥ १ ॥
मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम् । आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥ २ ॥
सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया । रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥ ३ ॥
सा ददर्श सखी सीतां सरमा नष्टचेतनाम् । उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुषु ॥ ४ ॥
तां समाश्वासयामास सखी स्नेहेन सुव्रताम् । उक्ता यद्रावणेन त्वं प्रत्युक्तश्च स्वयं त्वया ॥ ५ ॥
लीनया गहने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् । तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद्भयम् ॥ ६ ॥
स संभ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः । तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥ ७ ॥
न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः । वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नैवोपपद्यते ॥ ८ ॥

बताओ ॥ ४३ ॥ दूतोंने रावणकी वैसी आज्ञा पाकर शीघ्रही बहुत बड़ी सेना एकट्ठी की, उनके आनेपर उनलोगोंने युद्ध चाहनेवाले प्रभुको उनके एकत्र होनेकी खबर की ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

सीता मोहित हो गयी है, रावणकी मायाके कारण बुद्धि खो चुकी है—यह देखकर सरमा नामकी राक्षसी जो उनकी प्रिय सखी थी उनके पास गयी ॥ १ ॥ रावणने सीताको छल लिया है जिस कारण वह नितान्त दुःखिनी हो रही है, अतएव मधुर बोलनेवाली सरमाने उनको समझाया ॥२॥ वह रावणकी आज्ञासे सीताकी रक्षा करती थी अतएव सीतासे उसकी मैत्री हो गई थी, वह दयावती तथा दृढ़प्रतिज्ञा थी ॥ ३ ॥ सरमाने सीताको देखा कि उसका ज्ञान नष्ट हो गया है। वह थकी हुई अतएव धूलमें लोटी घोड़ीके समान मालूम पड़ती थी ॥ ४ ॥ सखीस्नेहके कारण उसने अपने व्रतमें दृढ़ सीताको समझाया। उसने कहा रावणने तुमसे जो कहा है और तुमने जो रावणसे कहा है वह सब आकाशमें छिपनेकी जगहमें छिपकर मैंने सुना है। हे विशालाक्षि ! तुम्हारे लिए मैं रावणसे भी नहीं डरती ॥ ५—६ ॥ मैथिलि ! रावण जिस कारण यहाँसे घबड़ाकर निकल गया वह सब भी मैंने बाहर जाकर जान लिया ॥ ७ ॥ सोते हुए रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी बात सच होही नहीं सकती, क्योंकि उन्हें राक्षसोंका स्वभाव मालूम है, ऐसी दशामें वे असावधान नहीं रह सकते। पुरुषसिंह उस रामचन्द्रके वधकी बात तो बिलकुल असम्भव है ॥ ८ ॥

न त्वेवं वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः । सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥ ९ ॥
दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान्महोरस्कः प्रतापवान् । धन्वी संनहनोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥१०॥
विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुलीनो नयशास्त्रवित् ॥११॥
हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः । न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रुनिबर्हणः ॥१२॥
अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना । एवं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥१३॥
शोकस्ते विगतः सर्वकल्याणं त्वामुपस्थितम् । ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं ते भवति शृणु ॥१४॥
उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया । संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥१५॥
दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः । सहितैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥१६॥
अनेन प्रेषिता ये च राक्षसा लघुविक्रमाः । राघवस्तीर्ण इत्येवं प्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१७॥
स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः । एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥१८॥
इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह । सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम् ॥१९॥
दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम् । उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥ २०॥
संनाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका । भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिःस्वनम् ॥२१॥
कल्प्यन्ते मत्तमातङ्गा युज्यन्ते रथवाजिनः । दृश्यन्ते तुरगारूढाः प्रासहस्ताः सहस्रशः ॥२२॥

वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनेवाले वानर भी इस प्रकार मारे नहीं जा सकते, क्योंकि वे रामचन्द्रके द्वारा सुरक्षित हैं, जिस प्रकार देवता इन्द्रके द्वारा सुरक्षित हैं ॥ ९ ॥ रामचन्द्रकी भुजाएँ लम्बी और गोली हैं, वे प्रतापी हैं, धनुर्धारी हैं, बली हैं और संसारमें धर्मात्माके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥१०॥ वे पराक्रमी हैं, अपनी तथा दूसरों-की रक्षा करनेमें समर्थ हैं, नीति जाननेवाले और कुलीन हैं, वे लक्ष्मणके साथ होकर सबकी रक्षा कर सकते हैं ॥११॥ रामचन्द्रके बल और पौरुष अचिन्तनीय हैं, वे शत्रुसेनाको मारनेवाले हैं, सीते ! शत्रुओंको मारनेवाले श्रीमान् रामचन्द्र नहीं मारे गये हैं ॥ १२ ॥ अनुचित बुद्धि और कार्य करनेवाले तथा समस्त प्राणियोंके विरोधी क्रूर मायावी रावणने तुमसे छल किया है, उसने माया की है ॥ १३ ॥ तुम्हारे शोकके दिन गये, अबतो तुम्हारा मंगल होनेवाला है. अब निश्चित तुम्हें सम्पत्ति मिलेगी, तुम अपना प्रिय वृत्तान्त सुनो ॥ १४ ॥ वानरी सेनाके साथ समुद्र-पारकरके रामचन्द्र समुद्रके दक्षिण तटपर आकर ठहरे हैं ॥ १५ ॥ लक्ष्मणसहित रामचन्द्रको मैंने देखा है, उनका मनोरथ पूर्ण हुआ है अर्थात् वे समुद्र पार करसके हैं, सागर-तीरस्थ अपने सैनिकोंसे वे सुरक्षित हैं ॥ १६ ॥ इस रावणने जो राक्षस भेजे थे उन सबने आकर यही समाचार दिया है कि रामचन्द्रने समुद्र पार करलिया है ॥१७॥ विशालाक्षि ! इस समाचारको सुनकर रावण अपने मन्त्रियोंके साथ सलाह कर रहा है ॥ १८ ॥ सरमा इस प्रकार सीतासे कह रही थी, उसी समय सीता और सरमा दोनोंने सब प्रकारके उद्योग करनेके लिए उद्यत सैनिकोंके भयङ्कर शब्द सुने ॥१९॥ डण्डेकी चोटसे बजनेवाली भेरीका शब्द सुनकर मधुरभाषणी सरमा सीतासे बोली ॥२०॥ भीरु, यह भयङ्कर भेरी मारुबाजा बजा रही है, युद्धकी सूचना दे रही है, मेघगर्जनके समान गम्भीर यह भेरीका शब्द सुनो ॥ २१ ॥ मतवाले

तत्र तत्र च संनद्धाः संपतन्ति सहस्रशः । आपूर्यन्ते राजमार्गाः सैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥२३॥
वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिव सागरः । शस्त्राणां च प्रसन्नानां चर्मणां वर्मणां तथा ॥२४॥
रथवाजिगजानां च राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् । संभ्रमो रक्षसामेष हृषितानां तपस्विनाम् ॥
प्रभां विसृजतां पश्य नानावर्णसमुत्थिताम् ॥२५॥
संभ्रमो रक्षसामेष तुमुलं लोमहर्षणम् । श्रीस्त्वां भजति शोकघ्नी रक्षसां भयमागतम् ॥२६॥
रामः कमलपत्राक्षो दैत्यानामिव वासवः । अवजित्य जितक्रोधस्तमचिन्त्यपराक्रमः ॥
रावणं समरे हत्वा भर्ता त्वाधिगमिष्यति ॥२७॥
विक्रमिष्यति रक्षःसु भर्ता ते सहलक्ष्मणः । यथा शत्रुषु शत्रुघ्नो विष्णुना सह वासवः ॥२८॥
आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कगतां सतीम् । अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते ॥२९॥
अस्राण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि जानकि । समागम्य परिष्वक्ता तस्योरसि महोरसः ॥३०॥
अचिरान्मोक्ष्यते सीते देवि ते जघनं गताम् । धृतामेकां बहून्मासान्वेणीं रामो महाबलः ॥३१॥
तस्य दृष्ट्वा मुखं देवि पूर्णचन्द्रमिवोदितम् । मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी ॥३२॥
रावणं समरे हत्वा न चिरादेव मैथिलि । त्वया समग्रः प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम् ॥३३॥
सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना । सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥३४॥

हाथी तयार किये जारहे हैं, घोड़े रथमें जोते जारहे हैं, हजारों घुड़सवार भाला लिये हुए देख पड़ते हैं ॥ २२ ॥ जिसको जहाँसे प्रस्थान करना है वहाँ वहाँ हजारों सैनिक एकत्र होते हैं। अद्भुत रूप-वाले सैनिकोंसे सड़कें भर गयी हैं, ॥ २३ ॥ जिस प्रकार वेगवान् और गर्जन करनेवाले जलसमूहसे समुद्र भर जाता है। चमकीले शस्त्रों, ढालों तथा कवचोंको देखो, जिनसे अनेक प्रकारकी शोभा निकल रही है। रथ, घोड़े, हाथी तथा रावणके अनुयायी राक्षसोंकी घबड़ाहट देखो, वे राक्षस प्रसन्न हैं तथा दौड़ रहे हैं ॥ २४—२५ ॥ राक्षसोंकी इस घबड़ाहटसे ही यह भयङ्कर रोंगटे खड़े करनेवाला शब्द हो रहा है, शोक नष्ट करनेवाली श्री तुम्हारे पास आरही है और राक्षसोंके पास भय आरहा है ॥२६॥ कमलनयन राम दैत्योंके लिए इन्द्रके समान हैं, क्रोधको जीतनेवाले परम पराक्रमी राम युद्धमें रावणको जीतकर तुम्हारे पास आवेंगे ॥२७॥ तुम्हारे पति रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ राक्षसोंपर विक्रम दिखावेंगे, जिस प्रकार शत्रुहन्ता इन्द्र विष्णुके साथ शत्रुओंपर पराक्रम दिखाते हैं ॥ २८ ॥ शत्रुके मारे जानेपर रामके अंकमें विराज-मान् सती तुमको मैं शीघ्रही देखूँगी, शीघ्रही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा ॥ २९ ॥ जानकि! बाहरसे आये हुए रामचन्द्रके द्वारा आलिङ्गित होकर उनकी चौड़ी छातीमें तुम आनन्दके आँसू बहावोगी ॥ ३० ॥ देवि सीते! शीघ्रही जंघेतक लटकी हुई कई महीनोंसे बँधी तुम्हारी एक चोटी रामचन्द्र शीघ्रही खोलेंगे अर्थात् तुम्हारे विरहका शीघ्रही अन्त होगा ॥ ३१ ॥ देवि, पूर्णचन्द्रके समान उदित उनका मुख देखकर तुम शोकाश्रुका सदाके लिए त्याग कर दोगी, जिस प्रकार साँपिन केंचुल सदाके लिए छोड़ देती है ॥ ३२ ॥ मैथिलि! शीघ्रही रावणको युद्धमें मारकर, रामचन्द्र तुम्हारे साथ समस्त सुखोंका भोग करेंगे ॥ ३३ ॥ महात्मा रामचन्द्रके द्वारा आदर पाकर तुम प्रसन्न होओगी, जिस प्रकार सुवृष्टि होनेसे उत्तम शस्ययुक्त होकर

गिरिवरमभितो विवर्तमानो हय इव मण्डलमाशु यः करोति ।
तमिह शरणमभ्युपैहि देवि दिवसकरं प्रभवो ह्ययं प्रजानाम् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

अथ तां जातसंतापां तेन वाक्येन मोदिताम् । सरमा ह्लादयामास महीं दग्धामिवाम्भसा ॥ १ ॥
ततस्तस्या हितं सख्याश्चिकीर्षन्ती सखी वचः । उवाच काले कालज्ञा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥
उत्सहेयमहं गत्वा त्वद्वाक्यमसितेक्षणे । निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तितुम् ॥ ३ ॥
नहि मे क्रममाणाया निरालम्बे विहायसि । समर्थो गतिमन्वेतुं पवनो गरुडोऽपि वा ॥ ४ ॥
एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमामिदमब्रवीत् । मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥
समर्था गगनं गन्तुमपि च त्वं रसातलम् । अवगच्छाद्य कर्तव्यं कर्तव्यं ते मदन्तरे ॥ ६ ॥
मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव । ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः ॥ ७ ॥
स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः । मां मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेव वारुणी ॥ ८ ॥
तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत् । राक्षसीभिः सुघोराभिर्यो मां रक्षति नित्यशः ॥ ९ ॥

पृथिवी होती है ॥ ३४ ॥ मेरु पर्वतके चारों ओर जो भ्रमण करता है, घोड़ेके समान चक्कर मारता है, उसी सूर्यदेवकी शरण तुम जाओ, क्योंकि वे सब प्राणियोंके उत्पादक हैं ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥



रावणके वचनोंसे सीता दुःखिनी हो गयी थी, उनको सरमाने प्रसन्न किया, जिस प्रकार जली पृथिवीको मेघ हरी-भरी कर देते हैं ॥ १ ॥ सखी सीताका मंगल करनेकी इच्छा रखनेवाली, समय समझनेवाली सरमा समयपर हँसकर उनसे बोली ॥२॥ मैं छिपकर रामचन्द्रके पास जाना चाहती हूँ, तुम्हारा संवाद उनसे कहकर तथा उनका कुशल जानकर मैं छिपी हुई लौट आना चाहती हूँ ॥ ३ ॥ निरालम्ब आकाशमें मैं जब चलूँगी तो वायु और गरुड़ भी मुझे चलनेमें नहीं पा सकते ॥ ४ ॥ सरमाके ऐसा कहनेपर सीता मधुरस्वरसे कोमल वचन उससे बोली, जो सीता पहले शोकमग्न हो गयी थी ॥ ५ ॥ तुम आकाश और पातालमें जानेमें समर्थ हो तब मेरे सम्बन्धमें तुमको क्या करना चाहिए यह समझ लो ॥ ६ ॥ यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहती हो, यदि इस विषयमें तुम्हारी बुद्धि स्थिर है, तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि यहाँसे जाकर रावण क्या कर रहा है ॥ ७ ॥ मायाके बलसे बलवान् शत्रुको रुलानेवाला क्रूर और दुष्ट रावण मुझे मोहित करता है, जिस प्रकार शराब पीतेही बेहोश कर देती है ॥ ८ ॥ क्रूर राक्षसियोंके द्वारा वह मुझे डरवाता है, तिरस्कृत कराता है और मेरी चौकसी रखता है ॥ ९ ॥ रावणके भयसे

उद्विग्ना शङ्किता चास्मि न स्वस्थं च मनो मम। तद्भयाच्चाहमुद्विग्ना अशोकवनिकां गता ॥१०॥
यदि नाम कथा तस्य निश्चितं वापि यद्भवेत्। निवेदयेथाः सर्वं तद्वरो मे स्यादनुग्रहः ॥११॥
साप्येवं ब्रुवतीं सीतां सरमा मृदुभाषिणी। उवाच वचनं तस्याः स्पृशन्ती बाष्पविक्लवम् ॥१२॥
एष ते यद्यभिप्रायस्तस्माद्गच्छामि जानकि। गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावर्तामि मैथिलि ॥१३॥
एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः। शुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः ॥१४॥
सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः। पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकां शुभाम् ॥१५॥
सा प्रविष्टा ततस्तत्र ददर्श जनकात्मजाम्। प्रतीक्षमाणां स्वामेव भ्रष्टपद्मामिव श्रियम् ॥१६॥
तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां प्रियभाषिणीम्। परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम् ॥१७॥
इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः। क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१८॥
एवमुक्ता तु सरमा सीतया वेपमानया। कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः ॥१९॥
जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः। अतिस्निग्धेन वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन चोदितः ॥२०॥
दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली। निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम् ॥२१॥
लंघनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः। वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो युधि ॥२२॥
एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहु बोधितः। न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्थमर्थपरो यथा ॥२३॥
नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि। सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते ॥२४॥

अशोकवाटिकामें रहनेपर भी मैं उद्विग्न हूँ, शङ्कित हूँ, मेरा मन स्वस्थ नहीं है ॥ १० ॥ रावणके यहाँ मेरे सम्बन्धमें जो बातें हों या जो वह निश्चित करे—वह सब तुम मेरे सामने आकर कहना, यह तुम्हारा मुझपर अनुग्रहही होगा ॥ ११ ॥ सीताके ऐसा कहनेपर उनके आँसूसे भरे मुँहपर हाथ फेरती हुई सरमा बोली ॥ १२ ॥ यदि तुम्हारा यही अभिप्राय है तो मैं जाती हूँ, शत्रुका अभिप्राय जानकर मैं शीघ्रही लौटती हूँ ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर वह उस राक्षस रावणके पास गयी और मन्त्रियोंके साथ सब बातें उसने सुनी ॥ १४ ॥ निश्चयको जाननेवाली सरमा उस दुरात्माका निश्चय जानकर पुनः अशोकवाटिकामें लौट आयी ॥ १५ ॥ वहाँ आकर उसने सीताको देखा जो कमलसे निकली लक्ष्मीके समान थीं, और जो सरमाकीही प्रतीक्षा कर रही थीं ॥ १६ ॥ सीताने लौटकर आयी हुई सरमाका आलिङ्गन किया और बैठनेके लिए अपना आसन दिया ॥ १७ ॥ यहाँ सुखपूर्वक बैठकर सब बातें मुझसे कहो, दुरात्मा रावणने क्या निश्चय किया ॥ १८ ॥ काँपती हुई सीताके ऐसा कहनेपर उसने रावण तथा मन्त्रियोंने जो कहा था वह सब कहा ॥१९॥ आपको छोड़ देनेके लिए रावणकी माताने उसे बहुत समझाया, रावणके हितैषी बूढ़े मन्त्रीने भी उसे बहुत कहा ॥ २० ॥ मनुष्यश्रेष्ठ रामचन्द्रको आप सीता आदरपूर्वक लौटा दीजिए। जनस्थानमें जो अद्भुत काम हुआ है वही इसका अच्छा प्रमाण है, अर्थात् रामविरोधसे हानिही होगी ॥ २१ ॥ हनुमानका समुद्रपार करना तथा सीताको देखना, युद्धमें राक्षसोंको मारना क्या किसी मनुष्यके द्वारा सम्भव है ? ॥२२॥ इस प्रकार बूढ़े मन्त्रियों और माताने उसे बहुत समझाया, पर वह तुम्हें लौटाना नहीं चाहता, जिस प्रकार धन-लोभी धन छोड़ना नहीं चाहता ॥ २३ ॥ युद्धमें बिना मरे वह तुम्हें लौटाना नहीं चाहता, यही क्रूर

तदेषां सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता । भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तः स संयुगे ॥२५॥
राक्षसानां च सर्वेषामात्मनश्च वधेन हि । निहत्य रावणं संख्ये सर्वथा निशितैः शरैः ॥
प्रतिनेष्यति रामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरीशङ्खसमाकुलः । श्रुतो वै सर्वसैन्यानां कम्पयन्धरणीतलम् ॥२७॥
श्रुत्वा तु तं वानरसैन्यनादं लङ्कागता राक्षसराजभृत्याः ।
हतौजसो दैन्यपरीतचेष्टाः श्रेयो न पश्यन्ति नृपस्य दोषात् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन नादिना । उपयाति महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥ १ ॥
तं निनादं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः । मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥
अथ तान्सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः । सभां संनादयन्सर्वानित्युवाच महाबलः ॥ ३ ॥
जगत्संतापनः क्रूरो गर्हयन्राक्षसेश्वरः । तरणं सागरस्यास्य विक्रमं बलपौरुषम् ॥ ४ ॥
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम् । भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान् ॥
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम् ॥ ५ ॥

रावण तथा उसके मन्त्रियोंका निश्चय है ॥२४॥ उनपर मृत्युकी छाया पड़ गयी है इसीसे उनका ऐसा निश्चय है, जबतक युद्धमें वे समस्त राक्षस तथा रावण मारे न जाँय तबतक भयसे वे तुम्हें छोड़ना नहीं चाहते, इसका परिणाम यह होगा कि रामचन्द्र तीखे बाणोंसे युद्धमें रावणको मारेंगे और तुमको अयोध्या लौटा ले जाँयगे ॥ २५, २६ ॥ इसी समय भेरी शङ्ख आदिका शब्द सैनिकोंके शब्दसे मिलकर सुनायी पड़ा, उस शब्दसे पृथिवी काँपने लगी ॥ २७ ॥ लङ्कामें रहनेवाले राक्षसराजके भृत्योंने वानरी सेनाके शब्द सुने, जिससे उनके तेज नष्ट हो गये, उनकी चेष्टा मलिन हो गयी, वे रावणके दोषके कारण अपने कल्याणका कोई उपाय न देख सके ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका चौतीसवाँ सर्ग समाप्त । ३४ ॥

शङ्ख और भेरीके शब्दके साथ शत्रुनगरको जीतनेवाले महाबाहु रामचन्द्र लङ्कामें जा रहे हैं ॥ १ ॥ उस शब्दको सुनकर राक्षसेश्वर रावणने थोड़ी देर विचारकर मन्त्रियोंकी ओर देखा ॥ २ ॥ सभी मन्त्रियोंको अपनी ओर आकृष्टकर सभाको गुंजाते हुए महाबली रावण बोला ॥ ३ ॥ संसारको सन्ताप देनेवाला क्रूर राक्षसेश्वर सेनाकी निन्दा करते हुए बोला—रामचन्द्रका सागरका पार करना, उनके बल पौरुष तथा पराक्रम-का जो वर्णन आपलोगोंने किया वह मैंने सुना । पर मैं तो आपलोगोंको भी युद्धमें सत्यपराक्रम समझता

ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान्नाम राक्षसः । रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥
विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन्नयानुगः । स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥ ७ ॥
संदधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह । स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥
हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा संधिः समेन च । न शत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीत विग्रहम् ॥ ९ ॥
तन्मह्यं रोचते संधिः सह रामेण रावण । यदर्थमभियुक्तोऽसि सीता तस्मै प्रदीयताम् ॥१०॥
तस्य देवर्षयः सर्वे गन्धर्वाश्च जयैषिणः । विरोधं मागमस्तेन संधिस्ते तेन रोचताम् ॥११॥
असृजद्भगवान्पक्षौ द्वावेव हि पितामहः । सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ ॥१२॥
धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणां महात्मनाम् । अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षस ॥१३॥
धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं यदा कृतमभूद्युगम् । अधर्मो ग्रसते धर्मं तदा तिष्यः प्रवर्तते ॥१४॥
तत्त्वया चरता लोकान्धर्मोऽपि निहतो महान् । अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद्बलिनः परे ॥१५॥
स प्रमादात्प्रवृद्धस्तेऽधर्मोऽहिर्ग्रसते हि नः । विवर्धयति पक्षं च सुराणां सुरभावनः ॥१६॥
विषयेषु प्रसक्तेन यत्किंचित्कारिणा त्वया । ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगो जनितो महान् ॥१७॥
तेषां प्रभावो दुर्धर्षः प्रदीप्त इव पावकः । तपसा भावितात्मानो धर्मस्यानुग्रहे रताः ॥१८॥

हैं, जो इस समय आपलोग रामका पराक्रम याद करके चुपचाप आपसमें एक दूसरेका मुँह देखते हैं ॥ ४—५ ॥ अनन्तर महाबुद्धिमान् माल्यवान नामक राक्षस, जो रावणका नाना था, उसका वचन सुनकर बोला ॥ ६ ॥ राजन् ! जो राजा विद्वान् है, नीतिके अनुसार चलनेवाला है, वही बहुत दिनों तक पृथिवीका शासन करता है और शत्रुओंको वशमें करता है ॥ ७ ॥ जो समय देखकर शत्रुसे सन्धि तथा विग्रह करता है और अपना पक्ष बढ़ाता रहता है वही ऐश्वर्य पाता है ॥ ८ ॥ जिस समय राजाकी शक्ति क्षीण होती हो अथवा उसका शत्रु उसके समान बलवान् हो तो उसे सन्धि कर लेनी चाहिए, यदि वह बली हो तो उसे विग्रह करना चाहिए ॥ ९ ॥ रावण ! इस कारण मुझे तो रामसे सन्धि कर लेनाही उचित प्रतीत होता है, और जिसके लिए तुम्हें आग्रह है उस सीताको रामचन्द्रको लौटा दो ॥ १० ॥ सभी देवता तथा गन्धर्व रामचन्द्रकी विजय चाहनेवाले हैं, अतएव तुम उनसे विरोध न करो, तुम उनसे सन्धि करनेका ही निश्चय करो ॥ ११ ॥ भगवान् ब्रह्माने दो पक्ष बनाये हैं, एक देवपक्ष दूसरा राक्षसपक्ष। धर्म और अधर्म इनके आश्रय हैं ॥ १२ ॥ महात्मा देवताओंका पक्ष धर्मका है, और राक्षसों तथा असुरोंका पक्ष अधर्म है ॥ १३ ॥ जब सत्ययुग होता है तब बलवान् होकर धर्म अधर्मको ग्रास कर लेता है और जब कलियुग प्रारम्भ होता है तब अधर्म धर्मको ग्रस लेता है ॥ १४ ॥ उस धर्मका दिग्विजयके लिए भ्रमण करते हुए तुमने नाश किया है और अधर्म अर्जन किया है, अतएव धर्मसहायक होनेके कारण शत्रु हमसे बली है ॥ १५ ॥ अतएव तुम्हारे प्रमादसे बढ़ा हुआ अधर्मरूपी सर्प इस समय हमलोगोंका ग्रास कर रहा है और धर्म देवताओंके पक्षको प्रबल बना रहा है ॥ १६ ॥ स्त्री मद्य आदि विषयोंमें अनुरक्त होकर तुमने कर्तव्या-कर्तव्यका ध्यान नहीं रखा और अग्नितुल्य ऋषियोंका तुमने क्रोध बढ़ाया ॥ १७ ॥ तपस्याके द्वारा जो पवित्र हैं तथा धर्मार्जन करनेमें लगे हैं उनका प्रभाव प्रदीप्त अग्निके समान दुःसह है ॥ १८ ॥

मुख्यैर्यज्ञैर्यजन्त्येते तैस्तैर्यज्ञे द्विजातयः। जुह्वत्यग्नींश्च विधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥
अभिभूय च रक्षांसि ब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥१९॥
दिशो विप्रद्रुताः सर्वे स्तनयित्नुरिवोष्णगे। ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ॥२०॥
आवृत्य रक्षसां तेजो धूमो व्याप्य दिशो दश। तेषु तेषु च देशेषु पुण्येष्वेव दृढव्रतैः ॥२१॥
चर्यमाणं तपस्तीव्रं संतापयति राक्षसान्। देवदानवयक्षेभ्यो गृहीतश्च वरस्त्वया ॥२२॥
मनुष्या वानरा ऋक्षा गोलाङ्गूला महाबलाः। बलवन्त इहागम्य गर्जन्ति दृढविक्रमाः ॥२३॥
उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वा घोरान्बहुविधान्बहून्। विनाशमनुपश्यामि सर्वेषां रक्षसामहम् ॥२४॥
खराभिस्तनिता घोरा मेघाः प्रतिभयंकराः। शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वतः ॥२५॥
रुदतां वाहनानां च प्रपतन्त्यश्रुबिन्दवः। रजोध्वस्ता विवर्णाश्च न प्रभान्ति यथापुरम् ॥२६॥
व्याला गोमायवो गृध्रा वाश्यन्ति च सुभैरवम्। प्रविश्य लङ्कामारामे समवायांश्च कुर्वते ॥२७॥
कालिकाः पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिताः। स्त्रियःस्वप्नेषु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभाष्य च ॥२८॥
गृहाणां बलिकर्माणि श्वानः पर्युपसेवते। खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलेषु च ॥२९॥
मार्जारा द्वीपिभिः सार्धं सूकराः शुनकैः सह। किंनरा राक्षसैश्चापि समेयुर्मानुषैः सह ॥३०॥
पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः। राक्षसानां विनाशाय कपोता विचरन्ति च ॥३१॥
चीचीकूचीति वाशन्तः शारिका वेश्मसु स्थिताः। पतन्ति ग्रथिताश्चापि निर्जिताः कलहैषिभिः ॥३२॥

वे ब्राह्मण ध्यानरूप यज्ञके द्वारा देवताओंका पूजन करते हैं, अग्निहोत्र करते हैं, वेदोंका पाठ करते हैं, अतएव इनके द्वारा राक्षस पराजित होते हैं ॥ १९ ॥ अतएव ग्रीष्मकालमें मेघके समान राक्षस दिशाओंमें भाग गये हैं। अग्नितुल्य ऋषियोंके अग्निहोत्रसे उठे हुए धूमने राक्षसोंका तेज ढँक लिया है। पवित्र देशोंमें पवित्र इष्टि और व्रत धारण करनेवाले ऋषियोंके द्वारा किया हुआ तीव्र तप राक्षसोंको सन्ताप देता है। तुमने जो वर पाया है वह देवता, दानव और गन्धर्वोंके लिएही वर है ॥ २०—२२ ॥ पर यहाँ तो लंकामें आकार मनुष्य, वानर, भालु, गोलांगूल आदि गर्जन कर रहे हैं। ये सभी बली और पराक्रमी हैं ॥ २३ ॥ अनेक प्रकारके उत्पातोंको देखकर, जो भयानक और अनेक तरहके हैं, मैं सभी राक्षसोंका विनाश देख रहा हूँ ॥ २४ ॥ कठोर गर्जन करते हुए क्रूर और भयंकर मेघ लंकामें गरम खून बरसा रहे हैं ॥ २५ ॥ घोड़े, हाथी आदि रोते हैं, उनके आँसू गिर रहे हैं। दिशाएँ धूलसे मलिन हो गयी है, वे पहलेके समान सुन्दर नहीं मालूम होतीं ॥ २६ ॥ दुष्ट शृगाल और गीध भयानक शब्द करते हैं, और लंकाके बागोंमें एकत्र होते हैं ॥ २७ ॥ स्वप्नमें दीख पड़ता है कि काली स्त्रियाँ, जिनके दाँत सफेद हैं, आगे खड़ी होकर हँसती हैं तथा बुरी बातें कहकर घरकी चीजें चुराती हैं ॥ २८ ॥ घरमें बलि दिया हुआ हविष्य कुत्ते खा जाते हैं, गौसे गधे और नेवले से चूहे उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ बिल्ली बाघके साथ, सूअर कुत्तेके साथ, किन्नर मनुष्यों और राक्षसोंके साथ मिलते हैं ॥ ३० ॥ धूसर लाल पैरवाले कबूतर अकस्मात् घरोंमें आकर राक्षसोंका विनाश सूचित करते हैं ॥ ३१ ॥ घरके सारिका आदि पक्षी चीची कूची आदि शब्द कहते हैं, और कलह करने-

पक्षिणश्च मृगाः सर्वे प्रत्यादित्यं रुदन्ति ते । करालो विकलो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥३३॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले कालेऽन्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युत्पतन्ति च ॥३४॥
इदं वचस्तस्य निगद्य माल्यवान्परीक्ष्य रक्षोधिपतेर्मनः पुनः ।
अनुत्तमेषूत्तमपौरुषो बली बभूव तूर्णीं समवेक्ष्य रावण ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

:०*०:

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः । न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ १ ॥
स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः । अमर्षात्परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत् ॥ २ ॥
हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते । परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रगतं मम ॥ ३ ॥
मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् । समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनाश्रयम् ॥ ४ ॥
रक्षसामीश्वरं मां च देवानां च भयंकरम् । हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥
वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः । त्वयाहं परुषाण्युक्तो मम प्रोत्साहनेन वा ॥ ६ ॥
प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिभाषते । पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनेन वा ॥ ७ ॥
आनीय च वनात्सीतां पद्महीनामिव श्रियम् । किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम् ॥ ८ ॥
वृतं वानरकोटीभिः ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् । पश्य कैश्चिदहोभिश्च राघवं निहतं मया ॥ ९ ॥

की इच्छा रखनेवाले काक आदि पक्षी एकत्र होते हैं ॥ ३२ ॥ पशु-पक्षी आदि प्रतिदिन प्रातःकाल रोते हैं। भयङ्कर आकृतिवाला, मुण्डितकेश, काला और पीला मनुष्य कालरूप होकर समय-समयपर घरोंको देखता है। तथा इसी तरहके और उत्पात दिखायी पड़ते हैं। इन बातोंको देखकर परिणाममें सुखकारी काम हम लोगोंको करने चाहिये ॥ ३३, ३४ ॥ ऐसा कहकर तथा रावणके मनके भावको समझकर मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ बली माल्यवान् चुप हो गया ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

माल्यवान्का कहा हितकारी वचन रावणने स्वीकार न किया; क्योंकि वह कालवश हो गया था ॥१॥ उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, आँखे उलट गयीं, वह क्रोधकरके माल्यवान्से बोला ॥ २ ॥ शत्रुपक्षको प्रबल समझकर जो अहितकारी वचन हितकारीके रूपमें कहा गया है, उसे मेरे कानोंने नहीं सुना है ॥ ३ ॥ बिचारा राम मनुष्य है, उसके सहायक वानर हैं, उसके पिताने उसका त्याग किया है, वह वन-वन भटकता है, उसे तुम शक्तिमान् किस कारण समझते हो ? ॥४॥ राक्षसोंके स्वामी, देवताओंके लिए भी भयंकर तथा सब पराक्रमोंसे युक्त मुझको हीन क्यों समझ रहे हो ? ॥ ५ ॥ तुमने मुझसे जो कठोर वचन कहे हैं, वह क्या मेरी वीरता न सहनेसे, अथवा शत्रुके प्रति पक्षपातसे, अथवा मुझे प्रोत्साहित करनेके लिए कहा गया है ? ॥ ६ ॥ प्रभावयुक्त राज्यारूढ मनुष्यसे कौन शास्त्रज्ञ पण्डित, प्रोत्साहित करनेके अतिरिक्त, ऐसे कठोर वचन कह सकता है ॥ ७ ॥ कमलहीन लक्ष्मीके समान सीताको मैं वनसे ले आया, उसे रामचन्द्रके भयसे मैं क्यों लौटा दूँ ॥ ८ ॥ करोड़ों वानर, सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको कुछही दिनोंमें मैं

द्वन्द्वे यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि संयुगे । स कस्माद्रावणो युद्धे भयमाहारयिष्यति ॥१०॥
द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित् । एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥११॥
यदि तावत्समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया । रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम् ॥१२॥
स तु तीर्त्वार्णवं रामः सह वानरसेनया । प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन्प्रतियास्यति ॥१३॥
एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम् । व्रीडितो माल्यवान्वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥१४॥
जयाशिषा तु राजानं वर्धयित्वा यथोचितम् । माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम् ॥१५॥
रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च । लङ्कायास्तु तदा गुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥१६॥
व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम् । दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥१७॥
पश्चिमायामथ द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तदा । व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥१८॥
उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ । स्वयं चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ॥१९॥
राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम् । मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः ॥२०॥
एवं विधानं लङ्कायां कृत्वा राक्षसपुङ्गवः । कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥२१॥
विसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।
जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो विवेश सोऽन्तःपुरमृद्धिमन्महत् ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

मार डालूँगा, यह आप लोग देखेंगे ॥ ९ ॥ युद्धमें जिसके सामने देवताओंका समूह भी नहीं ठहरता वह रावण युद्धमें किसीसे क्यों डरेगा ॥ १० ॥ मैं दो टुकड़े हो जाऊँगा पर नम्र न होऊँगा, यह मेरा स्वाभाविक दोष है, क्या किया जाय, स्वभावका तो अतिक्रम नहीं हो सकता ॥ ११ ॥ रामचन्द्रने अकस्मात् पुल बना लिया तो इसमें विस्मयकी कौन बात हुई और इससे आपलोग डर क्यों गये ॥ १२ ॥ रामचन्द्रने वानरी सेनाके साथ समुद्र-पार किया, मैं आप लोगोंके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि वे यहाँ से जीते न लौट सकेंगे ॥ १३ ॥ रावणके ऐसा कहनेसे माल्यवान्‌ने उसे युद्धके लिए घबड़ाया हुआ समझा, अपने प्रति क्रोधित जाना, और लज्जित होकर कोई उत्तर न दिया ॥ १४ ॥ यथोचित जय और आशीर्वादसे राजाको प्रसन्न करके तथा राजाकी आज्ञा लेकर माल्यवान् अपने घर गया ॥१५॥ रावणने मन्त्रियोंके साथ विचार करके निश्चय किया, उसने लङ्काकी रक्षाका प्रबन्ध किया ॥१६॥ पूर्वके द्वारका भार प्रहस्तको, दक्षिण द्वारका भार महाबली महापार्श्व महोदरको दिया। पश्चिम द्वारका भार अपने पुत्र इन्द्रजितको दिया, जो बहुतसी माया जानता है, उसके अधीन बहुतसे राक्षस भी हैं ॥१७-१८॥ उत्तरके द्वारका भार शुक और सारणको सौंपा और उसने मंत्रियोंसे कहा कि स्वयं मैं वहाँ जाऊँगा ॥ १९ ॥ महाबली और पराक्रमी विरूपाक्षको अनेक राक्षसोंके साथ नगरके मध्यमें स्थापित किया ॥२०॥ रावणने इस प्रकार लङ्काकी रक्षाकी व्यवस्था करके अपनेको कृतकृत्य समझा, क्योंकि वह कालवश होगया था ॥२१॥ नगरकी रक्षाके लिए बहुतसा प्रबंध बतलाकर उसने मंत्रियोंको जानेके लिए कहा, मन्त्रियोंके द्वारा जय और आशीर्वादसे आनन्दित होकर, वह अन्तःपुरमें गया ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

नरवानरराजानौ स तु वायुसुतः कपिः । जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः ॥ १ ॥
अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः । सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥ २ ॥
गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा । अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन् ॥ ३ ॥
इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता । सासुरोरगगन्धर्वैः सर्वैरपि सुदुर्जया ॥ ४ ॥
कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य मन्त्रयध्वं विनिर्णये । नित्यं संनिहितो यत्र रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥
अथ तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत् । वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थं विभीषणः ॥ ६ ॥
अनलः पनसश्चैव संपातिः प्रमतिस्तथा । गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः ॥ ७ ॥
भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम् । विधानं विहितं यच्च तद्दृष्ट्वा समुपस्थिताः ॥ ८ ॥
संविधानं यथाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः । राम तद्ब्रुवतः सर्वं याथातथ्येन मे शृणु ॥ ९ ॥
पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति । दक्षिणं च महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥१०॥
इन्द्रजित्पश्चिमद्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः । पट्टिशासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥११॥
नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः । राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥१२॥
युक्तः परमसंविग्नो राक्षसैः सह मन्त्रवित् । उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः ॥१३॥
विरूपाक्षस्तु महता शूलमुद्गरधनुष्मता । बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममाश्रितः ॥१४॥

नरराज रामचन्द्र, वानरराज सुग्रीव, वह वायुपुत्र हनुमान, जाम्बवान्, ऋक्षराज, विभीषण राक्षस, वालिपुत्र अङ्गद, लक्ष्मण, शरभ वानर, बान्धवसहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस ये सब शत्रुके नगरमें आकर विचार करने लगे ॥ १–३ ॥ रावणके द्वारा रक्षित लङ्कापुरी यही दीख पड़ती है, इसको असुर, नाग और गन्धर्व मिलकर भी नहीं जीत सकते ॥ ४ ॥ यह वह लङ्का है जहाँ रावण सदा रहता है, अतएव विजयके उपायोंका निर्णय करनेके लिए आपलोग विचार करें ॥ ५ ॥ उनके कहनेपर रावणका छोटा भाई विभीषण बोला, उसके वचनोंमें अग्राम्य शब्दोंका प्रयोग न था तथा थोड़े शब्दोंमें अधिक अर्थ था ॥ ६ ॥ अनल, पनस, संपाति तथा प्रमति ये हमारे सचिव लंका गये थे और अब वहाँसे लौट आये हैं ॥ ७ ॥ ये सब पक्षी बनकर शत्रुकी सेनामें गये थे, रावणने जो प्रबन्ध किये हैं वह देखकर ये लौट आये हैं ॥ ८ ॥ उनलोगोंने रावणका प्रबन्ध जैसा बतलाया है वह मैं कहता हूँ, रामचन्द्र ! सुनिए ॥ ९ ॥ पूर्व द्वारकी रक्षा सेना लेकर प्रहस्त कर रहा है और दक्षिण द्वारपर महाबली महापार्श्व और महोदर हैं ॥ १० ॥ पश्चिम द्वारपर इन्द्रजित् है, उसके साथ बहुतसे राक्षस हैं। वे राक्षस, शूल, पट्टिश, तलवार, धनुष और मुद्गर लिये हुए हैं ॥ ११ ॥ अनेक अस्त्र-शस्त्रधारी वीरोंके साथ रावणपुत्र वहाँ वर्तमान है। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे शस्त्रधारी राक्षस उसके साथ हैं ॥१२॥ रावण भीतरसे बहुत डरा हुआ है, वह मन्त्र जाननेवाला रावण अनेक राक्षसोंके साथ स्वयं उत्तर द्वारपर है ॥ १३ ॥ विरूपाक्ष नामका राक्षस सेना तथा प्रधान-प्रधान राक्षसोंके साथ नगरके मध्यकी रक्षा करता है। ये सभी राक्षस शूल,

एतानेवंविधान्गुल्माँल्लङ्कायाः समुदीक्ष्य ते । मामका मन्त्रिणः सर्वे शीघ्रं पुनरिहागताः ॥१५॥
गजानां दशसाहस्रं रथानामयुतं तथा । हयानामयुते द्वे च साग्रां कोटिं च रक्षसाम् ॥१६॥
विक्रान्ता बलवन्तश्च संयुगेष्वाततायिनः । इष्टा राक्षसराजस्य नित्यमेते निशाचराः ॥१७॥
एकैकस्यात्र युद्धार्थे राक्षसस्य विशांपते । परिवारः सहस्राणां सहस्रमुपतिष्ठति ॥१८॥
एतां प्रवृत्तिं लङ्कायां मन्त्रिप्रोक्तां विभीषणः । एवमुक्त्वा महाबाहू राक्षसांस्तानदर्शयत् ॥१९॥
लङ्कायां सचिवैः सर्वं रामाय प्रत्यवेदयत् । रामं कमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥२०॥
रावणावरजः श्रीमान्रामप्रियचिकीर्षया । कुबेरं तु यदा राम रावणः प्रतियुद्ध्यति ॥२१॥
षष्टिः शतसहस्राणि तदा निर्यान्ति राक्षसाः । पराक्रमेण वीर्येण तेजसा सत्त्वगौरवात् ॥
सदृशा ह्यत्र दर्पेण रावणस्य दुरात्मनः ॥२२॥
अत्र मन्युर्न कर्तव्यः कोपये त्वां न भीषये । समर्थो ह्यसि वीर्येण सुराणामपि निग्रहे ॥२३॥
तद्भवांश्चतुरङ्गेण बलेन महता वृतम् । व्यूह्येदं वानरानीकं निर्मथिष्यसि रावणम् ॥२४॥
रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः । शत्रूणां प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥२५॥
पूर्वद्वारं तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः । प्रहस्तं प्रतियोद्धा स्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥२६॥
अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः । दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥२७॥
हनूमान्पश्चिमद्वारं निष्पीड्य पवनात्मजः । प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः ॥२८॥
दैत्यदानवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम् । विप्रकारप्रियः क्षुद्रो वरदानबलान्वितः ॥२९॥

मुद्गर तथा धनुष लिए हैं ॥१४॥ लंकामें इतनी सेनाको देखकर मेरे मन्त्री लौट आये ॥१५॥ दस हजार हाथी, दस हजार रथ, बीस हजार घोड़े तथा एक करोड़ कई लाख राक्षस उसकी सेनामें हैं ॥ १६ ॥ ये सभी पराक्रमी और बली हैं, युद्धमें आततायी हैं । ये राक्षस रावणके बड़े प्रिय हैं ॥ १७ ॥ राजन्, एक परिवारके लिए भी युद्ध उपस्थित होनेपर कई लाख राक्षसोंका परिवार एकत्र हो जाता है ॥ १८ ॥ लंकाका यही समाचार मेरे मन्त्रियोंने कहा है, ऐसा कहकर महाबाहु विभीषणने उन राक्षसोंको रामचन्द्रके सामने उपस्थित किया ॥१९॥ विभीषणने अपने मन्त्रियोंसे जो सुना था वह उन्होंने, रामका प्रिय करनेकी इच्छासे, कहा और स्वयं इसका उत्तर भी रामचन्द्रको दिया । जिस समय रावण कुबेरसे युद्ध कर रहा था, उस समय पराक्रम, वीर्य, सत्य आदिके खयालसे रावणके समान साठ लाख राक्षस युद्ध करनेके लिये निकले थे ॥ २०—२२ ॥ मेरी बातोंसे आप क्रोध न करें, क्योंकि न तो मैं आपसे क्रोध कररहा हूँ और न डरवा रहा हूँ, आप तो अपने पराक्रमसे देवताओंको भी दण्ड दे सकते हैं ॥२३॥ आप चतुरङ्गिनी बड़ी सेनाके साथ वानरी सेनाका व्यूह बनाकर रावणको मथित कर दीजिएगा ॥ २४ ॥ रावणके छोटे भाई विभीषणके ऐसा कहनेपर शत्रुवधके लिए रामचन्द्रने ऐसा कहा ॥ २५ ॥ लंकाके पूर्व द्वारपर वानरश्रेष्ठ नल अनेक वानरोंके साथ प्रहस्तका सामना करें ॥ २६ ॥ वालिपुत्र अङ्गद बड़ी सेना लेकर दक्षिण द्वारपर महापार्श्व और महोदरको दबावें ॥ २७ ॥ अप्रमेयात्मा वायुपुत्र हनुमान अनेक वानरोंके साथ बलपूर्वक पश्चिम द्वारसे प्रवेश करें ॥ २८ ॥ दैत्य, दानवों, महात्मा ऋषियोंका अपकार करनेवाला, वरदानके बलसे बली जो रावण समस्त प्रजाको पीड़ित

परिक्रमति यः सर्वांल्लोकान्संतापयन्प्रजाः । तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ॥३०॥
उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह । निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः ॥३१॥
वानरेन्द्रश्च बलवानृक्षराजश्च वीर्यवान् । राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मध्यमे ॥३२॥
न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे । एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन्वानरे बले ॥३३॥
वानरा एव वश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन्भविष्यति । वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ॥३४॥
अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा । आत्मनः पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ॥३५॥
स रामः कृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम् । सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान्प्रभुः ॥
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम् ॥३६॥

ततस्तु रामो महता बलेन प्रच्छाद्य सर्वां पृथिवीं महात्मा ।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम लङ्कां कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥



अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति । लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् । मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ २ ॥
सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् । अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥ ३ ॥

करता हुआ भ्रमण करता है उस रावणके वधके लिए मैं स्वयं उद्यत हूँ ॥ २९, ३० ॥ लक्ष्मणके साथ मैं नगरके उत्तर द्वारसे प्रवेश करूँगा, जहाँ सेनाके साथ रावण वर्तमान है ॥ ३१ ॥ बली सुग्रीव, पराक्रमी ऋक्षराज और विभीषण गुल्मपर आक्रमण करें ॥ ३२ ॥ युद्धमें कोई भी वानर मनुष्यका रूप न बनावे, इस युद्धमें वानरी सेनाके लिए मेरी यह आज्ञा है ॥ ३३ ॥ अपने लोगोंमें वानरोंका परिचय वानररूपसे ही होना चाहिए, और हमलोग सात मनुष्य मनुष्यरूपसे ही शत्रुओंसे युद्ध करेंगे ॥ ३४ ॥ तेजस्वी भाई लक्ष्मण, मैं और चार मन्त्रियोंके साथ पाँचवें विभीषण इस प्रकार सात आदमी युद्ध करेंगे ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रने कार्यसिद्धिके लिए विभीषणसे ऐसा कहकर सुवेल पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा की, क्योंकि सुवेल पर्वतका तट बड़ा सुन्दर था ॥ ३६ ॥ अनन्तर महात्मा राम अपनी बड़ी सेनासे पृथिवीको ढँककर तथा शत्रु-वधका निश्चयकर प्रसन्नतापूर्वक लङ्काके पासवाले सुवेल पर्वतकी ओर चले ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३७॥

सुवेल पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करके रामचन्द्रने सुग्रीवसे ऐसा कहा । उस समय लक्ष्मण भी उनके साथ थे ॥ १ ॥ रामचन्द्रने सुग्रीवके साथ विभीषणको भी लक्ष्य किया, जो विभीषण रामचन्द्रमें अनुराग रखते हैं, जो धर्म जाननेवाले हैं, मन्त्र तथा कार्य-साधनके उपाय जाननेवाले हैं, उनसे मधुरवाणी रामचन्द्र बोले ॥ २ ॥ इस पर्वतराज सुवेलपर आज रातको हमलोग निवास करें, जो सुन्दर है तथा अनेक

लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः। येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना ॥ ४ ॥
येन धर्मो न विज्ञातो न वृत्तं न कुलं तथा। राक्षस्या नीचया बुद्ध्या येन तद्गर्हितं कृतम् ॥ ५ ॥
एवं संमन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति। रामः सुवेलमासाद्य चित्रसानुमुपारुहत् ॥ ६ ॥
पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः। सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः ॥ ७ ॥
तमन्वारोह सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः। ते वायुवेगप्रवणास्तं गिरिं गिरिचारिणः ॥ ८ ॥
अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः। ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः ॥ ९ ॥
ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम्। तां शुभां प्रवरद्वारां प्राकारवरशोभिताम् ॥१०॥
लङ्कां राक्षससंपूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः। प्राकारवरसंस्थैश्च तथा नीलैश्च राक्षसैः ॥
ददृशुस्ते हरिश्रेष्ठाः प्राकारमपरं कृतम् ॥११॥
तं दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान्युद्धकाङ्क्षिणः। मुमुचुर्विविधान्नादांस्तस्य रामस्य पश्यतः ॥१२॥
ततोऽस्तमगमत्सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जितः। पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तते ॥१३॥
ततः स रामो हरिवाहिनीपतिर्विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंयुतः सुवेलपृष्ठे न्यवसद्यथासुखम् ॥१४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥



प्रकारकी धातुओंसे विभूषित है ॥ ३ ॥ इस पर्वतपरसे हमलोग लंका देख सकेंगे तथा उस राक्षसका घर भी देख सकेंगे, जिस दुरात्माने मृत्युपर्यन्त मुझे दुःख देनेके लिए मेरी स्त्रीका हरण किया है ॥ ४ ॥ जिसने धर्म नहीं देखा, कुल-शीलका विचार नहीं किया, जिसने राक्षसी नीच बुद्धिके कारण ऐसा निन्दित काम किया ॥ ५ ॥ ऐसा कहते हुए रामचन्द्रने रावणके ऊपर क्रोध किया, वे सुवेलपर्वतपर जाकर उसके शिखरपर चढ़े, जो अनेक धातुओंके कारण चित्रित हो रहा था ॥ ६ ॥ रामके पीछे-पीछे सावधान होकर लक्ष्मणभी चले, वे धनुष चढ़ाये हुए थे और विकट पराक्रम दिखानेके लिए तयार थे ॥ ७ ॥ उनके पीछे सुग्रीव और अपने सैनिकके साथ विभीषण चले। वे पर्वतोंपर विचरनेवाले वायुवेगसे उस पर्वतपर चले ॥ ८ ॥ इनके अतिरिक्त और भी अनेक वानर उस पर्वतपर जहाँ रामचन्द्र थे वहाँ गये। शीघ्रही पर्वतपर चढ़कर उनलोगोंने लंकानगरी देखी, जो आकाशमें लगी हुई थी, वह नगरी सुन्दर थी, सुन्दर उसके द्वार थे तथा सुन्दर चारदीवारी थी ॥ ९, १० ॥ उनलोगोंने राक्षसोंसे भरी लंकानगरी देखी। चारदीवारीपर बैठे काले राक्षसोंको वानरोंने देखा, जिनके कारण दूसरी चारदीवारीसी बन गयी थी ॥ ११ ॥ वे सब वानर राक्षसोंको युद्धके लिए तयार देखकर, रामचन्द्रके सामने ही, गर्जन करने लगे ॥ १२ ॥ अनन्तर सूर्यास्त हुआ। सन्ध्याकी लाली दौड़ आयी, रात्रि पूर्णचन्द्रसे प्रदीप्त हो गयी ॥ १३ ॥ वानरी सेनाके स्वामी रामचन्द्रको विभीषणने अभिनन्दन करके सत्कार किया, लक्ष्मण तथा अन्य सेनापतियोंके साथ रामचन्द्रने उस पर्वतपर सुखपूर्वक निवास किया ॥ १४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः । लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ १ ॥
समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च । दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥
चम्पकाशोकवकुलशालतालसमाकुला । तमालपनसच्छन्ना नागमालासमावृता ॥ ३ ॥
हिन्तालैरर्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैः सुपुष्पितैः । तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥ ४ ॥
शुशुभे पुष्पिताग्रैश्च लतापरिगतद्रुमैः । लङ्का बहुविधैर्दिव्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ५ ॥
विचित्रकुसुमोपेतै रक्तकोमलपल्लवैः । शाद्वलैश्च तथा नीलैश्चित्राभिर्वनराजिभिः ॥ ६ ॥
गन्धाढ्यान्यतिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च । धारयन्त्यगमास्तत्र भूषणानीव मानवाः ॥ ७ ॥
तच्चैत्ररथसंकाशं मनोज्ञं नन्दनोपमम् । वनं सर्वर्तुकं रम्यं शुशुभे षट्पदायुतम् ॥ ८ ॥
दात्यूहकोयष्टिबकैर्नृत्यमानैश्च बर्हिणैः । रुतं परभृतानां च शुश्रुवे वननिर्झरे ॥ ९ ॥
नित्यमत्तविहंगानि भ्रमराचरितानि च । कोकिलाकुलखण्डानि विहंगाभिरुतानि च ॥१०॥
भृङ्गराजाभिगीतानि कुररस्वनितानि च । विविशुस्ते ततस्तानि वनान्युपवनानि च ॥११॥
हृष्टाः प्रमुदिता वीरा हरयः कामरूपिणः । तेषां प्रविशतां तत्र वानराणां महौजसाम् ॥१२॥
पुष्पसंसर्गसुरभिर्ववौ प्राणसमोऽनिलः । अन्ये तु हरिवीराणां यूथान्निष्क्रम्य यूथपाः ॥
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता लङ्कां जग्मुः पताकिनीम् ॥१३॥

उस रातको वानर सेनापतियोंने सुवेलपर्वतपर निवास किया तथा वहाँसे उनलोगोंने लङ्काके वनों और उपवनोंको देखा ॥ १ ॥ वे वन और उपवन चौरस उपद्रवरहित, रमणीय, विशाल तथा देखनेमें प्रिय थे। उनको देखनेसे वानरोंको विस्मय हुआ ॥ २ ॥ चम्पक, अशोक, वकुल, शाल, तालके वृक्षोंसे वे वन भरे हुए हैं, तमाल और कटहलके वृक्ष बहुत हैं, नागवृक्षकी पंक्तियाँ लगी हैं ॥ ३ ॥ हिंताल, अर्जुन, कदम्ब, सप्तपर्ण, तिलक, कर्णिकार और पाटलवृक्ष पुष्पित हो रहे हैं ॥ ४ ॥ लतावेष्टित पुष्पित वृक्षोंसे वे वन शोभित हो रहे हैं, जिस प्रकार अनेक प्रकारके दृश्योंसे इन्द्रकी अमरावती शोभित होती है ॥ ५ ॥ वहाँके वृक्षोंमें अनेक प्रकारके फूल फूले हुए हैं, लाल और कोमल पत्ते हैं। नीलीघास तथा विविधवर्णकी वनराजि शोभित हो रही थी ॥ ६ ॥ वहाँके वृक्ष सुगन्धित पुष्प और फल धारण करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य भूषण धारण करते हैं ॥ ७ ॥ चैत्ररथके समान वह वन नन्दनवनके समान मनोहर था, सब ऋतुओंमें सुखदायक था, भौंरोका झुण्ड घूम रहा था ॥ ८ ॥ दात्यूह कोयष्टि बक नाचनेवाले मोरोंके शब्दके साथ मिलकर कोकिलका शब्द वनके झरनेके पास सुन पड़ता था ॥ ९ ॥ वहाँकी पक्षी सदा प्रसन्न रहते हैं, वहाँ भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं, वृक्ष-समूह कोकिलोंसे अलंकृत हैं, पक्षी बोल रहे हैं, भृङ्गराज पक्षी गा रहा है, कुछ पक्षी बोल रहे हैं, उन वनों और उपवनोंमें वे वानर गये ॥ १०—११ ॥ स्वेच्छानुसार रूप धरनेवाले वे सभी वीर वानर प्रसन्न थे। जब वानरोंने उन वनों तथा उपवनोंमें प्रवेश किया, तब पुष्प-सुगन्धसे सुगन्धित वायु वानरोंके प्राणके समान बहने लगा। कई सेनापति वानरोंके यूथसे निकलकर

वित्रासयन्तो विहगान्ग्लापयन्तो मृगद्विपान् । कम्पयन्तश्च तां लङ्कां नादैः स्वैर्नदतां वराः ॥१४॥
कुर्वन्तस्ते महावेगा महीं चरणपीडिताम् । रजश्च सैन्योद्धृतं जगाम चरणोत्थितम् ॥१५॥
ऋक्षाः सिंहाश्च महिषा वारणाश्च मृगाः खगाः । तेन शब्देन वित्रस्ता जग्मुर्भीता दिशो दश ॥१६॥
शिखरं तु त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं दिविस्पृशम् । समन्तात्पुष्पसंछन्नं महारजतसंनिभम् ॥१७॥
शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् । श्लक्ष्णं श्रीमन्महच्चैव दुष्प्रापं शकुनैरपि ॥१८॥
मनसापि दुरारोहं किं पुनः कर्मणा जनैः । निविष्टा तस्य शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥१९॥
दशयोजनविस्तीर्णा विंशद्योजनमायता । सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसंनिभैः ॥
काञ्चनेन च शालेन राजतेन च शोभते ॥२०॥
प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता । घनैरिवातपापाये मध्यमं वैष्णवं पदम् ॥२१॥
यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलंकृतः । कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन् ॥२२॥
चैत्यः स राक्षसेन्द्रस्य बभूव पुरभूषणम् । शतेन रक्षसां नित्यं यः समग्रेण रक्ष्यते ॥२३॥
मनोज्ञां काञ्चनवतीं पर्वतैरुपशोभिताम् । नानाधातुविचित्रैश्च उद्यानैरुपशोभिताम् ॥२४॥
नानाविहगसंघुष्टां नानामृगनिषेविताम् । नानाकुसुमसंपन्नां नानाराक्षससेविताम् ॥२५॥
तां समृद्धां समृद्धार्थो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः । नगरीं त्रिदिवप्रख्यां विस्मयं प्राप वीर्यवान् ॥२६॥

सुग्रीवकी आज्ञासे सेनावाली लङ्कामें गये ॥ १२—१३ ॥ उत्तम गर्जन करनेवाले वे वानर अपने गर्जनसे पक्षियोंको भयभीत करने लगे, हाथियों तथा अन्य पशुओंको दुःखी करने लगे तथा लङ्काको कपाने लगे ॥ १४ ॥ महावेगवान् वे वानर चरणोंसे पृथिवीको दबाने लगे, चरणसे उड़ायी हुई धूलि ऊपर उठी ॥ १५ ॥ भालु, सिंह, भैसे, हाथी, मृगा और पक्षी उस शब्दसे भयभीत होकर दिशाओंमें भाग गये ॥ १६ ॥ त्रिकूट पर्वतका एक शिखर आकाशतक फैला हुआ है, चारों ओरसे पुष्पसे घिरा हुआ है, जो सुवर्णके समान मालूम पड़ता है ॥ १७ ॥ उसका विस्तार सौ योजन है, वह निर्मल और देखनेमें सुन्दर है। मनको प्रिय और शोभायुक्त है, पक्षी भी वहाँ कठिनतासे पहुँचते हैं ॥ १८ ॥ मनुष्य मनसे भी वहाँ नहीं पहुँच सकते हैं, कर्मसे पहुँचना तो और कठिन है। उसी शिखरपर लंका बसी है, जिसकी रक्षा रावण करता है ॥ १९ ॥ वह नगरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लम्बी है, श्वेत मेघके समान ऊँचे उसके नगरद्वार हैं, सोने और चाँदीकी चारदीवारी है ॥ २० ॥ देवमन्दिरों, राजगृहों और सतखंडे मकानोंसे वह लंकानगरी भूषित हो रही थी, जिस प्रकार गरमी बीतनेपर आकाश मेघोंसे शोभित होता है ॥ २१ ॥ जहाँके राजमहलमें हजार खम्भे लगे हैं, और जो कैलासशिखरके समान आकाश छूता है ॥ २२ ॥ जिसकी रक्षा सौ राक्षस मिलकर करते हैं, वह रावणका देवालय लंकाका भूषण है, ॥ २३ ॥ वह सोनेकी लंका मनोहर है, पर्वतोंसे शोभित है, अनेक धातुओंसे चित्रित है तथा बगीचोंसे शोभित है ॥ २४ ॥ जहाँ अनेक प्रकारके पक्षी बोलते हैं, पशु निवास करते हैं, जहाँ अनेक प्रकारके पुष्प हैं तथा अनेक राक्षस हैं ॥ २५ ॥ उस ऊँची और धनधान्यपूर्ण स्वर्गतुल्य नगरीको देखकर श्रीसम्पन्न रामचन्द्र परमविस्मित हुए ॥ २६ ॥

तां रत्नपूर्णां बहुसंविधानां प्रासादमालाभिरलंकृतां च ।
पुरीं महायन्त्रकवाटमुख्यां ददर्श रामो महता बलेन ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

ततो रामः सुवेलाग्रं योजनद्वयमण्डलम् । उपारोहत्ससुग्रीवो हरियूथैः समन्वितः ॥ १ ॥
स्थित्वा मुहूर्तं तत्रैव दिशो दश विलोकयन् । त्रिकूटशिखरे रम्ये निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ २ ॥
ददर्श लङ्कां सुन्यस्तां रम्यकाननशोभिताम् । तस्य गोपुरशृङ्गस्थं राक्षसेन्द्रं दुरासदम् ॥ ३ ॥
श्वेतचामरपर्यन्तं विजयच्छत्रशोभितम् । रक्तचन्दनसंलिप्तं रक्ताभरणभूषितम् ॥ ४ ॥
नीलजीमूतसंकाशं हेमसंछादिताम्बरम् । ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥
शशलोहितरागेण संवीतं रक्तवाससा । संध्यातपेन संछन्नं मेघराशिमिवाम्बरे ॥ ६ ॥
पश्यतां वानरेन्द्राणां राघवस्यापि पश्यतः । दर्शनाद्राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः ॥ ७ ॥
क्रोधवेगेन संयुक्तः सत्त्वेन च बलेन च । अचलाग्रादथोत्थाय पुप्लुवे गोपुरस्थले ॥ ८ ॥

रत्नोंसे भरी हुई, अनेक तरहकी रचनाओंसे युक्त, राजमहलोंकी मालासे शोभित, यन्त्रयुक्त कपाटवाली उस नगरीको रामचन्द्रने अपनी बड़ी सेनाके साथ देखा ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

अनन्तर रामचन्द्र दो योजनके विस्तारवाले सुवेल पर्वतपर सुग्रीव तथा अन्य वानरसेनापतियोंके साथ चढ़े ॥ १ ॥ थोड़ी देर वहाँ ठहरकर वे चारों ओर देखने लगे । रमणीय त्रिकूट पर्वतके शिखरपर विश्वकर्माकी अच्छीतरह बनायी लंका उन्होंने देखी, जो सुन्दर वनोंसे शोभित थी । उस नगरीके पुरद्वारकी छतपर दुरासद रावणको बैठा उन्होंने देखा ॥ २—३ ॥ जिसके दोनों बगलमें श्वेत चामर ढुल रहा था, विजयछत्र शोभित था, जो रक्तचन्दन धारण किए हुए था, और लाल भूषण पहने था ॥ ४ ॥ वह काले मेघके समान मालूम पड़ता था, उसके वस्त्रमें सोनेकी कारीगरी की गयी थी, और उसकी छातीमें ऐरावतके दाँतका आघात लगा हुआ था ॥ ५ ॥ जिस प्रकार सन्ध्याकी लाल धूपसे आच्छादित होकर आकाशमें मेघ शोभित होते हैं, उसी प्रकार शशकके खूनके समान लाल रङ्गका वस्त्र वह पहने था ॥ ६ ॥ वानर-सेनापतियों तथा रामचन्द्रके देखते रहनेपर भी रावणको देखतेही सुग्रीव झट उठ खड़े हुए ॥ ७ ॥ वे क्रोधसे बहुत उद्विग्न हो गये थे । मानसिक और शारीरिक बलसे बलवान होकर सुग्रीव पर्वतसे नगरद्वारकी

स्थित्वा मुहूर्तं संप्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना । तृणीकृत्य च तद्रक्षः सोऽब्रवीत्परुषं वचः ॥ ९ ॥
लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस । न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥१०॥
इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि । आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामास तद्भुवि ॥११॥
समीक्ष्य तूर्णमायान्तं बभाषे तं निशाचरः । सुग्रीवस्त्वं परोक्षं मे हीनग्रीवो भविष्यसि ॥१२॥
इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत्तले । कन्दुवत्स समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥१३॥

परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ परस्परं शोणितरक्तदेहौ ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ परस्परं शाल्मलिकिंशुकाविव ॥१४॥
मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारैररत्निघातैश्च कराग्रघातैः ।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं महाबलौ राक्षसवानरेन्द्रौ ॥१५॥
कृत्वा नियुद्धं भृशमुग्रवेगौ कालं चिरं गोपुरवेदिमध्ये ।
उत्क्षिप्य चोत्क्षिप्य विनम्य देहौ पादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ ॥१६॥
अन्योन्यमापीड्य विलग्नदेहौ तौ पेततुः सालनिखातमध्ये ।
उत्पेततुर्भूमितलं स्पृशन्तौ स्थित्वा मुहूर्तं त्वभिनिःश्वसन्तौ ॥१७॥
आलिङ्ग्य चालिङ्ग्य च बाहुयोक्त्रैः संयोजयामासतुराहवे तौ ।
संरम्भशिक्षाबलसंप्रयुक्तौ सुचेरतुः संप्रति युद्धमार्गे ॥१८॥

उस छतपर कूदे जहाँ रावण बैठा था ॥८॥ थोड़ी देर ठहरकर, निर्भय होकर, रावणको तृणके समान समझकर सुग्रीव कठोर वचन बोले ॥ ९ ॥ लोकनाथ रामचन्द्र मुझे अपना मित्र समझते हैं, पर मैं उनका दास हूँ, तुम उच्छृङ्खलता भूल जाओ, रामचन्द्रके तेजसे तुम्हारा छुटकारा न हो सकेगा ॥ १० ॥ ऐसा कहकर सुग्रीव उछलकर रावणपर कूदे और उन्होंने उसका अद्भुत मुकुट खींचकर पृथिवीपर गिरा दिया ॥ ११ ॥ झपटकर आते हुए सुग्रीवको देखकर रावण बोला—तुम जबतक मेरे सामने नहीं आये थे तभीतक सुग्रीव (अच्छी गर्दनवाले) थे, अब हमारे सामने तुम्हारा गला न रहेगा ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर तथा शीघ्र उठकर रावणने सुग्रीवको दोनों हाथोंसे पकड़कर पटक दिया। गेंदके समान उछलकर सुग्रीवने भी दोनों हाथोंसे पकड़कर रावणको पटका ॥ १३ ॥ उनदोनोंके शरीर पसीनेसे लतपथ हो गए थे और रुधिरसे दोनोंके शरीर लाल हो गए थे, दोनो आपसमें गुथ गए और निश्चेष्ट हो गये वे दोनों सेमल और पलासवृक्षोंके समान मालूम होते थे ॥१४॥ महाबली राक्षस और वानरेन्द्र मुक्का, थप्पड़, धौल, चपतसे बहुतही भयानक युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ नगरद्वारके चौतरेपर बहुत देरतक भयानक मल्लयुद्ध करके और एक दूसरेको ऊपरमें फेंकके और पुनः ऐसे अपने शरीरको उन्होंने नवा लिया जिससे नगरद्वारके चौतरेसें सट गए ॥१६॥ एक दोनोंको बहुत पीड़ा पहुँचाकर वे दोनों अलग-अलग हो गये। वे कोटकी पुनः खाईमें गिर पड़े। थोड़ी देर भूमिपर पड़े रहे, पुनः लम्बी साँस लेते हुए उठ खड़े हुए ॥ १७ ॥ बाहुरूपी रस्सीसे अपने शरीरका आलिंगन करके वे दोनों आपसमें बँधसे गए। क्रोध, युद्धका अभ्यास और शारीरिक बलसे युक्त वे

शार्दूलसिंहाविव जातदर्पौ गजेन्द्रपोताविव संप्रयुक्तौ ।
संहत्य संवेष्ट्य च तौ कराभ्यां तौ पेततुर्वै युगपद्धरायाम् ॥१९॥
उद्यम्य चान्योन्यमधिक्षिपन्तौ संचक्रमाते बहु युद्धमार्गैः ।
व्यायामशिक्षाबलसंप्रयुक्तौ क्लमं न तौ जग्मतुराशु वीरौ ॥२०॥
बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयन्तौ परवारणाभौ ।
चिरेण कालेन भृशं प्रयुद्धौ संचेरतुर्मण्डलमार्गमाशु ॥२१॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यसूदने । मार्जाराविव भक्षार्थेऽवतस्थाते मुहुर्मुहुः ॥२२॥
मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च । गोमूत्रकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥२३॥
तिरश्चीनगतान्येव तथा वक्रगतानि च । परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥२४॥
अभिद्रवणमाप्लावमवस्थानं सविग्रहम् । परावृत्तमपावृत्तमपद्रुतमवप्लुतम् ॥२५॥
उपन्यस्तमपन्यस्तं युद्धमार्गविशारदौ । तौ विचेरतुरन्योन्यं वानरेन्द्रश्च रावणः ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मनः । आरब्धुमुपसंपेदे ज्ञात्वा तं वानराधिपः ॥२७॥
उत्पपात तदाकाशं जितकाशी जितक्लमः । रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः ॥२८॥

अथ हरिवरनाथः प्राप्तसंग्रामकीर्तिर्निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण ।
गगनमतिविशालं लङ्घयित्वार्कसूनुर्हरिगणबलमध्ये रामपार्श्वं जगाम ॥२९॥

दोनों युद्धभूमिमें विचरण करने लगे ॥ १८ ॥ बाघ और सिंहके बालकोंके समान तथा हाथीके बच्चेके समान युद्ध करनेवाले वे दोनों छातीसे एक दूसरेको दबाकर तथा हाथ मिलानेसे एक दूसरेका बल जानकर वे दोनों साथही पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १९ ॥ वे दोनों वीर युद्धके लिए उचित उद्योग करके एक दूसरेका तिरस्कार करते हुए तथा युद्धके उत्साह, निपुणता और बलसे थककर वे दोनों थके नहीं ॥ २० ॥ हाथीकी सूँड़के समान उत्तम बाहुओंसे युद्ध करके, मत्त हाथियोंके समान वे दोनों वीर मण्डलाकार घूमने लगे ॥२१॥ वे दोनों एक दूसरेको गिरानेके अवसरकी प्रतीक्षामें ठहर गये, जिस प्रकार बिल्ली अपने शिकारकी प्रतीक्षामें ठहरती है ॥ २२ ॥ वे अनेक प्रकारसे चक्कर काटने लगे, अनेक ढङ्गसे ठहरने लगे, कभी गोमूत्रकाके समान, कभी आ-जाकर, कभी सीधा चलकर, कभी टेढ़ा चलकर, कभी वार बचानेके लिए अपनी जगह बदलकर, कभी दौड़कर, कभी बिल्कुल पास आकर, कभी नयकर, कभी दूर निकल जाकर, कभी उछलकर, कभी मुँह फेरकर, कभी सामने देखते हुए पीछे हटकर, कभी पकड़नेके लिए अपने शरीरको झुकाकर, कभी शत्रुको पैरसे मारनेके लिए झुककर, कभी शत्रुका हाथ पकड़नेके लिए अपना हाथ फैलाकर, शत्रुकी पकड़से बचनेके लिए अपना हाथ खींचकर, युद्धविद्यामें निपुण सुग्रीव और रावण दोनों विचरण करने लगे ॥ २३—२४—२५—२६ ॥ इसी समय सुग्रीवको बलसे जीतना असम्भव समझकर राक्षसराज रावणने छल करनेका निश्चय किया। सुग्रीव रावणका यह अभिप्राय जानकर, साँस रोककर आकाशमें उड़ गये। किसी तरहकी थकावटका अनुभव न करनेवाले सुग्रीवने रावणको धोखा दे दिया ॥ २७—२८ ॥ युद्धमें प्राप्तकीर्ति वानरराज सुग्रीवने युद्धमें रावणको थका दिया। पुनः अतिविशाल आकाशमार्गसे चलकर

स इति सवितृसूनुस्तत्र तत्कर्म कृत्वा पवनगतिरनीकं प्राविशत्संप्रहृष्टः ।
रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षं तरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानो हरीन्द्रः ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥



एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

अथ तस्मिन्निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः । सुग्रीवं संपरिष्वज्य रामो वचनमब्रवीत् ॥१॥
असंमन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम् । एवं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनेश्वराः ॥२॥
संशये स्थाप्य मां चेदं बलं चेमं विभीषणम् । कष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय ॥३॥
इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमरिंदम । त्वयि किंचित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम ॥४॥
भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा । शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः ॥५॥
त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः । जानतश्चापि ते वीर्यं महेन्द्रवरुणोपम ॥६॥
हत्वाहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम् । अभिषिच्य च लङ्कायां विभीषणमथापि च ॥७॥
भरते राज्यमारोप्य त्यक्ष्ये देहं महाबल । तमेवं वादिनं रामं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥८॥
तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम् । मर्षयामि कथं वीर जानन्विक्रममात्मनः ॥९॥

वे वानरोंकी सेनामें रामचन्द्रके पास आये ॥ २९ ॥ सूर्यपुत्र वानरराज सुग्रीवने वायुकी गतिसे जाकर प्रसन्नतापूर्वक उस सेनामें प्रवेश किया । प्रधान-प्रधान वानरोंने उनका अभिनन्दन किया और रामचन्द्र उनके इस कृत्यसे युद्धके लिए उत्साहित हुए ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥



रामचन्द्रने सुग्रीवके शरीरमें युद्धके चिन्होंको देखा और सुग्रीवका आलिङ्गन करके उनसे ऐसा कहा ॥ १ ॥ मेरे साथ विना सलाह किए आपने यह साहसका काम किया है । राजालोग साहसके ऐसे काम नहीं करते ॥ २ ॥ मुझको, इस सेनाको तथा इस विभीषणको सन्देहमें छोड़कर साहससे प्रेम रखनेवाले आपने यह क्लेश देनेवाला साहसका काम किया है ॥ ३ ॥ अबसे आप, हे शत्रुतापी वीर ! ऐसा साहसका काम न करें । यदि आपको कुछ हो गया, तो मेरे लिए सीताका मिल जाना भी कोई अर्थ नहीं रखता ॥ ४ ॥ हे महाबाहो ! भरत, लक्ष्मण, सबसे छोटे शत्रुघ्न तथा अपने शरीरसे भी मुझे कौन लाभ होगा ॥ ५ ॥ आपके आनेके पहले हमने ऐसा निश्चय किया था, यद्यपि हम इन्द्र और वरुणके समान आपके पराक्रमको जानते हैं ॥ ६ ॥ पुत्र, सेना तथा वानरोंके साथ युद्धमें रावणको मारकर, लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक करके और भरतको अयोध्याका राज्य देकर मैं अपना शरीर छोड़ दूँगा । इस प्रकार रामचन्द्रके कहनेपर सुग्रीवने उनसे कहा ॥ ७, ८ ॥ रामचन्द्र, आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले रावणको देखकर तथा अपने पराक्रमका ज्ञान रखकर मैं उसे कैसे क्षमा कर देता । उसपर मैं क्रोध क्यों

इत्येवं वादिनं वीरमभिनन्द्य च राघवः। लक्ष्मणं लक्ष्मिसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च। बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठाम लक्ष्मण ॥११॥
लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्यास्म्युपस्थितम्। निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥१२॥
वाता हि परुषं वान्ति कम्पते च वसुंधरा। पर्वताग्राणि वेपन्ते नदन्ति धरणीधराः ॥१३॥
मेघाः क्रव्यादसंकाशाः परुषाः परुषस्वराः। क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ते मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥१४॥
रक्तचन्दनसंकाशा संध्या परमदारुणा। ज्वलच्च निपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥१५॥
आदित्यमभिवाश्यन्ति जनयन्तो महद्भयम्। दीना दीनस्वराः क्रूरा अप्रशस्ता मृगद्विजाः ॥१६॥
रजन्यामप्रशस्तश्च संतापयति चन्द्रमाः। कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो यथा लोकस्य संक्षये ॥१७॥
ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः। आदित्यमण्डले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥१८॥
दृश्यते न यथावच्च नक्षत्राण्यभिवर्तते। युगान्तमिव लोकस्य पश्य लक्ष्मण शंसति ॥१९॥
काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च। शिवाश्चाप्यशुभा वाचः प्रवदन्ति महास्वनाः ॥२०॥
शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः। भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥२१॥
क्षिप्रमद्य दुराधर्षां पुरीं रावणपालिताम्। अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥२२॥
इत्येवं तु वदन्वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः। तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः ॥२३॥
अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः। परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥२४॥

न करता ॥ ९ ॥ रामचन्द्रने इस प्रकार कहनेवाले वीर सुग्रीवका अभिनन्दन किया। अनन्तर वे शोभा-सम्पन्न लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥ १० ॥ शीतल जल तथा फलयुक्त वनमें जाकर हमलोग सेनाका विभाग करके व्यूह बनावें और तब ठहरें ॥ ११ ॥ मैं भयङ्कर जनक्षयकारी निमित्त देख रहा हूँ। वानर, भालु और राक्षसवीरोंका विनाशसूचक निमित्त उपस्थित हुआ है ॥ १२ ॥ रूखी हवा चल रही है, पृथिवी काँप रही है, पर्वतके शिखर डोलते हैं और पर्वत गर्जन करते हैं ॥ १३ ॥ मेघ हिंसकजन्तुके समान कठोर दिखाई पड़ते हैं, कठोर गर्जन करते हैं और रुधिरबिन्दुसे युक्त पानी बरसाते हैं ॥ १४ ॥ रक्त-चन्दनके समान सन्ध्या बड़ीही भयानक मालूम पड़ती है। सूर्यमण्डलसे जलता हुआ यह अग्निगोला गिरता है ॥ १५ ॥ सियार कुत्ते आदि निन्दित पशु-पक्षी दीन होकर दीनस्वरसे भय उत्पन्न करते हुए सूर्यकी ओर देखकर बोलते हैं ॥ १६ ॥ रातमें चन्द्रमा कलुषित दीख पड़ता है और वह संताप देता है, उसके अन्तिम घेरे लाल और काले दिखाई पड़ते हैं, जिस प्रकार प्रलयकालमें दिखाई पड़ता है ॥ १७ ॥ पतला, रूखा, सुन्दर और लाल परिधि दीख पड़ती है। लक्ष्मण! सूर्यमण्डलमें नीला चिह्न दिखाई पड़ता है ॥ १८ ॥ जो नक्षत्र दीख पड़ते हैं उनकी गति पहलेके समान नहीं है। लक्ष्मण, यह सब प्रलयकी सूचना दे रहे हैं ॥ १९ ॥ कौआ, बाज, गीध ये सब नीचेकी ओर गिरते हैं और सियारिनें ऊँचे स्वरमें अशुभ-सूचक शब्द बोलते हैं ॥२०॥ वानर राक्षसोंके द्वारा छोड़े हुए पत्थर, शूल, तलवारसे यह पृथ्वी भर जायगी। मांस और रुधिरका कीचड़ हो जायगा ॥ २१ ॥ रावणके द्वारा पालित, शत्रुके आक्रमण करनेके अयोग्य लङ्कापर वानरोंके साथ शीघ्रही बलपूर्वक हमलोग आक्रमण करें ॥ २२ ॥ लक्ष्मणके बड़े भाई, लक्ष्मणसे ऐसा कहते हुए, उस पर्वतशिखरसे शीघ्रही उतरे ॥ २३ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रने उस

संनह्य तु ससुग्रीवः कपिराजबलं महत् । कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत् ॥२५॥
ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः । प्रविष्टः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥२६॥
तौ विभीषणसुग्रीवौ हनूमाञ्जाम्बवान्नलः । ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥२७॥
ततः पश्चात्सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम् । प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम् ॥२८॥
शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् । जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः परवारणाः ॥२९॥
तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिंदमौ ॥३०॥
पताकामालिनीं रम्यामुद्यानवनशोभिताम् । चित्रवप्रां सुदुष्प्रापामुच्चैः प्राकारतोरणाम् ॥३१॥
तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः । यथानिदेशं संपीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥३२॥
लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् । रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥३३॥
लङ्कामुपनिविष्टस्तु रामो दशरथात्मजः । लक्ष्मणानुचरो वीरः पुरीं रावणपालिताम् ॥३४॥
उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति रावणः । नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् ॥३५॥
रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् । सायुधैः राक्षसैर्भीमैरभिगुप्तं समन्ततः ॥३६॥
लघूनां त्रासजननं पातालमिव दानवैः । विन्यस्तानि च योधानां बहूनि विविधानि च ॥३७॥
ददर्शायुधजालानि तथैव कवचानि च । पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ॥३८॥

पर्वतसे उतरकर अपनी सेनाको देखा, जो शत्रुके द्वारा अजेय थी ॥ २४ ॥ सुग्रीवके साथ रामचन्द्रने उस बड़ी सेनाको तयार कराया और युद्धोपकरणसे सजाया और समयका महत्त्व समझनेवाले रामचन्द्रने समयसे उस सेनाको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ २५ ॥ युद्धके उचित समयमें महाबाहु धनुर्धारी रामचन्द्र बड़ी सेनाको साथ लेकर लंकानगरीकी ओर चले ॥ २६ ॥ उनके पीछे विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान्, नल, ऋक्षराज, नील और लक्ष्मण चले ॥ २७ ॥ इनके पीछे वानर भालुओंकी बहुत बड़ी सेना चली, जिससे पृथिवी ढँक गयी ॥ २८ ॥ शत्रुको रोकनेवाले हाथीके समान विशाल वानर पर्वतशिखर तथा बड़े-बड़े वृक्ष लेकर चले ॥ २९ ॥ शत्रुतापी राम और लक्ष्मण दोनों वीर बहुत शीघ्रही रावणकी नगरी लंकामें पहुँच गए ॥३०॥ उस नगरीमें पताकाओंकी माला-सी बन गयी थी। स्वाभाविक तथा कृत्रिम वनोंसे बहुत रमणीय मालूम होती थी। उसकी चारदिवारी बड़ी सुन्दर तथा ऊँची थी। जिसके ऊपर चढ़ना बड़ा कठिन था ॥ ३१ ॥ देवताओंके लिए भी उस नगरीमें प्रवेश करना कठिन था, पर रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर वानरोंने लंकामें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ पर्वतशिखरके समान ऊँचे लंकाके उत्तर द्वारको भाईके साथ धनुर्धारी रामचन्द्रने रोका और उसकी रक्षा करने लगे ॥ ३३ ॥ दशरथपुत्र रामचन्द्रने रावणपालित लंकानगरीके उत्तरद्वारपर लक्ष्मणके साथ डेरा डाला। उधरही ओर को रावण रहता है, रामके अतिरिक्त दूसरा उस द्वारकी रक्षा नहीं कर सकता था ॥ ३४, ३५ ॥ जिस प्रकार वरुण समुद्रकी रक्षा करते हैं, दानव पातालकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार लंकाका उत्तरद्वार जहाँ रावण रहता है, राक्षसोंके द्वारा सुरक्षित है, दुर्बल मनुष्य उसको देखतेही डर जाता है। वहाँ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र फैले थे, कवच रखे हुए थे, रामचन्द्रने इन सबोंको देखा। वानरसेनापति नील, मैन्द और द्विविदके

अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् । अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ॥३९॥
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च । हनूमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः ॥४०॥
प्रजङ्घतरसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च संगतः । मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ॥४१॥
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुवर्णपवनोपमैः । वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोट्यः प्रख्यातयूथपाः ॥४२॥
निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः । शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥४३॥
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटिं कोटीन्यवेशयत् । पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान् ॥४४॥
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः । ते तु वानरशार्दूलाः शार्दूला इव दंष्ट्रिणः ॥
गृहीत्वा द्रुमशैलाग्रान्हृष्टा युद्धाय तस्थिरे ॥४५॥
सर्वे विकृतलाङ्गूलाः सर्वे दंष्ट्रानखायुधाः । सर्वे विकृतचित्राङ्गाः सर्वे च विकृताननाः ॥४६॥
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥४७॥
सन्ति चौघबलाः केचित्केचिच्छतगुणोत्तराः । अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन्हरियूथपाः ॥४८॥
अद्भुतश्च विचित्रश्च तेषामासीत्समागमः । तत्र वानरसैन्यानां शलभानामिवोद्गमः ॥४९॥
पूर्णमिवाकाशं संपूर्णेव च मेदिनी । लङ्कामुपनिविष्टैश्च संपतद्भिश्च वानरैः ॥५०॥
शतं शतसहस्राणां पृतनर्क्षवनौकसाम् । लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुरन्ये योद्धुं समन्ततः ॥५१॥
आवृतः स गिरिः सर्वैस्तैः समन्तात्प्लवंगमैः । अयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यवर्तत ॥५२॥

साथ पूर्वद्वारकी ओर गये और उसे इनलोगोंने रोक दिया । महाबली अंगदने दक्षिण द्वारको रोक दिया ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥ बलवान् हनुमान, वानर, ऋषभ, गवाक्ष, गज, गवयके साथ पश्चिम द्वारकी रक्षा करने लगे ॥ ४० ॥ प्रजंघ और तरस वानर वीरों तथा अन्य वीरोंके साथ सुग्रीवने बीचके स्थानकी रक्षाका भार लिया ॥ ४१ ॥ इनके अतिरिक्त गरुड़ और वायुके समान वेगवान वानरोंमें छत्तीस करोड़ प्रसिद्ध सेनापति थे । ये सब वानर सुग्रीवके पासही सकुचकर बैठे हुए थे । रामचन्द्रकी आज्ञासे विभीषण और लक्ष्मणने प्रत्येक द्वारपर जहाँ जितनेकी जरूरत थी उतने वानरोंको नियुक्त किया । रामचन्द्रजीके पीछे जाम्बवानके साथ सुषेण थोड़ीही दूरपर बहुत बड़ी सेनाके साथ मध्यम गुल्मकी रक्षा करते थे । ये सब वानरश्रेष्ठ बाघके समान नखवाले थे, वृक्ष और पर्वतशिखर लेकर ये युद्धके लिए तयार थे ॥ ४२—४५ ॥ इन सभी वानरोंकी पूँछ उठी हुई थी, सभी दाँत और नखसे युद्ध करनेवाले थे, सभीके मुँह क्रोधसे लाल हो गये थे, अतएव वे चिन्तितके समान मालूम पड़ते थे ॥ ४६ ॥ कोई दस हाथियोंका बल रखनेवाला था और कोई सौ हाथियोंका बल रखनेवाला था और कोई हजार हाथियोंके समान पराक्रमी था ॥ ४७ ॥ उनमें कोई वानर बहुत बड़े बली थे, कोई उनसे सौगुना बली थे, और कोई वानर ऐसे बली थे जिनके बलका अनुमानही नहीं किया जा सकता था ॥ ॥ ४८ ॥ कीड़ों पतङ्गोंके समान वहाँ वानरसैनिकोंका समागम अद्भुत और विचित्र था ॥ ४९ ॥ लंकामें आये हुए तथा आनेवाले वानरोंसे आकाश और पृथवी भर गया ॥ ५० ॥ वानर भालुओंकी एक करोड़ सेना लंकाके द्वारोंपर आयी और बाकी बचे हुए वानर इधर उधर युद्ध करनेके लिए गये ॥ ५१ ॥ उन समस्त वानरोंसे वह त्रिकूट पर्वत ढँक गया । एक करोड़ वानर

वानरैर्बलवद्भिश्च बभूव द्रुमपाणिभिः । सर्वतः संवृता लङ्का दुष्प्रवेशापि वायुना ॥५३॥
राक्षसा विस्मयं जग्मुः सहसाभिनिपीडिताः । वानरैर्मेघसंकाशैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥५४॥
महाञ्छब्दोऽभवत्तत्र बलौघस्याभिवर्ततः । सागरस्येव भिन्नस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः ॥५५॥
तेन शब्देन महता सप्राकारा सतोरणा । लङ्का प्रचलिता सर्वा सशैलवनकानना ॥५६॥
रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी । बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥५७॥
राघवः संनिवेश्यैव स्वसैन्यं रक्षसां वधे । संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनः पुनः ॥५८॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः क्रमयोगार्थतत्त्ववित् । विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ॥५९॥
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् । गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे ॥६०॥
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः । भ्रष्टश्रीकं गतैश्वर्यं मुमूर्षानष्टचेतनम् ॥६१॥
ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा । नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ॥६२॥
यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस । नूनं ते विगतो दर्पः स्वयंभूवरदानजः ॥६३॥
यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः । दण्ड धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः ॥६४॥
पदवीं देवतानां च महर्षीणां च राक्षस । राजर्षीणां च सर्वेषां गमिष्यसि युधि स्थिरः ॥६५॥

लंकानगरीके चारों ओर भ्रमण करनेके लिए गये, यह इसलिए कि लंकाका वृत्तान्त वे अपने सैनिकोंको बतलावें ॥ ५२ ॥ बलवान् वानरोंसे जिनके हाथमें वृक्ष थे लंकापुरी घिर गयी, जिससे वायुका भी उसमें प्रवेश होना अशक्य होगया ॥ ५३ ॥ इन्द्रके समान पराक्रमी, मेघके समान वानरोंके द्वारा पीड़ित होकर राक्षस विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ उस सेना-समूहके चलनेका बड़ा भारी शब्द हुआ, मानों बाँधके टूटनेसे समुद्रके जलका शब्द हो रहा हो ॥ ५५ ॥ उस बड़े शब्दसे चारदीवारी, तोरण, वन, पर्वतके साथ लंकापुरी हिल गयी ॥ ५६ ॥ राम लक्ष्मण और सुग्रीवके द्वारा रक्षित वह सेना समस्त असुर तथा देवताओंके लिए अजेय हो गयी ॥ ५७ ॥ रामचन्द्रने अपनी सेनाका इस प्रकार नियोग किया, पुनः उन्होंने राक्षसोंके वधके विषयमें अपने मन्त्रियोंके साथ बार-बार परामर्श किया तथा निश्चय किया ॥ ५८ ॥ क्योंकि वे आगेका कर्तव्य निश्चित करना चाहते थे । वे क्रमसे प्रयोग किये जानेवाले साम-दान आदि उपायोंके फलको जाननेवाले हैं, उन्हें राजधर्मका ज्ञान है, राजालोग शत्रुके नगरपर आकर पहले दूत भेजते हैं, इस सदाचारका उन्हें ज्ञान है । अतएव विभीषणकी सम्मतिसे उन्होंने दूत भेजना निश्चित किया ॥ ५९ ॥ वालिपुत्र अङ्गदको बुलाकर रामचन्द्रने यह कहा—सौम्य ! मेरी ओरसे रावणके पास जाकर यह कहो ॥ ६० ॥ विना परिश्रमके निर्भय होकर, समुद्र लाँघकर, तुम्हारे शत्रु लङ्कापुरीमें आ गये हैं, अब तुम्हारा प्रताप घट गया, तुम्हारा वैभव जाता रहा, अब तुम मरनेवाले हो इससे तुम्हारा ज्ञान जाता रहा ॥ ६१ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष तथा राजाओंके जो अपराध अज्ञानसे मदमत्त होकर तुमने किये हैं उसके भयानक फलभोगका अवसर अब आ गया । ब्रह्माके वरके कारण जो अहङ्कार तुम्हें हो गया था उसे अब समाप्त समझो ॥ ६२, ६३ ॥ मैं (रामचन्द्र) अपराधियोंको दण्ड देनेवाला हूँ । तुमने मेरी स्त्री हर ली है इससे मैं दुःखी हूँ और तुम्हें दण्ड देनेके लिए लंकाके द्वारपर आया हूँ ॥ ६४ ॥ तुम युद्धमें सामना करोगे तो देवताओं महर्षियों तथा समस्त राजाओंकी

छलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम । मामतिक्रमयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥६६॥
अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः । न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम् ॥६७॥
धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोऽयं विभीषणः । लंकैश्वर्यमिदं श्रीमान्ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥६८॥
न हि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया । शक्यं मूर्खसहायेन पापेनाविदितात्मना ॥६९॥
युध्यस्व मा धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस । मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः शान्तो भविष्यसि ॥७०॥
यद्याविशसि लोकांस्त्रीन्पक्षीभूतो निशाचर । मम चक्षुःपथं प्राप्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥७१॥
ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् । सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम् ॥७२॥
इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा । जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट् ॥७३॥
सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान्रावणमन्दिरम् । ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह ॥७४॥
ततस्तस्याविदूरेण निपत्य हरिपुंगवः । दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः ॥७५॥
तद्रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् । सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥७६॥
दूतोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः ॥७७॥
आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः । निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव ॥७८॥
हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम् । निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ॥७९॥

पदवी पाओगे। अर्थात् पापोंसे छूटकर उत्तम लोक पाओगे ॥ ६५ ॥ नीच राक्षस ! मायाके द्वारा मुझे छलकर जिस बलसे तुमने सीताका हरण किया है अब तुम वह बल दिखाओ ॥ ६६ ॥ यदि तुम जानकीको लेकर मेरी शरण न आओगे तो मैं अपने तीखे बाणोंसे इस संसारको राक्षसशून्य कर दूँगा ॥ ६७ ॥ राक्षसश्रेष्ठ धर्मात्मा विभीषण आगये हैं, वे ही लंकाके शत्रुहीन राज्यका उपभोग करेंगे ॥ ६८ ॥ तुम पापी हो, तुम्हें आत्मज्ञान नहीं है, तुम्हारे सलाहकार मूर्ख हैं। अधर्मपूर्वक एक क्षण भी अब तुम राज्य-भोग नहीं कर सकते ॥ ६९ ॥ राक्षस ! धैर्य धारणकरके शूरतापूर्वक तुम मुझसे युद्ध करो। मेरे बाणोंसे युद्धमें जब तुम मारे जाओगे तभी तुम्हारे पाप छूटेंगे ॥ ७० ॥ यदि तुम मेरे सामने पक्षी होकर तीनों लोकोंमें जाओ तो भी, राक्षस ! तुम जीते नहीं लौट सकते ॥ ७१ ॥ मैं तुम्हे हित-उपदेश दे रहा हूँ, तुम अपना श्राद्ध कर डालो (तुम्हारे मरनेपर तो कोई बचा न रहेगा जो तुम्हारा श्राद्ध करे, अतएव तुम्हें स्वयं कर लेना चाहिये) और लंकाको भी खूब अच्छीतरह देख-भाल लो, क्योंकि अब तुम्हारा जीवन मेरे हाथमें है ॥ ७२ ॥ अक्लिष्टकर्मा रामके ऐसा कहनेपर तारापुत्र अङ्गद शरीरधारी अग्निके समान आकाश-मार्गसे चले ॥ ७३ ॥ श्रीमान् अङ्गद शीघ्रही रावणके द्वारपर पहुँच गये और मन्त्रियोंके साथ सावधान बैठे हुए रावणको उन्होंने देखा ॥ ७४ ॥ उसके पास जाकर प्रदीप्त अग्निके समान वानरश्रेष्ठ अङ्गद बैठे, वे सोनेका अङ्गद (बाजूबन्द) पहने हुए थे ॥ ७५ ॥ अङ्गदने पहले स्वयं अपना परिचय दिया, पुनः रामचन्द्रका वचन, न थोड़ा न अधिक ज्यों-का-त्यों, उन्होंने मन्त्रिसहित रावणको सुनाया ॥७६॥ अक्लिष्टकर्मा अयोध्याधिपति रामचन्द्रका मैं दूत हूँ, मैं वालिका पुत्र अङ्गद हूँ, शायद आपके कानोंतक यह बात आयी हो, अर्थात् आप मेरे विषयमें कुछ जानते हों ॥ ७७ ॥ कौशल्यापुत्र रघुवंशी रामचन्द्रने तुमसे कहा

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम् ॥८०॥
विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि । न चेत्सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ॥८१॥
इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुंगवे । अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ॥८२॥
ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवांस्तदा । गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥८३॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निमिव तेजसा । जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः ॥८४॥
ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान् । बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ॥८५॥
स तान्बाहुद्वयासक्तानादाय पतगानिव । प्रासादं शैलसंकाशमुत्पपाताङ्गदस्तदा ॥८६॥
तस्योत्पतनवेगेन निर्धूतास्तत्र राक्षसाः । भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥८७॥
ततः प्रासादशिखरं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् । चक्राम राक्षसेन्द्रस्य वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥८८॥
पफाल च तदाक्रान्तं दशग्रीवस्य पश्यतः । पुरा हिमवतः शृङ्गं वज्रेणेव विदारितम् ॥८९॥
भङ्क्त्वा प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः । विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसा ॥९०॥
व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् । स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥९१॥
रावणस्तु परं चक्रे क्रोधं प्रासादधर्षणात् । विनाशं चात्मनः पश्यन्निःश्वासपरमोऽभवत् ॥९२॥
रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिः प्लवंगमैः । वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभिवर्तत ॥९३॥

है, वीर बनो और नगरसे निकलकर युद्ध करो ॥ ७८ ॥ पुत्र, भाई, बन्धु और मन्त्रियोंके साथ मैं तुम्हें मारूँगा, क्योंकि तुम्हारे मारे जानेपर तीनों लोक निरुद्वेग हो जायगा ॥ ७९ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षसोंके तुम शत्रु हो, ऋषियोंके भी क्षुद्र शत्रु हो, मैं तुम्हें मारूँगा ॥ ८० ॥ यदि तुम मेरी शरण न आये और आदरपूर्वक सीताको नहीं लौटाया, तो मैं तुम्हें मारूँगा और तुम्हारे मारे जानेपर लङ्काका राज्य विभीषणका होगा ॥ ८१ ॥ वानरश्रेष्ठ अङ्गदके ऐसे कठोर वचन कहनेपर राक्षसोंका स्वामी रावण बड़ाही क्रोधित हुआ ॥ ८२ ॥ क्रोध करके रावणने मन्त्रियोंसे कहा—इस मूर्खको पकड़ो और बाँधो, यह बात उसने कईबार कही ॥ ८३ ॥ रावणके वचन सुनकर भयानक चार राक्षसोंने तेजसे अग्निके समान जलते हुए अङ्गदको पकड़ा ॥ ८४ ॥ राक्षसोंमें अपना बल दिखलानेके लिए आत्मवान् तारापुत्र वीर अङ्गदने अपनेको पकड़ा दिया ॥ ८५ ॥ अपने दोनों बाहुओंमें लिपटे हुए चारों राक्षसोंको पक्षीके समान लेकर अङ्गद पर्वतके शिखरके समान महलपर चढ़ गये ॥ ८६ ॥ अङ्गदके ऊपर उठनेके बलसे वे राक्षस काँप गये और राक्षसेन्द्र रावणके सामनेही वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ पर्वतशिखरके समान ऊँचे महलकी छतपर चढ़कर प्रतापी वालिपुत्र अङ्गद पैर पटकने लगे ॥ ८८ ॥ अङ्गदके पैर पटकनेसे रावणके देखते ही देखते वह छत फट गयी, जिस प्रकार पहले इन्द्रने वज्रसे हिमवान्‌का शिखर तोड़ दिया था ॥ ८९ ॥ महलकी छत तोड़कर अपना नाम बतलाकर तथा घोर गर्जनकरके वे आकाशमें उड़ गये ॥ ९० ॥ राक्षसोंको व्यथित और वानरोंको प्रसन्न करते हुए वे वानरोंके बीचमें रामचन्द्रके समीप चले आये ॥ ९१ ॥ महलके टूटनेसे रावणने बहुत अधिक क्रोध किया, अपना विनाश देखता हुआ वह साँस लेने लगा ॥ ९२ ॥ हर्षित तथा गर्जन करनेवाले अनेक वानरोंके साथ रामचन्द्र शत्रुवधकी इच्छासे युद्धके

सुषेणस्तु महावीर्यो गिरिकूटोपमो हरिः । बहुभिः संवृतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः ॥९४॥
स तु द्वाराणि संयम्य सुग्रीववचनात्कपिः । पर्यक्रामत दुर्धर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥९५॥
तेषामक्षौहिणिशतं समवेक्ष्य वनौकसाम् । लङ्कामुपनिविष्टानां सागरं चाभिवर्ततताम् ॥९६॥
राक्षसा विस्मयं जग्मुस्त्रासं जग्मुस्तथापरे । अपरे समरे हर्षाद्दर्पमेवोपपेदिरे ॥९७॥
कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् । ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम्॥
हाहाकारमकुर्वन्त राक्षसा भयमागताः ॥ ९८ ॥
तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते कोलाहले राक्षसराजयोधाः ।
प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि युगान्तवाता इव संविचेरुः ॥ ९९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

———:o*o:———

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम् । न्यवेदयन्पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥ १ ॥
रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः । विधानं द्विगुणं श्रुत्वा प्रासादं चाप्यरोहत ॥ २ ॥
स ददर्शावृतां लङ्कां सशैलवनकाननाम् । असंख्येयैर्हरिगणैः सर्वतो युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ ३ ॥
स दृष्ट्वा वानरैः सर्वैर्वसुधां कपिलीकृताम् । कथं क्षपयितव्याः स्युरिति चिन्तापरोऽभवत्॥ ४ ॥
स चिन्तयित्वा सुचिरं धैर्यमालम्ब्य रावणः । राघवं हरियूथांश्च ददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥

लिए ही तयार हुए ॥ ९३ ॥ महाबली पर्वतशिखरके समान ऊँचा सुषेण नामक वानर इच्छानुसार रूप बनानेवाले अनेक वानरोंके साथ हुआ ॥ ९४ ॥ सुग्रीवके कहनेसे उस वानरने लङ्काके सब द्वारोंको रोक लिया, जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रोंकी सदा परिक्रमा किया करता है ॥ ९५ ॥ लंकामें आये हुए तथा समुद्र-तक फैले हुए सौ अक्षौहिणी वानरोंको देखकर राक्षस विस्मित हुए, बहुतसे भयभीत हुए और दूसरे युद्धप्रेमी राक्षस पहलेके युद्धोंके स्मरणसे प्रसन्न हुए ॥ ९६—९७ ॥ समस्त लङ्काकी चारदीवारी और खाई वानरोंसे भर गयी। लंकाकी चारदीवारीको वानररूपमें दीनतापूर्वक राक्षस देखने लगे और भयभीत होकर हाहाकार करने लगे ॥ ९८ ॥ उस भीषण कोलाहलके होनेपर रावणके योद्धा राक्षस बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रलयकालके पवनके समान विचरण करने लगे ॥ ९९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥



उस नगरके वे राक्षस रावणके यहाँ जाकर बोले—रामचन्द्रने वानरोंके साथ लंकानगरीपर घेरा डाल दिया ॥ १ ॥ नगरीका घिरा जाना सुनकर रावणने क्रोध किया और द्वारोंकी रक्षाके लिए दुगुने सिपाही नियत करके अटारीपर चला गया ॥ २ ॥ उसने देखा कि लंकानगरी तथा उसके वन पर्वत आदि युद्ध चाहने-वाले असंख्य वानरोंसे घिर गये हैं ॥ ३ ॥ वानरोंके द्वारा लंकाकी समूची भूमि पीली बना दी गयी है, यह देखकर रावण इस बातको सोचने लगा कि इनका विनाश कैसे किया जायगा ॥ ४ ॥ रावणने धीरतापूर्वक

राघवः सह सैन्येन मुदितो नाम पुप्लुवे । लङ्कां ददर्श गुप्तां वै सर्वतो राक्षसैर्वृताम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् । जगाम मनसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥ ७ ॥
अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा । पीड्यते शोकसंतप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी ॥ ८ ॥
निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन् । क्षिप्रमाज्ञापयद्रामो वानरान्द्विषतां वधे ॥ ९ ॥
एवमुक्ते तु वचसि रामेणाक्लिष्टकर्मणा । संघर्षमाणाः प्लवगाः सिंहनादैरपूरयन् ॥१०॥
शिखरैर्विकिरामैतां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा । इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरियूथपाः ॥११॥
उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि महान्ति शिखराणि च । तरूंश्चोत्पाट्य विविधांस्तिष्ठन्ति हरियूथपाः ॥१२॥
प्रेक्षतो राक्षसेन्द्रस्य तान्यनीकानि भागशः । राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥१३॥
ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः । लङ्कामेवाभ्यवर्तन्त सालभूधरयोधिनः ॥१४॥
ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवंगमाः । प्राकाराग्राण्यसंख्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥१५॥
परिखान्पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान् । पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥१६॥
ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः । कोटियूथशताश्चान्ये लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥१७॥
काञ्चनानि प्रमर्दन्तस्तोरणानि प्लवंगमाः । कैलासशिखराग्राणि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥१८॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसंनिभाः ॥१९॥
जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥२०॥

देरतक विचार किया, बड़ी आँखोंवाले उसने रामको तथा वानर सेनाओंको देखा ॥ ५ ॥ रामचन्द्र प्रसन्नतापूर्वक अपनी सेनाके साथ लंकाके ओर समीप गये, उन्होंने देखा कि लङ्का राक्षसोंसे घिरी है तथा सुरक्षित है ॥ ६ ॥ चित्रित ध्वजा पताकाओंसे युक्त लङ्काको रामचन्द्रने देखा। वे दुःखी होकर मनही मन सीताका ध्यान करने लगे ॥ ७ ॥ मृगलोचनी जनकपुत्री यहाँ मेरे लिए पीड़ित हो रही है, वह शोकसे तप रही है, दुबली होगयी है तथा जमीनपर सोती है ॥ ८ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रने पीड़ा सहती हुई जानकीका ध्यान करके शत्रुओंको शीघ्र मारनेके लिए वानरोंको आज्ञा दी ॥ ९ ॥ अक्लिष्टकर्मा रामचन्द्रकी आज्ञा पातेही आगे बढ़नेके लिए आपसमें धक्का-धुक्की करते हुए वानरोंने सिंहनादसे पृथिवीको गुंजा दिया ॥ १० ॥ हमलोग शिखरसे या मुक्कोंसे ही इस लङ्कानगरीको तोड़फोड़ देंगे, सभी वानरोंने यही निश्चय किया ॥ ११ ॥ पर्वतशृंग, बड़े-बड़े पत्थर तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर वानर खड़े हो गये ॥ १२ ॥ रावणके सामनेही वे सेनाएँ टुकड़ियोंमें बँटकर रामचन्द्रका प्रिय करनेके लिए उस समय लंकापर चढ़ने लगीं ॥ १३ ॥ वे लाल मुँह तथा सोनेके समान शरीरवाले वानर रामके लिए प्राण त्याग करनेको तयार थे। वे वृक्षों तथा पत्थरोंसे युद्ध करनेवाले लंकाकी ओर बढ़े ॥ १४ ॥ वे वानर वृक्षों पर्वतशिखरों और मुक्कोंसे असंख्य चारदीवारियोंको और तोरणोंको तोड़ने लगे ॥ १५ ॥ स्वच्छ जलवाली खाइयोंको वानरोंने धूलि, पत्थर, घास और लकड़ियोंसे भर दिया ॥ १६ ॥ अनन्तर हजार यूथवाले, कोटि यूथवाले तथा सौ करोड़ यूथवाले सेनापति लंकापर चढ़ गये ॥ १७ ॥ कैलासशिखरके समान ऊँचे गोपुरको तोड़कर वानरोंने सुवर्णतोरणको तोड़ डाला ॥ १८ ॥ कई वानर योंही चारोंओर कूदने लगे, कई चारदीवारीपर कूदकर चढ़ने लगे और कई गर्जने लगे, वे बड़े हाथीके समान ऊँचे वानर लंकाकी ओरही चले ॥ १९ ॥ महाबली राम और लक्ष्मणकी जय

इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥२१॥
वीरबाहुः सुबाहुश्च नलश्च पनसस्तथा । निपीड्योपनिविष्टास्ते प्राकारं हरियूथपाः ॥
एतस्मिन्नन्तरे चक्रुः स्कन्धावारनिवेशनम् ॥२२॥
पूर्वद्वारं तु कुमुदः कोटिभिर्दशभिर्वृतः । आवृत्य बलवांस्तस्थौ हरिभिर्जितकाशिभिः ॥२३॥
सहायार्थे तु तस्यैव निविष्टः प्रसभो हरिः । पनसश्च महाबाहुर्वानरैरभिसंवृतः ॥२४॥
दक्षिणद्वारमासाद्य वीरः शतबलिः कपिः । आवृत्य बलवांस्तस्थौ विंशत्या कोटिभिर्वृतः २५॥
सुषेणः पश्चिमद्वारं गत्वा तारापिता बली । आवृत्य बलवांस्तस्थौ कोटिकोटिभिरावृतः ॥२६॥
उत्तरद्वारमागम्य रामः सौमित्रिणा सह । आवृत्य बलवांस्तस्थौ सुग्रीवश्च हरीश्वरः ॥२७॥
गोलांगूलो महाकायो गवाक्षो भीमदर्शनः । वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः॥२८॥
ऋक्षाणां भीमकोपानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः । वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः॥२९॥
संनद्धस्तु महावीर्यो गदापाणिर्विभीषणः । वृतो यत्तैस्तु सचिवैस्तस्थौ यत्र महाबलः ॥३०॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । समन्तात्परिधावन्तो ररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥३१॥
ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः । निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥३२॥
एतच्छ्रुत्वा तदा वाक्यं रावणस्य मुखेरितम् । सहसा भीमनिर्घोषमुद्धुष्टं रजनीचरैः ॥३३॥
ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः । हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समन्ततः ॥३४॥
विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः । राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ॥३५॥

हो, रामके द्वारा रक्षित राजा सुग्रीवकी जय हो, ॥ २० ॥ ऐसी घोषणा करते हुए तथा गर्जते हुए कामरूपी वानर लंकाकी चारदीवारीकी ओर दौड़े ॥ २१ ॥ वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस ये वानरसेनापति लंकाकी चारदीवारीपर चढ़कर बैठ गये और वहींसे सेनाके विश्रामके लिए शिविर स्थापन करने लगे ॥२२॥ बलवान् कुमुद नामक वानर दस करोड़ वानरोंके साथ ईशानकोणवाले द्वारको रोका ॥ २३ ॥ उसकी सहायताके लिए प्रसभ और पनस नामक वानर अन्य वानरोंके साथ गये ।। २४ ॥ शतबलि नामक बलवान् और वीर वानरने बीस करोड़ वानरोंके साथ अग्निकोणवाले द्वारको रोका ॥ २५ ॥ ताराके पिता बली सुषेण नामक वानरने कई करोड़ वानरोंके साथ नैऋत्यकोणवाले द्वारको रोका ॥ २६ ॥ वानरराज सुग्रीवने वायव्य कोणवाले द्वारको रोका, रामचन्द्र भी लक्ष्मणके साथ यहाँ आगये थे ॥ २७ ॥ विशालशरीर गोलांगूल भीमदर्शन गवाक्ष करोड़ वानरोंको साथ लेकर रामचन्द्रके समीप आया ॥ २८ ॥ भयानक क्रोध करनेवाले करोड़ भालुओंको साथ लेकर महाबली शत्रुनाशी धूम्र रामचन्द्रके पास गया ॥ २९ ॥ गदा धारण करनेवाले महाबली विभीषण तयार होकर सावधान अपने मन्त्रियोंके साथ महाबली रामचन्द्र जहाँ थे वहाँ गये ॥ ३० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन और शरभ घूमकर चारोंओरसे वानरी सेनाकी रक्षा करने लगे ॥३१॥ अनन्तर क्रोध करके राक्षसेश्वर रावणने अपनी समूची सेनाको शीघ्र बाहर निकलनेकी आज्ञा दी ॥ ३२ ॥ रावणके मुँहसे निकले हुए इस वचनको सुनकर राक्षसोंने बहुतही भयानक गर्जन किया ॥३३॥ अनन्तर सोनेके मुँहवाली राक्षसोंकी भेरी सोनेके डण्डेसे आहत होकर चारों ओर बजने लगी ॥३४॥ भया-

ते बभुः शुकनीलाङ्गाः सशङ्खा रजनीचराः। विद्युन्मण्डलसंनद्धाः सबलाका इवाम्बुदाः ॥३६॥
निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः। समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ॥३७॥
ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः। मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥३८॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम्। पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥३९॥
गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां हेषितैरपि। रथानां नेमिनिर्घोषै रक्षसां पदनिःस्वनैः ॥४०॥
एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत। रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥४१॥
ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः। निजघ्नुर्वानरान्सर्वान्कथयन्तः स्वविक्रमान् ॥४२॥
तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः। निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिनः ॥४३॥
राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत्। राजञ्जयजयेत्युक्त्वा स्वस्वनामकथां ततः ॥४४॥
राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्था महीं गतान्। वानरान्भिन्दिपालैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन् ॥४५॥
वानराश्चापि संक्रुद्धाः प्राकारस्थान्महीं गताः। राक्षसान्पातयामासुः खमाप्लुत्य स्वबाहुभिः ॥४६॥
स संप्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः। रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

नक राक्षसोंके मुँहकी हवासे पूर्ण होकर सैकड़ों हजारों शंख दूरतक फैलनेवाले शब्द करने लगे ॥३५॥ शुकके समान हरे रंगके शरीरवाले वे राक्षस शंख धारण करनेके कारण उस मेघके समान मालूम पड़ते थे जो बकपंक्ति तथा बिजुलीसे युक्त होते हैं ॥ ३६ ॥ रावणके कहनेसे सेनाके राक्षस इस प्रकार आने लगे, मानो प्रलयकालमें नदियोंसे भरनेवाले समुद्रका वेग हो ॥३७॥ अनन्तर वानर सैनिकभी चारों ओरसे गर्जन करने लगे, जिससे मलयपर्वत, शिखर, मैदान और कंदराके साथ गूँज उठा ॥३८॥ शंख और दुंदुभिके शब्द तथा वेगवान् राक्षसोंके सिंहनादने पृथिवी, आकाश और समुद्रको प्रतिध्वनित किया। हाथियोंके बृंहित (शब्द), घोड़ोंके हेषा (शब्द), रथोंके पहियोंके शब्द तथा राक्षसोंके चलनेके शब्दसे पृथिवी आकाश और समुद्र प्रतिध्वनित हुए ॥ ३९—४० ॥ इसी समय राक्षसों और वानरोंमें भयानक संग्राम प्रारम्भ हुआ, जिस प्रकार पहले देवासुरसंग्राम हुआ था ॥ ४१ ॥ वे राक्षस अपने पराक्रमका वर्णन करते हुए चमकीली गदाओं, शूलों, शक्तियों और परशुओंसे वानरोंको मारने लगे ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार विशाल शरीर वानर भी वृक्षों और पत्थरोंसे राक्षसोंको मारने लगे, वेगवान् वानर नखों और दाँतोंसे भी राक्षसोंको मारने लगे ॥ ४३ ॥ वानरी सेनामें राजा सुग्रीवकी जयका कोलाहल हुआ। राक्षसी सेनामें राक्षस अपना-अपना नाम कहकर "महाराज आपकी जय हो" ऐसा कहने लगे ॥ ४४ ॥ दूसरे भयानक राक्षस जो चारदीवारीपर बैठे थे वे पृथिवीपर खड़े वानरोंको भिन्दिपाल और शूलोंसे मारने लगे ॥ ४५ ॥ इससे वानर भी क्रुद्ध हुए और उन्होंने कूदकर चारदीवारीपर बैठे राक्षसोंको भूमिपर पटक दिया ॥ ४६ ॥ राक्षसों और वानरोंका वह अद्भुत और भयानक युद्ध होने लगा, मांस और रुधिरका कीचड़ हो गया ॥ ४७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका युद्धकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

युध्यतां तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् । राक्षसां संबभूवाथ बलरोषः सुदारुणः ॥१॥
ते हयैः काञ्चनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः । रथैश्चादित्यसंकाशैः कवचैश्च मनोरमैः ॥२॥
निर्ययू राक्षसा वीरा नादयन्तो दिशो दश । राक्षसा भीमकर्माणो रावणस्य जयैषिणः ॥३॥
वानराणामपि चमूर्बृहती जयमिच्छताम् । अभ्यधावत तां सेनां रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् । रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥५॥
अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः । अयुध्यत महातेजास्त्र्यम्बकेण यथान्धकः ॥६॥
प्रजङ्घेन च संपातिर्नित्यं दुर्धर्षणो रणे । जम्बुमालिनमारब्धो हनूमानपि वानरः ॥७॥
संगतस्तु महाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः । समरे तीक्ष्णवेगेन शत्रुघ्नेन विभीषणः ॥८॥
तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः । निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत ॥९॥
वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन सुसंगतः । संगतः समरे श्रीमान्विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥१०॥
अग्निकेतुः सुदुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः । मित्रघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह संगताः ॥११॥
वज्रमुष्टिश्च मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः । राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ ॥१२॥
वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः । समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत ॥१३॥
धर्मस्य पुत्रो बलवान्सुषेण इति विश्रुतः । स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः ॥१४॥

महात्मा वानरोंको युद्धकरते देखकर राक्षसोंको अपने बलपर भयानक क्रोध उत्पन्न हुआ अर्थात् राक्षसोंने समझा कि ये हमारे सामने अभीतक युद्ध करही रहे हैं, इस कारण उन्हें अपने बलपर क्रोध आया कि यह बल किस कामका जो वानर अभी तक जीतेही हैं ॥१॥ सोनेके भूषण पहने हुए घोड़े, अग्निशिखाके समान हाथी, सूर्यके समान रथ तथा मनोहर कवच धारण करके भयानक कर्म करनेवाले राक्षस दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए लंकासे निकले । वे रावणकी जय चाहनेवाले थे ॥ २—३ ॥ जयकी इच्छा रखनेवाले वानरोंकी भी बहुत बड़ी सेना कठोर कर्म करनेवाले राक्षसी सेनाकी ओर दौड़ी ॥ ४ ॥ इसी बीचमें एक दूसरेकी ओर दौड़नेवाले वानरों और राक्षसोंमें द्वन्द्व युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥ वालिपुत्र अङ्गदके साथ तेजस्वी इन्द्रजित् लड़ने लगा, जिस प्रकार पहले अन्धकासुर महादेवके साथ लड़ा था ॥ ६ ॥ प्रजङ्घ राक्षसके साथ शत्रुके लिए असहनीय सम्पाति (विभीषणका मन्त्री) युद्ध करने लगा और जम्बुमालीके साथ हनुमान युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ महाक्रोधी रावणानुज विभीषण राक्षस युद्धके लिए तीक्ष्णवेग शत्रुघ्न नामक राक्षससे मिले ॥ ८ ॥ तपन नामक राक्षसके साथ महाबली और निकुम्भके साथ महातेजस्वी नील युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ वानरराजसुग्रीव प्रघसके साथ और लक्ष्मण विरूपाक्षके साथ लड़ने लगे ॥ १० ॥ रणमें असहनीय अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यज्ञकोप ये राक्षस रामके साथ लड़ने लगे ॥ ११ ॥ वज्रमुष्टिके साथ मैन्द, और अशनिप्रभके साथ द्विविद इस प्रकार इन दोनों भयानक राक्षसोंके साथ ये दो प्रधान वानर युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ रणमें अजेय भयानक वीर प्रतपन नामक राक्षस तीक्ष्णवेग नलके साथ भिड़ा ॥ १३ ॥ बली सुषेण धर्मका पुत्र है—यह प्रसिद्ध है,

वानराश्चापरे घोरा राक्षसैरपरैः सह । द्वन्द्वं समीयुः सहसा युद्ध्वा च बहुभिः सह ॥१५॥
तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् । रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम्॥१६॥
हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रसृताः केशशाद्वलाः । शरीरसंघाटवहाः प्रसुस्रुः शोणितापगाः ॥१७॥
आजघानेन्द्रजित्क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः । अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम् ॥१८॥
तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् । जघान गदया श्रीमानङ्गदो वेगवान्हरिः ॥१९॥
संपातिस्तु प्रजङ्घेन त्रिभिर्बाणैः समाहतः । निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि ॥२०॥
जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः । बिभेद समरे क्रुद्धो हनूमन्तं स्तनान्तरे ॥२१॥
तस्य तं रथमास्थाय हनूमान्मारुतात्मजः । प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा ॥२२॥
नदन्प्रतपनो घोरो नलं सोऽभ्यनुधावत । नलः प्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी ॥२३॥
भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा । ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः ॥२४॥
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निजघान जवेन च । प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम् ॥२५॥
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः । अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ॥
मित्रघ्नो यज्ञकोपश्च राममादीपयच्छरैः ॥२६॥
तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि समरे शरैः । क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः ॥२७॥

वह महावानर विद्युन्मालीके साथ युद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ दूसरे वानर दूसरे राक्षसोंके साथ बाहुयद्ध करके द्वन्द्व युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ जय चाहनेवाले वीर वानरों और राक्षसोंका वहाँ भयानक युद्ध होने लगा, जिसको देखकर रोंगटे खड़े होजाते थे ॥ १६ ॥ उस युद्धक्षेत्रमें रुधिरकी नदी बह चली, राक्षस और वानरके शरीरसे निकले हुए बालही जिसके सेवार थे और वानर तथा राक्षसोंके शरीरही जिसकी लकड़ियाँ थीं ॥ १७ ॥ शत्रुसेनाका नाश करनेवाले वीर अङ्गदको क्रोधकरके इन्द्रजित्ने गदासे मारा, जैसे इन्द्र वज्रसे मारता है ॥ १८ ॥ वेगवान् श्रीमान् अङ्गद वानरने इस इन्द्रजित्के सुवर्ण-चित्रित रथको घोड़ेको और सारथिको गदासे मारा, यह गदा इन्द्रजित्से छीनी हुई थी ॥ १९ ॥ प्रजंघने सम्पातिको तीन बाणोंसे मारा । उसने प्रजंघको अश्वकर्ण नामक वृक्षसे मारा ॥ २० ॥ रथपर बैठा हुआ महाबली जम्बुमाली रथकी शक्तिसे युद्धमें क्रोध करके हनुमानको छातीके बीचमें मारा (रथशक्तिसे मतलब रथमें लगे शक्ति नामक अस्त्रसे है, जो यन्त्रके सहारे चलता होगा) ॥ २१ ॥ वायुपुत्र हनुमान् जम्बुमालीके रथपर चढ़ गये और उन्होंने चपतसे उस राक्षसको मार डाला तथा रथको तोड़ डाला ॥२२॥ भयानक प्रतपन गर्जन करता हुआ नलकी ओर दौड़ा, नलने उसकी आँखें निकाल लीं ॥ २३ ॥ उस राक्षसने शीघ्रतापूर्वक बाण चलाकर नलके शरीरको छेद दिया था । प्रघस नामक राक्षस वानरीसेनाका नाश कर रहा था, उसको वानरराज सुग्रीवने सप्तपर्ण नामक वृक्षसे वेगपूर्वक मारा । देखनेमें भयानक विरूपाक्ष नामक राक्षसको बाणों की वर्षासे पीड़ित करके लक्ष्मणने एक बाणके द्वारा मारा । युद्धमें कष्टसे जीतनेके योग्य अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यज्ञकोप इन चारों राक्षसोंने रामचन्द्रको बाण मारकर क्रोधित किया ॥ २४—२६ ॥ युद्धक्षेत्रमें रामचन्द्रने क्रोध करके उन चारोंके सिर अग्निशिखाके समान

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे। पपात सरथः साश्वः सुराट्ट इव भूतले ॥२८॥
निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम्। निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान् ॥२९॥
पुनः शरशतेनाथ क्षिप्रहस्तो निशाचरः। बिभेद समरे नीलं निकुम्भः प्रजहास च ॥३०॥
तस्यैव रथचक्रेण नीलो विष्णुरिवाहवे। शिरश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः ॥३१॥
वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदश्च समप्रभम्। जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥३२॥
द्विविदं वानरेन्द्रं तं द्रुमयोधिनमाहवे। शरैरशनिसंकाशैः स विव्याधाशनिप्रभः ॥३३॥
स शरैरभिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्च्छितः। सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम् ॥३४॥
विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः। सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः ॥३५॥
तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः। गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत् ॥३६॥
लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः। अपक्रम्य रथात्तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः ॥३७॥
ततः क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुंगवः। शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ॥३८॥
तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः। वक्षस्यभिजघानाशु सुषेणं हरिपुंगवम् ॥३९॥
गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्य प्लवगोत्तमः। तां तूर्णीं पातयामास तस्योरसि महामृधे ॥४०॥
शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः। निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह ॥४१॥
एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः। द्वन्द्वे विमथितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ॥४२॥

बाणोंसे काट दिया ॥२७॥ मैन्दने वज्रमुष्टिको मुक्का मारकर युद्धमें मार डाला, जिससे वह घोड़े और रथके साथ देव-विमानके समान पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ काले अञ्जनराशिके समान नील नामक वानरको निकुम्भने तीखे बाणोंसे मारा, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे मेघको मारता है ॥ २९ ॥ पुनः शीघ्र हाथ चलानेवाले उस निशाचरने सौ बाणोंसे नीलको मारा और वह निकुम्भ पुनः हँसा ॥ ३० ॥ युद्धमें विष्णुके समान निकुम्भके रथका पहिया लेकर नीलने निकुम्भका तथा उसके सारथियोंका सिर काट लिया ॥ ३१ ॥ द्विविदने जिनका घूसा वज्रके समान कठोर है—सब राक्षसोंके सामनेही पत्थरसे अशनिप्रभ नामक राक्षसको मारा ॥ ३२ ॥ पेड़के द्वारा युद्ध करनेवाले वानरसेनापति द्विविदको अशनिप्रभने वज्र-समान बाणोंसे मारा ॥ ३३ ॥ बाणोंसे विद्ध होनेपर द्विविदने बड़ा क्रोध किया और उन्होंने सालवृक्षके द्वारा रथ और घोड़ोंके साथ अशनिप्रभको मार डाला ॥ ३४ ॥ विद्युन्मालीने रथपर बैठकर सुवर्णभूषित बाणोंसे सुषेणको मारा और बार-बार गर्जन किया ॥ ३५ ॥ वानरश्रेष्ठ सुषेणने विद्युन्मालीको रथपर बैठा देखकर बड़ा भारी पर्वतशृङ्ग चलाकर रथ तोड़ दिया ॥ ३६ ॥ विद्युन्माली राक्षस शीघ्रतापूर्वक रथसे उतर-कर शीघ्रही गदा लेकर पृथिवीपर खड़ा हो गया ॥ ३७ ॥ इससे वानरसेनापति सुषेणने बड़ा क्रोध किया और एक बड़ा पत्थर लेकर वे उसकी ओर दौड़े ॥ ३८ ॥ उनको आतेहुए देखकर विद्युन्माली राक्षसने गदासे वानरसेनापति सुषेणकी छातीमें मारा ॥ ३९ ॥ उस भयानक गदाप्रहारकी ओर ध्यान न देकर उस राक्षसकी छातीपर वह बड़ा पत्थर पटक दिया ॥ ४० ॥ पत्थरके आघातसे आहत विद्युन्माली राक्षस हृदयके चूर-चूर हो जानेसे मर गया और पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार उन वीर वानरोंने

भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्च शक्तितोमरसायकैः। अपविद्धैश्चापि रथैस्तथा सांग्रामिकैर्हयैः ॥४३॥
निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः। चक्राक्षयुगदण्डैश्च भग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥४४॥
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसेवितम्। कबन्धानि समुत्पेतुर्दिक्षु वानररक्षसाम् ॥
विमर्दे तुमुले तस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४५ ॥
निहन्यमाना हरिपुंगवैस्तदा निशाचराः शोणितगन्धमूर्छिताः।
पुनः सुयुद्धं तरसा समाश्रिता दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

युध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम्। रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥१॥
अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम्। संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम् ॥२॥
राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः। अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥३॥
हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च। एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन्सैन्ये तु शुश्रुवे ॥४॥
कालाः काञ्चनसंनाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः। संप्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥५॥
तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः। परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवंगमान् ॥६॥

उन वीर राक्षसोंको युद्धमें मथित कर दिया, जिस प्रकार देवताओंने दैत्योंको मथित किया था ॥ ४२ ॥ उस देवासुरसंग्रामके समान भयानक युद्धमें भाला, गदा, शक्ति, तोमर, बाण, टूटे हुए रथ, मरे हुए युद्धके घोड़े, मतवाले हाथी, वानर, राक्षस, पृथिवीपर गिरे पहिए, जोत, जुआठसे वह युद्धभूमि भयानक हो गयी थी, उसमें शृगाल विचर रहे थे, वानर और राक्षसोंके कबन्ध इधर-उधर घूम रहे थे ॥ ४३—४५ ॥ वानरोंके द्वारा मारे गये राक्षस रुधिरकी गन्ध पाकर मूर्छित हो गये, पुनः वे युद्धके लिए तयार हो गये और सूर्यास्त होनेकी आकांक्षा करने लगे (इसलिए कि रातको राक्षसोंका बल बढ़ जाता) है ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

वानर और राक्षस युद्ध करही रहे थे, इसी समय सूर्यस्त हो गया और प्राणनाश करनेवाली रात्रि आयी ॥ १ ॥ वानर और राक्षस दोनोंमें वैर दृढ़ हो गया था, दोनोंही भयानक तथा अपनी विजय चाहनेवाले थे। इनका रात्रियुद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ २ ॥ उस घोर अन्धकारमें वानर 'तुम राक्षस हो' ऐसा पूछकर और राक्षस 'तुम वानर हो' ऐसा पूछकर परस्पर मारने लगे ॥ ३ ॥ उस सेनामें मारो, काटो, आओ, भागे, क्यों जाते हो ऐसा भयानक शब्द सुनायी पड़ता था ॥ ४ ॥ सोनेके कवच पहने हुए काले-काले राक्षस उस घोर अन्धकारमें पर्वतके समान मालूम होते थे, जिसपर वनौषधियाँ प्रकाशित हो रही हों ॥ ५ ॥ उस निविड़ अन्धकारमें खूब क्रोध करके वानरोंको खाते हुए राक्षसोंने वानरसेनापर आक्रमण किया ॥ ६ ॥

ते हयान्काञ्चनापीडान्ध्वजांश्चाशीविषोपमान् । आप्लुत्य दशनैस्तीक्ष्णैर्भीमकोपा व्यदारयन् ॥७॥
वानरा बलिनो युद्धेऽक्षोभयन्राक्षसीं चमूम् । कुञ्जरान्कुञ्जरारोहान्पताकाध्वजिनो रथान् ॥८॥
चकर्षुश्च ददंशुश्च दशनैः क्रोधमूर्च्छिताः । लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमैः ॥९॥
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः । तुरंगखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुत्थितम् ॥१०॥
रुरोध कर्णनेत्राणि युध्यतां धरणीरजः । वर्तमाने तथा घोरे संग्रामे लोमहर्षणे ॥
रुधिरौघा महाघोरा नद्यस्तत्र विसुस्रुवुः ॥११॥
ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः । शङ्खनेमिस्वनोन्मिश्रः संबभूवाद्भुतोपमः ॥१२॥
हयानां स्तनमानानां राक्षसानां च निःस्वनः । शस्तानां वानराणां च संबभूवात्र दारुणः ॥१३॥
हतैर्वानरमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः । निहतैः पर्वताकारै राक्षसैः कामरूपिभिः ॥१४॥
शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद्युद्धमेदिनी । दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च शोणितास्रावकर्दमा ॥१५॥
सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी । कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा ॥१६॥
ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे । राममेवाभ्यवर्तन्त संहृष्टाः शरवृष्टिभिः ॥१७॥
तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामपि गर्जताम् । उद्वर्त इव सत्त्वानां समुद्राणामभूत्स्वनः ॥१८॥
तेषां रामः शरैः षड्भिः षड् जघान निशाचरान् । निमेषान्तरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥१९॥
यज्ञशत्रुश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ । वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥२०॥

भयङ्कर क्रोधवाले वे वानर सुवर्णभूषण धारण करनेवाले घोड़ों, सर्पके समान ध्वजाओंको तीखे दाँतोंसे फाड़ने लगे ॥ ७ ॥ बली वानरोंने युद्धमें राक्षसी सेनाको क्षुभित कर दिया । वानरोंने क्रोध करके हाथियों हाथिसवारों और पताका-ध्वजावाले रथोंको खींचा तथा दाँतोंसे काटा । राम और लक्ष्मण सर्पके समान बाणोंसे दिखायी पड़नेवाले और न दिखायी पड़नेवाले प्रधान-प्रधान राक्षसोंको मारने लगे । घोड़ोंके खुरसे उड़ायी हुई तथा पहियोंसे उड़ायी हुई पृथिवीकी धूलिने युद्ध करनेवालोंके कान और नेत्र बन्द कर दिये । वह लोमहर्षण युद्ध जब हो रहा था, उस समय वहाँसे रुधिर बहानेवाली भयानक नदियाँ बह निकलीं ॥ ८—११ ॥ अनन्तर भेरी, मृदङ्ग और पणवका शब्द शङ्ख तथा रथके पहिएके शब्दसे मिलनेसे एक अद्भुत शब्द होने लगा ॥ १२ ॥ गर्जते हुए घोड़ों और राक्षसोंके शब्द तथा मरते हुए वानरोंके शब्द ये सब मिलकर भयानक हो गये ॥ १३ ॥ शक्ति, शूल और परशुसे मारे गये, वानरसेनापतियों तथा कामरूपी और पर्वताकार राक्षसोंसे युक्त पृथिवीको शस्त्ररूपी पुष्पोंका उपहार दिया गया । उस भूमिमें रुधिर गिरनेसे कीचड़ हो गया था, अतएव उसमें ठहरना और उसका पहचानना कठिन था ॥ १४—१५ ॥ वानर और राक्षसोंका नाश करनेवाली वह रात्रि बड़ी भयानक हो गयी, सब प्राणियोंके लिए भयङ्कर कालरात्रिके समान वह रात्रि हो गयी ॥ १६ ॥ उस घोर अन्धकारमयी रात्रिमें राक्षस प्रसन्न होकर बाण-वृष्टिके द्वारा रामकी ओर ही बढ़े ॥ १७ ॥ क्रोध करके गर्जकर धावा करनेवाले उन राक्षसोंका शब्द प्रलयकालमें समुद्रके प्राणियोंके शब्दके समान भयानक हुआ ॥ १८ ॥ अग्निशिखाके समान छः बाणोंसे निमेषमात्र समयमें रामचन्द्रने उन छः राक्षसोंको मारा ॥ १९ ॥ दुर्धर्ष, यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, महाकाय वज्रदंष्ट्र

ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः । युद्धादपस्तास्तत्र सावशेषायुपोऽभवन् ॥२१॥
निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः । दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महारथः ॥२२॥
ये त्वन्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः । तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥२३॥
सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः संपतद्भिः समन्ततः । बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥२४॥
राक्षसानां च निनदैर्भेरीणां चैव निःस्वनैः । सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतराभवत् ॥२५॥
तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः । त्रिकूटः कंदरः कीर्णः प्रत्याहरदिवाचलः ॥२६॥
गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः । संपरिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन्रजनीचरान् ॥२७॥
अङ्गदस्तु रणे शत्रून्निहन्तुं समुपस्थितः । इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ॥
अङ्गदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २८ ॥
तत्कर्म वालिपुत्रस्य सर्वे देवाः सहर्षिभिः । तुष्टुवुः पूजनोर्हस्य तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥२९॥
प्रभावं सर्वभूतानि विदुरिन्द्रजितो युधि । ततस्तेन महात्मानं दृष्ट्वा तुष्टाः प्रधर्षितम् ॥३०॥
ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवविभीषणाः । साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ॥३१॥
इन्द्रजित्तु तदानेन निर्जितो भीमकर्मणा । संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥३२॥
सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणो रणकर्शितः । ब्रह्मदत्तवरो वीरो रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ॥३३॥
अदृश्यो निशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः । रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ॥३४॥

और शुक तथा सारण इन सबके मर्मस्थानमें रामने बाणोंसे मारा, जिससे ये युद्धक्षेत्रसे हट गये और इनकी आयु समाप्त हो गयी ॥ २०, २१ ॥ अग्निशिखाके समान बाणोंसे महारथी रामने निमेषमात्रमें ही दिशाओं और विदिशाओंको प्रकाशित कर दिया ॥ २२ ॥ और राक्षस जो रामचन्द्रके सामने थे वे भी नष्ट हो गये, जिस प्रकार पतङ्ग आगके पास जाकर नष्ट हो जाते हैं ॥ २३ ॥ सोनेके पंखवाले बाण इधर-उधर आ-जा रहे थे जिससे रात्रि चित्रित हो गयी थी, मालूम होता था मानो शरत्की रात्रिमें खद्योत उड़ रहे हों ॥ २४ ॥ राक्षसोंके गर्जन तथा भेरीके शब्दसे वह भयानक रात्रि और भी भयानक हो गयी ॥ २५ ॥ चारों ओर फैले हुए उस महाशब्दसे त्रिकूट पर्वत भर गया, मालूम होता था कि यह पर्वत ही बोल रहा है ॥ २६ ॥ अन्धकारके समान काले, विशालशरीर गोलाङ्गूल जातिके वानर हाथोंसे पकड़कर राक्षसोंको खाने लगे ॥२७॥ युद्धमें शत्रुको मारनेके लिए अङ्गद आये और अङ्गदके द्वारा सारथि और घोड़ेके मारे जानेपर माया जाननेवाला इन्द्रजित् रथ छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ २८ ॥ पूजाके योग्य वालिपुत्रके उस कामकी ऋषियोंकेसाथ देवताओंने प्रशंसा की और राम-लक्ष्मणने भी प्रशंसा की ॥ २९ ॥ युद्धमें इन्द्रजितके प्रभावको सभी प्राणी जानते हैं। उस महात्मा इन्द्रजित्को अंगदने नीचा दिखाया, यह देखकर सब लोग अङ्गदपर प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ शत्रुको पराजित देखकर सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य वानर बहुत प्रसन्न हुए और उनलोगोंने साधु-साधु कहा ॥३१॥ भयानक कर्म करनेवाले इस वालिपुत्र अङ्गदसे परास्त होकर इन्द्रजितने रणमें बड़ा भयानक क्रोध किया ॥ ३२ ॥ जो पापी रावणपुत्र रणमें परास्त होकर अन्तर्धान हो गया था और जिस वीरने ब्रह्मासे वर पाया था, वह अदृश्य रहकर वज्रके समान तीखे बाण

विभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवौ। मायया संवृतस्तत्र मोहयन्राघवौ युधि ॥३५॥
अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः। बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥३६॥
तौ तेन पुरुषव्याघ्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः। सहसाभिहतौ वीरौ तदा प्रेक्षन्त वानराः ॥३७॥
प्रकाशरूपस्तु यदा न शक्तस्तौ बाधितुं राक्षसराजपुत्रः।
मायां प्रयोक्तुं समुपाजगाम बबन्ध तौ राजसुतौ दुरात्मा ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

स तस्य गतिमन्विच्छन्राजपुत्रः प्रतापवान्। दिदेशातिबलो रामो दश वानरयूथपान् ॥१॥
द्वौ सुषेणस्य दायादौ नीलं च प्लवगाधिपम्। अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्विनम् ॥२॥
द्विविदं च हनूमन्तं सानुप्रस्थं महाबलम्। ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परंतपः ॥३॥
ते संप्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान्। आकाशं विविशुः सर्वे मार्गमाणा दिशो दश ॥४॥
तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः। अस्त्रवित्परमास्त्रेण वारयामास रावणिः ॥५॥
तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविक्षताः। अन्धकारे न ददृशुर्मेघैः सूर्यमिवावृतम् ॥६॥

छोड़ने लगा। वह भयानक सर्पमय वाणोंसे क्रोधकरके राम और लक्ष्मणके शरीर छेदने लगा। मायासे स्वयं छिपकर वह युद्धमें राम और लक्ष्मणको मोहित करने लगा॥ ३३—३५ ॥ छलसे युद्ध करनेवाला राक्षस सब प्राणियोंको अदृश्य हो गया था। उसने नागपाशके द्वारा राम और लक्ष्मणको बाँध दिया॥ ३६ ॥ उन पुरुषसिंहोंको उस राक्षसने क्रोध करके सर्पवाणोंसे मारा, अकस्मात् वानरोंने राम-लक्ष्मणको इस अवस्थामें देखा॥ ३७ ॥ राक्षसराजका पुत्र इन्द्रजित् जब प्रत्यक्ष रहकर उन दोनों वीरोंका कुछ न कर सका तब उसने छल करनेका निश्चय किया और उस दुरात्माने उन दोनों राजपुत्रोंको बाँध दिया॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

प्रतापी महाबली राजपुत्र रामचन्द्रने उस इन्द्रजित्के स्थानका पता लगानेके लिए दस वानर सेनापतियोंको आज्ञा दी ॥ १ ॥ सुषेणके दो पुत्र, सेनापति नील, वालिपुत्र अङ्गद, वेगवान् शरभ, द्विविद, हनुमान्, महाबली सानुप्रस्थ, ऋषभ और ऋषभस्कन्धको शत्रुनाशक रामचन्द्रने आज्ञा दी॥ २, ३ ॥ वे वानर प्रसन्न होकर भयानक वृक्षोंको लेकर दसों दिशाओंमें ढूँढ़ते आकाशमार्गमें चले॥ ४ ॥ शस्त्र-विद्या जाननेवाला इन्द्रजित्ने वेगवान उन वानरोंके शीघ्र गमनको, ब्रह्मास्त्र मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित अत्यन्त वेगवान वाणोंके द्वारा, रोक दिया॥ ५ ॥ अत्यन्त शीघ्र चलनेवाले वे वानर वाणोंके द्वारा क्षत-विक्षत होकर अन्धकारमें कुछ देख नहीं सके, जिस प्रकार मेघोंके द्वारा सूर्यके ढँक जानेपर कोई

रामलक्ष्मणयोरेव सर्वदेहभिदः शरान् । भृशमावेशयामास रावणिः समितिंजयः ॥७॥
निरन्तरशरीरौ तु तावुभौ रामलक्ष्मणौ । क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः ॥८॥
तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु । तावुभौ च प्रकाशेते पुष्पिताविव किंशुकौ ॥९॥
ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः । रावणिर्भ्रातरौ वाक्यमन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥१०॥
युध्यमानमनालक्ष्यं शक्रोऽपि त्रिदशेश्वरः । द्रष्टुमासादितुं वापि न शक्तः किं पुनर्युवाम् ॥११॥
प्रापिताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा । एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम् ॥१२॥
एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च ॥१३॥
भिन्नाञ्जनचयश्यामो विस्फार्य विपुलं धनुः । भूय एव शरान्घोरान्विससर्ज महामृधे ॥१४॥
ततो मर्मसु मर्मज्ञो मज्जयन्निशिताञ्शरान् । रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥१५॥
बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि । निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरवेक्षितुम् ॥१६॥
ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितौ कृतौ । ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥१७॥
तौ संप्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ । निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती ॥१८॥
तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ । शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ ॥१९॥
न ह्यविद्धं तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम् । नानिर्विण्णं न चाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥२०॥
तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा । असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥२१॥

कुछ देख नहीं सकता ॥ ६ ॥ सबके शरीरोंसे छेदनेवाले बाणोंको युद्धविजयी इन्द्रजित् राम-लक्ष्मणके शरीरोंको पुनः छेदने लगा ॥ ७ ॥ इन्द्रजित्ने क्रोध करके साँपके बाणोंसे राम-लक्ष्मणके शरीरको छेदकर तनिक भी जगह नहीं रहने दी ॥ ८ ॥ उन दोनोंके क्षतस्थानोंसे बहुत रुधिर बहा। वे दोनों पुष्पित पलासवृक्षके समान मालूम पड़ने लगे ॥ ९ ॥ अनन्तर लाल आँखवाले अञ्जनके समान काले रावण-पुत्रने छिपे-छिपे उन दोनों भाइयोंसे कहा ॥ १० ॥ युद्ध करनेके समय अदृश्य होनेपर मुझे देवराज इन्द्र भी नहीं देख सकते। तुम दोनों कौन होते हो? ॥ ११ ॥ कंकपत्रवाले बाणोंसे मैंने तुमलोगोंको बाँध दिया है। अभी क्रोध करके तुमलोगोंको जमराजके घरमें भेजता हूँ ॥ १२ ॥ धर्मज्ञ राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंसे ऐसा कहकर इन्द्रजित्ने उन्हें तीखे बाणोंसे मारा और प्रसन्न होकर गर्जन किया ॥ १३ ॥ अञ्जनके समान काले इन्द्रजित्ने विशाल धनु फैलाकर उस भयङ्कर युद्धमें भयङ्कर बाण पुनः छोड़े ॥ १४ ॥ मर्मको समझनेवाला वह वीर राम-लक्ष्मणके मर्मस्थानमें तीखे बाणोंसे बार-बार छेदकर प्रसन्न हुआ ॥ १५ ॥ नागपाशसे युद्धस्थलमें बँधे हुए वे दोनों वीर थोड़ी ही देरके बाद देखनेमें असमर्थ हो गये ॥ १६ ॥ राम और लक्ष्मण इन दोनोंके शरीर बाण और शल्यसे व्याप्त हो गये। इनके समस्त शरीर काँप-से गये। वे रज्जुमुक्त इन्द्रध्वजके समान दिखाई पड़ने लगे ॥ १७ ॥ दोनों वीर विचलित हो गये, मर्मके फटनेसे कृश हो गये, महाधनुर्धारी वे दोनों पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १८ ॥ रुधिरसे सने हुए वे दोनों वीर वीर-शयनपर सो गये। उनके समस्त शरीर बाणोंसे छिद गये थे। वे पीड़ित और दुखी हो गये ॥ १९ ॥ उनके शरीरमें एक अंगुल भी स्थान विना छिदा न रहा। अंगुलियाँ तक बाणोंसे विना छिदी न रहीं ॥ २० ॥ कामरूपी क्रूर राक्षसके द्वारा मारे गये उन दोनों वीरोंके शरीरसे रुधिर-

पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः । क्रोधादिन्द्रजिता येन पुरा शक्रो विनिर्जितः ॥२२॥
रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रै रजोगतिभिराशुगैः । नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥
विव्याध वत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा ॥२३॥
स वीरशयने शिश्ये विज्यमाविध्य कार्मुकम् । भिन्नमुष्टिपरीणाहं त्रिनतं रुक्मभूषितम् ॥२४॥
बाणपातान्तरे रामं पातितं पुरुषर्षभम् । स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीवितेऽभवत् ॥२५॥
रामं कमलपत्राक्षं शरण्यं रणतोषिणम् । शुशोच भ्रातरं दृष्ट्वा पतितं धरणीतले ॥२६॥
हरयश्चापि तं दृष्ट्वा संतापं परमं गताः । शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥२७॥
बद्धौ तु तौ वीरशये शयानौ ते वानराः संपरिवार्य तस्थुः ।
समागता वायुसुतप्रमुख्या विषादमार्ताः परमं च जग्मुः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः । ददृशुः संगतौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१॥
वृष्ट्वेवोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे । आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो विभीषणः ॥२॥
नीलश्च द्विविदो मैन्दः सुषेणः कुमुदोऽङ्गदः । तूर्णंहनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥३॥

की धार बहने लगी, जिस प्रकार सोतेसे तीव्र जलधारा बहती हो ॥ २१ ॥ बाणोंके द्वारा मर्ममें आहत होने से पहले रामचन्द्र गिरे, जिन्हें इन्द्रजितने क्रोधसे मारा था, जो इन्द्रको जीतनेवाला है ॥ २२ ॥ सोनेके पाँखवाले उत्तम मुँहवाले, शीघ्र चलनेवाले नाराच, अर्द्ध नाराच, भल्ल, अंजलिक, वत्सदन्त, सिंहदंष्ट्र, तथा क्षुर नामक बाणोंसे उसने उन दोनों वीरोंको मारा ॥ २३ ॥ वे क्रिया-रहित, धनुषको छोड़कर, वीरशयनपर सो गये । उनके धनुषका पकड़नेवाला स्थान शिथिल हो गया । वह तीन स्थानोंपर झुका हुआ था, तथा उसपर सोनेका काम किया हुआ था ॥ २४ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, रामचन्द्रको बाणोंपर पड़ा हुआ देखकर लक्ष्मणने जीनेकी आशा छोड़ दी ॥ २५ ॥ कमलपत्राक्ष, शरणागत-रक्षक, युद्धसे प्रसन्न होनेवाले रामचन्द्रको पृथिवीमें गिरा देखकर लक्ष्मण शोक करने लगे ॥ २६ ॥ रामचन्द्रको इस अवस्थामें देखकर वानर भी बहुत दुःखी हुए । शोक-पीड़ित होकर, आँखोंमें आँसू भरकर, घोर चीत्कार करने लगे ॥ २६ ॥ बँधे हुए, वीरशयनपर सोए हुए, उन दोनों वीरोंको घेरकर वानर खड़े हो गये ॥ २७ ॥ हनुमान आदि वानर भी वहाँ आए और दुखी होकर अत्यंत विषाद करने लगे ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पैतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

अनन्तर आकाश और पृथिवीको देखते हुए वानरोंने राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको बाणोंसे बिधा देखा ॥ १ ॥ पानी बरसाकर मेघके शान्त होनेके समान, राक्षसके अपना काम समाप्त करनेपर सुग्रीवके साथ विभीषण वहाँ आये ॥ २ ॥ हनुमानके साथ नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, अङ्गद,

अचेष्टौ मन्दनिःश्वासौ शोणितेन परिप्लुतौ । शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पगौ ॥४॥
निःश्वसन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ दीनविक्रमौ । रुधिरस्रावदिग्धाङ्गौ तपनीयाविव ध्वजौ ॥५॥
तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दचेष्टितौ । यूथपैः स्वैः परिवृतौ बाष्पव्याकुललोचनैः ॥६॥
राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमन्वितौ । बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥७॥
अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः । न चैनं मायया छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥८॥
तं तु मायाप्रतिच्छन्नं माययैव विभीषणः । वीक्षमाणो ददर्शाग्रे भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ॥
तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ९ ॥
ददर्शान्तर्हितं वीरं वरदानाद्विभीषणः । तेजसा यशसा चैव विक्रमेण च संयुतः ॥१०॥
इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च । उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥११॥
दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ । सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१२॥
नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् । सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥१३॥
यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम । अस्पृष्ट्वा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥१४॥
कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला । सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां शमितो मया ॥१५॥
रामस्य लक्ष्मणस्यैव सर्वेषां च वनौकसाम् । विक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरदि तोयदाः ॥१६॥
एवमुक्त्वा तु तान्सर्वान्राक्षसान्परिपश्यतः । यूथपानपि तान्सर्वांस्ताडयत्स च रावणिः ॥१७॥

राम-लक्ष्मणको चेष्टारहित बहुत धीमा साँस लेते, रुधिरसे सने, बाणोंसे बिंधे हुए, निश्चल और बाणोंकी शय्यापर पड़े देखकर शोक करने लगे ॥ ३, ४ ॥ वे दोनों साँपके समान साँस ले रहे थे, हाथ-पैर नहीं हिला सकते थे, पराक्रम मन्द पड़ गया था, शरीरसे निकले रुधिरसे भीग गये थे, अतएव वे सुवर्णध्वजाके समान मालूम पड़ते थे ॥ ५ ॥ वे दोनों वीर वीरशयनपर पड़े थे, उनकी चेष्टा मन्द पड़ गयी थी और अश्रुपूर्णनेत्र अपने सेनापतियोंसे वे घिरे हुए थे ॥ ६ ॥ बाणोंसे छिदे हुए राम-लक्ष्मण पृथिवीपर पड़े हुए हैं—यह देखकर विभीषणके साथ समस्त वानर दुःखी हुए ॥ ७ ॥ वानरोंने आकाशमें देखा, सब दिशाओंमें देखा, पर मायासे छिपे हुए रावणपुत्रको वे न देख सके ॥ ८ ॥ मायासे छिपे हुए सबसे अद्भुत काम करनेवाले तथा युद्धमें प्रतिद्वन्द्वितारहित अपने भतीजेको विभीषणने मायाके द्वाराही देखा ॥ ९ ॥ तेज, यश और विक्रमसे युक्त विभीषणने वरदानके प्रभावसे छिपे हुए वीर इन्द्रजितको देखा ॥ १० ॥ इन्द्रजित् अपना काम तथा उन दोनों वीरोंको सोते देखकर, प्रसन्न होकर और सब राक्षसोंको प्रसन्न करता हुआ बोला ॥ ११ ॥ दूषण और खरको मारनेवाले दोनों वीरोंको मेरे बाणोंने करीब-करीब मार डाला, यह तुम-लोग देखो ॥ १२ ॥ ऋषियोंका समूह तथा देवता और असुर आभी जाँय तो भी नागपाशके बन्धनसे इन्हें छुड़ा नहीं सकते ॥ १३ ॥ जिनके कारण चिन्तित होकर मेरे पिता दुःखी हो रहे हैं, और जिनके कारण विना सोये ही समूची रात वितानी पड़ती है, जिनके कारण यह लङ्का वर्षामें नदीके समान व्याकुल हो रही है, मैंने आज उस मूलनाश करनेवाले अनर्थको शान्त कर दिया ॥ १४, १५ ॥ राम-लक्ष्मण तथा समस्त वानरोंके पराक्रम व्यर्थ हो गये, जिस प्रकार शरत्कालके मेघ व्यर्थ होते हैं ॥ १६ ॥ उन सब राक्षसोंसे

नीलं नवभिराहत्य मैन्दं सद्विविदं तथा। त्रिभिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्तताप परमेषुभिः ॥१८॥
जाम्बवन्तं महेष्वासो विद्ध्वा बाणेन वक्षसि। हनूमतो वेगवतो विससर्ज शरान्दश ॥१९॥
गवाक्षं शरभं चैव तावप्यमितविक्रमौ। द्वाभ्यांद्वाभ्यांमहावेगो विव्याध युधि रावणिः ॥२०॥
गोलाङ्गूलेश्वरं चैव वालिपुत्रमथाङ्गदम्। विव्याध बहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोऽथ रावणिः ॥२१॥
तान्वानरवरान्भित्त्वा शरैरग्निशिखोपमैः। ननाद बलवांस्तत्र महासत्त्वः स रावणिः ॥२२॥
तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान्। प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥२३॥
शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ चमूमुखे। सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः ॥२४॥
एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः। परं विस्मयमापन्नाः कर्मणा तेन हर्षिताः ॥२५॥
विनेदुश्च महानादान्सर्वे ते जलदोपमाः। हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन् ॥२६॥
निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत ॥२७॥
हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिंजयः। प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥२८॥
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते। सर्वाणिचाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥२९॥
तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः। सबाष्पवदनं दीनं क्रोधव्याकुललोचनम् ॥
अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ॥ ३० ॥
एवंप्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः। सभाग्यशेषतास्माकं यदि वीर भविष्यति ॥३१॥

ऐसा कहकर वह उनके सामनेही वानरसेनापतियोंको मारने लगा ॥ १७ ॥ शत्रुओंको मारनेवाले उस राक्षसने नव बाणोंसे नीलको तथा मैन्द और द्विविदको तीन-तीन बाणोंसे मारकर दुःखी किया ॥ १८ ॥ महाधनुर्धारी इन्द्रजित्ने जाम्बवान्की छातीमें बाणोंसे मारा, शीघ्रगामी हनुमानपर भी उसने दस बाण छोड़े ॥ १९ ॥ महावेगवान् रावणपुत्रने अमितपराक्रमी गवाक्ष और शरभको भी दो-दो बाणोंसे मारकर व्यथित किया ॥ २० ॥ शीघ्रता करते हुए इन्द्रजित्ने गोलांगूलेश्वरको तथा अङ्गदको अनेक बाणोंसे मारा ॥ २१ ॥ महापराक्रमी रावणपुत्रने उन वानरोंको अग्निशिखाके समान बाणोंसे मारकर गर्जन किया ॥ २२ ॥ बाणोंसे उन वानरोंको पीड़ित तथा भयभीत करके वह हँसा और इस प्रकार बोला ॥ २३ ॥ कठोर बाणबन्धनसे मैंने इन दोनों भाइयोंको साथ ही रणभूमिमें बाँध दिया है, राक्षसों तुमलोग देखो ॥ २४ ॥ इन्द्रजित्के ऐसा कहनेपर छलसे युद्ध करनेवाले राक्षस बहुत विस्मित हुए और इस कामसे प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥ मेघके समान घोर गर्जन वे करने लगे और राम मारे गये यह जानकर इन्द्रजित्की पूजा करने लगे ॥ २६ ॥ राम और लक्ष्मण दोनों भाई पृथिवीमें निश्चेष्ट पड़े हैं, साँस नहीं चल रही है—यह देखकर इन्द्रजित्ने समझा कि ये मर गये ॥ २७ ॥ युद्धविजयी इन्द्रजित् प्रसन्न होकर समस्त राक्षसोंको प्रसन्न करता हुआ लंकामें गया ॥ २८ ॥ राम और लक्ष्मणके शरीर बाणोंसे विधे हुए हैं, उनके समस्त अङ्ग उपांङ्ग बाणोंसे विधे हुए हैं, यह देखकर सुग्रीव डर गये ॥ २९ ॥ कपिराज सुग्रीव डर गये हैं, मुँह आँसूसे भींग गया है, आँखें दुःखी और व्याकुल हो गयी हैं, यह देखकर विभीषण उनसे बोले—भय न करो, आँसू रोको ॥ ३० ॥ युद्धमें ऐसा होता ही है, युद्धमें विजय निश्चित नहीं रहती। यदि हमलोगोंका

मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ । पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ॥
सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥ ३२ ॥
एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना । सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः ॥३३॥
ततः सलिलमादाय विद्यया परिजप्य च । सुग्रीवनेत्रे धर्मात्मा प्रममार्ज विभीषणः ॥३४॥
विमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः । अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रान्तमिदं वचः ॥३५॥
न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमवलम्बितुम् । अतिस्नेहोऽपि कालेऽस्मिन्मरणायोपकल्पते ॥३६॥
तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् । हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्तय ॥३७॥
अथ वा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः । लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नौ व्यपनेष्यतः ॥३८॥
नैतत्किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति । नह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥३९॥
तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् । यावत्सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥४०॥
एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः । कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिसत्तम ॥४१॥
मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं संप्रहर्षितम् । त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ॥४२॥
समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः । विद्रुतं वानरानीकं तत्समाश्वासयत्पुनः ॥४३॥
इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः । विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ॥४४॥
तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः । आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥४५॥

भाग्य होगा, तो ये महाबली वीर अवश्य ही मोहका त्याग करेंगे अर्थात् होशमें आवेंगे, तुम अपनेको सँभालो और अनाथ मुझको सम्भालो, सत्यधर्ममें अनुराग रखनेवालेको मृत्युका भय नहीं रहता ॥ ३१, ३२ ॥ ऐसा कहकर जलसे भीगे हाथसे सुग्रीवके सुन्दर नेत्रोंको विभीषणने पोंछा ॥ ३३ ॥ अनन्तर धर्मात्मा विभीषणने जल लिया और मन्त्र जपकर सुग्रीवके नेत्रोंको पोंछा ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् वानरराजका मुँह पोंछकर विभीषण बिना घबड़ाहट के समयोचित ये वचन बोले ॥ ३५ ॥ कपिराज, यह समय घबड़ाने का नहीं है, इस समय अत्यन्त स्नेहसे भी मृत्यु हो सकती है ॥ ३६ ॥ सब कार्योंको नष्ट करनेवाली विक्लवताका त्याग करो और रामके अनुगामी सैनिकोंके कल्याणके उपाय सोचो ॥ ३७ ॥ जबतक रामचन्द्र को होश नहीं आता तबतक इनकी रक्षा करो, होशमें आनेपर ये दोनों हमलोगोंके भय दूर कर देंगे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रके लिए यह कोई बात नहीं है, ये मरेंगे नहीं, मरनेवालोंके लिए जो शोभा दुर्लभ है उसने रामचन्द्रको नहीं छोड़ा है, आगे भी नहीं छोड़ेगी ॥ ३९ ॥ तुम अपनेको सम्भालो, अपनी सेनाको सम्भालो, तबतक मैं समस्त सेनाको ठीक कर देता हूँ ॥ ४० ॥ वानरश्रेष्ठ ! ये वानर भयसे घबड़ा गये हैं, इनकी आँखे फूल गयी है, ये आपसमें कानोंमें कुछ कह रहे हैं ॥ ४१ ॥ मुझको दौड़ते देखकर, सेनाको प्रसन्न देखकर, वानर भयका त्याग करें, जिस प्रकार भोगी हुई माला छोड़ दी जाती है ॥ ४२ ॥ राक्षसराज विभीषणने सुग्रीवको समझाकर पुनः उस खड़बड़ायी हुई वानरीसेनाको समझाया ॥४३॥ महाछली इन्द्रजित् समस्त सेनाके साथ लंकानगरीमें गया और पुनः अपने पिताके पास पहुँचा ॥ ४४ ॥ पिताके पास जाकर हाथ जोड़कर उसने प्रणाम किया, पुनः राम-लक्ष्मणके मारे जानेका प्रिय संवाद उसने सुनाया ॥ ४५ ॥

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे । रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥४६॥
उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः । पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत् ॥
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ ४७ ॥
स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा श्रुत्वा गिरं तस्य महारथस्य ।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थं प्रहृष्टवाचाभिननन्द पुत्रम् ॥४८॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

———:०*०:———

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

तस्मिन्प्रविष्टे लङ्कायां कृतार्थे रावणात्मजे । राघवं परिवार्याथ ररक्षुर्वानरर्षभाः ॥१॥
हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः । गजो गवाक्षः पनसः सानुप्रस्थो महाहरिः ॥२॥
जाम्बवानृषभः सुन्दो रम्भः शतबलिः पृथुः । व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः ॥३॥
वीक्ष्यमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः । तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥४॥
रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् । आजुहाव ततः सीतारक्षणी राक्षसीस्तदा ॥५॥
राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात्तमुपस्थिताः । ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥६॥
हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥७॥

रावण प्रसन्न होकर उछल पड़ा, जब उसने सुना कि शत्रु मारे गये । उसने पुत्रका आलिंगन किया ॥ ४६ ॥ पुत्रका माथा सूँघकर, प्रसन्न होकर वह सब संवाद पूछने लगा । उसने पितासे वह सब कहा जैसा हुआ था, जिस प्रकार वे बाणसे बाँधे गये, निश्चेष्ट और निष्प्रभ बनाये गये ॥ ४७ ॥ उस महारथीकी बात सुनकर रावणकी आत्मा हर्षाधिक्यके कारण फूल गयी, रामचन्द्रके द्वारा उत्पन्न भयका उसने त्याग किया और प्रसन्न वाणीसे वह पुत्रकी प्रशंसा करने लगा ॥ ४८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

———*———

उस रावणपुत्रके कृतार्थ होकर लंकामें चले जानेपर वानरसेनापति रामचन्द्रको घेरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १ ॥ हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, सानुप्रस्थ, जाम्बवान्, ऋषभ, सुन्द, रम्भ, शतवलि पृथु येलोग सेनाकी मोर्चाबन्दी करके और वृक्ष लेकर सावधानीसे रक्षा करने लगे ॥ २, ३ ॥ वे वानर सब दिशाओं, नीचे ऊपर चारों ओर देखते थे, पत्ता खड़कनेपर भी उन्हें राक्षसका भ्रम होजाता था ॥ ४ ॥ रावणने भी प्रसन्न होकर अपने पुत्र इन्द्रजित्को विदा किया और सीताकी रक्षा करनेवाली राक्षसियोंको बुलाया ॥ ५ ॥ राक्षसियाँ तथा त्रिजटा रावणकी आज्ञासे उसके पास आयीं, राक्षसराज रावणने प्रसन्न होकर उन राक्षसियोंसे कहा ॥ ६ ॥ इन्द्रजित्ने रामलक्ष्मणको मार दिया—यह संवाद सीतासे कहो और पुष्पक विमानपर सीताको बैठाकर युद्धमें मरेहुए राम-लक्ष्मणको

यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठते । सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निहतो रणमूर्धनि ॥८॥
निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली । मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥९॥
अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम् । अवेक्ष्य विनिवृत्ता सा चान्यां गतिमपश्यती ॥
अनपेक्षा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम् ॥१०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः । राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम् ॥११॥
ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया । अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ॥१२॥
तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् । सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥१३॥
ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह । रावणश्चारयामास पताकाध्वजमालिनीम् ॥१४॥
प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः । राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥१५॥
विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजटया सह । ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥१६॥
प्रहृष्टमनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् । वानरांश्चातिदुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥१७॥
ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ । लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥१८॥
विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ । सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्बमयौ क्षितौ ॥१९॥
तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र प्रवीरौ पुरुषर्षभौ । शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमाराविव पावकी ॥२०॥
शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ । दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह ॥२१॥
भर्तारमनवद्याङ्गी लक्ष्मणं चासितेक्षणा । प्रेक्ष्य पांसुषु चेष्टन्तौ रुरोद जनकात्मजा ॥२२॥

दिखाओ ॥ ७ ॥ जिसके सहारे यह अकड़ी हुई थी और मेरे पास नहीं आती थी, उसका वह पति अपने भाई-के साथ युद्धमें मारा गया ॥ ८ ॥ अब जानकी निःशङ्क हो जाय, उद्वेग छोड़ दे और अयोध्या जानेकी आशा छोड़ दे । सब आभूषण पहनकर मेरे पास रहेगी ॥ ९ ॥ सीता, राम और लक्ष्मणको मरे हुए देखकर जब लौटेगी, उसे अपने लिए कोई दूसरा आश्रय नहीं देख पड़ेगा, तब वह विशालाक्षी निःशङ्क होकर मेरे पास आवेगी ॥ १० ॥ दुरात्मा रावणके ये वचन सुनकर राक्षसियोंने वैसा करना स्वीकार किया और वे वहाँसे पुष्पक विमानके पास गयीं ॥ ११ ॥ वे राक्षसियाँ रावणकी आज्ञासे पुष्पक लेकर अशोक-वाटिकामें सीताके पास आयीं ॥ १२ ॥ पतिशोकसे दुःखिनी सीताको लेकर उन राक्षसियोंने पुष्पक विमानपर बैठाया ॥ १३ ॥ त्रिजटाके साथ सीताको पुष्पक विमानपर बैठाकर ध्वजा-पताकाकी माला धारणकरनेवाली लंकामें उन्हें घुमाया ॥ १४ ॥ राक्षसेश्वर रावणने लंकामें यह घोषणा करवादी कि इन्द्रजित्ने राम और लक्ष्मणको युद्धमें मार डाला ॥ १५ ॥ त्रिजटाके साथ विमानपर जाकर सीताने भी देखा कि वानरोंकी सेना जमीनमें गिरा दी गई है ॥ १६ ॥ मांस खानेवाले राक्षसोंको उन्होंने प्रसन्न देखा, और राम-लक्ष्मणके पास बैठे हुए वानरोंको दुःखी देखा ॥ १७ ॥ सीताने देखा कि राम और लक्ष्मण बाणोंके बिछौनेपर सोये हुए हैं, वे बाणसे पीड़ित होकर बेहोश हैं ॥ १८ ॥ उनके कवच टूट गये हैं, धनुष अलग पड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ पुण्डरीकाक्ष वीर पुरुषश्रेष्ठ दोनों भाइयोंको सीताने वहाँ सोया देखा, मानो वे दोनों अग्निकुमार हों ॥ २० ॥ उस प्रकार बाणोंपर पड़े हुए पुरुषश्रेष्ठ दोनों वीरोंको देखकर

सबाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य तौ भ्रातरौ देवसुतप्रभावौ ।
वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा दुःखान्विता वाक्यमिदं जगाद ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥



अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् । विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥१॥
ऊचुर्लाक्षणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च । तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥२॥
यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः । तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥३॥
वीरपार्थिवपत्नीनां ये विदुर्भर्तृपूजिताम् । तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥४॥
ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम् । तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥५॥
इमानि खलु पद्मानि पादयोर्वै कुलस्त्रियः । आधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥६॥
वैधव्यं यान्ति यैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः । नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥७॥
सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणैः । तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे ॥८॥

सीता बहुत दुखी हुई और वे बहुत अधिक विलाप करने लगीं ॥ २१ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरी असितेक्षणा जानकी पतिको और लक्ष्मणको धूलिमें लोटते देखकर रोने लगीं ॥ २२ ॥ देवकुमारके समान प्रभाव रखनेवाले उन दोनों भाइयोंको देखकर सीता दुःखित हुईं, उनकी आँखे भर आयीं, उन दोनोंकी मृत्युकी आशंका करके वह दुःखसे इस प्रकार बोलीं ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥



पति मारे गये और महाबली लक्ष्मणभी मारे गये यह देखकर शोकपीड़ित सीता करुण विलाप करने लगीं ॥ १ ॥ सामुद्रिकवेत्ताओंनेने मुझे पुत्रवती और सधवा बतलाया था, आज रामचन्द्रके मारे जानेपर वे सब ज्ञानी असत्यवादी हो गये ॥ २ ॥ जिनलोगोंने अश्वमेध यज्ञ करनेवाले तथा सदा यज्ञ करनेवाले रामचन्द्रकी पटरानी मुझे बतलाया था, वे सब ज्ञानी आज रामचन्द्रके मारे जानेपर असत्यवादी हो गये ॥ ३ ॥ जिनलोगोंने वीर राजास्त्रियोंमें मुझे पतिके द्वारा प्रशंसित बतलाया था, वे सब ज्ञानी आज रामचन्द्रके मारे जानेपर असत्यवादी हो गये ॥ ४ ॥ जिन लक्षणज्ञ विद्वानोंने मेरे सामने मुझे भाग्यवती कहा था, वे ज्ञानी आज रामचन्द्रके मारे जानेपर असत्यवादी हो गये ॥ ५ ॥ जिन चिह्नोंके कारण कुलस्त्रियाँ राजापतिके साथ राज्यपर अभिषिक्त होती हैं वे चिह्न पैरोंमें कमलकी रेखा मेरे पैरमें वर्तमान हैं ॥ ६ ॥ जिन कुलक्षणोंसे हतभागिनी स्त्रियाँ विधवा होती हैं वे सब लक्षण मुझमें नहीं हैं। अपनेमें सुलक्षणोंको देखती हुई भी आज मैं अभागिनी हो गयी हूँ ॥ ७ ॥ लक्षण बतलानेवाले शास्त्रोंने स्त्रियोंके लिए कमलचिह्नको सत्य बतलाया है, वे निष्फल नहीं होते, पर आज रामचन्द्रके मारे जाने-

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम। वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥९॥
शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू समौ चितौ। अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम ॥१०॥
स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ मग्नचूचुकौ। मग्ना चोत्सेधनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम्॥११॥
मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च। प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥१२॥
समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत्। मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालाक्षणिका विदुः॥१३॥
आधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह। कृतान्तकुशलैरुक्तं तत्सर्वं वितथीकृतम् ॥१४॥
शोधयित्वा जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च। तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ ॥१५॥
ननु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च। अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यत ॥१६॥
अदृश्यमानेन रणे मायया वासवोपमौ। मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥१७॥
नहि दृष्टिपथं प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः। जीवन्प्रतिनिवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥१८॥
न कालस्यातिभारोस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः। यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपातितः ॥१९॥
न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्। नात्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम्॥२०॥
सा तु चिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम्। कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम् ॥२१॥

पर वे सब लक्षण असत्य हो गये ॥ ८ ॥ मेरे बाल पतले, बराबर और काले हैं, भौंएँ जुड़ी हुई नहीं हैं, दोनों जङ्घा गोल और बिना रोमके हैं, दाँत भी सटे हुए हैं, ॥ ९ ॥ आँखोंके पासवाले भाग, आँखें, हाथ, पैर, पैरके पीछेवाला ऊपरी भाग बराबर तथा क्रमसे ऊपरकी ओर उठे हुए हैं, नख चढ़ाव-उतराव हैं और अँगुलियाँ सटी हुई हैं ॥ १० ॥ मेरे दोनों स्तन सटे हुए हैं, मोटे हैं और उनका मुँह उभड़ा हुआ नहीं है। नाभि गहरी और उसके पासका भाग उठा हुआ है, दोनों बगल और छाती चढ़ाव-उतराव हैं ॥ ११ ॥ मेरा रङ्ग मणिके समान चमकीला है, शरीरके रोएँ कोमल हैं, पैरकी दस अँगुलियाँ और दोनों पैरोंकी तली ये बारहो जमीनमें अच्छीतरह सट जाती हैं। इसीसे लक्षणज्ञोंने मुझे शुभलक्षणा कहा है ॥ १२ ॥ मेरे हाथ-पैरोंमें जवकी समूची रेखा है और वे लाल हैं तथा मैं सदा मन्दस्मित करनेवाली हूँ, यह कन्यालक्षण जाननेवालोंने मेरे लिए कहा है ॥ १३ ॥ पतिके साथ मेरा राज्याभिषेक होगा, यह मुझे लक्षणज्ञ ब्राह्मणों-ने बतलाया है, वह सब निष्फल हुआ ॥ १४ ॥ उन्होंने जनस्थानके दुष्टोंको मारकर उसे शुद्ध किया, हनुमानको भेजकर मेरा पता लगाया, अक्षोभ्य समुद्रको पार किया, पर वे दोनों वीर गोष्पदमें अर्थात् थोड़ीसे सेनासे मारे गये ॥ १५ ॥ वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य तथा ब्रह्मशिर अस्त्रोंका राम और लक्ष्मणने क्यों नहीं प्रयोग किया, वे तो इन अस्त्रोंको जानते हैं ॥ १६ ॥ मुझ अनाथाके स्वामी इन्द्र-तुल्य राम और लक्ष्मण छिपकर मायाके द्वारा मारे गये हैं ॥ १७ ॥ युद्धमें रामचन्द्रके सामने आया हुआ शत्रु, चाहे वह मनके समान शीघ्रगामी ही क्यों न हो, जीता लौट नहीं सकता ॥ १८ ॥ कालके लिए कुछ कठिन नहीं है, भाग्यको जीतना बड़ा कठिन है, जिस रामचन्द्र भाईके साथ युद्धमें गिरकर सो रहे हैं ॥ १९ ॥ मैं महारथ राम-लक्ष्मणके लिए उतना सोच नहीं करती, अपने लिए तथा अपनी माताके लिए भी वैसा शोक नहीं करती, जैसा कि विचारी अपनी सासके लिए ॥ २० ॥ वे विचारी तो यही सोचती होंगी

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत् । मा विषादं कृथा देवि भर्तारं तव जीवति ॥२२॥
कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च । यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२३॥
नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च । भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥२४॥
इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः । दिव्यं त्वां धारयेन्नेदं यद्येतौ गतजीवितौ ॥२५॥
हतवीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा । सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥२६॥
इयं पुनरसंभ्रान्ता निरुद्विग्ना तपस्विनी । सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ ॥२७॥
सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः । अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद्ब्रवीमि ते ॥२८॥
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्यामि मैथिलि । चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम ॥२९॥
नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः । तादृशं दर्शनं दृष्ट्वा मया चोदीरितं तव ॥३०॥
इदं तु सुमहच्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि । विसंज्ञौ पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥३१॥
प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् । दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥३२॥
त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे । रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥३३॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा । कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली ॥३४॥

कि कब समय पूरा होगा और कब आए हुए राम-लक्ष्मण तथा सीताको देखूँगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार विलाप करती हुई सीतासे त्रिजटा बोली—देवि ! शोक मत करो, तुम्हारे पति जीवित हैं ॥२२॥ मैं आपसे वे मजबूत तथा उचित कारण बतलाती हूँ जिससे मालूम होगा कि ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण जीते हैं ॥ २३ ॥ युद्धमें स्वामीके मारे जानेपर योद्धाओंका मुख क्रोधयुक्त नहीं होता और न उनमें हर्षकी उत्सुकता ही होती है। यहाँ ये बातें हैं, इससे ये जीते हैं ॥ २४ ॥ यह दिव्य विमान है, इसका नाम पुष्पक है, यदि ये मर गये होते तो ये तुमको कभी न ले चलता ॥ २५ ॥ प्रधान वीरके मारे जानेपर सेना उत्साहहीन हो जाती है, उसको कोई काम ही नहीं रहता, कर्णधारके मारे जानेसे जैसे नौका जलमें इधर-उधर डोला करती है उसी प्रकार सेना भी ॥२६॥ इस सेनामें बिल्कुल घबराहट नहीं है, उद्वेग भी नहीं है, यह सेना राम और लक्ष्मणकी रक्षा कर रही है, यह बात मैंने तुमसे प्रेमके कारण कही है ॥ २७ ॥ अब तुम निश्चन्त हो जाओ, भावी सुखके चिह्न दिखायी पड़ते हैं, जीवित राम और लक्ष्मणको देखो। मैं यह स्नेहसे तुमसे कह रही हूँ ॥२८॥ जानकि, मैंने तुमसे पहले भी झूठ नहीं कहा है, आगे भी नहीं कहूँगी। तुम्हारे पातिव्रत्यसे मुझे सुख होता है, इस कारण मेरे मनमें तुम्हारा स्थान हो गया है ॥ २९ ॥ इन दोनोंको इन्द्रसहित देवता तथा असुर भी नहीं जीत सकते। इनके जीवनके लक्षण देखकर ही तुमसे वैसा कहा है ॥ ३० ॥ मैथिलि, यह देखो, यह कितने आश्चर्यकी बात है कि ये बाणोंके लगनेसे बेहोश तो हो गये हैं, पर इनकी शोभा नहीं जाती, वह ज्यों-की-त्यों बनी हुई है ॥ ३१ ॥ प्रायः जिनकी आयु पूरी हो जाती है अथवा जो मर जाते हैं, उनकी कान्ति विकृत हो जाती है, देखनेमें वह बुरा मालूम होता है ॥ ३२ ॥ जनकपुत्रि, राम लक्ष्मणके लिए शोक न करो, दुःख और मोहका त्याग करो, मृतकोंकी ऐसी अवस्था नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥ देवकन्यातुल्य सीताने त्रिजटाके ये वचन सुने, उसने हाथ जोड़कर कहा कि तुम जैसा कहती हो वैसा ही हो ॥३४॥

विमानं पुष्पकं तत्तु संनिवर्त्य मनोजवम् । दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥३५॥
ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा । अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥३६॥
प्रविश्य सीता बहुवृक्षखण्डां तां राक्षसेन्द्रस्य विहारभूमिम् ।
संप्रेक्ष्य संचिन्त्य च राजपुत्रौ परं विषादं समुपाजगाम ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ । निःश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥१॥
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवमहाबलाः । परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् । स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः संदानितोऽपि सन् ॥३॥
ततो दृष्ट्वा सरुधिरं निषण्णं गाढमर्पितम् । भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः ॥४॥
किं नु मे सीतया कार्यं लब्धया जीवितेन वा । शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥५॥
शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता । न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः सांपरायिकः ॥६॥
परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान्वानराणां तु पश्यताम् । यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥७॥
किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् । कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥८॥

मनके समान चलनेवाले पुष्पक विमानको लौटाकर त्रिजटा सीताको लङ्कामें ले आयी ॥ ३५ ॥ सीता त्रिजटाके साथ पुष्पक विमानसे उतरीं, राक्षसियाँ उन्हें अशोकवाटिकामें ले गयीं ॥ ३६ ॥ सीता रावणकी विहारभूमिमें गयीं, जहाँ वृक्षोंके अनेक समूह थे, राम लक्ष्मणको देखकर तथा उनके विषयमें सोचकर वह बहुत दुःखित हुईं ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका युद्धकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त । ४८ ॥

दसरथपुत्र राम और लक्ष्मण भयानक नागपाशसे बँधे हुए हैं । रुधिरसे सने हुए वे सो रहे हैं और सर्पके समान साँस ले रहे हैं ॥ १ ॥ उन दोनों महात्माओंको सुग्रीवके साथ सभी वानर शोकसे पीड़ित होकर घेरे हुए थे ॥ २ ॥ बाणोंसे बिंधे हुए होनेपर भी पराक्रमी राम इसी समय दृढ़ता तथा अपने बलके कारण होशमें आये ॥ ३ ॥ उन्होंने भाई लक्ष्मणको खूनसे लथपथ देखा, वे बाणोंसे बिंधे हुए पड़े हैं, उनका मुँह सूखा है, उन्हें देखकर रामचन्द्र विलाप करने लगे ॥ ४ ॥ यदि सीता मिलीं भी तो उससे मुझे क्या लाभ, मेरा जीता रहना भी व्यर्थ है, जो मैं आज युद्धमें पराजित अपने भाईको सोता हुआ देख रहा हूँ ॥ ५ ॥ संसारमें ढूँढ़नेसे सीताके समान स्त्री मिल सकती है, पर लक्ष्मणके समान भाई सलाहकार तथा युद्धमें सहायक मिलना असम्भव है ॥६॥ सुमित्राके आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मण यदि मर गये तो मैं वानरोंके सामनेही अपना प्राण-त्याग करूँगा ॥ ७ ॥ पुत्रको देखनेकी इच्छा रखनेवाली माता कौशल्यासे, केकयीसे

विवत्सां वेपमानां च वेपन्तीं कुररीमिव । कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना ॥९॥
कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् । मया सह वनं यातो विना तेनाहमागतः ॥१०॥
उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुमम्बां सुमित्रया । इहैव देहं त्यक्ष्यामि नहि जीवितुमुत्सहे ॥११॥
धिङ्मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं मत्कृते ह्यसौ । लक्ष्मणः पातितः शेते शरतल्पे गतासुवत् ॥१२॥
त्वं नित्यं सुविषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण । गतासुर्नाद्य शक्तोऽसि मामार्तमभिभाषितुम् ॥१३॥
येनाद्य बहवो युद्धे निहता राक्षसाः क्षितौ । तस्यामेवाद्य शूरस्त्वं शेषे विनिहतः शरैः ॥१४॥
शयानः शरतल्पेऽस्मिन्सशोणितपरिस्तृतः । शरभूतस्ततो भासि भास्करोऽस्तमिव व्रजन् ॥१५॥
बाणाभिहतमर्मत्वान्न शक्नोषीह भाषितुम् । रुजा चाब्रुवतो यस्य दृष्टिरागेण सूच्यते ॥१६॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः । अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥१७॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः । इमामद्य गतोऽवस्थां ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥१८॥
सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे । परुषं विप्रियं चापि श्रावितं तु कदाचन ॥१९॥
विससर्जैकवेगेन पञ्च बाणशतानि यः । इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्च लक्ष्मणः ॥२०॥
अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मनः । सोऽयमुर्व्यां हतः शेते महार्हशयनोचितः ॥२१॥
तत्तु मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः । यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः ॥२२॥

और सुमित्रासे मैं क्या कहूँगा ॥ ८ ॥ यदि मैं लक्ष्मणके विना अयोध्या लौटूँगा, तो पुत्रहीना काँपती हुई सुमित्राको, कुररीके समान काँपती हुई कौशल्या आदि माताओंको कैसे समझाऊँगा ॥ ९ ॥ लक्ष्मण मेरे साथ वन गये थे और मैं उनके विना लौट आया हूँ, इसका कारण मैं शत्रुघ्नको तथा यशस्वी भरतको क्या बतलाऊँगा ॥ १० ॥ माता सुमित्राका उलहना मैं सह नहीं सकता, इसलिए मैं जीना नहीं चाहता, मैं यहीं शरीरत्याग करूँगा ॥११॥ पापी निन्दित कर्म करनेवाले मुझको धिक्कार ! मेरे ही कारण लक्ष्मण मृतकके समान बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ १२ ॥ लक्ष्मण, जब मैं दुःखी होता था तब तुम मुझे समझाया करते थे, इस समय तुम निष्प्राण हो गये हो, इस समय दुःखी मुझसे तुम बात भी नहीं कर सकते ॥ १३ ॥ जिस युद्धभूमिमें तुमने बहुतसे राक्षसोंको मारा है उसी भूमिमें, वीर ! तुम बाणोंसे मारे जाकर सो रहे हो ॥ १४ ॥ रुधिरसे लथपथ होकर तुम बाणशय्यापर सो रहे हो, बाणोंसे ढँके हुए तुम अस्तगामी सूर्यके समान मालूम होते हो ॥ १५ ॥ बाणोंसे तुम्हारे मर्ममें आघात लगा है, इससे तुम बोल नहीं सकते । तुम्हारी पीड़ा लाल आँखोंसे मालूम पड़ती है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार वन जाते समय तुमने मेरा अनुगमन किया था, वैसे ही परलोक जाते हुए तुम्हारा मैं अनुगमन करूँगा ॥ १७ ॥ तुम अपने बांधवोंसे प्रेम करते थे और मेरा अनुगमन करते थे, मुझ पापीके पापोंसे तुम्हारी यह अवस्था हो गयी है ॥ १८ ॥ क्रोध करनेपर भी वीर लक्ष्मणने मुझे कोई कठोर बात कही हो, यह मुझे स्मरण नहीं है ॥ १९ ॥ एक प्रयत्नसे लक्ष्मण पाँच सौ बाण छोड़ते थे, अतएव बाणविद्यामें वे उस कार्तवीर्यसे भी श्रेष्ठ थे ॥ २० ॥ जो अपने अस्त्रोंसे महात्मा इन्द्रके अस्त्रोंको भी नष्ट कर सकता था और जो बहुमूल्य बिछौनेपर सोनेका अभ्यासी है, वही आज पृथिवीपर सो रहा है ॥ २१ ॥ विभीषणको राक्षसोंका राजा बनाऊँगा, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की थी, पर

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमिवार्हसि। सत्त्वहीनं मया राजन्रावणोऽभिभविष्यति ॥२३॥
अङ्गदं तु पुरस्कृत्य ससैन्यं सपरिच्छदम्। सागरं तर सुग्रीव नीलेन च नलेन च ॥२४॥
कृतं हि सुमहत्कर्म यदन्यैर्दुष्करं रणे। ऋक्षराजेन तुष्यामि गोलाङ्गूलाधिपेन च ॥२५॥
अङ्गदेन कृतं कर्म मैन्देन द्विविदेन च। युद्धं केसरिणा संख्ये घोरं संपातिना कृतम् ॥२६॥
गवयेन गवाक्षेण शरभेण गजेन च। अन्यैश्च हरिभिर्युद्धं दुर्धरं त्यक्तजीवितैः ॥२७॥
न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः। यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा वा परं मम ॥२८॥
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवता धर्मभीरुणा। मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ॥२९॥
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ। शुश्रुवुस्तस्य ये सर्वे वानराः परिदेवितम् ॥
वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः ॥३०॥
ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः। आजगाम गदापाणिस्त्वरितं यत्र राघवः ॥३१॥
तं दृष्ट्वा त्वरितं यान्तं नीलाञ्जनचयोपमम्। वानरा दुद्रुवुः सर्वे मन्यमानास्तु रावणिम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

अथोवाच महातेजा हरिराजो महाबलः। किमियं व्यथिता सेना मूढवातेव नौर्जले ॥ १ ॥

वैसा न कर सका, यह मिथ्या प्रतिज्ञा अवश्य ही मुझको जलावेगी ॥ २२ ॥ सुग्रीव, आप इसी समय लौट जाँय, क्योंकि मेरे साथ बलहीन हो गये हो, अब रावण तुमको भी पराजित कर देगा ॥ २३ ॥ अङ्गदको आगे करके सेना, साथियों, नील और नलके साथ आप समुद्रपार करें ॥ २४ ॥ युद्धमें जो काम दूसरोंके लिए असम्भव है वह काम आपलोगोंने किया। मैं ऋक्षराज तथा गोलाङ्गूलादिपर प्रसन्न हूँ ॥ २५ ॥ अङ्गदने, मैन्द और द्विविदने जो काम किये हैं, केसरिने और सम्पातिने जैसा युद्ध किया है, उससे मैं प्रसन्न हूँ ॥ २६ ॥ गवय, गवाक्ष, शरभ और गजने तथा अन्य वानरोंने प्राणोंका मोह छोड़कर जैसा युद्ध किया है, उससे मैं प्रसन्न हूँ ॥ २७ ॥ पर सुग्रीव, भाग्यका लंघन करना मनुष्यके लिए असम्भव है, पर जो हो सकता था, वह सुन्दर हृदयवाले मित्र होकर तुमने किया ॥ २८ ॥ धर्मभीरु सुग्रीव, आपने वह सब किया, वानरश्रेष्ठो आपलोगोंने मित्रका कार्य किया ॥ २९ ॥ मैं आपलोगोंको आज्ञा देता हूँ आप जहाँ चाहें जा सकते हैं। जिन वानरोंने रामचन्द्रका यह विलाप सुना, वे अपनी पीली आँखोंसे आँसू बहाने लगे ॥ ३० ॥ अनन्तर विभीषण समस्त सेनाको यथास्थान ठहराकर, हाथमें गदा लेकर जहाँ रामचन्द्र थे, वहाँ आये ॥ ३१ ॥ अंजनराशिके समान काले और शीघ्रतापूर्वक आतेहुए विभीषणको देखकर वानर भागने लगे, उन लोगोंने समझा कि इन्द्रजित आ रहा है ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

अनन्तर महातेजस्वी महाबली वानरराज सुग्रीवने पूछा कि, किस कारण यह सेना वायुके झोंकेमें

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् । न त्वं पश्यसि रामं च लक्ष्मणं च महारथम् ॥ २ ॥
शरजालाचितौ वीरावुभौ दशरथात्मजौ । शरतल्पे महात्मानौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ ३ ॥
अथाब्रवीद्वानरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गदम् । नानिमित्तमिदं मन्ये भवितव्यं भयेन तु ॥ ४ ॥
विषण्णवदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिशः । पलायन्तेऽत्र हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥
अन्योन्यस्य न लज्जन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठतः । विप्रकर्षन्ति चान्योन्यं पतितं लङ्घयन्ति च ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्विभीषणः । सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च जयाशिषा ॥ ७ ॥
विभीषणं च सुग्रीवो दृष्ट्वा वानरभीषणम् । ऋक्षराजं महात्मानं समीपस्थमुवाच ह ॥ ८ ॥
विभीषणोऽयं संप्राप्तो यं दृष्ट्वा वानरर्षभाः । द्रवन्त्यागतसंत्रासा रावणात्मजशङ्कया ॥ ९ ॥
शीघ्रमेतान्सुसंत्रस्तान्बहुधा विप्रधावितान् । पर्यवस्थापयाख्याहि विभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥
सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानृक्षपार्थिवः । वानरान्सान्त्वयामास संनिवर्त्य प्रधावतः ॥ ११ ॥
ते निवृत्ताः पुनः सर्वे वानरास्त्यक्तसाध्वसाः । ऋक्षराजवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १२ ॥
विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् । लक्ष्मणस्य तु धर्मात्मा बभूव व्यथितस्तदा ॥ १३ ॥
जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे विमृज्य च । शोकसंपीडितमना रुरोद विललाप च ॥ १४ ॥
इमौ तौ सत्त्वसंपन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ । इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥ १५ ॥
भ्रातृपुत्रेण चैतेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना । राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या वञ्चितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

पड़ी हुई नौकाके समान व्यथित हो रही है ॥ १ ॥ सुग्रीवके वचन सुनकर वालिपुत्र अङ्गद बोले—महारथी राम और लक्ष्मणको क्या तुम नहीं देख रहे हो ॥ २ ॥ इनके शरीर बाणजालसे व्याप्त हो गये हैं। दशरथके पुत्र दोनों वीर रुधिरसे लथपथ होकर बाणशय्यापर सोये हुए हैं ॥ ३ ॥ वानरराज सुग्रीव पुत्र अङ्गदसे बोले कि बिना कारणके यह नहीं हो सकता, सम्भव है इसका कारण भय हो ॥ ४ ॥ ये वानर दुःखी हो गये हैं. इन्होंने अस्त्र-शस्त्र छोड़ दिया है, भयसे इनकी आँखें फूल आयी हैं, ये भागे जारहे हैं ॥५॥ ये परस्पर लज्जित भी नहीं होते, पीछेकी ओर नहीं देखते, एक दूसरेको परस्पर खींच रहे हैं। इसी समय वीर विभीषणने हाथमें गदा लेकर सुग्रीव और रामचन्द्रकी जय तथा आशीर्वादसे संवर्धित किया ॥ ७ ॥ वानरोंको भयभीत करनेवाले विभीषणको देखकर सुग्रीव समीपस्थ महात्मा ऋक्षराजसे बोले ॥ ८ ॥ ये विभीषण आये, जिनको देखकर, रावणपुत्रकी शङ्कासे, अत्यन्त भयभीत होकर वानर भाग चले थे ॥ ९ ॥ डरे तथा इधर-उधर भागकर जानेवाले वानरोंको समझाओ और कहो कि विभीषण आये हैं ॥ १० ॥ सुग्रीवके ऐसा कहनेपर ऋक्षराज जाम्बवानने भागे हुए वानरोंको लौटाकर समझाया ॥ ११ ॥ ऋक्षराजके वचन सुनकर तथा विभीषणको देखकर वानरोंकी घबड़ाहट दूर हुई और वे लौट आये ॥ १२ ॥ विभीषणने रामचन्द्र और लक्ष्मणके शरीरोंको बाणोंसे बिधा देखा, जिससे वे बहुत दुःखी हुए ॥ १३ ॥ जलसे भींगे हाथसे उन्होंने उन दोनोंकी आँखें पोंछी। पुनः वे शोकसन्तप्त होकर रोने और विलाप करने लगे ॥ १४ ॥ ये बली, पराक्रमी और युद्धसे प्रेम रखनेवाले, छलसे युद्ध करनेवाले राक्षसोंके द्वारा ऐसी दशा भोग रहे हैं ॥ १५ ॥ कुपुत्र—दुरात्मा भतीजेने कुटिल राक्षसी बुद्धिसे छलहीन पराक्रमवाले इन वीरोंको ठग लिया

शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ । वसुधायामिमौ सुप्तौ दृश्येते शल्यकाविव ॥१७॥
ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया । ताविमौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ ॥१८॥
जीवन्नद्य विपन्नोऽस्मि नष्टराज्यमनोरथः । प्राप्तप्रतिज्ञश्च रिपुः सकामो रावणः कृतः ॥१९॥
एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम् । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥२०॥
राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्कायां नेह संशयः । रावणः सह पुत्रेण स्वकामं नेह लप्स्यते ॥२१॥
गरुडाधिष्ठितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ । त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥२२॥
तमेवं सान्त्वयित्वा तु समाश्वास्य तु राक्षसम् । सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह ॥२३॥
सह शूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिंदमौ । गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ ॥२४॥
अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम् । मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम् ॥२५॥
श्रुत्वैतद्वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत् । देवासुरं महायुद्धमनुभूतं पुरातनम् ॥२६॥
तदा स्म दानवा देवाञ्शरसंस्पर्शकोविदान । निजघ्नुः शस्त्रविदुषश्छादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥२७॥
तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च गतासूंश्च बृहस्पतिः । विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥२८॥
तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् । जवेन वानराः शीघ्रं संपातिपनसादयः ॥२९॥
हरयस्तु विजानन्ति पार्वती ते महौषधी । संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥३०॥
चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे । अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥३१॥

है ॥ १६ ॥ बाणोंसे ये बहुत बिंध गये हैं। रुधिरसे सने हुए हैं, ये पृथिवीमें पड़े हुए शल्यकके समान मालूम पड़ते हैं ॥ १७ ॥ जिनके पराक्रमके सहारे मैंने प्रतिष्ठा मान चाहा था, वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ शरीरको नष्ट करनेके लिए सो रहे हैं ॥ १८ ॥ आज जीता हुआ भी मैं मृतके समान हूँ। राज्यके साथ मेरा मनोरथ भी नष्ट हो गया। सीताको न लौटानेकी, शत्रुकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। रावण सफलमनोरथ हुआ ॥ १६ ॥ इस प्रकार विलाप करते हुए, विभीषणको आलिंगन करते हुए, सत्वराज सुग्रीवने ऐसा कहा ॥ २० ॥ धर्मज्ञ ! इस लङ्काका राज्य तुम पाओगे इसमें सन्देह नहीं, रावण अपने पुत्रके साथ लङ्कामें अपना मनोरथ न पा सकेगा ॥२१॥ राम और लक्ष्मण होशमें आकर और गरुड़पर चढ़कर समस्त साथियोंके साथ युद्धमें रावणको मारेंगे ॥ २२ ॥ विभीषणको इस प्रकार समझा-बुझाकर सुग्रीव पास खड़े हुए श्वसुर सुषेणसे बोले ॥ २३ ॥ होश आनेपर शत्रुतापी राम और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको लेकर वीर वानरोंके साथ आप किष्किंधा चले जाँय ॥ २४ ॥ मैं पुत्रों और बांधवोंके साथ रावणको मारकर जानकीको लाऊँगा, जिस प्रकार इन्द्र खोई हुई लक्ष्मीको लाये थे ॥ २५ ॥ वानरेन्द्रके ये वचन सुनकर सुषेण बोले—देवासुर महायुद्ध हुआ था, जिसका मुझे पुराना अनुभव है ॥ २६ ॥ उस समय दानव लक्ष्यवेधमें चतुर, शस्त्रविद्याके जानकार, देवताओंको बार-बार छिपकर मारते थे ॥ २७ ॥ देवता पीड़ित हो जाते थे, बेहोश हो जाते थे, और मर जाते थे। बृहस्पति मंत्रयुक्त विद्याओं तथा औषधियोंसे उनकी चिकित्सा करते थे ॥ २८ ॥ उन औषधियोंको लानेके लिए सम्पाति और पनस आदि वानर शीघ्रही वेगपूर्वक क्षीरसमुद्र जाँय ॥२९॥ देवताओंके द्वारा बनाई, अतएव दिव्य संजीवकरणी और विशल्या औषधियोंको जो पर्वतोंपर होती हैं, ये वानर जानते हैं ॥३०॥ उत्तम

तौ तत्र विहितौ देवैः पर्वतौ तौ महोदधौ । अयं वायुसुतो राजन्हनूमांस्तत्र गच्छतु ॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मेघाश्चापि सविद्युतः । पर्यस्य सागरे तोयं कम्पयन्निव पर्वतान् ॥३३॥
महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः । निपेतुर्भग्नविटपाः सलिले लवणाम्भसि ॥३४॥
अभवन्पन्नगास्त्रस्ता भोगिनस्तत्रवासिनः । शीघ्रं सर्वाणि यादांसि जग्मुश्च लवणार्णवम् ॥३५॥
ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् । वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥३६॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः । यैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः ॥३७॥
ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च । विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥३८॥
वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः । सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥३९॥
तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः । प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः ॥४०॥
तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ । उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥४१॥
भवत्प्रसादाद्व्यसनं रावणिप्रभवं महत् । उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ॥४२॥
यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् । यथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥४३॥
को भवान्रूपसंपन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः । वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥४४॥
तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः । पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥४५॥
अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः । गरुत्मानिह संप्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥४६॥

क्षीरसमुद्रमें चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वत हैं, जहाँ अमृत मथा गया था, वहीं वे ओषधियाँ होती हैं ॥ ३१ ॥ देवताओंने उन दोनों पर्वतोंको वहीं समुद्रमें रख दिया है, वहाँ ओषध ले आनेके लिए ये वायुपुत्र हनुमान जाँय ॥ ३२ ॥ इसी समय, समुद्रके जलको उछालता हुआ, पर्वतोंको कँपाता हुआ, वायु तथा विद्युत्युक्त मेघ दिखाई पड़े ॥ ३३ ॥ पाँखकी जोरदार हवासे द्वीपोंके बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियाँ टूटकर लवणसमुद्रमें गिर पड़ीं ॥ ३४ ॥ सुन्दर शरीरवाले सर्प भयभीत हो गये, जो मलय पर्वतके पास रहते थे । जलजन्तु डरकर शीघ्रही लवणसमुद्रमें चले गये ॥ ३५ ॥ थोड़ीही देरमें वानरोंने विनतापुत्र गरुड़को जलते हुए अग्निके समान देखा ॥ ३६ ॥ गरुड़को आया देखकर वे सर्प भाग गये, जो महाबलवान बाण बनकर राम और लक्ष्मणको बाँधे हुए थे ॥ ३७ ॥ गरुड़ने राम-लक्ष्मणको छूआ, उन्हें अभिनन्दित किया और हाथोंसे उनके चन्द्रसमान मुखोंका स्पर्श किया ॥ ३८ ॥ गरुड़के छूनेसे उनके घाव शीघ्रही भर गये । उन दोनोंके शरीर शीघ्रही सुन्दर हो गये ॥ ३९ ॥ तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, सूक्ष्म विषयोंकी समझ, विवेक, स्मृति ये सब दूनी हो गयीं ॥ ४० ॥ गरुड़ने इन्द्रतुल्य उन दोनोंको उठाकर उनका आलिङ्गन किया । रामचन्द्र प्रसन्न होकर गरुड़से बोले ॥ ४१ ॥ रावणपुत्रसे उत्पन्न बहुतबड़े सङ्कटको आपकी कृपासे हमलोगोंने पार किया है और उपाय करके आपने हमलोगोंको बलवान् भी बना दिया है ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार पिता दशरथको और पितामह अजको पाकर मेरा हृदय प्रसन्न होता है, उसी प्रकार आपको पाकर भी वह प्रसन्न हुआ है ॥ ४३ ॥ सुन्दररूपधारी, दिव्य माला और अनुलेपन धारण करनेवाले, शुद्ध वस्त्र तथा दिव्याभरणोंसे भूषित आप कौन हैं ? ॥ ४४ ॥ महाबली, महातेजस्वी, पक्षिराज गरुड़ प्रसन्न

असुरा वा महावीर्या वानरा वा महाबलाः । सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥४७॥
नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् । मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥४८॥
एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्बणाः । रक्षोमायाप्रभावेण शरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥४९॥
सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥५०॥
इमं श्रुत्वा तु विक्रान्तस्त्वरमाणोऽहमागतः । सहसैवावयोः स्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥५१॥
मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात् । अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥५२॥
प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः । शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥५३॥
तन्न विश्वसनीयं वो राक्षसानां रणाजिरे । एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥५४॥
एवमुक्त्वा तदा रामं सुपर्णः स महाबलः । परिष्वज्य च सुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥५५॥
सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल । अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम् ॥५६॥
न च कौतूहलं कार्यं सखित्वंप्रतिकांक्षिणाः । कृतकर्मा रणे वीर सखित्वं प्रतिवेत्स्यसि ॥५७॥
बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः । रावणं तु रिपुं हत्वा सीतां त्वमुपलप्स्यसे ॥५८॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः । रामं च नीरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥५९॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् । जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥६०॥

होकर हर्षके कारण मुकलित आँखोंवाले रामचन्द्रसे बोले, ॥ ४५ ॥ काकुत्स्थ, बहिश्चर प्राणोंके समान मैं आपका मित्र हूँ, मैं गरुड़ आपलोगोंकी सहायता करनेके लिए आया हूँ ॥४६॥ महाबली असुर, महाबली वानर और गन्धर्वसहित देवता, इन्द्रको साथ लेकर भी, इस कठोर बन्धनको नहीं छुड़ा सकते थे, क्रूर इन्द्रजित्‌ने मायाके बलसे जिस बन्धनमें आपको बाँधा था ॥ ४७—४८ ॥ ये सर्प कद्रुके पुत्र हैं, इनके तीखे दाँत हैं, बड़े जहरीले हैं, मायाके बलसे बाण होकर आपके पास आये थे ॥ ४९ ॥ सत्यपराक्रमी धर्मज्ञ राम ! तुम भाग्यवान् हो । युद्धमें शत्रुघाती इन्द्रजित्‌ने भाई लक्ष्मणके साथ तुम्हारी यह दशा की है, यह वृत्तान्त सुनकर और हम दोनोंकी मित्रताका पालन करनेके लिए शीघ्रतापूर्वक मैं यहाँ आया ॥ ५०—५१ ॥ भयङ्कर उस नागपाशसे मैंने आपलोगोंको छुड़ा दिया । अब आप दोनोंको सदा सावधान रहना चाहिए ॥ ५२ ॥ राक्षस स्वभावसे ही कपटयुद्ध करनेवाले होते हैं । आपके समान शुद्ध स्वभाववाले वीरोंका बल, सरलता ही है, ॥ ५३ ॥ इस कारण युद्धमें आपलोग राक्षसोंका कभी विश्वास न करें । उदाहरणके लिए यही इन्द्रजित्‌ही है । राक्षस बड़े कुटिल होते हैं ॥ ५४ ॥ महाबली गरुड़ने रामचन्द्रसे ऐसा कहकर, उनका आलिङ्गन करके, विनयपूर्वक जानेकी आज्ञा चाही ॥ ५५ ॥ मित्र रामचन्द्र आप धर्मात्मा और शत्रुओंके भी प्रिय हैं, मैं जानेकी आज्ञा चाहता हूँ, और मैं इच्छानुसार जाना चाहता हूँ ॥ ५६ ॥ वीर ! युद्धमें सफल होनेपर तुम मेरी मित्रता जान सकोगे । इस समय मित्रता जाननेके लिए तुम्हें कुतूहल न करना चाहिए ॥ ५७ ॥ बाणकी लहरियोंसे लङ्काको बालवृद्धावशेष करके, अर्थात् बाल-वृद्धोंको छोड़ और सबको मारकर, शत्रु रावणको मारकर तुम सीताको पाओगे ॥ ५८ ॥ शीघ्र चलनेवाले वीर्यवान् गरुड़ ऐसा कहकर वानरोंके सामने रामको निरोग करके, उनकी प्रदक्षिणा तथा आलिङ्गन करके, आकाशमें उड़कर चले, जैसे

नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः । सिंहनादं तदा नेदुर्लाङ्गूलं दुधुवुश्च ते ॥६१॥
ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यवादयन् । दध्मुः शङ्खान्संप्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम् ॥६२॥
अपरे स्फोटय विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः । द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः ॥६३॥
विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् । लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्युद्धकामाः प्लवंगमाः ॥६४॥
तेषां सुभीमस्तुमुलो निनादो वभूव शाखामृगयूथपानाम् ।
क्षये निदाघस्य यथा घनानां नादः सुभीमो नदतां निशीथे ॥६५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥५०॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् । नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥ १ ॥
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा तं निनदं भृशम् । सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
यथासौ संप्रहृष्टानां वानराणामुपस्थितः । वहूनां सुमहान्नादो मेघानामिव गर्जताम् ॥ ३ ॥
सुव्यक्तं महती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः । तथा हि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे लवणार्णवः ॥ ४ ॥
तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥ ५ ॥
एवं च वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः । उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥ ६ ॥
ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम् । शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥

पवन चलता है ॥ ५९—६० ॥ वानरसेनापति, राम और लक्ष्मणको निरोग देखकर, सिंहनाद करने लगे, तथा पूँछ पटकने लगे ॥ ६१ ॥ अनन्तर, उन लोगोंने भेरी, मृदङ्ग बजाए, शङ्ख फूँके और प्रसन्न होकर वे क्रीड़ा करने लगे ॥ ६२ ॥ पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले पराक्रमी वानर पूँछ पटककर सैकड़ों हजारों अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर खड़े हो गये ॥ ६३ ॥ वे घोर गर्जन करने लगे। राक्षसोंको भयभीत करते हुए लङ्काके द्वारपर युद्ध करनेके लिए गये ॥ ६४ ॥ वानर सेनापतियोंका वह गर्जन बड़ाही भयङ्कर हुआ, जिस प्रकार गर्मी बीतनेपर आधी रातको गर्जनेवाले मेघोंका शब्द भयङ्कर होता है ॥ ६५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥



महापराक्रमी उछलते-कूदते वानरोंका वह तुमुल शब्द राक्षसोंके साथ रावणने सुना ॥ १ ॥ बारबार होनेवाले इस स्निग्ध और गम्भीर शब्दको सुनकर अपने मन्त्रियोंके बीच रावण बोला, ॥ २ ॥ प्रसन्न वानरोंका मेघगर्जनके समान यह महान शब्द सुनाई पड़ता है ॥३॥ इससे स्पष्ट है, वानरोंको कोई बड़ी प्रसन्नता हुई है, उनके इस घोर गर्जनसे लवणसमुद्र क्षुभित हो गया है ॥ ४ ॥ राम-लक्ष्मण वे दोनों भाई तीखे बाणोंके द्वारा बँधे हुए हैं और वानरोंका यह घोर गर्जन हो रहा है, इससे मेरे मनमें शंका उत्पन्न हो रही है ॥ ५ ॥ राक्षसेश्वर रावण मन्त्रियोंसे ऐसा कहकर, समीपस्थ राक्षसोंसे बोला ॥ ६ ॥ शीघ्र जाकर

तथोक्तास्ते सुसंभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य च । ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥ ८ ॥
तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ । समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः ॥ ९ ॥
संत्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते । विवर्णा राक्षसा घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥१०॥
तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः । कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥११॥
यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥१२॥
विमुक्तौ शरबन्धेन दृश्येते तौ रणाजिरे । पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः । चिन्तारोषसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥१४॥
घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः । अमोघैः सूर्यसंकाशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥१५॥
तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम । संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥१६॥
निष्फलाः खलु संवृत्ताः शराः पावकतेजसः । आदत्तं यैस्तु संग्रामे रिपूणां जीवितं मम ॥१७॥
एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा । अब्रवीद्रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥१८॥
बलेन महता युक्तो राक्षसैर्भीमविक्रमः । त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥१९॥
एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता । परिक्रम्य ततः शीघ्रं निर्जगाम नृपालयात् ॥२०॥
अभिनिष्क्रम्य तद्द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह । त्वरयस्व बलं शीघ्रं किं चिरेण युयुत्सतः ॥२१॥

तुमलोग जानो कि इस शोकके समय इन वानरोंके हर्षका क्या कारण उपस्थित हुआ है ॥ ७ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर शीघ्रही चारदिवारीपर चढ़कर उनलोगोंने महात्मा सुग्रीवके द्वारा पालित सेनाको देखा ॥८॥ राम और लक्ष्मण उस भयङ्कर नागपाशसे मुक्त हो गये हैं, वे दोनों बलयुक्त हो गए हैं, यह देखकर समस्त राक्षस दुःखी हुए ॥ ९ ॥ डर गये और चारदिवारीसे उतरकर वे भयानक राक्षस दुःखी होकर रावणके पास गये ॥ १० ॥ बोलनेमें चतुर उन राक्षसोंने दीनतापूर्वक वह समस्त अप्रिय सम्वाद सुनाए ॥ ११ ॥ इन्द्रजित्‌ने जिन राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नागपाशसे बाँधकर हाथ चलानेमें असमर्थ बना दिया था, वे गजेन्द्रके समान पराक्रमी दोनों बन्धनसे मुक्त होकर रणांगणमें दिखाई पड़ते हैं, जिस प्रकार हाथी बन्धनसे छूटता है ॥ १२, १३ ॥ उन राक्षसोंके वचन सुनकर महाबली रावण चिन्तित और क्रोधित हुआ । उसका मुँह उतर गया ॥ १४ ॥ इन्द्रजित्‌ने युद्धमें बलपूर्वक सूर्यके समान प्रकाशमान अमोघ सर्पसदृश वरमें प्राप्त हुए भयानक बाणोंसे उन दोनोंको बाँधा था ॥ १५ ॥ उस अस्त्रबन्धनसे यदि मेरे दोनों शत्रु मुक्त हो गये हैं तब मैं अपनी समस्त सेनाको संशयास्पद देखता हूँ । अर्थात् इनकी खैर दिखाई नहीं पड़ती ॥१६॥ अग्निके समान तेज वे बाण निष्फल हो गये, जिन बाणोंने युद्धमें मेरे शत्रुओंके प्राण लिये हैं ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर क्रोधसे सर्पके समान साँस छोड़ता हुआ रावण राक्षसोंके बीचमें धूम्राक्ष नामके राक्षससे बोला ॥ १८ ॥ भीमविक्रम तुम बड़ी सेना लेकर वानरोंसहित रामचन्द्रका वध करनेके लिए निकल पड़ो ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् राक्षसराजके ऐसा कहनेपर धूम्राक्षने उनकी परिक्रमा की और शीघ्रही निकल आया ॥ २० ॥ उस द्वारसे निकलकर वह सेनाध्यक्षके पास गया । उसने कहा कि सेनाको शीघ्र तयार करो । विलम्ब क्यों करते हो, क्योंकि मैं युद्ध करना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः । बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया भृशम् ॥२२॥
ते बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः । विनर्दमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥२३॥
विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः । गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरायसैर्मुसलैरपि ॥२४॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः । निर्ययू राक्षसा घोरा नर्दन्तो जलदा यथा ॥२५॥
रथैः कवचिनस्त्वन्ये ध्वजैश्च समलंकृतैः । सुवर्णजालविहितैः खरैश्च विविधाननैः ॥२६॥
हयैः परमशीघ्रैश्च गजैश्चैव मदोत्कटैः । निर्ययुर्नैरृतव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥२७॥
मृगसिंहमुखैर्युक्तं खरैः कनकभूषितैः । आरुरोह रथं दिव्यं धूम्राक्षः खरनिःस्वनः ॥२८॥
स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः । हसन्वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्र तिष्ठति ॥२९॥
रथप्रवरमास्थाय खरयुक्तं खरस्वनम् । प्रयान्तं तु महाघोरं राक्षसं भीमदर्शनम् ॥३०॥
अन्तरिक्षगताः क्रूराः शकुनाः प्रत्यषेधयन् । रथशीर्षे महाभीमो गृध्रश्च निपपात ह ॥३१॥
ध्वजाग्रे ग्रथिताश्चैव निपेतुः कुणपाशनाः । रुधिरार्द्रो महाञ्श्वेतः कबन्धः पतितो भुवि ॥३२॥
विस्वरं चोत्सृजन्नादान्धूम्राक्षस्य निपातितः । ववर्ष रुधिरं देवः संचचाल च मेदिनी ॥३३॥
प्रतिलोमं ववौ वायुर्निर्घातसमनिःस्वनः । तिमिरौघावृतास्तत्र दिशश्च न चकाशिरे ॥३४॥
स तूत्पातांस्ततो दृष्ट्वा राक्षसानां भयावहान् । प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ॥
मुमुहू राक्षसाः सर्वे धूम्राक्षस्य पुरःसराः ॥३५॥

धूम्राक्षके वचन सुनकर सेनाध्यक्षने रावणकी आज्ञासे सेना तयार की ॥ २२ ॥ भयानक रूपवाले बलवान् निशाचर घण्टा बाँधकर गर्जते हुए प्रसन्न होकर धूम्राक्षके चारोंओर खड़े हो गये ॥२३॥ अनेक प्रकारके अस्त्र लेकर शूल मुद्गर, गदा, पट्टिश, दण्ड, आयस, मुशल, परिघ, भिन्दिपाल, भाला, पाश, परशु लेकर मेघके समान गरजते हुए भयङ्कर राक्षस निकले ॥२४,२५॥ कई राक्षस कवच पहनकर रथोंपर निकले, जिनमें ध्वजाएँ लगी थीं, सुवर्णजालसे जो शोभित था तथा अनेक प्रकारके मुँहवाले गदहे रथमें जुते थे ॥ २६ ॥ व्याघ्रके समान भयंकर कई राक्षस शीघ्र चलनेवाले घोड़ों तथा मतवाले हाथियोंपर चले ॥ २७ ॥ गदहेके समान स्वरवाला धूम्राक्ष दिव्य रथपर चढ़ा, जिसमें सुवर्णभूषित सिंह और वृकके समान मुखवाले गदहे जुते थे ॥ २८ ॥ महाबली धूम्राक्ष राक्षसोंके साथ हँसता हुआ पश्चिम द्वारसे निकला, जहाँ हनुमान घेरा डालेहुए थे ॥ २९ ॥ गदहेके उत्तम रथपर बैठे हुए, गदहेके समान बोलनेवाले, देखनेमें भयानक तथा महाभयानक राक्षसके जानेके समय आकाशमें क्रूरपक्षी बोलने लगे तथा रथके ऊपर बड़ाभारी गीध गिरपड़ा ॥३०,३१॥ ध्वजाके ऊपर एकमें गुँथकर गीध गिरे। रुधिरसे भींगा हुआ सफेद धड़ पृथिवी पर गिरा ॥ ३२ ॥ वह धड़ धूम्राक्षके सामने डरानेवाला शब्द बोलकर गिर पड़ा, मेघ रुधिर बरसाने लगे, पृथिवी काँपने लगी ॥३३॥ मेघोंके टक्करके समान शब्द करता हुआ प्रतिकूल वायु बहने लगा। अन्धकारसे भर जानेके कारण दिशाएँ प्रकाशित न हुईं ॥ ३४ ॥ राक्षसोंके लिए भयदायक उत्पन्न हुए भयंकर इन उत्पातोंको देखकर धूम्राक्ष व्यथित हुआ, धूम्राक्षके आगे चलनेवाले राक्षस विक्षिप्त-से हो गये ॥ ३५ ॥ उस भयंकर बलवान

ततः सुभीमो बहुभिर्निशाचरैर्वृतोऽभिनिष्क्रम्य रणोत्सुको बली ।
ददर्श तां राघवबाहुपालितां महौघकल्पां बहुवानरीं चमूम् ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् । विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥
तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम् । अन्योन्यं पादपैर्घोरैर्निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥ २ ॥
राक्षसैर्वानरा घोरा विनिकृत्ताः समन्ततः । वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमिसमीकृताः ॥ ३ ॥
राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः । विव्यधुर्घोरसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४ ॥
ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः । घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संश्रितैः ॥ ५ ॥
विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः । अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ६ ॥
शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः । जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलाश्च हरियूथपाः ॥ ७ ॥
ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः । ममन्थू राक्षसान्वीरान्नामानि च बभाषिरे ॥ ८ ॥
तद्बभूवाद्भुतं घोरं युद्धं वानररक्षसाम् । शिलाभिर्विविधाभिश्च बहुशाखैश्च पादपैः ॥ ९ ॥
राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः । ववमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ॥१०॥
पार्श्वेषु दारिताः केचित्केचिद्राशीकृता द्रुमैः । शिलाभिश्चूर्णिताः केचित्केचिद्दन्तैर्विदारिताः ॥११॥

युद्ध करनेके लिये उत्सुक राक्षसने अनेक राक्षसोंके साथ निकलकर रामचन्द्रके बाहुबलसे पालित, बड़ी धारा के समान, उस सेनाको देखा ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥



भीमविक्रम धूम्राक्षराक्षसको निकलते देखकर युद्ध चाहनेवाले प्रसन्न वानर गर्जन करने लगे ॥१॥ उन वानरों और राक्षसोंका तुमुल युद्ध प्रारम्भ हुआ। वानर वृक्षोंसे और राक्षस शूल, मुद्गरसे मारने लगे ॥ २ ॥ राक्षसोंने वानरोंको मारा, वानरोंने राक्षसोंको वृक्षोंसे कुचलकर पृथिवीके बराबर कर दिया ॥ ३ ॥ क्रोध करके राक्षसोंने सीधा चलनेवाले भयंकर कंकपत्रबाणोंसे वानरोंको छेदा ॥ ४ ॥ भयङ्कर गदा, पट्टिश, कपटमुद्गर, घोरपरिघ, त्रिशूल आदिसे क्रोधके कारण उत्साहित होकर राक्षसोंने वानरोंको मारा और निर्भय होकर उनलोगोंने अद्भुत काम किये ॥ ५, ६ ॥ वानरोंके शरीर बाणों और शूलोंसे छिद गये, तब वानर-सेनापतियोंने वृक्षों और पत्थरोंको उठाया ॥ ७ ॥ भीमवेग वानरोंने गर्जन करते हुए वीर राक्षसोंको क्षुभित किया और उनलोगोंने अपने नामोंकी घोषणा की ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके पत्थरों और शाखावाले वृक्षोंसे वानर और राक्षसका वह युद्ध बहुत ही अद्भुत और भयानक हुआ ॥ ९ ॥ निर्भय वानरोंके द्वारा बहुतसे राक्षस मथ डाले गये, जिससे रुधिर खानेवाले राक्षस रुधिर उगलने लगे ॥ १० ॥ बहुतसे राक्षसोंका बगल फाड़ दिया गया, कई वृक्षोंके द्वारा ढेर कर दिये गये, कई पत्थरोंसे चूर किये गये और बहुतसे दाँतोंसे काटे

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खड्गैश्च विनिपातितैः। रथैर्विध्वंसिताः केचिद्व्यथिता रजनीचराः ॥१२॥
गजेन्द्रैः पर्वताकारैः पर्वताग्रैर्वनौकसाम्। मथितैर्वाजिभिः कीर्णं सारोहैर्वसुधातलम् ॥१३॥
वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्योत्प्लुत्य वेगितैः। राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिदारिताः ॥१४॥
विषण्णवदना भूयो विप्रकीर्णशिरोरुहाः। मूढाः शोणितगन्धेन निपेतुर्धरणीतले ॥१५॥
अन्ये तु परमक्रुद्धा राक्षसा भीमविक्रमाः। तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥१६॥
वानरैः पातयन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः। मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः ॥१७॥
सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः। रोषेण कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम् ॥१८॥
प्रासैः प्रमथिताः केचिद्वानराः शोणितस्रवाः। मुद्गरैराहताः केचित्पतिता धरणीतले ॥१९॥
परिघैर्मथिताः केचद्भिन्दिपालैश्च दारिताः। पट्टिशैर्मथिताः केचिद्विह्वलन्तो गतासवः ॥२०॥
केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः। केचिद्विद्राविता नष्टाः संक्रुद्धै राक्षसैर्युधि ॥२१॥
विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन शायिताः। विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥२२॥
तत्सुभीमं महद्युद्धं हरिराक्षससंकुलम्। प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादपसंकुलम् ॥२३॥
धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम्। मन्द्रस्तनितगीतं तद्युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥२४॥
धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि। हसन्विद्रावयामास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥२५॥
धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः। अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥२६॥

गये ॥ ११ ॥ बहुतसे राक्षसोंकी ध्वजाएँ तोड़ दी गयीं। तलवारें तोड़ दी गयीं और रथ तोड़ दिया गया, जिससे वे दुःखी हुए ॥ १२ ॥ वानरोंने पर्वतोंके द्वारा, पर्वतके समान ऊँचे हाथियों तथा उनके सवारों, घोड़ों और उनके सवारोंको मार डाला और उनसे युद्धभूमि भर गयी ॥ १३ ॥ भीमपराक्रमी वानरोंने वेगसे कूद-कूदकर नखोंके द्वारा सब राक्षसोंके मुख फाड़ डाले ॥१४॥ राक्षसोंके मुँह उतर गये, उनके बाल बिखर गये और रुधिरकी गंधसे मूर्छित होकर वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १५ ॥ अन्य राक्षस क्रोधकरके भीमविक्रमसे वज्रके समान हाथोंको ही अस्त्र बनाकर वानरोंकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ वेगवान राक्षसोंको अति वेगवान वानरोंने मुक्कों, लातों और दाँतोंसे गिरा दिया, तथा वे वृक्षोंसे मार डाले गये ॥१७॥ सेनाको भागते देखकर राक्षस-सेनापति धूम्राक्ष युद्ध करनेवाले वानरोंको मारने लगा ॥ १८ ॥ बहुतसे वानर भालोंसे मारे गये और उनके शरीरसे रुधिर निकलने लगा। बहुतसे मुद्गरसे मारकर पृथिवीपर गिरा दिये गये ॥ १९ ॥ कुछ वानर परिघ-से मथे गये, कई भिन्दिपालसे चीर डाले गये, कई पट्टिशसे व्यथित किये गये, अतएव विह्वल होकर वे मर गये ॥ २० ॥ कई वानर आहत होकर रुधिरसे लथपथ पृथिवीपर गिर पड़े, क्रुद्ध राक्षसोंके द्वारा कई भगा दिये गये ॥ २१ ॥ कइयोंकी छाती फाड़ डाली गयी, जिससे वे एक बगलसे सो गये। कई त्रिशूलसे फाड़े गये, जिससे उनकी आँत बाहर निकल आयी ॥ २२ ॥ वानरों और राक्षसोंका वह महायुद्ध बड़ा ही भयानक हुआ। शस्त्रों, पत्थरों और वृक्षोंका खूब उपयोग हुआ ॥ २३ ॥ वह युद्ध गांधर्वयुद्धके समान, अर्थात् गानेवालोंके युद्धके समान हुआ। धनुषकी ज्या सितारके स्थानपर बज रही थी, घोड़ोंका हिनहिनाना तालके समान मालूम पड़ता था, हाथियोंका गर्जनही गीतके स्थानपर था ॥ २४ ॥ धनुष लेकर धूम्राक्षने हँसकरके बाणवृष्टिके द्वारा वानरोंको युद्धभूमिसे भगा दिया ॥ २५ ॥ धूम्राक्षके द्वारा पीड़ित और मारे गये सैनिकों-

क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः । शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥२७॥
आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात् । रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥२८॥
सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि । सचक्रकूबरमुखं सध्वजं सशरासनम् ॥२९॥
स त्यक्त्वा तु रथं तस्य हनूमान्मारुतात्मजः । रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥३०॥
विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसा रुधिरोक्षिताः । द्रुमैः प्रमथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणीतले ॥३१॥
विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनूमान्मारुतात्मजः । गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥३२॥
तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् । विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥३३॥
तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम् । पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ॥३४॥
ताडितः स तया तत्र गदया भीमवेगया । स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ॥३५॥
धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् । स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ॥३६॥
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः । धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचरा ॥
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवंगमैः ॥३७॥

स तु पवनसुतो निहत्य शत्रून्क्षतजवहाः सरितश्च संविकीर्य ।
रिपुवधजनितश्रमो महात्मा मुदमगमत्कपिभिः सुपूज्यमानः ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

को देखकर हनुमान क्रोधकरके तथा बड़ा पत्थर लेकर आये ॥ २६ ॥ क्रोधके कारण हनुमानकी आँखें दूनी लाल हो गयीं । पिताके समान पराक्रमी हनुमानने धूम्राक्षके रथपर वह पत्थर गिरा दिया ॥ २७ ॥ पत्थरको आते देखकर घबड़ाहटके साथ धूम्राक्षने गदा ली और वह रथसे कूदकर पृथिवीपर आकर खड़ा हो गया ॥२८॥ वह पत्थर रथको तोड़कर पृथिवीपर आ गया । रथकी ध्वजा, उसपर रखा हुआ धनुष, पहिए, धुरे आदि टूट गये ॥२९॥ वायुपुत्र हनुमान उसके रथको छोड़कर डालवाले वृक्षोंसे राक्षसोंको मारने लगे ॥३०॥ राक्षसोंके सिर फूट गये, रुधिर बहने लगे । बहुतसे राक्षस वृक्षके आघातसे व्यथित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३१ ॥ वायुपुत्र हनुमान राक्षसी सेनाको भगाकर तथा पर्वतका शिखर लेकर धूम्राक्षकी ओर दौड़े ॥ ३२ ॥ हनुमानको अपनी ओर आते देखकर पराक्रमी धूम्राक्ष गदा लेकर गर्जन करता हुआ हनुमानकी ओर चला ॥ ३३ ॥ क्रुद्ध हनुमानके मस्तकपर धूम्राक्षने वह कटीली गदा क्रोधसे मारी ॥ ३४ ॥ भीमवेगवाली उस गदासे ताड़ित होकर वायुके समान बलवान हनुमानने उस आघातकी ओर ध्यान न दिया और उन्होंने धूम्राक्षके माथेपर एक बड़ा पत्थर गिरा दिया । उस पत्थरसे मारेजानेके कारण धूम्राक्ष का समस्त शरीर चूर-चूर हो गया ॥ ३५, ३६ ॥ वह शीघ्रही पृथिवीपर गिर पड़ा । धूम्राक्षके मारेजानेपर बचे हुए राक्षस डरकर लंकामें चले गये, क्योंकि वानर उन्हें मार रहे थे ॥ ३७ ॥ वायुपुत्र हनुमान शत्रुओंको मारकर रुधिरकी नदियाँ बहाकर बहुत प्रसन्न हुए । वानरोंने उनकी प्रशंसा की । शत्रुके मारनेके परिश्रमसे वे थक गये ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

:o*o:

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः। क्रोधेन महताविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १ ॥
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः। अब्रवीद्राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ २ ॥
गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः। जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ ३ ॥
तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः। निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥
नागैरश्वैः खरैरुष्ट्रैः संयुक्तः सुसमाहितः। पताकाध्वजचित्रैश्च बहुभिः समलंकृतः ॥ ५ ॥
ततो विचित्रकेयूरमुकुटेन विभूषितः। तनुत्रं च समावृत्य सधनुर्निर्ययौ द्रुतम् ॥ ६ ॥
पताकालंकृतं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषितम्। रथं प्रदक्षिणं कृत्वा समारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥
ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैः श्लक्ष्णैश्च मुसलैरपि। भिन्दिपालैश्च चापैश्च शक्तिभिः पट्टिशैरपि ॥ ८ ॥
खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परश्वधैः। पदातयश्च निर्यान्ति विविधाः शस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥
विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः। गजा मदोत्कटाः शूराश्चलन्त इव पर्वताः ॥१०॥
ते युद्धकुशला रूढास्तोमराङ्कुशपाणिभिः। अन्ये लक्षणसंयुक्ताः शूरारूढा महाबलाः ॥११॥
तद्राक्षसबलं सर्वं विप्रस्थितमशोभत। प्रावृट्काले यथा मेघा नर्दमानाः सविद्युतः ॥१२॥
निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः। तेषां निष्क्रममाणानामशुभं समजायत ॥१३॥
आकाशाद्विघनात्तीव्रादुल्मुका न्यपतंस्तदा। वमन्तः पावकज्वालाः शिवा घोरा ववाशिरे ॥१४॥
व्याहरन्त मृगा घोरा रक्षसां निधनं तदा। समापतन्तो योधास्तु प्रास्खलंस्तत्र दारुणम् ॥१५॥

धूम्राक्षका मारा जाना सुनकर राक्षसेश्वर रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और वह सर्पके समान श्वास लेने लगा ॥ १ ॥ गरम-गरम लम्बी साँस लेकर क्रोधके कारण कुम्हलाया हुआ रावण महाबली क्रूर वज्रदंष्ट्र राक्षससे बोला ॥ २ ॥ वीर! जाओ, राक्षसोंके साथ निकल पड़ो, वानरोंके साथ दशरथपुत्र राम तथा सुग्रीवको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणकी आज्ञा स्वीकार कर मायावी वह राक्षसराज बहुत बड़ी सेनाके साथ निकला ॥ ४ ॥ हाथियों, घोड़ों, गदहों और ऊँटोंको लेकर, जिनपर ध्वजा-पताकाएँ थीं, वह राक्षस निकला ॥ ५ ॥ अनन्तर अद्भुत मुकुट, बाजूबन्द पहनकर तथा कवचसे शरीरको आच्छादित कर धनुष लेकर वह राक्षस शीघ्र निकला ॥ ६ ॥ वह सेनापति पताकासे अलंकृत उज्ज्वल, सुवर्णसे भूषित रथकी प्रदक्षिणा करके उसपर बैठा ॥७॥ उसके साथ अनेक पैदल सिपाही चले, जो ऋष्टि, तोमर, अच्छे मुसल, भिन्दिपाल, धनुष, शक्ति, पट्टिश, खड्ग चक्र, गदा, तीक्ष्ण परशु आदि अस्त्र-शस्त्र लिए हुए थे ॥ ९ ॥ वे राक्षस अद्भुत वस्त्र पहने हुए थे, सभी क्रुद्ध थे। मतवाले हाथी भी चले, जो पर्वतोंके समान ऊँचे थे ॥ १० ॥ तोमर अंकुश आदि धारण करनेवाले वीर उन युद्धनिपुण हाथियोंपर चढ़े हुए थे। सुलक्षण घोड़े भी चले, जिनपर बलवान वीर बैठे थे ॥ ११ ॥ वह राक्षसी सेना प्रस्थानके समय ऐसी शोभित हुई मानो वर्षाकालमें विद्युत-युक्त गर्जते हुए मेघ शोभित होते हैं ॥ १२ ॥ यह सेना दक्षिण द्वारसे निकली, जहाँ सेनापति अङ्गद थे। निकलनेके समय उसको भी अशुभसूचना हुई ॥ १३ ॥ आकाश मेघहीन था, उससे अङ्गारे गिरे, सियारिन आगकी ज्वाला उगलती हुई रोने लगीं ॥ १४ ॥ क्रूर पशु राक्षसोंकी मृत्युकी घोषणा करने लगे

एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रो महाबलः। धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी निर्जगाम रणोत्सुकः ॥१६॥
तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः। प्रणेदुः सुमहानादान्दिशः शब्देन पूरयन् ॥१७॥
ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह। घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥१८॥
निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः। रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतन्धरणीतले ॥१९॥
केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघबाहवः। चिक्षिपुर्विविधाञ्शस्त्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥२०॥
द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निःस्वनः। श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः ॥२१॥
रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि घोरवत्। शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः ॥२२॥
केचिदस्त्राणि संत्यज्य बाहुयुद्धमकुर्वत। तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि ॥२३॥
जानुभिश्च हताः केचिद्भग्नदेहाश्च राक्षसाः। शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥२४॥
वज्रदंष्ट्रोऽथ तं दृष्ट्वा रणे वित्रासयन्हरीन्। चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥२५॥
बलवन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे। जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥२६॥
जघ्ने तान्राक्षसान्सर्वान्धृष्टो वायुसुतो रणे। क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः ॥२७॥
तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान्। अङ्गदः क्रोधताम्राक्षः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥२८॥
चकार कदनं घोरं शक्रतुल्यपराक्रमः। अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः ॥२९॥

और वे योधाओंके पास आये और वहाँ आकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १५ ॥ इन उत्पातचिह्नोंको देखकर महाबली तेजस्वी वज्रदंष्ट्र धैर्य धारण करते हुए चला, क्योंकि वह युद्धके लिए उत्सुक था ॥ १६ ॥ उनको अपनी ओर आते देखकर वानरोंने घोर गर्जन किया, जिससे दिशाएँ भर गयीं ॥ १७ ॥ अनन्तर राक्षसों और वानरोंका भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हुआ, वे एक दूसरेका वध चाहते थे और वे देखनेमें भी भयङ्कर थे ॥ १८ ॥ महोत्साही वानर और राक्षस शरीर तथा मस्तकके कट जानेसे पृथिवीपर गिरने लगे। उनके समस्त शरीर रुधिरसे भींग गये थे ॥ १९ ॥ परिघ धारण करनेवाले वे वीर आमने-सामने होकर अनेक प्रकारके अस्त्र चलाने लगे। उनमें कोई भी युद्धसे मुड़ना नहीं चाहता था ॥ २० ॥ वृक्षों, पत्थरों तथा शस्त्रोंका बहुत बड़ा भयंकर शब्द हो रहा था, जिससे हृदय काँप जाता था ॥२१॥ रथोंके पहिएके शब्द, धनुष, शङ्ख, भेरी और मृदङ्ग इनके शब्दोंके मिलनेसे वहाँ बड़ा कोलाहल हुआ ॥ २२ ॥ कई अस्त्र छोड़कर बाहुयुद्ध करने लगे, कई थप्पड़ों, लातों, वृक्षों और मुक्कोंसे युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ युद्धदुर्मद वानरोंके द्वारा कई राक्षस घुटनोंसे मारे गये, कइयोंका शरीर टूट गया और कई पत्थरोंसे चूर कर दिये गये ॥ २४ ॥ अपनी सेनाका विनाश देखकर वज्रदंष्ट्र वानरोंको भयभीत करनेके लिए विचरण करने लगा, जिस प्रकार पाशधारी यमराज लोकसंहारके लिए विचरण करते हैं ॥ २५ ॥ बलवान्, अस्त्रविद्या जाननेवाले, अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करके क्रोध करके राक्षस वानरसैनिकोंको मारने लगे ॥ २६ ॥ वालिपुत्र अङ्गद दूना क्रोध करके निर्भय होकर उन राक्षसोंका संहार करने लगे, जिस प्रकार प्रलयकालमें अग्नि प्राणियोंका संहार करती है ॥ २७ ॥ उन समस्त राक्षसोंको वीर्यवान अङ्गद, जिनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयी थीं, वृक्ष उठाकर मारने लगे, जिस प्रकार सिंह छोटे पशुओंको मारता है ॥ २८ ॥ इन्द्रतुल्य पराक्रमी अङ्गदने

विभिन्नशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पादपाः । रथैश्चित्रैर्ध्वजैरश्वैः शरीरैर्हरिरक्षसाम् ॥३०॥
रुधिरौघेण संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा । हारकेयूरवस्त्रैश्च छत्रैश्च समलंकृता ॥३१॥
भूमिर्भाति रणे तत्र शारदीव यथा निशा । अङ्गदस्य च वेगेन तद्राक्षसबलं महत् ॥
प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥



चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

स्वबलस्य च घातेन अङ्गदस्य बलेन च । राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ १ ॥
विस्फार्य च धनुर्घोरं शक्राशनिसमप्रभम् । वानराणामनीकानि प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥
राक्षसाश्चापि मुख्यास्ते रथैश्च समवस्थिताः । नानाप्रहरणाः शूराः प्रायुध्यन्त तदा रणे ॥ ३ ॥
वानराणां च शूरास्तु ते सर्वे प्लवगर्षभाः । अयुध्यन्त शिलाहस्ताः समवेताः समन्ततः ॥ ४ ॥
तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोधने भृशम् । राक्षसाः कपिमुख्येषु पातयांचक्रिरे तदा ॥ ५ ॥
वानराश्चैव रक्षःसु गिरिवृक्षान्महाशिलाः । प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसंनिभाः ॥ ६ ॥
शूराणां युध्यमानानां समरेष्वनिवर्तिनाम् । तद्राक्षसगणानां च सुयुद्धं समवर्तत ॥ ७ ॥
अभग्नशिरसः केचिच्छिन्नैः पादैश्च बाहुभिः । शस्त्रैरर्दितदेहास्तु रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ८ ॥
हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गां समाश्रिताः । कङ्कगृध्रबलाढ्याश्च गोमायुकुलसंकुलाः ॥ ९ ॥

राक्षसोंको खूब मारा। अङ्गदके द्वारा मारे गये पराक्रमी राक्षस, माथा टूट जानेके कारण, पृथिवीपर कटे पेड़के समान गिरे। रथों, ध्वजों, घोड़ों, वानर, राक्षसोंके शरीरों तथा रुधिरसे युद्धभूमि भर गयी और वह भयङ्कर मालूम होने लगी। हार, केयूर वस्त्र, छत्र आदिसे अलंकृत रणभूमि शरद् ऋतुकी रात्रिके समान मालूम हुई। अङ्गदके वेगसे वह राक्षसी सेना काँप गयी, जिस प्रकार वायुसे मेघ काँप जाते हैं, ॥ २९—३०—३१—३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥



अपने सैनिकोंके मारे जाने तथा अङ्गदका अपरिमित बल देखनेसे महाबली वज्रदंष्ट्र राक्षस बहुत क्रोधित हुआ ॥ १ ॥ इन्द्रके वज्रके समान भयंकर धनुष तानकर वह वानरीसेनापर बाणवृष्टि करने लगा ॥२॥ विविध अस्त्र-शस्त्रधारी वीर प्रधान-प्रधान राक्षस भी, जो रथपर बैठे थे, उस समय युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ वानरोंमें जो वीर थे, वे वानरश्रेष्ठ भी चारों ओरसे एकत्र होकर पत्थर लेकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ उस युद्धमें राक्षसोंने प्रधान-प्रधान वानरोंपर हजारों तरहके अस्त्र बार-बार चलाये ॥ ५ ॥ मतवाले हाथीके समान ऊँचे वीर वानर भी पर्वतों और वृक्षोंको राक्षसोंपर चलाने लगे ॥ ६ ॥ रणसे न लौटनेवाले, परस्पर युद्ध करनेवाले—वीर वानरों और राक्षसोंका वह युद्ध चलने लगा ॥ ७ ॥ कइयोंके शिर तो नहीं टूटे, किन्तु उनके हाथ पैर कट गये, शस्त्रोंसे उनके शरीर छिद गये और वे रुधिरसे भींग गये। वे राक्षस और वानर पृथिवीपर

कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै। भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥१०॥
वानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र भूतले। ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् ॥११॥
प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः। राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवंगमैः ॥१२॥
दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान्। प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ॥१३॥
शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः। बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च ॥
विव्याध परमक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १४ ॥
त्रस्ताः सर्वे हरिगणाः शरैः संकृत्तदेहिनः। अङ्गदं संप्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः ॥१५॥
ततो हरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा। क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥१६॥
वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम्। चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥१७॥
ततः शतसहस्रेण हरिपुत्रं महाबलम्। जघान मर्मदेशेषु शरैरग्निशिखोपमैः ॥१८॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसूनुर्महाबलः। चिक्षेप वज्रदंष्ट्राय वृक्षं भीमपराक्रमः ॥१९॥
दृष्ट्वा पतन्तं तं वृक्षमसंभ्रान्तश्च राक्षसः। चिच्छेद बहुधा सोऽपि मथितः प्रापतद्भुवि ॥२०॥
तं दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रस्य विक्रमं प्लवगर्षभः। प्रगृह्य विपुलं शैलं चिक्षेप च ननाद च ॥२१॥
तमापतन्तं दृष्ट्वा स रथादाप्लुत्य वीर्यवान्। गदापाणिरसंभ्रान्तः पृथिव्यां समतिष्ठत ॥२२॥
अङ्गदेन शिला क्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि। सचक्रकूबरं साश्वं प्रममाथ रथं तदा ॥२३॥

पड़ गये, वहाँ कंक, गीध, कौवे तथा शृगाल जुट गये ॥८, ९॥ डरनेवालोंको डरानेवाले धड़ उछलने लगे। हाथ, मस्तक और शरीरके कटनेसे वानर तथा राक्षस, पृथिवीपर गिरने लगे। अनन्तर, वानरोंके द्वारा राक्षस-सेनाके मारे जानेके कारण वह सेना वज्रदंष्ट्रके सामने ही भागने लगी। वानरोंकी मारसे भयभीत राक्षसोंको देखकर प्रतापी वज्रदंष्ट्र क्रोधसे आँखें लालकर, धनुष लेकर वानरी सेनामें घुसा ॥१०,११,१२,१३॥ सीधा चलनेवाले कंकपत्र बाणोंसे वह वानरोंको चीरने लगा। सात, आठ, नौ और पाँच-पाँच बाणोंसे प्रतापी वज्रदंष्ट्रने अत्यन्त क्रोध करके वानरोंको छेदा ॥ १४ ॥ बाणोंसे शरीर कट जानेके कारण सभी वानर डरकर अङ्गदके पास गये, जिस प्रकार प्रजा राजाके पास जाती है ॥ १५ ॥ अनन्तर वानरोंको भयभीत देखकर वालिपुत्र अङ्गदने क्रोध करके अपनी ओर देखते हुए वज्रदंष्ट्रको देखा ॥ १६ ॥ वज्रदंष्ट्र और अङ्गद दोनों युद्ध करने लगे। अत्यन्त क्रुद्ध सिंह और हाथीके समान वे रणभूमिमें विचरण करने लगे ॥ १७ ॥ अनन्तर वज्रदंष्ट्रने अग्निशिखाके समान सौ बाणोंसे अंगदके मस्तकमें मारा ॥ १८ ॥ महाबली वायुपुत्रका समस्त शरीर रुधिरसे भींग गया। उन्होंने बड़े पराक्रमसे वज्रदंष्ट्रपर वृक्ष चलाया ॥१९॥ वृक्षको आते देखकर बिना घबड़ाए राक्षसने उसके कई टुकड़े कर दिये और वह पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ २० ॥ वानर-श्रेष्ठने वज्रदंष्ट्रका ऐसा पराक्रम देखकर एक बड़ा पत्थर उठाकर उसपर फेंका और बड़ा गर्जन किया ॥ २१ ॥ उस पत्थरको अपनी ओर आते देखकर वीर्यवान वह बिना घबड़ाये रथसे कूदकर जमीनपर खड़ा हो गया ॥ २२ ॥ अंगदके द्वारा फेंके हुए पत्थरने रणभूमिमें जाकर घोड़के साथ रथको, उसके पहिए और जोतेको

ततोऽन्यच्छिखरं गृह्य विपुलं द्रुमभूषितम् । वज्रदंष्ट्रस्य शिरसि पातयामास वानरः ॥२४॥
अभवच्छोणितोद्गारी वज्रदंष्ट्रः सुमूर्च्छितः । मुहूर्तमभवन्मूढो गदामालिङ्गय निःश्वसन् ॥२५॥
स लब्धसंज्ञो गदया वालिपुत्रमवस्थितम् । जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचरः ॥२६॥
गदां त्यक्त्वा ततस्तत्र मुष्टियुद्धमकुर्वत । अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र तावुभौ हरिराक्षसौ ॥२७॥
रुधिरोद्गारिणौ तौ तु प्रहारैर्जनितश्रमौ । बभूवतुः सुविक्रान्तावङ्गारकबुधाविव ॥२८॥
ततः परमतेजस्वी अङ्गदः प्लवगर्षभः । उत्पाट्य वृक्षं स्थितवानासीत्पुष्पफलैर्युतः ॥२९॥
जग्राह चार्षभं चर्म खड्गं च विपुलं शुभम् । किङ्किणीजालसंछन्नं चर्मणा च परिष्कृतम् ॥३०॥
चित्रांश्च रुचिरान्मार्गांश्चेरतुः कपिराक्षसौ । जघ्नतुश्च तदान्योन्यं नर्दन्तौ जयकाङ्क्षिणौ॥३१॥
व्रणैः समुत्थैः शोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ । युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ॥३२॥
निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः । उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः ॥३३॥
निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः । जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥३४॥
रुधिरोक्षितगात्रस्य बभूव पतितं द्विधा । तच्च तस्य परीताक्षं शुभं खड्गहतं शिरः ॥३५॥
वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः । त्रस्ता ह्यभ्यद्रवंल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवंगमैः ॥
विषण्णवदना दीना ह्रिया किंचिदवाङ्मुखाः ॥३६॥

चूर-चूरकर दिया ॥ २३ ॥ अनन्तर दूसरा पर्वतशिखर लेकर, जिसपर बहुतसे वृक्ष थे, वानरने वज्रदंष्ट्रके माथेपर चलाया ॥ २४ ॥ वज्रदंष्ट्र रुधिर उगलकर मूर्च्छित हुआ। गदाको पकड़कर लम्बी साँस छोड़ता हुआ वह थोड़ी देरतक मूर्च्छित रहा ॥ २५ ॥ होश आनेपर बड़े क्रोधसे उस राक्षसने गदासे खड़े हुए बालिपुत्रकी छातीमें मारा ॥ २६ ॥ पुनः गदा छोड़कर वे घुस्साबाजी करने लगे। वानर और राक्षस दोनों एक दूसरेको मारने लगे ॥ २७ ॥ वे दोनों रुधिर उगलने लगे और मारके कारण थक गए, उस समय उन लोगोंने मंगल और बुधके समान पैंतरे किए ॥ २८ ॥ अनन्तर परम तेजस्वी वानरश्रेष्ठ अङ्गद वृक्ष उखाड़कर खड़े हो गये, जिसमें फल-फूल लगे हुए थे ॥ २९ ॥ पुनः उन दोनोंने ढाल और उत्तम तलवारें लीं, जिनमें छोटी घण्टी लगी हुई थी तथा जिसकी मूठ चमड़ेसे बँधी हुई थी ॥ ३० ॥ वे वानर और राक्षस तरह-तरहके अद्भुत पैंतरे करने लगे और, अपनी-अपनी विजय चाहनेवाले वे दोनों, परस्पर गर्जकर मारने लगे ॥ ३१ ॥ घावोंसे निकले रुधिरके द्वारा पुष्पित पलाशवृक्षके समान वे शोभते थे। लड़ते-लड़ते थककर उन दोनोंने घुटनोंसे पृथिवी पकड़ली ॥ ३२ ॥ निमेष मात्रमें ही कपिश्रेष्ठ अङ्गद आँखे फाड़कर डंडासे मारे सर्पके समान उठ खड़े हुए ॥ ३३ ॥ निर्मल तथा साफ की हुई तलवारसे बालिपुत्र महाबली अङ्गदने वज्रदंष्ट्रका शिर काट लिया ॥ ३४ ॥ रुधिरसे भींगे शरीरवाले उस राक्षसका शिर तलवारसे कटकर पृथिवीपर गिरा और उसके दो टुकड़े हो गए। उसकी आँखें उलट गयी थीं ॥ ३५ ॥ वानरोंके द्वारा मारे जानेवाले राक्षस भयसे मूर्च्छित होने लगे और डर गये। वे वज्रदंष्ट्रको मरा देखकर दुखी हुए, लज्जासे उनका मस्तक नीचा हो गया और वे दुखी मनसे लङ्कामें चले गये ॥ ३६ ॥

निहत्य तं वज्रधरः प्रतापवान्स वालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये ।
जगाम हर्षं महितो महाबलः सहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः । बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥१॥
शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः । अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥२॥
एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि सत्तमः । भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥३॥
एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् । वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यति न संशयः ॥४॥
परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः । बलं संप्रेरयामास तदा लघुपराक्रमः ॥५॥
ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः । निष्पेतू राक्षसा मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥
रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनभूषणम् । मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥७॥
राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः । नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ॥८॥
अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा । तस्य निर्धावमानस्य संरब्धस्य युयुत्सया ॥९॥
अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानां रथवाहिनाम् । विस्फुरन्नयनं चास्य सव्यं युद्धाभिनन्दिनः ॥१०॥

वानरीसेनाके बीचमें इन्द्रके समान प्रतापी वालिपुत्र उस राक्षसको मारकर बहुत प्रसन्न हुए । देवताओंसे घिरे इन्द्रके समान उनकी प्रशंसा हुई ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

वालिपुत्रने वज्रदंष्ट्रको मार दिया यह सुनकर रावण सेनाध्यक्षसे बोला, जो उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा था ॥ १ ॥ पराक्रमी राक्षस जो युद्धमें पराजित नहीं होते, वे अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता अकम्पनके साथ जायँ ॥ २ ॥ यह अकम्पन शत्रुओंको दमन करनेवाला, अपनी सेनाका रक्षक तथा अग्रणी है । यह युद्ध-प्रेमी तथा सदा मेरा कल्याण चाहनेवाला है ॥ ३ ॥ यह राम और लक्ष्मणको जीतेगा, महाबली सुग्रीवको जीतेगा तथा अन्य बली वानरोंको जीतेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ रावणकी आज्ञा पाकर शीघ्र प्रबन्ध करनेमें चतुर महाबली सेनाध्यक्षने सेना भेजी ॥ ५ ॥ बलाध्यक्षके कहनेसे प्रधान-प्रधान राक्षस, जो देखनेमें भयानक थे तथा जिनकी आँखें भयानक थीं, अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर निकले ॥६॥ तपे सोनेसे भूषित विशाल रथपर बैठकर, मेघके समान विशाल, मेघ ही के समान वर्णवाला और मेघके समान गर्जन करने-वाला अकम्पन राक्षसोंके साथ निकला । महायुद्धमें देवताओंके द्वारा भी वह कम्पित नहीं हो सकता ॥७, ८॥ उन राक्षसोंमें तेजसे सूर्यके समान वह दिखाई पड़ता था । युद्धकी इच्छासे कोपाविष्ट और दौड़ते हुए अकम्पनके रथमें जुतेहुए घोड़े, विना कारणही, उत्साहहीन हो गये । युद्धकी प्रशंसा करनेवाले अकम्पनकी बाईं आँख

विवर्णो मुखवर्णश्च गद्गदश्चाभवत्स्वनः । अभवत्सुदिने काले दुर्दिनं रूक्षमारुतम् ॥११॥
ऊचुः खगमृगाः सर्वे वाचः क्रूरा भयावहाः । स सिंहोपचितस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ॥१२॥
तानुत्पातानचिन्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् । तथा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ॥१३॥
बभूव सुमहान्नादः क्षोभयन्निव सागरम् । तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ॥१४॥
द्रुमशैलप्रहाराणां योद्धुं समुपतिष्ठताम् । तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥१५॥
रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तदेहिनः । सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसंनिभाः ॥१६॥
हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघांसया । तेषां विनर्दतां शब्दः संयुगेऽतितरस्विनाम् ॥१७॥
शुश्राव सुमहान्कोपादन्योन्यमभिगर्जताम् । रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् ॥१८॥
उद्धूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश । अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयोद्धतपाण्डुना ॥१९॥
संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे । न ध्वजो न पताका वा चर्म वा तुरगोऽपि वा॥२०॥
आयुधं स्यन्दनो वापि ददृशे तेन रेणुना । शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ॥२१॥
श्रूयते तुमुलो युद्धे न रूपाणि चकाशिरे । हरीनेव सुसंरुष्टा हरयो जघ्नुराहवे ॥२२॥
राक्षसा राक्षसांश्चापि निजघ्नुस्तिमिरे तदा । ते परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः ॥२३॥
रुधिरार्द्रां तदा चक्रुर्महीं पङ्कानुलेपनाम् । ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं ह्यपगतं रजः ॥२४॥
शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुंधरा । द्रुमशक्तिगदाप्रासैः शिलापरिघतोमरैः ॥२५॥

फड़कने लगी ॥ ९, १० ॥ उसका मुँह मलिन हो गया, आवाज भर्रा गयी और सुदिनमें भी दुर्दिनके समान रूखी हवा चलने लगी ॥११॥ क्रूर पशुपक्षी आदि भयानक शब्द बोलने लगे। बाघके समान पराक्रमी, सिंहके समान लम्बी कँधावाला वह अकम्पन इन उत्पातोंकी ओर बिना ध्यान दियेही रणक्षेत्रमें गया। राक्षसोंके साथ अकम्पनके जानेके समय समुद्रको क्षुभित करनेवाला घोर शब्द हुआ। उस शब्दसे वानरोंकी बड़ी सेना डर गयी ॥ १२, १३, १४ ॥ पत्थर और वृक्षोंसे प्रहार करनेवाले, युद्धके लिए उपस्थित उन वानरों और राक्षसोंका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १५ ॥ वे राम और रावणके लिए प्राणत्याग करनेको तयार थे। वे सभी बलवान और शूर थे तथा पर्वतके समान विशाल थे ॥ १६ ॥ वानर और राक्षस एक दूसरेको मारना चाहते थे। युद्धमें अत्यन्त वेग दिखानेवाले उनके गर्जनका शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥ १७ ॥ एक दूसरेकी ओर गरजनेवाले राक्षस और वानरोंसे उड़ाई हुई लाल धूलि बहुतही भयानक मालूम हुई और उससे दशों दिशाएँ छिप गई। रेशमी वस्त्रके समान थोड़ी पीली धूलसे सब प्राणी छिप गये। युद्धभूमिमें कुछ भी दिखाई न पड़ने लगा। ध्वजा, पताका, ढाल, घोड़ा, आयुध, रथ उस धूलसे कुछ भी दिखाई न पड़े। दौड़नेवाले उनके गर्जनका केवल भयंकर शब्द सुनाई पड़ता था और कुछ दिखाई न पड़ता था, जिससे क्रोध करके वानर वानरोंको ही मारने लगे ॥ १७, १८, १९, २०, २१, २२ ॥ उस अन्धकारमें राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगे। वे वानर और राक्षस शत्रुओंको भी मारते थे और दूसरोंको भी मारते थे और अपने दलवालोंको मारते थे ॥ २३ ॥ पृथिवी रुधिरसे भींग गयी और उसमें कीचड़ हो गया तब रुधिरसे सींचे जानेके कारण धूलका उड़ना बन्द हुआ ॥ २४ ॥ मुर्दोंसे पृथिवी भर गयी,

राक्षसा हरयस्तूर्णं जघ्नुरन्योन्यमोजसा । वाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमान् ॥२६॥
हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुराहवे । राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः ॥२७॥
कपीन्निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः । अकम्पनः सुसंक्रुद्धो राक्षसानां चमूपतिः ॥२८॥
संहर्षयति तान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् । हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः ॥२९॥
विदारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्याच्छिद्य वीर्यतः । एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ॥३०॥
मैन्दश्च परमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् । ते तु वृक्षैर्महावीरा राक्षसानां चमूमुखे ॥३१॥
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुङ्गवाः । ममन्थू राक्षसान्सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः । क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥ १ ॥
क्रोधमूर्च्छितरूपस्तु धुन्वन्परमकार्मुकम् । दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
तत्रैव तावत्त्वरितो रथं प्रापय सारथे । एते च वलिनो घ्नन्ति सुवहून्राक्षसान्रणे ॥ ३ ॥
एते च वलवन्तो वा भीमकोपाश्च वानराः । द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखे मम ॥ ४ ॥
एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् । एतैः प्रमथितं सर्वं रक्षसां दृश्यते वलम् ॥ ५ ॥

वृक्ष, शक्ति, गदा, भाला, पत्थर, परिघ और तोमरसे राक्षस और वानर वलपूर्वक एक दूसरेको मारने लगे ॥ २५ ॥ परिघके समान वाहुओंसे, भयङ्कर कर्म करनेवाले वानर, पर्वतके समान विशाल राक्षसोंको मारने लगे । प्रास और तोमर धारण करनेवाले राक्षस भी क्रोध करके भयङ्कर शस्त्रोंसे वानरोंको मारने लगे । राक्षसोंका सेनापति अकम्पनने भी क्रोध किया किया ॥ २६—२७—२८ ॥ पराक्रमी उन समस्त राक्षसोंको सेनापति उत्साहित करने लगा । वानर भी अपने पराक्रमसे राक्षसोंके अस्त्र छीनकर वड़े-वड़े पत्थरोंसे मारने लगे । इसी समय वीर कुमुद नल और मैन्द नामक वानरोंने अपना पराक्रम दिखलाया । वे महावीर राक्षसोंकी सेनाके सिरेपर वृक्षोंसे आसानीसे वध करने लगे । अनेक प्रकारके आयुधोंसे उन्होंने सब राक्षसोंको मारा ॥ २९, ३०, ३१, ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

वानर सेनापतियोंके द्वारा इस पराक्रमके किये जानेपर अकम्पनने वड़ा क्रोध किया ॥१॥ क्रोधसे वह अधिक भयङ्कर दीख पड़ने लगा । शत्रुओंके इस कामको देखकर धनुषका टङ्कार करता हुआ, वह सारथिसे वोला ॥२॥ सारथि, शीघ्रही तुम रथ वहाँ ले चलो, जहाँ वली वानर वहुतसे राक्षसोंको मार रहे हैं ॥ ३ ॥ भयङ्कर कोपवाले, वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करनेवाले ये वानर मेरे सामनेही हैं ॥ ४ ॥ युद्धको उत्तम समझने वाले, इनको मैं उत्तम समझता हूँ । इनलोगोंने राक्षसोंकी समस्त सेनाको व्याकुल कर दिया है ॥ ५ ॥

ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनां वरः । हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकम्पनः ॥ ६ ॥
न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे । अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ ७ ॥
तान्मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान् । समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ ८ ॥
तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे ते प्लवगर्षभाः । समेत्य समरे वीराः सहिताः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥
व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा प्लवगर्षभाः । बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥१०॥
अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् । महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥११॥
अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्शरीरे पातितान्कपिः । अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥१२॥
स प्रहस्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः । अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥१३॥
तस्याथ नर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा । बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥१४॥
आत्मानं त्वप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः । शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गवः ॥१५॥
गृहीत्वा सुमहाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः । स विनद्य महानादं भ्रामयामास वीर्यवान् ॥१६॥
ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम् । पुरा हि नमुचिं संख्ये वज्रेणेव पुरंदरः ॥१७॥
अकम्पनस्तु तद्दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम् । दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत् ॥१८॥
तं पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम् । विकीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनूमान्क्रोधमूर्च्छितः ॥१९॥
सोऽश्वकर्णं समासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः । तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥२०॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अकम्पन रथके घोड़ोंको चलाकर शर-समूहसे वानरोंके पास पहुँचा ॥ ६ ॥ वानर युद्धभूमिमें ठहर भी नहीं सके, फिर वे युद्ध किस प्रकार करते ? अकम्पनके बाणोंसे व्यथित होकर सब भाग गये ॥ ७ ॥ अकम्पनके बाणोंसे अपनी जातवालोंको मृत्युवश देखकर महाबली हनुमान वहाँ उपस्थित हुए ॥ ८ ॥ उन महावानरको देखकर वे सब श्रेष्ठ वानर एकत्र होकर हनुमानके पास जमा हो गये ॥ ९ ॥ हनुमानको वहाँ खड़ा देखकर वे सब श्रेष्ठ वानर भी बलवान् हो गये, क्योंकि उन्हें एक बलवानका आश्रय मिल गया ॥१०॥ पर्वतके समान खड़े हुए हनुमानको देखकर अकम्पन उनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा, जिस प्रकार इन्द्र जलकी धारा बरसाता है ॥ ११ ॥ शरीरपर पड़े हुए उन बाणसमूहोंका बिना विचार किये ही महाबली हनुमानने अकम्पनके वध करनेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ वायुपुत्र महातेजस्वी हनुमानने पृथिवीको कँपाते हुए, हँसकर उस राक्षसपर आक्रमण किया ॥ १३ ॥ तेजसे दीप्यमान तथा गरजते हुए हनुमानका रूप देखनेके योग्य हो गया, जिस प्रकार प्रदीप्त अग्निका रूप हो जाता है ॥ १४ ॥ अपने पास अस्त्र नहीं है, यह देखकर वानरश्रेष्ठ हनुमानने क्रोध किया। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक एक पर्वत उखाड़ लिया। पराक्रमी वायुपुत्र हनुमान उस बड़े पर्वतको हाथमें लेकर तथा गर्जन करके घुमाने लगे ॥१६॥ पुनः वे राक्षसेन्द्र अकम्पनकी ओर बढ़े, जिस प्रकार पहले इन्द्रने वज्र लेकर नमुचपर आक्रमण किया था ॥१७॥ उस पर्वतको आता हुआ देखकर अकम्पनने दूरसे ही अर्द्धचन्द्र नामक महाबाणसे उसे काट दिया ॥१८॥ आकाशमें ही वह पर्वतशृंग राक्षसके बाणसे टूटकर बिखर गया, यह देखकर हनुमानको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १९ ॥ क्रोध और अहङ्कारसे युक्त हनुमान अश्वकर्ण वृक्षके पास गये, जो बड़े पर्वतके समान ऊँचा था और उन्होंने उसे शीघ्रही उखाड़ लिया ॥२०॥

तां गृहीत्वा महास्कन्धं सोऽश्वकर्णं महाद्युतिः । प्रगृह्य परया प्रीत्या भ्रामयामास भूतले ॥२१॥
प्रधावन्नुरुवेगेन बभञ्ज तरसा द्रुमान् । हनूमान्परमक्रुद्धश्चरणैर्दारयन्महीम् ॥२२॥
गजांश्च सगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा । जघान हनुमान्भीमान्राक्षसांश्च पदातिगान् ॥२३॥
तमन्तकमिव क्रुद्धं सद्रुमं प्राणहारिणम् । हनूमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥२४॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् । ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्षोभ च ननाद च ॥२५॥
स चतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः । निर्बिभेद महावीर्यं हनूमन्तमकम्पनः ॥२६॥
स तथा विप्रकीर्णस्तु नाराचैः शितशक्तिभिः । हनूमान्ददृशे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥२७॥
विरराज महावीर्यो महाकायो महाबलः । पुष्पिताशोकसंकाशो विधूम इव पावकः ॥२८॥
ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् । शिरस्याभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥२९॥
स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना । राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥३०॥
तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् । व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥३१॥
त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः । लङ्कामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥३२॥
ते मुक्तकेशाः संभ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः । भयाच्छ्रमजलैरङ्गैः प्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः ॥३३॥
अन्योन्यं ते प्रमथ्नन्तो विविशुर्नगरं भयात् । पृष्ठतस्ते तु संमूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥३४॥
तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः । समेत्य हरयः सर्वे हनूमन्तमपूजयन् ॥३५॥

लम्बी डालवाले उस अश्वकर्ण वृक्षको लेकर महाद्युतिमान् हनुमान बड़े प्रेमसे घुमाने लगे ॥ २१ ॥ हनुमान क्रोध करके पृथिवीको फोड़ते हुए बड़े वेगसे दौड़कर वृक्षोंको तोड़ने लगे ॥ २२ ॥ हाथियों, उसके सवारों, रथियों, रथों तथा पैदल चलनेवाले भयङ्कर राक्षसोंको हनुमानने मारा ॥ २३ ॥ यमराजके समान क्रोध किये हुए, प्राणहारी वृक्षको धारण करनेवाले हनुमानको देखकर राक्षस भागने लगे ॥ २४ ॥ राक्षसोंको भयभीत करनेवाले क्रुद्ध हनुमानको अपनी ओर आते देखकर वीर अकम्पन क्षुभित हुआ और उसने गर्जन किया ॥ २५ ॥ अकम्पनने तीखे, शरीरको छेदनेवाले चौदह बाणोंसे महाबली हनुमानको छेदा । ॥ २६ ॥ बाणों तथा तीखी शक्तियोंसे शरीरके विध जानेके कारण हनुमान उस पर्वतके समान मालूम पड़ने लगे, जिसपर अनेक वृक्ष उगे हों ॥ २७ ॥ महाबली, महाशरीर, महापराक्रमी हनुमान पुष्पित अशोकके समान तथा धूमहीन अग्निके समान मालूम पड़ने लगे ॥ २८ ॥ अनन्तर दूसरा वृक्ष उखाड़कर हनुमानने बड़े वेगसे राक्षसेन्द्र अकम्पनके मस्तकपर मारा ॥ २९ ॥ क्रोधयुक्त महात्मा हनुमानके द्वारा उस वृक्षसे मारे जानेपर वह राक्षस गिरा और मर गया ॥ ३० ॥ राक्षसेन्द्र अकम्पनको पृथिवीपर गिरा देखकर सब राक्षस दुःखी हुए, जिस प्रकार भूकम्प होनेसे वृक्ष कम्पित हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ वानरोंने पराजित उन राक्षसोंको दौड़ाया । वे अस्त्र-शस्त्र छोड़कर लङ्काकी ओर भाग गये ॥ ३२ ॥ रणमें हारे हुए वे राक्षस घबड़ा गये थे, उनके बाल खुल गये थे, सम्मान जाता रहा, परिश्रमके कारण उनके शरीरसे जल गिर रहा था, वे भागे ॥ ३३ ॥ परस्पर धक्का देते हुए भयसे नगरमें घुस गये । किंकर्तव्य विमूढ़ होकर वे पीछे देखते जाते थे ॥३४॥ उन राक्षसोंके लंकामें चले जानेपर, महाबली वानरोंने एकत्र होकर हनुमानकी पूजा की

सोऽपि प्रवृद्धस्तान्सर्वान्हरीन्संप्रत्यपूजयत् । हनूमान्सत्त्वसंपन्नो यथार्हमनुकूलतः ॥३६॥
विनेदुश्च यथाप्राणं हरयो जितकाशिनः । चकृषुश्च पुनस्तत्र सप्राणानेव राक्षसान् ॥३७॥
स वीरशोभामभजन्महाकपिः समेत्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः ।
महासुरं भीममभित्रनाशनं विष्णुर्यथैवोरुबलं चमूमुखे ॥३८॥
अपूजयन्देवगणास्तदा कपिं स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवंगमा विभीषणश्चैव महाबलस्तदा ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः । किंचिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥१॥
स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च । ततस्तु रावणः पूर्वदिवसे राक्षसाधिपः ॥
पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ॥ २ ॥
तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् । ददर्श नगरीं राजा पताकाध्वजमालिनीम् ॥३॥
रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः । उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥४॥
पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह । नान्ययुद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥५॥
अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम । इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥६॥

॥ ३५ ॥ हनुमान भी उत्साहित होकर यथायोग्य तथा यथासम्भव उन समस्त वानरोंकी बदलेमें पूजा की ॥३६॥ निर्भय होकर वानर अपने पूरे बलसे गर्जन करने लगे और युद्धभूमिमें पड़े जीवित राक्षसोंको घसीटने लगे ॥ ३७ ॥ वायुपुत्रने राक्षसोंके पास जाकर और उन्हें मारकर वीरोंकी शोभा पायी, जिस प्रकार रणक्षेत्रमें महाबली शत्रुओंको मारनेवाले भयङ्कर महासुरोंको मारकर विष्णुने पायी थी ॥ ३८ ॥ देवताओंने, अतिबली राम और लक्ष्मणने, सुग्रीव-प्रभृति वानरोंने तथा महाबली विभीषणने उस समय हनुमानकी पूजा की ॥३९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

अकम्पनका वध सुनकर राक्षसराज क्रुद्ध हुआ। थोड़ा दुखी होकर उसने सचिवोंकी ओर देखा ॥ १ ॥ रावणने पहलेही बेर थोड़ी देरतक स्वयं सोचा पुनः उसने मन्त्रियोंके साथ विचार किया, पुनः वह नगरके सब युद्धस्थानोंके देखनेके लिए निकला । रावणने लंका नगरीको देखा, जिसमें अनेक युद्धस्थान बने हुए थे, ध्वजा-पताकाओंकी मालासी बन गयी थी तथा अनेक राक्षस जिसकी रक्षा करते थे ॥ ३ ॥ लंकानगरीको शत्रुके द्वारा घिरी देखकर अपने हितकारी युद्धविद्यामें प्रवीण प्रहस्तसे रावण बोला ॥ ४ ॥ जिस प्रकार नगरके समीप शत्रु आ गये हैं तथा नगरको पीड़ा पहुँचा रहे हैं, उससे रक्षाका उपाय युद्धके अतिरिक्त दूसरा मैं नहीं देखता ॥ ५ ॥ मैं, कुम्भकर्ण या मेरे सेनापति तुम, इन्द्रजित् अथवा निकुम्भ

सत्त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च । विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥७॥
निर्याणादेव तूर्णं च चलिता हरिवाहिनी । नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥८॥
चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः । न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव द्विपाः ॥९॥
विद्रुते च बले तस्मिन्रामः सौमित्रिणा सह । अवशस्तु निरालम्बः प्रहस्त वशमेष्यति ॥१०॥
आपत्संशयिता श्रेयो नात्र निःसंशयीकृता । प्रतिलोमानुलोमं वा यत्तु नो मन्यसे हितम् ॥११॥
रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः । राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशना ॥१२॥
राजन्मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः । विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ॥१३॥
प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया । अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेव तथैव नः ॥१४॥
सोऽहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया । सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां हितं तव ॥१५॥
नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च । त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥१६॥
एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः । उवाचेदं बलाध्यक्षान्प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ॥१७॥
समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महाबलम् । मद्बाणानां तु वेगेन हतानां तु रणाजिरे ॥१८॥
अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षा महाबलाः ॥१९॥

येही ऐसे भाग्को ले सकते हैं ॥ ६ ॥ इस कारण तुम सेना लेकर शीघ्रही विजयके लिए निकलकर जहाँ वानर हैं वहाँ जाओ ॥ ७ ॥ तुम्हारे निकलते ही वानरीसेना विचलित हो जायगी और राक्षसोंके गर्जनका शब्द सुनकर वह भाग खड़ी होगी ॥ ८ ॥ वानर चंचल, उजड्ड और ओछे होते हैं, वे तुम्हारे गर्जनको न सह सकेंगे, जिस प्रकार हाथी सिंहके गर्जनको नहीं सहते ॥ ९ ॥ वानरीसेनाके भाग जानेपर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र अवश हो जायँगे, आलम्बहीन हो जायँगे, प्रहस्त, उस समय वे तुम्हारे वशमें आजायँगे ॥ १० ॥ तुम्हारे लिए युद्धमें आपत्ति होना संदिग्ध है और कल्याण होना निस्सन्देह है । अर्थात् युद्धमें तुम्हारे विजयी होनेमें सन्देह नहीं है, किन्तु पराजित होनेमें ही सन्देह है । अतएव मैं युद्ध करना ही उचित समझता हूँ । तुम्हारी राय क्या है ? तुम मेरी बात ठीक समझते हो या नहीं ? जिसमें मेरा हित हो कहो ? ॥ ११ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर सेनापति प्रहस्त रावणसे बोला, जिस प्रकार शुक्र असुरराजको सलाह देते हैं ॥ १२ ॥ राजन्, निपुण मन्त्रियोंके साथ हमलोगोंने इस विषयपर विचार किया है, उस समय दो दलोंमें विवाद भी हो गया था, अर्थात् विभीषण आदिने सीताको लौटा देनेकी सलाह दी थी और अपनी सलाह न मानी जानेके कारण वे यहाँसे चले गये थे ॥ १३ ॥ सीताको लौटा देनेमें ही कल्याण है ऐसा मेरा निश्चय था, सीताके न लौटानेपर युद्ध होगा यह हमलोगोंने उसी समय समझा था, आपने दान, मान, सान्त्व आदिके द्वारा मेरा सदा सत्कार किया है, फिर आपके हितका काम मैं क्यों न करूँगा ॥ १४ ॥ मैं अपने जीवनकी रक्षा नहीं करना चाहता । पुत्र, स्त्री, धनकी भी मैं रक्षा नहीं करना चाहता ॥ १५ ॥ युद्धरूपी अग्निमें मैं अपने जीवनकी आहुति देता हूँ, यह आप देखें ॥ १६ ॥ सेनापति, स्वामी रावणसे ऐसा कहकर सामने खड़े हुए सेनाके दारोगा से बोला ॥ १७ ॥ राक्षसोंकी बड़ी सेना मेरे लिए तयार करो । युद्धक्षेत्रमें मेरे बाणोंके वेगसे मृतकोंके मांससे वनवासी पक्षी तथा मांसखानेवाले आज तृप्त हों । उसके ये वचन सुनकर महाबली सेनाप्रबन्धकोंने उस राक्षसके घरमें सेना तयार की । थोड़ी ही देरमें विविध आयुध धारण करने-

बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमन्दिरे । सा बभूव मुहूर्तेन भीमैर्नानाविधायुधैः ॥२०॥
लङ्का राक्षसवीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला । हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् ॥२१॥
आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मारुतो ववौ । स्रजश्च विविधाकारा जगृहुस्त्वभिमन्त्रिताः ॥२२॥
संग्रामसज्जाः संहृष्टा धारयन्राक्षसास्तदा । सधनुष्काः कवचिनो वेगादुत्सृज्य राक्षसाः ॥२३॥
रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन् । अथामन्त्र्य तु राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम् ॥२४॥
आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम् । हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सूतं सुसंयतम् ॥२५॥
महाजलदनिर्घोषं साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरम् । उरगध्वजदुर्धर्षं सुवरूथं स्वपस्करम् ॥२६॥
सुवर्णजालसंयुक्तं प्रहसन्तमिव श्रिया । ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥२७॥
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः । ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥
वादित्राणां च निनदः पूरयन्निव मेदिनीम् ॥२८॥
शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ । निनदन्तः स्वरान्घोरान्राक्षसा जग्मुरग्रतः ॥२९॥
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः । नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ॥
प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम् ॥ ३० ॥
व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ । गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ॥३१॥
सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः । प्रहस्तो निर्ययौ क्रुद्धः कालान्तकयमोपमः ॥३२॥

वाले राक्षस वीरोंसे लंकानगरी भर गयी, मानों वह हाथियोंसे भर गयी हो। अग्निमें हवनसे करनेसे तथा ब्राह्मणोंकी पुष्प-माला आदिसे पूजा करनेसे उसकी गंध लेकर बहनेवाला सुगन्धित वायु बहने लगा। युद्धके लिए तयार राक्षसने मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित अनेक प्रकारकी मालाएँ प्रसन्न होकर धारण की। उस समय धनुष और कवच धारण करनेवाले उन राक्षसोंने अपना आसन छोड़ दिया ॥१८, १९, २०, २१, २२, २३॥ राजारावणको देखकर राक्षस प्रहस्तके पास आकर जमा हो गये। राजासे आज्ञा लेकर तथा भयङ्कर भेरी बजवाकर प्रहस्त सावधान होकर रथपर बैठे, जिसपर सब सामग्रियाँ सजाकर रखी गयी थीं। शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए थे। चतुर सारथी था तथा अच्छी तरहसे बँधा हुआ था ॥ २४—२५ ॥ वह रथ महामेघके समान शब्द करनेवाला था, चन्द्रमा और सूर्यके समान चमकीला था, साँपकी ध्वजा थी, अच्छी तरहसे रक्षित था और उसमें उत्तम सामग्रियाँ रखी हुई थीं ॥ २६ ॥ सुवर्णकी जाली लगी हुई थी, शोभाके कारण मानों हँस रहा था। रावणकी आज्ञासे प्रहस्त ऐसे सुन्दर रथपर बैठा ॥ २७ ॥ बड़ी सेनाके साथ वह लङ्कासे शीघ्रही निकला। अनन्त मेघगर्जनके समान दुन्दुभिका शब्द हुआ। अन्य बाजाओंके भी शब्द हुए, जिससे युद्धभूमि गूँज गयी ॥ २८ ॥ सेनापतिके चलनेपर शंखका शब्दभी सुनाई पड़ा। घोर गर्जन करते हुए राक्षस सेनापतिके आगे-आगे चले ॥२९॥ प्रहस्तके आगे चलनेवाले राक्षस विशाल शरीर और भयानक रूपवाले थे। नरान्तक, कुम्भहनु, समुन्नत और महानाद ये प्रहस्तके सचिव थे और उसे घेरकर चलते थे ॥३०॥ गजयूथके समान बड़ी सेनासे रक्षित होकर तथा दुर्भेद्य व्यूह बनाकर प्रहस्त लंकाके पूर्वद्वारसे निकला ॥३१॥ समुद्रके समान अलंघ्य राक्षसोंकी सेनासे रक्षित होकर, प्रलयकालके यमराजके समान क्रोधकरके, प्रहस्त

तस्य निर्याणघोषेण राक्षसानां च नर्दताम् । लङ्कायां सर्वभूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥३३॥
व्यभ्रमाकाशमाविश्य मांसशोणितभोजनाः । मण्डलान्यपसव्यानि खगाश्चक्रू रथं प्रति ॥३४॥
वमन्ति पावकज्वालाः शिवा घोरा ववाशिरे । अन्तरिक्षात्पपातोल्का वायुश्च परुषं ववौ ॥३५॥
अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिरे । मेघाश्च खरनिर्घोषा रथस्योपरि रक्षसः ॥३६॥
ववर्षू रुधिरं चास्य सिषिचुश्च पुरःसरान् । केतुमूर्धनि गृध्रस्तु विलीनो दक्षिणामुखः ॥३७॥
नदन्नुभयतः पार्श्वं समग्रां श्रियमाहरत् । सारथेर्बहुशश्चात्र संग्राममनिवर्तिनः ॥३८॥
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात्सूतस्य हयसादिनः । निर्याणश्रीश्च या च स्याद्भास्वरा च सुदुर्लभा ॥३९॥
सा ननाश मुहूर्तेन समे च स्खलिता हयाः । प्रहस्तं तं हि निर्यान्तं प्रख्यातगुणपौरुषम् ॥
युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाभ्यवर्वत ॥ ४० ॥
अथ घोषः सुतुमुलो हरीणां समजायत । वृक्षानारुजतां चैव गुर्वीर्वै गृह्णतां शिलाः ॥४१॥
नदतां राक्षसानां च वानराणां च गर्जताम् । उभे प्रमुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ॥४२॥
वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् । परस्परं चाह्वयतां निनादः श्रूयते महान् ॥४३॥
ततः प्रहस्तः कपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थे विजयाय दुर्मतिः ।
विवृद्धवेगश्च विवेश तां चमूं यथा मुमूर्षुः शलभो विभावसुम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

निकला ॥ ३२ ॥ प्रहस्तके प्रस्थानके शब्दसे तथा राक्षसोंके शब्दसे लंकाके समस्त प्राणियोंका स्वर विकृत हो गया ॥३३॥ मेघहीन आकाशमें मांस खानेवाले गीध आदि पक्षी रथके ऊपर बाँई ओरसे मण्डलाकार घूमने लगे ॥ ३४ ॥ सियारिनें अग्निज्वाला उगलने लगीं और भयङ्कर शब्द करने लगीं । आकाशसे उल्कापात होने लगा और परुष वायु बहने लगा ॥ ३५ ॥ परस्पर युद्ध करके ग्रहोंने अपना प्रकाश खो दिया, मेघ कठोर गर्जन करने लगे और प्रहस्तके रथके ऊपर रुधिरकी वृष्टि करने लगे ॥३६॥ तथा प्रहस्तके आगे चलनेवाले राक्षसोंको रुधिरसे सींचने लगे और ध्वजाके ऊपर दक्षिण मुँह करके गीध बैठ गया ॥३७॥ चोंचसे दोनों पाँखोंको खुजलाकर उसने प्रहस्तकी समस्त शोभा हर ली । अनेक संग्रामोंसे बिना विजय न लौटनेवाले सूतवंशी, अश्व-शिक्षक सारथीके हाथसे चाबुक गिर पड़ी । प्रस्थानकालकी दुर्लभ जो सुन्दर शोभा होती है वह मुहूर्तभरमें ही नष्ट हो गयी । समतल भूमिमें चलते हुए घोड़े फिसल गये । नगरसे निकले हुए, विख्यात गुण और पौरुषवाले प्रहस्तके सामने अनेक तरहके आयुध लेकर वानरीसेना खड़ी हुई, ॥ ३८, ३९, ४० ॥ वृक्षोंको तोड़नेवाले तथा भारी पत्थरोंको उठानेवाले वानरोंका भयानक शब्द उस समय हुआ ॥४१॥ वानर और राक्षस दोनों गर्जने लगे, जिससे दोनों सेनाएँ प्रसन्न हुईं ॥ ४२ ॥ अत्यन्त शीघ्रगामी, समर्थ तथा परस्परका वध चाहनेवाले और एक दूसरेको बुलानेवालेका महान् शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥४३॥ अनन्तर मूर्ख प्रहस्त विजय करनेके लिए सुग्रीवकी सेनाकी ओर चला, जिस प्रकार पतंग मरनेकी इच्छासे अग्निमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह वानरीसेनामें गया ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम् । उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥
क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः । आगच्छति महावेगः किंरूपबलपौरुषः ॥ २ ॥
आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम् । राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३ ॥
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः । लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ॥
वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः ॥ ४ ॥
ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् । गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥
ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् । अभिसंजातघोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥
खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्च बाणानि मुसलानि च । गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः ॥ ७ ॥
धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम् । प्रगृहीतान्यराजन्त वानरानभिधावताम् ॥ ८ ॥
जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितांस्तु गिरींस्तथा । शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवंगमाः ॥ ९ ॥
तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् । बहूनामश्मवृष्टिं च शरवर्षं च वर्षताम् ॥१०॥
बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरपुंगवान् । वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥११॥
शूलैः प्रमथिताः केचित्केचित्तु परमायुधैः । परिघैराहताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥१२॥
निरुच्छ्वासाः पुनः केचित्पतिता जगतीतले । विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसंधानसाधिताः ॥१३॥
केचिद्द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि । वानरा राक्षसैः शूरैः पार्श्वतश्च विदारिताः ॥१४॥

युद्ध करनेके लिए तयार होकर प्रहस्तको निकलते देखकर शत्रुदमन करनेवाले रामचन्द्रने हँसकर विभीषणसे पूछा ॥ १ ॥ यह कौन महाकाय शीघ्रगामी, बड़ी सेनाके साथ, आ रहा है। इसका रूप बल पौरुष क्या है हमसे कहो ॥ २ ॥ महाबाहु इस बलवान् निशाचरका परिचय हमसे कहो। रामचन्द्रकी बात सुनकर विभीषण बोले, ॥ ३ ॥ वह रावणका सेनापति प्रहस्त नामका राक्षस है। लंकामें रावणकी जो सेना है उसका तीसरा हिस्सा इसके साथ है। यह वीर्यवान, शूर, अस्त्रवेत्ता और प्रसिद्ध पराक्रमी है ॥ ४ ॥ अनन्तर भीमपराक्रमी, विशालशरीर राक्षसोंसे घिरे हुए, भयङ्कर प्रहस्तको निकलते हुए बलवान वानरोंकी बड़ी सेनाने देखा। वे वानर प्रहस्तकी ओर देखकर गर्ज रहे थे ॥ ५—६ ॥ तलवार, शक्ति, ऋष्टि, शूल, वाण, मुसल, गदा, परिघ, प्रास, अनेक प्रकारके परशु तथा तरह-तरहके धनुष राक्षसोंने लिए थे। ये बड़े सुन्दर मालूम होते थे। इन अस्त्रोंको लेकर राक्षस वानरोंपर दौड़े ॥ ७—८ ॥ युद्ध करनेकी इच्छासे वानरोंने फूले हुए वृक्ष, पर्वत तथा बड़े-बड़े पत्थर लिए ॥ ९ ॥ वाणवृष्टि तथा पत्थरवृष्टिके कारण उन दोनोंका युद्ध बड़ाही भयानक हुआ ॥ १० ॥ अनेक राक्षसोंने अनेक वानरोंको और अनेक वानरोंने अनेक राक्षसोंको मारा ॥ ११ ॥ शूलसे कई कुचल दिये गये, कई चक्रसे, कुचल दिए गये, कई परिघसे मारे गये और कई परशुसे काट डाले गये ॥ १२ ॥ कई प्राणहीन होकर पृथिवीपर गिर पड़े, कई छाती फटनेसे तथा कई वाणके लगनेसे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥ कई तलवारसे काट दिये गये और वे

वानरैश्चापि संक्रुद्धै राक्षसौघाः समन्ततः । पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च संपिष्टा वसुधातले ॥१५॥
वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम् । वमञ्शोणितमास्येभ्यो विशीर्णवदनेक्षणाः ॥१६॥
आर्तस्वनं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम् । बभूव तुमुलः शब्दो हरीणां रक्षसामपि ॥१७॥
वानरा राक्षसाः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः । विवृत्तवदनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥१८॥
नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः । एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥१९॥
तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् । द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥२०॥
दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम् । राक्षसं क्षिप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत् ॥२१॥
जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् । पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥२२॥
अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् । वृक्षेण महता सद्यः प्राणान्संत्याजयद्रणे ॥२३॥
अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमाश्रितः । चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥२४॥
आवर्त इव संजज्ञे सेनयोरुभयोस्तदा । क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥२५॥
महता हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः । अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥२६॥
वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी । बभूवातिचिता घोरैः पर्वतैरिव संवृता ॥२७॥
सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना संप्रकाशते । संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥२८॥
हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् । शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ॥२९॥

लड़खड़ाते पृथिवीपर गिर पड़े । वीर राक्षसोंने कई वानरोंके पँजरी फाड़ डाले ॥ १४ ॥ क्रोध करके वानरोंने भी वृक्षों तथा पर्वतशृङ्गोंसे राक्षसोंको पृथिवीमें पीस डाला ॥ १५ ॥ वज्रके समान कठोर हाथोंके आघातसे (मुक्कोंसे) मारे गये राक्षस मुँहसे खून उगलने लगे और उनके मुँह फट गये ॥१६॥ वानरों और राक्षसोंके दुःखके चीत्कार तथा विजयके सिंहनादसे बहुतही भयानक शब्द हुआ ॥ १७ ॥ युद्धमें सामने डटे हुए वानर और राक्षस क्रोध करके निर्भयके समान क्रूरतापूर्वक कर्म करने लगे ॥ १८ ॥ नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत ये प्रहस्तके मन्त्री समस्त वानरोंको मारने लगे ॥ १९ ॥ वे मंत्री वानरोंको मारने तथा उनपर आक्रमण करने लगे, यह देखकर द्विविद नामके वानरने नरान्तकको पर्वतशृङ्गसे मार डाला ॥ २० ॥ पुनः एक बड़ा वृक्ष लेकर दुर्मुख नामक वानर उठा और उसने शीघ्रतासे हाथ चलानेवाले समुन्नत नामक राक्षसको ढेर कर दिया ॥ २१ ॥ जाम्बवानूने क्रोध करके बड़ा पत्थर लिया और उन्होंने तेजस्वी महानादके छातीपर गिरा दिया ॥२२॥ पराक्रमी कुम्भहनु तार नामक वानरसे लड़ने लगा । उन्होंने उसे युद्धमें एक वृक्षसे मार डाला ॥ २३ ॥ रथपर बैठा हुआ प्रहस्त वानरोंके इस कर्मको न सह सका, वह धनुष लेकर वानरोंको मारने लगा ॥ २४ ॥ उन दोनों सेनाओंका शब्द प्रलयकालमें क्षुभित समुद्रके शब्दके समान होने लगा ॥ २५ ॥ रणदुर्मद राक्षसने क्रोध करके बाणसमूहोंसे वानरोंको पीड़ित किया ॥ २६ ॥ वानरों और राक्षसोंके पर्वतके समान विशाल शरीरोंसे पृथिवी ढक गयी ॥ २७ ॥ वहाँकी पृथिवी रुधिरसे ढँक जानेके कारण वसन्तमें फूले पलाशवृक्षोंसे ढकीके समान मालूम होने लगी ॥ २८ ॥ युद्धभूमि एक नदीके समान हो गयी थी, मरा हुआ वीरसमूह तटके समान था, टूटे हुए अस्त्र-शस्त्र तटके वृक्षोंके समान थे, रुधिरकी

यकृत्प्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् । भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाद्वलाम् ॥३०॥
गृध्रहंसवराकीर्णां कङ्कसारससेविताम् । मेदःफेनसमाकीर्णामार्तस्तनितनिःस्वनाम् ॥३१॥
तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् । नदीमिव घनापाये हंससारससेविताम् ॥३२॥
राक्षसाः कपिमुख्यास्ते तेरुस्तां दुस्तरां नदीम् । यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥३३॥
ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् । ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवंगमान् ॥३४॥
उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात् । समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥३५॥
रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे । स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ॥३६॥
नीलाय व्यसृजद्बाणान्प्रहस्तो वाहिनीपतिः । ते प्रेत्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः॥३७॥
महीं जग्मुर्महावेगा रोषिता इव पन्नगाः । नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥३८॥
स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः । प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥३९॥
स तेनाभिहतः क्रुद्धो नर्दन्राक्षसपुंगवः । ववर्ष शरवर्षाणि प्लवंगानां चमूपतौ ॥४०॥
तस्य बाणगणानेव राक्षसस्य दुरात्मनः । अपारयन्वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥
यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥
एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षान्दुरासदान् । निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे दुरासदान् ॥४२॥
रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान् । प्रजघान हयान्नीलः प्रहस्तस्य महाबलः ॥४३॥
ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः । बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥४४॥

धारा जल-धाराके समान थी, यह महानदी यमसमुद्रमें जा रही थी, यकृत और प्लीहा पंकके समान थे, सेवारके समान अंतड़ियाँ फैली हुई थीं, कटे हुए शरीर और मस्तक मछलीके समान थे, शरीरके अवयव घासके समान थे। जीवरूपी हंसोंसे वह नदी भरी थी, कंकरूपी सारस वहाँ उपस्थित थे, चर्बीरूप फेनसे वह नदी भरी थी और रुधिररूपी जलके आवर्तसे शब्द हो रहा था ॥ २९, ३०, ३१ ॥ युद्धभूमिरूपी उस नदीको कापुरुष पार नहीं कर सकते थे। वर्षाके अन्तमें हंस, सारसके द्वारा सेवित नदीके समान, राक्षस और वानर, दुःखसे पार करनेयोग्य उस नदीको, पार करने लगे, जिस प्रकार कमलधूलिसे पीले जलवाले तालाबको गजयूथपति पार करता है ॥ ३२, ३३ ॥ अनन्तर नीलनामक वानरने देखा कि प्रहस्त रथपर बैठा हुआ बाणोंकी वृष्टि कर रहा है तथा बलपूर्वक वानरोंको मार रहा है ॥ ३४ ॥ आकाशमें उठा हुआ वायु जिस प्रकार बलपूर्वक मेघोंके पास जाता है, उसी प्रकार सेनापति प्रहस्त युद्धमें अपनी ओर आते हुए नीलको देखकर सूर्यके समान रथसे नीलकी ओर बढ़ा। धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ प्रहस्तने धनुष खींचकर नीलपर बाण चलाये। वे बाण नीलके पास पहुँचकर उन्हें छेदकर क्रुद्ध सर्पके समान पृथिवीपर गिर पड़े। अग्निके समान और तीखे बाणोंसे आहत होकर वीर्यवान् नीलने एक वृक्ष उखाड़कर अपनी ओर आते हुए दुर्धर्ष प्रहस्तको मारा ॥ ३५, ३६, ३७, ३८, ३९ ॥ नीलके द्वारा आहत होनेपर राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्त गरजकर वानरोंकी सेनापर बाणवर्षा करने लगा ॥ ४० ॥ उस दुरात्मा राक्षसके बाणोंको नील रोक न सके। अतएव जिस प्रकार शरद्की वर्षाको साँड़ सहता है, उसी प्रकार वे शीघ्र आनेवाले उसके बाणोंको सहने लगे ॥४१॥

विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः । प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥४५॥
तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ । स्थितौ क्षतजसिक्ताङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ ॥४६॥
उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् । सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥४७॥
विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ । काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोरिव ॥४८॥
आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः । प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम् ॥४९॥
ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य च महातरुम् । प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥५०॥
तमचिन्त्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत् । अभिदुद्राव वलिनं वलान्नीलं प्लवंगमम् ॥
तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ॥ ५१ ॥
ततः संप्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् । तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ॥५२॥
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् । नीलेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ॥
विभेद वहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥ ५३ ॥
स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः । पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥५४॥
विभिन्नशिरसस्तस्य वहु सुस्राव शोणितम् । शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्रवणो यथा ॥५५॥
हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महावलम् । राक्षसानामहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥५६॥

इस प्रकार सहनेके अयोग्य प्रहस्तके वाणोंकी वर्षाको आँखें वन्द करके नील सहने लगे ॥ ४२ ॥ वाणवृष्टिसे क्रोधित होकर महावली नीलने शालवृक्षसे प्रहस्तके घोड़ोंको मार डाला ॥ ४३ ॥ पुनः क्रोधित होकर नीलने उस दुरात्माके धनुष काट डाले और गर्जन करने लगे ॥ ४४ ॥ नीलने सेनापति प्रहस्तको धनुषहीन कर दिया, तव वह वड़ा मूसल लेकर रथसे उतर पड़ा ॥ ४५ ॥ वे दोनों सेनापति, जिनमें वैर हो गया था, जो वड़े वेगवान् थे तथा रुधिरसे जिनके अङ्ग भींग गये थे, मदस्रावी हाथियोंके समान मालूम पड़ने लगे ॥ ४६ ॥ सिंह और वाघके समान पराक्रमी वे दोनों वीरसिंह और वाघके समान तीखे दाँतोंसे एक दूसरेको काटने लगे ॥ ४७ ॥ समरमें युद्धसे न लौटनेवाले तथा विजयको वशमें रखनेवाले दोनों वीर इन्द्र और वृत्रके समान यश चाहने लगे ॥ ४८ ॥ तव नीलके मस्तकपर परम उद्योगी प्रहस्तने मूसलसे मारा, जिससे रुधिर वहने लगा ॥ ४९ ॥ महाकपि नीलने, जिसका समस्त शरीर खूनसे भींग गया था, क्रोध करके एक वड़ा पेड़ प्रहस्तकी छातीमें मारा ॥ ५० ॥ उस प्रहारकी ओर ध्यान न देकर एक वड़ा मूसल लेकर वह राक्षस वली नल वानरकी ओर जोरसे दौड़ा । क्रुद्ध प्रहस्तको वेगसे अपनी ओर आते देखकर शीघ्रगामी नीलने एक वड़ा पत्थर उठाया । युद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले तथा मूसलसे युद्ध करनेवाले प्रहस्तके मस्तकपर नीलने वह पत्थर पटक दिया । कपिश्रेष्ठ नीलके द्वारा फेंके गये उस पत्थरने प्रहस्तके मस्तकके कई टुकड़े कर दिये ॥ ५१, ५२, ५३ ॥ उसका वल, उसकी शोभा तथा उसकी इन्द्रियाँ जाती रहीं तथा उसके प्राण निकल गये । कटे वृक्षके समान सहसा वह पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ५४ ॥ मस्तक फटनेसे वहुतसा खून निकला, उसके शरीरसे भी खून निकला, जिस प्रकार पर्वतोंसे झरने निकलते हैं ॥ ५५ ॥ नीलके द्वारा प्रहस्तके मारे जानेपर दुखी राक्षसोंकी वह अकम्पनीय सेना लंकामें चली गयी

न शेकुः समवस्थातुं निहते वाहिनीपतौ । सेतुबन्धं समासाद्य विशीर्णं सलिलं यथा ॥५७॥
हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः । रक्षः पतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमागताः ॥
प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं विसंज्ञा इव तेऽभवन् ॥ ५८ ॥
ततस्तु नीलो विजयी महाबलः प्रशस्यमानः सुकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन प्रहृष्टरूपस्तु बभूव यूथपः ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥



एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

तस्मिन्हते राक्षससैन्यपाले प्लवंगमानामृषभेण युद्धे ।
भीमायुधं सागरवेगतुल्यं विदुद्रुवे राक्षसराजसैन्यम् ॥ १ ॥
गत्वा तु रक्षोधिपतेः शशंसुः सेनापतिं पावकसूनुशस्तम् ।
तच्चापि तेषां वचनं निशम्य रक्षोधिपः क्रोधवशं जगाम ॥ २ ॥
संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य क्रोधार्दितः शोकपरीतचेताः ।
उवाच तान्राक्षसयूथमुख्यानिन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान् ॥ ३ ॥
नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसादनः । सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ४ ॥
सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् । स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ ५ ॥

॥ ५६ ॥ सेनापतिके मारे जानेपर वे युद्धमें ठहर न सके, जिस प्रकार बाँधके टूटनेपर जल नहीं ठहरता ॥ ५७ ॥ सेनापतिके मारे जानेपर वे राक्षस उद्यमहीन हो गये और वे रावणके घर जाकर ध्यानस्थके समान चुपचाप खड़े हो गये । वे बहुतही दुखी हो गये थे अतएव बेहोश हो गये ॥ ५८ ॥ अपने उत्तम कर्मके द्वारा प्रशंसित होता हुआ महाबली विजयी नील राम-लक्ष्मणके समीप जाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ५९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥



वानरसेनापतिके साथ युद्धमें राक्षसोंके सेनापतिके मारे जानेपर, राक्षसराजकी भयानक अस्त्र-शस्त्र-धारण करनेवाली वह सेना समुद्रके वेगके समान भाग गयी ॥ १ ॥ जाकर उसने अग्निपुत्र नीलके द्वारा सेनापतिके मारे जानेकी बात कही । राक्षसाधिप रावण भी उनके वे वचन सुनकर क्रुद्ध हुआ ॥ २ ॥ युद्धमें प्रहस्त मारे गये यह सुनकर रावणने बहुत क्रोध किया तथा शोकसे उसका चित्त खिन्न हो गया । उसने राक्षससेनापतियोंसे कहा, जिस प्रकार इन्द्रदेव सेनापतियोंको आज्ञा देते हैं ॥ ३ ॥ उस शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जिसने इन्द्रको जीतनेवाले हमारे सेनापतिको साथियों और हाथियोंके साथ नष्ट किया है ॥ ४ ॥ अब मैं स्वयं शत्रुबलका ध्यान न करके शत्रुविनाश तथा विजयके लिए उस युद्धभूमिमें

अथ तद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् । निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं रथं तुरंगोत्तमराजियुक्तम् ।
प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं समारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥
स शङ्खभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ।
पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्यमानस्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥
स शैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसाशनैः पावकदीप्तनेत्रैः ।
बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यो भूतैर्वृतो रुद्र इवामरेशः ॥ ९ ॥
ततो नगर्याः सहसा महौजा निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श समुद्यतं पादपशैलहस्तम् ॥१०॥
तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डमालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः ।
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठमुवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥११॥
नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ।
कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टं सैन्यं महेन्द्रोपमनागजुष्टम् ॥१२॥
ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं विभीषणः शक्रसमानवीर्यः ।
शशंस रामस्य बलप्रवेकं महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥१३॥
योऽसौ गजस्कन्धगतो महात्मा नवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ।
संकम्पयन्नागशिरोऽभ्युपैति ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन् ॥१४॥

जाऊँगा ॥ ५ ॥ आज मैं राम-लक्ष्मणके साथ उस वानरी सेनाको बाणोंसे जला दूँगा, जिस प्रकार जलती हुई आग वनको जलाती है ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर अग्निके समान उज्ज्वल उत्तम घोड़े जुते हुए अपने प्रकाशसे प्रकाशित रथपर इन्द्रका शत्रु रावण चढ़ा ॥ ७ ॥ सैनिक शङ्ख, भेरी, पणवके शब्दोंसे, ताल ठोकने तथा गर्जनके शब्दोंसे और पवित्र स्तुतियोंसे पूजित राक्षसराज रावण चला ॥ ८ ॥ पर्वत और मेघके समान विशाल, मांस खानेवाले और चमकीली आँखोंवाले राक्षसोंसे घिरा हुआ रावण भूतोंसे घिरे देवराज इन्द्रके समान मालूम पड़ता था ॥ ९ ॥ अनन्तर महाबली रावणने नगरीसे शीघ्र निकलकर उस उग्र वानरी सेनाको देखा, जो समुद्र तथा मेघके समान गर्ज रही थी, जिसके हाथोंमें पेड़ और पर्वत थे ॥ १० ॥ सर्पके समान भुजावाले रामचन्द्र उस प्रचण्ड राक्षससेनाको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणसे बोले, सुन्दर रामचन्द्र अपनी सेनाको देखनेके लिए उस समय चारों ओर घूम रहे थे ॥ ११ ॥ यह निर्भय राक्षसोंसे युक्त सेना किसकी है, जिसमें अनेक ध्वजा, पताका और छत्र दीख पड़ते हैं, जिसके सैनिक, प्रास, तलवार, शूल आदि लिये हुए हैं, जिसमें इन्द्रके ऐरावतके समान हाथी हैं। यह विचलित न होनेवाली सेना किसकी है ॥ १२ ॥ इन्द्रतुल्य पराक्रमी विभीषण रामचन्द्रके वचन सुनकर महात्मा राक्षसोंके सर्वश्रेष्ठ सेनाका परिचय रामचन्द्रको देने लगे ॥ १३ ॥ जो यह महात्मा बाल-सूर्यके समान लाल मुँहवाला है और हाथीपर

योऽसौ रथस्थो मृगराजकेतुर्धुन्वन्धनुः शक्रधनुः प्रकाशम् ।
करीव भात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रः स इन्द्रजिन्नाम वरप्रधानः ॥१५॥
यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो धन्वी रथस्थोऽतिरथोऽतिवीरः ।
विस्फारयंश्चापमतुल्यमानं नाम्नातिकायोऽतिविवृद्धकायः ॥१६॥
यो सौ नवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्य घण्टानिनदप्रणादम् ।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा महोदरो नाम स एष वीरः ॥१७॥
योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्डमारुह्य संध्याभ्रगिरिप्रकाशः ।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं पिशाच एषोऽशनितुल्यवेगः ॥१८॥
यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य विद्युत्प्रभं किंकरवज्रवेगम् ।
वृषेन्द्रमास्थाय शशिप्रकाशमायाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥१९॥
असौ च जीमूतनिकाशरूपः कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः ।
समाहितः पन्नगराजकेतुर्विस्फारयन्याति धनुर्विधुन्वन् ॥२०॥
यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टं दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य ।
आयाति रक्षोबलकेतुभूतो योऽसौ निकुम्भोऽद्भुतवीरकर्मा ॥२१॥
यश्चैष चापासिशरौघजुष्टं पताकिनं पावकदीप्तरूपम् ।
रथं समास्थाय विभात्युदग्रो नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी ॥२२॥

चढ़ा हुआ है, जो हाथीके मस्तकको कँपा रहा है, राजन्, उसे आप अकम्पन जानें ॥ १४ ॥ जो रथपर बैठा हुआ है तथा जिसकी ध्वजा सिंहकी है, इन्द्रधनुषके समान, जो अपने धनुषका टंकार कर रहा है, जिसके दाँत हाथीके समान तीखे और लम्बे हैं, यह इन्द्रजित् है। वह वर पाकर श्रेष्ठ बना है ॥ १५ ॥ जो यह धनुर्धारी रथपर बैठा हुआ है, जो विंध्याचल, अस्ताचल और महेन्द्राचलके समान है, वह अतिरथ और बड़ा वीर है। जो बहुत लम्बे धनुषको और फैला रहा है, उसका नाम अतिकाय है, क्योंकि उसका शरीर विशाल है ॥ १६ ॥ बालसूर्यके समान जिसकी आँखें लाल हैं, घण्टाके शब्दसे जिसका शब्द उत्तम है और जो क्रूर हाथीपर बैठा हुआ है, उस महात्माका नाम महोदर है और वह वीर है ॥१७॥ जो यह सुवर्णके गहनोंसे भूषित घोड़ेपर चढ़ा है और किरणयुक्त प्रास ताने हुआ है और संध्याकालके मेघ और पर्वतके समान है, इसका नाम पिशाच है और यह वज्रके समान वेगवान है ॥ १८ ॥ जो यह बिजलीके समान प्रकाशमान् तीखा शूल लिये हुए है और जिस शूलके सामने वज्रका वेग तुच्छ है और जो चन्द्रमाके समान स्वच्छ गाड़ीपर बैठा हुआ है, वह यशस्वी त्रिशिरा है ॥१९॥ यह मेघके समान रूपवाला कुम्भ है, इसकी छाती मोटी, विशाल और सुन्दर है। यह युद्ध करनेके लिए उत्सुक है। इसकी ध्वजामें सर्पराज हैं। यह धनुषको फुर्तीला और टंकारयुक्त कर रहा है ॥ २० ॥ यह सोना और वज्र जड़े हुए तथा नीलम जड़े हुए उज्ज्वल परिघ लेकर राक्षससेनाकी जो पताका बनकर आ रहा है, वह अद्भुत वीर कार्य करनेवाला निकुम्भ है ॥ २१ ॥ जो यह धनुष, तलवार और बाण लेकर पताकायुक्त अग्निके समान

यश्चैष नानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः ।
भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रैर्योऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥२३॥
यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभातिच्छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ।
अत्रैव रक्षोधिपतिर्महात्मा भूतैर्वृतो रुद्र इवावभाति ॥२४॥
असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो नगेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः ।
महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता रक्षोधिपः सूर्य इवावभाति ॥२५॥
प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिंदमः । अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥२६॥
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः । न व्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥२७॥
देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत् । यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतद्विराजते ॥२८॥
सर्वे पर्वतसंकाशाः सर्वे पर्वतयोधिनः । सर्वे दीप्तायुधधरा योधास्तस्य महात्मनः ॥२९॥
विभाति रक्षोराजोऽसौ प्रदीप्तैर्भीमदर्शनैः । भूतैः परिवृतैस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवान्तकः ॥३०॥
दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः । अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसंभवम् ॥३१॥
एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् । लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥३२॥
ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा रक्षांसि तान्याह महाबलानि ।
द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः ॥३३॥

उज्ज्वल रथपर बैठा हुआ, बड़ा विशाल तथा पर्वतशिखरोंसे युद्ध करनेवाला आ रहा है, वह नरान्तक है ॥ २२ ॥ जो यह अनेक प्रकारके भयङ्कर रूपवाले बाघ, ऊँट, हाथी, हिरन तथा घोड़ेके समान मुँहवाले भूतोंसे घिरा हुआ शोभित हो रहा है, जिसकी आँखें चढ़ी हुई हैं, जो देवताओंके अहंकारको भी चूर करनेवाला है, जहाँ यह चन्द्रमाके समान श्वेत छत्र शोभित हो रहा है, जिसमें पतली कमानियाँ लगी हुई हैं, जो रुद्रके समान भूतोंसे घिरा हुआ है, वह महात्मा राक्षसेश्वर है ॥ २३, २४ ॥ यह किरीट, चंचल कुण्डल धारण करनेवाला हिमवान और विंध्याचलके समान रूपवाला, इन्द्र और यमराजके अहंकारको नष्ट करनेवाला यह राक्षसराज सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है ॥ २५ ॥ शत्रुहन्ता रामचन्द्र विभीषणसे बोले—राक्षसराज रावण, महादीप्तिमान और तेजस्वी है ॥ २६ ॥ यह रावण किरणोंके कारण सूर्यके समान देखा नहीं जा सकता। तेजयुक्त इसका रूप मुझे दिखाई नहीं पड़ता ॥ २७ ॥ जैसा राक्षसराजका यह शरीर शोभित हो रहा है, वैसा शरीर देवता और दानव वीरोंका भी नहीं होता ॥ २८ ॥ महात्मा रावणके सभी योद्धा पर्वतके समान ऊँचे हैं, सभी चमकीले अस्त्र धारण किये हुए हैं और सभी पर्वतसे युद्ध करनेवाले हैं ॥ २९ ॥ यह राक्षसराज देखनेमें भयङ्कर और प्रदीप्त तथा तीक्ष्ण और उत्तम शरीरवाले भूतोंसे यमराजके समान घिरा हुआ है ॥ ३० ॥ प्रसन्नताकी बात है कि यह पापी आज हमारे सामने आया। आज मैं सीताहरणके क्रोधका त्याग करूँगा ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर वीर्यवान् राम, लक्ष्मणके साथ, धनुष और उत्तम बाण लेकर तयार हुए ॥ ३२ ॥ अनन्तर महात्मा राक्षसराज, महाबली राक्षसोंसे बोले—तुम लोग लंकाके द्वारों तथा सड़कके मकानोंकी

इहागतं मां सहितं भवद्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा ।
शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः ॥३४॥
विसर्जयित्वा सचिवांस्ततस्तान्गतेषु रक्षःसु यथानियोगम् ।
व्यदारयद्वानरसागरौघं महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम् ॥३५॥
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम् ।
महत्समुत्पाट्य महीधराग्रं दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः ॥३६॥
तच्छैलशृङ्गं बहुवृक्षसानुं प्रगृह्य चिक्षेप निशाचराय ।
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥३७॥
तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षे शृङ्गे विदीर्णे पतिते पृथिव्याम् ।
महाहिकल्पं शरमन्तकाभं समादधे राक्षसलोकनाथः ॥३८॥
स तं गृहीत्वानिलतुल्यवेगं सविस्फुलिङ्गज्वलनप्रकाशम् ।
बाणं महेन्द्राशनितुल्यवेगं चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥३९॥
स सायको रावणबाहुमुक्तः शक्राशनिस्पर्शवपुः प्रकाशम् ।
सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगाद्गुहेरिता क्रौञ्चमिवोग्रशक्तिः ॥४०॥
स सायकार्तो विपरीतचेताः कूजन्पृथिव्यां निपपात वीरः ।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥४१॥
ततो गवाक्षो गवयः सुषेणस्त्वथर्षभो ज्योतिमुखो नलश्च ।
शैलान्समुत्पाट्य विवृद्धकायाः प्रदुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥४२॥

ड्योढ़ीपर शङ्का छोड़कर आनन्दपूर्वक रहो ॥ ३३ ॥ हम आपलोगोंके साथ यहाँ आये हैं, इस कमजोरीको जानकर वानर इकट्ठे होकर शीघ्रही सूनी नगरीमें घुसकर उपद्रव करेंगे ॥ ३४ ॥ मन्त्रियोंको इस प्रकार विदा करके और आज्ञा-पालनके लिए उनके चले जानेपर वह वानरसेनारूपी वेगको रोकने लगा, जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ समुद्रकी लहरियोंका वेग रोकती हैं ॥३५॥ प्रदीप्त बाण और धनुष लेकर राक्षसराजको युद्धभूमिमें शीघ्रतापूर्वक आते देखकर वानरराज सुग्रीवने पर्वतका बड़ा शिखर उखाड़कर उसपर आक्रमण किया ॥३६॥ उस पर्वतशृङ्गको, जिसपर अनेक वृक्ष लगे हुए थे, राक्षसपर उन्होंने छोड़ा। उस पर्वतशृङ्गको अपनी ओर आते देखकर रावणने सुवर्णपंखवाले बाणोंसे उसे काट दिया ॥ ३७ ॥ वृक्षवाले उस बड़े पर्वतशृङ्गके टूटकर पृथिवीपर गिरनेपर राक्षसराजने महासर्पके समान और यमराजके समान मालूम पड़नेवाले बाण उठाये ॥ ३८ ॥ क्रोधकरके रावणने इन्द्रके वज्रके समान वेगवान् तथा वायुके समान शीघ्र चलनेवाले, चिनगारियाँ छोड़नेवाले, अग्निके समान प्रकाशमान् बाण सुग्रीवके वधके लिए छोड़ा ॥ ३९ ॥ रावणके हाथसे छूटे हुए उस बाणने, इन्द्रके वज्रके समान जिसका कठोर स्पर्श था, सुग्रीवके पास जाकर उनको छेदा, जिस प्रकार कार्तिकेयकी छोड़ी शक्तिने क्रौंचपर्वतको छेदा था ॥ ४० ॥ वीर सुग्रीव बाणसे पीड़ित होकर कुछ भनभनाते हुए पृथिवीपर गिर पड़े। उनको पृथिवीपर अचेत होकर गिरा देखकर राक्षस

तेषां महारान्स चकार मोघान्रक्षोधिपो बाणशतैः शिताग्रैः ।
तान्वानरेन्द्रानपि बाणजालैर्बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ।
ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः ॥४३॥
ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रं प्रच्छादयामास स बाणजालैः ।
ते वध्यमानाः पतिताश्च वीरा नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ।
शाखामृगा रावणसायकार्ता जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥४४॥
ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मानादाय रामः सहसा जगाम ।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य उवाच रामं परमार्थयुक्तम् ॥४५॥
काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः । विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो ॥४६॥
तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः । गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥४७॥
रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः । त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥४८॥
तस्यच्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय । चक्षुषा धनुषात्मानं गोपायस्व समाहितः ॥४९॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा संपरिष्वज्य पूज्य च । अभिवाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे ॥५०॥
स रावणं वारणहस्तबाहुं ददर्श भीमोद्यतदीप्तचापम् ।
प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥५१॥
तमालोक्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः । निवार्य शरजालानि विदुद्राव स रावणम् ॥५२॥

प्रसन्नतापूर्वक गर्जन करने लगे ॥ ४१ ॥ तब गवय, गवाक्ष, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल विशालशरीरवाले ये वानर पत्थर लेकर राक्षसराजकी ओर दौड़े ॥ ४२ ॥ रावणने सौ तीखे वाणोंसे उनके प्रहारोंको व्यर्थ कर दिया और उसने सुवर्ण मढ़ेहुए वाणोंसे वानरोंको भी छेदा । वे वानर देवशत्रुके वाणोंसे छिदकर पृथिवीपर गिर पड़े,॥४३॥ पुनः उसने वाणोंके जालसे उस उग्र वानरी सेनाको ढँक दिया । गिरे हुए तथा प्रहृत होनेवाले, रावणके वाणोंसे पीड़ित तथा डरे हुए तथा चीत्कार करते हुए वानर शरणागतरक्षक रामचन्द्रकी शरण गये ॥ ४४ ॥ अनन्तर धनुर्धारी महात्मा रामचन्द्र धनुष लेकर शीघ्र ही चले । लक्ष्मणने हाथ जोड़कर उन रामचन्द्रसे ये सत्य वचन कहे ॥४५॥ आर्य, इस दुरात्माको मारनेके लिए मैं ही समर्थ हूँ । मैं इसे मारूँगा । महाराज, आप मुझे आज्ञा दें ॥ ४६ ॥ महातेजस्वी सत्यपराक्रमी रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले—युद्धमें जाओ और उद्योग करो ॥ ४७ ॥ रावण बड़ा बली है और युद्धमें अद्भुत पराक्रम करनेवाला है, जब यह क्रोध करेगा तब त्रिलोक भी उसे नहीं सह सकता इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ उसकी कमजोरियोंको तथा अपनी कमजोरियोंको देखते रहो । आँखोंसे तथा धनुषसे सावधान होकर अपनी रक्षा करो, ॥ ४९ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर उनका आलिंगन, पूजन तथा अभिवादन करके लक्ष्मण युद्धके लिए चले ॥ ५० ॥ उन्होंने हाथीकी सूँड़के समान बाँहवाले रावणको देखा जो भयङ्कर तथा दीप्तिमान् धनुष चढ़ाए हुए था, वाणवृष्टिके द्वारा भिदे तथा बिखरे शरीरवाले वानरोंको ढँक रहा था ॥ ५१ ॥ उस रावणको देखकर वायुपुत्र महातेजस्वी हनुमान वाणोंको हटाकर उसकी ओर बढ़े ॥५२॥ उसके रथके पास जाकर दाहिना

रथं तस्य समासाद्य बाहुमुद्यम्य दक्षिणम् । त्रासयन्रावणं धीमान्हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥५३॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः । अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥५४॥
एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः । विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम् ॥५५॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः । संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥५६॥
क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि । ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर ॥५७॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोऽब्रवीत् । प्रहतं हि मया पूर्वमक्षं तव सुतं स्मर ॥५८॥
एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः । आजघानाऽनिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥
स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः ॥५९॥
स्थितो मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः । आजघान च संक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥६०॥
ततः स तेनाभिहतो वानरेण महात्मना । दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमितलेऽचलः ॥६१॥
संग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम् । ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सुरासुरैः ॥६२॥
अथाश्वस्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत् । साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥६३॥
रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् । धिगस्तु मम वीर्यस्य यत्त्वं जीवसि रावण ॥६४॥
सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे । ततस्त्वां मामको मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम् ॥६५॥
ततो मारुतिवाक्येन कोपस्तस्य प्रजज्वले । संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमावृत्य दक्षिणम् ॥
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान् ॥६६॥

हाथ उठाकर रावणको भीत करते हुए बुद्धिमान् हनुमान बोले, ॥ ५३ ॥ देवता, गंधर्व, दानव, यक्ष और राक्षसोंके द्वारा तुम अवध्य हो, पर वानरोंसे तुम्हें भय है ॥ ५४ ॥ यह उठा हुआ पाँच अँगुलियोंवाला मेरा हाथ बहुत दिनोंसे तुम्हारे शरीरमें रहनेवाले प्राणोंको निकालेगा ॥ ५५ ॥ हनुमानके वचन सुनकर भीमविक्रम रक्तनयन रावण क्रोधसे यह बोला, ॥ ५६ ॥ निःशङ्क होकर शीघ्र मुझपर प्रहार करो और स्थायी कीर्ति पाओ, तब तुम्हारा पराक्रम जानकर मैं तुम्हें मारूँगा ॥ ५७ ॥ रावणके वचन सुनकर वायु-पुत्र बोले—मैंने पहलेही तुम्हारे पुत्र अक्षको मारा है स्मरण करो ॥ ५८ ॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर तेजस्वी वीर्यवान राक्षसराज रावणने वायुपुत्रको थप्पड़से मारा। थप्पड़से मारे जानेपर हनुमान विचलित हो गये ॥ ५९ ॥ महाबुद्धिमान् तेजस्वी हनुमान एक मुहूर्ततक चुपचाप खड़े रहे। अनन्तर उन्होंने क्रोध करके देवशत्रुको थप्पड़से मारा ॥ ६० ॥ महात्मा वानरके द्वारा मारे जानेपर रावण काँप गया, जिस प्रकार भूकम्प होनेपर पर्वत काँप जाते हैं ॥ ६१ ॥ युद्धमें थप्पड़की मार खाए हुए रावणको देखकर देवता और असुरोंके साथ ऋषि, वानर, सिद्ध और ब्रह्मा आदि देवता साधुवाद देने लगे ॥ ६२ ॥ सम्हलकर महातेजस्वी रावणने कहा—साधु, पराक्रमसे तुम हमारे आदरणीय शत्रु हो ॥ ६३ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर हनुमान बोले—रावण! मेरे पराक्रमको धिक्कार है जो तुम अभी तक जीते हो ॥६४॥ मूर्ख! क्या गाल बजा रहा है, एक बार मुझपर प्रहार करो इसके बाद मेरा घूसा तुम्हें यमराजके घर पहुँचा देगा। हनुमानके वचनसे रावण-को क्रोध बहुत बढ़ गया ॥ ६५ ॥ आँखें लालकर तथा बहुत प्रयत्न करके दाहिना घूसा उसने बड़े जोरसे

हनूमान्वक्षसि व्यूढे संचचाल पुनः पुनः । विह्वलं तं तदा दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ॥६७॥
रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात् । राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवः प्रतापवान् ॥६८॥
पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्माभिभेदनैः । शरैरादीपयामास नीलं हरिचमूपतिम् ॥६९॥
स शरौघसमायस्तो नीलो हरिचमूपतिः । करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोधिपतयेऽसृजत ॥७०॥
हनूमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः । विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत् ॥७१॥
नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम् । अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम् ॥७२॥
रावणोऽथ महातेजास्तं शृङ्गं सप्तभिः शरैः । आजघान सुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विशीर्णं पपात ह ॥७३॥
तद्विशीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः । कालाग्निरिव जज्वाल कोपेन परवीरहा ॥७४॥
सोऽश्वकर्णद्रुमान्शालांश्चूतांश्चापि सुपुष्पितान् । अन्यांश्च विविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेप संयुगे ॥७५॥
स तान्वृक्षान्समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः । अभ्यवर्षच्च घोरेण शरवर्षेण पावकिम् ॥७६॥
अभिवृष्टः शरौघेण मेघेनेव महाबलः । ह्रस्वं कृत्वा ततो रूपं ध्वजाग्रे निपपात ह ॥७७॥
पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समवस्थितम् । जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद च ॥७८॥
ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम् । लक्ष्मणोऽथ हनूमांश्च रामश्चापि सुविस्मिताः ॥७९॥
रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः । अस्त्रमाहारयामास दीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥८०॥
ततस्ते चुक्रुशुर्हृष्टा लब्धलक्षाः प्लवंगमाः । नीललाघवसंभ्रान्तं दृष्ट्वा रावणमाहवे ॥८१॥

वानरकी छातीमें मारा ॥ ६६ ॥ विशाल छातीमें मारे जानेपर हनुमान विचलित हो गये। महाबली हनुमान-को विह्वल देखकर राक्षसराज प्रतापी रावणने रथपर चढ़कर नीलपर आक्रमण किया ॥ ६७, ६८ ॥ सर्पके समान भयानक शत्रुके मर्मभेदन करनेवाले बाणोंसे रावण वानरसेनापति नीलको जलाने लगा ॥ ६९ ॥ बाणोंसे व्याकुल होकर वानरसेनापति नीलने रावणपर पर्वतशृंग एक हाथसे फेंका ॥ ७० ॥ तेजस्वी महामना हनुमान भी तबतक थकावट मिटा चुके थे। युद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले वे क्रोधसे रावणकी ओर देखकर बोले ॥ ७१ ॥ जो राक्षसराज रावण नीलके साथ युद्धकर रहा था उससे वे बोले—दूसरेसे युद्ध करनेवालेपर आक्रमण करना अनुचित है ॥ ७२ ॥ महातेजस्वी रावणने तीखे सात शरोंसे उस पर्वत-शृङ्गको फोड़ डाला और वह टुकड़े-टुकड़े होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥७३॥ वानरसेनापतिने उस पर्वतशृङ्गको टुकड़े-टुकड़े चूर हुए देखकर, प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोध किया ॥७४॥ अश्वकर्ण, शाल, आमके पुष्पित वृक्ष तथा दूसरी तरहके अनेक वृक्ष नील रावणपर फेंकने लगे ॥ ७५ ॥ रावणने उन वृक्षोंको काट डाला और वह अग्निपुत्र नीलपर भयङ्कर बाणोंकी भयङ्कर वृष्टि करने लगा ॥ ७६ ॥ मेघके समान बाणोंकी वृष्टि होनेपर महाबली नील छोटा रूप बनाकर उसकी ध्वजाके ऊपर चढ़ गये ॥ ७७ ॥ अपनी ध्वजाके ऊपर नीलको बैठा देखकर रावण क्रोधसे जलने लगा और नील सिंहगर्जन करने लगे ॥ ७८ ॥ नीलको रावणकी ध्वजाके ऊपर, धनुषके ऊपर तथा उसके मुकुटके ऊपर बैठा देखकर, लक्ष्मण, हनुमान और रामचन्द्र विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ महातेजस्वी रावण भी वानरकी क्षिप्रकारितासे विस्मित हुआ, फिर उसने प्रज्वलित और अद्भुत आग्नेय अस्त्र उठाया ॥ ८० ॥ नीलकी क्षिप्रकारितासे रावणका युद्धमें घबड़ाना देखकर वानर,

वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा । संभ्रमाविष्टहृदयो न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥८२॥
आग्नेयेनापि संयुक्तं गृहीत्वा रावणः शरम् । ध्वजशीर्षस्थितं नीलमुदैक्षत निशाचरः ॥८३॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः । कपे लाघवयुक्तोऽसि मायया परया सह ॥८४॥
जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्तोऽसि वानर । तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकशः ॥८५॥
तथापि त्वां मया मुक्तः सायकोऽस्त्रप्रयोजितः । जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद्‌भ्रंशयिष्यति ॥८६॥
एवमुक्त्वा महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः । संधाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत् ॥८७॥
सोऽस्त्रमुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः । निर्दह्यमानः सहसा स पपात महीतले ॥८८॥
पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापि तेजसा । जानुभ्यामपतद्‌भूमौ न तु प्राणैर्व्यमुज्यत ॥८९॥
विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः । रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥९०॥
आसाद्य रणमध्ये तं वारयित्वा स्थितो ज्वलन् । धनुर्विस्फारयामास राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥९१॥

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् ।
अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि ॥९२॥
स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा ।
आसाद्य सौमित्रिमुपस्थितं तं रोषान्वितं वाचमुवाच रक्षः ॥९३॥
दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः ।
अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युलोकं संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥९४॥

प्रसन्नताकी बात उपस्थित होनेपर, बहुत प्रसन्न हुए और चिल्लाने लगे ॥८१॥ वानरोंके गर्जन करनेसे रावण घबड़ा गया और बहुत घबड़ानेके कारण वह समझ न सका कि क्या करना चाहिए ॥ ८२ ॥ राक्षसराज रावणने आग्नेय मंत्र नामक बाण लेकर ध्वजाके ऊपर बैठे हुए नीलकी ओर देखा ॥ ८३ ॥ अनन्तर महातेजस्वी राक्षसेश्वर रावण बोला—तुम बड़े क्षिप्रकारी हो और पक्के मायावी भी ॥ ८४ ॥ तुम अपने शक्तिके अनुरूप अनेक रूप बना रहे हो, पर यदि तुममें शक्ति हो तब अपने जीवनकी रक्षा करो ॥८५॥ फिर भी मेरा छोड़ा हुआ यह बाण, यद्यपि तुम अपने जीवनकी रक्षाका प्रयत्न करोगे तथापि, तुम्हारा जीवन नष्ट कर देगा ॥ ८६ ॥ राक्षसेश्वर महाबाहु रावणने ऐसा कहकर बाणसंधान करके सेनापतिको मारा ॥८७॥ धनुषसे छूटे उस बाणसे नीलकी छातीमें आघात लगा, वे जलते हुए शीघ्रही पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ८८ ॥ पिताके महात्म्यके कारण तथा अपने तेजके कारण वे केवल घुटनोंके बल पृथिवीपर गिरे, उनके प्राण नहीं निकले ॥ ८९ ॥ वानरको बेहोश देखकर, रणोत्सुक रावणने मेघके समान गर्जन करनेवाले रथसे चलकर लक्ष्मणपर आक्रमण किया ॥ ९० ॥ युद्धभूमिमें उनको पाकर, सुग्रीव आदिको रोककर, अग्निके समान जलता हुआ, प्रतापी राक्षसराज धनुषका टंकार करने लगा ॥ ९१ ॥ वीर लक्ष्मणने विशाल धनुषको टंकृत करनेवाले रावणसे कहा—निशाचरेन्द्र, मैं आ गया हूँ, अतएव तुमको अब वानरोंसे युद्ध नहीं करना चाहिए ॥ ९२ ॥ रावण पूरे बलके साथ लक्ष्मणके वाक्य और उनके धनुषका उग्र गर्जन सुनकर तथा लक्ष्मणको सामने उपस्थित देखकर क्रोधयुक्त वचन बोला ॥ ९३ ॥ राघव! प्रसन्नताकी बात है कि तुम

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ।
राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥९५॥
जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च पराक्रमं च ।
अवस्थितोऽहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥९६॥
स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज रक्षोधिपः सप्त शरान्सुपुङ्खान् ।
ताँल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैश्चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥९७॥
तान्प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान् ।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम ससर्ज चान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥९८॥
स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं रामानुजः कार्मुकसंप्रयुक्तम् ।
क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णभल्लैः शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥९९॥
स बाणजालान्यपि तानि तानि मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः ।
विसिस्मिये लक्ष्मणलाघवेन पुनश्च बाणान्निशितान्मुमोच ॥१००॥
स लक्ष्मणश्चापि शिताञ्शिताग्रान्महेन्द्रतुल्योऽशनिभीमवेगान् ।
संधाय चापे ज्वलनप्रकाशान्ससर्ज रक्षोधिपतेर्वधाय ॥१०१॥
स तान्प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रः शिताञ्शरांल्लक्ष्मणमाजघान ।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण स्वयंभुदत्तेन ललाटदेशे ॥१०२॥

आज हमारे सामने आये हो, इससे तुम्हारी दुर्बुद्धिता मालूम पड़ती है, तुम्हारा नाश निश्चय है, इसी क्षणमें मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर तुम मर्त्यलोक पहुँचोगे ॥ ९४ ॥ बिना विस्मित हुए ही लक्ष्मण उस रावणसे बोले, जो गर्ज रहा था तथा जिसके तीखे दाँत दिखाई पड़ते थे—राजन् ! प्रभावशाली मनुष्य गर्जन नहीं करता । हे पापियोंका राजा ! तू तो झूठी शेखी बघार रहा है ॥९५॥ राक्षसेन्द्र ! तुम्हारा वीर्य, बल, प्रताप और पराक्रम मैं जानता हूँ । धनुष बाण लिए मैं खड़ा हूँ आओ । व्यर्थ बकवाद करनेसे क्या मतलब ॥ ९६ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर रावणने क्रोध करके सात पाँखवाले बाण छोड़े । उन बाणोंको सुवर्ण-पाँखवाले तीखे बाणोंसे लक्ष्मणने काट दिया ॥ ९७ ॥ रावणने देखा कि उसके बाण छिन्नमस्तक सर्पके समान काट दिये गये, इससे वह बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने दूसरे तीखे बाण छोड़े ॥ ९८ ॥ लक्ष्मण, धनुषसे तीव्र बाणोंकी वर्षा करने लगे, क्षुर, अर्द्धचन्द्र, उत्तमकर्ण और भल्ल नामक अस्त्रोंसे रावणके बाण काटने लगे, वे थोड़ा भी विचलित न हुए ॥९९॥ देवशत्रुओंका राजा अपने सब बाणोंको विफल होते देखकर लक्ष्मणकी क्षिप्रकारितासे विस्मित हुआ । उसने पुनः तीखे बाण छोड़े ॥१००॥ इन्द्रतुल्य लक्ष्मण-ने भी वज्रके समान भयङ्कर वेगवाले, अग्निके समान प्रकाशमान तीखे बाण राक्षसराजके वधके लिए धनुषपर चढ़ाये ॥१०१॥ उन तीखे बाणोंको राक्षसराजने काट दिया और उसने शिवके दिए हुए प्रलयाग्निके समान तेजवाले बाणसे लक्ष्मणके ललाटपर मारा ॥१०२॥ रावणके बाणसे पीड़ित होकर, धनुषको शिथिलता-

स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य ।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥१०३॥
निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः ।
स सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥१०४॥
स कृत्तचापः शरताडितश्च मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ।
जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः स्वयंभुदत्तां युधि देवशत्रुः ॥१०५॥
स तां सधूमानलसंनिकाशां वित्रासनीं संयति वानराणाम् ।
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥१०६॥
तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः ।
तथापि सा तस्य विवेश शक्तिर्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥१०७॥
स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सञ्जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः ।
तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम् ॥१०८॥
हिमवान्मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः । शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न शक्यो भरतानुजः ॥१०९॥
शक्त्या ब्राह्मया तु सौमित्रिस्ताडितोऽपि स्तनान्तरे । विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ११०
ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः । तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥१११॥
ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत् । आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥११२॥

से पकड़कर लक्ष्मण विचलित हो गये । पुनः किसी तरह होशमें आकर उन्होंने इन्द्रके शत्रुका धनुष काट डाला ॥ १०३ ॥ दाशरथि लक्ष्मणने कटेधनुष रावणको तीखे तीन बाणोंसे मारा । बाणसे पीड़ित होकर राजा रावण विचलित हो गया और पुनः कष्टोंसे वह होशमें आया ॥१०४॥ धनुष कट जानेपर और बाणोंसे पीड़ित होनेपर उसका शरीर चर्बी और खूनसे भींग गया । पुनः उसने ब्रह्माकी दी हुई उग्र शक्ति उठाई ॥ १०५ ॥ सधूम अग्निके समान वह शक्ति जल रही थी और जो युद्धमें वानरोंको भयभीत करने-वाली थी, राक्षसनाथने वह शक्ति लक्ष्मणपर फेंकी ॥ १०६ ॥ भरतके छोटे भाई लक्ष्मणने अपनी ओर आती हुई उस शक्तिको हवन की हुई अग्निके समान बाणोंसे काटा । फिर भी वह शक्ति लक्ष्मणकी विशाल छातीमें घुस गयी ॥१०७॥ शक्तिसे आहत होनेपर, शक्तिमान होनेपर भी, लक्ष्मण पृथिवीमें गिरकर जलने लगे । विह्वल होते हुए लक्ष्मणको शीघ्र ही पास जाकर रावणने भुजाओंसे पकड़ा ॥ १०८ ॥ हिमवान् मन्दर मेरु तथा देवताओंके साथ त्रिलोक भी भुजाओंसे उठाया जा सकता है, पर भरतके छोटे भाई लक्ष्मण नहीं उठाये जा सकते ॥ १०९ ॥ ब्रह्मांकी शक्तिसे छातीमें मारे जानेपर लक्ष्मणने विष्णुकी भी समझमें न आनेवाले अपने ऐश्वर्यका, अपनी शक्तिका, ध्यान किया ॥ ११० ॥ दानवोंके दर्पको नष्ट करनेवाले लक्ष्मणको वह देवशत्रु रावण दोनों हाथोंसे पकड़कर हिला भी न सका ॥ १११ ॥ अनन्तर वायुपुत्रने क्रोध करके रावणपर आक्रमण किया और वज्रके समान घूँसेसे उसकी छातीमें मारा ॥ ११२ ॥

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः । जानुभ्यामगमद्भूमौ चचाल च पपात च ॥११३॥
आस्यैश्च नेत्रैः श्रवणैः पपात रुधिरं बहु । विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत् ॥११४॥
विसंज्ञो मूर्च्छितश्चासीन्न च स्थानं समालभत् । विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम् ॥११५॥
ऋषयो वानराश्चैव नेदुर्देवाश्च सासुराः । हनूमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ॥११६॥
आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् । वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः ॥
शत्रूणामप्यकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत्कपेः ॥११७॥
तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि निर्जितम् । रावणस्य रथे तस्मिन्स्थानं पुनरुपागमत् ॥११८॥
रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे । आददे निशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥११९॥
आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः । विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥१२०॥
निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् । राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥१२१॥
अथैनमनुसंक्रम्य हनूमान्वाक्यमब्रवीत् । मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि ॥१२२॥
विष्णुर्यथा गरुत्मन्तमारुह्यामरवैरिणम् । तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम् ॥१२३॥
अथारुरोह सहसा हनूमन्तं महाकपिम् । रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ॥१२४॥
तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स रावणम् । वैरोचनमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥१२५॥
ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् । गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥१२६॥

हनुमानके घूँसा मारनेसे राक्षसराज रावण घुटनोंके बल पृथिवीपर गिर पड़ा । फिर वह काँपने लगा और गिर गया ॥ ११३ ॥ उसके मुँह नेत्र और कानोंसे बहुत अधिक रुधिर निकला, वह घूमकर बेहोश होकर रथपर पड़ गया ॥ ११४ ॥ वह बेहोश और मूर्छित था । उसको अपने रहनेका भी पता नहीं था । भीमपराक्रमी रावणको युद्धमें बेहोश देखकर ऋषि देवता असुर और वानर साधु-साधु कहने लगे । तेजस्वी हनुमान रावणसे पीड़ित लक्ष्मणको हाथोंसे उठाकर रामचन्द्रके पास ले आये । हनुमानकी मैत्री और अनुपम भक्तिके प्रभावसे शत्रुके द्वारा न हिलनेवाले लक्ष्मण हनुमानके लिए हलके हो गये ॥ ११५, ११६, ११७ ॥ युद्धमें पराजित लक्ष्मणको छोड़कर वह शक्ति रावणके रथपर पुनः लौट आयी ॥ ११८ ॥ महातेजस्वी रावण भी उस महायुद्धमें होशमें आकर तीखे बाणों तथा बड़े धनुषको उठाया ॥ ११९ ॥ लक्ष्मणने अपनेको वैष्णवतेजके एक ऐश्वर्यरूपसे स्मरण किया, जिससे उनका घाव भर गया और वे होशमें आ गये ॥१२०॥ रामचन्द्रने देखा कि वानरीसेनाके बड़े-बड़े वीर जमीनपर गिरा दिये गये और जब उन्होंने रावणको युद्धभूमिमें उपस्थित देखा तब उसपर आक्रमण किया ॥ १२१ ॥ हनुमान रामचन्द्रके पास जाकर बोले—मेरी पीठपर चढ़कर आप राक्षसको दण्ड दें, जिस प्रकार विष्णु गरुड़पर चढ़कर देवशत्रुओंको दण्ड देते हैं । हनुमानके कहे उस वाक्यको सुनकर वे महाकपि हनुमानकी पीठपर बैठ गये । उन्होंने रथपर बैठे रावणको युद्धभूमि में देखा ॥१२२, १२३, १२४॥ उस रावणको देखकर महातेजस्वी रामचन्द्रने उसपर आक्रमण किया, जिस प्रकार विष्णुने क्रोधकर तथा अस्त्र उठाकर बलिपर आक्रमण किया था । ॥१२५॥ वज्रके टक्करके समान कठोर शब्द उन्होंने अपने धनुषका किया और वे गंभीर वाणीमें रावणसे

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् । क्व नु राक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमवाप्स्यसि ॥१२७॥

यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान्वा स्वयंभुवैश्वानरशंकरान्वा ।
गमिष्यसि त्वं दशधा दिशो वा तथापि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे ॥१२८॥
यश्चैष शक्त्या निहतस्त्वयाद्य गच्छन्विषादं सहसाभ्युपेत्य ।
स एष रक्षोगणराजमृत्युः सपुत्रपौत्रस्य तवाद्य युद्धे ॥१२९॥
एतेन चात्यद्भुतदर्शनानि शरैर्जनस्थानकृतालयानि ।
चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि रक्षःसहस्राणि निषूदितानि ॥१३०॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः । वायुपुत्रं महावेगं वहन्तं राघवं रणे ॥१३१॥
रोषेण महताविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् । आजघान शरैर्दीप्तैः कालानलशिखोपमैः ॥१३२॥
राक्षसेनाहते तस्य ताडितस्यापि सायकैः । स्वभावतेजोयुक्तस्य भूयस्तेजोऽभ्यवर्धत ॥१३३॥
ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् । दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं क्रोधस्य वशमेयिवान् ॥१३४॥

तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ।
ससारथिं साशनिशूलखड्गं रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः ॥१३५॥
अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान बाणेन वज्राशनिसंनिभेन ।
भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥१३६॥
यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥१३७॥

बोले ॥ १२६ ॥ ठहर, ठहर, मेरा ऐसा अप्रिय काम करके तू कहाँ जाकर रक्षा पा सकता है ॥ १२७ ॥ इन्द्र, यमराज, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि और शिवके पास जाओ अथवा दशों दिशाओंमें जाओ, तो भी तुम मुझसे बच नहीं सकते ॥ १२८ ॥ तुमने जो युद्धमें जाते हुए इस लक्ष्मणको मारा है, जिससे ये बेहोश हो गये हैं, उससे मैं आज पुत्र-पौत्रके सहित तुम्हारा और राक्षसोंका मृत्यु बनूँगा ॥ १२९ ॥ मैंने अपने बाणोंसे देखनेमें अद्भुत, जनस्थानमें रहनेवाले तथा उत्तम अस्त्र-धारण करनेवाले तुम्हारे चौदह हजार राक्षसोंको मारा है ॥ १३० ॥ रामके वचन सुनकर महाबली रावणने महावेगवान् वायुपुत्रको, जिनकी पीठपर रामचन्द्र बैठे थे, पुराने वैरका स्मरण करके बड़े क्रोधसे प्रलयकालकी अग्निके समान प्रदीप्त बाणोंसे मारा ॥ १३१, १३२ ॥ राक्षसके द्वारा बाणोंसे ताड़ित होनेपर भी स्वभावसिद्ध तेजस्वी वायुपुत्रका तेज और भी बढ़ गया ॥ १३३ ॥ अनन्तर महातेजस्वी रामने रावणके द्वारा हनुमानको घायल देखकर बहुत क्रोध किया ॥ १३४ ॥ उसके पास जाकर उसके रथ, पहिया, घोड़ा, ध्वजा, छाता, ऊँची पताका, सारथी, वज्र, शूल, और खड्गको रामचन्द्रने अपने तीखे बाणोंसे काट दिया ॥१३५॥ अनन्तर इन्द्रशत्रु रावणके भुजाओंके बीचमें, जो सुन्दर और विशाल था, वज्रके समान बाणोंको मारा, जिस प्रकार इन्द्रने वज्रसे मेरुको मारा था ॥ १३६ ॥ जो राजा रावण बाणके तथा अशनिके गिरनेसे क्षुभित और चंचल नहीं हुआ, वही

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥१३८॥
तं निर्विषाशीविषसंनिकाशं शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटमुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥१३९॥
कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥१४०॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम् ।
आश्वस्य निर्याहि रथी सधन्वी तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥१४१॥
स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः ।
शरार्दितो भग्नमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा ॥१४२॥
तस्मिन्प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे महाबले दानवदेवशत्रौ ।
हरीन्विशल्यान्सह लक्ष्मणेन चकार रामः परमाहवाग्रे ॥१४३॥
तस्मिन्प्रभग्ने त्रिदशेन्द्रशत्रौ सुरासुरा भूतगणा दिशश्च ।
ससागराः सर्षिमहोरगाश्च तथैव भूम्यम्बुचराः प्रहृष्टाः ॥१४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥



रामके बाणोंसे आहत होकर बहुत ही दुःखी हो गया, विचलित हो गया और उसने बाण छोड़ दिये ॥ १३७ ॥ रावणको विह्वल देखकर रामचन्द्रने दीप्त अर्द्धचन्द्र नामक अस्त्र उठाया और उससे महात्मा रामने सूर्यके समान प्रकाशमान् राक्षसराजके किरीटको काट डाला ॥ १३८ ॥ विषहीन सर्पके समान प्रकाशहीन और किरणरहित सूर्यके समान श्रीहीन और हतमुकुट राक्षसराजसे रामचन्द्र बोले ॥ १३९ ॥ तुमने बड़ा भयङ्कर कर्म किया है । मेरे वीरोंको मारकर तुमने मुझे वीर्यहीन बना दिया । अब तुम थक गये हो, यह जानकर मैं अपने बाणोंसे तुमको नहीं मार रहा हूँ ॥ १४० ॥ जाओ, मैं जानता हूँ, तुम युद्धसे थक गये हो । हे राक्षसराज ! लङ्कामें विश्राम करके धनुष लेकर और रथपर चढ़कर निकलना, उस समय रथपर बैठकर तुम मेरा बल देख सकोगे ॥ १४१ ॥ रामके ऐसा कहनेपर रावण, जिसका अहंकार और प्रसन्नता नष्ट हो गई थी, जिसका धनुष काट दिया गया था, जिसके घोड़े और सारथी मारे जा चुके थे, मुकुट तोड़ दिया गया था, वह शरोंसे पीड़ित होकर शीघ्र लङ्कामें चला गया ॥ १४२ ॥ वानर और देवताके शत्रु महाबली राक्षसराजके लंकामें चले जानेपर युद्धभूमिमें ठहरकर रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ वानरोंके शरीरसे बाण निकाले और उन्हें अच्छा किया ॥ १४३ ॥ रावणके भागकर लौट जानेपर देवता, असुर और भूत, समस्त दिशाएँ, समुद्र, सब सर्प, पृथिवी और जलमें चलनेवाले प्राणी सभी प्रसन्न हुए ॥ १४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥



षष्टितमः सर्गः ६०

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः । भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥
मातंग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः । अभिभूतोऽभवद्राजा राघवेण महात्मना ॥ २ ॥
ब्रह्मदण्डप्रतीकानां विद्युच्चलितवर्चसाम् । स्मरन्राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥
स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् । विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥
सर्वं तत्खलु मे मोघं यत्तप्तं परमं तपः । यत्समानो महेन्द्रेण मानुषेण विनिर्जितः ॥ ५ ॥
इदं तद्ब्रह्मणो घोरं वाक्यं मामभ्युपस्थितम् । मानुषेभ्यो विजानीहि भयं त्वमिति तत्तथा ॥ ६ ॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । अवध्यत्वं मया प्रोक्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ ७ ॥
तमिमं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् । इक्ष्वाकुकुलजातेन अनरण्येन यत्पुरा ॥ ८ ॥
उत्पत्स्यति हि मद्वंशपुरुषो राक्षसाधम । यस्त्वां सपुत्रं सामात्यं सबलं साश्वसारथिम् ॥९॥
निहनिष्यति संग्रामे त्वां कुलाधम दुर्मते । शप्तोऽहं वेदवत्या च यथा सा धर्षिता पुरा ॥१०॥
सेयं सीता महाभागा जाता जनकनन्दिनी । उमा नन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ॥११॥
यथोक्तास्तन्मया प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम् । एतदेव समागम्य यत्नं कर्तुमिहार्हथ ॥१२॥
राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु चर्यागोपुरमूर्धसु । स चाप्रतिमगाम्भीर्यो देवदानवदर्पहा ॥१३॥
ब्रह्मशापाभिभूतस्तु कुम्भकर्णो विबोध्यताम् । समरे जितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ॥१४॥

रामबाणसे दुःखित और हृतदर्प होकर राजा रावणने लंकापुरीमें प्रवेश किया और वह बहुत ही व्यथित हुआ ॥१॥ जिस प्रकार सिंहके द्वारा हाथी और गरुड़के द्वारा सर्प अभिभूत होकर जैसा हो जाता है, महात्मा रामचन्द्रके द्वारा अभिभूत होकर रावण भी वैसा ही हो गया ॥२॥ ब्रह्मदण्ड तथा विद्युत्के समान तेज फैलानेवाले रामचन्द्रके बाणोंका स्मरण कर राक्षसराज व्यथित होने लगा ॥३॥ वह सोनेके दिव्य सिंहासनपर बैठकर राक्षसोंकी ओर देखता हुआ बोला, ॥ ४ ॥ जो कुछ तपस्या मैंने की थी वह सब आज निष्फल हो गयी; क्योंकि इन्द्रके समान मुझको एक मनुष्यने जीत लिया ॥ ५ ॥ यह ब्रह्माका वही वाक्य मुझपर फल रहा है, जो उन्होंने कहा था कि मनुष्यसे तुमको भय होगा वैसा ही हो रहा है ॥ ६ ॥ देवता, गन्धर्व, दानव, यक्ष, राक्षस, सर्पसे अवध्य होनेका वर मैंने माँगा । मनुष्यसे अवध्य होनेका वर मैंने नहीं माँगा ॥७॥ मैं दशरथपुत्र इस रामको वही मनुष्य समझता हूँ, जिसके लिए इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्यने मुझे शाप दिया था—राक्षसाधम ! मेरे वंशमें एक पुरुष उत्पन्न होगा, जो पुत्र, सचिव, सेना, अश्व और सारथिके साथ युद्धमें कुलाधम तथा मूर्ख तुमको मारेगा। वेदवतीने भी मुझे शाप दिया है, क्योंकि मैंने उसपर आक्रमण किया है ॥ ८, ९, १० ॥ वह वेदवती ही जनकपुत्री महाभागा सीताके रूपमें उत्पन्न हुई है । उमा, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुणपुत्रीने भी मुझे शाप दिया है । उन लोगोंने जैसा कहा था वैसा ही हो रहा है; क्योंकि ऋषियोंका कहा असत्य नहीं होता । यही हमारे भयका कारण है । अब आप सब लोग इसको दूर करनेका उपाय करें ॥११, १२॥ राक्षस लोग सड़कोंपर तथा गोपुरके ऊपर रहें । उस अप्रतिम गम्भीर, देवता-दानवोंका दर्प नष्ट करनेवाला, ब्रह्मशापसे शापित कुम्भकर्णको जगाओ । युद्धमें प्रहस्तका मरण तथा अपना पराजय

ज्ञात्वा रक्षो भीमबलमादिदेश महाबलः । द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥१५॥
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् । सुखं स्वपिति निश्चिन्तः कामोपहतचेतनः ॥१६॥
नव सप्त दशाष्टौ च मासान्स्वपिति राक्षसः । मन्त्रं कृत्वा प्रसुप्तोऽयमितस्तु नवमेऽहनि ॥१७॥
स संख्ये हि महाबाहुः ककुदं सर्वरक्षसाम् । वानरान्राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव हनिष्यति ॥१८॥
एष केतुः परं संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम् । कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ॥१९॥
रामेणाभिनिरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन्सुदारुणे । भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ॥२०॥
किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि । ईदृशे व्यसने घोरे यो न साह्याय कल्पते ॥२१॥
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः । जग्मुः परमसंभ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ॥२२॥
ते रावणसमादिष्टा मांसशोणितभोजनाः । गन्धं माल्यं महद्भक्ष्यमादाय सहसा ययुः ॥२३॥
तां प्रविश्य महाद्वारां सर्वतो योजनायताम् । कुम्भकर्णगुहां रम्यां पुष्पगन्धप्रवाहिनीम् ॥२४॥
कुम्भकर्णस्य निःश्वासादवधूता महाबलाः । प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥२५॥
तां प्रविश्य गुहां रम्यां रत्नकाञ्चनकुट्टिमाम् । ददृशुर्नैरृतव्याघ्राः शयानं भीमविक्रमम् ॥२६॥
ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम् । कुम्भकर्णं महानिद्रं समेताः प्रत्यबोधयन् ॥२७॥
ऊर्ध्वलोमाञ्चिततनुं श्वसन्तमिव पन्नगम् । भ्रामयन्तं विनिःश्वासैः शयानं भीमविक्रमम् ॥२८॥

जानकर महाबली रावणने बली राक्षसको आज्ञा दी कि द्वारोंकी रक्षा करो। चारदिवारीपर चढ़ जाओ ॥ १३, १४, १५ ॥ नींदमें पड़े हुए कुम्भकर्णको जगाओ। निश्चिन्त और बेहोश होकर वह सो रहा है। राक्षस कुम्भकर्ण नौ, सात, आठ, दस महीनेतक सोया है और आजसे नवें दिन उसके सोनेकी अवधि है ॥१६, १७॥ महाबली कुम्भकर्णको शीघ्र जगाओ। वह महाबाहु युद्धमें सब राक्षसोंसे श्रेष्ठ है। वह वानरों-को तथा दोनों राजपुत्रोंको युद्धमें शीघ्र मारेगा ॥ १८ ॥ वह युद्धमें समस्त राक्षसोंका प्रधान पताका है; परन्तु वह मूर्ख विलासमें लिप्त होकर सदा सोता रहता है ॥ १९ ॥ इस भयङ्कर युद्धमें रामके द्वारा भगाये जानेका मुझे कुछ भी दुःख नहीं होगा, यदि कुम्भकर्ण जगा दिया जाय ॥२०॥ इस भयानक दुःखके समय जिससे मेरी सहायता न हो, इन्द्रके समान बलवान् उस कुम्भकर्णको मैं क्या करूँगा ॥ २१ ॥ राक्षसेन्द्रके वचन सुनकर वे राक्षस घबड़ाये हुए कुम्भकर्णके घर गये ॥ २२ ॥ मांस रुधिर खानेवाले वे राक्षस, रावण-की आज्ञासे, गन्ध माला तथा भोजनकी बहुतसी सामग्री लेकर शीघ्र ही गये ॥ २३ ॥ वे कुम्भकर्णकी रमणीय गुहापर पहुँचे। उसका बड़ा विशाल द्वार था। वह कई योजन लम्बी थी तथा पुष्पकी गन्ध उससे निकलर ही थी ॥ २४ ॥ कुम्भकर्णकी साँससे भीतर जाते हुए वे राक्षस दूर फेंक दिये गये, तथापि वे किसी-न-किसी तरह उस गुहामें गये ॥ २५ ॥ उस रमणीय गुहामें वे गये। उसमें सुवर्ण और रत्नोंके चौतरे बने हुए थे। उनलोगोंने कुम्भकर्णको सोते देखा ॥ २६ ॥ बिखरे पर्वतके समान सोते हुए, निद्राके द्वारा विकृत बहुत सोनेवाले वे राक्षस इकट्ठे होकर कुम्भकर्णको जगाने लगे ॥ २७ ॥ उसके शरीरके रोम खड़े हो गये थे, साँपके समान स्वाँस छोड़ रहा था, शरीरको उलटपलट रहा था, साँससे राक्षसोंको इधर-उधर फेंक रहा है। भीमपराक्रमी सोए हुए कुम्भकर्णको राक्षस जगा रहे हैं ॥२८॥

भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम्। शयने न्यस्तसर्वाङ्गं मेदोरुधिरगन्धिनम् ॥२९॥
काञ्चनाङ्गदनद्धाङ्गं किरीटेनार्कवर्चसम्। ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं कुम्भकर्णमरिंदमम् ॥३०॥
ततश्चक्रुर्महात्मानः कुम्भकर्णस्य चाग्रतः। भूतानां मेरुसंकाशं राशिं परमतर्पणम् ॥३१॥
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च संचयान्। चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ॥३२॥
ततः शोणितकुम्भांश्च मांसानि विविधानि च। पुरस्तात्कुम्भकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥३३॥
लिलिपुश्च परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम्। दिव्यैराश्वासयामासुर्माल्यैर्गन्धैश्च गन्धिभिः ॥३४॥
धूपगन्धांश्च ससृजुस्तुष्टुवुश्च परंतपम्। जलदा इव चानेदुर्यातुधानास्ततस्ततः ॥३५॥
शङ्खांश्च पूरयामासुः शशाङ्कसदृशप्रभान्। तुमुलं युगपच्चापि विनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥३६॥
नेदुरास्फोटयामासुश्चिक्षिपुस्ते निशाचराः। कुम्भकर्णविबोधार्थं चक्रुस्ते विपुलं स्वरम् ॥३७॥

सशङ्खभेरीपणवप्रणादं सास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम्।
दिशो द्रवन्तस्त्रिदिवं किरन्तः श्रुत्वा विहंगाः सहसा निपेतुः ॥३८॥
यदा भृशार्तैर्निनदैर्महात्मा न कुम्भकर्णो बुबुधे प्रसुप्तः।
ततो भुसुण्डीर्मुसलानि सर्वे रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥३९॥
तं शैलशृङ्गैर्मुसलैर्गदाभिर्वक्षःस्थले मुद्गरमुष्टिभिश्च।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णं रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥४०॥

तस्य निःश्वासवातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसः। राक्षसाः कुम्भकर्णस्य स्थातुं शेकुर्न चाग्रतः ॥४१॥

बहुत लम्बी नाक थी, पातालके समान बड़ा मुँह था, शय्यापर उसका समस्त शरीर पड़ा था और उसके शरीरसे चर्बी तथा रुधिरकी बू आ रही थी ॥२९॥ सोनेका बाजूबन्द पहने हुए था, मुकुटके कारण सूर्यके समान तेजस्वी मालूम पड़ता था। राक्षसश्रेष्ठ, शत्रुनाशी कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥ उन राक्षसोंने कुम्भकर्णके आगे परमतृप्तिकारक प्राणियोंकी राशि, विशाल मेरु पर्वतके समान लगा दी ।।३१।। राक्षसोंने मृगों, भैंसों और सूअरोंकी राशि इकट्ठी की। अन्नकी राशि भी वहाँ इकट्ठी की ॥ ३२ ॥ देवशत्रुओंने घड़ेमें भरकर रुधिर तथा अनेक प्रकारके मांस कुम्भकर्णके आगे रखे ।। ३३ ।। शत्रुतापी कुम्भकर्णके शरीरको उत्तम चन्दनसे लीप दिया। दिव्य मालाओं तथा सुगन्धित पदार्थोंसे वे उसे प्रसन्न करने लगे ।। ३४ ।। धूपकी गन्ध वहाँ फैलाई गयी। उसकी स्तुति की गयी और राक्षस इधर-उधर मेघके समान गर्जन करने लगे ।। ३५ ।। चन्द्रमाके समान प्रकाशमान शंख बजाने लगे। क्रोध करके एक साथ बड़े जोरसे उन लोगोंने शङ्ख बजाया ॥ ३६ ॥ कुछ लोग किसीको पुकारने लगे, कुछ लोग ताली बजाने लगे और कुछ लोग पैर पटकने लगे। इस प्रकार राक्षसोंने कुम्भकर्णको जगानेके लिए बहुत शोर मचाया ॥ ३७ ॥ शंख, भेरी और पणवके शब्दोंसे तथा ताली कूदना और सिंहनादसे दिशाओंमें भागते हुए तथा आकाशमें उड़ते हुए पक्षी सहसा पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ जब महात्मा कुम्भकर्ण बार-बार उन शब्दोंके करनेपर भी न उठे तब राक्षसोंने भुशुण्डि, मूसल तथा गदा लिए ॥ ३९ ॥ पर्वतके शिखरों, मुसलों, गदाओं, मुद्गरोंसे सुखसे सोए हुए कुम्भकर्णकी छातीमें मारने लगे ॥ ४० ॥ राक्षस कुम्भकर्णकी साँसकी हवासे उसके आगे खड़े

ततः परिहिता गाढं राक्षसा भीमविक्रमाः । मृदङ्गपणवान्भेरीः शङ्खकुम्भगणांस्तथा ॥४२॥
दश राक्षससाहस्रं युगपत्पर्यवारयत् । नीलाञ्जनचयाकारं ते तु तं प्रत्यबोधयन् ॥४३॥
अभिघ्नन्तो नदन्तश्च न च संबुबुधे तदा । यदा चैनं न शेकुस्ते प्रतिबोधयितुं तदा ॥४४॥
ततो गुरुतरं यत्नं दारुणं समुपाक्रमन् । अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दण्डकशाङ्कुशैः ॥४५॥
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च सर्वप्राणैरवादयन् । निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटंकरैः ॥४६॥
मुद्गरैर्मुसलैश्चापि सर्वप्राणसमुद्यतैः । तेन नादेन महता लङ्का सर्वा प्रपूरिता ॥
सपर्वतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥४७॥
ततो भेरीसहस्रं तु युगपत्समहन्यत । मृष्टकाञ्चनकोणानामसक्तानां समन्ततः ॥४८॥
एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यत । शापस्य वशमापन्नस्ततः क्रुद्धा निशाचराः ॥४९॥
ततः कोपसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमाः । तद्रक्षो बोधयिष्यन्तश्चक्रुरन्ये पराक्रमम् ॥५०॥
अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम् । केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णानन्ये दशन्ति च ॥५१॥
उदकुम्भशतानन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः । न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशं गतः ॥५२॥
अन्ये च बलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणयः । मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन्कूटमुद्गरान् ॥५३॥
रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वशः । वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः ॥५४॥
वारणानां सहस्रं च शरीरेऽस्य प्रधावितम् । कुम्भकर्णस्तदा बुद्धवा स्पर्शं परमबुध्यत ॥५५॥

न रह सके ॥ ४१ ॥ पराक्रमी राक्षस अपने वस्त्रोंको खूब कसकर मृदङ्ग, पणव, भेरी, शंख आदि बजाने लगे ॥ ४२ ॥ अंजनकी राशिके समान उस कुम्भकर्णको दस हजार राक्षसोंने एक साथ घेर लिया और वे उसे जगाने लगे ॥ ४३ ॥ उनलोगोंने उसे मारा और चिल्लाया, पर वह नहीं जगा। जब उसे वे इस तरह न जगा सके, तब और कठोर यत्न करना उनलोगोंने प्रारम्भ किया ॥४४॥ घोड़ों, ऊँटों, गदहों तथा हाथियोंको वे डंडे, कोड़े तथा अंकुशसे मारने लगे, जिससे कि वे कुम्भकर्णकी देहपर चढ़ें ॥ ४५ ॥ भेरी, शङ्ख और मृदङ्गोंको पूरे बलके साथ बजाने लगे और लोहेके बड़े-बड़े कीलोंसे उसका शरीर छेदने लगे ॥ ४६ ॥ मुद्गरों और मूसलोंको पूरे बलसे उठाकर कुम्भकर्णको मारने लगे। इस कोलाहलसे समूची लङ्का भर गयी, पर्वत और वन गूँज गये, पर कुम्भकर्ण न उठा ॥ ४७ ॥ अनन्तर हजारों भेरी एक साथ बजायी गयीं, शुद्ध सोनेके बने डंडोंसे, जो अलग-अलग थे, वे बजाई गयीं ॥ ४८ ॥ ऐसा करनेपर भी बहुत सोनेवाला वह राक्षस न उठा, क्योंकि वह शापके अधीन था, तब राक्षसोंको क्रोध हुआ ॥ ४९ ॥ वे पराक्रमी सब राक्षस क्रोध करके उसको जगानेके लिए अस्त्रप्रहार करने लगे ॥ ५० ॥ कुछलोग भेरी बजाने लगे और कई जोरसे चिल्लाने लगे, कई उसके बाल खींचने लगे, कई दाँतसे कान काटने लगे ॥ ५१ ॥ कई सैकड़ों घड़े जल लेकर उसके कानमें छिड़कने लगे, पर उसने करवट भी नहीं बदली; क्योंकि वह बहुत निद्राके वशीभूत था ॥ ५२ ॥ दूसरे बलवान् राक्षस मुद्गर लेकर उसके मस्तक, छाती और शरीरमें मारने लगे ॥५३॥ रस्सीमें बँधी हुई शतघ्नियोंसे वह राक्षस मारा गया, फिर भी उस विशालशरीर राक्षसकी नींद न खुली ॥५४॥ हजारों हाथी जब उसके शरीरपर चलाए गये, तब उसे कुछ स्पर्श मालूम हुआ और वह उठा ॥ ५५ ॥ वह पर्वत-

स पात्यमानैर्गिरिशृङ्गवृक्षैरचिन्तयंस्तान्विपुलान्प्रहारान् ।
निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्च विजृम्भमाणः सहसोत्पपात ॥५६॥
स नागभोगाचलशृङ्गकल्पौ विक्षिप्य बाहू जितवज्रसारौ ।
विवृत्य वक्त्रं वडवामुखाभं निशाचरोऽसौ विकृते जजृम्भे ॥५७॥
तस्य जाजृम्भमाणस्य वक्त्रं पातालसंनिभम् । ददृशे मेरुशृङ्गाग्रे दिवाकर इवोदितः ॥५८॥
स जृम्भमाणोऽतिबलः प्रबुद्धस्तु निशाचरः । निःश्वासश्चास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः ॥५९॥
रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद्बभौ । युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः ॥६०॥
तस्याग्निदीप्तसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी । ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ ॥६१॥
ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्च विविधान्बहून् । वराहान्महिषांश्चैव बभक्ष स महाबलः ॥६२॥
आदद्बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितोऽपिबत् । मेदःकुम्भांश्च मद्यांश्च पपौ शक्ररिपुस्तदा ॥६३॥
ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः । शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन् ॥६४॥
निद्राविशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचनः । चारयन्सर्वतो दृष्टिं तानुवाच निशाचरान् ॥६५॥
स सर्वान्सान्त्वयामास नैरृतान्नैरृतर्षभः । बोधनाद्विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत् ॥६६॥
किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः । कच्चित्सुकुशलं राज्ञो भयं वा नेह किंचन ॥६७॥
अथ वा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम् । यदर्थमेव त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥६८॥

शृङ्ग तथा वृक्षोंकी भयङ्कर मारकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर और भूखसे पीड़ित होनेसे जम्हाई लेता हुआ शीघ्रही उठ खड़ा हुआ ॥ ५६ ॥ साँपके शरीरके समान तथा पर्वतशिखरके समान वज्रको जीतनेवाले दोनों बाहुओंको फैलाकर वड़वानलके समान मुँह बाकर बहुतही बुरे ढंगसे जम्हाई लेने लगा ॥ ५७ ॥ बार-बार जम्हाई लेनेसे कुम्भकर्णके मुहका भीतरीभाग पातालके समान मालूम पड़ता था और ऊपरी भाग मेरु-पर्वतस्थित सूर्यके समान मालूम पड़ता था ॥ ५८ ॥ अतिबलवान निशाचर उठकर जम्हाई लेने लगा, उसकी साँस चलने लगी, जैसे पर्वतसे हवा चल रही हो ॥ ५९ ॥ जगते हुए कुम्भकर्णका वह रूप ऐसा मालूम पड़ा कि प्रलयकालमें सब प्राणियोंको जलानेवाला काल हो ॥ ६० ॥ उसकी आँखे प्रदीप्त अग्निके तथा बिजलीके समान जल रही थीं । वे प्रदीप्त महाग्रहके समान दिखाई पड़ती थीं ॥ ६१ ॥ तब राक्षसोंने खानेकी वे सब चीजें उसे दिखलाईं । सूअरों और भैंसोंको महाबली कुम्भकर्णने खा डाला ॥ ६२ ॥ भूखे कुम्भकर्णने मांस खाया और प्यासके कारण उसने खून पीया । चर्बीके घड़े तथा शराब उस इन्द्रशत्रुने पी डाले ॥ ६३ ॥ उसको तृप्त जानकर राक्षस उसके सामने आये और शिर झुकाकर प्रणाम करके, उनलोगोंने चारों ओरसे उसे घेर लिया ॥६५॥ राक्षसोंके स्वामीने समस्त राक्षसोंको आश्वासन दिया और अपने जगानेसे विस्मित होकर वह राक्षसोंसे इस प्रकार बोला ॥ ६६ ॥ आपलोगोंने किसलिये आदरपूर्वक हमें जगाया, राजा कुशलसे तो हैं ? किसी प्रकारका भय तो नहीं है ? ॥ ६७ ॥ मालूम होता है, कि राजाको शत्रुसे भय उत्पन्न हुआ है, जिस कारण आपलोगोंने शीघ्रतापूर्वक मुझे उठाया है ॥ ६८ ॥

अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम्। दारयिष्ये महेन्द्रं वा शीतयिष्ये तथानलम् ॥६९॥
नह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मादृशम्। तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम् ॥७०॥
एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णमरिंदमम्। यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरभाषत ॥७१॥
न नो देवकृतं किंचिद्भयमस्ति कदाचन। मानुषान्नो भयं राजंस्तुमुलं संप्रबाधते ॥७२॥
न दैत्यदानवेभ्यो वा भयमस्ति न नः क्वचित्। यादृशं मानुषं राजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥७३॥
वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता। सीताहरणसंतप्ताद्रामान्नस्तुमुलं भयम् ॥७४॥
एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी। कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥७५॥
स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः। व्रजेति संयुगे मुक्तो रामेणादित्यवर्चसा ॥७६॥
यन्न देवैः कृतो राजा नापि दैत्यैर्न दानवैः। कृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसंशयात् ॥७७॥
स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराभवम्। कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥७८॥
सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम्। राघवं च रणे जित्वा ततो द्रक्ष्यामि रावणम् ॥७९॥
राक्षसांस्तर्पयिष्यामि हरीणां मांसशोणितैः। रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पास्यामि शोणितम् ॥८०॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम्।
महोदरो नैर्ऋतयोधमुख्यः कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥८१॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ विमृश्य च। पश्चादपि महाबाहो शत्रून्युधि विजेष्यसि ॥८२॥

आज राक्षसराजका भय उखाड़ फेंकूँगा, इन्द्रको चीर डालूँगा, अग्निको तोड़ डालूँगा ॥ ६९ ॥ साधारण कारणसे मेरे-जैसे सोनेवालेको नहीं जगाया जाता, आपलोग मेरे जगानेका यथार्थ कारण बतलावें ॥ ७० ॥ घबड़ाकर इसप्रकार बोलनेवाले शत्रुहन्ता कुम्भकर्णसे यूपाक्षनामका राजाका सचिव हाथ जोड़कर बोला ॥ ७१ ॥ देवताओंके द्वारा हमलोगोंको कोई भी भय नहीं है, इस समय मनुष्यसम्बन्धी भय हमलोगोंको बड़ी प्रबलतासे दुखी कर रहा है ॥ ७२ ॥ दैत्य और दानवोंसे भी हमलोगोंको कोई भय नहीं है, जैसा कि मनुष्यका भय इस समय हमलोगोंको उपस्थित हुआ है ॥ ७३ ॥ पर्वतके समान विशाल वानरोंने इस समय लंकाको घेर लिया है, सीताहरणसे दुखी रामचन्द्रसे हमलोगोंको इस समय बड़ा भय उत्पन्न हो गया है ॥ ७४ ॥ एक वानरने पहले इस महापुरी लंकाको जला दिया था और अक्षकुमारको साथियों तथा हाथीके साथ मार डाला था ॥७५॥ स्वयं राक्षसराज देवशत्रु रावणको, सूर्यके समान प्रकाशमान रामने, पराजित करके कहा कि घर जाओ, मैंने तुम्हे छोड़ दिया ॥ ७६ ॥ राजाकी जो अवस्था देवताओं, दानवों और दैत्योंने न की, उनकी वह दशा रामने की, उन्होंने रावणका प्राण-संकटसे उद्धार किया ॥७७॥ यूपाक्षसे युद्धमें भाईके पराजयकी बात सुनकर, कुम्भकर्ण आँखे फाड़कर यूपाक्षसे बोला ॥ ७८ ॥ यूपाक्ष, आजही समूची वानरीसेनाको लक्ष्मण और रामके साथ युद्धमें जीत लूँगा, तब रावणके दर्शन करूँगा ॥ ७९ ॥ वानरोंके मांस और खूनसे राक्षसोंको तृप्त करूँगा और रामलक्ष्मणका खून स्वयं पीऊँगा ॥ ८० ॥ कुम्भकर्णके अहंकारयुक्त और क्रोधके कारण नीतिविरुद्ध वचन सुनकर राक्षस योद्धाओंमें प्रधान महोदरनामक राक्षस हाथ जोड़कर यह बोला ॥ ८१ ॥ रावणकी बातें सुनकर, गुण-दोषोंका विचारकरके, महाबाहु

महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः । कुम्भकर्णो महातेजाः संप्रतस्थे महाबलः ॥८३॥
सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् । राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥८४॥
तेऽभिगम्य दशग्रीवमासीनं परमासने । ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्व एव निशाचराः ॥८५॥
कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽसौ भ्राता ते राक्षसेश्वर । कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यसे तमिहागतम् ॥८६॥
रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो राक्षसांस्तानुपस्थितान् । द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूज्यताम् ॥८७॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः । कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥८८॥
द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुंगवः । गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं संप्रहर्षय ॥८९॥
कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् । तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥९०॥
प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमहर्षितः । पिपासुस्त्वरयामास पानं बलसमीरणम् ॥९१॥
ततस्ते त्वरितास्तत्र राक्षसा रावणाज्ञया । मद्यं भक्ष्यांश्च विविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥९२॥
पीत्वा घटसहस्रे द्वे गमनायोपचक्रमे । ईषत्समुत्कटो मत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥९३॥
कुम्भकर्णो बभौ रुष्टः कालान्तकयमोपमः । भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोबलसमन्वितः ॥
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥९४॥
स राजमार्गं वपुषा प्रकाशयन्सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ।
जगाम तत्राञ्जलिमालया वृतः शतक्रतुर्गेहमिव स्वयंभुवः ॥९५॥

कुम्भकर्ण युद्धमें शत्रुओंको जीत सकेंगे ॥८२॥ महोदरके वचन सुनकर महाबली कुम्भकर्णने राक्षसोंके साथ प्रस्थान किया ॥८३॥ भयानक आँख, रूप और पराक्रमवाले कुम्भकर्णको उठाकर, राक्षस दौड़कर रावणके पास गये ॥ ८४ ॥ सिंहासनपर बैठे हुए रावणके पास जाकर सब राक्षस हाथ जोड़कर बोले ॥ ८५ ॥ राक्षसेश्वर ! आपके भाई कुम्भकर्ण जाग गये । क्या वे वहींसे युद्धमें जायँ या यहाँ आवें, आप उन्हें देखना चाहते हैं ? ॥८६॥ आये हुए राक्षसोंसे प्रसन्न होकर रावण बोला—मैं उन्हें यहाँ देखना चाहता हूँ, तुमलोग आदरपूर्वक ले आओ ॥ ८७ ॥ रावणकी आज्ञा मानकर वे राक्षस कुम्भकर्णके पास आये और रावणके कहनेसे वे कुम्भकर्णसे ऐसा बोले ॥ ८८ ॥ सब राक्षसोंमें श्रेष्ठ राजा आपको देखना चाहते हैं, आप वहाँ चलें और अपने भाईको हर्षित करें ॥ ८९ ॥ दुर्धर्ष कुम्भकर्ण भाईकी आज्ञा सुनकर शय्यासे उठा ॥ ९० ॥ स्नान करके, शरीर पोंछकर, प्रसन्नतापूर्वक बल बढ़ानेवाला पान शीघ्र लानेके लिए उसने कहा ॥ ९१ ॥ वे राक्षस रावणकी आज्ञासे शीघ्र ही मद्य तथा अनेक प्रकारकी खानेकी वस्तु ले आये ॥ ९२ ॥ दो हजार घड़े पीकर वह चलनेके लिए तयार हुआ । वह थोड़ा तेज हो गया, उसे थोड़ा नशा आ गया और तेजस्वी तथा बलवान् बन गया ॥ ९३ ॥ अपने भाईके घर राक्षसोंके साथ जाता हुआ क्रुद्ध कुम्भकर्ण प्रलयकालके यमराजके समान मालूम होता था, उसके पैर रखनेसे पृथिवी काँपने लगी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार सूर्य हजार किरणोंसे पृथिवीको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अपने शरीरसे नगरकी सड़कको प्रकाशित करता हुआ चला । हाथ जोड़े हुए राक्षसोंके साथ वह चला, जैसे इन्द्र ब्रह्माके यहाँ जा रहे हों ॥ ९५ ॥ शत्रुघाती पर्वत-

तं राजमार्गस्थममित्रघातिनं वनौकसस्ते सहसा बहिःस्थिताः ।
दृष्ट्वाप्रमेयं गिरिशृङ्गकल्पं वितत्रसुस्ते सह यूथपालैः ॥९६॥
केचिच्छरण्यं शरणं स्म रामं व्रजन्ति केचिद्व्यथिताः पतन्ति ।
केचिद्दिशश्च व्यथिताः पतन्ति केचिद्भयार्ता भुवि शेरते स्म ॥९७॥
तमद्रिशृङ्गप्रतिमं किरीटिनं स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ।
वनौकसः प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुतं भयार्दिता दुद्रुविरे यतस्ततः ॥९८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

———:०*०:———

एकषष्टितमः सर्गः ६१

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् । किरीटिनं महाकायं कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् । क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं यथा ॥ २ ॥
सतोयाम्बुदसंकाशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् । दृष्ट्वा पुनः प्रदुद्राव वानराणां महाचमूः ॥ ३ ॥
विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम् । सविस्मितमिदं रामो विभीषणमुवाच ह ॥ ४ ॥
कोऽसौ पर्वतसंकाशः किरीटी हरिलोचनः । लङ्कायां दृश्यते वीरः सविद्युदिव तोयदः ॥ ५ ॥
पृथिव्यां केतुभूतोऽसौ महानेकोऽत्र दृश्यते । यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति यतस्ततः ॥ ६ ॥
आचक्ष्व सुमहान्कोऽसौ रक्षो वा यदि वासुरः । न मयैवंविधं भूतं दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ७ ॥

शिखरके समान विशाल उसको देखकर सड़कपर बाहर खड़े हुए वानर अपने सेनापतियोंके साथ डर गये ॥९६॥ कोई शरणागतरक्षक रामकी शरण जाने लगा, कोई व्यथित होकर गिर पड़ा, कोई व्यथित होकर दिशाओंमें भाग गया और कोई भयभीत होकर जमीनपर सो गया ॥ ९७ ॥ पर्वतशिखरके समान ऊँचा, किरीटधारी, अपने तेजसे सूर्यके समान मालूम पड़नेवाला उस राक्षसको देखकर वानर इधर-उधर भागने लगे ॥ ९८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

———*———

अनन्तर तेजस्वी वीर्यवान् रामचन्द्रने धनुष लेकर विशालशरीर किरीटधारी कुम्भकर्णको देखा ॥१॥ पर्वतके समान देख पड़नेवाले राक्षसश्रेष्ठको रामने देखा। वह उस तरह पैर उठा रहा था, जिस तरह नारायणने आकाश नापनेके लिए पैर उठाया था ॥ २ ॥ सजल मेघके समान और कनकभूषण धारण करनेवाले उसको देखकर वानरोंकी बड़ी सेना भागने लगी ॥ ३ ॥ अपनी सेनाका भागना और राक्षसोंका बढ़ना देखकर रामचन्द्र विस्मयके साथ विभीषणसे बोले, ॥ ४ ॥ पर्वतके समान यह कौन है ? इसकी आँखें पीली हैं, यह किरीट धारण किये हुए है, विद्युतयुक्त मेघके समान यह वीर लंकामें दीख पड़ता है ॥ ५ ॥ यह पृथिवीमें अकेला ही पताकाके समान दीख पड़ता है, जिसको देखकर वानर इधर-उधर भाग रहे हैं ॥६॥ कहो यह लम्बा कौन है ? राक्षस है या असुर ? मैंने ऐसा प्राणी पहले नहीं देखा था ॥७॥ अक्लिष्टकर्मा

संपृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा। विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८॥
येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः। सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान् ॥
अस्य प्रमाणसदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते ॥ ९॥
एतेन देवा युधि दानवाश्च यक्षा भुजंगाः पिशिताशनाश्च।
गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च सहस्रशो राघव संप्रभग्नाः ॥१०॥
शूलपाणिं विरूपाक्षं कुम्भकर्णं महाबलम्। हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोऽयमिति मोहिता ॥११॥
प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः। अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥१२॥
बालेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना। भक्षितानि सहस्राणि प्रजानां सुबहून्यपि ॥१३॥
तेषु संभक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिताः। यान्ति स्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥१४॥
स कुम्भकर्णं कुपितो महेन्द्रो जघान वज्रेण शितेन वज्री।
स शक्रवज्राभिहतो महात्मा चचाल कोपाच्च भृशं ननाद ॥१५॥
तस्य नानद्यमानस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः। श्रुत्वा निनादं वित्रस्ताः प्रजा भूयो वितत्रसुः ॥१६॥
ततः क्रुद्धो महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः। निष्कृष्यैरावताद्दन्तं जघानोरसि वासवम् ॥१७॥
कुम्भकर्णप्रहारार्तो विजज्वाल स वासवः। ततो विषेदुः सहसा देवा ब्रह्मर्षिदानवाः ॥
प्रजाभिः सह शक्रश्च ययौ स्थानं स्वयंभुवः ॥१८॥
कुम्भकर्णस्य दौरात्म्यं शशंसुस्ते प्रजापतेः। प्रजानां भक्षणं चापि शशंसुस्ते दिवौकसाम् ॥
आश्रमध्वंसनं चापि परस्त्रीहरणं तथा ॥१९॥

रामचन्द्रके ऐसा पूछनेपर महाबुद्धिमान् विभीषण उनसे बोले, ॥ ८ ॥ जिसने सूर्यके युद्धमें इन्द्रको पराजित किया था, यह वही विश्रवाका पुत्र प्रतापी कुम्भकर्ण है। इसके बराबर ऊँचा दूसरा राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥ इसने युद्धमें देवताओं, दानवों, यक्षों, नागों, राक्षसों, गन्धर्वों, विद्याधरों, पन्नगोंको हजारों बार भगाया है ॥ १० ॥ विरूपाक्ष, शूल धारण करनेवाले महाबली कुम्भकर्णको देवता न मार सके, वे इसे काल समझकर भ्रममें पड़ गये ॥ ११ ॥ महाबली कुम्भकर्ण स्वभावसे ही तेजस्वी है। और राक्षस तो वरदानसे बली हुए हैं, ॥१२॥ यह बालक जैसे ही उत्पन्न हुआ, भूखके कारण इसने कई हजार प्रजाओंको खा डाला ॥१३॥ जब यह प्रजाओंको खाने लगा, तब वे भयभीत होकर इन्द्रकी शरण गयीं और अपना दुःख उन्होंने बतलाया ॥ १४ ॥ वज्रधारण करनेवाले इन्द्रने क्रोध करके तीखे वज्रसे कुम्भकर्णको मारा। इन्द्रके वज्रसे आहत होकर महात्मा कुम्भकर्ण विचलित हुआ और गर्जन करने लगा ॥ १५ ॥ राक्षस कुम्भकर्णके गर्जनका शब्द सुनकर प्रजा पुनः डर गयी ॥ १६ ॥ कुम्भकर्णने क्रोध करके ऐरावतका दाँत खींचकर इन्द्रकी छाती में मारा ॥ १७ ॥ कुम्भकर्णके प्रहारसे पीड़ित होकर इन्द्र जलने लगे। देवता, ब्रह्मर्षि और दानव दुःखी हुए। प्रजाके साथ इन्द्र ब्रह्माके पास गये ॥ १८ ॥ कुम्भकर्णकी दुष्टता उनलोगोंने ब्रह्मासे कही, प्रजाओंको खाना, देवताओंका आश्रम नष्ट करना और परस्त्रीका हरण करना उन्होंने ब्रह्मासे कहा ॥१९॥

एवं प्रजा यदि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः। अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥२०॥
वासवस्य वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः। रक्षांस्यावाहयामास कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥२१॥
कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितत्रास प्रजापतिः। कुम्भकर्णमथाश्वस्तः स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥२२॥
ध्रुवं लोकविनाशाय पौलस्त्येनासि निर्मितः। तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे ॥२३॥
ब्रह्मशापाभिभूतोऽथ निपपाताग्रतः प्रभोः। ततः परमसंभ्रान्तो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥२४॥
प्रवृद्धः काञ्चनो वृक्षः फलकाले निकृन्त्यते। न नप्तारं स्वकं न्याय्यं शप्तुमेवं प्रजापते ॥२५॥
न मिथ्यावचनश्च त्वं स्वप्स्यत्येव न संशयः। कालस्तु क्रियतामस्य शयने जागरणे तथा ॥२६॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत्। शयिता ह्येष षण्मासमेकाहं जागरिष्यति ॥२७॥
एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन्भूमिं बुभुक्षितः। व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान्संवृद्ध इव पावकः ॥२८॥
सोऽसौ व्यसनमापन्नः कुम्भकर्णमबोधयत्। त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा संप्रति रावणः ॥२९॥
स एष निर्गतो वीरः शिबिराद्भीमविक्रमः। वानरान्भृशसंक्रुद्धो भक्षयन्परिधावति ॥३०॥
कुम्भकर्णं प्रतीक्ष्यैव हरयोऽद्य प्रदुद्रुवुः। कथमेनं रणे क्रुद्धं वारयिष्यन्ति वानराः ॥३१॥
उच्यन्तां वानराः सर्वे यन्त्रमेतत्समुच्छ्रितम्। इति विज्ञाय हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥३२॥
विभीषणवचः श्रुत्वा हेतुमत्सुमुखोद्गतम्। उवाच राघवो वाक्यं नीलं सेनापतिं तदा ॥३३॥
गच्छ सैन्यानि सर्वाणि व्यूह्य तिष्ठस्व पावके। द्वाराण्यादाय लङ्कायाश्चर्याश्चास्याथ संक्रमान् ॥३४॥
शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च शिलाश्चाप्युपसंहरन्। भवन्तः सायुधाः सर्वे वानराः शैलपाणयः ॥३५॥

यदि यह इसी प्रकार प्रतिदिन प्रजाका भक्षण करेगा तो थोड़े ही दिनोंमें लोक शून्य हो जायँगे ॥ २० ॥ इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर पितामहब्रह्माने राक्षसोंको बुलाया और कुम्भकर्णको देखा ॥२१॥ कुम्भकर्णको देखकर वे डर गये, पुनः सम्हलकर वे कुम्भकर्णसे बोले ॥ २२ ॥ संसारका विनाश करनेके लिए ही निश्चय पौलस्त्यने तुम्हें बनाया है, अतएव तुम आजहीसे मृतकके समान शयन करोगे ॥ २३ ॥ वह ब्रह्माके शाप के कारण उनके आगे गिर पड़ा। तब बहुत ही उद्विग्न होकर रावण बोला ॥ २४ ॥ सोना फलनेवाला वृक्ष फल देनेके समय नहीं काटा जाता, अपने पौत्रको शाप देना उसी प्रकार उचित नहीं ॥ २५ ॥ आपकी बात झूठी नहीं होती, इसे तो सोना ही पड़ेगा। अतएव आप इसके सोने और जागनेका कुछ समय नियत कर दें ॥ २६ ॥ रावणके वचन सुनकर ब्रह्माने कहा—यह छ महीने सोएगा और एक दिन जागेगा ॥ २७ ॥ एक दिन यह भूखसे पृथिवी में विचरण करेगा, मुँह बाकर यह लोगोंको खायगा, जिस प्रकार बढ़ा हुआ अग्नि लोगोंको खाता है ॥ २८ ॥ दुःख पड़नेपर आपके पराक्रमसे डरकर राजा रावणने कुम्भकर्णको जगाया है ॥ २९ ॥ यह पराक्रमी वीर क्रोधपूर्वक शिविरसे निकलकर वानरोंको खाता हुआ दौड़ रहा है ॥ ३० ॥ कुम्भकर्णको देखते ही वानर भागने लगे हैं, युद्धमें वे इसको कैसे रोक सकेंगे ॥ ३१ ॥ अतएव आप वानरोंसे कह दें कि यह ऊँचा यन्त्र खड़ा किया गया है, यह जानकर वानर निर्भय हो जायँगे ॥३२॥ हेतुयुक्त और वानरोंको सुखी करनेवाला विभीषणका वचन सुनकर रामचन्द्र नील सेनापतिसे बोले ॥३३॥ अग्निपुत्र, जाओ, अपनी सेनाका व्यूह बनाकर वहीं रहो। लङ्काके द्वार, उसके प्रधान मार्ग तथा उससे सम्बन्ध

राघवेण समादिष्टो नीलो हरिचमूपतिः। शशास वानरानीकं यथावत्कपिकुञ्जरः ॥३६॥
ततो गवाक्षः शरभो हनूमानङ्गदस्तथा। शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययुः ॥३७॥
रामवाक्यमुपश्रुत्य हरयो जितकाशिनः। पादपैरर्दयन्वीरा वानराः परवाहिनीम् ॥३८॥
ततो हरीणां तदनीकमुग्रं रराज शैलोद्यतवृक्षहस्तम्।
गिरेः समीपानुगतं यथैव महन्महाम्भोधरजालमुग्रम् ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः। राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥ १ ॥
राक्षसानां सहस्रैश्च वृतः परमदुर्जयः। गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥
स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम्। ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥
स तत्तदा सूर्य इवाभ्रजालं प्रविश्य रक्षोधिपतेर्निवेशनम्।
ददर्श दूरेऽग्रजमासनस्थं स्वयंभुवं शक्र इवासनस्थम् ॥ ४ ॥
भ्रातुः स भवनं गत्वा रक्षोगणसमन्वितः। कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ५ ॥
सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च। ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥ ६ ॥
अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम्। तूर्णमुत्थाय संहृष्टः संनिकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

रखनेवाले मार्ग अपने अधिकारमें करके वहीं रहो। पर्वतशिखर, वृक्ष और पत्थर एकत्र करो। अस्त्र, शस्त्र तथा पत्थर लेकर वानर तयार रहें ॥३४,३५॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे सेनापति नीलने वानरीसेनाका सुप्रबन्ध किया ॥ ३६ ॥ अनन्तर गवाक्ष, शरभ, हनुमान और अङ्गद पर्वतशिखर लेकर द्वारपर पहुँच गये, ये वानर स्वयं भी पर्वतके समान विशाल थे ॥ ३७ ॥ रामके वचन सुनकर वानर निर्भय हो गये। वृक्षोंसे शत्रुसेनाको पीड़ित करने लगे ॥ ३८ ॥ पर्वतशृङ्ग और वृक्ष हाथमें लेकर वानरोंकी वह उग्र सेना पर्वतके पास आये हुए बहुत बड़े मेघसमुदायके समान मालूम होने लगी ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

समयके पहले जगाये जानेसे नींद और मद्यपानसे व्याकुल पराक्रमी राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण सुशोभित होकर नगरके प्रधान मार्गसे चला ॥ १ ॥ हजारो राक्षसोंके साथ दुर्जय कुम्भकर्ण चला, घरोंसे उसपर पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ २ ॥ सोनेके जालसे घिरा हुआ, सूर्यके समान प्रकाशमान् विशाल और रमणीय रावणका घर कुम्भकर्णने देखा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सूर्य मेघमें घुसता है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण रावणके घरमें घुसा। उसने दूरहीसे आसनपर बैठे अपने भाईको देखा, जिस प्रकार इन्द्रने आसनस्थ ब्रह्माको देखा था ॥ ४ ॥ राक्षसोंके साथ भाईके घरमें जाकर कुम्भकर्णने पैरके रखनेसे पृथिवीको कँपा दिया ॥ ५ ॥ कई द्वारोंको पार कर कुम्भकर्ण रावणके पास गया, उसने भाईको पुष्पकपर उद्विग्न बैठा हुआ देखा ॥ ६ ॥ कुम्भकर्णको

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः । भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥८॥
पुनः स मुदितोत्पत्य रावणः परिषस्वजे । स भ्रात्रा संपरिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ॥९॥
कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् । स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ॥१०॥
संरक्तनयनः क्रोधाद्रावणं वाक्यमब्रवीत् । किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्प्रबोधितः ॥११॥
शंस कस्माद्भयं तेऽत्र को वा प्रेतो भविष्यति । भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ॥
रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥
अयं ते सुमहान्कालः शयानस्य महाबल । सुषुप्तस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ॥१३॥
एष दाशरथिः श्रीमान्सुग्रीवसहितो बली । समुद्रं लंघयित्वा तु कुलं नः परिकृन्तति ॥१४॥
हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च । सेतुना सुखमागत्य वानरैकार्णवं कृतम् ॥१५॥
ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि । वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथंचन ॥
न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन ॥१६॥
तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल । नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥१७॥
सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्युपपद्य माम् । त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥१८॥
भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् । मयैवं नोक्तपूर्वो हि भ्राता कश्चित्परंतप ॥१९॥
त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा संभावना च मे । देवासुरेषु युद्धेषु बहुशो राक्षसर्षभ ॥
त्वया देवाः प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चामरा युधि ॥२०॥

आया देखकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र उठा और उसे अपने पास ले गया ॥७॥ महाबली कुम्भकर्णने पलंगपर बैठे हुए भाईका चरणवन्दन किया और पूछा कि क्या काम है ? ॥८॥ प्रसन्न होकर आसनसे उठकर रावणने कुम्भकर्णका आलिंगन किया। भाईके द्वारा आलिंगित अभिनन्दित होनेपर कुंभकर्ण एक सुन्दर आसनपर बैठा। आसनपर बैठकर महाबली कुम्भकर्ण आंखे लाल करके क्रोधसे रावणसे बोला—राजन् ! किस कारणसे आदरपूर्वक आपने मुझे जगाया है ? ॥९—११॥ कहिए किससे आपको भय है, कौन मरनेवाला है ? क्रोधमें बैठे हुए भाई कुम्भकर्णसे क्रोधसे उल्टी आँखोंसे रावण बोला ॥१२॥ महाबल, यह तुम्हारा सोनेका समय था, तुम सो रहे थे, इससे रामके द्वारा जो भय उत्पन्न हुआ है, वह तुम नहीं जानते ॥१३॥ महाबली श्रीमान् रामचन्द्र सुग्रीवके साथ समुद्र लाँघकर हमारे कुलका नाश कर रहे हैं। लंकाके वनों और उपवनोंको देखो, सेतुसे सुखपूर्वक आकर वानरोंने लंकाको भर दिया है ॥१५॥ जो प्रधान राक्षस थे वे वानरोंके द्वारा मारे गये, पर युद्धमें वानरोंका विनाश नहीं देखा जाता, वानरोंको हमारे राक्षसोंने जीता भी नहीं ॥१६॥ महाबल, यही भय उत्पन्न हुआ है। तुम हमारी रक्षा करो, तुम इनका नाश करो, इसलिए हमने तुम्हें जगाया है ॥ १७ ॥ खजाना खाली हो गया है, अब तुम मुझपर कृपाकर इस लंकाकी रक्षा करो, क्योंकि अब इस नगरीमें बालक और वृद्धही बँच रहे हैं ॥ १८ ॥ महाबाहो ! भाईके लिए तुम यह कठोर कर्म करो, मैंने पहले किसी भाईसे ऐसा नहीं कहा था ॥ १९ ॥ तुमपर मेरा प्रेम है और तुमसे मुझे आशा भी है। राक्षसश्रेष्ठ ! देवासुरयुद्धमें तुमने कई बार देवताओंके विरोधमें मोर्चा-

तदेतत्सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम । नहि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली ॥२१॥
कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं यथाप्रियं प्रियरण बान्धवप्रिय ।
स्वतेजसा व्यथय सपत्नवाहिनीं शरद्घनं पवन इवोद्यतो महान् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् । कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ १ ॥
दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये । हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥
शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः । निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥
प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् । केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ४ ॥
यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः । पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ५ ॥
देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् । क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥
त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपद्यते । सचिवैः समयं कृत्वा स सम्यग्वर्तते पथि ॥ ७ ॥
यथागमं च यो राजा समयं च चिकीर्षति । बुध्यते सचिवैर्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥

बन्दी की है और देवताओंको जीता है ॥ २० ॥ भीमपराक्रम ! अपना बल दिखाओ, सब प्राणियोंमें तुम्हारे समान बली दूसरा नहीं है ॥२१॥ बान्धवप्रिय, रणप्रिय, अपनी इच्छाके अनुसार मेरा प्रिय और हित यह काम करो, अपने तेजसे शत्रुसेनाको व्यथित करो, जिस प्रकार हवाका झोका शरत्‌के मेघको व्यथित करता है ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

रावणका ऐसा विलाप सुनकर कुम्भकर्ण हँसकर उससे बोला—पहले सलाहके समय हमलोगोंने जो दोष समझा था और हित-उपदेश करनेवालेके प्रति जो उपेक्षा तुमने दिखायी थी, उसीका यह फल है ॥ २ ॥ पापकर्मका फल तुमको शीघ्रही मिला, जिस प्रकार पापियोंको अपने पापके कारण नरक भोगना पड़ता है ॥ ३ ॥ महाराज ! यह काम पहले विचारकर नहीं किया गया है, केवल बलके घमंडमें आकर किया गया है, इससे कौनसी बुराइयाँ होंगी—इस बातपर विचार नहीं किया गया है ॥ ४ ॥ जो घमंडमें आकर पीछे किये जानेवाले कामके पहले, पहले किया जानेवाला काम करता है, और पहले किये जानेवाले कामके पहले आगेका काम करता है, वह नयानय नहीं जानता ॥ ५ ॥ देशकालके अनुकूल न होनेपर तथा विपरीत होनेपर जो काम किये जाते हैं उनसे दुःखही होता है, जिस प्रकार अप्रज्वलित अग्निमें हवि देनेसे दुःख होता है ॥६॥ क्षय, वृद्धि तथा स्थान इन तीनों प्रकारके कामोंके उपयोग करनेका तथा मन्त्रियोंके साथ पाँच प्रकारके प्रयोग और साधनका विचार करके जो निश्चय करता है वही नीतिमार्गपर ठीक-ठीक वर्तमान रहता है ॥ ७ ॥ जो राजा नीतिशास्त्रके अनुसार क्षय, वृद्धि आदिके समयके अनुकूल साम आदिके प्रयोगका विचार रखता है और बुद्धिमान मन्त्रियोंके साथ 'कौन मित्र है' इस बातकी परीक्षा करता है, वही

धर्ममर्थं हि कामं वा सर्वान्वा रक्षसां पते । भजते पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥ ९ ॥
त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते । राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥१०॥
उपप्रदानं सान्त्वं च भेदं काले च विक्रमम् । योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥११॥
काले धर्मार्थकामान्यः संमन्त्र्य सचिवैः सह । निषेवेतात्मवाँल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥१२॥
हितानुबन्धमालोक्य कुर्यात्कार्यमिहात्मनः । राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥१३॥
अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान्पुरुषाः पशुबुद्धयः । प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छन्ति मंत्रिष्वभ्यंतरीकृताः ॥१४॥
अशास्त्रविदुषां तेषां कार्यं नाभिहितं वचः । अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥१५॥
अहितं च हिताकारं धाष्ट्र्याज्जल्पन्ति ये नराः । अवश्यं मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषकाः ॥१६॥
विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः । विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥१७॥
तान्भर्ता मित्रसंकाशानमित्रान्मन्त्रनिर्णये । व्यवहारेण जानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥१८॥
चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः । छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥१९॥
यो हि शत्रुमवज्ञाय आत्मानं नाभिरक्षति । अवाप्नोति हि सोऽनर्थान्स्थानाच्च व्यवरोप्यते ॥२०॥
यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च । तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु ॥२१॥

समझनेवाला है ॥ ८ ॥ राक्षसराज ! नीतिनिपुण मनुष्य धर्म, अर्थ और कामका सेवन समयभेदसे करता है, अथवा प्रातः मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों समयोंमें यथासमय धर्म आदिका सेवन करता है अथवा धर्म अर्थ आदिके दो-दोका एक समय सेवन करता है ॥९॥ इन तीनोंमें कौन श्रेष्ठ है, यह बात आप्तजनोंसे जानकर भी जो नहीं समझता और जो केवल नाममात्रका राजा है, उसका ज्ञान व्यर्थ है ॥ १० ॥ समयके अनुसार, दान भेद साम और पराक्रम, पाँच प्रकारके योग, नय और अनय, धर्म, अर्थ, काम आदि इनका समयके अनुसार मन्त्रियोंसे सलाह करके जो सेवन करता है वह आत्मविजयी राजा कभी दुःख नहीं पाता ॥११,१२॥ जो अर्थतत्त्वज्ञ बुद्धिमान् मन्त्रियोंसे विचार करके परिणामहितकारी कार्य करते हैं वही राजा हैं ॥ १३ ॥ मन्त्रियोंमें किसी तरह आये हुए पशुबुद्धि मनुष्य शास्त्रके तत्त्वोंको न जानकर केवल ढिठाईके कारण बोलना चाहते हैं । अर्थशास्त्रको न जाननेवाले तथापि विपुललक्ष्मी चाहनेवाले अशास्त्रज्ञोंकी कही बात नहीं करनी चाहिए ॥ १४, १५ ॥ जो मनुष्य हितकारी बनकर धृष्टताके कारण अहित उपदेश देते हों उनसे कभी सलाह नहीं लेनी चाहिए । उन्हें मन्त्रियोंसे अलग कर देना चाहिए, क्योंकि वे कार्य बिगाड़नेवाले होते हैं ॥ १६ ॥ यहाँ लंकामें बुद्धिमान शत्रुओंके साथ मिलकर मन्त्रिगण स्वामीको नष्ट करनेके लिए उलटे उपदेश दिया करते हैं ॥ १७ ॥ इस कारण स्वामीको चाहिए कि मित्रके समान अमित्र उन मन्त्रियोंको, जो घूस आदिके कारण शत्रुसे मिल गये हैं, सलाह करनेके समय व्यवहारके द्वारा पहिचाने ॥ १८ ॥ शत्रुमें मिले हुए मन्त्रियोंके बतलाये कार्योंको बिना विचारे जो चंचल राजा करने लगते हैं, उनकी इस कमजोरीको शत्रु पकड़ लेते हैं और इससे वे लाभ उठाते हैं, जिस प्रकार क्रौंच पर्वतके छिद्रमें पंछी घुस गये थे ॥ १९ ॥ जो शत्रुका तिरस्कार करके अपनी रक्षा नहीं करते, वे दुःख उठाते हैं और राज्यच्युत होते हैं ॥ २० ॥ पहले तुम्हारी प्रिया मन्दोदरीने तथा मेरे छोटे भाई विभीषणने जो तुमसे कहा था, वही हम-

तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम् । भ्रुकुटिं चैव संचक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥२२॥
मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससि । किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥२३॥
विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा । नाभिपन्नमिदानीं यद्व्यर्था तस्य पुनः कथा ॥२४॥
अस्मिन्काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विचिन्त्यताम् । ममापनयजं दुःखं विक्रमेण समीकुरु ॥२५॥
यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाधिगच्छसि । यदि कार्यं ममैतत्ते हृदि कार्यतमं मतम् ॥२६॥
स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते । स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥२७॥
तमथैवं ब्रुवाणं स वचनं धीरदारुणम् । रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ॥२८॥
अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् । कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ॥२९॥
शृणु राजन्नवहितो मम वाक्यमरिंदम । अलं राक्षसराजेन्द्र संतापमुपपद्यते ॥
रोषं च संपरित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥३०॥
नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव । तमहं नाशयिष्यामि यत्कृते परितप्यते ॥३१॥
अवश्यं च हितं वाच्यं सर्वावस्थां गतं मया । बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥३२॥
सदृशं यच्च कालेऽस्मिन्कर्तुं स्नेहेन बन्धुना । शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥३३॥
अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि । हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम् ॥३४॥
अद्य रामस्य तद्दृष्ट्वा मया नीतं रणाच्छिरः । सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ॥३५॥

लोगोंके लिए हितकारी मार्ग है; पर आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा आप कर सकते हैं ॥ २१ ॥ कुम्भकर्णके वचन सुनकर रावणने भौंहें चढ़ा लीं, और वह क्रोध करके उससे बोला ॥ २२ ॥ तुम माननीय, आचार्य गुरुके समान मुझे क्या उपदेश देते हो ? व्यर्थकी बकवादसे क्या लाभ ? जैसा मैंने कहा है वैसा तुम करो ॥ २३ ॥ उलटी समझके कारण, अज्ञानके कारण या बलवीर्यके कारण तुमलोगोंकी बात मैंने न मानी, पर इस समय, समय बीत जानेपर इसकी चर्चा व्यर्थ है ॥ २४ ॥ इस समयके कर्तव्यका विचार करना चाहिए । अपने पराक्रमसे मेरे अपमानका दुःख तुम दूर करो ॥ २५ ॥ यदि मुझमें तुम्हारा स्नेह हो, अपने पराक्रमका ज्ञान हो, यदि इस युद्धको करना उचित समझते हो, तो अपने पराक्रमके द्वारा मेरे अपमानको दूर करो ॥ २६ ॥ वही मित्र है जो नष्टमनोरथ, अतएव दीन मनुष्यकी सहायता करता है । बन्धु वह है जो अनीतिके कारण दुःखीकी सहायता करता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार रावणके कठोर गम्भीर वचन सुनकर कुम्भकर्णने समझा कि यह क्रुद्ध हो गया है । पुनः धीरे-धीरे मधुर वचन बोला ॥ २८ ॥ भाईको बहुत ही व्यथित जानकर कुम्भकर्ण समझाता हुआ धीरे-धीरे बोला ॥ २९ ॥ राजन् ! सावधान होकर अन्य मेरी बात सुनें ! राक्षसराज ! सन्ताप करना व्यर्थ है, क्रोध छोड़कर आप स्वस्थ हो जाँय ॥ ३० ॥ जिसके लिए आप दुःख कर रहे हैं उसका नाश मैं कर दूँगा । राजन् ! मेरे जीते हुए आपको अपने मनमें दुःख नहीं करना चाहिए ॥ ३१ ॥ मैंने बन्धु होनेके कारण तथा भ्रातृस्नेहके कारण सब अवस्थाओंमें हित कहनेका मुझे अधिकार है ॥ ३२ ॥ इस आपत्तिकालमें बन्धुस्नेहके कारण जो उचित कार्य है, युद्धमें शत्रुका नाश करना, वह मैं करता हूँ, आप देखें ॥ ३३ ॥ महाबाहु ! आज रणक्षेत्रमें मेरे द्वारा रामके मारे जानेपर वानरी

अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत्प्रियम् । लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतवान्धवाः ॥३६॥
अद्य शोकपरीतानां स्वबन्धुवधशोचिनाम् । शत्रोर्युधि विनाशेन करोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥३७॥
अद्य पर्वतसंकाशंससूर्यमिव तोयदम् । विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥३८॥
कथं च राक्षसैरेभिर्मया च परिसान्त्वितः । जिघांसुभिर्दाशरथिं व्यथसे त्वं सदानघ ॥३९॥
मां निहत्य किल त्वां हि निहनिष्यति राघवः । नाहमात्मनि संतापं गच्छेयं राक्षसाधिप ॥४०॥
कामं त्विदानीमपि मां व्यादिश त्वं परंतप । न परः प्रेक्षणीयस्ते युद्धायातुलविक्रम ॥४१॥
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान् । यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ॥४२॥
तानहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि । गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे ॥४३॥
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य विभीयाद्वै पुरंदरः । अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्नतस्तरसा रिपून् ॥४४॥
न मे प्रतिमुखः कश्चित्स्थातुं शक्तो जिजीविषुः । नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः ॥४५॥
हस्ताभ्यामेव संरभ्य हनिष्यामि सवज्रिणम् । यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यति ॥४६॥
ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य मे । चिन्तया तप्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ॥४७॥
सोऽहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः । मुञ्च रामाद्भयं घोरं निहनिष्यामि संयुगे ॥४८॥
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलम् । हनूमन्तं च रक्षोघ्नं येन लंका प्रदीपिता ॥४९॥

सेनाका भागना भी आप देखें ॥३४॥ आज युद्धक्षेत्रसे मैं रामचन्द्रका मस्तक ले आऊँगा, आप सुखी हों और सीता दुखिनी ॥ ३५ ॥ आज लङ्काके वे सब राक्षस, जिनके वान्धव मारे गये हैं वे, अत्यन्त प्रिय रामचन्द्रका मरण देखें ॥ ३६ ॥ अत्यन्त शोकायुक्त बन्धुवधसे दुःखी राक्षसोंका आँसू युद्धमें शत्रुका नाश करके मैं पोछूँगा ॥ ३७ ॥ पर्वतके समान वानरराज सुग्रीवको सूर्यसहित मेघके समान युद्धमें बिखरे हुए देखो ॥३८॥ यह सदा निष्पाप, रामचन्द्रको मारनेकी इच्छा रखनेवाले इन राक्षसोंने और मैंने आपको समझाया है । अब आप दुःख क्यों करते हैं ॥ ३९ ॥ और यदि रामचन्द्रही मारें तो पहले मुझे मारकर आपको मारेंगे । राक्षसराज, मैं अपने लिए तो व्यथित नहीं होता । मैं तो इसे असम्भव समझता हूँ ॥ ४० ॥ परन्तप ! युद्धके लिए इच्छानुसार आप आज्ञा दे सकते हैं । अतुलविक्रमवाले ! मेरी सहायताके लिए किसी दूसरेको ढूँढनेकी जरूरत नहीं है ॥ ४१ ॥ यदि इन्द्र हों, यम हों, अग्नि या वायु हों, मैं अकेलाही तुम्हारे सब शत्रुओंका नाश करूँगा ॥ ४२ ॥ मैं उन सबोंको लड़ाऊँगा । कुबेर और वरुणको भी लड़ाऊँगा । पर्वतके समान कठोरशरीर तथा तीक्ष्ण शूल धारण करनेवाले और तीखे दाँतवाले मेरे गर्जनसे इन्द्र जरूर डर जायगा अथवा शस्त्र छोड़कर भी, जब बलसे शत्रुको मलने लगूँगा तो, जीनेकी इच्छा रखनेवाला कोई भी मेरे सामने नहीं ठहर सकता । शक्ति, गदा, तलवार और तीखे बाणोंसे नहीं, किन्तु हाथोंसे ही मारकर इन्द्रके साथ शत्रुका मैं नाशकर दूँगा । यदि रामचन्द्र आज मेरे घूँसेकी मार सहलेंगे, तो मेरे बाणसमूह उसका रुधिर पान करेंगे अर्थात् बाणोंसे मैं उन्हें मारूँगा । राजन् ! मेरे रहते हुए आप चिन्तासे क्यों दुःखित होते हैं ॥ ४३, ४४, ४५, ४६, ४७ ॥ अतएव मैं शत्रुका नाश करनेके लिए जानेको तयार हूँ । रामचन्द्रसे जो भय आपको उत्पन्न हुआ है उसको छोड़ दीजिए । मैं युद्धमें उनको मारूँगा ॥ ४८ ॥

हरींश्च भक्षयिष्यामि संयुगे समुपस्थिते । असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद्यशः ॥५०॥
यदि चेन्द्राद्भयं राजन्यदि चापि स्वयंभुवः । अपि देवाः शयिष्यन्ते मयि क्रुद्धे महीतले ॥५१॥
यमं च शमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पावकम् । आदित्यं पातयिष्यामि सनक्षत्रं महीतले ॥५२॥
शतक्रतुं वधिष्यामि पास्यामि वरुणालयम् । पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम्॥५३॥
दीर्घकालं प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् । अद्य पश्यन्तु भूतानि भक्ष्यमाणानि सर्वशः ॥
न त्विदं त्रिदिवं सर्वमाहारो मम पूर्यते ॥५४॥
वधेन ते दाशरथेः सुखावहं सुखं समाहर्तुमहं व्रजामि ।
निहत्य रामं सह लक्ष्मणेन खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥५५॥
रमस्व राजन्पिब चाद्य वारुणीं कुरुष्व कृत्यानि विनीय दुःखम् ।
मयाद्य रामे गमिते यमक्षयं चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥५६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

तदुक्तमतिकायस्य बलिनो बाहुशालिनः । कुम्भकर्णस्य वचनं श्रुत्वोवाच महोदरः ॥१॥
कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः । अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥२॥

रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान इनलोगोंने राक्षसोंको मारा है, हनुमानने लङ्का जलाई है, इनको तथा अन्य वानरोंको युद्धमें मैं खा डालूँगा। राजन् ! मैं आपको बहुत बड़ा यश देना चाहता हूँ ॥ ४९, ५० ॥ राजन् ! यदि आपको इन्द्रसे भय हो अथवा ब्रह्मासे, ये देवता भी मेरे क्रोध करनेपर पृथिवीमें सोते नज़र आवेंगे ॥ ५१ ॥ यमको मैं शान्त कर दूँगा, अग्निको खालूँगा और नक्षत्रोंके साथ सूर्यको पृथिवीपर गिरा दूँगा ॥ ५२ ॥ इन्द्रका वध करूँगा, समुद्रको पी लूँगा, पर्वतोंको चूर कर दूँगा और पृथिवीको फोड़ दूँगा ॥ ५३ ॥ कुम्भकर्ण बहुत दिनोंतक सोरहा था, आज सब प्राणियोंको जब वह खायगा तब उसका पराक्रम आपलोग देखेंगे । यह समस्त त्रिलोक मेरे आहारके लिए पूरा नहीं है ॥ ५४ ॥ रामचन्द्रको मारकर तुम्हारे लिए उत्तरोत्तर बढ़ानेवाला सुख ले आने मैं जाता हूँ। रामचन्द्रके साथ लक्ष्मणको मारकर सब वानर सेनापतियोंको मैं खा डालूँगा ॥ ५५ ॥ राजन्, आनन्द कीजिए, शराब पीजिए तथा दुःख दूर-कर अपने काम कीजिए। मेरे द्वारा रामचन्द्रके यमराजके घर जानेपर सीता सदाके लिए तुम्हारे वश हो जायी ॥ ५६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

विशालशरीर सुन्दर बाहुवाले बली कुम्भकर्णके ये वचन सुनकर महोदर नामक राक्षस बोला ॥१॥ कुम्भकर्ण, तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो, अतएव ढीठ और अहङ्कारी हो । तुम साधारण मनुष्योंके समान

नहि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ। त्वं तु कैशोरकाद्धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि ॥३॥
स्थानं वृद्धिं च हानिं च देशकालविधानवित्। आत्मनश्च परेषां च बुध्यते राक्षसर्षभः ॥४॥
यत्त्वशक्यं बलवता वक्तुं प्राकृतबुद्धिना। अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात्तादृशं नरः ॥५॥
यांस्तु धर्मार्थकामांस्त्वं ब्रवीषि पृथगाश्रयान्। अववोद्धुं स्वभावेन नहि लक्षणमस्ति तान् ॥६॥
कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम्। श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥७॥
निःश्रेयसफलावेव धर्मार्थावितरावपि। अधर्मानर्थयोः प्राप्तं फलं च प्रात्यवायिकम् ॥८॥
ऐहलौकिकपारक्यं कर्म पुंभिर्निषेव्यते। कर्माण्यपि तु कल्पानि लभते काममास्थितः ॥९॥
तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि कार्यं मतं च नः। शत्रौ हि साहसं यत्तत्किमिवात्रापनीयते ॥१०॥
एकस्यैवाभियाने तु हेतुर्यः प्राहृतस्त्वया। तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यदसाधु च ॥११॥
येन पूर्वं जनस्थाने बहवोऽतिबलास्तदा। राक्षसा राघवं ध्वस्ताः कथमेको जयिष्यसि ॥१२॥
ये पूर्वं निर्जितास्तेन जनस्थाने महौजसः। राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्य न पश्यसि ॥१३॥
तं सिंहमिव संक्रुद्धं रामं दशरथात्मजम्। सर्पं सुप्तमहो बुद्ध्वा प्रबोधयितुमिच्छसि ॥१४॥
ज्वलंतं तेजसा नित्यं क्रोधेन च दुरासदम्। कस्तं मृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥१५॥

किसी विषयको ऊपरसे देखते हो। तुम सब विषयोंको ठीक नहीं समझ सकते ॥२॥ कुम्भकर्ण! राजा रावण नीति और अनीतिकी बात नहीं जानते हैं यह बात नहीं है। तुमने जो कुछ कहा है, एक बालककी धृष्टताके कारण कहा है ॥३॥ राक्षसराज रावण अपना वर्तमानस्थान, वृद्धि और हानिको देशकालके अनुसार कार्य करनेका ज्ञान रखनेवाले हैं। अपनी भी जानते हैं और शत्रुओंका भी जानते हैं ॥ ४ ॥ वृद्धोंकी सलाह न लेकर, साधारण बुद्धि रखनेवाला केवल बलके सहारे भी जो काम नहीं किया जा सकता है, अर्थात् जिसका होना अनुचित है, उस कामको करना कौन राजा उचित समझेगा? ॥५॥ जिन धर्म-अर्थ-कामोंको, भिन्न-भिन्न समयमें करने योग्य तुम बतला रहे हो, उनको यथार्थतः समझनेकी शक्ति तुममें नहीं है ॥६॥ सभी प्रकारके सुखसाधनोंका प्रयोजन अर्थात् उत्पादक कर्म ही है। एक पुरुषके द्वारा अनुष्ठित पुण्य और पापोंका फल भी उसी एक मनुष्यकोही भोगना पड़ता है ॥७॥ धर्म-अर्थ तथा अधर्म और अनर्थ इनका फल मुक्तिही है, पर कभी-कभी अधर्म और अनर्थका फल अकल्याण भी हो जाता है ॥ ८ ॥ कामरूपी पुरुषार्थ-सिद्धिके लिए प्रयत्नपूर्वक किये गये कर्मोंके उत्तम फल यहाँ भी मिलते हैं और अन्य कर्मोंके फल इस लोक और परलोकमें मनुष्योंको भोगने पड़ते हैं ॥ ९ ॥ यह सीताहरणरूप कार्य करना रावणने निश्चय करलिया था और हमलोगोंने इसका अनुमोदन किया था। अवश्य यह शत्रुके विषयमें हमारे राजाका साहस है, पर वह साहस अब तो दूर नहीं किया जा सकता ॥ १० ॥ तुमने जो कहा है कि, अकेला मैं ही जाकर शत्रुका वध कर आऊँगा, यह भी ठीक नहीं है, इसकी असाधुताके विषयमें मैं कहूँगा ॥ ११ ॥ जिसने पहले जनस्थानमें अनेक बलवान् राक्षसोंको मारा, उस राक्षसको अकेले तुम कैसे जीत सकोगे ॥ १२ ॥ उसने जनस्थानमें जिन पराक्रमी राक्षसोंको जीता था, वे राक्षस आज भी लंकामें भी डर रहे हैं, यह क्या तुम नहीं देखते ॥ १३ ॥ सिंहके समान क्रुद्ध दसरथपुत्र रामचन्द्रको सोते सर्पके समान तुम जगाना चाहते हो ॥ १४ ॥ सदा तेजसे जलनेवाले और क्रोधके कारण पास जानेके अयोग्य उन रामचन्द्रको मृत्युके समान

संशयस्थमिदं सर्वं शत्रोः प्रतिसमासने। एकस्य गमनं तात नहि मे रोचते भृशम् ॥१६॥
हीनार्थस्तु समृद्धार्थं को रिपुं प्राकृतं यथा। निश्चितं जीवितत्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥१७॥
यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम। कथमाशंससे योद्धुं तुल्येनेन्द्रविवस्वतोः ॥१८॥
एवमुक्त्वा तु संरब्धं कुम्भकर्णं महोदरः। उवाच रक्षसां मध्ये रावणं लोकरावणम् ॥१९॥
लब्ध्वा पुरस्ताद्वैदेहीं किमर्थं त्वं विलम्बसे। यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥२०॥
दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः। रुचितश्चेत्त्वया बुद्ध्या राक्षसेन्द्र ततः शृणु ॥२१॥
अहं द्विजिह्वः संह्रादी कुम्भकर्णो वितर्दनः। पञ्च रामवधायैते निर्यान्तीत्यवघोषय ॥२२॥
ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः। जेष्यामो यदि ते शत्रून्नोपायैः कार्यमस्ति नः ॥२३॥
अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः। ततः समभिपत्स्यामो मनसा यत्समीक्षितम् ॥२४॥
वयं युद्धादिहैष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः। विदार्य स्वतनुं बाणै रामनामाङ्कितैः शरैः ॥२५॥
भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः। ततः पादौ ग्रहीष्यामस्त्वं नः कामं प्रपूरय ॥२६॥
ततोऽवघोषय पुरे गजस्कन्धेन पार्थिव। हतो रामः सह भ्रात्रा ससैन्य इति सर्वतः ॥२७॥
प्रीतो नाम ततो भूत्वा भृत्यानां त्वमरिंदम। भोगांश्च परिवारांश्च कामान्वसु च दापय ॥२८॥
ततो माल्यानि वासांसि वीराणामनुलेपनम्। देयं च बहु योधेभ्यः स्वयं च मुदितः पिब ॥२९॥

कौन पकड़ सकता है ॥ १५ ॥ शत्रुके सामने खड़ा होनेके लिए अकेले जाना यह बात संशयास्पद है, अतएव एकका जाना मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता ॥ १६ ॥ दुर्बल कौन पुरुष जीवितत्यागका निश्चय करके सहायसम्पत्तियुक्त शत्रुको साधारण पुरुषके समान वश करनेकी इच्छा करेगा। जिसने जीवितत्याग करना निश्चित किया है उसे तो लड़ना चाहिए ॥ १७ ॥ राक्षसश्रेष्ठ ! जिसके समान मनुष्योंमें दूसरा नहीं है, उस इन्द्र और सूर्यके समान पुरुषसे युद्ध करनेकी इच्छा तुम क्यों करते हो ॥ १८ ॥ क्रुद्ध कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर महोदर लोकको रुलानेवाले रावणसे राक्षसोंके बीचमें बोला ॥ १९ ॥ जब सीता आपको पहलेही मिल गयी है, तब आप विलम्ब क्यों करते हैं। जब आप चाहें तभी सीता आपके वशमें हो सकती है ॥ २० ॥ सीताको अनुकूल करनेका एक उपाय मैंने सोचा है, आप उसे सुनें, अपनी बुद्धिसे उसका विचार करें, यदि आप अच्छा समझें तो उसे करें ॥ २१ ॥ मैं, द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण तथा वितर्दन ये पाँच रामचन्द्रको मारनेके लिए जा रहे हैं यह बात आप प्रचारित कर दीजिए ॥२२॥ हमलोग जाकर प्रयत्नपूर्वक शत्रुसे युद्ध करते हैं। यदि हमलोगोंने शत्रुको जीत लिया तब तो किसी उपायकी आवश्यकता नहीं है ॥२३॥ यदि हमलोग शत्रुको न मार सके और वह जीता रहा, और हमलोग जीते हुए युद्धसे लौट आये तो मनमें हमने जो विचारा है उसे अवश्य ही पावेंगे ॥ २४ ॥ हमलोग रुधिरसे भींगे हुए यहाँ आवेंगे, रामके नामवाले बाणसे अपना शरीर छेद लेंगे ॥ २५ ॥ आकर हमलोग कहेंगे कि हमलोगोंने राम और लक्ष्मणको खाडाला है, हमलोग आपके पैर पकड़कर कहेंगे कि हमलोगोंके मनोरथ पूरा करें, क्योंकि हम लोगोंने युद्ध जीता है ॥ २६ ॥ अनन्तर हाथी घुमाकर आप नगरमें यह घोषणा करादें कि रामचन्द्र भाई और सेनाके साथ मारे गये ॥२७॥ इसके बाद आप प्रसन्न होकर अपने भृत्योंको भोगकी वस्तु दास-दासी, उनकी इच्छित वस्तु तथा धन इनाममें दें ॥ २८ ॥ और मालाएँ वस्त्र अनुलेपन आदि

ततोऽस्मिन्बहुलीभूते कौलीने सर्वतो गते। भक्षितः ससुहृद्रामो राक्षसैरिति विश्रुते ॥३०॥
प्रविश्याश्वास्य चापि त्वं सीतां रहसि सान्त्वयन्। धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैनां प्रलोभय ॥३१॥
अनयोपधया राजन्भूयः शोकानुबन्धया। अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ॥३२॥
रमणीयं हि भर्तारं विनष्टमधिगम्य सा। नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्च त्वद्वशं प्रतिपत्स्यते ॥३३॥
सा पुरा सुखसंवृद्धा सुखार्हा दुःखकर्षिता। त्वय्यधीनं सुखं ज्ञात्वा सर्वथैव गमिष्यति ॥३४॥

एतत्सुनीतं मम दर्शनेन रामं हि दृष्ट्वैव भवेदनर्थः।
इहैव ते सेत्स्यति मोत्सुको भूर्महानयुद्धेन सुखस्य लाभः ॥३५॥
अनष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो रिपुं त्वयुद्धेन जयञ्जनाधिप।
यशश्च पुण्यं च महान्महीपतिः श्रियं च कीर्तिं च चिरं समश्नुते ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५

स तथोक्तस्तु निर्भर्त्स्य कुम्भकर्णो महोदरम्। अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठं भ्रातरं रावणं ततः ॥१॥
सोऽहं तव भयं घोरं वधात्तस्य दुरात्मनः। रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरो हि सुखी भव ॥२॥

योधाओंको आप दें और स्वयं, बाहरी प्रसन्नता दिखाकर आप भी शराब पीएँ ॥ २९ ॥ राक्षसोंने मित्रोंके साथ रामचन्द्रको खा लिया—इस संवादके लङ्कामें अच्छी तरह प्रचारित हो जानेपर आप सीताको समझानेके लिए एकान्तमें उसके पास पहुँचे। धन-धान्य, मनोरथपूर्ति तथा रत्नोंसे उसको आप प्रलोभित करें ॥३०,३१॥ राजन्! इस छलसे तथा शोकके कारण सीता तुम्हारे वशमें हो जायगी, यद्यपि वह तुमको नहीं चाहती तथापि स्वामीके मारे जानेपर वह करेगी क्या? विवश होकर उसे तुम्हारे अधीन होना पड़ेगा ॥३२॥ अपने प्रिय स्वामीके विनाशका समाचार सुनकर निराश होनेसे तथा स्त्रियोंके ओछे स्वभावके कारण वह तुम्हारे वश हो जायगी ॥ ३३ ॥ सीता सुखमें बढ़ी है और जिसे सुख भोगनेका अभ्यास है या इस समय जो दुःख उठा रही है, वह जब समझेगी कि तुम्हारे साथ रहनेसे सुख होगा तब वह तुम्हारे अधीन हो जायगी ॥ ३४ ॥ मेरी समझसे यह सफलताका निश्चित उपाय है, रामके पास जानेसे अर्थात् युद्धकरनेसे अनर्थकी सम्भावना है, अतएव युद्धके लिए तुम उत्सुक न हो, और इस प्रकारसे विना युद्धके ही सुख मिल सकेगा ॥ ३५ ॥ सैन्यको विना नष्ट किये, संशयमें विना पड़े, विना युद्धके ही आप शत्रुको जीत लें, यश, पुण्य, लक्ष्मी और कीर्ति बहुत समयतक आप भोगें ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

इस प्रकार बोलनेवाले महोदरको डाँटकर कुम्भकर्ण राक्षसराज भाई रावणसे बोला ॥ १ ॥ उस दुरात्मा रामचन्द्रको मारकर मैं तुम्हारे भयानक भयको दूर करूँगा, तुम वैरहीन होकर सुखी होओ ॥ २ ॥

गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदाः। पश्य संपद्यमानं तु गर्जितं युधि कर्मणा ॥३॥
न मर्षयन्ति चात्मानं संभावयितुमात्मना। अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥४॥
विक्लवानां ह्यबुद्धीनां राज्ञां पण्डितमानिनाम्। रोचते त्वद्वचो नित्यं कथ्यमानं महोदर ॥५॥
युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः। राजानमनुगच्छद्भिः सर्वं कृत्यं विनाशितम् ॥६॥
राजशेषा कृता लंका क्षीणः कोशो बलं हतम्। राजानमिममासाद्य सुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥७॥
एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये। दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुं महाहवे ॥८॥
एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः। प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन्राक्षसाधिपः ॥९॥
महोदरोऽयं रामात्तु परित्रस्तो न संशयः। नहि रोचयते तात युद्धं युद्धविशारद ॥१०॥
कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च। गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च ॥११॥
शयानः शत्रुनाशार्थं भवान्संबोधितो मया। अयं हि कालः सुमहान्राक्षसानामरिंदम ॥१२॥
संगच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवान्तकः। वानरान्राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥१३॥
समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः। रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥१४॥
एवमुक्त्वा महातेजाः कुम्भकर्णं महाबलम्। पुनर्जातमिवात्मानं मेने राक्षसपुंगवः ॥१५॥
कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानंस्तस्य पराक्रमम्। बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः ॥१६॥
इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः। राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा योद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥१७॥

वीर निर्जल मेघके समान व्यर्थ गर्जन नहीं करते। युद्धमें कर्मके द्वारा मेरे गर्जनको सफल होते देखो ॥ ३ ॥ वीर अपनी तारीफ स्वयं नहीं करते, अपने पराक्रमको विना कहे वे कठोर कर्मको करते हैं ॥ ४ ॥ महोदर! तुम्हारे कहे हुए ये वचन अपनेको पण्डित समझनेवाले मूर्ख और कातर राजाओंको अच्छे लग सकते हैं, अर्थात् रावणको नहीं ॥५॥ सदा प्रिय बोलनेवाले तुम्हारे समान कापुरुषोंने राजाके मनके अनुसार बोलकर सब काम बिगाड़ दिये ॥६॥ लंकामें अब केवल राजाही रह गये हैं, खजाना खाली हो गया, सेना मारी गई। यह सब तुमलोगोंके कारण हुआ। इस राजाको पाकर तुमलोगोंने मित्ररूपसे अमित्रका काम किया ॥ ७ ॥ तुमलोगोंकी दुर्नीतिको दूर करनेके लिए तयार होकर मैं शत्रुको जीतनेके लिए जारहा हूँ ॥ ८ ॥ कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर हँसकर राक्षसराज रावणने ऐसा कहा ॥ ९ ॥ भाई, सच-सच यह महोदर रामसे डर गया है, अतएव यह युद्ध करना नहीं चाहता ॥ १० ॥ तुम्हारे समान प्रेम और बलसे मेरा अपना दूसरा कोई नहीं है। कुम्भकर्ण! तुम शत्रुको जीतने और वध करनेके लिए जाओ ॥ ११ ॥ शत्रुको मारनेके लिए मैंने तुमको सोतेसे जगाया है, यह समय राक्षसोंके लिए बड़ाही भयानक है, अतएव तुमको जगाया है ॥ १२ ॥ पाशधारी यमराजके समान तुम शूल लेकर जाओ और वानरों तथा राजपुत्रोंको, जो सूर्यके समान हैं, खा डालो ॥१३॥ तुम्हारा रूप देखकर वानर डर जाँयगे और राम-लक्ष्मणके भी हृदय फट जाँयगे ॥ १४ ॥ तेजस्वी रावण महाबली कुम्भकर्णसे ऐसा कहकर अपनेको पुनः उत्पन्न हुआ समझा अर्थात् उसने अपनेको रक्षित समझा ॥ १५ ॥ रावणको कुम्भकर्णके बलका ज्ञान था; वह उसके पराक्रमको जानता था, इस कारण वह निर्मल चन्द्रमाके समान प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥ ऐसा

आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिवर्हणः । सर्वं कालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥१८॥
इन्द्राशनिसमप्रख्यं वज्रप्रतिमगौरवम् । देवदानवगन्धर्वयक्षपन्नगसूदनम् ॥१९॥
रक्तमाल्यमहादामं स्वतश्चोद्गतपावकम् । आदाय विपुलं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम् ॥२०॥
कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत् । गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठत्विह बलं महत् ॥२१॥
अद्य तान्क्षुधितः क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान् । कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥
सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः । वानरा हि महात्मानः शूराः सुव्यवसायिनः ॥२३॥
एकाकिनं प्रमत्तं वा नयेयुर्दशनैः क्षयम् । तस्मात्परमदुर्धर्षः सैन्यैः परिवृतो व्रज ॥
रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निषूदय ॥२४॥
अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् । आवबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥२५॥
अङ्गदान्यंगुलीवेष्टान्वराण्याभरणानि च । हारं च शशिसंकाशमावबन्ध महात्मनः ॥२६॥
दिव्यानि च सुगन्धीनि माल्यदामानि रावणः । गात्रेषु सज्जयामास श्रोत्रयोश्चास्य कुण्डले ॥२७॥
काञ्चनांगदकेयूरनिष्काभरणभूषितः । कुम्भकर्णो बृहत्कर्णः सुहुतोऽग्निरिवाबभौ ॥२८॥
श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन विराजता । अमृतोत्पादने नद्धो भुजंगेनेव मन्दरः ॥२९॥
स काञ्चनं भारसहं निवातं विद्युत्प्रभं दीप्तमिवात्मभासा ।
आवध्यमानः कवचं रराज संध्याभ्रसंवीत इवाद्रिराजः ॥३०॥

कहकर महाबली कुम्भकर्ण प्रसन्नतापूर्वक निकला और राजाके वचन सुनकर युद्धके लिए तयार हुआ ॥१७॥ शत्रुको जीतनेवाले कुम्भकर्णने शीघ्रतापूर्वक तीखा शूल उठाया। वह शूल लोहे का बना था, वह चमकीला था तथा उसमें उज्ज्वल सोनेका काम किया हुआ था, वह इन्द्रके वज्रके समान था और वज्रके समानही भारी था, देव, दानव, गन्धर्व यक्ष और नागोंका विनाश करनेवाला था, लम्बी लाल माला उसपर चढ़ी हुई थी, स्वयं उससे आग निकल रही थी, शत्रुके खूनसे वह लाल थी, ऐसा विशाल शूल लेकर तेजस्वी कुम्भकर्ण रावणसे बोला—मैं अकेला ही युद्धमें जाऊँगा, यह बड़ी सेना यहीं रहे ॥ १८, २१ ॥ आज भूखा मैं, क्रोधसे सब वानरोंको खा डालूँगा। कुम्भकर्णकी बात सुनकर रावण बोला ॥ २२ ॥ शूल मुद्गर आदि धारण करनेवाले सैनिकोंके साथ तुम जाओ, महात्मा वानर बड़े उद्योगी और वीर हैं ॥२३॥ अकेला तथा असावधान देखकर तुम्हें वानर काटने लगेंगे, इस कारण दुर्जय तुम सेनाके साथ जाओ और राक्षसोंको आहत करनेवाले सब शत्रुओंको मारो ॥ २४ ॥ रावण आसनसे उठा और फूलकी माला, जिसमें बीच-बीचमें मणि लगे हुए थे, कुम्भकर्णको बाँध दी ॥ २५ ॥ अंगुलीके समान प्रिय अँगूठी उत्तम आभूषण और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार रावणने महात्मा कुम्भकर्णको पहनाये ॥ २६ ॥ रावणने दिव्य सुगन्धित मालाएँ उसके शरीरमें पहनायीं, और कानोंमें कुण्डल, ॥ २७ ॥ सोनेका अंगद, बाजू-बन्द गलेमें पहनेजानेवाला आभूषणसे भूषित होकर लम्बे कानवाला कुम्भकर्ण विधिपूर्वक हवन किये अग्निके समान मालूम हुआ ॥ २८ ॥ कुम्भकर्ण बहुत बड़ी काली करधनी पहने हुए था, जिससे अमृत-मथन करनेके समय सर्पसे लिपटे मंदर पर्वतके समान वह मालूम पड़ता था ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णने

सर्वाभरणसर्वांगः शूलपाणिः स राक्षसः । त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाबभौ ॥३१॥
भ्रातरं संपरिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः ॥३२॥
तमाशीर्भिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः । शंखदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः ॥३३॥
तं गजैश्च तुरंगैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः । अनुजग्मुर्महात्मानो रथिनो रथिनां वरम् ॥३४॥
सर्पैरुष्ट्रैः खरैश्चैव सिंहद्विपमृगद्विजैः । अनुजग्मुश्च तं घोरं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥३५॥
स पुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो धृतातपत्रः शितशूलपाणिः ।
महोत्कटः शोणितगन्धमत्तो विनिर्ययौ दानवदेवशत्रुः ॥३६॥
पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः । अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥३७
रक्ताक्षाः सुबहुव्यामा नीलाञ्जनचयोपमाः । शूलानुद्यम्य खड्गांश्च निशितांश्च परश्वधान् ॥३८॥
भिन्दिपालांश्च परिघान्गदाश्च मुसलानि च । तालस्कन्धांश्च विपुलान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥३९॥
अथान्यद्वपुरादाय दारुणं घोरदर्शनम् । निष्पपात महातेजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥४०॥
धनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुच्छ्रितः । रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसंनिभः ॥४१॥
संनिपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान् । कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४२॥

कवच धारण किया, वह सोनेका था, शस्त्रोंके आघातसे वह टूट नहीं सकता था, उसमें वायु भी नहीं घुस सकती थी, बिजलीके समान चमकीला था और अपने प्रकाशसे प्रकाशित था, उसको पहनकर कुम्भकर्ण सन्ध्याके मेघसे ढँके हिमालयके समान मालूम होता था ॥३०॥ सर्वाङ्गमें आभूषणोंसे सजकर, हाथमें शूल लेकर वह राक्षस तीन पैरसे त्रिलोक नापनेका उत्साह रखनेवाले नारायणके समान मालूम होने लगा ॥ ३१ ॥ भाईका आलिंगन और परिक्रमा करके तथा उनको प्रणाम करके महाबली कुम्भकर्णने प्रस्थान किया ॥३२॥ सुन्दर आशीर्वाद देकर शङ्ख और दुन्दुभि बजवाकर उत्तम अस्त्रवाले सैनिकोंके साथ रावणने कुम्भकर्णको भेजा ॥ ३३ ॥ रथिश्रेष्ठ कुम्भकर्णके साथ हाथी, घोड़े और मेघके समान गर्जन करनेवाले रथोंपर चढ़कर अनेक रथी चले ॥ ३४ ॥ साँप ऊँट, गधा, सिंह, हाथी, मृगपर चढ़कर राक्षस कुम्भकर्णके साथ चले ॥३५॥ देवता और दानवोंका शत्रु कुम्भकर्ण जब चला तब उसपर पुष्प-वृष्टि होने लगी, ऊपर छाता लगाया गया। हाथमें वह तीखा शूल लिये हुए था। रुधिर गन्धसे मतवाला अतएव महाभयानक वह चला ॥ ३६ ॥ महापराक्रमी और बली अनेक-अनेक राक्षस पैदल उसके साथ चले, वे सभी भयङ्कर थे, उनकी आँखें भयङ्कर थीं और हाथमें अस्त्र-शस्त्र वे लिये हुए थे ॥ ३७ ॥ उनकी आँखें लाल थीं, और वे बहुत लम्बे थे,-अञ्जनराशिके समान काले थे; शूल, तलवार, तीक्ष्ण परसु, भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, बड़े-बड़े तालके खंभे और क्षेपणी वे लिये हुए थे ॥ ३८, ३९ ॥ कुम्भकर्णने और कठोर रूप धारण किया, जो देखनेमें भयानक था। इसके बाद महाबली तथा तेजस्वी वह रणमें कूद पड़ा ॥४०॥ सौ धनुषके बराबर वह चौड़ा हो गया और छःसौ धनुषके बराबर लम्बा, रथके पहियेके समान उसकी आँखें, थीं वह बड़े पर्वतके समान विशाल हो गया ॥ ४१ ॥ जले पर्वतके समान विशाल बड़े मुँहवाला कुम्भकर्ण राक्षसोंका मोर्चा बनाकर हँसता हुआ बोला ॥ ४२ ॥ आज प्रधान वानरोंके समूहको बारी-बारीसे क्रोध करके मैं जलाऊँगा,

अथ वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः। निर्दहिष्यामि संक्रुद्धः पतङ्गानिव पावकः ॥४३॥
नापराध्यन्ति मे कामं वानरा वनचारिणः। जातिरस्मद्विधानां सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥४४॥
पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः। हते तस्मिन्हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे ॥४५॥
एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः। नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम् ॥४६॥
तस्य निष्पततस्तूर्णं कुम्भकर्णस्य धीमतः। बभूवुर्घोररूपाणि निमित्तानि समन्ततः ॥४७॥
उल्काशनियुता मेघा बभूवुर्गर्दभारुणाः। ससागरवना चैव वसुधा समकम्पत ॥४८॥
घोररूपाः शिवा नेदुः सज्वालकवलैर्मुखैः। मण्डलान्यपसव्यानि बबन्धुश्च विहंगमाः ॥४९॥
निष्पपात च गृध्रोऽस्य शूले वै पथि गच्छतः। प्रास्फुरन्नयनं चास्य सव्यो बाहुरकम्पत ॥५०॥
निष्पपात तदा चोल्का ज्वलन्ती भीमनिःस्वना। आदित्यो निष्प्रभश्चासीन्न वाति च सुखोऽनिलः॥५१॥
अचिन्तयन्महोत्पातानुदितान्रोमहर्षणान्। निर्ययौ कुम्भकर्णस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥५२॥
स लङ्घयित्वा प्राकारं पद्भ्यां पर्वतसंनिभः। स ददर्श घनप्रख्यं वानरानीकमद्भुतम् ॥५३॥
ते दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं वानराः पर्वतोपमम्। वायुनुन्ना इव घना ययुः सर्वा दिशस्तदा ॥५४॥

तद्वानरानीकमतिप्रचण्डं दिशो द्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम्।
स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षान्ननाद भूयो घनवद्घनाभः॥५५॥
ते तस्य घोरं निनदं निशम्य यथा निनादं दिवि वारिदस्य।
पेतुर्धरण्यां बहवः प्लवंगा निकृत्तमूला इव शालवृक्षाः ॥५६॥

जिस प्रकार आग पतङ्गोंको जलाती है ॥ ४३ ॥ वनचारी वानरोंने हमारा कोई अपराध नहीं किया है। वानरोंकी जाति हमलोगोंके नगरों और बागोंका भूषण है ॥ ४४ ॥ लंकापर घेरा पड़नेका मूल कारण राम और लक्ष्मण हैं, उनके मारे जानेसे सभी मारे जाँयगे, अतएव उन्हींको पहले युद्धमें मैं मारूँगा ॥ ४५ ॥ कुम्भकर्णके ऐसा कहनेपर सब राक्षसोंने समुद्रको कँपानेवाला भयानक गर्जन किया ॥ ४६ ॥ बुद्धिमान कुम्भकर्णके चलनेपर चारोंओरसे भयानक निमित्त दीख पड़ने लगे ॥ ४७ ॥ उल्का और बिजुलीसे युक्त मेघ गधेके रंगके हो गये, समुद्र और वनके साथ पृथिवी काँपने लगी ॥ ४८ ॥ अङ्गाररूपी कवल मुँहमें लेकर भयंकर सियारिनें बोलने लगीं, पक्षी दाहिनी ओरसे मण्डलाकार घूमने लगे ॥ ४९ ॥ रास्तेमें जातेहुए कुम्भकर्णके शूलपर गीध आकर बैठ गया, इसकी आँखें फड़कने लगीं और वामबाहु काँपने लगी॥ ५० ॥ जलती हुई उल्का घोर गर्जनके साथ पृथिवीपर गिरी, सूर्य प्रभाहीन हो गये और हवा सुखकर नहीं बहती थी ॥ ५१ ॥ रोंगटे खड़े करनेवाले भयानक उत्पातोंकी ओर ध्यान न देकर भाग्यप्रेरित कुम्भकर्ण युद्धके लिए निकल पड़ा ॥ ५२ ॥ पर्वतके समान कुम्भकर्ण पैरोंसेही चारदीवारी लांघकर मेघके समान वानरोंकी अद्भुत सेना उसने देखी ॥ ५३ ॥ पर्वतके समान राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्णको देखकर वानर वायुप्रेरित मेघके समान दिशाओंमें भाग गये ॥ ५४ ॥ वानरोंकी वह प्रचण्ड सेना टुकड़े हुए मेघोंके समान दिशाओंमें भाग गयी। मेघतुल्य कुम्भकर्ण यह देखकर हर्षसे मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ ५५ ॥ आकाशमें मेघोंका जैसा गर्जन होता है, कुम्भकर्णका वैसा भयानक

विपुलपरिघवान्स कुम्भकर्णो रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ।
कपिगणभयमाददत्सुभीमं प्रभुरिव किंकरदण्डवान्युगान्ते ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् । निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥
ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् । विजयन्निव निर्घातान्विधमन्निव पर्वतान् ॥ २ ॥
तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा । प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥
तांस्तु विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा राजपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् । नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम् ॥ ४ ॥
आत्मनस्तानि विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च । क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥ ५ ॥
साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ । नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका ॥ ६ ॥
महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम् । विक्रमाद्विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवंगमाः ॥ ७ ॥
कृच्छ्रेण तु समाश्वस्य संगम्य च ततस्ततः । वृक्षान्गृहीत्वा हरयः संप्रतस्थू रणाजिरे ॥ ८ ॥
ते निवर्त्य तु संरब्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः । निजघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः ॥ ९ ॥
प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः । पादपैः पुष्पिताग्रैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥१०॥

गर्जन सुनकर कटे शालवृक्षके समान बहुतसे वानर पृथिवीमें गिर पड़े ॥ ५६ ॥ महात्मा कुम्भकर्ण अनेक प्रकारके परिघ लेकर शत्रुवधके लिए निकला, वानरोंको उसने बड़ा भयभीत किया, जिस प्रकार प्रलयकालमें अपने अधीन प्रजाओंको दण्ड देनेवाला काल भयभीत करता है ॥ ५७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥



पर्वतशिखरके समान ऊँचा महाबली कुम्भकर्ण चारदीवारी लाँघकर नगरसे शीघ्रही चला गया ॥१॥ समुद्रको गुंजाता हुआ, वज्रघोषको जीतता हुआ और पर्वतोंको प्रतिध्वनित करता हुआ कुम्भकर्ण गर्जने लगा ॥ २ ॥ इन्द्र, वरुण और यमके द्वारा भी अवध्य, भयङ्कर आँखोंवाले राक्षसको आते देखकर वानर भाग गये ॥ ३ ॥ उनको भागते देखकर राजपुत्र अङ्गद, नल, नील, गवाक्ष और महाबली कुमुदसे बोले ॥ ४ ॥ अपने प्रसिद्ध पराक्रम और कुलको भूलकर, छोटे बन्दरोंके समान भयभीत होकर तुमलोग कहाँ भाग रहे हो ॥ ५ ॥ अच्छा, सौम्य ! तुमलोग लौट आओ, प्राणोंकी रक्षा क्यों कर रहे हो, यह राक्षस हमलोगोंसे युद्ध न कर सकेगा, यह एक विभीषिका है, डरानेका उपाय है ॥ ६ ॥ राक्षसोंकी ओरसे उठायी गयी इस बड़ी विभीषिकाको हमलोग पराक्रमसे नष्ट कर देंगे । वानरो ! तुमलोग लौट आओ ॥ ७ ॥ बड़े कष्टसे धीरज धरकर तथा इधर-उधरसे आकर वानर वृक्ष लेकर युद्धक्षेत्रके लिए चले ॥ ८ ॥ मतवाले हाथीके समान परम क्रुद्ध और युद्धके उद्योगमें लगे हुए वानर कुम्भकर्णपर प्रहार करने लगे ॥ ९ ॥ ऊँचे पर्वतशिखरों, पत्थरों और पुष्पित वृक्षोंसे मारे जानेपर भी कुम्भकर्ण कम्पित नहीं हुआ ॥ १० ॥

तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते बहवः शिलाः । पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥११॥
सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् । ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥१२॥
लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः । निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥१३॥
लङ्घयन्तः प्रधावन्तो वानरा नावलोकयन् । केचित्समुद्रे पतिताः केचिद्गगनमास्थिताः ॥१४॥
वध्यमानास्तु ते वीरा राक्षसेन च लीलया । सागरं येन ते तीर्णाः पथा तेनैव दुद्रुवुः ॥१५॥
ते स्थलानि तदा निम्नं विवर्णवदना भयात् । ऋक्षा वृक्षान्समारूढाः केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥१६॥
निपेतुः केचिदपरे केचिन्नैवावतस्थिरे । केचिद्भूमौ निपतिताः केचित्सुप्तामृता इव ॥१७॥
तान्समीक्ष्याङ्गदो भग्नान्वानरानिदमब्रवीत् । अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवंगमाः ॥१८॥
भग्नानां वो न पश्यामि परिक्रम्य महीमिमाम् । स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किंप्राणान्परिरक्षथ ॥१९॥
निरायुधानां क्रमतामसङ्गगतिपौरुषाः । दारा ह्युपहसिष्यन्ति स वै घातः सुजीवताम् ॥२०॥
कुलेषु जाताः सर्वेऽस्मिन्विस्तीर्णेषु महत्सु च । क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत ॥२१॥
विकत्थनानि वो यानि भवद्भिर्जनसंसदि । तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि हतानि च ॥२२॥
भीरोः प्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः । मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम् ॥२३॥

उसके शरीरपर फेंके गये पत्थर चूर-चूर हो गये और पुष्पित वृक्ष टूटकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ११ ॥ वह भी क्रोध करके तथा सावधान होकर वानरोंकी सेनाको जलाने लगा, जिस प्रकार उठी आग वनको जलाती है ॥ १२ ॥ रुधिरसे भींगकर प्रधान वानर जमीनमें सो गये, जिन वानरोंको कुम्भकर्णने ऊपर फेंक दिया वे लाल पुष्पवाले वृक्षोंके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥ लाँघते और दौड़ते हुए वानर किसी ओर भी न देख सके, अतएव कई समुद्रमें गिर पड़े और कई आकाशमें उड़ गये ॥ १४ ॥ राक्षसके द्वारा अनायास पीड़ित हुए वानर जिस राहसे आये वे उसी राहसे भाग गये ॥ १५ ॥ भयसे विकृतमुख होकर वे वानर नीची जगहोंमें भाग गये, भालु वृक्षोंपर चढ़ गये और पर्वतपर चले गये। कई समुद्रमें डूब गये और कई गुहामें छिप गये ॥ १६ ॥ कई पृथिवीपर गिर पड़े, कई इधर-उधर दौड़ने लगे, एक जगह ठहर नहीं सके, कई पृथिवीपर पड़ गये, और कई मृतकके समान सो गये ॥ १७ ॥ उन भागे हुए वानरोंको देखकर अङ्गद बोले—वानरो, लौटो और ठहरो, हमलोग युद्ध करते हैं ॥ १८ ॥ यहाँसे भागनेपर समस्त पृथिवीमें घूमनेपर भी तुमलोगोंको स्थान नहीं मिलेगा, अतएव लौट आओ, प्राणोंकी रक्षा क्यों करते हो ॥ १९ ॥ अप्रति-बद्ध पराक्रमी वानरो, अस्त्रहीन होकर जब तुमलोग जाओगे तब तुम्हारी स्त्रियाँ तुमको हँसेंगी और जीने-पर भी यह उपहास तुम्हारे मरणके समान होगा ॥ २० ॥ तुम सबलोग बड़े कुलमें उत्पन्न हुए हो, फिर नीच बन्दरोंके समान डरकर भाग क्यों रहे हो, तुम डरकर भाग रहे हो, इसलिए तुम अनार्य हो ॥ २१ ॥ जनसमूहमें जो शेखी तुमलोग मारते थे, अपनी वीरताका वर्णन करते थे, अपनेको स्वामिहितकारी बतलाते थे, वह सब आज कहाँ गया ॥ २२ ॥ सज्जनोंके द्वारा धिक्कृत होनेपर भी जो जीते हैं उनके जीवनको धिक्कार ! इस प्रकारकी निन्दा भीरुओंकी हुआ करती है, अतएव तुमलोग सत्पुरुषोंके मार्गपर आओ, भयं

शयामहे वा निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः । प्राप्नुयामो ब्रह्मलोकं दुष्प्रापं च कुयोगिभिः ॥२४॥
अवाप्नुयामः कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे । निहता वीरलोकस्य भोक्ष्यामो वसु वानराः ॥२५॥
न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन्गमिष्यति । दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा ॥२६॥
पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान्रक्षामहे वयम् । एकेन बहवो भग्ना यशोनाशं गमिष्यति ॥२७॥
एवं ब्रुवाणं तं शूरमङ्गदम् कनकाङ्गदम् । द्रवमाणास्ततो वाक्यमूचुः शूरविगर्हितम् ॥२८॥
कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा । न स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः ॥२९॥
एतावदुक्त्वा वचनं सर्वे ते भेजिरे दिशः । भीमं भीमाक्षमायान्तं दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥३०॥
द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन वलीमुखाः । सान्त्वनैश्चानुमानैश्च ततः सर्वे निवर्तिताः ॥३१॥
प्रहर्षमुपनीताश्च वालिपुत्रेण धीमता । आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्च सर्वे वानरयूथपाः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा । नैष्ठिकीं बुद्धिमास्थाय सर्वे संग्रामकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥
समुदीरितवीर्यास्ते समारोपितविक्रमा । पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन बलीयसा ॥ २ ॥
प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः । चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥

छोड़ो ॥ २३ ॥ दुर्बल होनेके कारण यदि हमलोग मारे गये और पृथिवीपर पड़ गये, तो भी भीरुओंके लिए दुष्प्राप्य ब्रह्मलोक हमलोगोंको मिलेगा ॥ २४ ॥ अथवा युद्धमें शत्रुको मारकर हमलोग कीर्ति पावेंगे, वानरो ! यदि हम मारे गये तो वीरलोकके सुख हम पावेंगे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रके सामने जाकर कुम्भकर्ण जीता लौट नहीं सकता, जिस प्रकार प्रदीप्त अग्निके सामने जाकर पतंग जीता नहीं लौटता ॥ २६ ॥ हमलोगोंकी गणना वीरोंमें है, हम अनेक एकसे डरकर भागें और प्राण बचावें तो हमारा यश नष्ट हो जायगा ॥२७॥ ऐसा कहनेवाले सुवर्ण-अङ्गदधारी वीर अङ्गदसे भागनेवाले वानर शूरोंके अयोग्य वचन बोले ॥२८॥ राक्षस कुम्भकर्णने हमलोगोंको बहुत मारा है, अतएव हमलोगोंके रहनेका समय नहीं है, क्योंकि हमें अपने प्राण प्रिय हैं ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर भीमाक्ष और भयानक राक्षसको देखकर वे सभी वानर दिशाओंमें भाग गये ॥ ३० ॥ भागनेवाले उन समस्त वानरोंको धीरज देकर तथा जय होनेके लक्षण बतलाकर अङ्गदने लौटाया ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान् वालिपुत्रने उन सबको प्रसन्न किया । वे सब वानरसेनापति आज्ञाकी प्रतीक्षामें खड़े रहे ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

अंगदके वचन सुनकर विशाल शरीरवाले वानर लौट आये । युद्ध करनेके लिए उनलोगोंने अपने विचार स्थिर कर लिये ॥ १ ॥ बलवान् अंगदने उन वानरोंको दृढ़ किया, वे अपने पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे और पराक्रम दिखानेके लिए तयार हुए ॥२॥ वे अंगदके समीप गये उन लोगोंमें युद्धका उत्साह आगया,

अथ वृक्षान्महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च । वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥
कुम्भकर्णः सुसंक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान् । धर्षयन्स महाकायः समन्ताद्व्यक्षिपद्रिपून् ॥ ५ ॥
शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः । प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन ताडिताः ॥ ६ ॥
षोडशाष्टौ च दश च विंशत्त्रिंशत्तथैव च । परिक्षिप्य च बाहुभ्यां खादन्स परिधावति ॥
भक्षयन्भृशसंक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ७ ॥
कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः संगम्य च ततस्ततः । वृक्षाद्रिहस्ता हरयस्तस्थुः सङ्ग्राममूर्धनि ॥ ८ ॥
ततः पर्वतमुत्पाट्य द्विविदः प्लवगर्षभः । दुद्राव गिरिशृङ्गाभं विलम्ब इव तोयदः ॥ ९ ॥
तं समुत्पाट्य चिक्षेप कुम्भकर्णाय वानरः । तमप्राप्य महाकायं तस्य सैन्येऽपतत्ततः ॥१०॥
ममर्दाश्वान्गजांश्चापि रथांश्चापि गजोत्तमान् । तानि चान्यानि रक्षांसि एवं चान्यद्गिरेः शिरः ॥११॥
तच्छैलवेगाभिहतं हताश्वं हतसारथिम् । रक्षसां रुधिरक्लिन्नं बभूवायोधनं महत् ॥१२॥
रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः । शिरांसि नर्दतां जह्रुः सहसा भीमनिःस्वनाः ॥१३॥
वानराश्च महात्मानः समुत्पाट्य महाद्रुमान् । रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥१४॥
हनूमाञ्शैलशृङ्गाणि शिलाश्च विविधान्द्रुमान् । ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥१५॥
तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन स बिभेद ह । बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥१६॥
ततो हरीणां तदनीकमुग्रं दुद्राव शूलं निशितं प्रगृह्य ।
तस्थौ स तस्यापततः परस्तान्महीधराग्रं हनुमान्प्रगृह्य ॥१७॥

उनलोगोंने मरनेका निश्चय कर लिया। भोजन आदि छोड़कर वे भयंकर युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ महाकाय वानरोंने वृक्ष तथा बड़े-बड़े पर्वतशिखर लेकर कुम्भकर्णपर आक्रमण किया ॥४॥ क्रोध करके वीर्यवान् कुम्भकर्णने गदा लेकर तथा शत्रुओंको डाँटकर इधर-उधर गिरा दिया ॥ ५ ॥ आठ हजार सात सौ वानर कुम्भकर्णकी मारसे अङ्ग-भङ्ग होकर पृथिवीपर सो गये ॥ ६ ॥ जिस प्रकार क्रुद्ध गरुड़ साँपोंको खाता है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण सोलह, आठ, दस, बीस, तीस वानरोंको एक साथ बाँहसे पकड़कर खाता हुआ दौड़ने लगा ॥७॥ बड़े कष्टोंसे वानर धैर्य धरकर एकत्र हुए और वृक्ष तथा पत्थर लेकर युद्धभूमिमें खड़े हुए ॥८॥ वानरश्रेष्ठ मेघके समान लम्बे द्विविदने पर्वतशिखरके समान कुम्भकर्णपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥ एक विशालपर्वत उखाड़कर वानरने कुम्भकर्णपर फेंका, पर वह पर्वत उसके विशालशरीर होनेके कारण उसतक न पहुँचा, बल्कि उसकी सेनापर गिरा ॥१०॥ उससे घोड़े, हाथी, रथ पिस गये, दूसरे राक्षसोंपर द्विविदने दूसरा पर्वतशिखर फेंका ॥ ११ ॥ पर्वतोंकी मार, घोड़े और सारथियोंके मरनेसे तथा रुधिरसे भीगनेसे वह युद्ध बड़ा भयानक हुआ ॥ १२ ॥ घोर गर्जन करनेवाले रथी राक्षसोंने प्रलयकालके यमराजके समान बाणोंसे गर्जन करनेवाले वानरोंके सिर काटे ॥१३॥ महात्मा वानर भी बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़कर रथों, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों और राक्षसोंको मारने लगे ॥१४॥ हनुमान आकाशमें जाकर पत्थर तथा अनेक प्रकारके वृक्ष कुम्भकर्णके माथेपर बरसाने लगे ॥ १५ ॥ महाबली कुम्भकर्णने उन पर्वतशिखरोंको शूलसे तोड़ डाला और वृक्ष-वृष्टिको काट डाला ॥१६॥ वानरोंकी उस उग्र सेनापर तीखा शूल लेकर कुम्भकर्णने धावा किया, आक्रमणके

स कुम्भकर्णं कुपितो जघान वेगेन शैलोत्तमभीमकायम् ।
संचुक्षुभे तेन तदाभिभूतो मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ॥१८॥
स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशं गिरिर्यथा प्रज्वलिताग्निशृङ्गम् ।
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान गुहोऽचलं क्रौञ्चमिवोग्रशक्त्या ॥१९॥
स शूलनिर्भिन्नमहाभुजान्तरः प्रविह्वलः शोणितमुद्वमन्रुषा ।
ननाद भीमं हनुमान्महाहवे युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥२०॥
ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य ।
प्लवंगमास्तु व्यथिता भयार्ताः प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात् ॥२१॥

ततस्तु नीलो बलवान्पर्यवस्थापयन्बलम् । प्रविचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ॥२२॥
तदापतन्तं संप्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह । मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ॥
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ॥२३॥
ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः । पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥२४॥
शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः । कुम्भकर्णं महाकायं निजघ्नुः सर्वतो युधि ॥२५॥
स्पर्शानिव प्रहारांस्तान्वेदयानो न विव्यथे । ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२६॥
कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः । निपपातर्षभो भीमः प्रमुखागतशोणितः ॥२७॥
मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे । आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥२८॥

लिए आते हुए उसके आगे पर्वतशिखर लेकर हनुमान खड़े होगये ॥ १७ ॥ क्रोधकरके हनुमानने पर्वतके समान कुम्भकर्णके शरीरपर मारा, उससे अभिभूत होकर वह क्षुभित हो गया, चर्बी और खूनसे उसका शरीर भींग गया ॥ १८ ॥ बिजुलीके समान प्रकाशमान, प्रज्वलित पर्वतशृङ्गके समान शूललेकर कुम्भकर्णने हनुमानके दोनों हाथोंके बीचमें मारा, जिस प्रकार कुमारने क्रौंचपर्वतको शक्तिसे मारा था ॥१९॥ भुजाओंके बीचमें शूलसे आहत होनेसे हनुमान विह्वल होगये, वे खून उगलने लगे। वे क्रोधकरके प्रलयकालके मेघ-गर्जनके समान युद्ध-भूमिमें भयङ्कर गर्जन करने लगे ॥ २० ॥ हनुमान्को व्यथित देखकर राक्षस प्रसन्नता-पूर्वक गर्जन करने लगे और वानर कुम्भकर्णसे व्यथित तथा भयभीत होकर भागने लगे ॥२१॥ उस समय बलवान् नीलने सैनिकोंको धीरज दिया और उन्होंने बुद्धिमान कुम्भकर्णपर पर्वतशिखर फेंका ॥ २२ ॥ अपनी ओर आते हुए उस पर्वतशिखरपर कुम्भकर्णने घूँसासे मारा, जिससे वह टूट गया, उससे चिनगारियाँ उड़ने लगीं और वह पृथिवीपर गिर गया ॥२३॥ ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गन्धमादन इन पाँच प्रधान वानरोंने कुम्भकर्णपर आक्रमण किया ॥ २४ ॥ पर्वत, वृक्ष, थप्पड़, लात और घूसोंसे वे विशालशरीर कुम्भकर्णको चारों ओरसे मारने लगे ॥ २५ ॥ स्पर्शके समान इन प्रहारोंसे उसे किसी प्रकारकी वेदना न हुई, वह व्यथित न हुआ, महावेगवान् ऋषभको पकड़कर उसने आलिंगन किया ॥२६॥ कुम्भकर्णके हाथोंसे दबाये जानेपर वानरश्रेष्ठ ऋषभ बहुत व्यथित हुआ, उसके मुँहमें खून आगया और वह गिर पड़ा ॥ २७ ॥ उस समय शरभको घूसेसे, नीलको घुटनोंसे और गवाक्षको थप्पड़से इन्द्रशत्रुने मारा

दत्तमहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः । निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः ॥२९॥
तेषु वानरमुख्येषु पातितेषु महात्मसु । वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुद्रुवुः ॥३०॥
तं शैलमिव शैलाभाः सर्वे तु प्लवगर्षभाः । समारुह्य समुत्पत्य ददंशुः प्लवगर्षभाः ॥३१॥
तं नखैर्दशनैश्चापि मुष्टिभिर्बाहुभिस्तथा । कुम्भकर्णं महाबाहुं निजघ्नुः प्लवगर्षभाः ॥३२॥
स वानरसहस्रैस्तु विचितः पर्वतोपमः । रराज राक्षसव्याघ्रो गिरिरात्मरुहैरिव ॥३३॥
बाहुभ्यां वानरान्सर्वान्प्रगृह्य स महाबलः । भक्षयामास संक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥३४॥
प्रक्षिप्ताः कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसंनिभे । नासापुटाभ्यां संजग्मुः कर्णाभ्यां चैव वानराः॥३५॥
भक्षयन्भृशसंक्रुद्धो हरीन्पर्वतसंनिभः । बभञ्ज वानरान्सर्वान्संक्रुद्धो राक्षसोत्तमः ॥३६॥
मांसशोणितसंक्लेदां कुर्वन्भूमिं स राक्षसः । चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्च्छितः ॥३७॥
वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः । शूलहस्तो बभौ युद्धे कुम्भकर्णो महाबलः ॥३८॥
यथा शुष्काण्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः । तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो ददाह सः ॥३९॥
ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथाः प्लवंगमाः । वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥४०॥
अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः । राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिता भिन्नचेतसः ॥४१॥
प्रभग्नान्वानरान्दृष्ट्वा वज्रहस्तात्मजात्मजः । अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥४२॥
शैलशृङ्गं महद्गृह्य विनदन्स मुहुर्मुहुः । त्रासयन्राक्षसान्सर्वान्कुम्भकर्णपदानुगान् ॥४३॥

॥ २८ ॥ कुम्भकर्णके प्रहारोंसे व्यथित हुए वे रुधिर उगिलकर बेहोश हो गये। वे कटे पलाशके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २९ ॥ उन महात्मा प्रधान वानरोंके पृथिवीपर गिरनेपर कुम्भकर्णने हजारों वानरोंपर आक्रमण किया ॥ ३० ॥ पर्वततुल्य वानर उछलकर पर्वततुल्य कुम्भकर्णको दाँतोंसे काटने लगे ॥ ३१ ॥ महाबाहु कुम्भकर्णको नखों, दाँतों, घूसों और हाथोंसे वानरोंने मारा ॥ ३२ ॥ पर्वतोंके समान उस कुम्भकर्णपर हजारों वानर चढ़ गये, अतएव अपने ऊपर लगे वृक्षोंके कारण पर्वतके समान वह मालूम होने लगा ॥ ३३ ॥ महाबली कुम्भकर्ण हाथोंसे पकड़कर वानरोंको खाने लगा, जिस प्रकार क्रोध करके गरुड़ साँपोंको खा जाता है ॥ ३४ ॥ कुम्भकर्णने पातालके समान मुँहमें वानरोंको डाल दिया, और ये उसकी नाक तथा कानके रास्ते निकल आये ॥ ३५ ॥ पर्वतोपम राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण वानरोंको खाने लगा और उन्हें टुकड़े-टुकड़े करने लगा ॥ ३६ ॥ पृथिवीको मांस और रुधिरसे सींचकर प्रज्वलित प्रलयाग्निके समान वानरीसेनामें विचरण करने लगा ॥ ३७ ॥ महाबली कुम्भकर्ण हाथमें शूललेकर वज्रहस्त इन्द्र और पाशहस्त यमराजके समान मालूम पड़ने लगा ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार सूखे वनको गरमीके दिनोंमें आग जला देती है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण उस वानरीसेनाको जलाने लगा ॥ ३९ ॥ जिनके यूथ मारे गये हैं ऐसे वानर कुम्भकर्णकी मारसे व्यथित हो गये और भयभीत होकर चीत्कार करने लगे ॥४०॥ कुम्भकर्णके द्वारा अनेक प्रकारसे पीड़ित होकर तथा निराश होकर रामचन्द्रकी शरण गये ॥ ४१ ॥ वानर भाग रहे हैं यह देखकर वालिपुत्र अङ्गद बड़े वेगसे कुम्भकर्णकी ओर दौड़े ॥ ४२ ॥ वे बड़ा पर्वतशृङ्ग लेकर

चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि । स तेनाभिहतो मूर्ध्नि शैलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥४४॥
कुम्भकर्णः प्रजज्वाल क्रोधेन महता तदा । सोऽभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणम् ॥४५॥
कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन्सर्ववानरान् । शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे तु महाबलः ॥४६॥
तदापतन्तं बलवान्युद्धमार्गविशारदः । लाघवान्मोक्षयामास बलवान्वानरर्षभः ॥४७॥
उत्पत्य चैनं तरसा तलेनोरस्यताडयत् । स तेनाभिहतः कोपात्प्रमुमोहाचलोपमः ॥४८॥
स लब्धसंज्ञोऽतिबलो मुष्टिं संगृह्य राक्षसः । अपहासेन चिक्षेप विसंज्ञः स पपात ह ॥४९॥
तस्मिन्प्लवगशार्दूले विसंज्ञे पतिते भुवि । तच्छूलं समुपादाय सुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥५०॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम् । उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः ॥५१॥
स पर्वताग्रमुत्क्षिप्य समाविध्य महाबलः । अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम् ॥५२॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवंगमम् । तस्थौ विवृत्तसर्वाङ्गो वानरेन्द्रस्य संमुखः ॥५३॥
कपिशोणितदिग्धाङ्गं भक्षयन्तं महाकपीन् । कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥
पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् । भक्षितानि च सैन्यानि प्राप्तं ते परमं यशः ॥५५॥
त्यज तद्वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि । सहस्वैकं निपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस ॥५६॥
तद्वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् । श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥५७॥
प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः । धृतिपौरुषसंपन्नस्तस्माद्गर्जसि वानर ॥५८॥

बार-बार गर्जन करने लगे, जिससे कुम्भकर्णके साथी राक्षस भयभीत हुए ॥४३॥ उन्होंने कुम्भकर्णके मस्तक-पर वह पर्वतशिखर फेंका । उस पर्वतसे मस्तकपर आहत होकर कुम्भकर्ण बड़े क्रोधसे जलने लगा, क्रोधी वालिपुत्रकी ओर वह क्रोधसे दौड़ा ॥ ४४, ४५ ॥ घोर गर्जनसे सब वानरोंको भयभीत करके कुम्भकर्णने अङ्गदपर क्रोधसे शूल फेंका ॥ ४६ ॥ युद्धविशारद वानरश्रेष्ठ बली अङ्गदने शीघ्रतासे हटकर उस शूलको व्यर्थ कर दिया ॥ ४७ ॥ और उछलकर उन्होंने थप्पड़से उसकी छातीमें मारा, पर्वतोपम वह इस मारसे क्रोधित होकर मूर्च्छित हो गया ॥ ४८ ॥ होश आनेपर अतिबली कुम्भकर्णने मुट्ठी बाँधकर लापरवाहीसे अङ्गदको मारा, जिससे वे बेहोश हो गये और गिर पड़े ॥ ४९ ॥ बेहोश होकर वानरश्रेष्ठ अङ्गदके भूमिपर गिर जानेपर कुम्भकर्ण वही शूल लेकर सुग्रीवकी ओर दौड़ा ॥ ५० ॥ महाबली कुम्भकर्ण अपनी ओर आ रहा है यह देखकर वानरराज सुग्रीव ऊपर उछल गये ॥ ५१ ॥ महाबली सुग्रीव पर्वतशिखर उठाकर तथा उसे अच्छी तरह पकड़कर बड़े वेगसे महाबली कुम्भकर्णकी ओर दौड़े ॥ ५२ ॥ सुग्रीवको अपनी ओर आते देखकर कुम्भकर्ण अपना समस्त शरीर फैलाकर उनके सामने खड़ा हो गया ॥५३॥ बड़े-बड़े वानरोंको खाने लगा तथा वानररुधिरसे लिप्ताङ्ग कुम्भकर्णको देखकर सुग्रीव उससे बोले ॥ ५४ ॥ तुमने वीरोंको गिरादिया, सेना खा डाली, यह तुमने बड़ा दुष्कर काम किया है, इससे तुमको बड़ा यश मिला ॥ ५५ ॥ वानरीसेनाको छोड़दो, दुर्बलोंसे लड़कर क्या करोगे? राक्षस! मेरे इस पर्वतप्रहारको सहो ॥ ५६ ॥ वानरराजका वह बल और धैर्ययुक्त वचन सुनकर राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्ण बोला ॥ ५७ ॥ वानर! तुम प्रजापतिके पौत्र हो तथा ऋक्षराजके पुत्र हो, धीर और पुरुषार्थी

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य व्याविध्य शैलं सहसा मुमोच ।
तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णं शैलेन वज्राशनिसंनिभेन ॥५९॥
तच्छैलशृङ्गं सहसा विभिन्नं भुजान्तरे तस्य तदा विशाले ।
ततो विषेदुः सहसा प्लवंगा रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः ॥६०॥
स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप ननाद रोषाच्च विवृत्य वक्त्रम् ।
व्याविध्य शूलं च तडित्प्रकाशं चिक्षेप हर्यृक्षपतेर्वधाय ॥६१॥
तत्कुम्भकर्णस्य भुजप्रणुन्नं शूलं शितं काञ्चनदामयष्टिम् ।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य ॥६२॥
कृतं भारसहस्रस्य शूलं कालायसं महत् । बभञ्ज जानुमारोप्य तदा हृष्टः प्लवंगमः ॥६३॥
शूलं भग्नं हनुमता दृष्ट्वा वानरवाहिनी । हृष्टा ननाद बहुशः सर्वतश्चापि दुद्रुवे ॥६४॥
बभूवाथ परित्रस्तो राक्षसो विमुखोऽभवत् । सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः ॥
मारुतिं पूजयांचक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम् ॥६५॥
स तत्तथा भग्नमवेक्ष्य शूलं चुकोप रक्षोधिपतिर्महात्मा ।
उत्पाट्य लङ्कामलयात्सशृङ्गं जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन ॥६६॥
स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः ।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥६७॥
समभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यं स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ।
जहार सुग्रीवमभिप्रगृह्य यथानिलो मेघमिव प्रचण्डः ॥६८॥

हो, इसी कारण गर्ज रहे हो ॥ ५८ ॥ कुम्भकर्णके वचन सुनकर तथा पर्वत उठाकर सहसा उन्होंने कुम्भकर्णकी छातीमें वज्रतुल्य उस पर्वतसे मारा ॥ ५९ ॥ वह पर्वत उसकी विशाल छातीमें लगकर टूट गया, इससे वानर दुःखी हुए और राक्षस प्रसन्न होकर चिल्लाने लगे ॥ ६० ॥ पर्वतशिखरके आघातसे उसने क्रोध किया, मुँह फेरकर क्रोधसे उसने गर्जन किया और बिजुलीके समान प्रकाशमान शूल उठाकर वानर और भालुराजके वधके लिए उसे फेंका ॥ ६१ ॥ कुम्भकर्णका फेंका वह तीखा शूल, जिसकी मूठ सोनेकी थी, हनुमानने उछलकर पकड़ लिया और शीघ्रही उसे तोड़ दिया ॥ ६२ ॥ वह शूल हजार भार लोहेका बना था, उसको घुटनोंपर रखकर प्रसन्न हनुमानने तोड़ दिया, यह देखकर वानरीसेना प्रसन्नतासे गर्जन करने लगी और चारों ओरसे एकत्र होने लगी ॥ ६४ ॥ राक्षस भयभीत होकर उदासीन हो गया, वानर प्रसन्नतासे सिंहगर्जन करने लगे और शूल टूट गया यह देखकर वे हनुमानकी पूजा करने लगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार अपने शूलका टूटना देखकर महात्मा राक्षसराजने क्रोध किया और लङ्काके पासवाले मलयपर्वतका शिखर उठाकर सुग्रीवके पास आकर उससे उन्हें मारा ॥ ६६ ॥ पर्वतशिखरसे आहत होकर कपिराज युद्धभूमिमें बेहोश होकर गिर पड़े, उनको बेहोश पड़ा देख राक्षस प्रसन्नतापूर्वक गर्जन करने लगे ॥ ६७ ॥ कुम्भकर्ण

स तं महामेघनिकाशरूपमुत्पाट्य गच्छन्युधि कुम्भकर्णः ।
रराज मेरुप्रतिमानरूपो मेरुर्यथा व्युच्छ्रितघोरशृङ्गः ॥६९॥
ततस्तमादाय जगाम वीरः संस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रः ।
शृण्वन्निनादं त्रिदिवालयानां प्लवंगराजग्रहविस्मितानाम् ॥७०॥
ततस्तमादाय तदा स मेने हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः ।
अस्मिन्हृते सर्वमिदं हृतं स्यात्सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः ॥७१॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वानराणामितस्ततः । कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि वानरम् ॥७२॥
हनूमांश्चिन्तयामास मतिमान्मारुतात्मजः । एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥७३॥
यद्धि न्याय्यं मया कर्तुं तत्करिष्याम्यसंशयम् । भूत्वा पर्वतसंकाशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥७४॥

मया हते संयति कुम्भकर्णे महाबले मुष्टिविशीर्णदेहे ।
विमोचिते वानरपार्थिवे च भवन्तु हृष्टाः प्लवगाः समग्राः ॥७५॥

अथवा स्वयमप्येष मोक्षं प्राप्स्यति वानरः । गृहीतोऽयं यदि भवेत्त्रिदशैः सासुरोरगैः ॥७६॥
मन्ये न तावदात्मानं बुध्यते वानराधिपः । शैलप्रहाराभिहतः कुम्भकर्णेन संयुगे ॥७७॥
अयं मुहूर्तात्सुग्रीवो लब्धसंज्ञो महाहवे । आत्मनो वानराणां च यत्पथ्यं तत्करिष्यति ॥७८॥
मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः । अप्रीतिश्च भवेत्कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः ॥७९॥
तस्मान्मुहूर्तं काङ्क्ष्ये विक्रमं मोक्षितस्य तु । भिन्नं च वानरानीकं तावदाश्वासयाम्यहम् ॥८०॥

युद्धभूमिमें अद्भुत और भयङ्कर पराक्रमी सुग्रीवके पास आया और सुग्रीवको उठाकर ले चला, जिस प्रकार प्रचण्ड हवा मेघको उठा ले जाती है ॥ ६८ ॥ महामेघके समान रूपवाले सुग्रीवको युद्धभूमिसे उठाकर लेजाता हुआ कुम्भकर्ण मेरुपर्वतके समान मालूम होने लगा, जिसके शिखर बड़े ऊँचे हैं ॥ ६९ ॥ राक्षसेन्द्र सुग्रीवको लेकर चला । राक्षस उसकी स्तुति करने लगे । वह सुग्रीवके पकड़े जानेसे विस्मित देवताओंके कथोपकथन सुनता हुआ चला ॥ ७० ॥ इन्द्रतुल्य सुग्रीवको लेकर इन्द्रके समान पराक्रमी इन्द्रशत्रु कुम्भकर्णने समझा कि इसके मारे जानेपर रामके साथ समूची सेना मारी जायगी ॥ ७१ ॥ कुम्भकर्णने सुग्रीवको पकड़ लिया है यह देखकर वानरोंकी सेना इधर-उधर दौड़ने लगी ॥ ७२ ॥ बुद्धिमान वायुपुत्र हनुमान सोचने लगे कि सुग्रीवके इस प्रकार पकड़े जानेपर मुझको क्या करना चाहिए ॥ ७३ ॥ मुझे जो करना उचित है वह मैं अवश्य करूँगा । पर्वतके समान होकर राक्षसोंका नाश करूँगा ॥ ७४ ॥ जब मैं महाबली कुम्भकर्णको घूँसोंसे मारकर उसका शरीर चूर-चूर कर दूँगा, जब मैं उसे मार दूँगा और जब वानरराज सुग्रीवको छुड़ा लूँगा तब समस्त वानर प्रसन्न होंगे ॥ ७५ ॥ अथवा ये सुग्रीव स्वयं छूट जाँयगे, चाहे इनको देवता असुर या नाग भी क्यों न पकड़ लें ॥ ७६ ॥ मैं समझता हूँ कि कुम्भकर्णके पत्थरकी मारसे वानरराज सुग्रीव इस समय होशमें नहीं हैं, थोड़ी देरमें इन्हें होश हो जायगा, उस समय अपने और वानरोंके कल्याणकी जो बात होगी वह ये करेंगे ॥ ७७, ७८ ॥ महात्मा सुग्रीवको यदि मैं छुड़ाऊँ तो ये अप्रसन्न होंगे और सदाके लिए इनकी कीर्ति नष्ट हो जायगी ॥ ७९ ॥ अतएव थोड़ी देरतक

इत्येवं चिन्तयित्वाथ हनूमान्मारुतात्मजः । भूयः संस्तम्भयामास वानराणां महाचमूम् ॥८१॥

स कुम्भकर्णोऽथ विवेश लङ्कां स्फुरन्तमादाय महाहरिं तम् ।
विमानचर्यागृहगोपुरस्थैः पुष्पाग्र्यवर्षैरभिपूज्यमानः ॥८२॥

लाजगन्धोदवर्षैस्तु सेव्यमानः शनैः शनैः । राजवीथ्यास्तु शीतत्वात्संज्ञामाप महाबलः ॥८३॥

ततः स संज्ञामुपलभ्य कृच्छ्राद्बलीयसस्तस्य भुजान्तरस्थः ।
अवेक्षमाणः पुरराजमार्गं विचिन्तयामास मुहुर्महात्मा ॥८४॥

एवं गृहीतेन कथं नु नाम शक्यं मया संप्रति कर्तुमद्य ।
तथा करिष्यामि यथा हरीणां भविष्यतीष्टं च हितं च कार्यम् ॥८५॥

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रोः ।
खरैश्च कर्णौ दशनैश्च नासां ददंश पादैर्विददार पार्श्वौ ॥८६॥

स कुम्भकर्णो हृतकर्णनासो विदारितस्तेन रदैर्नखैश्च ।
रोषाभिभूतः क्षतजार्द्रगात्रः सुग्रीवमाविध्य पिपेष भूमौ ॥८७॥

स भूतले भीमबलाभिपिष्टः सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ।
जगाम खं कन्दुकवज्जवेन पुनश्च रामेण समाजगाम ॥८८॥

कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः । रराज शोणितोत्सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥८९॥

शोणितार्द्रो महाकायो राक्षसो भीमदर्शनः । अमर्षाच्छोणितोद्गारी शुशुभे रावणानुजः ॥९०॥

इनके छूटनेकी मैं प्रतीक्षा करता हूँ, और तबतक इधर-उधर भगी वानरीसेनाको मैं ढाढ़स देता हूँ ॥ ८० ॥ ऐसा सोचकर वायुपुत्र हनुमान वानरोंकी बड़ी सेनाको एकत्र करने लगे ॥ ८१ ॥ वानरराजको लेकर वह राक्षस लङ्कामें गया, सुग्रीव उसके बगलमें दबे छटपटा रहे थे । उस राक्षसपर सतमहले मकानों, राजमार्गों और गोपुरोंसे पुष्पवृष्टि हो रही थी ॥ ८२ ॥ राजमार्गकी ठंढकसे, लावाकी गन्ध और जलके सेंकसे सुग्रीव धीरे-धीरे होशमें आये ॥ ८३ ॥ बलवान् कुम्भकर्णके अङ्कमें पड़े हुए सुग्रीव किसी तरह होशमें आये । महात्मा सुग्रीव लङ्काके राजमार्गको देखकर विचार करने लगे ॥ ८४ ॥ इस प्रकार पकड़में आनेपर मैं क्या कर सकता हूँ । मैं वही करूँगा जिससे वानरोंका मनोरथ पूरा हो और उनका कल्याण हो ॥ ८५ ॥ अनन्तर वानरोंके राजा इन्द्रशत्रुके कान तीखे नखोंसे नोचने लगे, दाँतोंसे उसकी नाक काटने लगे और पैरके नखोंसे उसके बगल खरोंचने लगे ॥ ८६ ॥ सुग्रीवके द्वारा दाँत और नखोंसे नाक तथा कानके काटे जानेपर उसका समस्त शरीर खूनसे भींग गया और क्रोधसे अन्धा होकर वह सुग्रीवको जमीनपर पटककर पीसने लगा ॥ ८७ ॥ सुग्रीव पृथिवीपर जब बड़े जोरसे पीसे जाने लगे, राक्षसोंके द्वारा मारे जाने लगे, तब वे शीघ्रतापूर्वक गेंदके समान आकाशमें चले गये और वहाँसे रामके पास चले आये ॥ ८८ ॥ महाबली कुम्भकर्ण कान और नाकसे हीन हो गया, रुधिर निकलनेके कारण वह उस पर्वतके समान मालूम होता था, जिसमेंसे सोते निकलते हों ॥ ८९ ॥ विशालशरीर कुम्भकर्ण रुधिरसे भींगनेके कारण देखनेमें भयानक

नीलाञ्जनचयप्रख्यः ससंध्य इव तोयदः । युद्धायाभिमुखो भीमो मनश्चक्रे निशाचरः ॥९१॥

गते च तस्मिन्सुरराजशत्रुः क्रोधात्प्रदुद्राव रणाय भूयः ।
अनायुधोऽस्मीति विचिन्त्य रौद्रो घोरं तदा मुद्गरमाससाद ॥९२॥

ततः स पुर्याः सहसा महात्मा निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः प्रजा युगान्ताग्निरिव प्रवृद्धः ॥९३॥

बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः प्रविश्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
चखाद रक्षांसि हरीन्पिशाचानृक्षांश्च मोहाद्युधि कुम्भकर्णः ।
यथैव मृत्युर्हरते युगान्ते स भक्षयामास हरींश्च मुख्यान् ॥९४॥

एकं द्वौ त्रीन्बहून्क्रुद्धो वानरान्सह राक्षसैः । समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्वरन्मुखे ॥९५॥

संप्रस्रवत्तदा मेदः शोणितं च महाबलः । वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ॥९६॥

ते भक्ष्यमाणा हरयो रामं जग्मुस्तदा गतिम् । कुम्भकर्णो भृशं क्रुद्धः कपीन्खादन्प्रधावति ॥९७॥

शतानि सप्त चाष्टौ च विंशत्त्रिंशत्तथैव च । संपरिष्वज्य बाहुभ्यां खादन्विपरिधावति ॥९८॥

मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः कर्णावसक्तग्रथितान्त्रमालः ।
ववर्ष शूलानि सुतीक्ष्णदंष्ट्रः कालो युगान्तस्थ इव प्रवृद्धः ॥९९॥

तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः । चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरंजयः ॥१००॥

स कुम्भकर्णस्य शरान्शरीरे सप्त वीर्यवान् । निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः॥१०१॥

हो गया, वह रुधिर उगलने लगा। रावणका छोटा भाई क्रोधके कारण शोभित होने लगा ॥ ९० ॥ अंजन-राशिके समान काला और रुधिर गिरनेके कारण सन्ध्याके मेघके समान वह भयङ्कर राक्षस सामने आकर युद्ध करनेकी इच्छा करने लगा ॥ ९१ ॥ सुग्रीवके चले जानेपर देवशत्रु राक्षस युद्धके लिए पुनः चला। हमारे पास कोई अस्त्र नहीं है यह सोचकर उसने एक बड़ाभारी मुद्गर उठा लिया ॥ ९२ ॥ लंकासे शीघ्र निकलकर महात्मा कुम्भकर्ण उस उग्र वानरसेनाको खाने लगा, जिस प्रकार प्रलयकी अग्नि प्रजाको खाती है ॥ ९३ ॥ रुधिर और मांसका लोभी वह राक्षस भूखा था, वह वानरी सेनामें जाकर अज्ञानवश वानरों, राक्षसों, पिशाचों और भालुओंको खाने लगा। जिस प्रकार प्रलयकालमें मृत्यु प्राणियोंको ग्रस लेती है उसी प्रकार वह प्रधान वानरोंको खाने लगा ॥ ९४ ॥ एक दो तीन तथा अनेक राक्षसोंको वानरोंके साथ कुम्भकर्ण क्रोध करके मुँहमें फेंकने लगा ॥ ९५ ॥ पर्वत-शिखरोंसे आहत महाबली कुम्भकर्ण वानरोंको खाने लगा और उसके शरीरसे रुधिर और चर्वी बहने लगी ॥९६॥ वह राक्षस क्रोध करके वानरोंको खाता हुआ घूमने लगा। उसके द्वारा खाये जानेके भयसे वानर भागकर रामकी शरण जाने लगे ॥ ९७ ॥ सौ, सात, आठ, बीस, तीस वानरोंको साथ-साथ पकड़कर वह खाने लगा और दौड़ने लगा ॥ ९८ ॥ मेद वसा रुधिरसे वह नहा गया था, उसके कानोंपर अँतड़ियाँ लटक गयी थीं। तीखे दाँतवाला वह राक्षस शूलोंकी वर्षा करने लगा, मानो प्रलयकालका काल हो ॥ ९९ ॥ उस समय शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण क्रोधकरके युद्ध करने लगे ॥ १०० ॥ वीर्यवान्

पीड्यमानस्तदुस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः। ततश्चुकोप बलवान्सुमित्रानन्दवर्धनः॥१०२॥
अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम्। प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः॥१०३॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यः शरैः काञ्चनभूषणैः। आपीड्यमानः शुशुभे मेघैः सूर्य इवांशुमान्॥१०४॥
ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम्। सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः॥१०५॥
अन्तकस्याप्यकृष्टेन युधि जेतारमाहवे। युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया॥१०६॥
प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे। तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः॥१०७॥
ऐरावतं समारूढो वृतः सर्वामरैः प्रभुः। नैव शक्रोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन॥१०८॥
अद्य त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः। तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम्॥१०९॥
यत्तु वीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया। राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन्हते हतम्॥११०॥
रामे मयात्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे। तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना॥१११॥
इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम्। मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव॥११२॥
यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यः प्राप्त पौरुषम्। तत्सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः॥११३॥
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः। इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः॥११४॥
अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः। राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम्॥११५॥

लक्ष्मणने कुम्भकर्णके शरीरमें सात बाण मारे, उन्होंने दूसरे बाण लिये और मारे॥ १०१॥ बाणोंसे पीड़ित होकर राक्षसने दूसरे अस्त्रसे उन बाणोंको व्यर्थ कर दिया, इससे लक्ष्मण बहुत क्रुद्ध हुए॥ १०२॥ पुनः उन्होंने कुम्भकर्णका सोनेका कवच बाणोंसे ढक दिया, जिस प्रकार वायु सन्ध्याके मेघको ढक लेता है॥ १०३॥ सुवर्ण लगे हुए बाणोंसे पीड़ित अञ्जनराशिके समान कुम्भकर्ण, मेघोंसे ढके सूर्यके समान शोभित होने लगा॥ १०४॥ अनन्तर भयानक राक्षस लक्ष्मणसे तिरस्कारपूर्वक मेघगर्जनके समान बोला॥ १०५॥ बिना कष्टके यमराजको भी जीतनेवाले मुझसे निर्भय होकर युद्ध करनेके कारण तुम्हारी वीरता प्रसिद्ध हुई॥ १०६॥ युद्धमें अस्त्रधारण करनेपर मृत्युके तुल्य मेरे सामने जो खड़ा रह जाय, उसकी भी प्रशंसा हो जाय; फिर युद्ध करनेवालेकी प्रशंसा क्यों न होगी॥ १०७॥ ऐरावतपर चढ़कर समस्त देवताओंके साथ इन्द्र भी युद्धमें मेरे सामने कभी खड़ा नहीं रह सका है॥ १०८॥ लक्ष्मण! बालक होनेपर भी पराक्रमसे तुमने मुझे प्रसन्न किया है। तुमसे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा लेकर मैं रामचन्द्रके पास जाना चाहता हूँ; क्योंकि पराक्रम, बल और उत्साहसे तुमने मुझे युद्धमें प्रसन्न किया है। युद्धमें मैं केवल रामचन्द्रको ही मारना चाहता हूँ; क्योंकि उनके मरनेपर सभी मारे जाँयगे॥ ११०॥ युद्धक्षेत्रमें मेरे द्वारा रामके मारे जानेपर जो लोग यहाँ रहेंगे, उनको मथन करनेवाले अपने बलसे मैं उन्हें लड़ाऊँगा॥ १११॥ राक्षसके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने हँसकर उससे स्तुतिसहित कठोर वचन कहे॥ ११२॥ इन्द्र आदि देवताके लिए भी न सहन करने योग्य पराक्रम तुम्हें प्राप्त है, यह सच है, इसमें असत्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि मैंने तुम्हारा पराक्रम आज देखा है॥ ११३॥ दशरथपुत्र रामचन्द्र यहीं अचलपर्वतके समान बैठे हैं। ऐसा सुनकर लक्ष्मणको अनादरपूर्वक छोड़कर महाबली राक्षस कुम्भकर्ण पृथिवीको

अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन्। कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताञ्छरान् ॥११६॥
तस्य रामेण विद्धस्य सहसाभिप्रधावतः। अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥११७॥
रामास्त्रविद्धो घोरं वै नर्दन्राक्षसपुंगवः। अभ्यधावत तं क्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥११८॥
तस्योरसि निमग्नास्ते शरा बर्हिणवाससः। हस्ताच्चास्य परिभ्रष्टा गदा चोर्व्यां पपात ह ॥११९॥
आयुधानि च सर्वाणि विप्रकीर्यन्त भूतले। स निरायुधमात्मानं यदा मेने महाबलः ॥१२०॥
मुष्टिभ्यां च कराभ्यां च चकार कदनं महत्। स बाणैरतिविद्धाङ्गः क्षतजेन समुक्षितः ॥
रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणं यथा ॥१२१॥
स तीव्रेण च कोपेन रुधिरेण च मूर्च्छितः। वानरान्राक्षसानृक्षान्खादन्स परिधावति ॥१२२॥
अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः। चिक्षेप राममुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥
अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तमजिह्मगैः ॥१२३॥
ततस्तु रामो धर्मात्मा तस्य शृङ्गं महत्तदा। शरैः काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥१२४॥
तन्मेरुशिखराकारैर्द्योतमानमिव श्रिया। द्वे शते वानराणां च पतमानमपातयत् ॥१२५॥
तस्मिन्काले स धर्मात्मा लक्ष्मणो राममब्रवीत्। कुम्भकर्णवधे युक्तो योगान्परिमृशन्बहून् ॥१२६॥
नैवायं वानरान्राजन्न विजानाति राक्षसान्। मत्तः शोणितगन्धेन स्वान्परांश्चैव खादति ॥१२७॥
साध्वेनमधिरोहन्तु सर्वतो वानरर्षभाः। यूथपाश्च यथा मुख्यास्तिष्ठन्त्वस्मिन्समन्ततः ॥१२८॥

कँपाता हुआ रामचन्द्रकी ओर चला ॥ ११४, ११५ ॥ दशरथपुत्र रामचन्द्रने कठोर अस्त्र चढ़ाकर कुम्भकर्णके हृदयमें तीखे बाण मारे ॥ ११६ ॥ रामके बाणसे विद्ध होकर अत्यन्त क्रोधित तथा दौड़ते हुए कुम्भकर्णके मुँहसे अङ्गारसहित ज्वाला निकलने लगी ॥ ११७ ॥ रामके बाणसे विद्ध होकर राक्षसश्रेष्ठ गरजता हुआ क्रोध करके वानरोंको भगाता हुआ दौड़ा ॥ ११८ ॥ उसकी छातीमें मोरपंखसे शोभित वे बाण धँस गये। उसके हाथसे गदा छूट गयी और वह पृथिवीमें गिर पड़ा ॥ ११९ ॥ उसके सभी अस्त्र पृथिवीमें बिखर गए। जब उसने अपनेको अस्त्रहीन समझा, तब मुट्ठीसे तथा हाथोंसे खूब मारने लगा। उसका समस्त शरीर बाणोंसे बिंध गया और रुधिरसे भीग गया। उसके शरीरसे रुधिर बहने लगा, जैसे पर्वतसे सोता बहता है ॥ १२०, १२१ ॥ वह तीव्र क्रोध तथा रुधिरसे व्याप्त होकर वानरोंको खाता हुआ दौड़ने लगा ॥ १२२ ॥ भीमपराक्रम राक्षसने भयानक पर्वत-शिखर उठाकर और रामको लक्ष्य कर चलाया, मानो यमराज हों। आनेके पहले ही उस पर्वत शिखरको रामने सात बाणोंसे काट डाला ॥ १२३ ॥ अनन्तर धर्मात्मा भरतअग्रज रामचन्द्रने उस शिखरको सुवर्ण-भूषित बाणोंसे काट गिराया ॥ १२४ ॥ अपनी शोभासे प्रकाशित होनेवाले मेरु-शिखरके समान उस पर्वत-शिखरने गिरते हुए दो सौ वानरोंको गिराया ॥ १२५ ॥ उस समय धर्मात्मा लक्ष्मण कुम्भकर्णके वधके लिए अनेक उपायोंका विचार करके रामचन्द्रसे बोले ॥ १२६ ॥ राजन् यह न वानरोंको पहिचानता है और न राक्षसोंको, शोणितकी गंधसे यह मतवाला हो गया है, अपनोंको तथा दूसरोंको यह खा रहा है ॥ १२७ ॥ अच्छा, प्रधान-प्रधान वानर इसपर चढ़

अद्यायं दुर्मतिः काले गुरुभारप्रपीडितः । प्रचरन्राक्षसो भूमौ नान्यान्हन्यात्प्लवंगमान् ॥१२९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः । ते समारुरुहुर्हृष्टाः कुम्भकर्णं महाबलाः ॥१३०॥
कुम्भकर्णस्तु संक्रुद्धः समारूढैः प्लवंगमैः । व्यधूनयत्तान्वेगेन दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ॥१३१॥
तान्दृष्ट्वा निर्धुतान्रामो रुष्टोऽयमिति राक्षसम् । समुत्पपात वेगेन धनुरुत्तममाददे ॥१३२॥
क्रोधरक्तेक्षणो धीरो निर्दहन्निव चक्षुषा । राघवो राक्षसं वेगादभिदुद्राव वेगितः ॥
यूथपान्हर्षयन्सर्वान्कुम्भकर्णबलार्दितान् ॥१३३॥
स चापमादाय भुजंगकल्पं दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम् ।
हरीन्समाश्वास्य समुत्पपात रामो निबद्धोत्तमतूणबाणः ॥१३४॥
स वानरगणैस्तैस्तु वृतः परमदुर्जयैः । लक्ष्मणानुचरो वीरः संप्रतस्थे महाबलः ॥१३५॥
स ददर्श महात्मानं किरीटिनमरिंदमम् । शोणिताप्लुतरक्ताक्षं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥१३६॥
सर्वान्समभिधावन्तं यथा रुष्टं दिशागजम् । मार्गमाणं हरीन्क्रुद्धं राक्षसैः परिवारितम् ॥१३७॥
विन्ध्यमन्दरसंकाशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् । स्रवन्तं रुधिरं वक्त्राद्वर्षं मेघमिवोत्थितम् ॥१३८॥
जिह्वया परिलिह्यन्तं सृक्किणी शोणितोक्षिते । मृद्नन्तं वानरानीकं कालान्तकयमोपमम् ॥१३९॥
तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम् । विस्फारयामास तदा कार्मुकं पुरुषर्षभः ॥१४०॥
स तस्य चापनिर्घोषात्कुपितो राक्षसर्षभः । अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम् ॥१४१॥

जाँय और सेनापति तथा अन्य प्रधान वानर इसके चारो-ओर खड़े हो जाँय ॥ १२८ ॥ इससे यह मूर्ख बड़े भारसे दब जायगा और पृथिवीमें पुकार करता हुआ दूसरे वानरोंको न मार सकेगा ॥ १२९ ॥ बुद्धिमान राजपुत्रके वे वचन सुनकर महाबली वानर प्रसन्न होकर कुम्भकर्णपर चढ़ गये ॥ १३० ॥ वानरोंके चढ़नेपर क्रोध करके कुम्भकर्ण इनलोगोंको बड़े जोरसे कँपाने लगा, जिस प्रकार दुष्ट हाथी हाथीवानको कँपाता है ॥ १३१ ॥ रामचन्द्रने वानरोंका कँपाया जाना देखकर समझा कि यह रुष्ट हो गया है । वे वेगसे उसपर झपटे और उन्होंने उत्तम धनुष लिया ॥ १३२ ॥ धीर रामचन्द्रकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं । आँखोंसे जलाते हुए वे राक्षसकी ओर बड़े वेगसे बढ़े । इससे कुम्भकर्णके द्वारा पीड़ित उनके समस्त सेनापति प्रसन्न हुए ॥ १३३ ॥ रामचन्द्रने धनुष लिया जो सर्पके समान था, जिसकी ज्या मजबूत थी, जिसमें सोनेके काम किये हुए थे । उत्तम तूणीरमें बाण भरकर और वानरोंको धैर्य देकर चले ॥ १३४ ॥ दुर्जय वानरोंसे घिरकर तथा लक्ष्मणके साथ महाबली वीर रामचन्द्र चले ॥ १३५ ॥ उन्होंने किरीटधारी शत्रुओंको दमन करनेवाले महात्मा कुम्भकर्णको देखा । वह रुधिरसे भींगा हुआ था और उसकी आँखें लाल थीं ॥ १३६ ॥ क्रुद्ध दिग्गजके समान दौड़ते हुए राक्षसोंसे घिरे हुए तथा समस्त वानरोंको ढूँढ़ते हुए, उस कुम्भकर्णको रामने देखा ॥ १३७ ॥ विन्ध्याचल और मन्दराचलके समान विशाल, सुवर्णके गहनोंसे भूषित, मुँहसे रुधिर बरसाते हुए, उत्थित मेघके समान उन्होंने कुम्भकर्णको देखा ॥ १३८ ॥ रुधिरसे भींगे हुए दोनों गलफरोंको वह चाट रहा था, प्रलयकालके यमराजके समान वानरीसेनाको मसल रहा था, रामने उसको देखा ॥१३९॥ दीप्त अग्निके समान तेजस्वी उस राक्षसश्रेष्ठको देखकर पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रने धनुष चढ़ाया ॥१४०॥

ततस्तु धारोद्धतमेघकल्पं भुजंगराजोत्तमभोगबाहुः ।
तमापतन्तं धरणीधराभमुवाच रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥१४२॥
आगच्छ रक्षोधिप मा विषादमवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः ।
अवेहि मां राक्षसवंशनाशनं यस्त्वं मुहूर्ताद्भविता विचेताः ॥१४३॥
रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम् । अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥१४४॥
दारयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम् । प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् ॥१४५॥
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् । नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च ॥
न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णः समागतः ॥१४६॥
पश्य मे मुद्गरं भीमं सर्वं कालायसं महत् । अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥१४७॥
विकर्णनास इति मां नावज्ञातुं त्वमर्हसि । स्वल्पापि हि न मे पीडा कर्णनासाविनाशनात् ॥१४८॥
दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल वीर्यं गात्रेषु मेऽनघ । ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृष्टपौरुषविक्रमम् ॥१४९॥
स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य रामः सपुङ्खान्विससर्ज बाणान् ।
तैराहतो वज्रसमप्रवेगैर्न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः ॥१५०॥
यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता वाली हतो वानरपुंगवश्च ।
ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरं वज्रोपमानं व्यथयांमचक्रुः ॥१५१॥
स वारिधारा इव सायकांस्तान्पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः ।
जघान रामस्य शरप्रवेगं व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥१५२॥

धनुषके शब्दसे वह बहुत क्रुद्ध हुआ । उस शब्दको न सहकर वह रामचन्द्रकी ओर दौड़ा ॥ १४१ ॥ जलके कारण बढ़े हुए मेघके समान, शेषनागके उत्तम शरीरके समान बाहुवाले और पर्वतके समान ऊँचे कुम्भकर्णको युद्धमें अपनी ओर आते देखकर रामचन्द्र बोले ॥ १४२ ॥ राक्षसराज ! आओ, विषाद मत करो, मैं धनुष लेकर खड़ा हूँ, मुझे राक्षसवंशका नाश करनेवाला समझो, एकही क्षणमें तुम भी अचेत हो जाओगे ॥१४३॥ ये राम हैं, यह जानकर वह विकृत हँसी हँसा । पुनः क्रोधकरके वानरोंको भगाता हुआ दौड़ा ॥१४४॥ महातेजस्वी कुम्भकर्ण रामचन्द्रसे बोला—मुझे विराध न समझना, कबंध न समझना, खर न समझना, मैं न वाली हूँ, न मारीच, तुम समझो कि कुम्भकर्ण आया है ॥ १४६ ॥ मेरे भयंकर मुद्गरको देखो, यह समूचा लोहेका बना हुआ है, इससे पहले मैंने देवताओंको और दानवोंको जीता है ॥१४८॥ मेरे कान नाक नहीं है, इसलिए तुम मेरा तिरस्कार मत करो; क्योंकि इनके न रहनेसे मुझे थोड़ी भी पीड़ा नहीं होती ॥१४८॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ, मेरे शरीरपर अपना पराक्रम दिखाओ, तुम्हारा पराक्रम और पुरुषार्थ देखकर मैं तुम्हें खाऊँगा ॥ १४९ ॥ कुम्भकर्णके वचन सुनकर रामचन्द्रने पाँखवाले बाण छोड़े । वज्र-समान वेगवाले उन बाणोंसे आहत होनेपर वह देवशत्रु न क्षुभित हुआ और न व्यथित ॥१५०॥ जिन बाणोंसे ताल-वृक्ष काटे गये थे, जिनसे वानरश्रेष्ठ वाली मारा गया था, उन बाणोंने वज्रके समान कुम्भकर्णके शरीरको व्यथित किया ॥ १५१ ॥ इन्द्रशत्रु वह राक्षस जलके समान उन बाणोंको शरीरसे पीता हुआ, उग्रवेगवाला

ततस्तु रक्षः क्षतजावलिप्तं वित्रासनं देवमहाचमूनाम् ।
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगं विद्रावयामास चमूं हरीणाम् ॥१५३॥
वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ।
समुद्गरं तेन जहार बाहुं स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥१५४॥
स तस्य बाहुर्गिरिशृङ्गकल्पः समुद्गरो राघवबाणकृत्तः ।
पपात तस्मिन्हरिराजसैन्ये जघान तां वानरवाहिनीं च ॥१५५॥
ते वानरा भग्नहतावशेषाः पर्यन्तमाश्रित्य तदा विषण्णाः ।
प्रपीडिताङ्गा ददृशुः सुघोरं नरेन्द्ररक्षोऽधिपसंनिपातम् ॥१५६॥
स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिकृत्तबाहुर्महासिकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः ।
उत्पाटयामास करेण वृक्षं ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥१५७॥
तं तस्य बाहुं सहतालवृक्षं समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम् ।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन ॥१५८॥
स कुम्भकर्णस्य भुजो निकृत्तः पपात भूमौ गिरिसंनिकाशः ।
विचेष्टमानो निजघान वृक्षाञ्शैलाञ्शिलान्वानरराक्षसांश्च ॥१५९॥
तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः समापतन्तं सहसा नदन्तम् ।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥१६०॥
तौ तस्य पादौ प्रदिशो दिशश्च गिरेर्गुहाश्चैव महार्णवं च ।
लङ्कां च सेनां कपिराक्षसानां विनादयन्तौ विनिपेततुश्च ॥१६१॥

मुद्गर घुमाकर रामचन्द्रके बाणवेगको नष्ट करने लगा ॥ १५२ ॥ अनन्तर, रुधिरसे भींगा हुआ देवसेनाको डरानेवाले उग्रवेग मुद्गरको घुमाकर वानरी सेनाको भगाने लगा ॥ १५३ ॥ अनन्तर, वायव्य नामक दूसरा अस्त्र लेकर रामचन्द्रने राक्षसपर फेंका, जिसने मुद्गर सहित उसकी भुजा काट डाली । भुजाके कटनेपर वह भयंकर गर्जन करने लगा ॥ १५४ ॥ रामचन्द्रके बाणसे कटे पर्वतशिखरके समान मुद्गर-सहित उसकी भुजा सुग्रीवकी सेनामें गिरी, जिससे कई सैनिक मर गये ॥ १५५ ॥ जो उस भुजाके गिरनेके कारण मरनेसे बच गये थे, वे उस स्थानसे दूर ही दुखी होकर खड़े रहे । वे वानर पीड़ित होकर राम और कुम्भकर्ण-का भयंकर युद्ध देखने लगे ॥ १५६ ॥ वह कुम्भकर्ण अस्त्रसे बाहुके कट जानेपर उस पर्वतके समान मालूम होता था, जिसका शिखर तलवारसे काट दिया गया है । बचे हुए दूसरे हाथसे पेड़ उखाड़कर रामचन्द्रपर वह दौड़ा ॥ १५७ ॥ सर्प-शरीरके समान, ताल वृक्षके साथ उठे हुए उसके हाथको रामचन्द्रने इन्द्रास्त्र मंत्रसे प्रेरित सुवर्णचित्रित बाणके द्वारा काटा ॥ १५८ ॥ हाथके काटे जानेपर वह पर्वतके समान पृथिवीपर गिर पड़ा । उसके छटपटानेसे वृक्ष, पर्वत, पत्थर, वानर और राक्षस नष्ट हो गये ॥१५९॥ छिन्नबाहु, पृथिवीपर गिरकर गर्जन करते हुए, उसको देखकर रामचन्द्रने तीखे दो अर्द्धचन्द्र बाणोंसे उसके दोनों पैर काट डाले ॥१६०॥

निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो विदार्य वक्त्रं वडवामुखाभम् ।
दुद्राव रामं सहसाभिगर्जन्राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ॥१६२॥
अपूरयत्तस्य मुखं शिताग्रै रामः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः ।
संपूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं चुकूज कृच्छ्रेण मुमूर्च्छ चापि ॥१६३॥
अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं सब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम् ।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥१६४॥
तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम् ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ॥१६५॥
स सायको राघवबाहुचोदितो दिशःस्वभासा दश संप्रकाशयन् ।
विधूमवैश्वानरभीमदर्शनो जगाम शक्राशनिभीमविक्रमम् ॥१६६॥
स तन्महापर्वतकूटसंनिभं सुवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम् ।
चकर्त रक्षोधिपतेः शिरस्तदा यथैव वृत्रस्य पुरा पुरंदरः ॥१६७॥
कुम्भकर्णशिरो भाति कुण्डलालंकृतं महत् । आदित्येऽभ्युदिते रात्रौ मध्यस्थ इव चन्द्रमाः ॥१६८॥
तद्रामबाणाभिहतं पपात रक्षःशिरः पर्वतसंनिकाशम् ।
बभञ्ज चर्यागृहगोपुराणि प्राकारमुच्चं तमपातयच्च ॥१६९॥

उसके दोनों पैर दिशा, विदिशा, पर्वतकी गुहा, समुद्र, लङ्का, वानरों और राक्षसोंकी सेनाको प्रतिध्वनित करते हुए गिरे ॥१६१॥ हाथ-पैरके कटनेपर, वड़वामुखके समान मुँह फैलाकर, गर्जन करता हुआ, रामचन्द्रकी ओर चला, जिस प्रकार आकाशमें राहु चन्द्रमापर आक्रमण करता है ॥१६२॥ रामचन्द्रने सोनेसे मढ़े तीखे बाणोंसे उसका मुँह भर दिया। मुँहके भरनेसे वह बोल न सका। बड़े कष्टसे वह अव्यक्त शब्द करने लगा और मूर्छित हो गया ॥ १६३ ॥ अनन्तर रामचन्द्रने ब्रह्मदण्ड तथा यमराजके अस्त्रके समान भयंकर, सूर्यकिरणोंके समान प्रकाशमान्, शत्रुओंका नाश करनेवाला, वायुके समान वेगवाला, तीखा बाण लिया ॥ १६४ ॥ हीरा और सोनासे जिसका पिछला भाग शोभित है, जो सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान है, इन्द्रके वज्रसमान जिसका वेग है, रामचन्द्रने वह बाण राक्षसपर फेंका ॥१६५॥ रामचन्द्रके बाहुसे प्रेरित उस बाणने अपने प्रकाशसे दशो दिशाओंको प्रकाशित किया। धूमहीन अग्निके समान देखनेमें भयङ्कर वह बाण चला। इन्द्रके वज्रके समान उसका पराक्रम था ॥ १६६ ॥ उसने राक्षसराजका सिर काट दिया, जो पर्वत-शिखरके समान था, जिसमें गोल दाँत थे, जिसमें हिलनेवाले सुन्दर कुण्डल थे, जिस प्रकार इन्द्रने वृत्रासुरका सिर काटा था ॥ १६७ ॥ कुण्डलसे सुशोभित कुम्भकर्णका बड़ा सिर वैसा शोभित होता था, जैसे यदि आधीरातको दो सूर्य उदित हों और उनके बीचमें चन्द्रमा हो ॥१६८॥ पर्वतके समान राक्षसका वह सिर रामके बाणके आघातसे गिरा। उससे सड़कके पासके घर, नगर, द्वार तथा ऊँची चार-दीवारी गिर पड़ी ॥ १६९ ॥ प्रकाशमान उसका बड़ा शरीर भी बाणवेगसे समुद्रमें गिरा। मगरों, बड़ी

तच्चातिकायं हि महत्प्रकाशं रक्षस्तदा तोयनिधौ पपात ।
ग्राहान्परान्मीनवरान्भुजंगमान्ममर्द भूमिं च तथा विवेश ॥१७०॥
तस्मिन्हते ब्राह्मणदेवशत्रौ महाबले संयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥१७१॥
ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ।
सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः प्रहर्षिता रामपराक्रमेण ॥१७२॥
ततस्तु ते तस्य वधेन भूरिणा मनस्विनो नैर्ऋतराजबान्धवाः ।
विनेदुरुच्चैर्व्यथिता रघूत्तमं हरिं समीक्ष्यैव यथा मतंगजाः ॥१७३॥
स देवलोकस्य तमो निहत्य सूर्यो यथा राहुमुखाद्विमुक्तः ।
तथा व्यभासीद्धरिसैन्यमध्ये निहत्य रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥१७४॥
प्रहर्षमीयुर्बहवश्च वानराः प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ।
अपूजयन्राघवमिष्टभागिनं हते रिपौ भीमबले नृपात्मजम् ॥१७५॥
स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दनं महत्सु युद्धेषु कदाचनाजितम् ।
ननन्द हत्वा भरताग्रजो रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥१७६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥



मछलियों और साँपोंको मसलकर वह पृथिवीमें चला गया ॥ १७० ॥ ब्राह्मण और देवताओंके शत्रु महाबली कुम्भकर्णके युद्धमें मारे जानेपर पृथिवी काँपने लगी, पर्वत हिलने लगे और देवता प्रसन्न होकर तुमुल नाद करने लगे ॥ १७१ ॥ अनन्तर देवता, ऋषि, महर्षि, पन्नग, सुर, भूत, गरुड़, गुह्यक, यक्ष और गन्धर्व रामके पराक्रमसे प्रसन्न हुए ॥ १७२ ॥ कुम्भकर्णके वधसे राक्षसराजके मनस्वी बाँधव बहुत व्यथित हुए। रामचन्द्रको देखकर वे दुखी होने लगे, जिस प्रकार सिंहको देखकर हाथी दुखी होता है ॥ १७३ ॥ राहुके मुँहसे छूटकर सूर्य जिस प्रकार देवलोकका अन्धकार दूरकर शोभित होता है, उसीप्रकार कुम्भकर्णको युद्धमें मारकर रामचन्द्र राक्षसी सेनामें शोभित हुए ॥ १७४ ॥ विकसित कमलके समान मुँहवाले अनेक वानर महापराक्रमी शत्रुके मारेजानेपर प्रसन्न हुए और उनलोगोंने सिद्ध मनोरथ रामचन्द्रकी पूजा की ॥ १७५ ॥ देवसैन्यका विनाश करनेवाले, अनेक युद्धोंमें कभी न हारनेवाले कुम्भकर्णको मारकर भरतके बड़े भाई रामचन्द्र प्रसन्न हुए, जिस प्रकार इन्द्र महासुर वृत्रको युद्धमें मारकर प्रसन्न हुए थे ॥ १७६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना । राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ १ ॥
राजन्स कालसंकाशः संयुक्तः कालकर्मणा । विद्राव्य वानरीं सेनां भक्षयित्वा च वानरान् ॥ २ ॥
प्रतपित्वा मुहूर्तं तु प्रशान्तो रामतेजसा । कायेनार्धप्रविष्टेन समुद्रं भीमदर्शनम् ॥ ३ ॥
निकृत्तनासाकर्णेन विक्षरद्रुधिरेण च । रुद्ध्वा द्वारं शरीरेण लङ्कायाः पर्वतोपमः ॥ ४ ॥
कुम्भकर्णस्तव भ्राता काकुत्स्थशरपीडितः । अगण्डभूतो विवृतो दावदग्ध इव द्रुमः ॥ ५ ॥
श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् । रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥ ६ ॥
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ । त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥ ७ ॥
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा । महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥ ८ ॥
ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुंगवः । कुम्भकर्णवधाद्दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ९ ॥
हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल । त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम् ॥ १० ॥
मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल । शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः त्वमां संत्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥
इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः । दक्षिणोऽयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरान् ॥ १२ ॥
कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा । कालाग्निप्रतिमो ह्यद्य राघवेण रणे हतः ॥ १३ ॥
यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा । स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥ १४ ॥

महात्मा रामचन्द्रके द्वारा कुम्भकर्णका मारा जाना देख राक्षसोंने जाकर राक्षसराज रावणसे यह संवाद सुनाया ॥ १ ॥ राजन्, कालके समान कुम्भकर्ण वानरी सेनाको भगाकर और वानरोंको खाकर मृत्युको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ वे थोड़ी देर तक पराक्रम करके रामके तेजसे शान्त हो गये । जब उनका आधा शरीर देखनेमें भयानक समुद्रमें चला गया, तबतक भी वे पराक्रम करते रहे ॥ ३ ॥ उनके नाक कान कट गये थे, रुधिर बह रहा था, उस समय उन्होंने पर्वतके समान अपने शरीरसे लंकाका द्वार रोक दिया ॥ ४ ॥ आपके भाई कुम्भकर्ण रामके बाणसे पीड़ित होकर मस्तक, हाथ और पैरहीन कबन्ध होकर, आगसे जले वृक्षके समान शान्त हो गये ॥ ५ ॥ महाबली कुम्भकर्णका युद्धमें मारा जाना सुनकर रावण शोक-सन्तप्त होकर मूर्छित हुआ और गिर पड़ा ॥६॥ चचाका मारा जाना सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिर और अतिकाय शोकपीड़ित होकर रोने लगे ॥७॥ अक्लिष्टकर्मा रामके द्वारा भाईका मारा जाना सुनकर महोदर और महापार्श्व भी शोकपीड़ित हुए ॥ ८ ॥ राक्षसश्रेष्ठ बड़े कष्टसे होशमें आया, कुम्भकर्णके वधसे दुःखी होकर वह विलाप करने लगा, उसकी इन्द्रियाँ निस्तेज हो गयी थीं ॥ ९ ॥ शत्रुके अहंकार चूर करनेवाले महाबल हा कुम्भकर्ण, मुझे छोड़कर दुर्भाग्यसे यमराजके घर चले गये ॥१०॥ अकेला शत्रुसेनाको तपाकर, पर मेरा तथा बान्धवोंका काँटा बिना हटाये, मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ! ॥ ११ ॥ इस समय मैं भी नहीं हूँ, मुझे भी मरा ही समझो, क्योंकि आज मेरा दाहिना हाथ टूट गया, जिसके कारण मैं देवता और असुरोंसे नहीं डरता था ॥ १२ ॥ देवता और दानवोंके दर्प नष्ट करनेवाले और प्रलयाग्निके समान इस वीरको रामचन्द्रने युद्धमें कैसे मारा ! ॥ १३ ॥ वज्रकी मारसे भी तुम्हें कभी कष्ट नहीं हुआ है, वही

एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः । निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः ॥१५॥
ध्रुवमद्यैव संहृष्टा लब्धलक्षाः प्लवंगमाः । आरोक्ष्यन्तीह दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ॥१६॥
राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया । कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः ॥१७॥
यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् । ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितुम् ॥१८॥
अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम । नहि भ्रातॄन्समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥१९॥
देवा हि मां हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् । कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ॥२०॥
तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम् । यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥२१॥
विभीषणवचस्तावत्कुम्भकर्णप्रहस्तयोः । विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥२२॥
तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः । यन्मया धार्मिकः श्रीमान्स निरस्तो विभीषणः ॥२३॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा कृपणमतीव विलप्य कुम्भकर्णम् ।
न्यपतदपि दशाननो भृशार्तस्तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः । श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
एवमेव महावीर्यो हतो नस्तातमध्यमः । न तु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथा भवान् ॥ २ ॥

तुम आज रामके बाणोंसे पीड़ित होकर पृथिवीपर कैसे सो रहे हो ॥ १४ ॥ ये देवता ऋषियोंके साथ आकाशमें स्थित होकर तुम्हारी मृत्यु देखकर प्रसन्नतापूर्वक गर्ज रहे हैं ॥ १५ ॥ निश्चय आज ही अवसर पाकर प्रसन्नताके साथ वानर लङ्काके किलेपर चारो ओरसे आक्रमण करेंगे ॥ १६ ॥ राज्यसे मेरा कोई मतलब नहीं, सीताको लेकर मैं क्या करूँगा, कुम्भकर्णके बिना मेरी इच्छा जीनेकी नहीं है ॥ १७ ॥ यदि मैं अपने भाईको मारनेवाले रामचन्द्रको युद्धमें न मारूँ तो हमारा मरना ही अच्छा है, यह व्यर्थका जीना अच्छा नहीं ॥१८॥ मैं आज ही वहाँ जाऊँगा जहाँ मेरा छोटा भाई है, भाइयोंको छोड़कर मैं एक क्षण भी जीना नहीं चाहता ॥१९॥ देवता भी आज मुझको हँसेंगे, क्योंकि उनका मैंने अपकार किया है । कुम्भकर्ण ! तुम्हारे मारे जानेपर मैं इन्द्रको कैसे जीत सकूँगा ॥ २० ॥ विभीषणके सुन्दर ये वचन मुझपर पड़ रहे हैं, उस महात्माके कहे जिन वचनोंको अज्ञानसे मैंने ग्रहण नहीं किया ॥ २१ ॥ कुम्भकर्ण और प्रहस्तका दारुण विनाश जबसे हुआ है तबसे विभीषणका वह वचन मुझे लज्जित कर रहा है ॥ २२ ॥ उसी कर्मका दुःखद परिणाम मुझे मिला है जो मैंने धर्मात्मा श्रीमान् विभीषणको निकाल दिया है ॥ २३ ॥ इस प्रकार व्याकुल रावण कुम्भकर्णके लिए अनेक प्रकारके दीनतापूर्वक विलाप करके तथा बहुतही दुःखी होकर तथा इन्द्रशत्रु अपने भाईका मरना सुनकर गिर पड़ा ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांडका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥



इस प्रकार शोकाभिभूत होकर दुरात्मा रावणका विलाप सुनकर त्रिशिरा बोला ॥ १ ॥ महापराक्रमी

नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो। स कस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मदत्तास्ति ते शक्तिः कवचं सायको धनुः। सहस्रखरसंयुक्तो रथो मेघसमस्वनः ॥ ४ ॥
त्वयाऽसकृद्धि शस्त्रेण विशस्ता देवदानवाः। स सर्वायुधसंपन्नो राघवं शास्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे। उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥ ६ ॥
शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा। तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥ ७ ॥
श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः। पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ ८ ॥
श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ। अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ९ ॥
ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः। रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥१०॥
अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः। सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे समरदुर्मदाः ॥११॥
सर्वे सुबलसंपन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः। सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः ॥१२॥
देवैरपि सगन्धर्वैः सकिंनरमहोरगैः। सर्वेऽस्त्रविदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥
सर्वे प्रवरविज्ञानाः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥१३॥
स तैस्तथा भास्करतुल्यदर्शनैः सुतैर्वृतः शत्रुबलश्रियार्दनैः।
रराज राजा मघवान्यथामरैर्वृतो महादानवदर्पनाशनैः ॥१४॥
स पुत्रान्संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः। आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥१५॥

हमारे मझले चाचा मारे गये, यह सच है, पर आपके समान सत्पुरुष विलाप नहीं करते ॥ २ ॥ आप त्रिलोकको जीत सकते हैं इसमें सन्देह नहीं, फिर ऐसे प्रभाववाले अपनेको साधारण मनुष्योंके समान क्यों शोकित कर रहे हैं ॥३॥ आपके पास ब्रह्माकी दी हुई शक्ति है, कवच है, बाण है, धनुष है और मेघके समान शब्द करनेवाला हजार गधोंका रथ है ॥४॥ आपने कई बार देवताओं और दानवोंको युद्धमें भगाया है, वेही आप सर्व अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त होकर रामचन्द्रको भी दण्ड दे सकते हैं ॥ ५ ॥ महाराज, आप इच्छापूर्वक यहीं रहें, मैं जाता हूँ और युद्धमें आपके शत्रुका नाश करता हूँ, जिस प्रकार गरुड़ सर्पोंका नाश करता है ॥६॥ जिस प्रकार इन्द्रके द्वारा शम्बरासुर और विष्णुके द्वारा नरकासुर मारे गये थे, उसी प्रकार मेरे द्वारा पतित होकर रामचन्द्र आज सोएँगे ॥ ७ ॥ त्रिशिराके वचन सुनकर कालप्रेरित रावण सन्तुष्ट हुआ, उसने अपनेको पुनः उत्पन्न हुआ समझा ॥ ८ ॥ त्रिशिराके वचन सुनकर देवान्तक, नरान्तक और अतीतेजस्वी अतिकाय युद्धके लिए उत्साहित हुए ॥९॥ अनन्तर रावणपुत्र राक्षसश्रेष्ठ गर्जकर 'मैं जाऊँगा, मैं जाऊँगा' कहने लगे। वे सभी इन्द्रके समान पराक्रमी और वीर थे, सभी आकाशमें चलनेवाले, माया जाननेमें निपुण, शत्रुओंके दर्प चूर्ण करनेवाले और समरमें अजेय थे। सभी बलवान्, सभी प्रसिद्ध कीर्तिवाले और सभी युद्धमें कभी देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों तथा सर्पोंके द्वारा हारे न थे। सभी अस्त्रज्ञाता तथा युद्ध विशारद थे, सभीको शस्त्रोंका उत्तम ज्ञान था और सभीको वर मिला था ॥१०—१३॥ शत्रुसेना तथा लक्ष्मी नष्ट करनेवाले सूर्य-तुल्य तेजस्वी पुत्रोंसे युक्त होकर दानवोंके दर्प नष्ट करनेवाले देवतासहित इन्द्रके समान राजा रावण मालूम होने लगा ॥ १४ ॥ उसने पुत्रोंको आलिंगन किया, उन्हें भूषणोंसे भूषित तथा उत्तम आशिर्वाद देकर युद्ध-

युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः । रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥१६॥
तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम् । कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥१७॥
सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः । निर्जग्मुर्नैरृतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥१८॥
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ । महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः ॥१९॥
ततः सुदर्शनं नागं नीलजीमूतसंनिभम् । ऐरावतकुले जातमारुरोह महोदरः ॥२०॥
सर्वायुधसमायुक्तस्तूणीभिश्चाप्यलंकृतः । रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥२१॥
हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् । आरुरोह रथश्रेष्ठं त्रिशिरा रावणात्मजः ॥२२॥
त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः । सविद्युदुल्कः सज्वालः सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥२३॥
त्रिभिः किरीटैस्त्रिशिराः शुशुभे स रथोत्तमे । हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥२४॥
अतिकायोऽतितेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा । आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥२५॥
सुचक्राक्षं सुसंयुक्तं सानुकर्षं सकूबरम् । तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥२६॥
स काञ्चनविचित्रेण किरीटेन विराजता । भूषणैश्च बभौ मेरुः प्रभाभिरिव भासयन् ॥२७॥
स रराज रथे तस्मिन्राजसूनुर्महाबलः । वृतो नैरृतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥२८॥
हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम् । मनोजवं महाकायमारुरोह नरान्तकः ॥२९॥
गृहीत्वा प्रासमुल्काभं विरराज नरान्तकः । शक्तिमादाय तेजस्वी गुहः शिखिगतो यथा ॥३०॥

में भेजा ॥ १५ ॥ युद्धोन्मत्त और मत्तनामक दो भाइयोंको कुमारोंकी रक्षाके लिए रावणने भेजा ॥ १६ ॥ वे संसारको रुलानेवाले महात्मा रावणको प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके चले, वे सभी विशाल शरीर थे ॥१७॥ सब वेदनाकी सब औषधियों तथा गन्धोंसे अपना शरीर लिप्तकर महाबली ये छ राक्षसश्रेष्ठ युद्धकी इच्छासे निकले ॥१८॥ कालप्रेरित होकर त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक नरान्तक, महोदर और महापार्श्व ये छ राक्षस-श्रेष्ठ चले ॥ १९ ॥ महोदर सुदर्शननामक हाथीपर बैठा। यह हाथी मेघके समान नीला था और ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुआ था ॥ २० ॥ सब अस्त्र-शस्त्रों तथा तरकससे युक्त होकर हाथीपर बैठा। यह राक्षस अस्ताचल शिखरस्थ सूर्यके समान मालूम होता था ॥ २१ ॥ रावणपुत्र त्रिशिरा उत्तम रथपर बैठा, उसमें अच्छे घोड़े जुते थे तथा वह राक्षस सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए था ॥ २२ ॥ धनुर्धारी त्रिशिरा रथपर बैठकर उस मेघके समान शोभित होने लगा जिसमें उल्का और बिजली हो, इन्द्रधनुष हो तथा ज्वाला निकलती हो ॥ २३ ॥ उत्तम रथपर बैठा हुआ त्रिशिरा तीन मुकुट धारण किये हुए था, वह पर्वतराज हिमवानके समान, जिसपर सोनेके तीन पर्वत हैं, मालूम होने लगा ॥ २४ ॥ सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ रावणपुत्र तेजस्वी अतिकाय उत्तम रथपर बैठा ॥ २५ ॥ उस रथके पहिए तथा धुरा उत्तम थे, घोड़े खूब बँधे थे, जोता उत्तम था तथा उत्तम जुआ लगा था, तरकस, धनुष, भाला, तलवार और अनेक परिघ उस रथमें रखे हुए थे ॥ २६ ॥ वह सुवर्ण-भूषित मुकुट तथा भूषणोंकी प्रभासे शोभित होनेवाला मेरुके समान मालूम होता था ॥ २७ ॥ महाबली राजपुत्र राक्षसोंसे घिरा हुआ रथपर ऐसा मालूम होता था, जैसे वज्रपाणि इन्द्र देवताओंसे घिरे हों ॥ २८ ॥ नरान्तक सफेद घोड़ेपर बैठा, जो उच्चैश्रवाके समान था, सुवर्णसे भूषित था, तेज चलनेवाला, विशालशरीर

देवान्तकः समादाय परिघं हेमभूषणम्। परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन् ॥३१॥
महापार्श्वो महातेजा गदामादाय वीर्यवान्। विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे ॥३२॥
ते प्रतस्थुर्महात्मानोऽमरावत्याः सुरा इव। तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिःस्वनैः ॥३३॥
अनूत्पेतुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः। ते विरेजुर्महात्मानः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥३४॥
किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे। प्रगृहीता बभौ तेषां वस्त्राणामावलिः शिवा ॥३५॥
शरदभ्रप्रतीकाशा हंसावलिरिवाम्बरे। मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ॥३६॥
इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः। जगर्जुश्च प्रणेदुश्च चिक्षिपुश्चापि सायकान् ॥३७॥
जगृहुश्च महात्मानो निर्याता युद्धदुर्मदाः। क्ष्वेडितास्फोटितानां वै संचचालेव मेदिनी ॥३८॥
रक्षसां सिंहनादैश्च संस्फोटितमिवाम्बरम्। तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ॥३९॥
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम्। हरयोऽपि महात्मानो ददृशू राक्षसं बलम् ॥४०॥
हस्त्यश्वरथसंबाधं किङ्किणीशतनादितम्। नीलजीमूतसंकाशं समुद्यतमहायुधम् ॥४१॥
दीप्तानलरविप्रख्यैर्नैर्ऋतैः सर्वतो वृतम्। तद्दृष्ट्वा बलमायातं लब्धलक्षाः प्लवंगमाः ॥४२॥
समुद्यतमहाशैलाः संप्रणेदुर्मुहुर्मुहुः। अमृष्यमाणा रक्षांसि प्रतिनर्दन्त वानराः ॥४३॥
ततः समुत्कृष्टरवं निशम्य रक्षोगणा वानरयूथपानाम्।
अमृष्यमाणाः परहर्षमुग्रं महाबला भीमतरं प्रणेदुः ॥४४॥

था ॥२९॥ नरान्तक उल्काके समान भालालेकर शोभित होने लगा, जिस प्रकार मोरपर बैठे कार्तिकेय शक्ति-लेकर शोभित होते हैं ॥३०॥ देवान्तकने सुवर्णभूषित परिघ लिया, वह समुद्रमन्थनके समय दोनों हाथोंसे पर्वत पकड़े हुए विष्णुके समान मालूम होता था ॥३१॥ वीर्यवान् तेजस्वी महापार्श्व गदा लेकर शोभित होने लगा, जिस प्रकार कुबेर गदा लेकर युद्धमें शोभित होते हैं ॥३२॥ जिस प्रकार अमरावतीसे देवता प्रस्थान करते हैं, उसी प्रकार वे महात्मा लंकासे प्रस्थित हुए। हाथियों, घोड़ों तथा मेघके समान शब्द करनेवाले रथोंपर चढ़-कर और उत्तम अस्त्र लेकर महा पराक्रमी राक्षस उसके पीछे चले। किरीट-धारण-करनेवाले सुन्दर वे सूर्यके समान तेजस्वी कुमार आकाशमें चमकनेवाले ग्रहोंके समान मालूम पड़े। उनके द्वारा धारण किए हुए शरत्के मेघके समान श्वेत शस्त्रोंकी श्रेणि आकाशस्थ हंसश्रेणिके समान मालूम होती थी। स्वयं मरने अथवा शत्रुका पराजय करनेका दृढ़ निश्चय करके युद्ध करनेके लिए वे वीर चले। वे गर्जने लगे, नाद करने लगे तथा तानें मारने लगे। युद्धमें अजेय तथा युद्धके लिए प्रस्थित उन महात्माओंने बाण लिये। उनके कूदने तथा ताल-ठोकनेके शब्दसे पृथिवी काँपने लगी ॥ ३३—३८ ॥ राक्षसोंके सिंहनाद तथा तालके शब्दसे मानों आकाश फटने लगा। निकलकर महाबली राक्षसोंने वानरीसेनाको देखा, वे सैनिक पत्थर और पर्वतशिखर लेकर तयार थे। महात्मा वानरोंने भी राक्षसी सेनाको देखा। हाथी, घोड़े, अनेक रथ उसमें थे; रथोंमें छोटी घंटियाँ बज रही थीं; वह सेना आकाशके समान काली थी, सभी अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित थे, प्रदीप्त अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान राक्षसोंसे भरी थी। उस सेनाको आती देखकर शिकार पानेके कारण बड़े-बड़े पर्वतशिखर लेकर वानर तयार हुए और गर्जन करने लगे। राक्षसोंको न सह सकनेके कारण वानर गरजने लगे ॥ ३९, ४०, ४१, ४२, ४३ ॥ वानरसेनापतियोंका वह ऊँचा गर्जन सुनकर और शत्रुका उत्साह न सह-

ते राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरियूथपाः । विचेरुरुद्यतैः शैलैर्नगाः शिखरिणो यथा ॥४५॥
केचिदाकाशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्लवंगमाः । रक्षःसैन्येषु संक्रुद्धाः केचिद्द्रुमशिलायुधाः ॥४६॥
द्रुमांश्च विपुलस्कन्धान्गृह्य वानरपुंगवाः । तद्युद्धमभवद्घोरं रक्षोवानरसंकुलम् ॥४७॥
ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम् । बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः ॥४८॥
सिंहनादान्विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः । शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान्प्लवंगमाः ॥४९॥
निर्जघ्नुः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान् । केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिगतानपि ॥५०॥
निर्जघ्नुः सहसा वीरान्यातुधानान्प्लवंगमाः । शैलशृङ्गान्विताङ्गास्ते मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः ॥५१॥
चेलुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुंगवाः । राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्विभिदुःकपिकुञ्जरान् ॥५२॥
शूलमुद्गरखङ्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः । अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥५३॥
रिपुशोणितदिग्धाङ्गास्तत्र वानरराक्षसाः । ततः शैलैश्च खङ्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥५४॥
मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितोक्षिता । विकीर्णैः पर्वताकारै रक्षोभिरभिमर्दितैः ॥
आसीद्वसुमती पूर्णा तदा युद्धमदान्वितैः ॥५५॥
आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशैलैश्च वानरैः । पुनरङ्गैस्तदा चक्रुर्वानरा युद्धमद्भुतम् ॥५६॥
वानरान्वानरैरेव जघ्नुस्ते नैरृतर्षभाः । राक्षसान्राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ॥५७॥
आक्षिप्य च शिलाः शैलाञ्जघ्नुस्ते राक्षसास्तदा । तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः॥५८॥

कर महाबली राक्षसोंने और जोरसे गर्जन किया ॥ ४४ ॥ वे वानर राक्षससेनामें घुसकर बड़े-बड़े पत्थर लेकर विचरण करने लगे, जिस प्रकार हाथी पर्वतोंपर विचरण करते हैं । वृक्ष और पत्थरसे युद्ध करनेवाले क्रुद्ध वानरोंमेंसे वृक्ष और वृक्षकी शाखाएँ लेकर कई आकाशमें, कई पृथिवीपर और कई राक्षससेनामें विचरण करने लगे । राक्षस और वानरोंका वह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ ॥४५,४६,४७॥ बाणोंके द्वारा रोके जानेपर भी भयंकर पराक्रमी वानर वृक्षों, पत्थरों और पर्वतशिखरोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ४८ ॥ राक्षस और वानर युद्धमें सिंहनाद करने लगे और वानर राक्षसोंको पत्थरोंसे चूर-चूर करने लगे ॥४९॥ क्रोध करके कवच और गहने पहने हुए रथ, हाथी और घोड़ेपर बैठे हुए, वीर राक्षसोंको वानर मारने लगे ॥ ५० ॥ वीर राक्षसोंको वानर घूँसोंसे मारने लगे । उनके शरीर पर्वतशिखरोंसे छिद गये थे तथा आँखें बाहर निकली हुईं थी ॥५१॥ राक्षस भागने लगे, गिरने लगे तथा गरजने लगे, वे तीखे बाणोंसे वानरोंको छेदने लगे ॥५२॥ शूल, मुद्गर, तलवार, भाले और शक्तिसे वानरोंको मारने लगे । शत्रुके रुधिरसे भींगे हुए वानर और राक्षस परस्पर जीतनेकी इच्छासे वे एक दूसरेको गिराने लगे । वानर और राक्षसके फेंके हुए पत्थरों और तलवारोंसे युद्धभूमि शीघ्रही भर गयी । रुधिरसे पृथिवी भींग गयी । पर्वतके समान विशाल, मसले गये, अतएव इधर-उधर बिखरे पड़े हुए, युद्धमतवाले राक्षसोंसे पृथिवी भर गयी ॥ ५३, ५४, ५५ ॥ राक्षसोंके द्वारा पर्वतशिखरके कट जानेपर जो वानर विचलित हो गये थे, अथवा जो विचलित हो रहे थे, उन्होंने अपने शरीरोंके द्वारा अद्भुत युद्ध किया ॥ ५६ ॥ राक्षसश्रेष्ठ वानरोंको वानरोंसे मारने लगे और वानर भी राक्षसोंको राक्षसोंसे मारने लगे ॥ ५७ ॥ पत्थरों तथा पर्वतशिखरोंको बलपूर्वक छीनकर राक्षस

निर्जघ्नुः शैलशृङ्गैश्च बिभिदुश्च परस्परम् । सिंहनादान्विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः ॥५९॥
छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः । रुधिरं प्रस्रुतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ॥६०॥
रथेन च रथं चापि वारणेनापि वारणम् । हयेन च हयं केचिन्निजघ्नुर्वानरा रणे ॥६१॥
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः । राक्षसा वानरेन्द्राणां विभिदुः पादपाञ्शिलाः ॥६२॥
विकीर्णाः पर्वतास्तैश्च द्रुमच्छिन्नैश्च संयुगे । हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाऽभवत् ॥६३॥

ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः संग्राममासाद्य भयं विमुच्य ।
युद्धं स्म सर्वे सह राक्षसैस्ते नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥६४॥
तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे प्रहृष्यमाणेषु वलीमुखेषु ।
निपात्यमानेषु च राक्षसेषु महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥६५॥
ततो हयं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।
नरान्तको वानरसैन्यमुग्रं महार्णवं मीन इवाविवेश ॥६६॥
स वानरान्सप्तशतानि वीरः प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद ।
एकः क्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा जघान सैन्यं हरिपुंगवानाम् ॥६७॥

ददृशुश्च महात्मानं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् । चरन्तं हरिसैन्येषु विद्याधरमहर्षयः ॥६८॥
स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः । पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥६९॥
यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुंगवाः । तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥७०॥

वानरोंको मारने लगे। वानर भी राक्षसके शस्त्र छीनकर उन्हें मारने लगे ॥ ५८ ॥ युद्धमें राक्षस और वानर पर्वतशिखरसे एक दूसरेको मारने लगे, छेदने लगे तथा सिंहनाद करने लगे ॥ ५९ ॥ कवच आदि शरीररक्षक वस्तुओंके कट जानेपर राक्षस वानरोंके द्वारा मारे गये। उनके शरीरसे रुधिर निकलने लगा, जिस प्रकार रसवाले वृक्षोंसे रस निकलता है ॥६०॥ कई वानरोंने रथसे रथको, हाथीसे हाथीको, और घोड़ेसे घोड़ेको मारा ॥ ६१ ॥ राक्षस वानरोंके वृक्ष और पत्थरोंको क्षुरप्र, अर्द्धचन्द्र, भाला और तीखे बाणोंसे छेदने लगे ॥ ६२ ॥ फेंके गये पर्वतों, कटे वृक्षों और मारे गये वानरों और राक्षसोंसे युद्धभूमि दुर्गम हो गयी ॥६३॥ वे वानर निर्भय संग्राममें जाकर अनेक प्रकारके अस्त्र लेकर राक्षसोंसे युद्ध करने लगे। उनके चेहरेसे प्रसन्नता और अहङ्कार बरसता था, वे बड़े पराक्रमी थे ॥ ६४ ॥ उस तुमुल युद्धमें वानर प्रसन्न होने लगे, राक्षस मारे जाने लगे और देवता तथा महर्षि हर्ष मनाने लगे ॥ ६५ ॥ अनन्तर, हवासे बातें करनेवाले घोड़ेपर चढ़कर और तीखी शक्ति लेकर नरान्तक उग्र वानरीसेनामें प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार मछली समुद्रमें प्रवेश करती है ॥ ६६ ॥ अकेले नरान्तकने तीखे भालेसे सात सौ वानर वीरोंको काटा। इन्द्रशत्रु उस महात्माने शीघ्र ही वानरोंकी सेनाको मारा ॥ ६७ ॥ घोड़ेपर बैठकर वानरीसेनामें विचरण करते हुए उस महात्माको विद्याधर और महर्षियोंने देखा ॥ ६८ ॥ पर्वताकार गिरे हुए वानरोंसे घिरा, मांस-रुधिरसे कीचड़वाला, नरान्तकका मार्ग दिखाई पड़ा ॥ ६९ ॥ वानरोंने जबतक आक्रमण करनेका विचार किया, उतनेही समयमें नरान्तकने उनको छेद डाला ॥ ७० ॥ वानर जबतक वृक्ष और पत्थरोंको उखाड़ें, इतनेही

ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः । यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्शैलान्वनौकसः ॥७१॥
तावत्प्राससहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः । ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य संग्रामान्ते नरान्तकः ॥७२॥
दिक्षु सर्वासु बलवान्विचचार नरान्तकः । प्रमृद्नन्सर्वतो युद्धे प्रावृट्काले यथानिलः ॥७३॥
न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं कुतः । उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान्विव्याध वीर्यवान् ॥७४॥
एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा । भग्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले ॥७५॥
वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् । न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥७६॥
पततां हरिवीराणां रूपाणि प्रचकाशिरे । वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पततामिव ॥७७॥
ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः । ते स्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥७८॥
प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददर्श हरिवाहिनीम् । नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः ॥७९॥
विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् । गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥८०॥
दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः । कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥८१॥
गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः । भक्षयन्तं परबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥८२॥
स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्तदा । अनीकान्मेघसंकाशाद्दंशुमानिव वीर्यवान् ॥८३॥
शैलसंघातसंकाशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः । रराजाङ्गदसंनद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥८४॥
निरायुधो महातेजाः केवलं नखदंष्ट्रवान् । नरान्तकमभिक्रम्य बालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥८५॥

समरमें वह वानरसेनाको जलाने लगा, जिस प्रकार आग वनको जलाती है ॥ ७१ ॥ वज्रसे काटे गये पर्वतके समान, भालेसे मारे गये, वानर गिरे । युद्धभूमिमें वह बलवान नरान्तक चमकता हुआ प्राश लेकर सब दिशाओंमें विचरण करने लगा, जिस प्रकार वर्षाऋतुमें वायु विचरण करती है ।। ७२, ७३ ॥ कोई वीर न दौड़ सकता था, न खड़ा रह सकता था, हिलने-डुलनेकी तो बात ही क्या ? ऊपर उछलनेवाले, खड़े रहनेवाले तथा जानेवाले सबको वह वीर छेदने लगा ॥ ७४ ॥ यमराजके समान तथा सूर्यके समान तेजस्वी एकही भालेसे वह वानरसेना भाग खड़ी हुई और पृथिवीपर गिर पड़ी ॥ ७५ ॥ वज्रकी मारके समान भालेकी मारको वानर न सह सके, वे चीत्कार करने लगे ॥ ७६ ॥ युद्धभूमिमें गिरनेवाले वानरोंके रूप, वज्रसे छिन्न शिखर अतएव गिरनेवाले पर्वतोंके रूपके समान दिखाई पड़े ॥ ७७ ॥ जो वानर पहले कुम्भकर्णके द्वारा गिराये गये थे, वे सब श्रेष्ठ वानर स्वस्थ होकर सुग्रीवके पास गये ॥ ७८ ॥ इधर-उधर देखते हुए सुग्रीवने देखा कि नरान्तकके भयसे डरकर वानरीसेना इधर-उधर भाग रही है ॥ ७९ ॥ भागती हुई सेनाको देखकर सुग्रीवने नरान्तकको देखा, वह घोड़ेपर चढ़ा था और भाला लेकर आ रहा था ॥ ८० ॥ उसको देखकर तेजस्वी वानरराज सुग्रीवने इन्द्रके समान पराक्रमी वीर कुमार अङ्गदसे कहा ॥८१॥ जाओ, इस राक्षस वीरके पास जो घोड़ेपर बैठा है, जो शत्रुसेनाको खा रहा है, इसे शीघ्र मार डालो ॥८२॥ स्वामीके वचन सुनकर अङ्गद शीघ्रही अपनी सेनामेंसे कूद पड़े, जिस प्रकार सूर्य मेघसे निकलता है ॥८३॥ पर्वतकेसमान गठीला, वानरोंमें श्रेष्ठ, बाहुमें अङ्गद धारण करनेवाला अङ्गद धातुवाले पर्वतके समान मालूम पड़ने लगा ॥८४॥ वह तेजस्वी बिना अस्त्र-शस्त्रके था, केवल नख और दाँत ही उसके अस्त्र थे । वह बालिपुत्र नरान्तकके पास

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि । अस्मिन्वज्रसमस्पर्शे प्रासं क्षिप ममोरसि ॥८६॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः । संदश्य दशनैरोष्ठं निःश्वस्य च भुजंगवत् ॥
अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः ॥८७॥

स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥८८॥
तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं सुपर्णकृत्तोरगवीर्यकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरंगमस्याभिजघान मूर्ध्नि ॥८९॥
निर्भग्नपादः स्फुटिताक्षितारो निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसंनिकाशः ।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥९०॥
नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हतं तुरंगं पतितं समीक्ष्य ।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥९१॥
अथाङ्गदो मुष्टिविशीर्णमूर्धा सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम् ।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि संज्ञां समासाद्य विसिस्मिये च ॥९२॥
अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ।
निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥९३॥
स मुष्टिनिर्भिन्ननिभग्नवक्षा ज्वाला वमञ्शोणितदिग्धगात्रः ।
नरान्तको भूमितले पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥९४॥

जाकर बोला ॥ ८५ ॥ ठहरो, इन छोटे वानरोंसे तुम्हारा क्या होगा, वज्रके समान कठोर मेरी छातीपर भाला मारो ॥ ८६ ॥ अंगदके वचन सुनकर नरान्तकने क्रोध किया। दाँतोंसे ओंठ काटकर, सर्पके समान स्वाँस छोड़कर, नरान्तक क्रोध करके वालिपुत्र अंगदके पास गया ॥ ८७ ॥ चमकीला भाला लेकर वालिपुत्रको वज्रके समान उरूने मारा। वह भाला टूट गया और जमीनपर गिर पड़ा ॥ ८८ ॥ भालेको टूटा हुआ तथा गरुड़के द्वारा काटे सर्पके समान उस भालेको देखकर वालिपुत्रने थप्पड़ तानकर नरान्तकके घोड़ेके मस्तकपर मारा ॥८९॥ अंगदके थप्पड़ मारनेसे घोड़ेका मस्तक फट गया, पैर टूट गये, आँखे निकल गयीं, जीभ निकल आयी, पर्वतके समान घोड़ा भूमिपर गिर पड़ा ॥ ९० ॥ मरकर पृथिवीपर गिरे घोड़ेको देखकर नरान्तकने क्रोध किया। प्रभावशाली उसने मुट्ठी तानकर वालिपुत्रके मस्तकपर मारा ॥ ९१ ॥ मुट्ठीकी मारसे अंगदका मस्तक फट गया, गरम खून निकलने लगा, उन्होंने बड़ा क्रोध किया, फिर वे मूर्छित हो गये। होश आनेपर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ९२ ॥ अनन्तर वालिपुत्र अङ्गदने मृत्युके समान वेगवान् पर्वत-शिखरके समान मुट्ठी बाँधकर नरान्तककी छातीमें मारा ॥९३॥ उसकी छाती मुट्ठीकी मारसे फट गयी और बैठ गयी। वह ज्वालाके समान खून उगलने लगा, जिससे उसका शरीर भींग गया। वज्रके गिरनेसे भग्न पर्वतके समान वह नरान्तक पृथिवीपर गिर पड़ा ॥९४॥ उस समय देवताओंका और वानरोंका बहुत बड़ा शब्द हुआ,

तदान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानां वनौकसां चैव महाप्रणादः ।
बभूव तस्मिन्निहतेऽग्र्यवीर्ये नरान्तके वालिसुतेन संख्ये ॥९५॥
अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तं कृतवान्हि विक्रमम् ।
विसिस्मिये सोऽप्यथ भीमकर्मा पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥९६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः । देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥ १ ॥
आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः । वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान् ॥ २ ॥
भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदा देवान्तको बली । आदाय परिघं घोरमङ्गदं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥
रथमादित्यसंकाशं युक्तं परमवाजिभिः । आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्यगात् ॥ ४ ॥
स त्रिभिर्देवदर्पघ्नै राक्षसेन्द्रैरभिद्रुतः । वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः ॥ ५ ॥
देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहसाङ्गदः । महावृक्षं महाशाखं शक्रो दीप्तमिवाशनिम् ॥ ६ ॥
त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः । स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात तदाङ्गदः ॥ ७ ॥
स ववर्ष ततो वृक्षाञ्शिलाश्च कपिकुञ्जरः । तान्प्रचिच्छेद संक्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः ॥ ८ ॥
परिघाग्रेण तान्वृक्षान्बभञ्ज स महोदरः । त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः ॥ ९ ॥

जब कि वालिपुत्रने युद्धमें पराक्रमी नरान्तकको मारा ॥ ९५ ॥ रामचन्द्रके मनको प्रसन्न करनेवाला सुदुष्कर पराक्रम अङ्गदने दिखाया। भीमकर्म करनेवाले अङ्गदको भी इससे आश्चर्य हुआ और वे युद्धमें प्रसन्न हुए ॥ ९६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांडका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६९ ॥

नरान्तकको मृत देखकर, देवान्तक, त्रिशिरा, महोदर आदि राक्षस विलाप करने लगे ॥ १ ॥ मेघके समान हाथीपर चढ़कर महोदर महाबली वालिपुत्रकी ओर वेगसे दौड़ा ॥ २ ॥ भाईके मारे जानेसे दुःखी होकर बली देवान्तक विशाल परिघ लेकर अङ्गदकी ओर चला ॥ ३ ॥ उत्तम घोड़े जुते हुए सूर्यके समान प्रकाशमान रथपर चढ़कर त्रिशिरा वालिपुत्रकी ओर चला ॥ ४ ॥ देवताओंके दर्पचूर्ण करनेवाले तीन राक्षसों-के द्वारा आक्रमण होनेपर अंगदने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ा ॥ ५ ॥ वीर अंगदने देवान्तकपर उस बड़ी डालवाले बड़े वृक्षको फेंका, जिस प्रकार इन्द्र जलता हुआ वज्र चलाता है ॥ ६ ॥ त्रिशिराने सर्पसमान बाणोंसे उस वृक्षको काट डाला। यह देखकर अंगद उछलकर ऊपर चले गये ॥ ७ ॥ कपिकुंजर अङ्गद वृक्षों और पर्वतोंकी वर्षा करने लगे। क्रोध करके त्रिशिराने तीखे बाणोंसे उन सबको काटा ॥८॥ महोदरने परिघ-

गजेन समभिद्रुत्य वालिपुत्रं महोदरः। जघानोरसि संक्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसंनिभैः ॥१०॥
देवान्तकश्च संक्रुद्धः परिघेण तदाङ्गदम्। उपगम्याभिहत्याशु व्यपचक्राम वेगवान् ॥११॥
स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः। न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥१२॥
स वेगवान्महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः। तलेन समभिद्रुत्य जघानास्य महागजम् ॥१३॥
पेततुर्नयने तस्य विननाश स कुञ्जरः। विषाणं चास्य निष्कृष्य वालिपुत्रो महाबलः ॥१४॥
देवान्तकमभिद्रुत्य ताडयामास संयुगे। सविह्वलस्तु तेजस्वी वातोद्धूत इव द्रुमः ॥१५॥
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं महत्। अथाश्वस्य महातेजाः कृच्छ्राद्देवान्तको बली ॥१६॥
आविध्य परिघं वेगादाजघान तदाङ्गदम्। परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा ॥१७॥
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह। तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ॥१८॥
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह। ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुंगवैः ॥१९॥
हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः। ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा ॥२०॥
तद्रावणसुतो धीमान्बिभेद निशितैः शरैः। तद्बाणशतनिर्भिन्नं विदारितशिलातलम् ॥२१॥
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः। स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद्देवान्तको बली ॥२२॥
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे। तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान्कपिकुञ्जरः ॥२३॥
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना। शिरसि प्राहरद्वीरस्तदा वायुसुतो बली ॥
नादेनाकम्पयच्चैव राक्षसान्स महाकपिः ॥२४॥

से उन वृक्षोंको चूर कर दिया। त्रिशिराने बाणोंके द्वारा वीर अङ्गदका पीछा किया ॥ ९ ॥ महोदरने हाथीसे चलकर बालिपुत्रकी छातीमें क्रोध करके वज्रके समान तोमरसे मारा ॥ १० ॥ क्रोध करके देवान्तकने भी अङ्गदके पास जाकर परिघसे मारा। और वह शीघ्रतापूर्वक वहाँसे हट गया ॥११॥ उन तीन प्रधान राक्षसोंके एक साथ आक्रमण होनेपर भी तेजस्वी और प्रतापी बालिपुत्र व्यथित न हुए ॥१२॥ दुर्जय वेगवान अङ्गदने बड़े वेगसे उसके (महोदरके) हाथीको थप्पड़से मारा ॥१३॥ हाथीकी आँखें निकल आयीं और वह मर गया उस हाथीके दाँत उखाड़कर महाबली बालिपुत्रने देवान्तकके पास जाकर मारा। वायुके कपाये वृक्षके समान वह तेजस्वी इस मारसे विह्वल हो गया ॥ १४, १५ ॥ लाखके रंगके समान उसके शरीरसे रुधिरधारा निकलने लगी। बहुत देरके बाद होशमें आकर तेजस्वी और बली देवान्तकने परिघ लेकर वेगसे अङ्गदपर चलाया। परिघसे आहत होकर बालिपुत्र अङ्गद घुटनोंके बल पृथिवीपर गिरकर पुनः उठ खड़े हुए। उठते हुए अङ्गदके ललाट में भयँकर सीधा चलनेवाले तीन बाणोंसे देवान्तकने मारा। तीन प्रधान राक्षसोंसे अंगद को घिरा देखकर हनुमान और नीलने प्रस्थान किया। नीलने त्रिशिरापर एक पर्वत-शिखर चलाया ॥ १६-२० ॥ बुद्धिमान् रावणपुत्रने तीखे बाणोंसे उस पर्वतशिखरको तोड़ डाला। सैकड़ों बाणोंसे वह पर्वतशिखर टूट गया, उसके पत्थर फूट गये, चिनगारियाँ निकलने लगीं, ज्वाला ऊपर उठी। बली देवान्तक उस पर्वतशिखरको टूटा देखकर हर्षसे परिघ लेकर हनुमानकी ओर दौड़ा। उसको अपनी ओर आते देखकर वानरश्रेष्ठ हनुमानने वज्रके समान मुट्ठीसे उसके मस्तकपर मारा। बली और

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ।
देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥२५॥
तस्मिन्हते राक्षसयोधमुख्ये महाबले संयति देवशत्रौ ।
क्रुद्धस्त्रिशीर्षा निशितास्त्रमुग्रं ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥२६॥
महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम् । भूयः समधिरुह्याशु मन्दरं रश्मिवानिव ॥२७॥
ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योपर्यपातयत् । गिरौ वर्षं तडिच्चक्रं स गर्जन्निव तोयदः ॥२८॥
ततः शरौघैरभिवृष्यमाणो विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः ।
नीलो बभूवाथ विसृष्टगात्रो विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥२९॥
ततस्तु नीलः प्रतिलब्धसंज्ञः शैलं समुत्पाट्य सवृक्षखण्डम् ।
ततः समुत्पत्य महोग्रवेगो महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥३०॥
ततः स शैलाभिनिपातभग्नो महोदरस्तेन महाद्विपेन ।
व्यामोहितो भूमितले गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥३१॥
पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे । हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥३२॥
स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः । त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली ॥३३॥
तद्व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं तदा कपिः । विससर्ज रणे तस्मिन्रावणस्य सुतं प्रति ॥३४॥
तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान् । त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च ॥३५॥

वीर हनुमानने उसके सिरपर मारा और गर्जकर राक्षसोंको कँपा दिया ॥ २१–२४ ॥ मुट्ठीके आघातसे उसका मस्तक फट गया । दाँत और आँखें निकल आयीं, जीभ लटक गयी, राक्षसराजका पुत्र देवान्तक निष्प्राण होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ महाबली राक्षस योद्धाओंमें प्रधान उस देवशत्रुके मारे जानेपर त्रिशिरा क्रोध करके नीलकी छातीपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २६ ॥ क्रोध करके महोदर पुनः पर्वत के समान ऊँचे हाथीपर चढ़ा, जिस प्रकार सूर्य मन्दराचलपर चढ़ते हैं ॥ २७ ॥ वह नीलपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा, जिस प्रकार बिजली इन्द्रधनुषसे युक्त गर्जनकरके मेघ पर्वतपर वृष्टि करता है ॥ २८ ॥ बाणोंकी वृष्टिसे वानरसेनापति नीलके अंग छिन्न-भिन्न हो गये, उनका शरीर शिथिल हो गया ॥ २९ ॥ महाबली महोदरने उन्हें स्तम्भित कर दिया । अनन्तर होश आनेपर नीलने वृक्षोंकेसाथ पर्वत उखाड़ा और बड़े वेगसे महोदरके मस्तकपर उससे मारा ॥ ३० ॥ उस पर्वतके गिरनेसे महोदरका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया, उसके हाथीने उसे नीचे गिरा दिया । वह प्राणहीन होकर पृथिवीपर गिरा, जिस प्रकार पर्वत वज्रसे कटकर गिरता है ॥ ३१ ॥ चाचाके मारे जानेपर त्रिशिराने धनुष लिया और क्रोध करके उसने तीखे बाणोंसे हनुमानको मारा ॥ ३२ ॥ क्रोध करके वायुपुत्रने उसपर पर्वतशिखर फेंका, त्रिशिराने तीखे बाणोंसे उसके कई टुकड़े कर डाले ॥३३॥ पर्वतशिखरको व्यर्थ देखकर उस रावणपुत्रके ऊपर हनुमान वृक्षोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ आकाशसे वृक्षोंको आते देखकर प्रतापी त्रिशिराने तीखे बाणोंसे उन्हें काटा और

हनूमांस्तु समुत्पत्य हयं त्रिशिरसस्तदा । विददार नखैः क्रुद्धो नागेन्द्रं मृगराडिव ॥३६॥
अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः । चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥३७॥
दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्रामसंगताम् । गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥३८॥
तां दृष्ट्वा घोरसंकाशां शक्तिं भग्नां हनूमता । प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा यथा ॥३९॥
ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः । निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥४०॥
खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान्मारुतात्मजः । आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥४१॥
स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्ताम्बरो भुवि । निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥४२॥
स तस्य पततः खड्गं तमाच्छिद्य महाकपिः । ननाद गिरिसंकाशस्त्रासयन्सर्वराक्षसान् ॥४३॥
अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः । उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयामास मुष्टिना ॥४४॥
तेन मुष्टिप्रहारेण संचुकोप महाकपिः । कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्पभम् ॥४५॥

स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि ।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥४६॥
तान्यायताक्षाण्यगसंनिभानि प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ।
पेतुः शिरांसीन्द्ररिपोः पृथिव्यां ज्योतींषि मुक्तानि यथेन्द्रमार्गात् ॥४७॥
तस्मिन्हते देवरिपौ त्रिशीर्षे हनूमता शक्रपराक्रमेण ।
नेदुः प्लवंगाः प्रचचाल भूमी रक्षांस्यथो दुद्रुविरे समन्तात् ॥४८॥

वह गर्जन करने लगा ॥ ३५ ॥ तब क्रोध करके हनुमानने त्रिशिराके से घोड़ेको नखोंफाड़ डाला, जिस प्रकार सिंह हाथीको फाड़ता है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर रावणपुत्र त्रिशिराने शक्ति लेकर वायुपुत्रपर चलायी, जिस प्रकार यमराज कालरात्रिको प्रेरित करता है ॥ ३७ ॥ आकाशसे गिरी उल्काके समान टेढ़ी-मेढ़ी चलने-वाली शक्तिको पकड़कर वानरसिंह हनुमानने उसे तोड़ डाला, तथा वे गर्जन करने लगे। उस भयंकर शक्तिको हनुमानके द्वारा टूटी देखकर वानर प्रसन्न होकर गर्जने लगे, जिस प्रकार मेघ गर्जते हैं ॥३८–३९॥ तब राक्षसश्रेष्ठ त्रिशिराने तलवार ली और उससे हनुमानकी छातीमें मारा ॥ ४० ॥ वायुपुत्र हनुमानने तल-वारसे आहत होकर त्रिशिराको थप्पड़से मारा ॥ ४१ ॥ हनुमानके थप्पड़से आहत होकर त्रिशिरा बेहोश होकर पृथिवीपर गिर पड़ा। महातेजस्वी त्रिशिराके वस्त्र खिसक गये और उसके हाथ ढीले हो गये ॥ ४२ ॥ गिरते हुए त्रिशिराकी तलवार छीनकर पर्वतके समान वे महाकपि सब राक्षसोंको भयभीत करते हुए गर्जन करने लगे ॥४३॥ हनुमानका गर्जन न सहकर वह राक्षस उठ खड़ा हुआ और हनुमानको उसने मुट्ठीसे मारा ॥४४॥ उसके मुष्टिप्रहारसे हनुमानने बड़ा क्रोध किया और क्रोध करके उन्होंने राक्षसका मुकुट पकड़ा ॥ ४५ ॥ किरीट और कुण्डलभूषित उस राक्षसके मस्तकको तीखी तलवारसे क्रोधकरके वायुपुत्रने काट दिया, जिस प्रकार इन्द्रने त्वष्टाके पुत्रका शिर काटा था ॥ ४६ ॥ इन्द्रशत्रु उस राक्षसका सिर पृथिवीपर गिरा, जिसमें नाक, कान आदि इन्द्रियाँ लम्बी थीं, जो स्वयं पर्वतके समान था, और प्रदीप्त अग्निके समान जिसमें आँखे थीं, जिस प्रकार आकाशसे नक्षत्र गिरते हैं ॥ ४७ ॥ इन्द्रके समान

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा युद्धोन्मत्तं तथैव च । हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥४९॥
चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुंगवः । जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा ॥५०॥
हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम् । विराजमानां विपुलां शत्रुशोणिततर्पिताम् ॥५१॥
तेजसा संप्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् । ऐरावतमहापद्मसार्वभौमभयावहाम् ॥५२॥
गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुंगवः । हरीन्समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥५३॥
अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम् । मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥५४॥
तं पुरस्तात्स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम् । आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥५५॥
स तयाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः । भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥५६॥
स संप्राप्य चिरात्संज्ञामृषभो वानरेश्वरः । क्रुद्धो विस्फुरमाणौष्ठो महापार्श्वमुदैक्षत ॥५७॥

स वेगवान्वेगवदभ्युपेत्य तं राक्षसं वानरवीरमुख्यः ।
संवर्त्य मुष्टिं सहसा जघान बाह्वन्तरे शैलनिकाशरूपः ॥५८॥
स कृत्तमूलः सहसेव वृक्षः क्षितौ पपात क्षतजोक्षिताङ्गः ।
तां चास्य घोरां यमदण्डकल्पां गदां प्रगृह्याशु तदा ननाद ॥५९॥
मुहूर्तमासीत्स गतासुकल्पः प्रत्यागतात्मा सहसा सुरारिः ।
उत्पत्य संध्याभ्रसमानवर्णस्तं वारिराजात्मजमाजघान ॥६०॥

पराक्रमी हनुमानके द्वारा देवशत्रु उस त्रिशिराके मारे जानेपर वानर गर्जन करने लगे, पृथिवी काँपने लगी, और राक्षस भागने लगे ॥ ४८ ॥ युद्धोन्मत्त त्रिशिराका मारा जाना देखकर तथा दुर्धर्ष देवान्तक और नरान्तकका मारा जाना देखकर बड़ा क्रोधी राक्षस-श्रेष्ठ मत्तने क्रोध किया । उसने लोहेकी बनी गदा उठायी, जिससे चिनगारियाँ निकलतीं थीं ॥ ४९, ५० ॥ उस गदापर सोनेका पत्तर चढ़ा हुआ था, मांस और शोणित उसपर लिपटा हुआ था, शत्रुके खूनसे तृप्त होकर वह बड़ी गदा शोभित हो रही थी, तेजसे उसके आगेका भाग प्रदीप्त हो रहा था, लालमालाओंसे वह सुशोभित हो रही थी, ऐरावत, महापद्म आदि दिग्गजोंको भय देनेवाली थी । वैसी गदा लेकर राक्षस-श्रेष्ठ मत्तने क्रोध करके वानरोंपर आक्रमण किया, मानो जलती हुई प्रलयकालकी आग हो ॥ ५१, ५२, ५३ ॥ ऋषभ नामका वानर रावणके छोटे भाई मत्तकी सेनाके पास जाकर उसके आगे खड़ा हो गया ॥ ५४ ॥ सामने पर्वतके समान खड़ा देखकर उसने क्रोध करके वज्रके समान गदासे मारा ॥ ५५ ॥ उस गदासे मारे जानेपर ऋषभ वानर काँपने लगा, उसकी छाती फट गयी, रुधिर निकलने लगा ॥ ५६ ॥ देरसे होशमें आकर वानरेश्वर ऋषभने क्रोध करके महापार्श्वकी ओर देखा, उस समय उसके ओंठ काँप रहे थे ॥ ५७ ॥ वेगवान् ऋषभने, जिसका रूप पर्वतके समान था, वेगसे राक्षसके पास जाकर, मुट्ठी बाँधकर, दोनों भुजाओंके बीचमें उसे मारा ॥ ५८ ॥ जड़ कटनेसे वृक्षके समान वह राक्षस रुधिराक्त होकर पृथिवीपर गिरा और यमराजके दण्डके समान भयंकर उसकी गदा लेकर ऋषभ गर्जन करने लगा ॥ ५९ ॥ वह राक्षस थोड़ी देरतक मरेके समान पड़ा रहा, सहसा उसे होश आया । सायंकालके मेघके समान उस राक्षसने

स मूर्च्छितो भूमितले पपात मुहूर्तमुत्पत्य पुनः ससंज्ञः ।
तामेव तस्याद्रिवराद्रिकल्पां गदां समाविध्य जघान संख्ये ॥६१॥
सा तस्य रौद्रा समुपेत्य देहं रौद्रस्य देवाध्वरविप्रशत्रोः ।
बिभेद वक्षः क्षतजं च भूरि सुस्राव धात्वम्भ इवाद्रिराजः ॥६२॥
अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः । तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ॥६३॥
मत्तानीकं महात्मा स जघान रणमूर्धनि । स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ॥६४॥
निपपात तदा मत्तो वज्राहत इवाचलः । विशीर्णनयनो भूमौ गतसत्त्वो गतायुषः ॥
पतिते राक्षसे तस्मिन्विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥६५॥
तस्मिन्हते भ्रातरि रावणस्य तन्नैर्ऋतानां बलमर्णवाभम् ।
त्यक्तायुधं केवलजीवितार्थं दुद्राव भिन्नार्णवसंनिकाशम् ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं लोमहर्षणम् । भ्रातॄंश्च निहतान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥
पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ । युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसोत्तमौ ॥ २ ॥
चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि । अतिकायोऽद्रिसंकाशो देवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥

ऋषभको मारा ॥ ६० ॥ वह वानर मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा, एक मूहूर्तके बाद होश आनेपर उसकी वही पर्वतके समान गदा उठाकर उन्होंने उसे मारा ॥ ६१ ॥ उस भयङ्कर गदाने देवता, यज्ञ और ब्राह्मणोंके शत्रु उस क्रूर राक्षसके शरीरपर गिरकर उसकी छातीको तोड़ दिया, उससे खून बहने लगा, जिस प्रकार पर्वतराजसे धातुका जल बहता है ॥ ६२ ॥ ऋषभकी गदाकी ओर वह दौड़ा। उस भयङ्कर गदाको जोरसे पकड़कर मत्तकी सेनाको ऋषभ मारनेलगे। वह अपनीही गदासे टूट गया, उसके दाँत टूट गये, आँखें फूट गयीं ॥ ६३, ६४ ॥ वह मत्त वज्राहत पर्वतके समान पृथिवीपर गिरा। उसकी आँखें फूट गयीं थीं, उसका बल समाप्त हो गया था और आयु भी समाप्त हो गयी थी। उस राक्षसके गिरनेसे राक्षसी सेना भागने लगी ॥ ६५ ॥ रावणके उस भाईके मारे जानेपर समुद्रतुल्य राक्षसोंकी सेना अस्त्र-शस्त्र छोड़कर प्राण बचानेके लिए भाग गयी, जिस प्रकार बाँध टूटनेसे समुद्रका जल बाहर निकल आता है ॥ ६६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥



घोर शब्द करनेवाली अपनी सेनाको व्यथित देखकर, इन्द्रके समान पराक्रमी भाइयोंका मारा जाना देखकर, राक्षस-श्रेष्ठ युद्धोन्मत्त और मत्त दोनों भाइयोंका समरमें गिराया जाना देखकर, ब्रह्मासे वर पाये हुए देव-दानवोंका गर्व नष्ट करनेवाले इसके चाचा पर्वततुल्य तेजस्वी अतिकायने क्रोध

स भास्करसहस्रस्य संघातमिव भास्वरम् । रथमारुह्य शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥ ४ ॥
स विस्फार्य तदा चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः । नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ ५ ॥
तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च । ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥ ६ ॥
ते दृष्ट्वा देहमाहात्म्यं कुम्भकर्णोऽयमुत्थितः । भयार्ता वानराः सर्वे संश्रयन्ते परस्परम् ॥ ७ ॥
ते तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे । भयाद्वानरयोधास्ते विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ८ ॥
तेऽतिकायं समासाद्य वानरा मूढचेतसः । शरण्यं शरणं जग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥ ९ ॥
ततोऽतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम् । ददर्श धन्विनं दूराद्गर्जन्तं कालमेघवत् ॥१०॥
स तं दृष्ट्वा महाकायं राघवस्तु सुविस्मितः । वानरान्सान्त्वयित्वा च विभीषणमुवाच ह ॥११॥
कोऽसौ पर्वतसंकाशो धनुष्मान्हरिलोचनः । युक्ते हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः ॥१२॥
य एष निशितैः शूलैः सुतीक्ष्णैः प्रासतोमरैः । अर्चिष्मद्भिर्वृतो भाति भूतैरिव महेश्वरः ॥१३॥
कालजिह्वाप्रकाशाभिर्य एषोऽभिविराजते । आवृतो रथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥१४॥
धनूंषि चास्य सज्जानि हेमपृष्ठानि सर्वशः । शोभयन्ति रथश्रेष्ठं शक्रचापमिवाम्बरम् ॥१५॥
य एष रक्षःशार्दूलो रणभूमिं विराजयन् । अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यवर्चसा ॥१६॥
ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाभिविराजते । सूर्यरश्मिप्रभैर्बाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥१७॥
त्रिनतं मेघनिर्ह्रादं हेमपृष्ठमलंकृतम् । शतक्रतुधनुःप्रख्यं धनुश्चास्य विराजते ॥१८॥

किया ॥ १, २,३, ॥ हजारों सूर्योंके समान प्रकाशमान रथपर चढ़कर, उस इन्द्रशत्रुने, वानरोंपर आक्रमण किया । ॥ ४ ॥ धनुषका शब्द करके उज्ज्वल कुण्डल और किरीटधारी उस राक्षसने अपना नाम सुनाया और घोर गर्जन किया ॥ ५ ॥ सिंहगर्जन नामोच्चारण तथा भयंकर धनुषशब्दसे उसने वानरोंको भयभीत कर दिया ॥ ६ ॥ उसका विशाल शरीर देखकर वानरोंने समझा कि यह कुम्भकर्ण पुनः उठ खड़ा हुआ—इससे भयभीत होकर वानर एक दूसरेकी ओटमें छिपने लगे ॥ ७ ॥ तीन पैरसे त्रिलोकनापनेके समयके विष्णुके समान उसका रूप देखकर वानरवीर भयसे इधर-उधर देखने लगे ॥ ८ ॥ अतिकायको देखकर वानर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये । अतएव शरणागतरक्षक रामचन्द्रकी शरण गये ॥ ९ ॥ रामने दूरहीसे रथपर पर्वतके समान बैठे हुए धनुर्धारी कालमेघके समान गर्जनेवाले अतिकायको देखा ॥ १० ॥ उस अतिकायको देखकर रामचन्द्र बहुत विस्मित हुए । वानरोंको समझा करके विभीषणसे बोले ॥११॥ पर्वतके समान विशाल, सिंहके समान आँखोंवाला यह धनुर्धारी कौन है, हजार घोड़ाके विशाल रथपर यह बैठा है ॥ १२ ॥ तीखे शूल, तीक्ष्ण भाला, तोमरसे युक्त, जिससे ज्योति निकल रही है, यह कौन भूतोंसे परिवृत शिवके समान मालूम होता है ॥ १३ ॥ कालजिह्वाके समान प्रकाशमान रथशक्तियोंसे युक्त यह कौन है, जो विजुलीवाले मेघके ऐसा मालूम होता है ॥ १४ ॥ चढ़ा हुआ इसका धनुष सोनेसे मढ़ा हुआ है, इन्द्रधनुष जिस प्रकार आकाशको शोभित करता है, उसी प्रकार वह रथको शोभित कर रहा है ॥ १५ ॥ जो यह राक्षसश्रेष्ठ रणभूमिको शोभित करता हुआ रथिश्रेष्ठ सूर्यके समान प्रकाशमान रथसे आ रहा है, वह कौन है ॥ १६ ॥ इसकी ध्वजाके ऊपर राहुका चित्र है, यह सूर्यकिरणके समान बाणोंसे दशों दिशाओंको शोभित कर रहा है ॥१७॥ तीन जगहोंसे मुड़ा हुआ, मेघके समान गर्जनकरने वाला, सोनेसे मढ़ा हुआ इन्द्रधनुषके समान इसका

सध्वजः सपताकश्च सानुकर्षो महारथः। चतुःसादिसमायुक्तो मेघस्तनितनिःस्वनः ॥१९॥
विंशतिर्दश चाष्टौ च तूणाऽस्य रथमास्थिताः। कार्मुकाणि च भीमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गलाः ॥२०॥
द्वौ च खड्गौ च पार्श्वस्थौ प्रदीपौ पार्श्वशोभितौ। चतुर्हस्तत्सरुचितौ व्यक्तहस्तदशायतौ ॥२१॥
रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्वतसंनिभः। कालः कालमहावक्त्रो मेघस्थ इव भास्करः ॥२२॥
काञ्चनाङ्गदनद्धाभ्यां भुजाभ्यामेष शोभते। शृङ्गाभ्यामिव तुङ्गाभ्यां हिमवान्पर्वतोत्तमः ॥२३॥
कुण्डलाभ्यामुभाभ्यां च भाति वक्त्रं सुभीषणम्। पुनर्वस्वन्तरगतः परिपूर्णो निशाकरः ॥२४॥
आचक्ष्व मे महाबाहो त्वमेनं राक्षसोत्तमम्। यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे भयार्ता विद्रुता दिशः ॥२५॥
स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा। आचचक्षे महातेजा राघवाय विभीषणः ॥२६॥
दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः। भीमकर्मा महात्मा हि रावणो राक्षसेश्वरः ॥२७॥
तस्यासीद्वीर्यवान्पुत्रो रावणप्रतिमो बले। वृद्धसेवी श्रुतिधरः सर्वास्त्रविदुषां वरः ॥२८॥
अश्वपृष्ठे नागपृष्ठे खड्गे धनुषि कर्षणे। भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च संमतः ॥२९॥
यस्य बाहुं समाश्रित्य लङ्का भवति निर्भया। तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः ॥३०॥
एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना। अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥३१॥
सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयंभुवा। एतच्च कवचं दिव्यं रथश्च रविभास्वरः ॥३२॥
एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिताः। रक्षितानि च रक्षांसि यक्षाश्चापि निषूदिताः ॥३३॥

धनुष है ॥१८॥ इसका महारथ ध्वजा और पताकासे युक्त है, इसके नीचे लकड़ी लगी हुई है, चार सारथी हैं और मेघके समान उसका गर्जन है ॥१९॥ बीस तरकस, दस भयंकर धनुष और आठ ज्या इसके रथपर हैं, जो सोनेके रंगके पीले हैं ॥२०॥ इसके दोनों बगलमें दो तलवारें हैं जो चमकीली तथा दोनों पार्श्वमें शोभित हैं, चार हाथकी उनकी मूठ है और दस हाथ वे लम्बी हैं ॥ २१ ॥ यह लाल माला पहने है, पर्वतके समान ऊँचा है, काला है, कालके समान इसका भयंकर मुँह है, मेघस्थ सूर्यके समान यह मालूम पड़ता है ॥२२॥ सोनेके अंगदसे बँधी भुजाओंसे यह शोभित हो रहा है, जिस प्रकार दो सुवर्णशिखरोंसे हिमवान् शोभित होता है ॥ २३ ॥ दो कुण्डलोंसे उसका भयंकर मुँह शोभित हो रहा है, जिस प्रकार दो पुनर्वसु नक्षत्रोंके बीचमें चन्द्रमा शोभित होता है ॥ २४ ॥ महाबाहो ! इस राक्षसश्रेष्ठका परिचय मुझे दो, जिसको देखकर वानर भयसे इधर-उधर भाग रहे हैं ॥ २५ ॥ तेजस्वी राजपुत्र रामके पूछनेपर, तेजस्वी विभीषण उनसे कहने लगे ॥ २६ ॥ तेजस्वी रावण कुबेरका छोटा भाई है, महात्मा राक्षसाधिप रावण बड़ा भयंकर कर्म करनेवाला है ॥ २७ ॥ उसका पुत्र बड़ा पराक्रमी हुआ, जो बलमें रावणके समान था, जो वृद्धसेवी श्रुतिधर और सब शास्त्रोंका ज्ञाता था ॥२८॥ जो घुडसवारी, हाथी चढ़ना, तलवार चलाना, धनुष चढ़ाना, भेद, साम, दान, नीति तथा सलाहमें निपुण था ॥ २९ ॥ जिसके बाहुबलसे लंका निर्भय है वही धान्यमालिनीका पुत्र यह अतिकाय है ॥ ३० ॥ शुद्धात्मा होकर इसने ब्रह्माकी आराधना की थी, इसको अस्त्र मिले थे और इसने शत्रुओंको जीता था ॥ ३१ ॥ ब्रह्माने देवता तथा असुरोंसे अवध्य होनेका इसे वर दिया, यह दिव्य कवच और रथ दिया ॥ ३२ ॥ इसने सैकड़ों देवता और दानवोंको परास्त किया है, राक्षसोंकी रक्षा की है और यक्षोंको

वज्रं विष्टम्भितं येन बाणैरिन्द्रस्य धीमता । पाशः सलिलराजस्य युद्धे प्रतिहतस्तथा ॥३४॥
एषोऽतिकायो बलवान्राक्षसानामथर्षभः । स रावणसुतो धीमान्देवदानवदर्पहा ॥३५॥
तदस्मिन्क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुंगव । पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः ॥३६॥
ततोऽतिकायो बलवान्प्रविश्य हरिवाहिनीम् । विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥३७॥
तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् । अभिपेतुर्महात्मानः प्रधाना ये वनौकसः ॥३८॥
कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च । पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत्समभिद्रवन् ॥३९॥
तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः कनकभूषणैः । अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥४०॥
तांश्चैव सर्वान्स हरीञ्शरैः सर्वायसैर्बली । विव्याधाभिमुखान्संख्ये भीमकायो विशारदः ॥४१॥
तेऽर्दिता बाणवर्षेण भिन्नगात्राः पराजिताः । न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महाहवे ॥४२॥
तत्सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः । मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः ॥४३॥

स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये नायुध्यमानं निजघान कंचित् ।
उत्पत्य रामं सधनुःकलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥४४॥
रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कंचन योधयामि ।
यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥४५॥
तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा ॥४६॥

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् । पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥४७॥

उखाड डाला है ॥३३॥ जिस बुद्धिमानने बाणोंसे इन्द्रके वज्रको रोक दिया, वरुणके पाशको निकम्मा बना दिया, ॥३४॥ वही यह बलवान् अतिकाय राक्षसोंका स्वामी है, रावणका पुत्र है, देवता और दानवोंका दर्प नष्ट करनेवाला है, यह बुद्धिमान् है ॥ ३५ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, इस कारण आप शीघ्र इसके लिए प्रयत्न करें, नहीं तो यह राक्षस सेनाका विनाश करेगा ॥ ३६ ॥ अनन्तर बलवान अतिकाय वानरीसेनामें घुसकर धनुषका टंकार करने लगा और गर्जने लगा ॥ ३७ ॥ उस भयंकर शरीरवाले रथिश्रेष्ठको रथपर देखकर महात्मा वानरोंमें जो प्रधान थे वे आये ॥ ३८ ॥ कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील और शरभ इन लोगोंने वृक्ष तथा पर्वतशिखर लेकर एकसाथही उसपर आक्रमण किया ॥३९॥ उनके वृक्षों तथा पत्थरोंको सुवर्णभूषित बाणों-से अस्त्रवेत्तृश्रेष्ठ, तेजस्वी अतिकायने काट डाला ॥ ४० ॥ विशालशरीर युद्धनिपुण उस बली राक्षसने लोहेके बाणोंसे उन समस्त वानरोंको मारा ॥ ४१ ॥ बाणवृष्टिसे पीडित क्षतशरीर होकर वानर पराजित हो गये, वे युद्धमें अतिकायका उत्तर न दे सके ॥ ४२ ॥ वानरोंकी उस सेनाको राक्षसने भयभीत कर दिया, जिस प्रकार क्रुद्ध सिंह मृगयूथको भयभीत कर देता है ॥४३॥ उस राक्षसराजने वानरीसेनामें उनमेंसे किसीको नहीं मारा, जो युद्ध नहीं करते थे। धनुषसमूह धारण करनेवाला वह रामके पास जाकर अहंकारसे बोला ॥४४॥ धनुष-बाण लेकर मैं रथपर बैठा हूँ, साधारण मनुष्योंसे मैं युद्ध नहीं करता, जिसमें उत्साह हो वह आकर मुझसे युद्ध करे ॥ ४५ ॥ उसके ये वचन सुनकर शत्रुहन्ता लक्ष्मण क्रुद्ध हुए, उसकी बातें न सहकर वे

पूरयन्स महीं सर्वामाकाशं सागरं दिशः । ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥४८॥
सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा । विसिस्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥४९॥
तदातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम् । आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥५०॥
बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः । गच्छ किं कालसंकाशं मां योधयितुमिच्छसि ॥५१॥
नहि मद्बाहुसृष्टानां बाणानां हिमवानपि । सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षमथो मही ॥५२॥
सुखमसुप्तं कालाग्निं विबोधयितुमिच्छसि । न्यस्य चापं निवर्तस्व प्राणान्न जहि मद्गतः ॥५३॥
अथवा त्वं प्रतिस्तब्धो न निवर्तितुमिच्छसि । तिष्ठ प्राणान्परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥५४॥
पश्य मे निशितान्बाणानरिपुदर्पनिषूदनान् । ईश्वरायुधसंकाशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥५५॥
एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शोणितम् । मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ॥
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि संदधे ॥५६॥
श्रुत्वातिकायस्य वचः सरोषं सगर्वितं संयति राजपुत्रः ।
स संचुकोपातिबलो मनस्वी उवाच वाक्यं च ततो बृहच्छ्रीः ॥५७॥
न वाक्यमात्रेण भवान्प्रधानो न कत्थनात्सत्पुरुषा भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ निदर्शयस्वात्मबलं दुरात्मन् ॥५८॥
कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि । पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥५९॥
सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः । शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥६०॥

आगे आये और हँसकर उन्होंने धनुष उठाया ॥ ४६ ॥ लक्ष्मण क्रोध करके उसके सामने गये। तरकससे बाण निकालकर उन्होंने अतिकायके सामने धनुष चढ़ाया ॥४७॥ लक्ष्मणके उग्र धनुषने राक्षसोंको डराकर समूची पृथिवी, आकाश, समुद्र और दिशाओंको प्रतिध्वनित किया ॥ ४८॥ शत्रुको कँपानेवाला लक्ष्मणके धनुषका शब्द सुनकर तेजस्वी और बली रावणपुत्र विस्मित हुआ ॥ ४९॥ तब लक्ष्मणको आया देख, अतिकायने क्रोध किया, तीखे बाण लेकर वह बोला ॥ ५० ॥ लक्ष्मण! तुम अभी बच्चे हो, अतएव पराक्रमके अनभिज्ञ हो, जाओ, कालतुल्य मुझसे क्यों लड़ना चाहते हो ॥ ५१ ॥ मेरे हाथसे छूटे बाणोंको हिमवान भी नहीं सह सकता, पृथिवी और आकाश भी नहीं सह सकते ॥ ५२ ॥ सुखसे सोये कालाग्निको तुम जगाना चाहते हो, धनुष रखकर लौट जाओ, मेरे सामने प्राण न दो ॥५३॥ अथवा तुम यहाँसे लौटना नहीं चाहते, इसीसे खड़े हो, ठहरो प्राण छोड़कर यमराजके यहाँ जाना ॥५४॥ शत्रुके दर्पको चूर्ण करनेवाले मेरे बाणोंको देखो—कैसे तीखे हैं, ये शिवके त्रिशूलके समान हैं, उज्ज्वल सुवर्णसे भूषित हैं ॥५५॥ यह सर्पके समान मेरा बाण तुम्हारा खून पीयेगा, जिस प्रकार सिंह हाथीका खून पीता है। ऐसा कहकर और क्रोधकर उसने धनुषपर बाण रखा ॥५६॥ अतिकायके क्रोधगर्वित वचन सुनकर राजपुत्र, अतिबली और मनस्वी लक्ष्मणने क्रोध किया और वे बोले। लक्ष्मणकी शोभा बढ़ी हुई थी ॥ ५७ ॥ बातोंसे कोई प्रधान नहीं होता, सज्जन अपनी प्रशंसा आप नहीं करते, धनुषबाण लेकर मैं उपस्थित हूँ, दुरात्मन्! तू अपना पराक्रम दिखला ॥५८॥ कर्मसे अपना पराक्रम दिखलाओ, झूठी शेखी न मारो, जो पुरुषार्थी है वही शूर कहा जाता है ॥५९॥ तुम्हारे

ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः । मारुतः कालसंयुक्तं वृन्तात्तालफलं यथा ॥६१॥
अथ ते मामका बाणास्तप्तकाञ्चनभूषणाः । पास्यन्ति रुधिरं गात्राद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥६२॥
बालोऽयमिति विज्ञाय न चावज्ञातुमर्हसि । बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥६३॥
बालेन विष्णुना लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिविक्रमैः । लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ॥
अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥६४॥
ततो विद्याधरा भूता देवदैत्यमहर्षयः । गुह्यकाश्च महात्मानस्तद्युद्धं ददृशुस्तदा ॥६५॥
ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् । लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥६६॥
तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥६७॥
तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम् । अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान्समादधे ॥६८॥
ताञ्शरान्संप्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः । तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥६९॥
स ताञ्छित्त्वा शितैर्बाणैर्लक्ष्मणः परवीरहा । आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥७०॥
तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः । विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च सायकम् ॥७१॥
पूर्णायतविसृष्टेन शरेण नतपर्वणा । ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान् ॥७२॥
स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः । ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले ॥७३॥
राक्षसः प्रचकम्पेऽथ लक्ष्मणेषुप्रपीडितः । रुद्रबाणहतं घोरं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥
चिन्तयामास चाश्वस्य विमृश्य च महाबलः ॥७४॥

पास सब प्रकारके आयुध हैं, तुम धनुष लेकर रथपर बैठे हो, बाणों और अस्त्रोंके द्वारा अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ६० ॥ इसके बाद तीखे बाणोंसे मैं तुम्हारा सिर काटूँगा, जिस प्रकार वायु समयपर तालफलको वृन्त (गुच्छा) से अलग कर देता है ॥६१॥ आज सोनेसे मढ़े हुए मेरे बाण, बाणके वेधनेसे निकला हुआ, रुधिर पीएँगे ॥ ६२ ॥ बालक समझकर तुम मेरा तिरस्कार मत करो, बालक होऊँ या वृद्ध मैं तुम्हारा काल हूँ यह समझो ॥ ६३ ॥ बालक विष्णुने तीन पैरोंसे तीनों लोकोंको नापा था । सहेतुक तथा सत्य लक्ष्मणके वचन सुनकर अतियकाने क्रोध किया और उत्तम बाण लिया ॥ ६४ ॥ उस समय विद्याधर, भूत, देवता, दैत्य, महर्षि, गुह्यक आदि उस युद्धको देखने लगे ॥ ६५ ॥ क्रोध करके अतिकायने धनुपपर बाण रखा, और आकाशको ग्रसित करता हुआ, लक्ष्मणपर उस बाणको चलाया ॥ ६६ ॥ सर्पके समान उस तीखे बाणको आता देखकर शत्रुहन्ता लक्ष्मणने अर्धचन्द्रसे उसे काट डाला ॥६७॥ सर्पके शरीरके समान बाणको कटा देखकर अतिकायने बड़ा क्रोध किया और उसने पाँच बाण साधे ॥६८॥ राक्षसने उन बाणोंको लक्ष्मणपर फेंका और लक्ष्मणने उन आये बाणोंको अपने तीखे बाणोंसे काट डाला ॥ ६९ ॥ उन बाणोंको काटकर शत्रुहन्ता लक्ष्मणने दूसरे तीखे बाण लिये, जो तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे ॥ ७० ॥ उस बाणको लेकर लक्ष्मणनें धनुषपर रखा और बड़े वेगसे धनुप खींचकर बाण छोड़ा ॥ ७१ ॥ पूरा खींचकर छोड़े हुए तथा नीची गाँठवाले उस बाणने राक्षस-श्रेष्ठके माथेपर आघात किया ॥ ७२ ॥ वह बाण उस भयंकर राक्षसके माथेमें घुस गया, जिस प्रकार पर्वतमें साँप घुसजाता है । वह राक्षस उस समय खूनसे भींगा देखा गया

साधु वाणनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः । विधायैवं विदार्यास्यं विनम्य च महाभुजौ ॥
स रथोपस्थमास्थाय रथेन प्रचचार ह ॥७५॥
एकं त्रीन्पञ्च सप्तेति सायकान्राक्षसर्षभः । आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥७६॥
ते बाणाः कालसंकाशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः । हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥७७॥
ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान्राघवानुजः । असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥७८॥
ताञ्शरान्युधि संप्रेक्ष्य निकृत्तान्रावणात्मजः । चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह निशितं शरम् ॥७९॥
स संधाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत् । तेन सौमित्रिमायान्तमाजघान स्तनान्तरे ॥८०॥
अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि । सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः ॥८१॥
स चकार तदात्मानं विशल्यं सहसा विभुः । जग्राह च शरं तीक्ष्णमस्त्रेणापि समादधे ॥८२॥
आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम् । स जज्वाल तदा बाणो धनुश्चास्य महात्मनः ॥८३॥
अतिकायोऽतितेजस्वी रौद्रमस्त्रं समाददे । तेन बाणं भुजंगाभं हेमपुङ्खमयोजयत् ॥८४॥
तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम् । अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥८५॥
आग्नेयास्त्राभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः । उत्ससर्ज तदा बाणं रौद्रं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥८६॥
तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः । तेजसा संप्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजंगमौ ॥
तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ॥८७॥

॥ ७३ ॥ लक्ष्मणके बाणसे पीड़ित होकर राक्षस काँप गया, जिस प्रकार रुद्रके बाणसे आहत होकर त्रिपुरासुरके नगरका द्वार काँप गया था । महाबली राक्षस होशमें आकर विचार करने लगा ॥ ७४ ॥ ठीक, बाणकी इस मारसे तुम मेरे आदरणीय शत्रु हो गये, ऐसा कहकर मुँह फैलाकर तथा हाथ मोड़कर रथके भीतर बैठकर विचार करने लगा ॥७५॥ राक्षसश्रेष्ठने, एक तीन पाँच और सात बाण लिये, उन्हें धनुषपर चढ़ाया, खींचा और चलाया ॥ ७६ ॥ राक्षसराजके धनुषसे निकले उन कालसदृश बाणोंने, जो सोनेसे मढ़े गये थे, जिनका प्रकाश सूर्यके समान था, आकाशको प्रकाशित किया ॥ ७७ ॥ राक्षसके छोड़े बाणोंको बिना घबड़ाये लक्ष्मणने तीखे अनेक बाणोंसे काट दिया ॥७८॥ उन बाणोंका कटना देखकर रावणपुत्रने बड़ा क्रोध किया, उस देवशत्रुने दूसरा तीखा बाण लिया ॥ ७९ ॥ तेजस्वी राक्षसने उस बाणको चढ़ाकर शीघ्र चलाया और उस बाणसे आते हुए लक्ष्मणकी छातीमें उसने मारा ॥ ८० ॥ अतिकायके द्वारा छातीमें आहत होकर लक्ष्मण रुधिर बहानेलगे जिस प्रकार मतवाला हाथी मद बहाता है ॥ ८१ ॥ लक्ष्मणने अपनेको शीघ्री चंगा कर दिया, पुनः बाण उठाकर उसे अभिमन्त्रित किया ॥ ८२ ॥ आग्नेय मन्त्रसे उन्होंने उस बाणको अभिमन्त्रित किया, उस समय इनका धनुष और बाण जलने लगा, उससे प्रकाश फैलने लगा ॥ ८३ ॥ तेजस्वी अतिकायने सुवर्णपुंखवाला सर्पसदृश बाणको रुद्रास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया ॥ ८४ ॥ दिव्य शक्ति-युक्त भयंकर और जलता हुआ वह बाण लक्ष्मणने अतिकायपर छोड़ा, जिस प्रकार यमराज कालदण्ड छोड़ता है ॥ ८५ ॥ आग्नेय मन्त्रसे युक्त बाणको देखकर राक्षसने सूर्यमन्त्रसे मन्त्रित रुद्रास्त्र छोड़ा ॥ ८६ ॥ वे दोनों बाण परस्पर टकराकर नष्ट हो गये, उन बाणोंका अग्रभाग जल रहा था, क्रुद्ध

निरर्चिषौ भस्मकृतौ न भ्राजेते शरोत्तमौ । तावुभौ दीप्यमानौ स्म न भ्राजेते महीतले ॥८८॥
ततोऽतिकायः सुक्रुद्धस्त्वाष्ट्रमैषीकमुत्सृजत् । ततश्चिच्छेद सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान् ॥८९॥
ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा कुमारो रावणात्मजः । याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् ॥९०॥
ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः । वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥९१॥
अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः । अभ्यवर्षत संक्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥९२॥
तेऽतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते । भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणा महीतले ॥९३॥
तान्मोघानभिसंप्रेक्ष्य लक्ष्मणः परवीरहा । अभ्यवर्षत बाणानां सहस्रेण महायशाः ॥९४॥
स वृष्यमाणोः बाणौघैरतिकायो महाबलः । अवध्यकवचः संख्ये राक्षसो नैव विव्यथे ॥९५॥
न शशाक रुजं कर्तुं युधि तस्य नरोत्तमः । अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह ॥९६॥
ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः । ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ॥
अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली ॥९७॥

ततस्तु वायोर्वचनं निशम्य सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः ।
समादधे बाणमथोग्रवेगं तद्ब्राह्ममस्त्रं सहसा नियुज्य ॥९८॥
तस्मिन्वरास्त्रे तु नियुज्यमाने सौमित्रिणा बाणवरे शिताग्रे ।
दिशश्च चन्द्रार्कमहाग्रहाश्च नभश्च तत्रास ररास चोर्वी ॥९९॥
तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे शरं सपुङ्खं यमदूतकल्पम् ।
सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥१००॥

सर्पोंके समान दोनो टकराकर नष्ट हो गये, वे दोनों एक दूसरेको जलाकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ उनसे निकलनेवाली चिनगारियाँ बुझ गयीं, जलनेके कारण उन दोनोंकी शोभा जाती रही । वे लक्ष्मण और राक्षस भी जो पहले प्रकाशित हो रहे थे, पृथिवीपर आनेसे प्रकाशहीन हो गये, बाणके नाशके दुःखसे ऐसा हुआ ॥ ८८ ॥ तब क्रोध करके अतिकायने त्वाष्ट्र बाण छोड़ा, बली लक्ष्मणाने उसको ऐन्द्रास्त्रसे काट दिया ॥ ८९ ॥ रावणपुत्र कुमारने इषीकास्त्रका नाश होना देखकर याम्य अस्त्रसे युक्त करके बाण चढ़ाया ॥ ९० ॥ पुनः उस अस्त्रको उसने लक्ष्मणपर चलाया, लक्ष्मणाने वायव्य अस्त्रसे उसे नष्ट कर दिया ॥ ९१ ॥ क्रोध करके लक्ष्मण रावणपुत्रपर बाण वृष्टि करने लगे, जिस प्रकार मेघ जलवृष्टि करता है ॥९२॥ वे बाण वज्रके समान अतिकायके शरीरपर लगकर टूट गये और पृथिवीपर गिर पड़े ॥९३॥ उन बाणोंको व्यर्थ होते देखकर शत्रुहन्ता यशस्वी लक्ष्मण उसपर हजारों बाण बरसाने लगे ॥ ९४ ॥ अतिकायका कवच भेदा नहीं जा सकता था, इस कारण बाणोंकी वृष्टिसे वह व्यथित नहीं हुआ ॥९५॥ नरश्रेष्ठ लक्ष्मण उसके शरीरको भेद न सके । अनन्तर लक्ष्मणके पास आकर वायु बोले ॥ ९६ ॥ इसको ब्रह्मासे वर मिला है, इसका कवच भेदा नहीं जा सकता, ब्रह्मास्त्रसे इसे मारो, क्योंकि यह इसी तरह मारा जा सकता है, कवच धारण करनेवाला बली यह दूसरे अस्त्रोंसे अवध्य है ॥ ९७ ॥ इन्द्रके समान पराक्रमी लक्ष्मणने वायुके वचन सुनकर ब्रह्मास्त्रके योगसे शीघ्रही उग्रवेग बाण चढ़ाया ॥९८॥ बाणश्रेष्ठ तीक्ष्णाग्र उस उत्तम बाणके चढ़ाने-

तं लक्ष्मणोत्सृष्टविवृद्धवेगं समापतन्तं श्वसनोग्रवेगम् ।
सुपर्णवज्रोत्तमचित्रपुङ्खं तदातिकायः समरे ददर्श ॥१०१॥
तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तथातिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥१०२॥
तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् ।
जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥१०३॥
तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः ।
प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं तदातिकायस्य शिरो जहार ॥१०४॥
तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् । पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥१०५॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा विक्षिप्ताम्बरभूषणम् । बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हतशेषा निशाचराः ॥१०६॥
ते विषण्णमुखा दीनाः प्रहारजनितश्रमाः । विनेदुरुच्चैर्बहवः सहसा विस्वरैः स्वरैः ॥१०७॥
ततस्तत्परितो याता निरपेक्षा निशाचराः । पुरीमभिमुखा भीता द्रवन्तो नायके हते ॥१०८॥
प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानराः प्रफुल्लपद्मप्रतिमाननास्तदा ।
अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनं हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥१०९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

पर दिशाएँ, चन्द्र, सूर्य, बड़े ग्रह और आकाश डर गये, पृथिवी चिल्लाने लगी ॥९९॥ ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके लक्ष्मणने यमदूततुल्य पुंखवाला वज्रतुल्य बाण देवशत्रुके पुत्रपर चलाया ॥ १०० ॥ वायुसमान वेगवाले लक्ष्मणके छोड़े वेगवान् उस बाणको अपनी ओर आते राक्षसने देखा, सोना हीराके द्वारा उसका पिछला हिस्सा चित्रित था ॥ १०१ ॥ उसको देखकर अतिकायने अनेक तीखे बाणोंसे उसे मारा, फिर भी गरुड़के समान चलनेवाला वह बाण उसके पास पहुँच गया ॥ १०२ ॥ यमराजके कालदण्डके समान प्रदीप्त बाणको अपने पास आया देखकर उसने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल, बाणसे सतत प्रयत्न करके उसको मारा ॥ १०३ ॥ अद्भुत आकारवाले उन आयुधोंको विफल करके अग्निके समान प्रदीप्त उस बाणने किरीट के साथ अतिकायका सिर काट लिया ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणके बाणके द्वारा काटा गया वह मुकुटयुक्त सिर हिमवानके शिखरके समान पृथिवीपर गिरा ॥ १०५ ॥ उसके वस्त्र और भूषण बिखर गये थे । उसको पृथिवी पर गिरा देखकर बचे हुए राक्षस दुखी हुए ॥ १०६ ॥ प्रहारसे थके हुए, विषादसे मलिनमुख वे अनेक राक्षस विकृत स्वरसे चिल्लाने लगे ॥ १०७ ॥ सेनापतिके मारे जानेपर उन राक्षसोंकी इच्छा युद्ध करनेकी न रही, लंकाकी ओर वे डरकर भागने लगे ॥ १०८ ॥ अनेक वानर प्रसन्न हुए, विसिकत कमलके सामन उनके मुँह हो गये, भीमबल दुरासद शत्रुके मारे जानेपर वे मनोरथप्राप्त लक्ष्मणकी पूजा करने लगे ॥ १०९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महात्मना । उद्वेगमगमद्राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
धूम्राक्षः परमामर्षी सर्वशस्त्रभृतां वरः । अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च ॥ २ ॥
एते महाबला वीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिणः । जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यापराजिताः ॥ ३ ॥
ससैन्यास्ते हता वीरा रामेणाक्लिष्टकर्मणा । राक्षसा सुमहाकाया नानाशस्त्रविशारदाः ॥ ४ ॥
अन्ये च बहवः शूरा महात्मानो निपातिताः । प्रख्यातबलवीर्येण पुत्रेणेन्द्रजिता मम ॥ ५ ॥
तौ भ्रातरौ तदा बद्धौ घोरैर्दत्तवरैः शरैः । यन्न शक्यं सुरैः सर्वैरसुरैर्वा महाबलैः ॥ ६ ॥
मोक्तुं तद्बन्धनं घोरं यक्षगन्धर्वपन्नगैः । तन्न जाने प्रभावैर्वा मायया मोहनेन वा ॥ ७ ॥
शरबन्धाद्विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । ये योधा निर्गताः शूरा राक्षसा मम शासनात् ॥ ८ ॥
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहाबलैः । तं न पश्याम्यहं युद्धे योऽद्य रामं सलक्ष्मणम् ॥
नाशयेत्सबलं वीरं ससुग्रीवं विभीषणम् ॥ ९ ॥
अहो सुबलवान्रामो महदस्त्रबलं च वै । यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ॥१०॥
अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुल्मै रक्ष्या पुरी त्वियम् । अशोकवनिका चैव यत्र सीताभिरक्ष्यते ॥११॥
निष्क्रामो वा प्रवेशो वा ज्ञातव्यः सर्वदैव नः । यत्र यत्र भवेद्गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः ॥१२॥
सर्वतश्चापि तिष्ठध्वं सैन्यैः परिवृता बलैः । द्रष्टव्यं च पदं तेषां वानराणां निशाचराः ॥१३॥
प्रदोषे वार्धरात्रे वा प्रत्यूषे वापि सर्वशः । नावज्ञा तत्र कर्तव्या वानरेषु कदाचन ॥१४॥

महात्मा लक्ष्मणके द्वारा अतिकायका मारा जाना सुनकर राजा रावण बहुत उद्विग्न हुआ और उसने ये वचन कहे ॥ १ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परमक्रोधी धूम्राक्ष, अकम्पन, प्रहस्त और कुम्भकर्ण ये महाबली वीर राक्षस युद्धमें उत्साह रखते थे, ये शत्रु सेनाको जीतनेवाले तथा कभी पराजित नहीं हुए थे। नाना शस्त्र-संचालनमें निपुण, विशालकाय ये राक्षस सेनाके साथ अक्लिष्टकर्मा रामके द्वारा मारे गये ॥२—४॥ दूसरे अनेक महात्मा वीर मारे गये, प्रसिद्ध पराक्रमी बली मेरे पुत्र इन्द्रजितने वरमें प्राप्त बाणके द्वारा उन दोनों भाइयोंको बाँधा, वह बन्धन समस्त देवता तथा असुरोंके द्वारा भी नहीं खोला जा सकता था, उस दृढ़ बन्धनको यक्ष, गन्धर्व और नाग भी खोलनेमें समर्थ नहीं थे, पर मैं नहीं जानता, किस मायासे, किस प्रभावसे तथा किस मोहनसे दोनों भाई राम और लक्ष्मण बन्धनमुक्त हो गये। जो वीर राक्षस योधा मेरी आज्ञासे गये, वे सभी महाबली वानरोंके द्वारा मारे गये। अब मैं कोई ऐसा नहीं देखता जो युद्धमें राम और लक्ष्मणको मारे, सुग्रीव और विभीषणका नाश करे ॥ ५—९ ॥ ओह, रामचन्द्र बड़ा बली है, उसका अस्त्रबल भी अधिक है, जिसके पराक्रमसे राक्षस मारे गये ॥ १० ॥ मोर्चाबन्दी करके सावधान होकर तुमलोग लंका नगरीकी रक्षा करो। अशोकवाटिकाकी भी रक्षा करो, जहाँ सीता रखी गयी है ॥ ११ ॥ नगरमें कौन आया और कौन गया, यह बात हमलोगोंको सदा जाननी चाहिए। जहाँ जहाँ मोर्चा हो वहाँ सेनाके साथ तुम लोग रहो, वानरों का आना-जाना सदा तुमलोग देखते रहो ॥ १२, १३ ॥ सायंकाल,

द्विषतां बलमुद्युक्तमापतत्किं स्थितं यथा । ततस्ते राक्षसाः सर्वे श्रुत्वा लङ्काधिपस्य तत् ॥
वचनं सर्वमातिष्ठन्यथावत्तु महाबलाः ॥१५॥
तान्सर्वान्हि समादिश्य रावणो राक्षसाधिपः । मन्युशल्यं वहन्दीनः प्रविवेश स्वमालयम् ॥१६॥
ततः स संदीपितकोपवह्निर्निशाचराणामधिपो महाबलः ।
तदेव पुत्रव्यसनं विचिन्तयन्मुहुर्मुहुश्चैव तदा विनिःश्वसन् ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

ततो हतान्राक्षसपुंगवांस्तान्देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान् ।
रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टास्ते रावणाय त्वरिताः शशंसुः ॥ १ ॥
ततो हतांस्तान्सहसा निशम्य राजा महाबाष्पपरिप्लुताक्षः ।
पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरं विचिन्त्य राजा विपुलं प्रदध्यौ ॥ २ ॥
ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं शोकार्णवे संपरिपुप्लुवानम् ।
रथर्षभो राक्षसराजसूनुस्तमिन्द्रजिद्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ३ ॥
न तात मोहं परिगन्तुमर्हसे यत्रेन्द्रजिज्जीवति नैर्ऋतेश ।
नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित्प्राणान्समर्थः समरेऽभिपातुम् ॥ ४ ॥
पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ।
गतायुषं भूमितले शयानं शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ५ ॥

आधीरात तथा प्रातःकाल हर समय तुमलोग वानरोंपर ध्यान रखो, उनकी उपेक्षा मत करो ॥१४॥ शत्रुसेना आ रही है, तैयार हो रही है अथवा बैठी है—इस बातको सदा ध्यानमें देखते रहो । लंकाधिपकी ये बातें सुनकर सब राक्षसोंने उसी प्रकार किया, जैसा उसने कहा था ॥१५॥ राक्षसाधिप रावण उनको आज्ञा देकर दीन वह क्रोधका काँटा वहन करता हुआ अपने भवनमें गया ॥ १६ ॥ राक्षसाधिप रावणके क्रोधकी आग धधक गयी थी, वह पुत्रकी विपत्तिकी बात सोचता हुआ बार-बार निःश्वास लेने लगा ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥



युद्धक्षेत्रमें जो राक्षस बच गये थे उनलोगोंने आकर रावणसे देवान्तक, त्रिशिरा, अतिकाय आदि राक्षसश्रेष्ठोंका मारा जाना कहा ॥ १ ॥ उनका मारा जाना सुनकर राजा रावणकी आँखोंसे अश्रुधार बहने लगी । पुत्र और भाईका वध सुनकर वह बहुत अधिक चिन्तामग्न हो गया ॥ २ ॥ राजा रावणको दुःखी और शोकसमुद्रमें डूबते-उतराते देखकर राक्षसराजका बेटा राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजीत यह बोला ॥ ३ ॥ राक्षसराज, जबतक इन्द्रजित् जीता है, तबतक आप शोक न करें । युद्धमें इन्द्र शत्रुके बाणोंसे आहत होकर कोई भी अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं कर सकता । आजही आप देखें, मेरे बाणोंके आघातसे छिन्नभिन्न होकर

इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन संतर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ॥ ६ ॥
अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुरुद्रसाध्याश्च वैश्वानरचन्द्रसूर्याः ।
द्रक्ष्यन्तु मे विक्रममप्रमेयं विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे ॥ ७ ॥
स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रुरापृच्छय राजानमदीनसत्त्वः ।
समारुरोहानिलतुल्यवेगं रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥ ८ ॥
समास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम् । जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिंदमः ॥ ९ ॥
तं प्रस्थितं महात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः । संहर्षमाणा बहवो धनुःप्रवरपाणयः ॥१०॥
गजस्कन्धगताः केचित्केचित्परमवाजिभिः । व्याघ्रवृश्चिकमार्जारखरोष्ट्रैश्च भुजंगमैः ॥११॥
वराहैः श्वापदैः सिंहैर्जम्बुकैः पर्वतोपमैः । काकहंसमयूरैश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥
प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः ॥१२॥
स शङ्खनिनदैः पूर्णैर्भेरीणां चापि निःस्वनैः । जगाम त्रिदशेन्द्रारिराजिं वेगेन वीर्यवान् ॥१३॥
स शङ्खशशिवर्णेन छत्रेण रिपुसूदनः । रराज प्रतिपूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ॥१४॥
वीज्यमानस्ततो वीरो हैमैर्हेमविभूषणः । चारुचामरमुख्यैश्च मुख्यः सर्वधनुष्मताम् ॥१५॥
ततस्त्विन्द्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा । रराजाप्रतिवीर्येण द्यौरिवार्केण भास्वता ॥१६॥
स संप्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिंदमः । स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ॥१७॥

समस्त शरीरमें बाणोंसे विधकर, राम और लक्ष्मण पृथिवीमें सो रहे हैं, उनकी आयु समाप्त हो गयी है ॥५॥ इन्द्रशत्रुकी इस प्रतिज्ञाको आप सत्य समझें, क्योंकि यह भाग्य और पुरुषार्थसे युक्त है । आजही राम और लक्ष्मणको अमोघ बाणोंसे तृप्त करूँगा ॥६॥ आज सूर्य, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य मेरे अत्युत्तम पराक्रमको देखेंगे, जिस प्रकार विष्णुका पराक्रम बलिके यज्ञमें देखा गया था ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर पराक्रमी इन्द्रशत्रु राजासे आज्ञा लेकर वायुके समान चलनेवाले रथपर चढ़ा । उसमें अच्छे गधे जुते हुए थे और युद्धकी समस्त सामग्रियाँ रखी हुई थीं ॥ ८ ॥ इन्द्रके रथके समान रथपर चढ़कर तेजस्वी, शत्रुको दमन करनेवाला इन्द्रजित्, जहाँ युद्ध हो रहा था वहाँ, गया ॥ ९ ॥ महात्मा इन्द्रजित्के प्रस्थान करनेपर, महाबली राक्षस धनुष लेकर प्रसन्न होते चले ॥ १० ॥ कोई हाथीपर, कोई उत्तम घोड़ेपर, कोई बाघ, बिच्छू, बिल्ली, गधा, ऊँट, सर्प, सूअर, पर्वतसमान सिंह, सियार, काक, हंस, मयूर आदिपर चढ़कर भीमपराक्रमी राक्षस, प्रास, मुद्गर, तलवार, परश्वध, गदा, भुशुंडी, यष्टि, शतघ्नी और परिघ आदि आयुध लेकर चले ॥ ११, १२ ॥ शंख और भेरीके शब्दोंके साथ वीर्यवान इन्द्रशत्रु वेगसे युद्धमें गया ॥ १३ ॥ शत्रुसूदन वह इन्द्रजित् शङ्ख और चन्द्रके समान श्वेत छातासे, पूर्णचन्द्रमासे युक्त आकाशके समान, शोभित हो रहा था ॥ १४ ॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ सुवर्णभूषित वीर सुवर्णके सुन्दर चामरसे वीजित हो रहा था, उसपर चँवर ढुर रहे थे ॥ १५ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी इन्द्रजित्से लङ्का शोभने लगी, जैसे असमानपराक्रमी प्रकाशमान सूर्यसे आकाश शोभित होता है ॥ १६ ॥ तेजस्वी इन्द्रजित्ने युद्धभूमिमें जाकर अपने रथके

ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः । जुहुवे राक्षसश्रेष्ठो विधिवन्मन्त्रसत्तमैः ॥१८॥
स हविर्लाजसत्कारैर्माल्यगन्धपुरस्कृतैः । जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१९॥
शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः । लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥२०॥
स तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः । छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥२१॥
सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः । बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं यान्यदर्शयन् ॥२२॥
प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनसंनिभः । हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥२३॥
सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्रविशारदः । धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ॥२४॥
तस्मिन्नाहूयमानेऽस्त्रे हूयमाने च पावके । सार्कग्रहेन्दुनक्षत्रं वितत्रास नभःस्थलम् ॥२५॥

स पावकं पावकदीप्ततेजा हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ।
सचापबाणासिरथाश्वशूलः खेऽन्तर्दधेऽत्मानमचिन्त्यवीर्यः ॥२६॥

ततो हयरथाकीर्णं पताकाध्वजशोभितम् । निर्ययौ राक्षसबलं नर्दमानं युयुत्सया ॥२७॥
ते शरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः । तोमरैरङ्कुशैश्चापि वानरान्जघ्नुराहवे ॥२८॥
रावणिस्तु सुसंक्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य निशाचरान् । हृष्टा भवन्तो युध्यन्तु वानराणां जिघांसया ॥२९॥
ततस्ते राक्षसाः सर्वे गर्जन्तो जयकाङ्क्षिणः । अभ्यवर्षंस्ततो घोरान्वानरान्शरवृष्टिभिः ॥३०॥
स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि । रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान्विचकर्ष ह ॥३१॥

चारों ओर राक्षसोंको खड़ा कर दिया ॥ १७ ॥ अग्नितुल्य राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित् विधिपूर्वक मन्त्रोंके द्वारा अग्निमें हवन करने लगा ॥ १८ ॥ प्रतापी राक्षसराज माला, गन्ध, लावासे पूजा करके अग्निमें हविका हवन करने लगा ॥ १९ ॥ कुशके स्थानपर बाणोंका उसने परिस्तरण बनाया, बहेरेकी लकड़ी, रक्तवस्त्र और लोहेका स्रुवा बनाया (मारणकर्मके लिए इन्हींकी आवश्यकता होती है) ॥ २० ॥ तोमरके साथ कुश स्थानीय बाणोंसे उसने अग्निको फैलाया और जीवित काले बकरेका गला उसने पकड़ा ॥ २१ ॥ धूमहीन प्रज्वलित अग्निसे ज्वाला निकली, वे सब चिन्ह दिखायी पड़े जो विजयसूचक हैं ॥ २२ ॥ तपाये सोनेके समान अग्निशिखा दाहिनी ओरसे उठी और अग्निने स्वयं उठकर हविको ग्रहण किया ॥ २३ ॥ अस्त्रनिपुण उसने पुनः ब्रह्मासे ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा ली, और धनुष तथा अपने रथको उसने अभिमन्त्रित किया ॥२४॥ जब वह अस्त्रोंका संग्रह करने लगा और अग्निमें हवन करने लगा, तब सूर्य चन्द्रमा ग्रहनक्षत्रके साथ आकाश-मण्डल भयभीत हो गया ॥२५॥ इन्द्रके समान प्रभावशाली और अग्निके समान तेजस्वी इन्द्रजित्ने अग्निमें हवन करके धनुष, बाण, तलवार, रथ अश्व, शूलके साथ अपनेको आकाशमें छिपा लिया ॥२६॥ अनन्तर वह राक्षसी सेना युद्धकी इच्छासे गर्जन करती हुई लंकासे निकली। उस सेनामें घोड़े और रथ थे, रथ ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित थे ॥२७॥ वे राक्षस अनेक प्रकारके बाणोंसे, जो चित्रित थे, सजाये गये थे और बड़े वेगसे चलनेवाले थे, तोमर और अंकुशोंसे वानरोंको मारने लगे ॥ २८ ॥ उन राक्षसोंको देखकर क्रुद्ध इन्द्रजितने उनसे कहा—आपलोग प्रसन्न होकर वानरोंको मारनेके लिए उनसे युद्ध करें ॥२९॥ अनन्तर जय चाहनेवाले राक्षस गर्जते हुए भयानक रूपसे बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥३०॥ वह इन्द्रजित् राक्षसों-

ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः । अभ्यवर्षन्त सहसा रावणिं शैलपादपैः ॥३२॥
इन्द्रजित्तु तदा क्रुद्धो महातेजा महाबलः । वानराणां शरीराणि व्यधमद्रावणात्मजः ॥३३॥
शरेणैकेन च हरीन्नव पञ्च च सप्त च । बिभेद समरे क्रुद्धो राक्षसान्संप्रहर्षयन् ॥३४॥
स शरैः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषणैः । वानरान्समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयः ॥३५॥
ते भिन्नगात्राः समरे वानराः शरपीडिताः । पेतुर्मथितसंकल्पाः सुरैरिव महासुराः ॥३६॥
ते तपन्तमिवादित्यं घोरैर्बाणगभस्तिभिः । अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः संयुगे वानरर्षभाः ॥३७॥
ततस्तु वानराः सर्वे भिन्नदेहा विचेतसः । व्यथिता विद्रवन्ति स्म रुधिरेण समुक्षिताः ॥३८॥
रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविताः । नर्दन्तस्ते निवृत्तास्तु समरे सशिलायुधाः ॥३९॥
ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च शिलाभिश्च प्लवंगमाः । अभ्यवर्षन्त समरे रावणिं समवस्थिताः ॥४०॥
तं द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् । व्यपोहत महातेजा रावणिः समितिंजयः ॥४१॥
ततः पावकसंकाशैः शरैराशीविषोपमैः । वानराणामनीकानि बिभेद समरे प्रभुः ॥४२॥
अष्टादशशरैस्तीक्ष्णैः स विद्ध्वा गन्धमादनम् । विव्याध नवभिश्चैव नलं दूरादवस्थितम् ॥४३॥
सप्तभिस्तु महावीर्यो मैन्दं मर्मविदारणैः । पञ्चभिर्विशिखैश्चैव गजं विव्याध संयुगे ॥४४॥
जाम्बवन्तं तु दशभिर्नीलं त्रिंशद्भिरेव च । सुग्रीवमृषभं चैव सोऽङ्गदं द्विविदं तथा ॥४५॥

के साथ नालीक, नाराच, गदा और मूसलसे युद्धमें वानरोंको काटने लगा ॥ ३१ ॥ राक्षसोंके द्वारा आघात पानेवाले वानर शीघ्रही इन्द्रजित्पर पत्थर और वृक्षोंकी वर्षा करने लगे, क्योंकि येही उनके अस्त्र थे ॥३२॥ अनन्तर महातेजस्वी महाबली रावणपुत्र इन्द्रजित्ने क्रोध करके वानरोंके शरीरको व्यथित किया ॥ ३३ ॥ क्रोध करके उसने एक बाणसे नव पाँच और सात वानरोंको युद्धमें मारा, जिससे राक्षस प्रसन्न हुए ॥३४॥ वीर इन्द्रजित्ने सुवर्णविभूषित और सूर्यके समान चमकीले बाणोंसे वानरोंको मथित किया। वह तो स्वयं दुर्जय है, उसको कौन जीत सकता है ? ॥३५॥ बाणोंसे पीड़ित होजाने और शरीर कट जानेके कारण पृथिवीपर गिर पड़े, युद्ध करनेकी उनकी इच्छा जाती रही, जिस प्रकार देवताओंसे पीड़ित होकर असुर भूमिशायी हो गये थे ॥ ३६ ॥ वह भयङ्कर बाणरूपी किरणोंसे सूर्यके समान तप रहा था, उसपर प्रधान वानरोंने क्रोध करके आक्रमण किया ॥ ३७ ॥ पर वे वानरके शरीर कट जानेसे रुधिरसे भीग गये, दुःखी और बेहोश हो गये, वे युद्ध-क्षेत्रसे इधर-उधर भागने लगे ॥ ३८ ॥ वे वानर रामचन्द्रकी कार्यसिद्धिके लिए पराक्रम करके प्राण छोड़ देने तकको तयार थे। सांसारिक सुखोंकी आशा छोड़कर, गजकर उनलोगोंने पत्थरोंको अस्त्र बनाया ॥ ३९ ॥ वे वानर युद्धक्षेत्रमें ठहरकर वृक्षों, पर्वतशिखरों, पत्थरोंकी इन्द्रजित्पर वृष्टि करने लगे ॥ ४० ॥ पत्थरों और वृक्षोंकी उस प्राणहारी घोरवृष्टिको महातेजस्वी रणविजयी रावणपुत्रने हटा दिया ॥४१॥ अनन्तर वह अग्निके समान उज्ज्वल और सर्पके समान विषैले बाणोंसे वानरोंकी सेना छेदने लगा ॥ ४२ ॥ गन्धमादनको तीखे अठारह बाणोंसे भेद करके, दूर खड़े हुए नलको उसने नौ बाणोंसे वेधा ॥ ४३ ॥ महाबली इन्द्रजित्ने मर्म भेदनेवाले सात बाणोंसे मैन्दको और पाँच बाणोंसे गजको वेधा ॥ ४४ ॥ दस बाणोंसे जाम्बवान्को और तीस बाणोंसे उसने नीलको मारा। वानरराज सुग्रीव, द्विविद और

घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा । अन्यानपि तदा मुख्यान्वानरान्बहुभिः शरैः ॥४६॥
अर्दयामास संक्रुद्धः कालाग्निरिव मूर्च्छितः । स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥४७॥
वानराणामनीकानि निर्ममन्थ महारणे । आकुलां वानरीं सेनां शरजालेन पीड़िताम् ॥४८॥
हृष्टः स परया प्रीत्या ददर्श क्षतजोक्षिताम् । पुनरेव महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥४९॥
संसृज्य बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् । ममर्द वानरानीकं परितस्त्विन्द्रजिद्बली ॥५०॥

स्वसैन्यमुत्सृज्य समेत्य तूर्णं महाहवे वानरवाहिनीषु ।
अदृश्यमानः शरजालमुग्रं ववर्ष नीलाम्बुधरो यथाम्बु ॥५१॥
ते शक्रजिद्बाणविशीर्णदेहा मायाहता विस्वरमुन्नदन्तः ।
रणे निपेतुर्हरयोऽद्रिकल्पा यथेन्द्रवज्राभिहता नगेन्द्राः ॥५२॥
ते केवलं संददृशुः शिताग्रान्बाणान्रणे वानरवाहिनीषु ।
मायाविगूढं च सुरेन्द्रशत्रुं न चात्र तं राक्षसमप्यपश्यन् ॥५३॥
ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा सर्वा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ।
प्रच्छादयामास रविप्रकाशैर्विदारयामास च वानरेन्द्रान् ॥५४॥
स शूलनिस्त्रिंशपरश्वधानि व्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ।
सविस्फुलिङ्गोज्ज्वलपावकानि ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥५५॥

ततो ज्वलनसंकाशैर्बाणैर्वानरयूथपाः । ताडिताः शक्रजिद्बाणैः प्रफुल्ला इव किंशुकाः ॥५६॥

अङ्गदको वरमें मिले बाणोंके द्वारा निष्प्राण-सा कर दिया। अन्य प्रधान वानरोंको भी उसने अनेक बाणोंसे पीड़ित किया। प्रलयकालकी अग्निके समान वह क्रोधसे प्रवृद्ध था। शीघ्रगामी लक्ष्यपर ठीक सन्धान करके चलाये सूर्यसदृश बाणोंसे वानरसेनाको मथित करने लगा। उसने वानरी सेनाको बाणोंसे व्याकुल और पीड़ित कर दिया, अतएव रुधिरमें भींगी उस वानरी सेनाको वह बड़ी प्रसन्नतासे देखने लगा। राक्षसराजका पुत्र बली और तेजस्वी इन्द्रजित्ने बाण-वृष्टि और शस्त्र-वृष्टि करके वानरीसेनाको सब ओरसे मर्दित किया ॥४५—५०॥ उस महायुद्धमें वह इन्द्रजित् अपनी सेना छोड़कर वानरी सेनामें चला गया और छिपकर घोर बाणवर्षा करने लगा, जिसप्रकार नीला मेघ जलवृष्टि करता है ॥ ५१ ॥ इन्द्रजित्के बाणोंसे उनके शरीर छिन्न-भिन्न होगये, उसकी मायासे वानरोंकी बुद्धि मारी गयी, वे विकृत स्वरमें चिल्लाने लगे और पर्वतके समान विशाल वानर गिर पड़े, जिस प्रकार इन्द्रके वज्रसे आहत होकर पर्वत गिर पड़े थे ॥५२॥ वे वानर अपनी सेनापर गिरते हुए केवल तीखे बाणोंको ही देखते थे, मायाके द्वाराछिपे उस इन्द्रशत्रुको वे न देखसके ॥५३॥अनन्तर महात्मा उस राक्षसराजने सब दिशाओंको अपने तीखे बाणोंसे ढँक लिया और वानरोंको चीर दिया। वे बाण सूर्यके समान प्रकाशमान थे ॥ ५४ ॥ जलते अग्निके समान प्रभावाले शूल, तलवार, परशु आदिकी वानरी सेनापर वृष्टि करने लगा। ये अस्त्र उस अग्निके समान थे, जिससे चिनगारियाँ निकलती थीं ॥५५॥ इन्द्रजितके अग्नितुल्य बाणोंसे ताड़ित होकर वानरी सेनापति फूले हुए पलाश वृक्षके समान मालूम

उदीक्षमाणा गगनं केचिन्नेत्रेषु ताडिताः। शनैर्विविशुरन्योन्यं पेतुश्च जगतीतले ॥५७॥
हनूमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम्। जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥५८॥
मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गवयं तथा। केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥५९॥
सूर्याननं ज्योतिमुखं तथा दधिमुखं हरिम्। पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥६०॥
प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः। विव्याध हरिशार्दूलान्सर्वांस्तान्राक्षसोत्तमः ॥६१॥

स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान्निर्भिद्य बाणैस्तपनीयवर्णैः।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥६२॥
स बाणवर्षैरभिवृष्यमाणो धारानिपातानिव तानचिन्त्य।
समीक्षमाणः परमाद्भुतश्री रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥६३॥
असौ पुनर्लक्ष्मण राक्षसेन्द्रो महास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः।
निपातयित्वा हरिसैन्यमस्माञ्शितैः शरैरर्दयति प्रसक्तम् ॥६४॥
स्वयंभुवा दत्तवरो महात्मा समाहितोऽन्तर्हितभीमकायः।
कथं नु शक्यो युधि नष्टदेहो निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥६५॥
मन्ये स्वयंभूर्भगवानचिन्त्यस्तस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योऽस्य।
बाणावपातं त्वमिहाद्य धीमन्मया सहाव्यग्रमनाः सहस्व ॥६६॥
प्रच्छादयत्येष हि राक्षसेन्द्रः सर्वाधिकः सायकवृष्टिजालैः।
एतच्च सर्वं पतिताग्र्यशूरं न भ्राजते वानरराजसैन्यम् ॥६७॥

पड़ने लगे ॥५६॥ कई वानर आकाशकी ओर देख रहे थे, इन्द्रजितने उनकी आँखोंमें मारा, वे सब आपसमें चिमट गये और पृथिवीपर गिर पड़े ॥५७॥ हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद, गन्धमादन, जाम्बवान, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केसरि,हरिलोमा, विद्युद्दंष्ट, सूर्यमुख, ज्योतिषमुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल और कुमुद इन सब प्रधान वानरोंको इन्द्रजितने मायासे अभिमन्त्रित करके तीखे भाले, शूल तथा बाणोंसे मारा ॥ ५८—६१ ॥ गदा तथा सुवर्णसदृश बाणोंसे, प्रधान-प्रधान वाणोंसे, छेद करके राम और लक्ष्मणपर वह सूर्यकिरण-तुल्य बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ ६२ ॥ रामचन्द्रने उस बाणवृष्टिको जलवृष्टिके समान तुच्छ समझा, क्योंकि उनका धैर्य अद्भुत है और वे लक्ष्मणकी ओर देखकर बोले ॥६३॥ लक्ष्मण, इस इन्द्रशत्रु राक्षसराजने पाये हुए ब्रह्मास्त्रको चलाकर वानरी सेनाको गिरा दिया, अब यह हमलोगोंको तीखे बाणोंसे पीड़ित कर रहा है ॥६४॥ इस महात्माको इन्द्रसे वर मिला है, यह सावधान है और अपने विशाल शरीरको छिपाये हुआ है। यह इन्द्रशत्रु युद्धमें हमलोगोंके द्वारा कैसे मारा जा सकता है, क्योंकि इसका शरीर तो दीख नहीं पड़ता ॥६५॥ भगवान स्वयम्भुका प्रभाव अचिन्तनीय है, वे ही इस अस्त्रके आविष्कर्ता हैं और उन्हींका यह अस्त्र है। अतएव हे धीमन्, मेरे साथ बिना घबड़ाये इस बाणवृष्टिको सहो ॥ ६६ ॥ महाबली यह राक्षसराज सबको बाणवृष्टिके द्वारा ढाँक दे; पर प्रधान-प्रधान वानरोंके गिरनेसे यह वानरी

आवां तु दृष्ट्वा पतितौ विसंज्ञौ निवृत्तयुद्धौ हतहर्षरोषौ ।
ध्रुवं प्रवेक्ष्यत्यमरारिवासमसौ समासाद्य रणाग्र्यलक्ष्मीम् ॥६८॥
ततस्तु ताविन्द्रजितोऽस्त्रजालैर्बभूवतुस्तत्र तदा विशस्तौ ।
स चापि तौ तत्र विषादयित्वा ननाद हर्षाद्युधि राक्षसेन्द्रः ॥६९॥
ततस्तदा वानरसैन्यमेवं रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन ।
निषूदयित्वा सहसा विवेश पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥
संस्तूयमानः स तु यातुधानैः पित्रे च सर्वं हृषितोऽभ्युवाच ॥७०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥



चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

तयोस्तदासादितयो रणाग्रे मुमोह सैन्यं हरियूथपानाम् ।
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्बवन्तो न चापि किंचित्प्रतिपेदिरे ते ॥ १ ॥
ततो विषण्णं समवेक्ष्य सर्वं विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
उवाच शाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥
मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ ।
स्वयंभुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ यत्सादिताविन्द्रजितास्त्रजालैः ॥ ३ ॥

सेना शोभित नहीं हो रही है ॥ ६७ ॥ जब यह देखेगा कि हमलोग वेहोश होकर मारे गये हैं, युद्ध करना हमलोगोंने छोड़ दिया है, हमलोगोंमें न हर्ष है और न शोक, उस समय युद्धमें विजयलक्ष्मी पाकर यह लंकामें अवश्य जायगा ॥ ६८ ॥ अनन्तर वे दोनों इन्द्रजित्‌के बाणोंसे पीड़ित हुए। उन दोनोंको दुखी करके उसने हर्षसे गर्जन किया ॥ ६९ ॥ इस प्रकार युद्धमें वानरीसेना तथा रामलक्ष्मणको दुखी करके वह रावणपालित नगरीमें गया। उस समय राक्षस उसकी स्तुति करने लगे। उसने प्रसन्न होकर सब बातें रावणसे कहीं ॥ ७० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांडका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥



उस समय राम और लक्ष्मणके वेहोश हो जानेपर वानरीसेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी, कर्तव्य निश्चित करनेकी उसकी शक्ति जाती रही। सुग्रीव, नील, अङ्गद तथा जाम्बवान् आदि अपना कोई भी कर्तव्य निश्चित न कर सके ॥ १ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिमान् विभीषण उन सबको दुखी देखकर अत्यन्त उत्तम वचनोंसे, वानर राजवीरोंको आश्वासन देते हुए, बोले ॥ २ ॥ राम और लक्ष्मण दोनों वेहोश तथा दुःखी हो गये हैं, पर इसके लिए दुख करनेकी जरूरत नहीं है। इन्द्रजित्‌के अस्त्रोंसे जो ये दुखी किये गये हैं, वह ब्रह्माकी आज्ञाका पालन करनेके कारण। ये जानबूझकर ब्रह्माकी आज्ञाका पालन करते हैं, अतएव ये दुखी हैं। ये यदि चाहें तो

तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत्स्वयंभुवा ब्राह्ममोघवीर्यम्।
तन्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ निपातितौ कोऽत्र विषादकालः ॥ ४ ॥
ब्राह्ममस्त्रं ततो धीमान्मानयित्वा तु मारुतिः। विभीषणवचः श्रुत्वा हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
अस्मिन्नस्त्रहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम्। यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहे ॥ ६ ॥
तावुभौ युगपद्वीरौ हनूमद्राक्षसोत्तमौ। उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षे विचेरतुः ॥ ७ ॥
भिन्नलाङ्गूलहस्तोरुपादाङ्गुलिशिरोधरैः। स्रवद्भिः क्षतजं गात्रैः प्रस्रवद्भिः समन्ततः ॥ ८ ॥
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृताम्। शस्त्रैश्च पतितैर्दीप्तैर्ददृशाते वसुन्धराम् ॥ ९ ॥
सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम्। जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥१०॥
मैन्दं नलं ज्योतिमुखं द्विविदं चापि वानरम्। विभीषणो हनूमांश्च ददृशाते हतान्रणे ॥११॥
सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम्। अह्नः पञ्चमशेषेण वल्लभेन स्वयंभुवः ॥१२॥
सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम्। मार्गते जाम्बवन्तं च हनूमान्सविभीषणः ॥१३॥
स्वभावजरया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम्। प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम् ॥१४॥
दृष्ट्वा समभिसंक्रम्य पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्। कच्चिदार्य शरैस्तीक्ष्णैर्न प्राणा ध्वंसितास्तव ॥१५॥
विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुंगवः। कृच्छ्रादभ्युद्गिरन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
नैरृतेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्वाभिलक्षये। विद्धगात्रः शितैर्बाणैर्न त्वां पश्यामि चक्षुषा ॥१७॥

अपना दुख दूर कर सकते हैं ॥ ३ ॥ इस ब्रह्मास्त्रका बल अमोघ है, ब्रह्माने यह अस्त्र इन्द्रजित्को दिया है, उसीकी मर्यादाका पालन करनेके कारण आज भूमिशायी हुए हैं, फिर इसमें दुख करनेकी कौन बात है ॥४॥ विभीषणके वचन सुनकर तथा उस ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा स्वीकार कर विभीषणसे बोले ॥ ५ ॥ इन वानरी सेना में ब्रह्मास्त्रसे आहत होनेपर भी जो जीवित हैं, उनको हमलोग आश्वासन दें, उन्हें समझावें ॥६॥ उस समय हनुमान और राक्षसश्रेष्ठ विभीषण ये दोनों वीर साथ-साथ मशाल लेकर रणभूमिमें घूमने लगे ॥ ७ ॥ पूँछ, हाथ, कंधा, पैर, अंगुलि और गलेके कटजानेसे उनके शरीरसे रक्त निकल रहा था तथा वे पेशाब कर रहे थे ॥ ८ ॥ पर्वतके समान वानरोंके गिरनेसे वह भूमि भर गयी थी, भूमिपर पड़े हुए चमकीले अस्त्रोंसे भरी पृथिवीको उनलोगोंने देखा ॥ ९ ॥ सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी मैन्द, नल, ज्योतिमुख और द्विविद इन वानरोंको हनुमान और विभीषणने पृथिवीमें पड़े देखा ॥ १०, ११ ॥ दिनके पाँचवें भागमें अर्थात् सायंकालतक ब्रह्माके अस्त्रसे सड़सठ करोड़ वेगवान वानर मारे गये ॥ १२ ॥ समुद्रके समान विशाल उस सेनाको बाणसे पीड़ित देखकर हनुमान और विभीषण जाम्बवान्को ढूँढने लगे ॥१३॥ स्वभावतः बूढ़े तथा सैकड़ों बाणोंसे विधे ब्रह्मपुत्र जाम्बवानको उनलोगोंने देखा, बुझते हुए अग्निके समान वे उस समय देख पड़े ॥ १४ ॥ उनको देखकर तथा उनके समीप जाकर श्रेष्ठ विभीषण उनसे बोले। आर्य, तीखे बाणोंसे आपके प्राण तो नहीं निकल गये ? ॥१५॥ विभीषण के वचन सुनकर ऋक्षराज जाम्बवान बड़े कष्टसे किसी-किसी तरह उनसे बोले ॥१६॥ बली राक्षसराज आ जावो, मैं तुमको पहचानता हूँ, तीखे बाणोंसे मेरा शरीर छिद गया है, मैं आँखोंसे तुम्हें देख नहीं रहा हूँ ॥१७॥ अंजनी सुपुत्रवती हो, वायु सुपुत्रवान् हो,

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत । हनूमान्वानरश्रेष्ठः प्राणान्धारयते क्वचित् ॥१८॥
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः । आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात्पृच्छसि मारुतिम् ॥१९॥
नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे । आर्य संदर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः ॥२०॥
विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान्वाक्यमब्रवीत् । शृणु नैरृतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम् ॥२१॥
अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् । हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम् ॥२२॥
धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि । वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥२३॥
ततो वृद्धमुपागम्य विनयेनाभ्यवादयत् । गृह्य जाम्बवतः पादौ हनूमान्मारुतात्मजः ॥२४॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं तदा विव्यथितेन्द्रियः । पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते प्लवगोत्तमः ॥२५॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा हनूमन्तं स जाम्बवान् । आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥२६॥
नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा । त्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कंचन ॥२७॥
ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय । विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम् । हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनूमन्गन्तुमर्हसि ॥२९॥
ततः काञ्चनमत्युग्रमृषभं पर्वतोत्तमम् । कैलासशिखरं चात्र द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥३०॥
तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् । सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥३१॥
तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि संभवाः । द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्तीर्दिशो दश ॥३२॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान क्या जी रहे हैं ? ॥१८॥ जाम्बवानके वचन सुनकर विभीषण बोले—राम और लक्ष्मणको छोड़कर हनुमानको ही क्यों आप पूछ रहे हैं ॥१९॥ आर्य, राजा सुग्रीव अङ्गद तथा राम लक्ष्मणके प्रति आपने वह प्रेम न दिखाया, जो हनुमानके प्रति दिखाया है ॥२०॥ विभीषणके वचन सुनकर जाम्बवान बोले—राक्षस-श्रेष्ठ, आपसुनें, जिस कारण हनुमानके विषयमें आपसे मैं पूछ रहा हूँ ॥२१॥ जबतक हनुमान जीते हैं तबतक सेना मारी भी जाय तो भी वह जीवित ही है और उनके मारे जानेपर जीते हुए भी हमलोग मृतकके समान हैं ॥२२॥ अग्नि और वायुके समान पराक्रमी हनुमान यदि जीते हैं तो हमलोगोंके जीनेकी आशा की जा सकती है ॥ २३ ॥ अनन्तर वायुपुत्र हनुमानने वृद्ध जाम्बवानके पैर पकड़कर विनयपूर्वक उनको प्रणाम किया ॥ २४ ॥ हनुमानके वचन सुनकर व्यथितेन्द्रिय जाम्बवानने अपनेको पुनः जीवित समझा ॥ २५ ॥ तेजस्वी जाम्बवानने हनुमानसे कहा—वानरश्रेष्ठ, आओ, वानरोंकी रक्षा करो ॥२६॥ दूसरा कोई इसके लिए पर्याप्त पराक्रम नहीं रखता, तुम इनके पूरे मित्र हो, यह समय तुम्हारे पराक्रम करनेका है, दूसरे किसीको मैं इस योग्य नहीं देखता ॥ २७ ॥ भालु और वानरोंकी सेनाको प्रसन्न करो, पीड़ित राम और लक्ष्मणको भी नीरोग करो ॥ २८ ॥ हनुमान्, समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर बड़ी दूर चलकर तुमको पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्पर जाना चाहिये ॥ २९ ॥ शत्रुसूदन हनुमान तुम वहां बहुत ऊँचे स्वर्णमय ऋषभ और कैलास नामके पर्वतको देखोगे ॥ ३० ॥ उन दोनों पर्वतोंके बीचमें ओषधि-पर्वतको तुम देखोगे, उसपर सब ओषधियाँ हैं जो अपनी प्रभासे प्रदीप्त रहती हैं ॥ ३१ ॥ वानरश्रेष्ठ, उसके शिखरपर उत्पन्न चार ओषधियाँ हैं, जो अपने प्रकाशसे

मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि । सुवर्णकरणीं चैव संधानीं च महौषधीम् ॥३३॥
ताः सर्वा हनूमन्गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि । आश्वासय हरीन्प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥३४॥
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः । आपूर्यत बलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥३५॥
स पर्वततटाग्रस्थः पीडयन्पर्वतोत्तमम् । हनूमान्दृश्यते वीरो द्वितीय इव पर्वतः ॥३६॥
हरिपादविनिर्भग्नो निषसाद स पर्वतः । न शशाक तदात्मानं वोढुं भृशनिपीडितः ॥३७॥
तस्य पेतुर्नगा भूमौ हरिवेगाच्च जज्वलुः । शृङ्गाणि च व्यकीर्यन्त पीडितस्य हनूमता ॥३८॥
तस्मिन्संपीड्यमाने तु भग्नद्रुमशिलातले । न शेकुर्वानराः स्थातुं घूर्णमाने नगोत्तमे ॥३९॥
सा घूर्णितमहाद्वारा प्रभग्नगृहगोपुरा । लङ्का त्रासाकुला रात्रौ प्रनृत्येवाभवत्तदा ॥४०॥
पृथिवीधरसंकाशो निपीड्य पृथिवीधरम् । पृथिवीं क्षोभयामास सार्णवां मारुतात्मजः ॥४१॥
पद्भ्यां तु शैलमाविध्य वडवामुखवन्मुखम् । विवृत्योग्रं ननादोच्चैस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥४२॥
तस्य नानद्यमानस्य श्रुत्वा निनदमुत्तमम् । लङ्कास्था राक्षसव्याघ्रा न शेकुः स्पन्दितुं क्वचित् ॥४३॥
नमस्कृत्वा समुद्राय मारुतिर्भीमविक्रमः । राघवार्थे परं कर्म समीहत परंतपः ॥४४॥

सपुच्छमुद्यम्य भुजंगकल्पं विनम्य पृष्ठं श्रवणे निकुच्य ।
विवृत्य वक्त्रं वडवामुखाभमापुप्लुवे व्योम्नि स चण्डवेगः ॥४५॥

दसों दिशाओंको प्रकाशित करती रहती हैं ॥३२॥ उनके नाम ये हैं—मृतसंजीवनी, विशल्यकरिणी, सुवर्णकरणी और साधनी, ये चारों महौषधि हैं ॥ ३३ ॥ हनुमान, इन औषधियोंको लेकर तुम शीघ्र लौट आओ। वायुपुत्र, उन औषधियोंको देकर तुम इन वानरोंको प्रसन्न करो ॥ ३४ ॥ जाम्बवान्के वचन सुनकर वायुपुत्र हनुमान पराक्रमसे परिपूर्ण हो गये, जिस प्रकार वायुके झोंकेसे समुद्र भर जाता है ॥ ३५ ॥ वे पर्वतके शिखरपर खड़े हुए, जिससे पर्वत पीड़ित हुआ। उस समय हनुमान एक पर्वतके समान मालूम होते थे। हनुमानके पैरोंसे वह पर्वत ऐसा पीड़ित हुआ कि वह चूरचूर हो गया और वह अधिक पीड़ित होनेके कारण अपने शरीरको धारण न कर सका, अर्थात् वह खड़ा न रह सका ॥ ३७ ॥ हनुमानके वेगसे उस त्रिकूट पर्वतके वृक्ष पृथिवीपर गिरने और जलने लगे। हनुमानके द्वारा पीड़ित होनेसे उस पर्वतके शिखर बिखर गये ॥ ३८ ॥ हनुमानके वेगसे वह पर्वत पीड़ित हुआ, उसके वृक्ष और पत्थर गिर पड़े, वह श्रेष्ठ पर्वत घूमने लगा, अतएव वानर उसपर ठहर न सके ॥ ३९ ॥ उस रातको लंकापुरी भी भयभीत होकर मानो नाचने लगी, उस नगरीके गृह तथा गोपुर टूट गये और बड़े-बड़े फाटक हिलने लगे ॥ ४० ॥ पर्वत-सदृश वायुपुत्र हनुमानने उस पर्वतको पीड़ित करके समुद्र सहित पृथिवीको क्षुभित किया ॥ ४१ ॥ पैरोंसे पृथिवीको दबाकर वड़वामुखके समान अपना भयानक मुख बाकर हनुमानने जोरसे गर्जन किया, जिससे राक्षस डर गये ॥ ४२ ॥ हनुमानके गर्जनका घोर शब्द सुनकर लंकाके श्रेष्ठ राक्षस ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये, वे हिल भी न सके ॥ ४३ ॥ भीमपराक्रमी हनुमानने समुद्रको नमस्कार करके रामचन्द्रके हितके लिए दुष्कर काम करनेकी इच्छा की ॥ ४४ ॥ सर्प-सदृश पूँछको ऊपर उठाकर, पीठ नवाकर, कानोंको खड़ा कर, वड़वामुखके सदृश मुखको बाकर, प्रचण्डवेगसे हनुमान आकाशमें उड़े ॥ ४५ ॥ हनुमानके गमनवेगसे वृक्षसमूह, पर्वत-

स वृक्षखण्डांस्तरसा जहार शैलान्शिलाः प्राकृतवानरांश्च ।
बाहूरुवेगोद्धतसंप्रणुन्नास्ते क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः ॥४६॥
स तौ प्रसार्योरगभोगकल्पौ भुजौ भुजंगारिनिकाशवीर्यः ।
जगाम शैलं नगराजमग्र्यं दिशः प्रकर्षन्निव वायुसूनुः ॥४७॥
स सागरं घूर्णितवीचिमालं तदम्भसा भ्रामितसर्वसत्त्वम् ।
समीक्ष्यमाणः सहसा जगाम चक्रं यथा विष्णुकराग्रमुक्तम् ॥४८॥
स पर्वतान्पक्षिगणान्सरांसि नदीस्तटाकानि पुरोत्तमानि ।
स्फीताञ्जनांस्तानपि संप्रवीक्ष्य जगाम वेगात्पितृतुल्यवेगः ॥४९॥
आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतश्रमः । हनूमांस्त्वरितो वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥५०॥
जवेन महता युक्तो मारुतिर्वातरंहसा । जगाम हरिशार्दूलो दिशः शब्देन नादयन् ॥५१॥
स्मरञ्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्भीमविक्रमः । ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः ॥५२॥
नानाप्रस्रवणोपेतं बहुकंदरनिर्झरम् । श्वेताभ्रचयसंकाशैः शिखरैश्चारुदर्शनैः ॥
शोभितं विविधैर्वृक्षैरगमत्पर्वतोत्तमम् ॥५३॥
स तं समासाद्य महानगेन्द्रमतिप्रवृद्धोत्तमहेमशृङ्गम् ।
ददर्श पुण्यानि महाश्रमाणि सुरर्षिसङ्घोत्तमसेवितानि ॥५४॥
स ब्रह्मकोशं रजतालयं च शक्रालयं रुद्रशरप्रमोक्षम् ।
हयाननं ब्रह्मशिरश्च दीप्तं ददर्श वैवस्वतकिंकरांश्च ॥५५॥

शिखर, बड़े बड़े पर्वत और त्रिकूटपर रहनेवाले छोटे-छोटे वानर उड़े । बाँह और जंघाके वेगसे उड़े हुए वे जलमें गिर पड़े, क्योंकि उनका अपना वेग क्षीण होगया था ॥ ४६ ॥ गरुड़के समान पराक्रमी हनुमान सर्पके समान अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर हिमवान पर्वत और दिशाओंको छोड़ते हुए आगे चले ॥ ४७ ॥ वे हनुमान समुद्रको देखते हुए आगे चले । उस समुद्रकी तरंगे जलके साथ घूम रही थीं और समुद्रके समस्त प्राणी घूम रहे थे । विष्णुके हाथसे छूटे चक्रके समान हनुमान चले ॥ ४८ ॥ वायुके समान वेगवाले हनुमान पर्वतों, पक्षियों, झीलों, नदियों, तालाबों, श्रेष्ठ नगरों तथा समृद्ध जनपदोंको देखते हुए वेगसे चले ॥ ४९ ॥ पिताके समान वेगवाले वीर हनुमान बिना थकावटके सूर्यमार्गसे वेगपूर्वक चले ॥ ५० ॥ वायुतुल्य बड़े वेगसे वानरश्रेष्ठ हनुमान दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए चले ॥ ५१ ॥ भीमविक्रम वायुपुत्र हनुमानने जाम्बवान्के वचन स्मरण किये और शीघ्र ही हिमवान पर्वतको देखा ॥ ५२ ॥ अनेक वृक्षोंसे शोभित उस पर्वतश्रेष्ठपर हनुमान पहुँचे, उसमेंसे अनेक नदियाँ निकली हुई थीं, वहाँ अनेक कन्दराएँ और झरने थे, श्वेत मेघोंके समान सुन्दर पर्वतसे वह शोभित था ॥ ५३ ॥ उस पर्वतका शिखर सुवर्णका था और बहुत ऊँचा था, उस पर्वतपर जाकर हनुमानने बड़े-बड़े आश्रम देखे, जहाँ देवता और ऋषियोंका समूह निवास करता था ॥ ५४ ॥ हनुमानने वहाँ ब्रह्माका घर, कैलास, इन्द्रासन, शिवके बाण-अभ्यासका स्थान, हयग्रीवस्थान, शिवके द्वारा काटे ब्रह्माके सिर फेंकनेका स्थान और सूर्यके परिचारकोंको देखा ॥५५॥

वह्न्यालयं वैश्रवणालयं च सूर्यप्रभं सूर्यनिबन्धनं च ।
ब्रह्मालयं शंकरकार्मुकं च ददर्श नाभिं च वसुंधरायाः ॥५६॥
कैलासमुग्रं हिमवच्छिलां च तं वै वृषं काञ्चनशैलमग्र्यम् ।
प्रदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तं ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम् ॥५७॥
स तं समीक्ष्यानलराशिदीप्तं विसिस्मिये वासवदूतसूनुः ।
आप्लुत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥५८॥
स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः । दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन्मारुतात्मजः ॥५९॥
महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे । विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥६०॥
स ता महात्मा हनुमानपश्यंश्चुकोप रोषाच्च भृशं ननाद ।
अमृष्यमाणोऽग्निसमानचक्षुर्महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥६१॥
किमेतदेवं सुविनिश्चितं ते यद्राघवे नासि कृतानुकम्पः ।
पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥६२॥
स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम् ।
विकीर्णकूटं ज्वलिताग्रसानुं प्रगृह्य वेगात्सहसोन्ममाथ ॥६३॥
स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात वित्रास्य लोकान्ससुरान्सुरेन्द्रान् ।
संस्तूयमानः खचरैरनेकैर्जगाम वेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥६४॥

इसीप्रकार अग्नि और वरुणके स्थान उन्होंने देखे, सूर्यके समान चमकीला बारह सूर्योंका स्थान, ब्रह्माका स्थान, शिवके बाण, पिनाकका स्थान और पृथिवीकी नाभि उन्होंने वहाँ देखी ॥ ५६ ॥ सुवर्णशिलावाले श्रेष्ठ कैलासपर्वतको, शिवको, हिमवत्शिलाको, (कैलासके समीपस्थ एक स्थान जहाँ शिवने तपस्या की थी), शिवके वाहन उस बैलको, प्रकाशमान समस्त ओषधियोंसे प्रकाशित, समस्त ओषधियोंके उत्पत्तिस्थान उस पर्वतश्रेष्ठको हनुमानने देखा ॥ ५७ ॥ वायुपुत्र हनुमान उस पर्वतको अग्नि-समूहसे प्रकाशित देखकर विस्मित हुए। उस श्रेष्ठ पर्वतपर कूदकर वे ओषधियोंको ढूँढ़ने लगे ॥ ५८ ॥ महाकपि हनुमान एक हजार योजन रास्ता तै करके, दिव्यौषधियोंके स्थान, उस पर्वतपर विचरण करने लगे ॥५९॥ उस श्रेष्ठ पर्वतकी सब ओषधियाँ, यह जानकर कि हमें लेनेके लिये यह आया है, अदृश्य हो गयीं ॥६०॥ महात्मा हनुमानने उन ओषधियोंको न देखकर क्रोध किया और क्रोधसे गर्जन किया तथा ओषधियोंके अपराध न सहकर अग्निके समान आँखें करके वे उस पर्वतसे बोले ॥ ६१ ॥ तुमने रामचन्द्रपर कृपा न करनेका यदि निश्चय कर लिया है तो आज मेरे बाहुबलसे परास्त होकर अपनेको बिखरा हुआ देखो ॥ ६२ ॥ हनुमानने झपटकर उस पर्वतके शिखरको शीघ्रही उखाड़ दिया, जिसपर वृक्ष थे, हाथी थे, सुवर्णकी खान थी, अनेक तरहकी धातु थीं, जिसके ऊपरका भाग प्रकाशित हो रहा था तथा जिसके शिखर फैले हुए थे ॥ ६३ ॥ गरुड़के समान प्रचण्ड वेगवाले हनुमान उस पर्वतशिखरको उखाड़कर आकाशमें चले गये, इससे समस्त लोक देवता और इन्द्र डर गये तथा अनेक आकाशगामी हनुमानकी स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥ सूर्यके समान

स भास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तं भास्कराभं शिखरं प्रगृह्य ।
बभौ तदा भास्करसंनिकाशो रवेः समीपे प्रतिभास्कराभः ॥६५॥
स तेन शैलेन भृशं रराज शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ।
सहस्रधारेण सपावकेन चक्रेण खे विष्णुरिवार्पितेन ॥६६॥
तं वानराः प्रेक्ष्य तदा विनेदुः स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ।
तेषां समुत्कृष्टरवं निशम्य लङ्कालया भीमतरं विनेदुः ॥६७॥
ततो महात्मा निपपात तस्मिञ्शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य विभीषणं तत्र च सस्वजे सः ॥६८॥
तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥६९॥
सर्वे विशल्या विरुजाः क्षणेन हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः ।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः ॥७०॥
यदा प्रभृति लङ्कायां युध्यन्ते हरिराक्षसाः । तदा प्रभृति मानार्थमाज्ञया रावणस्य च ॥७१॥
ये हन्यन्ते रणे तत्र राक्षसाः कपिकुञ्जरैः । हता हतास्तु क्षिप्यन्ते सर्व एव तु सागरे ॥७२॥
ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु तमोषधीशैलमुदग्रवेगः ।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव पुनश्च रामेण समाजगाम ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

प्रकाशमान उस पर्वतशिखरको लेकर हनुमान सूर्यमार्गमें गये। उस समय हनुमान सूर्यके समीपस्थ दूसरे सूर्यके समान मालूम होने लगे ॥६५॥ वायुपुत्र हनुमान उस पर्वतके कारण पर्वतके समान मालूम होने लगे, अग्निके समान प्रकाशमान सहस्र धारावाले चक्रको हाथमें लिएहुए विष्णुके समान वे उस समय आकाशमें शोभित हुए ॥६६॥ हनुमानको आया देखकर वानरोंने गर्जन किया, हनुमानने भी वानरोंको देखकर प्रसन्नतासे गर्जनकिया। वानरोंका गर्जन सुनकर लंकामें रहनेवालोंने भयानक गर्जनकिया ॥६७॥ अनंतर महात्मा हनुमान उस पर्वतपर वानरी सेनाके बीचमें उतरे। श्रेष्ठ वानरोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उन्होंने विभीषणका आलिङ्गन किया ॥ ६८ ॥ वे दोनों राजपुत्र राम और लक्ष्मण भी उन ओषधियोंकी गन्ध सूँघकर अच्छे हो गये तथा अन्य श्रेष्ठ वानर भी अच्छे हुए ॥६९॥ वे सभी वानरश्रेष्ठ, जो मारे गये थे, उनश्रेष्ठ ओषधियोंकी गन्धसे क्षणमात्रमें ही अच्छे हो गये, उनकी पीड़ा जाती रही। मालूम होता था कि मानों घरसे सोकरके उठे आ रहे हैं ॥ ७० ॥ जबसे लंकामें राक्षस और वानर लड़नेलगे, राक्षसोंके सम्मानके लिए जो राक्षस वानरोंके द्वारा मारे जाते थे रावणकी आज्ञासे वे समुद्रमें छोड़ दिये जाते थे; इसीसे उन दिव्य ओषधियोंसे उन्हें लाभ न हुआ ॥ ७१, ७२ ॥ अनन्तर प्रचण्डवेगवाले वायुपुत्र हनुमान उस ओषधि-पर्वतको शीघ्रतापूर्वक हिमवान् पर्वतपर ले गये और पुनः वहाँसे लौटकर रामचन्द्रसे मिले ॥ ७३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुग्रीवो वानरेश्वरः। अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापि हनूमन्तमिदं वचः ॥ १ ॥
यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः। नेदानीमुपनिर्हारं रावणो दातुमर्हति ॥ २ ॥
ये ये महाबलाः सन्ति लघवश्च प्लवंगमाः। लङ्कामभिपतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥
ततोऽस्तं गत आदित्ये रौद्रे तस्मिन्निशामुखे। लङ्कामभिमुखाःसोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥
उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुताः। आरक्षस्था विरूपाक्षाः सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥
गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च। प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम् ॥ ६ ॥
तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक्तदा। प्रासादाः पर्वताकाराः पतन्ति धरणीतले ॥ ७ ॥
अगुरुर्दह्यते तत्र परं चैव सुचन्दनम्। मौक्तिका मणयः स्निग्धा वज्रं चापि प्रवालकम् ॥८॥
क्षौमं च दह्यते तत्र कौशेयं चापि शोभनम्। आविकं विविधं चौर्णं काञ्चनं भाण्डमायुधम् ॥ ९ ॥
नानाविकृतसंस्थानं वाजिभाण्डपरिच्छदम्। गजग्रैवेयकक्ष्याश्च रथभाण्डांश्च संस्कृतान् ॥१०॥
तनुत्राणि च योधानां हस्त्यश्वानां च चर्म च। खड्गा धनूंषि ज्यावाणास्तोमराङ्कुशशक्तयः ॥११॥
रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु। मुक्तामणिविचित्रांश्च प्रासादांश्च समन्ततः ॥१२॥
विविधानस्त्रसंघातानग्निर्दहति तत्र वै। नानाविधान्गृहांश्चित्रान्ददाह हुतभुक्तदा ॥१३॥
आवासान्राक्षसानां च सर्वेषां गृहगृध्नुनाम्। हेमचित्रतनुत्राणां स्रग्भाण्डाम्बरधारिणाम् ॥१४॥

अनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव हनुमानसे अर्थयुक्त वचन इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ कुम्भकर्ण मारा गया, रावणके पुत्र भी मारे गये, अब इस समय रावण नगररक्षा नहीं कर सकता ॥ २ ॥ जो वानर बलवान और क्षिप्रकारी हैं, वे सब मशाल लेकर लंकापर आक्रमण करें ॥ ३ ॥ अनन्तर सूर्यके अस्त होनेपर उस भयानक सन्ध्याके समय वानर मशाल लेकर लंकाकी ओर चले ॥ ४ ॥ हाथमें मशाल लेकर वानरोंने चारों ओरसे आक्रमण किया, इससे विह्वल आँख वाले द्वारपाल वहाँसे शीघ्रही भाग गये ॥५॥ उन वानरोंने नगरद्वार, चारदीवारीके ऊपरके घर, गलियाँ, छोटी गलियाँ तथा महलोंमें प्रसन्न होकर आग लगा दी ॥ ६ ॥ राक्षसोंके हजारों घर आगसे जला डाले और पर्वतके समान ऊँचे महल पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ७ ॥ लंकामें आग लगनेसे अगरु, उत्तम चन्दन, मोती, चमकीले मणि, हीरा और मूँगा गलने लगे ॥ ८ ॥ बल्कल वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र जलने लगे, कम्बल, दुशाले, सोनेके गहने तथा अस्त्र शस्त्र जलने लगे ॥९॥ घोड़ोंके गहने जो अनेक तरहके बने हुए थे, काठी आदि हाथियोंके गलेके गहने, उनका बन्धन, रथ सजानेके उत्तम उपकरण, योद्धाओंका कवच, हाथी और घोड़ोंपर बिछानेका चर्म, तलवार, धनुष, धनुषकी रस्सी, बाण, तोमर, अंकुश और शक्ति आदि जलने लगे ॥ १०,११ ॥ कम्बल, चामर, व्याघ्रचर्म, कस्तूरी, मुक्तामणि आदिसे सज्जित महल तथा अनेक प्रकारके अस्त्रोंके संग्रहको अग्निने लङ्कामें जलाया। उस समय अग्निने अनेक प्रकारके घरोंको, जो सुन्दर सज्जित थे, जलाया ॥ १२, १३ ॥ समस्त गृहस्थ राक्षसोंके घर अग्निने जलाया, वे राक्षस सुवर्ण-भूषित कवच पहने हुए थे, माला, भूषण और उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे ॥१४॥

सीधुपानचलाक्षाणां मदवह्वलगामिनाम् । कान्तालम्बितवस्त्राणां शत्रुसंजातमन्युनाम् ॥१५॥
गदाशूलासिहस्तानां खादतां पिबतामपि । शयनेषु महार्हेषु प्रसुप्तानां प्रियैः सह ॥१६॥
त्रस्तानां गच्छतां तूर्णं पुत्रानादाय सर्वतः । तेषां शतसहस्राणि तदा लङ्कानिवासिनाम् ॥१७॥
अदहत्पावकस्तत्र जज्वाल च पुनः पुनः । सारवन्ति महार्हाणि गम्भीरगुणवन्ति च ॥१८॥
हेमचन्द्रार्धचन्द्राणि चन्द्रशालोत्तमानि च । तत्र चित्रगवाक्षाणि साधिष्ठानानि सर्वशः ॥१९॥
मणिविद्रुमचित्राणि स्पृशन्तीव दिवाकरम् । क्रौञ्चबर्हिणवर्णानां भूषणानां च निःस्वनैः ॥२०॥
नादितान्यचलाभानि वेश्मान्यग्निर्ददाह स । ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ॥२१॥
विद्युद्भिरिव नद्धानि मेघजालानि घर्मगे । ज्वलनेन परीतानि गृहाणि प्रचकाशिरे ॥२२॥
दावाग्निदीप्तानि यथा शिखराणि महागिरेः । विमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना वराङ्गनाः ॥२३॥
त्यक्ताभरणसंयोगा हाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः । तत्र चाग्निपरीतानि निपेतुर्भवनान्यपि ॥२४॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि महागिरेः । तानि निर्दह्यमानानि दूरतः प्रचकाशिरे ॥२५॥
हिमवच्छिखराणीव दह्यमानानि सर्वशः । हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥२६॥
रात्रौ सा दृश्यते लङ्का पुष्पितैरिव किंशुकैः । हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ॥
बभूव लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णवः ॥२७॥

शराब पीनेसे उनकी आँखे चंचल हो गयी थीं, नशेसे अलसाये वे चल रहे थे, उनके वस्त्र स्त्रियोंने उठाये थे और वे शत्रुपर क्रोध किये हुए थे ॥१५॥ कई गदा, शूल, तलवार लिये हुए थे, कोई रक्त पी रहा था, और कई अपनी प्रिय स्त्रियोंके साथ सोये हुए थे ॥१६॥ डरे हुए पुत्रोंको लेकर भागते हुए सैकड़ों हजारों लंका-वासियोंको अग्निने जलाया ॥ १७ ॥ लंकामें जलती हुई अग्नि पुनः पुनः प्रदीप्त हो उठती थी। अग्निने लंकाके घर जलाये, जो धनसे पूर्ण थे, बहुमूल्य थे, जिनमें बहुमूल्य पलङ्ग रखे हुए थे और जो स्वयं सुन्दर थे, जिनमें सुवर्णसे पूर्णचन्द्र और अर्धचन्द्रके आकारके चन्द्रशाला (छतपरका घर) बनी हुई थी। चित्रित खिड़कियाँ तथा वहाँकी अन्य वस्तु, जो गृह मणि विद्रुम आदि से चित्रित थे, अपनी ऊँचाईसे जो सूर्यको छूते थे, क्रौंच, तथा मयूरकी नाईं भूषणोंके शब्दसे जो घर सदा प्रतिध्वनित होते रहते थे, जो पर्वतके समान ऊँचे थे उन घरोंको अग्निने जलाया। उस समय आगसे जलते हुए तोरण प्रकाशित हुए ॥१८-२१॥ आगसे जलते हुए लंकाके घर ऐसे मालूम होते थे, मानों ग्रीष्मऋतुमें मेघसमूह बिजुलियोंसे बाँध दिये गये हैं ॥ २२ ॥ मालूम होता था कि हिमवानके शिखर दावानलसे जल रहे हैं। सतमहले मकानमें सोई हुईं सुंदरी स्त्रियाँ जलने लगीं और शरीरसे गहने फेंककर हाहाकार करने लगीं। वहाँ लंकामें आगसे जलकर घर गिरने लगे ॥ २३, २४ ॥ वे इन्द्रके वज्रसे कटकर गिर गये पर्वतोंके शिखरके समान मालूम पड़ते थे। जलते हुए वे गृह दूरसे, जलते हुए हिमवानके शिखरके समान मालूम पड़ते थे। अटारियोंके आगेका भाग जल रहा था, किसीसे ज्वाला निकल रही थी, इस कारण उस रातको लंका पुष्पित पलाश वृक्षके समान मालूम पड़ती थी। हाथीवानोंने हाथी खोल दिये, घोड़े खुद खुल गये, इससे लंका प्रलयकालके समुद्रके समान मालूम पड़ती थी, जिसमें जल-जन्तु चारों ओर घूमने लगते हैं ॥ २५—२७ ॥

अश्वं मुक्तं गजो दृष्ट्वा कचिद्भीतोऽपसर्पति । भीतो भीतं गजं दृष्ट्वा कचिदश्वो निवर्तते ॥२८॥
लङ्कायां दह्यमानायां शुशुभे च महोदधिः । छायासंसक्तसलिलो लोहितोद इवार्णवे ॥२९॥
सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्दीपिता पुरी । लोकस्यास्य क्षये घोरे प्रदीप्तेव वसुंधरा ॥३०॥
नारीजनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः । स्वनो ज्वलनतप्तस्य शुश्रुवे शतयोजनम् ॥३१॥
प्रदग्धकायानपरान्राक्षसान्निर्गतान्बहिः । सहसा ह्युत्पतन्ति स्म हरयोऽथ युयुत्सवः ॥३२॥
उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निःस्वनम् । दिशो दश समुद्रं च पृथिवीं च व्यनादयत् ॥३३॥
विशल्यौ च महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ । असंभ्रान्तौ जगृहतुस्ते उभे धनुषी वरे ॥३४॥
ततो विस्फारयामास रामश्च धनुरुत्तमम् । बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः ॥३५॥
अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन्महत् । भगवानिव संक्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः ॥३६॥
उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निःस्वनम् । ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दावति रामस्य सुश्रुवे ॥३७॥
वानरोद्घुष्टघोषश्च राक्षसानां च निःस्वनः । ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप दिशो दश ॥३८॥
तस्य कार्मुकनिर्मुक्तैः शरैस्तत्पुरगोपुरम् । कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमपतद्भुवि ॥३९॥
ततो रामशरान्दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च । संनाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥४०॥
तेषां संनह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् । शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ॥४१॥
आदिष्टा वानरेन्द्रास्ते सुग्रीवेण महात्मना । आसन्नं द्वारमासाद्य युध्यध्वं च प्लवंगमाः ॥४२॥

खुले घोड़ोंको देखकर हाथी डरकर कहीं अलग हट जाता है और घोड़ा भी हाथीको डरा देखकर डरकर लौट जाता है ॥२८॥ लंकाके जलनेके समय समुद्र शोभने लगा, मानो जलवाले समुद्रमें लाल छाया पड़ी हो ॥ २९ ॥ वानरोंके द्वारा जलायी लंकापुरी एकही मुहूर्तमें ऐसी हो गयी मानो प्रलयकालमें सबके भयंकर विनाशके लिए पृथिवी जल रही हो ॥ ३० ॥ धूएँसे व्याकुल और आगसे तपी हुई स्त्रियोंके चीत्कारके शब्द सौ योजनतक सुनायी पड़े ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर कई राक्षस; जिनके शरीर जल गये थे वे, लंकासे बाहर निकले और युद्धकी इच्छासे वानरोंने उनका सामना किया ॥ ३२ ॥ राक्षसों और वानरोंके गर्जनसे दशों दिशाएँ समुद्र और पृथिवी सब प्रतिध्वनित हुए ॥ ३३ ॥ उस समयतक महात्मा राम और लक्ष्मण दोनों अच्छे हो गये थे, उन्होंने बिना घबड़ाये उत्तम धनुष उठाये ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रने उत्तम धनुषका टंकार किया, जिसका तुमुल शब्द राक्षसोंके लिये भयप्रद हुआ ॥ ३५ ॥ धनुषको ध्वनित करते हुए रामचन्द्र ऐसे मालूम पड़ते थे, जैसे भगवान शिव क्रोधकरके वेदमय धनुष ध्वनित कर रहे हों ॥ ३६ ॥ वानरोंकी घोषणा और राक्षसोंका चीत्कार इन दोनों शब्दोंको दबाकर रामचन्द्रके धनुषका टंकार सुनायी पड़ा ॥ ३७ ॥ वानरोंकी घोषणाका शब्द, राक्षसोंका चीत्कार और रामचन्द्रके धनुषका शब्द, ये तीनों शब्द, तीनों दिशाओंमें फैल गये ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रके धनुषसे छूटे हुए बाणोंने कैलासशिखरके समान लंकापुरीके गोपुरको पृथिवीमें गिरा दिया ॥ ३९ ॥ रामचन्द्रके बाणोंको राक्षसोंके घरों तथा विमानोंपर देखकर राक्षसपतियोंने अधिक उद्योग करना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ युद्धके लिये तय्यार होनेवाले और सिंहनाद करनेवाले राक्षसोंके लिये वह रात कालरात्रिके समान हुई ॥ ४१ ॥ महात्मा सुग्रीवने वानरोंको आज्ञा दी कि पासवाले द्वारपर जाकर

यश्च वो वितथं कुर्यात्तत्र तत्राप्युपस्थितः । स हन्तव्योऽभिसंप्लुत्य राजशासनदूषकः ॥४३॥
तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु । स्थितेषु द्वारमाश्रित्य रावणं क्रोध आविशत् ॥४४॥
तस्य जृम्भितविक्षेपाद्व्यामिश्रा वै दिशो दश । रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥४५॥
स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ । प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥४६॥
यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा । निर्ययुः कौम्भकर्णाभ्यां सह रावणशासनात् ॥४७॥
शशास चैव तान्सर्वान्राक्षसान्स महाबलान् । राक्षसा गच्छतात्रैव सिंहनादं च नादयन् ॥४८॥
ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः । लङ्कायाः निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः ॥४९॥
रक्षसां भूषणस्थाभिर्भाभिः स्वाभिश्च सर्वशः । चक्रुस्ते सप्रभं व्योम हरयश्चाग्निभिः सह ॥५०॥
तत्र ताराधिपस्याभा ताराणां भा तथैव च । तयोराभरणाभा च ज्वलिता द्यामभासयत् ॥५१॥
चन्द्राभा भूषणाभा च ग्रहाणां ज्वलिता च भा । हरिराक्षससैन्यानि भ्राजयामास सर्वतः ॥५२॥
तत्र चार्धप्रदीप्तानां गृहाणां सागरः पुनः । भाभिः संसक्तसलिलश्चलोर्मिः शुशुभे भृशम् ॥५३॥
पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् । भीमाश्वरथमातङ्गं नानापत्तिसमाकुलम् ॥५४॥
दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् । तद्राक्षसबलं भीमं घोरविक्रमपौरुषम् ॥५५॥
ददृशे ज्वलितप्रासं किङ्किणीशतनादितम् । हेमजालाचितभुजं व्यावेष्टितपरश्वधम् ॥५६॥

तुमलोग युद्ध करो ॥ ४२ ॥ भिन्न-भिन्न स्थानोंपर उपस्थित होनेपर जो कोई आपलोगोंकी आज्ञा न माने उसके पास जाकर आपलोग उसे मार डालें, क्योंकि उसने राजाज्ञाका उल्लंघन किया है ॥ ४३ ॥ जलती मशाल हाथमें लेकर वानर सेनापति द्वारोंको रोककर खड़े हो गये, यह देखकर रावणको क्रोध आया ॥ ४४ ॥ रावणने जँभाईसे अङ्ग मरोड़े, जिसका शब्द दसों दिशाओंमें फैल गया। उसके अङ्गोंमें शरीरधारी रुद्रके क्रोधके समान क्रोध दीख पड़ा ॥ ४५ ॥ क्रोध करके रावणने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ और निकुम्भको अनेक राक्षसोंके साथ भेजा ॥ ४६ ॥ रावणकी आज्ञासे कुम्भकर्णके पुत्रोंके साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कम्पन भी गये ॥ ४७ ॥ महाबली उन सब राक्षसोंको रावणने सिंहनाद करके इस प्रकार समझाया—राक्षसो ! तुमलोग इसी समय जाओ ॥ ४८ ॥ रावणकी आज्ञासे वे राक्षस जलते हुए अस्त्र लेकर बार-बार गर्जन करते हुए लंकासे निकले ॥ ४९ ॥ राक्षसोंने अपने भूषणोंसे निकलनेवाली प्रभासे और वानरोंने अग्निकी प्रभासे आकाशको प्रभायुक्त कर दिया ॥ ५० ॥ चन्द्रमा और नक्षत्रोंके प्रकाश, दोनों सेनाओंका प्रकाश, इन सब प्रकाशोंने मिलकर समस्त आकाशको खूब प्रकाशित किया ॥ ५१ ॥ चन्द्रमा, राक्षसोंके गहने तथा नक्षत्रोंकी प्रभासे वानर और राक्षसोंकी सेना प्रकाशित हुई ॥ ५२ ॥ आधे जले हुए घरोंकी आभा, समुद्रकी चञ्चल लहरियोंपर पड़ी, जिससे समुद्रकी शोभा बढ़ गयी ॥ ५३ ॥ राक्षसोंकी वह सेना ध्वजा और पताकासे शोभित थी, सैनिकोंके पास उत्तम तलवारें और परशु थे, बड़े घोड़े, रथ और हाथी उस सेनामें थे और बहुतसे पैदल थे ॥ ५४ ॥ चमकीले शूल, गदा, तलवार, भाले, तोमर और धनुष थे, इस प्रकार वह पराक्रमी और पुरुषार्थी राक्षसोंकी सेना बड़ी भयानक मालूम होती थी ॥ ५५ ॥ उस सेनामें जलते हुए भाले थे, जिनमें

व्याघूर्णितमहाशस्त्रं बाणसंसक्तकार्मुकम् । गन्धमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥५७॥
घोरं शूरजनाकीर्णं महाम्बुधरनिःस्वनम् । तद्दृष्ट्वा बलमायातं राक्षसानां दुरासदम् ॥५८॥
संचचाल प्लवंगानां बलमुच्चैर्ननाद च । जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद्बलं रक्षसां महत् ॥५९॥
अभ्ययात्प्रत्यरिबलं पतंगा इव पावकम् । तेषां भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ॥६०॥
राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयः परमशोभत । तत्रोन्मत्ता इवोत्पेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः ॥६१॥
तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान् । तथैवापततां तेषां हरीणां निशितैः शरैः ॥६२॥
शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमविक्रमाः । दशनैर्हृतकर्णाश्च मुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥
शिलाप्रहारभग्नाङ्गा विचेरुस्तत्र राक्षसाः ॥६३॥
तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामसिभिः शितैः । प्रवरानभितो जघ्नुर्घोररूपा निशाचराः ॥६४॥
घ्नन्तमन्यं जघानान्यः पातयन्तमपातयत् । गर्हमाणं जगर्हान्यो दशन्तमपरोऽदशत् ॥६५॥
देहीत्यन्यो ददात्यन्यो ददामीत्यपरः पुनः । किं क्लेशयसि तिष्ठेति तत्रान्योन्यं बभाषिरे ॥६६॥
विप्रलम्भितशस्त्रं च विमुक्तकवचायुधम् । समुद्यतमहाप्रासं मुष्टिशूलासिकुन्तलम् ॥६७॥
प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् । वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे ॥६८॥

सैकड़ों घुँघुरु बजते थे, सैनिकोंके हाथ सोनेकी जालीसे छिपे थे और उनलोगोंने परशु बाँधे थे ॥ ५६ ॥ बड़े शस्त्र घुमाये जा रहे थे, बाण धनुषपर चढ़े थे, सुगन्धित माला शराब आदिसे वहाँकी हवा सुगन्धित हो गयी थी ॥ ५७ ॥ उस सेनामें बड़े-बड़े शूर थे, बड़े मेघके समान उसका गर्जन था, वह देखनेमें बड़ी भयानक थी। उस सेनाको वानरोंने देखा, राक्षसोंकी उस अजेय सेनाको आती देखकर वानरोंकी सेना चली और उसने घोर गर्जन किया, राक्षसोंकी वह बड़ी सेना वेगसे कूदकर शत्रुसेनाकी ओर चली, जैसे पतङ्ग आगकी ओर जाते हैं। जिन राक्षसोंके हाथ चलानेसे परिघ और वज्र हिल रहे हैं, उन राक्षसोंकी वह बड़ी सेना बहुतही शोभित होती थी। युद्धकी इच्छा रखनेवाले वानर भी उसके समान उस सेनाकी ओर बढ़े ॥ ५८—६१ ॥ वृक्षों, पत्थरों तथा घूसोंसे वानर राक्षसोंको मारने लगे। राक्षस भी आते हुए वानरोंके मस्तक तीखे बाणोंसे काटने लगे, क्योंकि वे बड़े पराक्रमी थे। जिनके कान दाँतसे काट लिये गये थे, घूसोंसे सिर फोड़ दिया गया था, पत्थरके आघातसे जिनका अङ्ग भङ्ग हो गया था, वे राक्षस युद्धभूमिमें विचरने लगे ॥ ६२, ६३ ॥ इसी प्रकार दूसरे राक्षस वानरोंके अगुओंको तीखी तलवार-से मारने लगे ॥ ६४ ॥ एक मारनेवालेको दूसरेने मारा, एक गिरानेवालेको दूसरेने गिराया, एक गाली देनेवालेको दूसरेने गाली दी, एक काटनेवालेको दूसरेने काटा ॥ ६५ ॥ एक ने कहा—दो, दूसरेने कहा—देता है, तीसरेने कहा—देता हूँ, क्यों दुख दे रहे हो, ठहरो,—इस प्रकार वे आपसमें वहाँ बातें करने लगे ॥ ६६ ॥ वानर और राक्षसोंका वह बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उसमें शस्त्र व्यर्थ कर दिये गये थे, कवच तथा आयुध हटा दिये गये थे, भाले उठे हुए थे, मुष्टि, शूल, तलवार, भाले ये अस्त्र वहाँ उठे थे, इस प्रकार वह युद्ध होने लगा। उस युद्धमें एक-एक राक्षस दस सात वानरोंको मारने लगे और एक वानर

विप्रलम्भितवस्त्रं च विमुक्तकवचध्वजम् । बलं राक्षसमालम्ब्य वानराः पर्यवारयन् ॥६९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

प्रवृत्ते संकुले तस्मिन्वीरे घोरजनक्षये । अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥ १ ॥
आहूय सोऽङ्गदं कोपात्ताडयामास वेगितः । गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥ २ ॥
स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः । अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥ ३ ॥
ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे । रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥ ४ ॥
सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः । शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥
क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः । कर्णिशल्यविपाटैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् । धनुरुग्रं रथं बाणान्ममर्द तरसा बली ॥ ७ ॥
शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे । उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥
तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली । करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥ ९ ॥
तस्यांस फलके खड्गं निजघान ततोऽङ्गदः । यज्ञोपवीतवच्चैनं चिच्छेद कपिकुञ्जरः ॥१०॥
तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनः पुनः । वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥११॥

दस सात राक्षसोंको पटकने लगा ॥ ६७, ६८ ॥ वानरोंने राक्षसोंको रोककर घेर लिया, उस समय राक्षसोंके वस्त्र खुल गये थे और उनके कवच तथा ध्वजा टूट गये थे ॥ ६९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

उस निविड युद्धमें जिसमें वीर घूम रहे थे, युद्धकी इच्छा रखनेवाले अङ्गद वीर कम्पनके पास गये ॥ १ ॥ अङ्गदको बुलाकर कम्पनने क्रोधकरके गदासे उन्हें मारा, जिससे अङ्गद काँप गये ॥ २ ॥ होशमें आकर तेजस्वी अङ्गदने पर्वतका शिखर फेंका, जिससे चूर होकर कम्पन पृथिवीपर गिर गया ॥ ३ ॥ युद्धमें कम्पनको मरा देखकर शोणिताक्ष निर्भय होकर रथपर चढ़कर अङ्गदके पास आया ॥ ४ ॥ वह तीखे बाणों-से वेगपूर्वक अङ्गदको मारने लगा, वे बाण बड़े तीखे थे, शरीर छेदनेवाले थे और देखनेमें प्रलयकी अग्निके समान थे ॥ ५ ॥ क्षुर, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णिशल्य, विपाठ आदि अनेक बाणों-से उसने अङ्गदको मारा । वालिपुत्र प्रतापी अंगदने उससे आहत होकर बलपूर्वक उसके रथ, बाण, धनुषको तोड़ दिया ॥ ६, ७ ॥ शोणिताक्षने शीघ्रही तलवार और ढाल उठा ली और बिना विचारे वह शीघ्रही रथसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ अत्यन्त शीघ्र कूदकर वहीं अंगदने भी शोणिताक्षको पकड़ लिया और हाथसे उसकी तलवार छीनकर वे गर्जन करने लगे ॥ ९ ॥ अंगदने उसके कंधेपर तलवार गिरायी, कपिश्रेष्ठ अंगदने यज्ञो-पवीतके समान उसको काट दिया ॥ १० ॥ उसकी तलवार लेकर तथा गर्जन करके वालिपुत्रने युद्धभूमिमें

प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली। रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥१२॥
आयसीं तु गदां गृह्य स वीरः कनकाङ्गदः। शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह ॥१३॥
प्रजङ्घस्तु महावीरो यूपाक्षसहितो बली। गदयाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥१४॥
तयोर्मध्ये कपिश्रेष्ठः शोणिताक्षप्रजङ्घयोः। विशाखयोर्मध्यगतः पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥१५॥
अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च। तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया ॥१६॥
अभिपेतुर्महाकायाः प्रतियत्ता महाबलाः। राक्षसा वानरान्रोषादसिबाणगदाधराः ॥१७॥
त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुंगवैः। संसक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥१८॥
ते तु वृक्षान्समादाय संप्रचिक्षिपुराहवे। खड्गेन प्रतिचिक्षेप तान्प्रजङ्घो महाबलः ॥१९॥
रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे। शरौघैः प्रतिचिच्छेद तान्यूपाक्षो महाबलः ॥२०॥
सृष्टान्द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान्। बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्षः प्रतापवान् ॥२१॥
उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम्। प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥२२॥
तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः। आजघानाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा ॥२३॥
बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना। वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसिः ॥२४॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसंनिभम्। मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥२५॥
स ललाटे महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम्। आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह ॥२६॥

दूसरे शत्रुओंपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥ बली और वीर यूपाक्ष प्रजंघके साथ रथपर चढ़कर क्रोध करके महाबली बालिपुत्रके पास आया ॥ १२ ॥ होश आनेपर सोनेका बाजू-बन्द धारण करनेवाला वीर शोणिताक्ष लोहेकी गदा लेकर उसके पीछे चला ॥ १३ ॥ महावीर बली प्रजङ्घ यूपाक्षके साथ गदा लेकर क्रोध करके महाबली बालिपुत्रकी ओर चला ॥ १४ ॥ शोणिताक्ष और प्रजङ्घके बीचमें बालिपुत्र अंगद दो विशाखा नक्षत्रोंके बीचमें पूर्णचन्द्रके समान शोभता था ॥ १५ ॥ मैन्द और द्विविद ये दोनों भी अंगदकी रक्षा करनेकी इच्छासे उसके पासही रहे, क्योंकि ये भी अपनी युद्धनिपुणता दिखाना चाहते थे ॥ १६ ॥ विशालशरीरवाले महाबली सावधान राक्षस तलवार, बाण और गदा लेकर क्रोधसे वानरोंकी ओर चले ॥ १७ ॥ तीन वानर सेनापति तीन राक्षस सेनापतियोंसे भिड़ गये, उनका युद्ध रोंगटे खड़े करनेवाला हुआ ॥ १८ ॥ वानर वृक्ष लेकर युद्धमें फेंकते थे और महाबली प्रजङ्घ तलवारसे उनको काट डालता था ॥ १९ ॥ वानर, रथ, वृक्ष और पत्थर फेंकते थे और महाबली यूपाक्ष बाणोंसे उन्हे काट डालता था ॥२०॥ मैन्द और द्विविदके द्वारा उखाड़कर फेंके गये वृक्षोंको प्रतापी शोणिताक्षने गदासे बीचही में काट गिराया ॥ २१ ॥ शत्रुके मर्म काटनेवाली बड़ी तलवार उठाकर प्रजङ्घ वेगपूर्वक बालिपुत्र अङ्गदकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ महाबली वानरेन्द्र अगङ्गने उसको अपने पास आया देखा और अश्वकर्ण नामक वृक्षसे उन्होंने उसे मारा ॥ २३ ॥ तलवारवाले उसके हाथपर उन्होंने एक घूँसा मारा। बालिपुत्रके आघातसे उसके हाथसे तलवार पृथिवीपर गिर पड़ी ॥२४॥ मूसलके समान विशाल तलवारको पृथिवीपर देखकर महाबली प्रजङ्घ वज्रके समान मुक्का घुमाने लगा ॥२५॥ वानरश्रेष्ठ महाबली अङ्गदके मस्तकपर तेजस्वी प्रजङ्घने

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी वालिपुत्रः प्रतापवान् । प्रजङ्घस्य शिरः कायात्पातयामास मुष्टिना ॥२७॥
स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे । अवरुह्य रथात्क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥२८॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् । आजघानोरसि क्रुद्धो जग्राह च बलाद्बली ॥२९॥
गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलम् । आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदं ततः ॥३०॥
स ततोऽभिहतस्तेन चचाल च महाबलः । उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे मैन्दो द्विविदाभ्याशमागमत् । तौ शोणिताक्षयूपाक्षौ प्लवंगाभ्यां तरस्विनौ ॥
चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥३२॥
द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे । निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥३३॥
यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुंगवः । पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥३४॥
हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तथा । जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः ॥३५॥
आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम् । अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवंगमैः ॥३६॥
निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा । कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥३७॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः । मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥३८॥
तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् । विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥३९॥
आकर्णकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा । तेन हाटकपुङ्खेन पत्त्रिणा पत्त्रवाससा ॥४०॥

घूँसा मारा, जिससे अङ्गद थोड़ी देर विचलित होगया ॥२६॥ होश आनेपर तेजस्वी और प्रतापी वालिपुत्रने प्रजङ्घका मस्तक घूँसा मारकर शरीरसे अलग कर दिया ॥ २७ ॥ चचाके मारे जानेपर यूपाक्षकी आँखें आँसूसे भर आयीं, रथसे उतरकर उसने तलवार ली, क्योंकि उसके बाण खतम हो चुके थे ॥ २८ ॥ यूपाक्ष आ रहा है यह देखकर बली द्विविदने शीघ्रतापूर्वक क्रोधसे उसकी छातीमें मारा और जोरसे उसे पकड़ लिया ॥ २९ ॥ महाबली भाई पकड़ा गया यह देखकर तेजस्वी शोणिताक्षने द्विविदकी छातीमें मारा ॥ ३० ॥ उसके द्वारा आहत होनेपर महाबली द्विविद विचलित हो गया, पुनः उसने उसकी उठी गदा छीन ली ॥ ३१ ॥ इसी समय मैन्द द्विविदके पास आया। ये दोनों वानर वेगपूर्वक शोणिताक्ष और यूपाक्षको युद्धमें खींचने और उठाकर पटकने लगे ॥ ३२ ॥ द्विविदने शोणिताक्षका मुख नखोंसे नोच लिया और बलपूर्वक पृथिवीमें पटककर उसे पीस डाला ॥ ३३ ॥ वानरश्रेष्ठ मैन्दने क्रोध करके यूपाक्षको दोनों भुजाओंसे दबाया और वह मारा जाकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥ वीरोंके मारे जानेके कारण रावणकी वह सेना व्यथित हुई और वह उधरकी ओर गयी जिधर कुम्भकर्णका पुत्र था ॥३५॥ वेगसे आती हुई सेनाको कुम्भने आश्वासित किया। अवसर पाकर बलवान वानरोंने राक्षससेनाके बड़े-बड़े वीरोंको मार दिया है यह देखकर तेजस्वी कुम्भने रणमें उठकर काम किया ॥ ३६, ३७ ॥ सावधान होकर श्रेष्ठ धनुर्धारी कुम्भने धनुष लिया और उससे सर्पके समान बाण छोड़े, जो शरीरको छेदनेवाले थे ॥ ३८ ॥ बाणयुक्त उसका उत्तम धनुष पुनः शोभने लगा, विद्युत् और ऐरावतके सम्पर्कसे प्रकाशमान दूसरे इन्द्र-धनुषके समान वह मालूम पड़ता था ॥ ३९ ॥ कानतक खींचकर सुवर्ण-पुङ्खवाले बाणसे उसने द्विविदको

सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् । निपपात त्रिकूटाभो विह्वलन्प्लवगोत्तमः ॥४१॥
मैन्दस्तु भ्रातरं तत्र भग्नं दृष्ट्वा महाहवे । अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥४२॥
तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः । बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः ॥४३॥
संधाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् । आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥४४॥
स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः । मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥४५॥
अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा मथितौ तु महाबलौ । अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥४६॥
तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः । त्रिभिश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मातंगमिव तोमरैः ॥
सोऽङ्गदं बहुभिर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान् ॥४७॥
अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः । अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते ॥४८॥
शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह । स प्रचिच्छेद तान्सर्वान्बिभेद च पुनः शिलाः ॥४९॥
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान्वालिपुत्रसमीरितान् । आपतन्तं च संप्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ॥५०॥
भ्रुवौ विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् । तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने ॥५१॥
अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते । सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥५२॥
संपीड्योरसि सस्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च । किंचिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ महारणे ॥५३॥
तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसंनिभम् । समुत्सृजत वेगेन मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥५४॥

मारा ॥ ४० ॥ उस राक्षसके आघातसे द्विविदके पैर लड़खड़ा गये, त्रिकूटपर्वतके समान विशाल वे वानर-श्रेष्ठ विह्वल होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ४१ ॥ मैन्दने उस महायुद्धमें भाईको गिरा देखा और वे एक बड़ा पत्थर लेकर उसकी ओर चले ॥४२॥ महाबली वानरने वह पत्थर राक्षसपर फेंका । कुम्भने सीधे पाँच बाणों-से उस पत्थरको तोड़ दिया ॥ ४३ ॥ तेजस्वी राक्षसने दूसरा सीधा सर्पसदृश बाण चढ़ाकर द्विविदके बड़े भाईको छातीमें मारा ॥ ४४ ॥ वह आघात वानरसेनापति मैन्दके मर्ममें लगा, जिससे मूर्च्छित होकर वह पृथिवीमें गिर पड़ा ॥ ४५ ॥ अङ्गदने जब देखा कि उसके दोनों भ्राता व्याकुल किये गये हैं, तब उन्होंने धनुष चढ़ाये हुए कुम्भपर आक्रमण किया ॥ ४६ ॥ अपनी ओर आते हुए अङ्गदको लोहेके पाँच बाणोंसे कुम्भने मारा और अन्य तीन बाणोंसे भी उसने उन्हें मारा, जिस प्रकार हाथी तोमरोंसे मारे जाते हैं । वीर्यवान कुम्भने अङ्गदको अनेक बाणोंसे मारा ॥४७॥ नुकीले, चमकीले और तीखे बाणोंसे, जिनमें सोना मढ़ा हुआ था, अङ्गदका शरीर छिद गया, पर वे कम्पित न हुए ॥ ४८ ॥ अङ्गद पत्थर और वृक्षोंकी वर्षा उसपर करने लगे, वह भी उनको काटने लगा और कुम्भकर्णका पुत्र श्रीमान् कुम्भ वालि-पुत्रके फेंके पत्थरोंको तोड़ने लगा । वानरसेनापतिको अपनी ओर आते देखकर राक्षसने दो बाणोंसे उनकी भौंमें मारा, जिस प्रकार हाथी मसालसे मारे जाते हैं । खून बहने लगा, जिससे उनकी आँखें बन्द हो गयीं ॥ ४९, ५०, ५१ ॥ खूनसे भींगी आँखोंको हाथसे बन्द करके अंगदने एक हाथसे पासका एक सालका पेड़ पकड़ा ॥ ५२ ॥ छातीसे दबाकर उन्होंने उस वृक्षको एक हाथसे पकड़ा, पुनः उसको थोड़ा नवांकर उसके पत्ते उन्होंने तोड़ डाले ॥ ५३ ॥ इन्द्रध्वजके समान बड़ा

स चिच्छेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः। अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं स पपात मुमोह च ॥५५॥
अङ्गदं पतितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरम्। दुरासदं हरिश्रेष्ठा राघवाय न्यवेदयन् ॥५६॥
रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं महाहवे। व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्ततः ॥५७॥
ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम्। अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥५८॥
ततो द्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः। रिरक्षिषन्तोऽभ्यपतन्नङ्गदं वानरर्षभाः ॥५९॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः। कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ॥६०॥
समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान्महाबलान्। आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ॥६१॥
तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरपि वीक्षितुम्। वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ॥६२॥
तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्शरवृष्टिभिरर्दितान्। अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ॥६३॥
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे। शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी ॥६४॥
उत्पाट्य च महावृक्षानश्वकर्णादिकान्बहून्। अन्यांश्च विविधान्वृक्षांश्चिक्षेप स महाकपिः ॥६५॥
तां छादयन्तीमाकाशं वृक्षवृष्टिं दुरासदाम्। कुम्भकर्णात्मजः श्रीमांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः ॥६६॥
अर्दितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः। द्रुमवर्षं तु तच्छिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान् ॥६७॥
वानराधिपतिः श्रीमान्महासत्त्वो न विव्यथे। स विध्यमानः सहसा सहमानस्तु ताञ्छरान् ॥६८॥

और मन्दराचलके समान मोटा वह वृक्ष सब राक्षसोंके सामने उन्होंने फेंका ॥ ५४ ॥ शरीर छेदनेवाले सात तीखे बाणोंसे राक्षसने उस वृक्षको काट डाला। इससे अङ्गद बहुत दुःखी हुए, वे पृथिवीपर गिरे और मूर्छित हो गये ॥ ५५ ॥ दुरासद अङ्गदको गिरा देखकर मानों वे समुद्रमें डूब रहे हों, प्रधान वानरोंने रामचन्द्रसे यह बात बतलायी ॥ ५६ ॥ वालिपुत्रको युद्धमें व्यथित सुनकर रामचन्द्रने जाम्बवान् आदि प्रधान वानरोंको आज्ञा दी ॥ ५७ ॥ वे वानरश्रेष्ठ रामचन्द्रकी आज्ञा सुनकर क्रोधकरके वहाँ गये, जहाँ धनुष चढ़ाकर कुम्भ वर्तमान था ॥५८॥ प्रधान-प्रधान वानर अङ्गदकी रक्षाके लिए वहाँ गये। वे हाथमें पेड़ और पर्वत लिए हुए थे और क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयीं थीं ॥५९॥ जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी वानरने कुम्भकर्णके वीर पुत्रपर आक्रमण किया ॥ ६० ॥ आते हुए महाबली वानर-सेनापतियोंको देखकर उसने बाणोंसे उन्हें रोका, जिस प्रकार वृक्षोंसे जलप्रवाह रोक दिया जाता है ॥ ६१ ॥ महात्मा वानरेन्द्र उसके बाणके सामने जाकर उसकी ओर देख भी न सके, जिस प्रकार समुद्र अपने तीरकी ओर नहीं देखता ॥ ६२ ॥ उन वानरोंको बाणवृष्टिसे पीड़ित देखकर भतीजे अङ्गदको पीछे करके वानरराज सुग्रीवने कुम्भकर्णके पुत्रपर आक्रमण किया, जिस प्रकार पर्वतशिखरपर विचरनेवाले हाथीपर वेगवान् सिंह आक्रमण करता है ॥ ६३, ६४ ॥ बड़े-बड़े अश्वकर्ण आदि अनेक वृक्षों तथा अन्य प्रकारके वृक्षोंको उखाडकर वानरराज उस राक्षसपर फेंकने लगे ॥ ६५ ॥ आकाश ढँक देनेवाली उस वृक्षवृष्टिको कुम्भकर्णके पुत्रने अपने तीखे बाणोंसे काट डाला ॥ ६६ ॥ मसले हुए वे वृक्ष भयङ्कर शतघ्नियोंके समान मालूम पड़ते थे। कुम्भने उस वृक्ष-वृष्टिको काट दिया—यह देखकर महाबली वीर्यवान् श्रीमान् वानरराज दुखी न हुए। वे बाणोंसे छेदे जाते थे और वे उन बाणोंके आघातको सहते थे ॥ ६७—६८ ॥ इन्द्रधनुषके समान चमकीला

कुम्भस्य धनुराक्षिप्य वभञ्जेन्द्रधनुष्प्रभम्। अवप्लुत्य धनुःशीघ्रं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥६९॥
अब्रवीत्कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम्। निकुम्भाग्रज वीर्यं ते वाणवेगं तदद्भुतम् ॥७०॥
संनतिश्च प्रभावश्च तव वा रावणस्य वा। महादवलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपम ॥७१॥
एकस्त्वमनुजातोऽसि पितरं वलवत्तरम्। त्वामेवैकं महावाहुं शूलहस्तमरिंदमम् ॥७२॥
त्रिदशा नातिवर्तन्ते जितेन्द्रियमिवाधयः। विक्रमस्व महावुद्धे कर्माणि मम पश्य च ॥७३॥
वरदानात्पितृव्यस्ते सहते देवदानवान्। कुम्भकर्णस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥७४॥
धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च। त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोऽसि वलवीर्यतः ॥७५॥
महाविमर्दं समरे मया सह तवाद्भुतम्। अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्वरयोरिव ॥७६॥
कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम्। पातिता हरिवीराश्च त्वयैते भीमविक्रमाः ॥७७॥
उपालम्भभयाच्चैव नासि वीर मया हतः। कृतकर्मपरिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे वलम् ॥७८॥
तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः। अग्रेराज्यहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥७९॥
ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं वाहुभ्यां जगृहे तदा। गजाविवावीतमदौ निःश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः ॥८०॥
अन्योन्यगात्रग्रथितौ घर्षन्तावितरेतरम्। सधूमां मुखतो ज्वालां विसृजन्तौ परिश्रमात् ॥८१॥
तयोः पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभवन्मही। व्याघूर्णिततरङ्गश्च चुक्षुभे वरुणालयः ॥८२॥

कुम्भका धनुष छीनकर सुग्रीवने तोड़ डाला। यह अद्भुत काम करके वे नीचे कूद पड़े और क्रोध करके कुम्भसे बोले, भग्नदन्त हाथीके समान उस समय कुम्भ हो गया था। हे निकुम्भाग्रज, शीघ्रतापूर्वक वाण छोड़नेका तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, स्वजनोंपर तुम्हारा प्रेम, प्रभाव, ये रावण और तुम्हारे दोनोंके समान हैं। तुम प्रह्लाद, वलि, इन्द्र, कुवेर और वरुणके समान हो ॥ ६९—७१ ॥ तुम अपने पिताके एकही वलवान् उत्पन्न हुए हो। शूलधारी शत्रु-दमनकर्ता एक तुम्हींको देवता परास्त नहीं कर सकते, जिस प्रकार मानसिक व्याधियाँ जितेन्द्रियको परास्त नहीं कर पातीं। महावुद्धे, पराक्रम दिखाओ और मेरे काम देखो ॥ ७२, ७३ ॥ तुम्हारे चचा रावण वरके प्रभावसे देवता और दानवोंका सामना करते हैं और तुम्हारे पिता पराक्रमसे देवता और असुरोंका सामना करते थे ॥ ७४ ॥ तुम धनुर्विद्यामें इन्द्रजित् के समान हो और रावणके समान प्रतापी हो। तुम आज राक्षसोंमें वल और वीर्यसे श्रेष्ठ हो ॥ ७५ ॥ इस रणक्षेत्रमें हमारे साथ तुम्हारा महायुद्ध सव प्राणी देखें, जिस प्रकार इन्द्र और शम्वरासुरका युद्ध हुआ था ॥ ७६ ॥ तुमने अद्भुत काम किया, अस्त्र-निपुणता दिखायी और पराक्रमी इन वानर वीरोंको गिराया ॥ ७७ ॥ वीर, निन्दाके भयसे मैंने अभी तक तुमको नहीं मारा है, अनेकोंके साथ युद्ध करनेसे तुम थक गये हो, विश्राम करके मेरा वल देखो ॥ ७८ ॥ सुग्रीवके निन्दायुक्त वचनोंसे तथा प्रशंमासे सम्मानित कुम्भका तेज वढ़ा, जिस प्रकार घी पड़नेसे अग्निका तेज वढ़ता है ॥ ७९ ॥ अनन्तर कुम्भने दोनों हाथोंसे सुग्रीवको पकड़ा। मतवाले हाथियोंके समान वार-वार साँस लेते हुए वे दोनों आपसमें गुथ गये और एक दूसरेको रगड़ने लगे। परिश्रमके कारण उनके मुँहसे धूमयुक्त ज्वाला निकलने लगी, उन दोनोंके पैर पटकनेसे पृथिवी काँपने लगी, समुद्रकी तरङ्ग घूमने लगी और वह क्षुभित हो गया ॥ ८०,

ततः कुम्भं समुत्क्षिप्य सुग्रीवो लवणाम्भसि । पातयामास वेगेन दर्शयन्नुदधेः स्थलम् ॥८३॥
ततः कुम्भनिपातेन जलराशिः समुत्थितः । विन्ध्यमन्दरसंकाशो विससर्प समन्ततः ॥८४॥
ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपात्य च । आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥८५॥
तस्य चर्म च पुस्फोट संजज्ञे चापि शोणितम् । तस्य मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥८६॥
तस्य वेगेन तत्रासीत्तेजः प्रज्वलितं महत् । वज्रनिष्पेषसंजाता ज्वाला मेरोर्यथा गिरेः ॥८७॥
स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः । मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥८८॥
अर्चिःसहस्रविकचरविमण्डलवर्चसम् । स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥८९॥
स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडितः । निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥९०॥
मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः । लोहिताङ्ग इवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥९१॥
कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना । बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गवां पतेः ॥९२॥

तस्मिन्हते भीमपराक्रमेण प्लवंगमानामृषभेण युद्धे ।
मही सशैला सवना चचाल भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥९३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् । प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥ १ ॥

८०, ८२ ॥ अनन्तर कुम्भको उठाकर सुग्रीवने लवणसमुद्रमें इतने जोरसे पटका, जिससे वह समुद्र तलपर चला गया ॥ ८३ ॥ कुम्भके गिरनेसे जो जलराशि उठा, वह विन्ध्य और मन्दरके समान ऊँचा चढ़कर फैल गया ॥ ८४ ॥ अनन्तर उठकर कुम्भने सुग्रीवको गिराया और क्रोधकरके उनकी छातीमें वज्र जैसा घूसा मारा ॥ ८५ ॥ उनका कवच टूट गया, खून बहने लगा, उसके वेगवान् घूसेने सुग्रीवकी हड्डीपर आघात किया ॥ ८६ ॥ कुम्भके आघातसे सुग्रीवकी छातीसे बड़ा भारी तेज निकला, जिस प्रकार वज्रके आघातसे मेरुपर्वतसे ज्वाला निकलती है ॥ ८७ ॥ कुम्भके द्वारा छातीमें आहत होकर वानरराज सुग्रीव वज्रके समान अपना घूसा घुमाने लगे ॥ ८८ ॥ बली सुग्रीवने कुम्भकी छातीमें घूसा मारा। उनका घूसा हजार किरणोंसे प्रकाशित सूर्यमण्डलके समान प्रकाशमान था ॥ ८९ ॥ उस प्रहारसे उत्पन्न पीड़ित और विह्वल होकर कुम्भ ज्वालाहीन अग्निके समान गिर पड़ा ॥ ९० ॥ सुग्रीवके घूसेसे आहत होकर राक्षस शीघ्र ही गिरा, मानो अनायासही दीप्तिमान मङ्गलग्रह आकाशसे गिरा हो ॥९१॥ छातीके आघातसे गिरते हुए कुम्भका रूप रुद्रके द्वारा पराजित सूर्यके समान हो गया ॥९२॥ पराक्रमी वानरराजके द्वारा युद्धमें उसके मारे जानेपर पर्वत और वनके साथ पृथिवी काँपने लगी और राक्षस अधिक भयभीत हुए ॥ ९३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकांडका छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

सुग्रीवके द्वारा भाई कुम्भका गिराया जाना देखकर निकुम्भने सुग्रीवको ऐसा देखा, मानो वह क्रोध-

ततः स्रग्दामसंनद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं शुभम् । आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥
हेमपट्टपरिक्षिप्तं वज्रविद्रुमभूषितम् । यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥ ३ ॥
तमाविध्य महातेजाः शक्रध्वजसमौजसम् । निननाद विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ४ ॥
उरोगतेन निष्केण भुजस्थैरङ्गदैरपि । कुण्डलाभ्यां च चित्राभ्यां मालया च स चित्रया ॥ ५ ॥
निकुम्भो भूषणैर्भाति तेन स्म परिघेण च । यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ६ ॥
परिघाग्रेण पुस्फोट वातग्रन्थिर्महात्मनः । प्रजज्वाल सघोषश्च विधूम इव पावकः ॥ ७ ॥
नगर्या विटपावत्या गन्धर्वभवनोत्तमैः । सताराग्रणनक्षत्रं सचन्द्रसमहाग्रहम् ॥
निकुम्भपरिघाघूर्णं भ्रमतीव नभस्थलम् ॥ ८ ॥
दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः । क्रोधेन्धनो निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥९॥
राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् । हनूमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥१०॥
परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् । बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥११॥
स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः । विकीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ॥१२॥
स तु तेन प्रहारेण न चचाल महाकपिः । परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥१३॥
स तथाभिहतस्तेन हनुमान्प्लवगोत्तमः । मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥१४॥

से उन्हें जला रहा हो ॥ १ ॥ अनन्तर निकुम्भने परिघ उठाया जो महेन्द्रपर्वतके समान विशाल था, फूल की माला उसमें लपेटी गयी थी और उसपर पाँचों अँगुलियोंकी छाप दी हुई थी ॥ २ ॥ सुवर्णपत्रसे वह बँधा था, हीरा और विद्रुमसे भूषित था, यमराजके दण्डके समान भयंकर था तथा राक्षसोंका भय दूर करनेवाला था ॥ ३ ॥ इन्द्रध्वजके समान बली उस परिघको लेकर तेजस्वी भीमपराक्रमी निकुम्भने मुँह बाकर गर्जन किया ॥ ४ ॥ निष्कनामक छातीके गहने भुजाओंपर शोभनेवाले बाजूबन्दोंसे चित्रित कुण्डलों और माला तथा परिघसे निकुम्भ ऐसा मालूम पड़ता था जैसा इन्द्रधनुष और बिजलीसे युक्त गर्जन करनेवाला मेघ शोभता है ॥ ५, ६ ॥ विशालशरीर निकुम्भकी वायुजनित गाँठें परिघ उठानेसे फूट गयीं और वह शब्द करनेवाला तथा धूमहीन अग्निके समान प्रज्वलित हुआ ॥ ७ ॥ निकुम्भके परिघ घुमानेके साथ-साथ अलकानगरी, गन्धर्वोंके उत्तम भवन, तारा, नक्षत्र, चन्द्रमा तथा महाग्रहोंके साथ आकाश घूमने लगा ॥८॥ परिघ और आभरणकी प्रभाही जिसकी प्रभा है, क्रोध जिसका इन्धन है ऐसी निकुम्भनामक अग्नि प्रलयकी अग्निके समान उठी ॥ ९ ॥ वानर और राक्षस कोई भी भयसे हिल न सकता था । उस समय बली हनुमान छाती खोलकर सामने खड़ा हो गया ॥१०॥ परिघके समान बाहुवाले बली निकुंभने सूर्यके समान प्रकाशमान परिघ हनुमानकी छातीपर गिराया ॥ ११ ॥ स्थिर तथा विशाल उनकी छातीपर परिघके सौ टुकड़े हो गये और वे टुकड़े शीघ्रही आकाशमें उड़ गये, जो सैकड़ों उल्काके समान मालूम पड़ने लगे ॥ १२ ॥ महाकपि हनुमान उस प्रहारसे विचलित न हुए, परिघसे आहत होनेपर भी वे भूकम्पके समय पर्वतके समान अचल रहे ॥ १३ ॥ राक्षसके द्वारा उस प्रकार आहत होनेपर वानरश्रेष्ठ हनुमान बलपूर्वक घूसा

तमुधम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान् । अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान्वायुविक्रमः ॥१५॥
तत्र पुस्फोट वर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् । मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता ॥१६॥
स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल च । स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्तं महाबलम् ॥१७॥
चुक्रुशुश्च तदा संख्ये भीमं लङ्कानिवासिनः । निकुम्भेनोधृतं दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ॥१८॥
स तथा ह्रियमाणोऽपि हनुमांस्तेन रक्षसा । आजघानानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥१९॥
आत्मानं मोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत । हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥२०॥
निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च । उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वेगवान् ॥२१॥
परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् । उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥२२॥

अथ निनदति सादिते निकुम्भे पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम् ।
दशरथसुतराक्षसेन्द्रसून्वोर्भृशतरमागतरोषयोः सुभीमम् ॥२३॥
व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा विनेदुः प्लवंगा दिशः सस्वनुश्च ।
चचालेव चोर्वी पपातेव सा द्यौर्बलं राक्षसानां भयं चाविवेश ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥७७॥

घुमाने लगे ॥ १४ ॥ वायुके समान पराक्रमी तेजस्वी और बली हनुमानने निकुम्भकी छातीमें एक घूसा मारा ॥ १५ ॥ उस घूसेसे निकुम्भका कवच फट गया और खून निकलने लगा । जिस प्रकार मेघसे बिजली निकलती है उसी प्रकार उसके शरीरसे तेज निकलने लगा ॥ १६ ॥ उस प्रहारसे निकुम्भ विचलित हुआ, पुनः स्वस्थ होनेपर उसने महाबली हनुमानको पकड़ा ॥ १७ ॥ निकुम्भने महाबली हनुमानको पकड़ा है यह देखकर लंकावाले भयानक गर्जन करने लगे ॥ १८ ॥ वह राक्षस हनुमानको उठाये लिये जा रहा था, उस समय वायुपुत्रने वज्रके समान घूसेसे उसे मारा ॥ १९ ॥ अपनेको छुड़ाकर हनुमान पृथिवीपर आये और उन्होंने निकुम्भको व्याकुल कर दिया ॥ २० ॥ परमसावधान हनुमान निकुम्भको पटककर पीड़ित किया, पुनः ऊपर कूदकर वेगसे उसकी छातीपर गिरे ॥ २१ ॥ हाथोंसे पकड़कर, गला मरोड़कर उसका सिर हनुमानने उखाड़ लिया, उस समय वह भयानक गर्जन कर रहा था ॥ २२ ॥ इस प्रकार गर्जन करनेवाले निकुम्भके वायुपुत्रके द्वारा मारे जानेपर अत्यन्त क्रोधमें आये हुए दशरथपुत्र और राक्षसेन्द्रपुत्रमें बहुतही भयानक युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ निकुम्भका जीव निकल गया यह देखकर वानर प्रसन्न होकर गर्जन करने लगे, दिशाओंमें शब्द होने लगा, पृथिवी चलने लगी, आकाश मानो गिरने लगा और राक्षसी सेनामें भयने डेरा जमाया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

निकुम्भं निहतं दृष्ट्वा कुम्भं च विनिपातितम् । रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥ १ ॥
नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः । खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥
गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः । राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ ॥ ३ ॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः । बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरम् ॥ ४ ॥
सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥ ५ ॥
समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोऽब्रवीद्वचः । रथमानीयतां तूर्णं सैन्यं त्वानीयतां त्वरात् ॥ ६ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो निशाचरः । स्यन्दनं च बलं चैव समीपं प्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥
प्रदक्षिणं रथं कृत्वा समाहूय निशाचरः । सूतं संचोदयामास शीघ्रं वै रथमावह ॥ ८ ॥
अथ तान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोऽब्रवीदिदम् । यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तान्मम राक्षसाः ॥ ९ ॥
अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना । आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥
अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः । शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः ॥११॥
अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम् । प्रदहिष्यामि संप्राप्तां शुष्केन्धनमिवानलः ॥१२॥
मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः । सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः समाहिताः ॥१३॥
ते कामरूपिणः क्रूरा दंष्ट्रिणः पिङ्गलेक्षणः । मातंगा इव नर्दन्तो ध्वस्तकेशा भयावहाः ॥१४॥
परिवार्य महाकाया महाकायं खरात्मजम् । अभिजग्मुस्ततो हृष्टाश्चालयन्तो नभस्तलम् ॥१५॥

निकुम्भ और कुम्भका मारा जाना सुनकर, परमक्रोधी रावण अग्निके समान प्रज्वलित हुआ ॥१॥ रावण क्रोध और शोकसे व्याकुल हो गया, उसने खरके पुत्र विशालाक्ष मकराक्षको आज्ञा दी ॥ २ ॥ पुत्र, मेरी आज्ञासे सेना लेकर जाओ और वानरोंके साथ राम तथा लक्ष्मणको मारो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपनेको शूर समझनेवाले खरके पुत्र ढीठ मकराक्षने रावणसे 'हाँ' कहा ॥ ४ रावणको प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके उसकी आज्ञासे बली मकराक्ष सुंदर घरसे निकला ॥ ५ ॥ खरपुत्रने पासही खड़े सेनाके दरोगासे कहा—शीघ्रही रथ लाओ और शीघ्र सेना लाओ ॥ ६ ॥ खरपुत्रके वचन सुनकर सेनाध्यक्ष राक्षस शीघ्रही रथ और सेना उसके पास ले आया ॥ ७ ॥ उस राक्षसने रथकी प्रदक्षिणा की और शीघ्रही युद्धक्षेत्रमें रथ ले चलनेकी आज्ञा सारथिको दी ॥ ८ ॥ मकराक्षने उन समस्त राक्षसों से यह कहा,—राक्षसो ! आप सबलोग मेरे सामने युद्ध करो ॥ ९ ॥ राक्षसराज महात्मा रावणने हमें राम और लक्ष्मणको मारनेकी आज्ञा दी है ॥ १० ॥ राक्षसो ! मैं रामको मारूँगा, लक्ष्मणको मारूँगा, वानर सुग्रीवको तथा अन्य वानरोंको उत्तम बाणोंसे मारूँगा ॥ ११ ॥ आज वानरोंकी बड़ी सेनाको शूल गिराकर मैं जलाऊँगा, जिस प्रकार आग सूखी घास जलाती है ॥ १२ ॥ मकराक्षके वचन सुनकर सभी बलवान राक्षस अस्त्र-शस्त्र लेकर सावधान हो गये । उन राक्षसोंके केश बिखरे हुए थे, वे देखनेमें भयङ्कर थे, हाथीके समान चिंघाड़ रहे थे, उनके दाँत बड़े और आँखें पीली थीं; वे क्रूर राक्षस इच्छानुसार रूप

शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः। क्ष्वेलितास्फोटितानां च तत्र शब्दो महानभूत् ॥१६॥
प्रभ्रष्टोऽथ करात्तस्य प्रतोदः सारथेस्तदा। पपात सहसा दैवाद्ध्वजस्तस्य तु रक्षसः ॥१७॥
तस्य ते रथसंयुक्ता हया विक्रमवर्जिताः। चरणैराकुलैर्गत्वा दीनाः सास्रमुखा ययुः ॥१८॥
प्रवाति पवनस्तस्मिन्सपांसुः खरदारुणः। निर्याणे तस्य रौद्रस्य मकराक्षस्य दुर्मतेः ॥१९॥
तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा वीर्यवत्तमाः। अचिन्त्य निर्गताः सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२०॥
घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः।
अहमहमिति युद्धकौशलास्ते रजनिचराः परिबभ्रमुर्नदन्तः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

नवसप्ततितमः सर्गः ७९

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुंगवाः। आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥१॥
ततः प्रवृत्तं सुमहत्तद्युद्धं लोमहर्षणम्। निशाचरैः प्लवंगानां देवानां दानवैरिव ॥ २ ॥
वृक्षशूलनिपातैश्च गदापरिघपातनैः। अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥ ३ ॥
शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः। पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च बाणपातैः समन्ततः ॥ ४ ॥
पाशमुद्गरदण्डैश्च निर्घातैश्चापरैस्तथा। कदनं कपिसिंहानां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥ ५ ॥

धर सकते थे। महाकाय वे राक्षस विशालशरीर खरपुत्रको घेरकर पृथिवीको कँपाते हुए चले ॥१३—१५॥ हजारों शंख और भेरीके शब्दका और वानरोंके खेलकूदका बड़ा कोलाहल हुआ ॥ १६ ॥ उस राक्षसके सारथिके हाथसे सहसा कोड़ा गिर पड़ा और ध्वजा भी अकस्मात् गिर गयी ॥१७॥ उसके रथमें जुते घोड़े बलहीन हो गये, थोड़ी दूरतक वे व्याकुल होकर चले, पुनः रोते-रोते चलने लगे ॥ १८ ॥ उस समय रूखी और भयानक वायु धूलके साथ बहने लगी, जिस समय वह मूर्ख भयानक राक्षस प्रस्थित हुआ ॥१९॥ बल-वान राक्षसोंने इन अशकुनोंकी ओर ध्यान न दिया और वे राम-लक्ष्मणके पास गये ॥२०॥ मेघ हाथी और भैंसेके शरीरके समान उनके शरीरके रंग थे, युद्धोंमें तलवार और गदासे उनके शरीर कई वार कट चुके थे, 'मैं, मैं', करते हुए वे युद्ध-निपुण राक्षस भ्रमण करने लगे ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अठहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७८ ॥

मकराक्ष लङ्कासे निकलता है यह देखकर सभी प्रधान वानर युद्ध करनेकी इच्छासे तयार हो गये ॥ १ ॥ राक्षस और वानरोंका वह युद्ध देवता दानवोंके युद्धके समान बड़ाही भयङ्कर प्रारम्भ हुआ ॥ २ ॥ वृक्ष और शूल फेंककर, गदा और परिघ फेंककर राक्षस और वानर एक दूसरेको मारने लगे ॥ ३ ॥ शक्ति, तलवार, गदा, भाला, तोमर, पट्टिश, भिन्दिपाल, बाणवर्षा, पाश, मुद्गर, दण्ड तथा अन्य प्रकारके आघातसे राक्षस वानरोंको व्यथित करने लगे ॥ ४, ५ ॥ खरपुत्रने बाणवर्षासे वानरोंको

बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः। संभ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः॥ ६॥
तान्दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान्वनौकसः। नेदुस्ते सिंहवद्दृप्ता राक्षसा जितकाशिनः॥ ७॥
विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः। रामस्तान्वारयामास शरवर्षेण राक्षसान्॥ ८॥
वारितान्राक्षसान्दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः। कोपानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत्॥ ९॥
तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं भविष्यति। त्याजयिष्यामि ते प्राणान्धनुर्मुक्तैः शतैः शिरैः॥१०॥
यत्तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान्मम। तदग्रतः स्वकर्मस्थं स्मृत्वा रोषोऽभिवर्धते॥११॥
दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन्मम राघव। यन्मयासि न दृष्टस्त्वं तस्मिन्काले महावने॥१२॥
दिष्ट्यासि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह। काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः॥१३॥
अद्य मद्बाणवेगेन प्रेतराड्विषयं गतः। ये त्वया निहताः शूराः सह तैश्च वसिष्यसि॥१४॥
बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम। पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे॥१५॥
अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा रणाजिरे। अभ्यस्तं येन वा राम वर्ततां तेन वा मृधम्॥१६॥
मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः। अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम्॥१७॥
कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि ते। न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात्॥१८॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः। त्रिशिरा दूषणश्चापि दण्डके निहतो मया॥१९॥
स्वाशिताश्चापि मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः। भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुशाः॥२०॥

पीड़ित किया, इससे वे घबड़ा गये और भयभीत होकर इधर-उधर भागे॥६॥ उन वानरोंको भागते देखकर जीतसे प्रसन्न सभी राक्षस गर्वसे सिंहके समान गर्जन करने लगे॥ ७॥ इधर-उधर जब वानर भागने लगे तब रामचन्द्रने बाणवृष्टि करके राक्षसोंको रोका॥ ८॥ राक्षस रोक दिये गये यह देखकर राक्षस मकराक्ष अत्यन्त क्रोधित होकर यह वचन बोला॥ ९॥ राम! ठहरो, मेरे साथ तुम्हारा द्वन्द्वयुद्ध होगा। धनुषसे तीखे बाण छोड़कर मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगा॥ १०॥ जिस समय दण्डकारण्यमें तुमने मेरे पिताको मारा था, तभीसे इस राक्षसवधके काममें लगे हुए तुम्हारा स्मरण करके मेरा क्रोध बढ़ रहा था॥ ११॥ उस युद्धके समय उस दण्डकारण्यमें मुझसे तुम्हारी भेंट न हो सकी, इस कारण, दुरात्मन् राघव! तभीसे मेरे अङ्ग जल रहे हैं॥ १२॥ राम, यह प्रसन्नताकी बात है कि आज तुमको मेरा दर्शन मिला, बहुत दिनोंसे मैं तुम्हें चाहता था, जिस प्रकार क्षुधित सिंह दूसरे पशुओंको चाहता है॥ १३॥ आज मेरे बाणोंसे तुम यमराजके देशमें जाओगे और वहाँ जिन वीरोंको तुमने मारा है उनके साथ निवास करोगे॥ १४॥ राम! अधिक कहनेसे लाभ क्या, तुम मेरी बात सुनो, सभी लोग इस रणक्षेत्रमें तुमको और मुझको देखें॥ १५॥ अस्त्रोंसे, गदासे या बाहुओंसे युद्धमें जैसा तुम्हारा अभ्यास हो, राम! उसीके द्वारा तुम मुझसे युद्ध करो॥ १६॥ बढ़-बढ़कर बोलनेवाले मकराक्षके वचन सुनकर दशरथपुत्र रामचन्द्रने हँसकर उसे उत्तर दिया॥ १७॥ राक्षस, बहुतसी वीरोंके न कहनेयोग्य आत्मप्रशंसाकी बातें तुम क्यों कहते हो, बिना युद्धके केवल वचनोंसे युद्धमें कोई जीत नहीं सकता॥ १८॥ चौदह हजार राक्षसोंके साथ तुम्हारे जो पिता थे उनको और त्रिशिरा तथा दूषणको दण्डकारण्यमें मैंने मारा था॥ १९॥ तीखे दाँत

राघवेणैवमुक्तस्तु मकराक्षो महाबलः । बाणौघानमुचत्तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥२१॥
ताञ्छराञ्छरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा । निपेतुर्भुवि विच्छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सुवाससः ॥२२॥
तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा । खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥२३॥
जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोरिव । धनुर्मुक्तः स्वनोऽन्योन्यं श्रूयते च रणाजिरे ॥२४॥
देवदानवगन्धर्वाः किंनराश्च महोरगाः । अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥२५॥
विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते बलम् । कृतप्रतिकृतान्योन्यं कुरुतां तौ रणाजिरे ॥२६॥
राममुक्तांस्तु बाणौघान्राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे । रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥२७॥
बाणौघवितताः सर्वा दिशश्च प्रदिशस्तथा । संछन्ना वसुधा चैव समन्तान्न प्रकाशते ॥२८॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे । अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥२९॥
भित्त्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत् । विरथो वसुधास्थः स मकराक्षो निशाचरः ॥३०॥
तत्तिष्ठद्वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना । त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥३१॥
दुरवापं महच्छूलं रुद्रदत्तं भयंकरम् । जाज्वल्यमानमाकाशे संहारास्त्रमिवापरम् ॥३२॥
यं दृष्ट्वा देवताः सर्वा भयार्ता विद्रुता दिशः । विभ्राम्य च महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः ॥३३॥
स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महात्मने । तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम् ॥३४॥

और नखवाले गीध, सियार और कौए तुम्हारे मांससे तृप्त होकर भोजन करेंगे ॥ २० ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाबली मकराक्षने रामचन्द्रपर कई बाण फेंके ॥ २१ ॥ उस बाणवृष्टिके रामचन्द्रने कई टुकड़े कर दिये, वे सुवर्णपुङ्खवाले बाण कटकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥ खरराक्षसके पुत्र और दशरथके पुत्र इन दोनोंका बलपूर्वक वह युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ आकाशमें दो मेघोंके टक्करके शब्दके समान, धनुषकी ज्या और हाथके सम्पर्कसे धनुषसे निकला शब्द परस्पर सुनायी पड़ता था ॥ २४ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग, उस अद्भुत युद्ध को देखनेके लिए आकाशमें आये ॥ २५ ॥ दोनोंके शरीर छिद रहे थे, फिर भी उनका बल दुगुना बढ़ जाता था, युद्धक्षेत्रमें वे दोनोंपर घात प्रतिघात करते थे, एकके प्रहारका उत्तर दूसरा वैसेही प्रहारके द्वारा देता था ॥ २६ ॥ रामके छोड़े बाणोंको राक्षस अपने बाणोंसे काट डालता था और राम राक्षसके छोड़े बाणोंको अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर देते थे ॥ २७ ॥ दिशा और विदिशाएँ बाण-समूहसे भर गयीं, पृथिवी ढँक गयी और वह दिखायी न पड़ने लगी ॥ २८ ॥ अनन्तर क्रोध करके महाबाहु रामचन्द्रने उसका धनुष काट डाला और आठ बाणोंसे उसके सारथिको मारा ॥ २९ ॥ बाणोंसे रथको छेदकर और घोड़ोंको मारकर गिरा दिया, इससे मकराक्ष निशाचर रथहीन हो गया और पृथिवीपर आगया ॥ ३० ॥ पृथिवीमें खड़ा रहकर उस राक्षसने शूल उठाया, वह शूल प्रलयकालकी अग्निके समान भयङ्कर था और उससे सब प्राणी डरते थे ॥ ३१ ॥ उस महाशूलका पाना बड़ा कठिन है, वह रुद्रका दिया हुआ था और बड़ा भयङ्कर था, वह दूसरे संहारास्त्रके समान आकाशमें प्रकाशित हुआ ॥ ३२ ॥ उस शूलको देखकर सभी देवता भयभीत होकर दिशाओंमें भाग गये, निशाचरने उस प्रज्वलित बड़े शूलको आकाशमें घुमाकर क्रोध करके महात्मा रामचन्द्रपर फेंका । खरपुत्रके हाथसे छूटे

वाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः । स भिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः ॥
व्यशीर्यत महोल्केव रामवाणार्दितो भुवि ॥३५॥
तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा । साधु साध्विति भूतानि व्याहरन्ति नभोगताः ॥३६॥
तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः । मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥३७॥
स तं दृष्ट्वा पतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः । पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने ॥३८॥
तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे । संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥३९॥
दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् । लङ्कामेव प्रधावन्त रामबाणभयार्दिताः ॥४०॥
दशरथनृपसूनुबाणवेगै रजनिचरं निहतं खरात्मजं तम् ।
प्रददृशुरथ देवताः प्रहृष्टा गिरिमिव वज्रहतं यथा विकीर्णम् ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥



अशीतितमः सर्गः ८०

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः । रोषेण महताविष्टो दन्तान्कटकटाय्य च ॥ १ ॥
कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन् । आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ २ ॥
जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥ ३ ॥
त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे । किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥ ४ ॥

प्रज्वलित उस शूलको अपनी ओर आते देखकर रामचन्द्रने बाणोंसे उसे काट डाला, दिव्य सुवर्णभूषित उस शूलके कई टुकड़े हो गये, रामबाणसे कटकर वह महोल्काके समान बिखर गया ॥ ३३—३५ ॥ अक्लिष्टकर्मा रामके द्वारा उस शूलको व्यर्थ हुआ देखकर आकाशस्थ सभी प्राणी साधु-साधु कहने लगे ॥ ३६ ॥ मकराक्ष राक्षस शूलको व्यर्थ हुआ देखकर घूसा तानकर रामचन्द्रसे बोला ठहरो-ठहरो ॥ ३७ ॥ उसको आता देखकर रामचन्द्रने हँसकर आग्नेयास्त्र धनुषपर चढ़ाया ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रने उस अस्त्रसे राक्षसको मार डाला, उसका हृदय कट गया, वह गिरा और मर गया ॥ ३९ ॥ मकराक्षका गिरना देखकर सभी राक्षस राम-बाणके भयसे भीत होकर लंकाकी ओरही दौड़े ॥४०॥ दशरथपुत्र रामचन्द्रके बाणोंसे मरे हुए राक्षस खरके पुत्रको मरा देखकर देवता प्रसन्न हुए, जिस प्रकार वज्रके आघातसे पर्वत बिखर गये थे ॥४०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका उन्हत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७९ ॥

———:o*o:———

मकराक्ष मारा गया—यह सुनकर युद्धविजयी रावणने बहुत क्रोध किया। दाँत कटकटाकर 'इस समय क्या करना चाहिये' यह सोचता हुआ क्रोधपूर्वक उसने इन्द्रजितको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ १, २ ॥ वीर! महाबली राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको मारो, प्रत्यक्ष या परोक्ष होकर तुम उन्हें मारो, क्योंकि बलमें तुम उनसे अधिक हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे समान युद्धकरनेवाला दूसरा नहीं है, तुमने इन्द्रको जीता था,

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः । यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥ ५ ॥
जुह्वतश्चापि तत्राग्निं रक्तोष्णीषधराः स्त्रियः । आजग्मुस्तत्र संभ्रान्ता राक्षस्यो यत्र रावणिः ॥६॥
शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः । लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥७॥
सर्वतोऽग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः । छागस्य सर्वकृष्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥८॥
शरहोमसमिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः । बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं दर्शयन्ति च ॥ ९ ॥
प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसंनिभः । हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥१०॥
हुत्वाग्निं तर्पयित्वाथ देवदानवराक्षसान् । आरुरोह रथश्रेष्ठमन्तर्धानगतं शुभम् ॥११॥
स वाजिभिश्चतुर्भिस्तु बाणैस्तु निशितैर्युतः । आरोपितमहाचापः शुशुभे स्यन्दनोत्तमे ॥१२॥
जाज्वल्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छदः । मृगैश्चन्द्रार्धचन्द्रैश्च स रथः समलंकृतः ॥१३॥
जाम्बूनदमहाकम्बुर्दीप्तपावकसंनिभः । बभूवेन्द्रजितः केतुर्वैदूर्यसमलंकृतः ॥१४॥
तेन चादित्यकल्पेन ब्रह्मास्त्रेण च पालितः । स बभूव दुराधर्षो रावणिः सुमहाबलः ॥१५॥
सोऽभिनिर्याय नगरादिन्द्रजित्समितिंजयः । हुत्वाग्निं राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥१६॥
अद्य हत्वा रणे यौ तौ मिथ्या प्रव्रजितौ वने । जयं पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणेऽधिकम् ॥१७॥
अद्य निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं च लक्ष्मणम् । करिष्ये परमां प्रीतिमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥१८॥
आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः । तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विन्द्ररिपू रणे ॥१९॥

फिर क्या इन मनुष्योंका वध तुम युद्धमें न कर सकोगे ? ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहनेपर इन्द्रजितने पिताका वचन स्वीकार किया और यज्ञभूमिमें जाकर वह विधिपूर्वक हवन करने लगा ॥ ५ ॥ इन्द्रजित जहाँ अग्निमें हवन कर रहा था, वहाँ लाल पगड़ी लेकर शीघ्रतापूर्वक राक्षसस्त्रियाँ आयीं ॥ ६ ॥ शस्त्र शरपत्रके स्थानपर परिस्तरण बनाये गये, बहेड़े लकड़ी बने, कपड़े लाल बनाये गये और लोहेका स्रुवा बना ॥ ७ ॥ चारों ओर अग्नि फैलाकर शरपत्र और तोमरसे सर्वाङ्ग काले जीते बकरेका गला पकड़ा ॥ ८ ॥ शरके होमसे प्रज्वलित धूमहीन ज्वालावाले अग्निमें वे सब चिह्न देखे गये जो विजयके चिह्न हैं ॥ ९ ॥ तप्तसुवर्णके समान अग्निकी ज्वाला दक्षिणावर्त होकर निकली और उसने स्वयं हवि ग्रहण की ॥१०॥ अग्निमें हवन करके देवता, दानव और राक्षसोंका तर्पण करके, वह सुन्दर रथपर बैठा, जो रथ अन्तर्धान हो सकता था ॥११॥ चार घोड़ोंवाले रथपर वह इन्द्रजित धनुषपर तीखे बाण चढ़ाकर बैठा हुआ था और बड़ा सुन्दर मालूम होता था ॥ १२ ॥ वह शरीरसे जल रहा था, सुवर्ण-भूषित वस्त्र पहने हुए था, उसका रथ मृगा और अर्धचन्द्रके चित्रसे भूषित तथा ॥ १३ ॥ दीप्तअग्निके समान सुवर्णका वलय (शंख) इन्द्रजित्की ध्वजा था, और उसमें वैदूर्य जड़ा था ॥ १४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान ब्रह्मास्त्रसे वह रक्षित था, अतएव वह महाबली इन्द्रजित् अजेय हो गया ॥ १५ ॥ युद्धविजयी इन्द्रजित् लंकासे निकलकर राक्षसी यन्त्रोंसे अग्निमें हवन करके अन्तर्धान हो गया और बोला ॥ १६ ॥ जो वे दोनों व्यर्थ वनमें आये हैं, उन दोनोंको आज मारकर मैं अपने पिताको विशेष विजय दूँगा ॥ १७ ॥ आज राम और लक्ष्मणको मारकर तथा पृथिवीको वानरोंसे हीन करके परम प्रसन्नता प्राप्त करूँगा—ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया ॥ १८ ॥ रावणकी आज्ञासे क्रोध करके

स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव । सृजन्ताविषु जालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥२०॥
इमौ ताविति संचिन्त्य सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् । संततानिषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥२१॥
स तु वैहायसरथो युधि तौ रामलक्ष्मणौ । अचक्षुर्विषये तिष्ठन्विव्याध निशितैः शरैः ॥२२॥
तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ । धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः ॥२३॥
प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ । तमस्त्रैः सूर्यसंकाशैर्नैव पस्पर्शतुः शरैः ॥२४॥
स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः । दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान्नीहारतमसा वृतः ॥२५॥
नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः । शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥२६॥
घनान्धकारे तिमिरे शिलावर्षमिवाद्भुतम् । स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥२७॥
स रामं सूर्यसंकाशैः शरैर्दत्तवरैर्भृशम् । विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥२८॥
तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ । हेमपुङ्खान्नरव्याघ्रौ तिग्मान्मुमुचतुः शरान् ॥२९॥
अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः । निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणिताप्लुताः ॥३०॥
अतिमात्रं शरौघेण दीप्यमानौ नरोत्तमौ । तानिषून्पततो भल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥३१॥
यतो हि ददृशाते तौ शरान्निपतिताञ्छितान् । ततस्तु तौ दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥३२॥
रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथोऽपतत् । विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रौ निशितैः शरैः ॥३३॥

इन्द्रजित् धनुष और तीखे बाण लेकर युद्धक्षेत्रमें आया ॥१९॥ तीन सिरवाले हाथीके समान पराक्रमी राम-लक्ष्मणको, जो वानरोंके बीचमें रहकर बाणवर्षा कर रहे थे, इन्द्रजित्ने देखा ॥ २० ॥ येही वे दोनों हैं ऐसा निश्चय करके, उसने धनुषपर रोंदा चढ़ाया और पानी बरसानेवाले मेघके समान वह बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ उसका रथ आकाशमें था, वहींसे छिपकर वह राम और लक्ष्मणको तीखे बाणोंसे वेधने लगा ॥ २२ ॥ राम और लक्ष्मण उसके बाणोंसे भर गये, तब उन दोनोंने धनुषपर दिव्य अस्त्र चढ़ाया ॥ २३ ॥ महाबली राम और लक्ष्मणने बाणोंसे आकाशको ढँक दिया, पर वे उन तीखे सूर्यके समान प्रकाशमान बाणोंसे उस इन्द्रजित्का स्पर्श न कर सके ॥ २४ ॥ उसने धूँएके अन्धकारसे आकाशको ढँक दिया, उस समय कुहरेमें छिप जानेके कारण दिशाओंका भी ज्ञान नहीं होता था ॥ २५ ॥ धनुषसे बाण छूटनेके समय ज्याका शब्द नहीं होता था, रथ और घोड़ोंके टापका भी शब्द नहीं होता था, इधर-उधर भ्रमण करनेवाला इन्द्रजित् भी दिखायी नहीं पड़ता था ॥ २६ ॥ उस घने अन्धकारमें पत्थरकी वृष्टिके समान, महाबाहु इन्द्रजित्, बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ २७ ॥ वरमें प्राप्त सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे क्रोध करके वह युद्धमें रामचन्द्रके समस्त शरीर छेदने लगा ॥ २८ ॥ जिस प्रकार जलधारासे पर्वत आहत होता है उसी प्रकार राम और लक्ष्मण बाणवृष्टिसे आहत होने लगे । वे दोनों सुवर्णपुंखके तीखे बाण छोड़ने लगे ॥ २९ ॥ कङ्कपक्षीके समान पंखवाले रामचन्द्रके बाण आकाशमें इन्द्रजित्को छेदकर और रुधिराप्लुत होकर भूमिपर गिरे ॥ ३० ॥ नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण बाणवृष्टिसे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और इन्द्रजित्के चलाये बाणोंको भालेसे काटने लगे ॥ ३१ ॥ राम और लक्ष्मण जिस ओरसे तीखे बाणोंको आते देखते थे, उसी ओर अपने उत्तम अस्त्रोंको फेंकते थे ॥ ३२ ॥ अतिरथ इन्द्रजित् रथपर चढ़कर

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहतैः । बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥३४॥
नास्य वेगगतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान् । न चास्य विदितं किंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥३५॥
तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः । बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥३६॥
लक्ष्मणस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् । ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥३७॥
तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥३८॥
अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् । पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि ॥३९॥
तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज । आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥४०॥
तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात् । राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥४१॥

यद्येष भूमिं विशते दिवं वा रसातलं वापि नभस्तलं वा ।
एवं विगूढोऽपि ममास्त्रदग्धः पतिष्यते भूमितले गतासुः ॥४२॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः ।
वधाय रौद्रस्य नृशंसकर्मणस्तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते ॥४३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

सब दिशाओंसे घूम आया और शीघ्र अस्त्रचलानेवाले राम और लक्ष्मणको तीखे बाणोंसे मारा ॥ ३३ ॥ सुवर्णपुंखवाले दृढ़ बाणोंसे इन्द्रजित्‌के द्वारा विद्ध होनेपर राम और लक्ष्मण पुष्पित पलाशवृक्षके समान मालूम होते थे ॥३४॥ इन्द्रजित्‌के वेग, रूप, धनुष और बाणोंको कोई नहीं देख सकता था, वह कहाँ है इसका भी पता किसीको नहीं है, जिस प्रकार मेघोंमें छिपनेसे सूर्य अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार वह भी अदृश्य हो गया था ॥ ३५ ॥ उसके बाणोंके द्वारा विद्ध वानर मारे गये थे। इस प्रकार सैकड़ों निष्प्राण होकर पृथिवीपर पड़े थे ॥ ३६ ॥ अनन्तर क्रोधकरके लक्ष्मण भाईसे बोले—समस्त राक्षसोंके बधके लिए अब मैं ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करता हूँ ॥३७॥ शुभलक्षण लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले—एकके लिए पृथिवीके समस्त राक्षसोंको मारना उचित नहीं है ॥ ३८ ॥ जो लड़ता नहीं, जो छिपा हो, जो हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, जो भागता जाता हो, जो पागल हो—इन सबको तुम्हें मारना उचित नहीं ॥ ३९ ॥ महाभुज! इसीको मारनेका मैं प्रयत्न करता हूँ। अतएव वेगवान् सूर्यके समान भयङ्कर अस्त्रोंका हमलोग प्रयोग करें ॥ ४० ॥ इस ओछे मायावी राक्षसको, जिसने अपना रथ छिपा रखा है, वानरसेनापति भी मार सकते थे, यदि यह दिखायी पड़ता ॥ ४१ ॥ यदि यह पृथिवीपर आवे, अन्तरिक्षमें, पातालमें या आकाशमें छिपे मेरे अस्त्रोंसे जलकर यह पृथिवीपर निष्प्राण होकर मरेगा ॥ ४२ ॥ इस प्रकार गम्भीर अर्थका वचन कहकर वानरोंसे घिरे हुए महात्मा रामचन्द्र भयानक घातक राक्षसके वधके लिए शीघ्रही विचार करने लगे ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अस्सीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः । स निवृत्त्याहवात्तस्मात्प्रविवेश पुरं ततः ॥ १ ॥
सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम् । क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः ॥ २ ॥
स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः । इन्द्रजित्सुमहावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥ ३ ॥
इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥
इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा । बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥ ५ ॥
मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः । हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥
तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं सर्वे ते काननौकसः । उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥ ७ ॥
हनूमान्पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः । प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥ ८ ॥
स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे । एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥ ९ ॥
परिक्लिष्टैकवसनाममृजां राघवप्रियाम् । रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥१०॥
तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीमध्यवस्य च । बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥११॥
अब्रवीत्तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनीम् । दृष्ट्वा रथस्थितां दीनां राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥१२॥
किं समर्थितमस्येति चिन्तयन्स महाकपिः । सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥१३॥
तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः । कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतामकर्षयत् ॥१४॥

दिव्य अस्त्रसे ये मुझे मारना चाहते हैं यह महात्मा रामचन्द्रके मनका अभिप्राय जानकर इन्द्रजित युद्ध छोड़कर लंकानगरीमें गया ॥ १ ॥ पुनः बली कुम्भकर्ण आदि राक्षसोंका वध स्मरण करके वीर इन्द्रजित् लंकासे पुनः निकला । उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं थी ॥ २ ॥ रावणका पुत्र देवताओंका शत्रु महाबली इन्द्रजित लंकाके पश्चिम द्वारसे राक्षसोंके साथ निकला ॥ ३ ॥ इन्द्रजित्‌ने देखा कि राम और लक्ष्मण दोनों भाई युद्धके लिये अत्यन्त उत्साहसे तय्यार हैं, यह देखकर उसने माया रची ॥ ४ ॥ उसने मायाकी सीता अपने रथपर रखी और बड़ी सेनासे घिरे हुए उसने उस सीताका वध करनेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ उस दुष्टने सबको भ्रममें डालनेका निश्चय किया अतएव, मायाकी सीताका वध करनेके लिए वानरोंकी ओर चला ॥ ६ ॥ उसको अपनी ओर आते देखकर वे सभी वनवासी क्रोध करके युद्धकी इच्छासे पत्थर लेकर उसकी ओर बढ़े ॥ ७ ॥ पर्वतका बड़ा शिखर, जो दूसरेके उठाये न उठे, लेकर वानरश्रेष्ठ हनुमान उन सबके आगे-आगे चले ॥ ८ ॥ उन्होंने इन्द्रजितके रथपर सीताको देखा वह उदास थीं, उपवाससे उनका मुख सूख गया था, वे दुबली थीं और एक वेणी धारण किये हुए थीं ॥ ९ ॥ उनकी धोती मैली थी, शरीरका संस्कार नहीं हुआ था, धूल और मैलसे उनका समस्त शरीर भर गया था, हनुमानने इस प्रकार श्रेष्ठस्त्री सीताको देखा ॥१०॥ थोड़ी देरतक देखकर हनुमानने सीताको पहिचाना, क्योंकि सीताको हनुमानको देखे बहुत दिन हो गये थे ॥ ११ ॥ निरानन्द दुःखिनी सीताको इन्द्रजित्‌के साथ रथपर बैठी देखा, वे शोकसे पीड़ित थीं । हनुमान सोचने लगे कि इस इन्द्रजित्‌का अभिप्राय क्या है, पुनः वे वीर वानरोंके साथ इन्द्रजितकी ओर चले ॥ १२, १३ ॥ उस वानरीसेनाको देखकर इन्द्रजित्‌ने बड़ा

तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः । क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥१५॥
गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान्दैन्यमागतः । दुःखजं वारि नेत्राभ्यामुत्सृजन्मारुतात्मजः ॥१६॥
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम् । अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम् ॥१७॥
दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः । ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ॥१८॥
धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी । नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम ॥
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥१९॥
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली । किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हंसि निर्दय ॥२०॥
सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यसि कथंचन । वधार्हकर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥२१॥
ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः । इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान्प्रति लप्स्यसे ॥२२॥
इति ब्रुवाणो हनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः । अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥२३॥
आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् । रक्षसां भीमकोपानामनीकेन न्यवारयत् ॥२४॥
स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् । हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥२५॥
सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः । तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥२६॥
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर । सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥२७॥
न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवंगम । पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥२८॥

क्रोध किया, उसने तलवार निकाली और सीताका गला पकड़कर खींचा ॥ १४ ॥ मायाकी बनी, रथपर बैठी, राम-राम चिल्लानेवाली उस स्त्रीको वानरोंके सामनेही राक्षस मारने लगा ॥ १५ ॥ उसके बाल पकड़े गये हैं यह देखकर हनुमान बहुत दुःखी हुए और वे आँखोंसे दुःखके आँसू बहाने लगे ॥ १६ ॥ सर्वाङ्ग-सुंदरी रामको प्रिय महारानीको उस अवस्थामें देखकर वे क्रोध करके इन्द्रजितसे बोले ॥ १७ ॥ दुरात्मन् ! अपने नाशके लिए इसका केश पकड़ रहे हो, तुम ब्रह्मर्षिकुलमें उत्पन्न होकर भी राक्षस होगये हो ॥१८॥ तुम्हारी ऐसी बुद्धि है, इस प्रकार पापाचरण करनेवाले तुमको धिक्कार, तुम नृशंस हो, अनार्य हो, दुराचारी हो, ओछे हो, पापी हो, नीच काम करनेमें तुम्हें घृणा नहीं है ॥ १९ ॥ यह सीता घरसे, राज्यसे और रामचन्द्र-के साथसे बिछुड़ी हुई है, तुम्हारा इसने क्या अपराध किया है, जो तुम इसको मार रहे हो ॥ २० ॥ सीता-को मारकर तुम बहुत देरतक जीवित नहीं रह सकते, हे वधार्ह ! तुम इस कामसे शीघ्रही मरोगे, क्योंकि इस समय तुम हमारे हाथमें हो ॥ २१ ॥ महापापी भी जिन लोकोंकी निन्दा करते हैं, वे भी जिन लोकोंमें जाना पसन्द नहीं करते, तुम स्त्रीघातियोंके उन्हीं लोकोंमें यहाँ प्राण छोड़कर जाओगे ॥ २२ ॥ ऐसा कहकर अस्त्रधारी वानरोंके साथ हनुमानने क्रोध करके राक्षसराजके पुत्रपर आक्रमण किया ॥ २३ ॥ महाबली वानरोंकी आती हुई सेनाको अत्यन्त क्रोधी राक्षसोंकी सेनाने रोका ॥ २४ ॥ हजारों बाणोंसे वानरीसेनाको क्षुभित करके वानरश्रेष्ठ हनुमानसे इन्द्रजित् इस प्रकार बोला ॥ २५ ॥ सुग्रीव, तुम और राम जिसके लिए यहाँ आए हो उसको आजही तुम्हारे सामने मैं मारूँगा ॥ २६ ॥ वानर ! इसको मारकर रामको, लक्ष्मणको, तुमको, सुग्रीवको और उस अनार्य विभीषणको मैं मारूँगा ॥२७॥ वानर ! स्त्रियोंको नहीं मारना चाहिए—

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् । शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥२९॥
यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी । सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥३०॥
तामिन्द्रजित्स्त्रियं हत्वा हनूमन्तमुवाच ह । मया रामस्य पश्येमां प्रियां शस्त्रनिषूदिताम् ॥
एषा विशस्ता वैदेही निष्फलो वः परिश्रमः ॥३१॥
ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् । हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम् ॥३२॥
वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः । व्यादितास्यस्य नदतस्तद्दुर्गं संश्रितस्य तु ॥३३॥
तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः ।
तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा विषण्णरूपाः समभिप्रदुद्रुवुः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२

श्रुत्वा तं भीमनिर्ह्रादं शक्राशनिसमस्वनम् । वीक्षमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरा भृशम् ॥ १ ॥
तानुवाच ततः सर्वान्हनूमान्मारुतात्मजः । विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतः पृथक् ॥ २ ॥
कस्माद्विषण्णवदना विद्रवध्वं प्लवंगमाः । त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम् ॥
पृष्ठतो न व्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे ॥ ३ ॥
एवमुक्ताः सुसंक्रुद्धा वायुपुत्रेण धीमता । शैलशृङ्गान्द्रुमांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ४ ॥

जो तुम कह रहे हो, इसके सम्बन्धमें यही कहना है कि जिस कामसे शत्रुको दुःख हो वह काम करनाही चाहिए ॥२८॥ हनुमानसे ऐसा कहकर रोती हुई मायाकी सीताको तेज तलवारसे इन्द्रजितने स्वयं मारा ॥२९॥ यज्ञोपवीतके स्थानपर (बीचसे) उसने बिचारी सीताको काट डाला, पृथुश्रोणी, प्रियदर्शिनी सीताए पृथिवीपर गिर पड़ी ॥ ३० ॥ उस स्त्रीको मारकर इन्द्रजित् हनुमानसे बोला—देखा, रामकी प्रियाको मैंने शस्त्रसे मार डाला । सीता मारी गयी, अब तुम लोगोंका परिश्रम व्यर्थ है ॥ ३१ ॥ बड़ी तलवारसे स्वयं सीताको मारकर इन्द्रजित् बड़ा प्रसन्न हुआ और वह गर्जन करने लगा ॥ ३२ ॥ पासही ठहरे हुए वानरोंने आकाशरूपी किलेमें रक्षित होकर, मुँह खोलकर निकाले हुए शब्द सुने ॥ ३३ ॥ दुष्ट रावणपुत्र सीताको मारकर प्रसन्न हुआ, उसको प्रसन्न देखकर वानर दुःखी हुए और वे एक साथ भागे ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकासीवा सर्ग समाप्त ॥ ८१ ॥

इन्द्रके वज्रके समान भयानक गर्जन सुनकर वानर दसों दिशाओंकी ओर देखते हुए इधर-उधर भागे ॥ १ ॥ उतरेमुँह, दुःखी, डरेहुए तथा इधर-उधर भागते हुए उन वानरोंसे वायुपुत्र हनुमान बोले ॥ २ ॥ तुम्हारा मुँह क्यों उतरा हुआ है, तुमलोग क्यों भाग रहे हो, युद्धका उत्साह तुमलोगोंमें कम क्यों हो गया, तुम्हारी वीरता कहाँ गयी । मैं युद्धक्षेत्रमें आगे-आगे चल रहा हूँ, तुमलोग मेरे पीछे आओ ॥ ३ ॥

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान्वानरर्षभाः। परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥ ५ ॥
स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान्सर्वतो वृतः। हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ६ ॥
स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः। वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः ॥ ७ ॥
स तु शोकेन चाविष्टः कोपेन महता कपिः। हनूमान्रावणिरथे महतीं पातयच्छिलाम् ॥ ८ ॥
तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथं सारथिना तदा। विधेयाश्वसमायुक्तो विदूरमपवाहितः ॥ ९ ॥
तमिन्द्रजितमप्राप्य रथस्थं सहसारथिम्। विवेश धरणीं भित्त्वा सा शिला व्यर्थमुद्यता ॥१०॥
पतितायां शिलायां तु व्यथिता रक्षसां चमूः। निपतन्त्या च शिलया राक्षसा मथिता भृशम् ॥११॥
तमभ्यधावञ्शतशो नदन्तः काननौकसः। ते द्रुमांश्च महाकाया गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः ॥१२॥
क्षिपन्तीन्द्रजितं संख्ये वानरा भीमविक्रमाः। वृक्षशैलमहावर्षं विसृजन्तः प्लवंगमाः ॥१३॥
शत्रूणां कदनं चक्रुर्नेदुश्च विविधैः स्वनैः। वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपा निशाचराः ॥१४॥
वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यचेष्टन्त रणक्षितौ। स सैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ॥१५॥
प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ। स शरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥१६॥
जघान कपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः। शूलैरशनिभिः खड्गैः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः ॥
ते चाप्यनुचरांस्तस्य वानरा जघ्नुराहवे ॥१७॥
सुस्कन्धविटपैः शैलैः शिलाभिश्च महाबलः। हनूमान्कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥१८॥
संनिवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः। हनूमान्संनिवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम् ॥१९॥

बुद्धिमान् वायुपुत्रके ऐसा कहनेपर सभी वानर प्रसन्न हुए और क्रोधकरके पत्थर तथा वृक्ष लेकर चले ॥ ४ ॥ वानर गर्जते हुए राक्षसोंके पास पहुँचे, वे हनुमानको घेर कर युद्धक्षेत्रमें जा रहे थे ॥ ५ ॥ हनुमान उन वीर वानरोंमें चारों ओरसे घिर गये थे, वे धधकती आगके समान शत्रुसेनाको जलाने लगे ॥ ६ ॥ वानरीसेनासे घिरे हुए प्रलयकालके यमराजके समान हनुमान राक्षसोंका विनाश करने लगे ॥ ७ ॥ सीतावधके शोक और क्रोधसे युक्त वानर हनुमानने रावणपुत्रके रथपर बहुत बड़ा पत्थर पटका ॥ ८ ॥ आते हुए पत्थरको देखकर सारथिने आज्ञावर्ती घोड़ोंसे रथको दूर हटवा दिया ॥ ९ ॥ रथपर बैठे इन्द्रजित् और सारथिको न पाकर व्यर्थ फेंका हुआ वह पत्थर पृथिवी फोड़कर भीतर चला गया ॥ १० ॥ पत्थरके गिरनेसे राक्षसोंकी सेना बहुत व्यथित हुई, गिरते-गिरते उस पत्थरने अनेक राक्षसोंको चूर कर डाला ॥११॥ गर्जते हुए सैकड़ों वानर वृक्ष और पर्वतशिखर उखाड़कर इन्द्रजित्‌की ओर दौड़े ॥१२॥ भीमपराक्रमी वानर युद्धमें इन्द्रजित्‌पर पत्थरों और वृक्षोंकी वर्षा करने लगे ॥ १३ ॥ भयङ्कर वानर युद्धमें शत्रुओंका नाश करके अनेक प्रकारके गर्जन करने लगे, भयङ्कर रूपवाले राक्षसोंको उन्होंने बलपूर्वक वृक्षोंसे मारा, जिससे युद्धक्षेत्रमें वे छटपटाने लगे। वानरोंके द्वारा पीड़ित अपनी सेनाको देखकर इन्द्रजित्‌ने अस्त्र उठाया और वह शत्रुओंकी ओर चला। अपनी सेनासे वेष्टित होकर वह बाणवर्षा करने लगा ॥१४—१६॥ दृढ़पराक्रमी इन्द्रजित्‌ने अनेक वानरोंको शूल, वज्र, तलवार, पट्टिश तथा मुद्गरसे मारा। वानरोंने भी इन्द्रजित्‌के साथियोंको मारा ॥ १७ ॥ डालपत्तोंवाले शालवृक्षों और पत्थरोंसे हनुमान, भयानक काम

त्यक्त्वा प्राणान्विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः । यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ॥२०॥
इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च । तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्यामहे वयम् ॥२१॥
इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन्सर्ववानरान् । शनैःशनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ॥२२॥
ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः । स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम् ॥२३॥
निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित् । यज्ञभूम्यां ततो गत्वा पावकस्तेन रक्षसा ॥२४॥
हूयमानः प्रजज्वाल होमशोणितभुक्तदा । सार्चिः पिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः ॥
संध्यागत इवादित्यः सुतीव्रोऽग्निः समुत्थितः ॥२५॥
अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु जुहाव हव्यं विधिना विधानवित् ।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते महासमूहेषु नयानयज्ञाः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥८२॥



त्र्यशीतितमः सर्गः ८३

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् । श्रुत्वा सङ्ग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १ ॥
सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम् । श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ २ ॥
तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः । क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥ ३ ॥

करनेवाले राक्षसोंका विनाश करने लगे ॥ १८ ॥ शत्रुसेनाको रोककर हनुमान वानरोंसे बोले—इस सेनासे लड़ना हमलोगोंके लिए साध्य नहीं है, इसलिए आपलोग लौट चलें ॥ १९ ॥ जिसके लिए प्राणोंका मोह छोड़कर हमलोग रामका हित चाहनेवाले अनेक तरहके उपाय करते हैं, युद्ध करते हैं, वह जानकी मारी गयी ॥ २० ॥ ये सब बातें राम और सुग्रीवसे हमलोग कहेंगे, वे लोग इसका जो प्रतिविधान सोचेंगे, वही हमलोग करेंगे ॥ २१ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान ऐसा कहकर सब वानरोंके साथ धीरे-धीरे निर्भय होकर वहाँसे लौट आये ॥२२॥ हनुमान् रामचन्द्रके पास जा रहे हैं—यह देखकर दुष्ट इन्द्रजित् होम करनेके लिए निकुम्भिलाके स्थानपर गया ॥२३॥ वहाँ जाकर इन्द्रजित् अग्निमें हवन करने लगा । अनन्तर यज्ञभूमिमें जाकर उस राक्षसके हवन करनेपर रुधिर-रूपी हवि खानेवाला अग्नि प्रज्वलित हुआ, रुधिरके हवनसे तृप्त ज्वालावाला अग्नि दिखायी पड़ा । सायंकालके सूर्यके समान लालवर्णका वह अग्नि उठा ॥ २४, २५ ॥ विधि जाननेवाला इन्द्रजित् राक्षसोंके कल्याणके लिए विधिपूर्वक अग्निमें हव्यका हवन करने लगा युद्धोंमें कर्तव्याकर्तव्य समझनेवाले राक्षस देख रहे थे ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बयासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥



राक्षस और वानरोंके संग्रामका शब्द सुनकर रामचन्द्र जाम्बवानसे बोले ॥ १ ॥ सौम्य ! निश्चय हनुमानने कोई अद्भुत कर्म किया है, क्योंकि यह भयानक शब्द सुनायी पड़ता है ॥ २ ॥ ऋक्षपति, इस

ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः । आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनूमान्यत्र वानरः ॥ ४ ॥
अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिस्तदा । वानरैः कृतसङ्ग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् । नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत ॥ ६ ॥
स तेन सह सैन्येन संनिकर्षं महायशाः । शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः । जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥
उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिंदम । तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः । निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१०॥
तं भूमौ देवसंकाशं पतितं दृश्य राघवम् । अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥११॥
आसिञ्चन्सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः । प्रदहन्तमसंहार्यं सहसाग्निमिवोत्थितम् ॥१२॥
तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः । उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥१३॥
शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्यविजितेन्द्रियम् । अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥१४॥
भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम् । यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥१५॥
यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम् । नायमर्थस्तथा युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥१६॥
यद्यधर्मो भवेद्भूतो रावणो नरकं व्रजेत् । भवांश्च धर्मसंयुक्तो नैव व्यसनमाप्नुयात् ॥१७॥

कारण शीघ्र अपनी सेनाके साथ तुम जाओ और युद्ध करते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमानकी सहायता करो ॥ ३ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञा मानकर ऋक्षराज अपनी सेनाके साथ पश्चिम द्वारपर, जहाँ वानर हनुमान थे वहाँ, आये ॥ ४ ॥ ऋक्षपति जाम्बवानने हनुमानको लौटते देखा, युद्धसे थके हुए वानरोंसे घिरे हनुमान आ रहे थे ॥ ५ ॥ मार्गमें भालुओंकी तयार वह नीलमेघके समान भयंकर सेना हनुमानने देखी, उसे भी लौटाकर वे लौटे ॥ ६ ॥ महायशस्वी हनुमान उस सेनाके साथ लौटकर दुःखसे रामचन्द्रसे बोले ॥ ७ ॥ युद्धक्षेत्रमें हमलोग लड़ रहे थे, हमलोगोंके सामनेही रावणपुत्र इन्द्रजित्ने सीताको मारा ॥ ८ ॥ शत्रु-नाशन सीताको देखकर मेरा चित्त उद्भ्रान्त हो गया, मैं दुःखी होकर वह वृत्तान्त आपसे कहनेके लिए आया हूँ ॥ ९ ॥ हनुमानके वे वचन सुनकर रामचन्द्र शोकसे मूर्छित हो गये, वे उस वृक्षके समान भूमिपर गिर पड़े जिसकी जड़ कट गयी हो ॥ १० ॥ देवतुल्य रामचन्द्र पृथिवीपर गिर पड़े—यह देखकर सभी वानर कूदकर वहाँ एकत्रित हुए ॥ ११ ॥ सीताके शोकसे जलते हुए न बुझनेयोग्य सहसा उत्थित अग्निके समान रामचन्द्रको कमल आदिकी सुगन्धसे युक्त जलसे वानरोंने सिंचित किया ॥ १२ ॥ लक्ष्मणने बहुत दुःखी होकर दोनों हाथोंसे उन्हें पकड़ा और वे अस्वस्थ रामचन्द्रसे युक्ति तथा प्रयोजनयुक्त वचन बोले ॥१३॥ आर्य ! आप जितेन्द्रिय हैं, धर्ममार्गमें वर्तमान हैं, फिर भी धर्म दुःखोंसे आपकी रक्षा नहीं कर सकता, अतएव निरर्थक है ॥१४॥ स्थावर और जङ्गम प्राणियोंका जिस प्रकार प्रत्यक्ष होता है वैसा धर्मका नहीं होता, इसीसे मैं समझता हूँ कि धर्म नहीं है ॥१५॥ स्थावर जीव धर्माचरण नहीं करते, पर वे भी सुखी जंगमपशु आदि भी धर्माचरण नहीं करते वे भी सुखी है, अतएव धर्मसे सुख होता है यह बात नहीं है, क्योंकि आपके समान धर्मात्मा मनुष्य दुःख उठाता है ॥ १६ ॥ यदि अधर्मसे दुःख होता है—यह बात

तस्य च व्यसनाभावाद्व्यसनं चागते त्वयि । धर्मो भवत्यधर्मश्च परस्परविरोधिनौ ॥१८॥
धर्मेणोपलभेद्धर्ममधर्मं चाप्यधर्मतः । यद्यधर्मेण युज्येयुर्येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ॥१९॥
न धर्मेण वियुज्येरन्नाधर्मरुचयो जनाः । धर्मेणाचरतां तेषां तथा धर्मफलं भवेत् ॥२०॥
यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः । क्लिश्यन्ते धर्मशीलाश्च तस्मादेतौ निरर्थकौ ॥२१॥
वध्यन्ते पापकर्माणो यद्यधर्मेण राघव । वधकर्महतोऽधर्मः स हतः कं वधिष्यति ॥२२॥
अथवा विहितेनायं हन्यते हन्ति चापरम् । विधिः स लिप्यते तेन न स पापेन कर्मणा ॥२३॥
अदृष्टप्रतिकारेण अव्यक्तेनासता सता । कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्षण ॥२४॥
यदि सत्स्यात्सतां मुख्य नासत्स्यात्तव किंचन । त्वया यदीदृशं प्राप्तं तस्मात्तन्नोपपद्यते ॥२५॥
अथवा दुर्बलः क्लीबो बलं धर्मोऽनुवर्तते । दुर्बलो हृतमर्यादो न सेव्य इति मे मतिः ॥२६॥
बलस्य यदि चेद्धर्मो गुणभूतः पराक्रमे । धर्ममुत्सृज्य वर्तस्व यथा धर्मे तथा बले ॥२७॥
अथ चेत्सत्यवचनं धर्मः किल परंतप । अनृतं त्वय्यकरुणे किं न बद्धस्त्वया विना ॥२८॥

सिद्ध होती तो रावण नरकमें जाता और आप धर्मात्मा हैं इस कारण दुःख न उठाते ॥ १७ ॥ रावण पापी होकर दुःखी नहीं हैं और आप धर्मात्मा होकर दुःखी हैं, अतएव धर्म अधर्म होगया है और अधर्म धर्म, अर्थात् धर्म अधर्मका फल देता है और अधर्म धर्मका । अतएव ये परस्पर विरोधी हो गये हैं। अर्थात् अपना नियत फल नहीं देते ॥ १८ ॥ धर्मसे सुख मिलता है और अधर्मसे दुख, यह यदि नियम होता तो अवश्यही जो अधर्मका हैं उन्हें सदा दुःखही होता और जो धर्मपूर्वक चलनेवाले हैं उन्हें सदा सुखही होता, क्योंकि धर्माचरण करनेवालोंको उसका फल सुख मिलनाही चाहिए ॥ १९—२० ॥ पर देखा जाता है यह कि अधर्माचरण करनेवाले सुखी होते हैं और जो धर्मात्मा हैं वे दुःख उठाते हैं, इस कारण वे दोनों धर्म और अधर्म निरर्थक हैं, अथवा विपरीत फल देनेवाले हैं ॥२१॥ राम ! अधर्मसे पापी मारे जाते हैं, तो क्रियारूप अधर्म जब स्वयं नष्ट होजाता है तब नष्ट होनेपर यह किसीका वध करेगा (क्रिया तीनक्षणतक रहती है यह नियम है) ॥२२॥ यदि कहो कि विधिके द्वारा पापी नष्ट होता है और वह दूसरोंको नष्ट करता है, तो पापका फल विधिको ही मिलना चाहिए, पापीको नहीं । कर्मकी आज्ञाका नाम विधि है, उसीके कारण मनुष्य काम करता है, अतएव काम करनेमें कर्त्ता स्वाधीन न हुआ, फिर उसका फलभी कर्ताको न मिलना चाहिए ॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशन ! धर्म दुःखोंको दूर करता है यह देखा नहीं गया है, वह अव्यक्त है, दिखायी न पड़नेवाला है, अतएव कहना चाहिए वह है ही नहीं, पर वह माना जाता है, उस धर्मसे कल्याण कैसे पाया जासकता है ॥२४॥ हे सज्जनमुख्य ! यदि धर्म सत्होता तो तुम्हारा असत् अकल्याण कभी न होता, तुमने जो इतना दुःख उठाया है उससे मालूम होता है कि धर्म नहीं है ॥ २५ ॥ यदि मान भी लिया जाय कि धर्म है तो भी वह दुर्बल है, क्लीब है ऐसा मानना पड़ेगा, वह बलका अनुयायी है। मेरा मत है कि दुर्बल और मर्यादाहीनकी उपासना नहीं करनी चाहिए ॥२६॥ यदि बलका अनुयायी ही धर्म है तो पराक्रमसे व्यवहार करो, धर्मको छोड़ो, इस समय जिस प्रकार धर्ममें आरूढ़ हो, उसी प्रकार बलमें आरूढ़ होओ ॥ २७ ॥ यदि तुम सत्यपालनरूप धर्मका पालन कर रहे हो, पिताकी आज्ञा मानकर वनमें आये हो, तो राजाने पहले तुम्हें राज्य देनेको कहा था, फिर उसका

यदि धर्मो भवेद्भूत : अधर्मो वा परंतप । न स्म हत्वा मुनिं वज्री कुर्यादिज्यां शतक्रतुः ॥२९॥
अधर्मसंश्रितो धर्मो विनाशयति राघव । सर्वमेतद्यथाकामं काकुत्स्थ कुरुते नरः ॥३०॥
मम चेदं मतं तात धर्मोऽयमिति राघव । धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥३१॥
अर्थेभ्योऽथ प्रवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः । क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥३२॥
अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पचेतसः । विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥३३॥
सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः । पापमाचरते कर्तुं तदा दोषः प्रवर्तते ॥३४॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ३५
यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् । यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स गुणाधिकः ३६
अर्थस्यैते परित्यागे दोषाः प्रव्याहृता मया । राज्यमुत्सृजता वीर येन बुद्धिस्त्वया कृता ॥३७॥
यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम् । अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यं विचिन्वता ॥३८॥
हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः । अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥३९॥
येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् । तेऽर्थास्त्वयि न दृश्यन्ते दुर्दिनेषु यथा ग्रहाः ॥४०॥
त्वयि प्रव्रजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते । रक्षसापहृता भार्या प्राणैः प्रियतरा तव ॥४१॥

पालन तुमने क्यों नहीं किया ? यदि नहीं किया तो क्या तुम उसके लिये दोषी नहीं हो, क्या तुमने धर्मका यथार्थ पालन किया ? ॥२८॥ परन्तप, यदि धर्मही प्रधान होता अधर्म नहीं तो इन्द्र विश्वरूप मुनिको मारकर यज्ञ न करते । एकही से काम चल जाता, वे केवल धर्मही करते, हत्यारूप अधर्म न करते ॥ २९ ॥ अधर्मयुक्त धर्मसे शत्रुका नाश होता है, और केवल धर्मसे धर्मात्माका नाश होता है, अतएव यह सब धर्म और अधर्म अपनी इच्छाके अनुसार मनुष्य करता है ॥ ३० ॥ हे दयनीय राघव ! यह इच्छापूर्वक आचरण करना धर्म है यह मेरा मतहै, पर आपने तो राज्यका त्याग करते हुए धर्मका मूलही नष्ट कर दिया है ॥ ३१ ॥ इधर-इधरसे एकत्र करके बढ़ाये धर्मसे सब क्रियाएँ सिद्ध होती हैं, जिस प्रकार पर्वतसे नदियाँ निकलती हैं ॥ ३२ ॥ अर्थहीन अज्ञानी पुरुषकी सभी क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं, जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें छोटी नदियाँ सूख जाती हैं ॥ ३३ ॥ पहले सुखमें पला यह मनुष्य मिला हुआ धनका त्याग करके सुखकी इच्छासे अन्यायपूर्वक धर्मोपार्जन करने लगता है तब पाप होता है ॥ ३४ ॥ जिसके पास धन है उसीके मित्र हैं, उसीके बान्धव हैं, जिसके धन है वही लोकमें पुरुष है, वही पण्डित है ॥ ३५ ॥ जिसके धन है वह पराक्रमी है, जिसके धन है वह बुद्धिमान है, जिसके धन है वह भाग्यवान है, वीर है, जिसके धन है वही गुणवान है ॥ ३६ ॥ धनके छोड़नेके इतने दोष मैंने बतलाये, राज्य छोड़कर धन छोड़नेकी इच्छा आपने क्यों की यह मैं नहीं जानता ॥ ३७ ॥ जिसके धन है उसके धर्मकार्य सिद्ध होते हैं, धनके बिना अर्थकाम सिद्ध नहीं होते, चाहे उसके लिए पुरुषार्थही क्यों न किया जाय ॥३८॥ हर्ष, काम, दया, धर्म, क्रोध, शम, दम, राजन् ! ये सब अर्थसेही सिद्ध होते हैं ॥ ३९ ॥ जिन तपस्या करनेवाले धर्मात्माओंका यह लोक अर्थके बिना नष्ट हो जाता है वही अर्थ तुम्हारे पास नहीं है, जिस प्रकार बुरे दिन आनेपर अच्छे ग्रह नहीं रहते ॥ ४० ॥ पिताका वचन मानकर, जब तुमने

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् । कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥४२॥
उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो धृतव्रत । किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥४३॥
अयमनघ तवोदितः प्रियार्थं जनकसुतानिधनं निरीक्ष्य रुष्टः ।
सरथगजहयां सराक्षसेन्द्रां भृशमिषुभिर्विनिपातयामि लङ्काम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४

राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले । निक्षिप्य गुल्मान्स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥ १ ॥
नानाप्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिरभिसंवृतः । नीलाञ्जनचयाकारैर्मातंगैरिव यूथपैः ॥ २ ॥
सोऽभिगम्य महात्मनं राघवं शोकलालसम् । वानरांश्चापि ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥ ३ ॥
राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् । ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमाश्रितम् ॥ ४ ॥
व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः । अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥
विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् । लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः ॥ ६ ॥
हता इन्द्रजिता सीता इति श्रुत्वैव राघवः । हनूमद्वचनात्सौम्य ततो मोहमुपाश्रितः ॥ ७ ॥
कथयन्तं तु सौमित्रिं संनिवार्य विभीषणः । पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥ ८ ॥

वनके लिये प्रस्थान किया, तब प्राणोंसे प्रिय तुम्हारी स्त्रीका हरण राक्षसने किया ॥ ४१ ॥ वीर, इन्द्रजित्‌ने आज जो हम लोगोंको दुःख दिया है उसको मैं अपने पुरुषार्थसे दूर करूँगा, आप उठें चिन्ता न करें ॥ ४२ ॥ धृतव्रत, दीर्घबाहो, नरशार्दूल, आप उठें, क्या आप अपनी महान आत्माको भूल गये हैं? ॥ ४३ ॥ निष्पाप, जानकीका वध देखकर क्रोधसे मैंने ये सब बातें आपसे कही हैं। रथ, गज, घोड़े तथा रावणके साथ इस लंकाको मैं बाणोंसे गिरा दूँगा ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तिरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८३ ॥

भ्रातृवत्सल लक्ष्मण रामचन्द्रको आश्वासन दे रहे थे, उसी समय अपने स्थानपर गुल्मरक्षकोंको नियुक्त करके विभीषण वहाँ आये ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए चार वीर उनके साथ थे, मालूम होता था कि अंजनके समान काले हाथी अपने यूथपतिके साथ हों ॥ २ ॥ जाकर उन्होंने लक्ष्मणको शोकसन्तप्त तथा वानरोंको रोते देखा ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुकुलनन्दन महात्मा रामचन्द्र लक्ष्मणकी गोदमें मूर्छित होकर पड़े हैं उनको भी विभीषणने देखा ॥ ४ ॥ रामचन्द्र लज्जित और शोकसन्तप्त हैं यह देखकर विभीषण भीतरी दुःखसे दुःखी होकर बोले, यह क्या है? ॥ ५ ॥ विभीषणका मुँह देखकर सुग्रीव तथा अन्य वानरोंको देखकर लक्ष्मण धीरे-धीरे रोते हुए बोले ॥ ६ ॥ इन्द्रजित्‌ने सीताको मार दिया, यह हनुमानसे सुनकर रामचन्द्र मूर्छित हो गये ॥७॥ ऐसा कहते हुए लक्ष्मणको रोककर विभीषण मूर्छित रामचन्द्र

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तस्त्वं हनूमता। तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥९॥
अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः। सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥१०॥
याच्यमानः सुबहुशो मया हितचिकीर्षुणा। वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत्कृतवान्वचः ॥११॥
नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा। सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥१२॥
वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः। मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥१३॥
चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति। हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥१४॥
दुराधर्षो भवत्येष सङ्ग्रामे रावणात्मजः। तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ॥
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥१५॥
ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते। त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्या संतापमागतम् ॥१६॥
सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्शितम्। इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः ॥
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥१७॥
एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः। त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥१८॥
तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः। पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम्॥१९॥
तत्संदिश महाबाहो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्। राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा ॥२०॥
मनुजवर न कालविप्रकर्षो रिपुनिधनं प्रति यत्क्षमोऽद्य कर्तुम्।
त्वमतिसृज रिपोर्वधाय वज्रं दिविजरिपुमथने यथा महेन्द्रः ॥२१॥

से स्पष्ट अर्थवाले वचन बोले ॥ ८ ॥ मनुजेन्द्र, दुखी हनुमानने जो आपसे कहा है उसको मैं असम्भव समझता हूँ, मानो वह समुद्र सोखनेके समान है ॥ ९ ॥ सीताके विषयमें रावणका क्या अभिप्राय है वह मैं जानता हूँ, वह सीताको नहीं मारेगा ॥ १० ॥ उसका हित चाहनेवाले मैंने कईबार उससे प्रार्थना की कि सीताको लौटा दो, पर उसने मेरी बात न मानी ॥ ११ ॥ साम दाम और भेद इन उपायोंसे भी कोई सीताको देख नहीं सकता, फिर युद्धके द्वारा उसे कोई कैसे देख सकता है ॥ १२ ॥ राक्षस इन्द्रजित् वानरोंको भ्रममें डालकर लौट गया है। महाबाहो, उस सीताको आप मायाकी सीता समझें ॥ १३ ॥ निकुम्भिला स्थानपर जाकर वह होम करेगा, होम करके जब वह लौटेगा तब इन्द्रके साथ देवताओंके लिए भी वह युद्धमें अजेय हो जायगा, अतएव वानरोंको भ्रममें डालनेके लिए उसने यह माया रची है, नहीं तो वानर लड़ते और इससे उसके यज्ञमें विघ्न होता ॥ १४, १५ ॥ जबतक उसका यज्ञ समाप्त न हो जाय तभी तक हमलोग सेनाके साथ वहाँ जाते हैं। नरशार्दूल! आप इस अनर्थक सन्तापका त्याग करें ॥१६ ॥ आपके दुःखी होनेसे समूची सेना दुःखी हो रही है, स्वस्थचित्त होकर धीरतापूर्वक आप यहीं रहें, सेनाको लेकर जानेवाले हमलोगोंके साथ लक्ष्मणको जाने दीजिये ॥ १७ ॥ नरशार्दूल, लक्ष्मण अपने तीखे बाणोंसे उसका यज्ञ करना रोक देंगे, जिससे वह वध करनेके योग्य हो जायगा ॥ १८ ॥ लक्ष्मणके तीखे और पक्षियोंके पंखके कारण वेगवान् बाण क्रूर पक्षियोंके समान इन्द्रजित्का रुधिर पीएँगे ॥ १९ ॥ अतएव, महाबाहो! शुभलक्षण लक्ष्मणको आप जानेकी आज्ञा दें, जिसप्रकार वज्रधर राक्षसोंके नाशके लिए वज्रको आज्ञा

समाप्तकर्मा हि स राक्षसर्षभो भवत्यदृश्यः समरे सुरासुरैः।
युयुत्सता तेन समाप्तकर्मणा भवेत्सुराणामपि संशयो महान् ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥

———:o:———

पञ्चाशीतितमः सर्गः ८५

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्शितः। नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा ॥ १ ॥
ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरंजयः। विभीषणमुपासीनमुवाच कपिसंनिधौ ॥ २ ॥
नैर्ऋताधिपते वाक्यं तदुक्तं ते विभीषण। भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ३ ॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः। यत्तत्पुनरिदं वाक्यं बभाषेऽथ विभीषणः ॥ ४ ॥
यथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम्। तत्तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥ ५ ॥
तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः। विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ॥ ६ ॥
भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महाप्रभो। त्वय्यकारणसंतप्ते संतप्तहृदया वयम् ॥ ७ ॥
त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्या संतापमागतम्। यदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी ॥ ८ ॥
उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम्। प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ॥ ९ ॥
रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः। साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः ॥१०॥

देते हैं ॥२०॥ मनुजवर, शत्रुके वधके लिए अब थोड़ा भी विलम्ब करना उचित नहीं, शत्रुवधके लिए आप वज्र छोड़िये, जिस प्रकार देव शत्रुओंके वधके लिए इन्द्र वज्र छोड़ते हैं ॥ २१ ॥ यज्ञ समाप्त होनेपर वह राक्षसराज देवता और असुरोंके लिएभी युद्धमें अदृश्य हो जायगा, यज्ञ समाप्त होनेपर उससे युद्ध करनेमें देवताओंको भी संशयमें पड़ना पड़ेगा ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८४ ॥

विभीषणके वचन सुनकर शोककृश रामचन्द्र समझ न सके कि उस राक्षस (विभीषण) ने क्या कहा ॥ १ ॥ शत्रुनगरको जीतनेवाले रामचन्द्र धैर्यधरकर हनुमानके पास बैठे विभीषणसे बोले ॥ २ ॥ राक्षसराज विभीषण ! जो बात तुमने कही है वह मैं पुनः सुनना चाहता हूँ, आपके कहनेका अभिप्राय क्या है ?॥ ३ ॥ बोलनेमें निपुण विभीषण रामचन्द्रके बोलने योग्य वचन सुनकर बोले—यह वाक्य मैंने कहा था ॥ ४ ॥ महाबाहो ! आपने जिसतरहसे सेनासन्निवेशकी आज्ञा दी थी, वीर ! आपकी आज्ञा सुननेके बादही मैंने वैसा कर दिया है ॥ ५ ॥ चारोंओर समस्त सेनाका विभाग मैंने कर दिया है, औचित्यका ध्यान रखकर सेनापति भी मैंने नियत कर दिये हैं ॥ ६ ॥ प्रभो ! मुझे पुनः कुछ निवेदन करना है, उसे आप सुनें, बिना कारण आपके दुःखी होनेसे हमलोगोंका हृदय सन्तप्त हो गया है ॥ ७ ॥ राजन् ! व्यर्थ आये हुए इस सन्तापको आप छोड़ें, आपके चिन्तित होनेसे शत्रु प्रसन्न हो रहे हैं, अतएव आप इस चिन्ताको छोड़ दें ॥ ८ ॥ यदि आप सीताको पाना चाहते हैं, यदि आप राक्षसोंको मारना चाहते हैं, तो वीर ! आप उद्योग करें, हर्ष मनावें ॥ ९ ॥ रघुनन्दन ! मैं हितकी बात कहता हूँ आप सुनें। सेना लेकर

निकुम्भिलायां संप्राप्तं हन्तुं रावणिमाहवे । धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ॥११॥
तेन वीरेण तपसा वरदानात्स्वयंभुवः । अस्त्रं ब्रह्मशिरःप्राप्तं कामगाश्च तुरंगमाः ॥१२॥
स एष किल सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् । यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान्सर्वांश्च विद्धि नः ॥१३॥
निकुम्भिलामसंप्राप्तमकृताग्निं च यो रिपुः । त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वधः ॥१४॥
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै । इत्येवं विहितो राजन्वधस्तस्यैष धीमतः ॥१५॥
वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम् । हते तस्मिन्हतं विद्धि रावणं ससुहृद्गणम् ॥१६॥
विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् । जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ॥१७॥
स हि ब्रह्मास्त्रवित्प्राज्ञो महामायो महाबलः । करोत्यसंज्ञान्संग्रामे देवान्सवरुणानपि ॥१८॥
तस्यान्तरिक्षे चरतः सरथस्य महायशः । न गतिर्ज्ञायते वीर सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥१९॥
राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः । लक्ष्मणं कीर्तिसंपन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥२०॥
यद्वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः । हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ॥२१॥
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः । जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम् ॥२२॥
अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः । अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥२३॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः । जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः ॥२४॥

लक्ष्मणका जाना अच्छा होगा ॥ १० ॥ इन्द्रजित निकुम्भिलास्थानमें गया है, उसको धनुषसे निकले सर्पके समान वाणोंसे मारनेके लिए जाँय ॥ ११ ॥ उस वीर इन्द्रजित्ने तपस्याके द्वारा ब्रह्माके वरदानमें ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र पाया है और इच्छानुसार चलनेवाले घोड़े भी उसने पाये हैं ॥ १२ ॥ वह सेनाके साथ निकुम्भिलास्थानमें गया है यदि वहाँ यज्ञ समाप्त करके उठा तो वह हम सबको मार डालेगा, यह आप निश्चित समझें ॥ १३ ॥ "इन्द्रशत्रो, निकुम्भिलास्थानपर जानेके पहले, हवन समाप्त होनेके पहले, आततायी तुमसे जो शत्रु युद्ध करेगा उसीके हाथ तुम्हारा बध होगा"—॥ १४ ॥ ब्रह्माने उसको यह वर दिया है, यह बात प्रसिद्ध है, उस बुद्धिमानकी मृत्यु इस प्रकार होनेवाली है ॥ १५ ॥ इन्द्रजित्के वधके लिए आप महाबली लक्ष्मणको आज्ञा दें, उसके मारे जानेपर आप मित्रोंके साथ रावणको मरा समझें ॥ १६ ॥ विभीषणके वचन सुनकर रामचन्द्र बोले—सत्यपराक्रम, उस भयानक राक्षसकी मायाकी बात मैं जानता हूँ ॥ १७ ॥ वह ब्रह्मास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान् महामायावी और महाबली है, वह युद्धमें वरुणसहित देवताओंको भी मूर्च्छित कर सकता है ॥ १८ ॥ यशस्विन्, रथपर चढ़कर जब वह आकाशमें भ्रमण करता है तब उसके चलनेका पता किसीको नहीं लगता, जिस प्रकार मेघोंके समूहमें सूर्यके चलनेका पता नहीं लगता ॥ १९ ॥ दुरात्मा शत्रुकी माया और पराक्रम जानकर कीर्तिसम्पन्न लक्ष्मणसे रामचन्द्र यह वचन बोले ॥२०॥ सुग्रीवकी जो सेना है उस समस्त सेनाको ले लो, हनुमान आदि सेनापतियोंको भी साथ ले लो, ऋक्षपति जाम्बवान् तथा उनकी सेनाको साथ लेकर तुम उस मायावी और बली रावणपुत्रको मारो ॥ २१, २२ ॥ महात्मा विभीषण अपने मन्त्रियोंके साथ तुम्हारे साथ जायँगे, क्योंकि ये उसकी मायाके ज्ञाता हैं ॥ २३ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर विभीषणके

संनद्धः कवची खड्गी सशरी वामचापभृत् । रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥२५॥
अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् । लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ॥२६॥
अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः । विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥२७॥
एवमुक्त्वा तु वचनं द्युतिमान्भ्रातुरग्रतः । स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितं ययौ ॥२८॥
सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ॥२९॥
विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् । कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥३०॥
वानराणां सहस्रैस्तु हनूमान्बहुभिर्वृतः । विभीषणश्च सामात्यो लक्ष्मणं त्वरितं ययौ ॥३१॥
महता हरिसैन्येन सवेगमभिसंवृतः । ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम् ॥३२॥
स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद्व्यूहमाश्रितम् ॥३३॥
स संप्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिंदमः । तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥३४॥
विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् । अङ्गदेन च वीरेण तथानिलसुतेन च ॥३५॥

विविधममलशस्त्रभास्वरं तद्ध्वजगहनं गहनं महारथैश्च ।
प्रतिभयतममप्रमेयवेगं तिमिरमिव द्विषतां बलं विवेश ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥८५॥



साथ पराक्रमी लक्ष्मणने पहलेसे नया दूसरा धनुष उठाया ॥ २४ ॥ कवच, खड्ग, शर तथा बाईं ओर धनुष धारण करके लक्ष्मण युद्धके लिए तयार हो गये । वे रामचन्द्रके चरण छूकर प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ २५ ॥ आज मेरे धनुषसे छूटे बाण इन्द्रजितको भेदकर लंकामें गिरेंगे, जिस प्रकार हंस पुष्करिणीमें गिरते हैं ॥ २६ ॥ आज ही महाधनुषके रोदासे छूटे हुए मेरे बाण उस भयङ्कर राक्षसके शरीरको भेदकर उसे प्राणहीन बनावेंगे ॥ २७ ॥ द्युतिमान् लक्ष्मण भाईके आगे इस प्रकार कहकर तब इन्द्रजित्को मारनेकी इच्छा रखनेवाले वे शीघ्र ही वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ २८ ॥ गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके तथा प्रदक्षिणा करके रावणके द्वारा रक्षित निकुम्भिला स्थानको गये ॥ २९ ॥ विभीषणके साथ प्रतापी राजपुत्र लक्ष्मण बड़े भाईके द्वारा स्वस्त्ययन हो जानेपर शीघ्रही वहाँसे गये ॥ ३० ॥ हजारों वानरोंको साथ लेकर हनुमान तथा अपने सचिवके साथ विभीषण लक्ष्मणके साथ चले ॥ ३१ ॥ वेगसे जाती हुई वानरी सेनासे घिरे हुए लक्ष्मणने मार्गमें बैठे हुए जाम्बवान और उनकी सेनाको देखा ॥ ३२ ॥ मित्रोंको प्रसन्न रखनेवाले लक्ष्मणने थोड़ी दूर चलकर दूर हीसे व्यूह बनाकर खड़ी की हुई रावणकी सेनाको देखा ॥ ३३ ॥ शत्रु-नाशी लक्ष्मण धनुष लेकर मायाके ही द्वारा युद्ध जीतनेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रजितके पास पहुँचे और ब्रह्माके वरदानके अनुसार उसको जीतनेके लिए वहाँ खड़े हुए ॥ ३४ ॥ प्रतापी राजपुत्र लक्ष्मणने विभीषण अङ्गद तथा वीर वायुपुत्रके साथ शत्रु-सेनामें प्रवेश किया । वह सेना अनेक प्रकारके चम-कीले शस्त्रोंसे जगमग हो रही थी, ध्वजा और रथोंसे भरी थी, अत्यन्त भयङ्कर थी और उसका वेग असीम था, वह सेना अन्धकारके समान थी ॥ ३५, ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पचासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः। परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥
यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते। एतदायाध्यतां शीघ्रं कपिभिश्च शिलायुधैः ॥ २ ॥
तस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण। राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति ॥ ३ ॥
स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन्परान्। अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥ ४ ॥
जहि वीर दुरात्मानं मायापरमधार्मिकम्। रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम् ॥ ५ ॥
विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः। ववर्ष शरवर्षेण राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ ६ ॥
ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमप्रवरयोधिनः। अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥ ७ ॥
राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः। अभ्यवर्तन्त समरे कपिसैन्यजिघांसवः ॥ ८ ॥
स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम्। शब्देन महता लङ्कां नादयन्वै समन्ततः ॥ ९ ॥
शस्त्रैश्च विविधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः। उद्यतैर्गिरिशृङ्गैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥१०॥
राक्षसा वानरेन्द्रेषु विकृताननबाहवः। निवेशयन्तः शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥११॥
तथैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिशृङ्गैश्च वानराः। अभिजघ्नुर्निजघ्नुश्च समरे सर्वराक्षसान् ॥१२॥
ऋक्ष वानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः। रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत ॥१३॥
स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम्। उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते ॥१४॥
वृक्षान्धकारान्निर्गम्य जातक्रोधः स रावणिः। आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं सुसंयतम् ॥१५॥

निकुम्भिलास्थान जानेके समय विभीषण लक्ष्मणसे शत्रुओंके नाश करनेवाले तथा अपना अर्थ-सिद्ध करनेवाले वचन बोले ॥१॥ यह जो मेघके समान काली राक्षसी सेना दीख पड़ती है, उसका नाश शीघ्रही वानर पत्थरोंसे करें ॥ २ ॥ लक्ष्मण! इस बड़ी सेनाको तोड़नेका प्रयत्न करो, इसके टूटजानेपर राक्षसराजका पुत्र दीख पड़ेगा ॥ ३ ॥ अतएव तुम इन्द्रके वज्रके समान वाणोंसे शत्रुओंको ढँक दो, तुम शीघ्र ही यह काम करो, जिससे इन्द्रजित् यज्ञ न समाप्त कर सके ॥ ४ ॥ वीर! इस अधर्मी दुरात्मा मायावी-को शीघ्रही तुम मारो, यह क्रूरकर्मा रावणपुत्र समस्त लोकके लिये भयानक है ॥ ५ ॥ शुभलक्षण लक्ष्मण विभीषणके वचन सुनकर राक्षसराजके पुत्रके प्रति वाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ वृक्षोंसे युद्ध करनेवाले भालु और वानर साथही खड़ी हुई उस सेनापर टूट पड़े ॥ ७ ॥ वानरी सेनाको मारनेके लिये राक्षस तीखे वाणों, तलवारों, शक्ति, तोमरसे युद्ध करने लगे ॥८॥ वानर और राक्षसोंका वह युद्ध बड़ा भयानक हुआ, उसके कोलाहलसे समूची लंका काँप उठी ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके शस्त्र, तीखे वाणों और वृक्षों तथा चलाए हुए पर्वतशिखरोंसे आकाश भर गया ॥ १० ॥ वानर-सेनापतियोंके प्रति विकृतमुँह और हाथवाले राक्षसोंने शस्त्र चलाकर बड़ा भय उत्पन्न कर दिया ॥ ११ ॥ इसी प्रकार समूचे वृक्ष और पत्थर लेकर वानर राक्षसोंके सामने गये और वे सब राक्षसोंको मारने लगे ॥ १२ ॥ महाबली विशालकाय वानर भालुओंसे युद्ध करते समय राक्षसोंके लिए बड़ा भय उपस्थित हुआ ॥ १३ ॥ शत्रुके द्वारा पीड़ित, अतएव दुःखी, अपनी सेनाको देखकर दुर्धर्ष इन्द्रजित् यज्ञ समाप्त होनेके पहलेही उठ खड़ा हुआ ॥ १४ ॥ वृक्षोंके अंधेरेसे क्रोधकरके

स भीमकार्मुकशरः कृष्णाञ्जनचयोपमः । रक्तास्यनयनो भीमो बभौ मृत्युरिवान्तकः ॥१६॥
दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं पर्यवर्तत तद्बलम् । रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥१७॥
तस्मिंस्तु काले हनुमानरुजत्सं दुरासदम् । धरणीधरसंकाशो महावृक्षमरिंदमः ॥१८॥
स राक्षसानां तत्सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन् । चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानरः ॥१९॥
विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम् । राक्षसानां सहस्राणि हनूमन्तमवाकिरन् ॥२०॥
शितशूलधराः शूलैरसिभिश्चासिपाणयः । शक्तिभिः शक्तिहस्ताश्च पट्टिशैः पट्टिशायुधाः ॥२१॥
परिघैश्च गदाभिश्च कुन्तैश्च शुभदर्शनैः । शतशश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥२२॥
घोरैः परशुभिश्चैव भिन्दिपालैश्च राक्षसाः । मुष्टिभिर्वज्रकल्पैश्च तलैरशनिसंनिभैः ॥२३॥
अभिजघ्नुः समासाद्य समन्तात्पर्वतोपमम् । तेषामपि च संक्रुद्धश्चकार कदनं महत् ॥२४॥
स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् । सूदमानमसंत्रस्तममित्रान्पवनात्मजम् ॥२५॥
स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः । क्षयमेव हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः ॥२६॥
इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः । वहन्परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे ॥२७॥
सोऽभ्युपेत्य शरान्खड्गान्पट्टिशासिपरश्वधान् । अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्धनि राक्षसः ॥२८॥
तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः । रोषेण महताविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥२९॥
युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते । वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥३०॥
बाहुभ्यां संप्रयुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे । वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥३१॥

इन्द्रजित् निकला और पहलेसे जुते तयार रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ वह मृत्युके समान भयानक मालूम होता था। उसके धनुष और बाण बड़े भयानक थे, वह अञ्जनराशिके समान काला था, उसकी आँखें और मुँह लाल थे ॥ १६ ॥ इन्द्रजित्को रथपर देखते ही लक्ष्मणसे युद्ध करनेवाली राक्षसोंकी सेना लौट आयी ॥ १७ ॥ शत्रुनाशी पर्वतके समान विशाल हनुमानने उस समय ऊँचा बड़ा वृक्ष उखाड़ा और वे प्रलयाग्निके समान राक्षसोंकी सेना जलाने लगे। अनेक वृक्षोंसे उन्होंने राक्षसोंको मूर्च्छित कर दिया ॥ १८, १९ ॥ वायुपुत्र हनुमान शीघ्रतापूर्वक राक्षसोंका नाशकर रहे हैं यह देखकर हजारों राक्षसोंने हनुमानको घेर लिया ॥२०॥ तीक्ष्ण शूल धारणकरनेवाले शूलोंसे, तलवारवाले तलवारोंसे, शक्तिवाले शक्तियोंसे, और पट्टिशवाले पट्टिशसे मारने लगे ॥२१॥ परिघ, गदा, सुन्दर भाले, सैकड़ों शतघ्नियाँ, लोहेके मुद्गर, भयानक परशु, भिन्दिपाल, वज्रके समान घूसा और थप्पड़से राक्षस, चारों ओरसे पर्वतके समान ऊँचे हनुमानको मारने लगे। हनुमानने भी क्रोधकरके उनलोगोंको बहुत तङ्ग किया ॥ २२—२४ ॥ इन्द्रजित्ने कपिश्रेष्ठ वायुपुत्र हनुमानको देखा, वे पर्वतके समान ऊँचे थे और निर्भय होकर शत्रुओंका नाश कर रहे थे ॥ २५ ॥ उसने सारथिसे कहा—जहाँ यह वानर है वहाँ चलो, उपेक्षा करनेसे यह हम राक्षसोंका नाशही कर देगा ॥ २६ ॥ इन्द्रजित्के ऐसा कहनेपर सारथि हनुमानके पास परमदुर्धर्ष इन्द्रजित्को रथपर लेकर चला ॥ २७ ॥ वहाँ जाकर वह राक्षस बाण, तलवार, पट्टिश, परशु आदिकी वर्षा हनुमानपर करने लगा ॥ २८ ॥ उन भयंकर शस्त्रोंको पकड़कर वायुपुत्र हनुमान बड़े क्रोधसे बोले ॥ २९ ॥ मूर्ख रावणपुत्र ! यदि तुम वीर हो तो युद्ध

हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् । रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥३२॥
यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसंभवः । स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति ॥३३॥
तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुनिवारणैः । जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥३४॥
इत्येवमुक्तस्तु तदा महात्मा विभीषणेनारिविभीषणेन ।
ददर्श तं पर्वतसंनिकाशं रथस्थितं भीमबलं दुरासदम् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः । धनुष्पाणिं तमादाय त्वरमाणो जगाम सः ॥ १ ॥
अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य तु महद्वनम् । अदर्शयत तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ २ ॥
नीलजीमूतसंकाशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् । तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥ ३ ॥
इहोपहारं भूतानां बलवान्रावणात्मजः । उपहृत्य ततः पश्चात्सङ्ग्राममभिवर्तते ॥ ४ ॥
अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः । निहन्ति समरे शत्रून्बध्नाति च शरोत्तमैः ॥ ५ ॥
तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् । विध्वंसय शरैर्दीप्तैः सरथं साश्वसारथिम् ॥ ६ ॥
तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥ ७ ॥

करो, वायुपुत्रके सामने आकर तुम जीते हुए नहीं लौट सकते ॥ ३० ॥ यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो बाहुयुद्ध करो । दुर्बुद्धि, मेरा वेग सहो, तभी तुम राक्षसोंके स्वामी हो सकते हो ॥३१॥ हनुमानको मारनेके लिए इन्द्रजित्‌ने धनुष चढ़ाया है, यह देखकर विभीषण लक्ष्मणसे बोले ॥ ३२ ॥ जो वह रावणका पुत्र इन्द्रको जीतनेवाला है, वह रथपर चढ़कर हनुमानको मारना चाहता है ॥ ३३ ॥ इस कारण शत्रुको वारण करनेवाले, प्राण लेनेवाले भयंकर बाणोंको अनोखे ढंगसे चढ़ाकर इस रावणपुत्रको मारिए ॥ ३४ ॥ शत्रुको भयभीत करनेवाले विभीषणने महात्मा लक्ष्मणसे यह कहा । लक्ष्मणने रथपर बैठे परमवली दुरासद और पर्वतके समान ऊँचा इन्द्रजित्‌को देखा ॥ ३५ ॥

—आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छियासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८६ ॥

इन्द्रजित्‌के यज्ञ समाप्त न होनेके कारण प्रसन्न विभीषण ऐसा कहकर धनुष्पाणि लक्ष्मणको लेकर शीघ्रतापूर्वक चले ॥ १ ॥ थोड़ी दूर जाकर बड़े वनमें घुसकर विभीषणने इन्द्रजित्‌का काम लक्ष्मणको दिखाया ॥ २ ॥ नीले मेघके समान काला देखनेमें भयानक वटवृक्ष तेजस्वी रावणके भाई विभीषणने दिखाया ॥ ३ ॥ रावणका पुत्र यहीं भूतोंको बलि देकर युद्ध करनेके लिए जाता है ॥ ४ ॥ इसीसे युद्धमें वह सबके लिए अदृश्य हो जाता है और उत्तमबाणोंसे युद्धमें शत्रुओंको मारता है ॥ ५ ॥ बली रावणपुत्र अबतक इस वटवृक्षके नीचे न आवे तभी तक दीप्त बाणोंसे रथ, घोड़े और सारथिके साथ उसे मार डालिए ॥ ६ ॥ विभीषणकी बात मानकर, मित्रोंको प्रसन्न करनेवाले तेजस्वी लक्ष्मण वहीं ठहर गये और धनुषका

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान्रावणात्मजः । इन्द्रजित्कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥८॥
तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् । समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥९॥
एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः । अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥१०॥
इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम । कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥११॥
न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते । प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥१२॥
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः । यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥१३॥
नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् । क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥१४॥
गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा । निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्यः परः पर एव सः ॥१५॥
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते । स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात्तैरेव हन्यते ॥१६॥
निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर । स्वजनेन त्वया शक्यं पौरुषं रावणानुज ॥१७॥
इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः । अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥१८॥
राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात् । कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ॥
गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ॥१९॥
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे । भ्रात्रा विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ॥२०॥

टंकार करने लगे ॥ ७ ॥ अग्निके समान उज्ज्वल रथपर बैठा हुआ, बली रावणपुत्र इन्द्रजित् कवच, खड्ग, ध्वजा लिये दीख पड़ा ॥ ८ ॥ तेजस्वी लक्ष्मण अपराजित् इन्द्रजित्से बोले—मैं तुम्हें युद्धके लिए ललकार रहा हूँ, अतएव तुम मुझसे अच्छी तरह लड़ो ॥ ९ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर तेजस्वी-मनस्वी रावणपुत्र विभीषणको वहाँ खड़ा देखकर कठोर वचन बोला ॥ १० ॥ तुम यहाँ लङ्कामें उत्पन्न हुए और बढ़े, तुम मेरे पिताके सगे भाई हो, तुम मेरे चाचा हो, फिर अपने पुत्रसे द्रोह क्यों करते हो ॥ ११ ॥ तुममें न ज्ञाति-प्रेम है, न मित्रताका बन्धन है, न जातिका अभिमान है, न भ्रातृप्रिय है और न धर्म है, क्योंकि तुम तो धर्मको दूषित करनेवाले हो ॥ १२ ॥ तुम्हीं शोचनीय हो, दुर्बुद्धे सज्जनोंके तुम्हीं निन्दनीय हो, जो अपने बान्धवोंको छोड़कर तुमने दूसरेकी पराधीनता स्वीकार की है ॥ १३ ॥ अपने बान्धवोंमें रहना तथा दूसरोंकी नीच गुलामीमें रहना इन दोनोंका बड़ा भेद तुम्हारी छोटी बुद्धिमें नहीं आसकता ॥ १४ ॥ दूसरे गुणवान् हों और स्वजन निर्गुण हो तो निर्गुण स्वजन अच्छा है, क्योंकि जो दूसरा है, वह दूसरा ही है ॥ १५ ॥ जो अपना पक्ष छोड़कर दूसरे पक्षमें जा मिलता है, वह अपने पक्षके नष्ट होनेपर उन्हीं लोगोंके द्वारा मारा जाता है ॥ १६ ॥ निशाचर ! तुम्हारी जैसी यह निर्दयता है और वह जिस उद्योगके साथ तुमने किया है, वह तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा स्वजन नहीं कर सकता ॥ १७ ॥ भतीजेके ऐसा कहनेपर विभीषणने उसका उत्तर दिया—राक्षस ! मेरा स्वभाव न जाननेवालेके समान क्यों बढ़ बढ़कर बोल रहे हो ॥ १८ ॥ दुष्ट रावणपुत्र ! बड़ोंके साथ इस क्रूरताका त्याग करो, कठोर बोलना छोड़ दो, यद्यपि मैं क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके घरमें उत्पन्न हुआ हूँ, पर मनुष्यका जो पहला गुण है शील, वह मेरा राक्षसोंके समान नहीं है, ॥ १९ ॥ कठोर कामोंसे मेरा प्रेम नहीं है, अधर्म भी मुझे पसन्द नहीं, विरुद्ध स्वभाववाला भाई क्या

धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् । त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥२१॥
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् । त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥२२॥
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् । सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥२३॥
महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः । अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥२४॥
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः । गुणान्प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥२५॥
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव । नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥२६॥
अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस । बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥२७॥
अद्येह व्यसनं प्राप्तं यन्मां परुषमुक्तवान् । प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम ॥२८॥
धर्षयित्वा च काकुत्स्थं न शक्यं जीवितुं त्वया । युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ॥
हतस्त्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमक्षयम् ॥२९॥
निदर्शयित्वात्मबलं समुद्यतं कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम् ।
न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरं त्वमद्य जीवन्सबलो गमिष्यसि ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

भाईके द्वारा निकाल दिया जाता है ॥२०॥ जो धर्मसे च्युत होगया है, जिसने पापाचरण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है, उसका त्याग करके मनुष्य सुखी होता है, जिसप्रकार सर्पको हाथपरसे हटाकर मनुष्य निर्भय होजाता है ॥२१॥ जिस प्रकार जलते घरको मनुष्य छोड़ देता है, उसी प्रकार परधन हरण करनेमें लगे हुए, परस्त्रीपर बलात्कार करनेवाले दुरात्माका त्याग करना उचित है ॥२२॥ परस्वहरण, परस्त्रीसंसर्ग तथा मित्रोंकी अविश्वास ये तीन दोष मनुष्यका नाश करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ महर्षियोंका भयानक वध, देवताओंके साथ विरोध, अभिमान, क्रोध, वैर बाँधना और हितवादीका कहना न मानना ये दोष प्राण और ऐश्वर्य नष्ट करनेवाले हैं और ये मेरे भाईमें हैं, जिस प्रकार मेघोंसे पर्वत छिप जाते हैं, उसी प्रकार इन दोषोंसे उनके गुण ढँक गये हैं, ॥ २४, २५ ॥ इन्हीं दोषोंके कारण मैंने अपने भाई तुम्हारे पिताका त्याग किया है । अब न लङ्का रहेगी, न तुम्हारे पिता रहेंगे और न तुमहीं रहोगे ॥ २६ ॥ राक्षस ! तुम बड़े अभिमानी और अविनयी हो, तुम बालक हो, तुम्हारे सिर काल चढ़ा है, जो चाहो बोलो ॥ २७ ॥ पहले जो कठोर वचन तुमने मुझसे कहे हैं, उसीसे तुम इस सङ्कटमें पड़े हो । राक्षसाधम ! तुम इस वटवृक्षके नीचे जा नहीं सकते, ॥ २८ ॥ काकुत्स्थ लक्ष्मणको दबाकर तुम जीते नहीं रह सकते, नरश्रेष्ठ लक्ष्मणके साथ युद्ध करो, मारे जानेपर तुम यमलोकमें देवताओंको प्रसन्न करोगे, अर्थात् तुम्हारे मरनेपर देवता प्रसन्न होंगे ॥ २९ ॥ युद्धके लिए तयार अपनी बड़ी सेना दिखाकर तुम सब अस्त्र-शस्त्र और बाणोंका नाश करो, लक्ष्मणके बाणोंके सामने आकर जीते हुए अपनी सेनाके साथ नहीं लौट सकते ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सत्तासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः। अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधेनाभ्युत्पपात च ॥ १ ॥
उद्यतायुधनिस्त्रिंशो रथे सुसमलंकृते। कालाश्वयुक्ते महति स्थितः कालान्तकोपमः ॥ २ ॥
महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद्दृढम्। धनुर्भीमबलो भीमं शरांश्चामित्रनाशनान् ॥ ३ ॥
तं ददर्श महेष्वासो रथस्थः समलंकृतः। अलंकृतममित्रघ्नो रावणस्यात्मजो बली ॥ ४ ॥
हनूमत्पृष्ठमारूढमुदयस्थरविप्रभम्। उवाचैनं सुसंरब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ॥ ५ ॥
तांश्च वानरशार्दूलान्पश्यध्वं मे पराक्रमम्। अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ॥ ६ ॥
मुक्तवर्षमिवाकाशे धारयिष्यथ संयुगे। अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ॥
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ॥ ७ ॥
तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नाञ्शूलशक्त्यृष्टिसायकैः। अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम् ॥ ८ ॥
सृजतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य संयुगे। जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ॥ ९ ॥
रात्रियुद्धे तदा पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः। शायितौ तौ मया भूयो विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥१०॥
स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं यातो यमक्षयम्। आशीविषसमं क्रुद्धं यन्मां योद्धुमुपस्थितः ॥११॥
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं राघवस्तदा। अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥
उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया। कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान्॥१३॥

विभीषणके वचन सुनकर इन्द्रजित्‌ने बड़ा क्रोध किया, उसने कठोर वचन कहे और क्रोध करके उनके सामने आया ॥ १ ॥ सजे हुए काले घोड़ोंवाले बड़े रथपर वह प्रलयकालके यमराजके समान बैठा था और तलवार उठाये था ॥ २ ॥ विशाल मोटा मजबूत और तेज वाण चलानेवाला भयंकर धनुष तथा शत्रुओंको मारनेवाले वाण लेकर रथपर बैठे अपने तेजसे अलंकृत शत्रुनाशी बली रावणपुत्रने हनुमानकी पीठपर बैठे प्रातःकालके सूर्यके समान दीप्तिमान लक्ष्मणको देखा, और वह विभीषण, लक्ष्मण तथा वानरसेना-पतियोंसे भी बोला—मेरा पराक्रम तुमलोग देखो, मेरे धनुषसे निकली वाणवृष्टि देखो, जो दूसरोंके लिए असम्भव है ॥ ३—६ ॥ मेघकी जलधाराके समान तुमलोग मेरी वाणवर्षाको रोकना! आज धनुषसे निकले मेरे वाण तुमलोगोंके शरीरको जलावेंगे, जिसप्रकार आग रुईको जलाती है ॥७॥ शूल, शक्ति, ऋष्टि और वाण धारण करनेवाले हम तीखे वाणोंसे तुम लोगोंके टुकड़े करके आजही यमराजके घर भेजेंगे ॥ ८ ॥ युद्धमें शीघ्र-शीघ्र जब मैं वाणोंकी वर्षा करने लगूँगा, जिसप्रकार मेघ गर्जकरके वृष्टि करता है; तब मेरे सामने कौन ठहरेगा ॥९॥ उस समय रात्रियुद्धमें मेरे वज्रके समान वाणोंसे तुम दोनों पृथिवीपर सो गये थे और अपने साथियोंके साथ बेहोश हो गये थे, ॥१०॥ वह बात शायद तुम्हें याद नहीं है। निश्चय तुम यमराजके घर जाओगे क्योंकि क्रुद्ध सर्पके समान मुझसे तुम युद्ध करनेके लिए आये हो ॥११॥ राक्षसराज इन्द्रजित्‌का वह गर्जन सुनकर लक्ष्मण निर्भयहोकर और क्रोधकरके रावणपुत्रसे बोले ॥१२॥ राक्षस! तुमने जो कहा है, उसकी पूर्ति तुम्हारे द्वारा कठिन है, जो काम तुमने वतलाये हैं उनकी पूर्ति तुम नहीं कर सकते, जो व्यापारके द्वारा

स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित् । वाचा व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते ॥१४॥
अन्तर्धानगतेनाजौ यत्त्वयाचरितस्तदा । तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥१५॥
यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽस्मि तव राक्षस । दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे ॥१६॥
एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः । ससर्ज निशितान्बाणानिन्द्रजित्समितिंजयः ॥१७॥
तेन सृष्टा महावेगाः शराः सर्पविषोपमाः । संप्राप्य लक्ष्मणं पेतुः श्वसन्त इव पन्नगाः ॥१८॥
शरैरतिमहावेगैर्वेगवान्रावणात्मजः । सौमित्रिमिन्द्रजिद्युद्धे विव्याध शुभलक्षणम् ॥१९॥
स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः । शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान्विधूम इव पावकः ॥२०॥
इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याभिगम्य च । विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत् ॥२१॥
पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः । आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तकाः ॥२२॥
अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण । गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया ॥२३॥
क्षत्रबन्धुं सदानार्यं रामः परमदुर्मतिः । भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति हतं मया ॥२४॥
विस्रस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम् । हृतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया ॥२५॥
इति ब्रुवाणं संक्रुद्धः परुषं रावणात्मजम् । हेतुमद्वाक्यमर्थज्ञो लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह ॥२६॥
वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मन्हि राक्षस । अथ कस्माद्वदस्येतत्संपादय सुकर्मणा ॥२७॥

कार्योंको सिद्ध करता है वही बुद्धिमान कहा जाता है ॥ १३ ॥ तुम अपने मनोरथसिद्ध नहीं कर सकते, तुम हमलोगोंको जीतना चाहते हो पर जीत नहीं सकते, अतएव किसीके द्वारा भी सिद्ध न होनेवाले कार्यकी सिद्धि बातोंसे कहकर अपनेको कृतार्थ समझते हो ॥१४॥ उससमय युद्धमें छिपकर तुमने जो आचरण किया है वह चोरोंका मार्ग है, वीरसेवित मार्ग नहीं ॥ १५ ॥ राक्षसराज ! मैं तुम्हारे मार्गमें खड़ा हूँ, तुम अपना तेज दिखाओ, कोरी बातोंसे शेखी क्या बघारते हो ॥ १६ ॥ लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर महाबली युद्धविजयी इन्द्रजित् विशाल धनुष लेकर उससे तीखे बाण छोड़ने लगा ॥ १७ ॥ उसके छोड़े हुए सर्पविषके समान वेगवान् बाण लक्ष्मणके पास जाकर सर्पके समान फुफकारने लगे ॥ १८ ॥ इन्द्रजित्ने युद्धमें शुभलक्षण लक्ष्मणको अत्यन्त वेगवाले बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ लक्ष्मणका शरीर बाणोंसे बिंध गया, वे रुधिरसे भर गये । लक्ष्मण धूम्रहीन अग्निके समान शोभित होने लगे ॥ २० ॥ इन्द्रजित् अपना यह काम देखकर और लक्ष्मणके सामने जाकर बड़े जोरसे गर्जन करके यह बोला ॥ २१ ॥ मेरे धनुषसे निकले प्राण लेनेवाले पंखवाले तेज बाण, लक्ष्मण ! आज तुम्हारे प्राण लेंगे ॥२२॥ मेरे द्वारा मारे गये अतएव प्राणहीन तुमपर शृगाल, श्येन और गीध बैठेंगे ॥ २३ ॥ मूर्ख राम अपने भक्त अनार्य तथा पतित क्षत्रिय अपने भाईको मेरे द्वारा मारा गया देखेगा ॥२४॥ तुम्हारा कवच पृथिवीपर लोटेगा, धनुष दूर जाकर गिरेगा, तुम्हारा मस्तक कट जायगा, तुम मेरे द्वारा मारे जाओगे—यह रामचन्द्र देखेंगे ॥२५॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेवाले इन्द्रजित्से अर्थजाननेवाले लक्ष्मण क्रोध करके युक्तियुक्त वचन बोले ॥ २६ ॥ दुर्बुद्धि, क्रूरकर्मी राक्षस, बकवाद करना छोड़ दे, यह सब क्यों बोल रहे हो, कर्मके द्वारा यह दिखा क्यों नहीं देते ॥ २७ ॥

अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस । कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्धेयं तव कत्थनम् ॥२८॥
अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किंचिदप्यनवक्षिपन् । अविकत्थन्वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषादन ॥२९॥
इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णापूरिताञ्शरान् । विजघान महावेगांल्लक्ष्मणो राक्षसोरसि ॥३०॥
सपत्रवाजिता बाणा ज्वलिता इव पन्नगाः । नैरृतोरस्यभासन्त सवितू रश्मयो यथा ॥३१॥
स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः । सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम् ॥३२॥
स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः । विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ॥३३॥
विक्रान्तौ बलसंपन्नावुभौ विक्रमशालिनौ । उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ ॥३४॥
युयुधाते तदा वीरौ ग्रहाविव नभोगतौ । बलवृत्राविव हि तौ युधि वै दुष्प्रधर्षणौ ॥३५॥
युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव । बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ॥
नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥३६॥
ततः शरान्दाशरथिः संधायामित्रकर्षणः । ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥३७॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं स श्रुत्वा राक्षसाधिपः । विवर्णवदनो भूत्वा लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥३८॥
विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं रावणात्मजम् । सौमित्रिं युद्धसंयुक्तं प्रत्युवाच विभीषणः ॥३९॥
निमित्तान्युपपश्यामि यान्यस्मिन्रावणात्मजे । त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥४०॥
ततः संधाय सौमित्रिः शरानाशीविषोपमान् । मुमोच विशिखांस्तस्मिन्सर्पानिव विषोल्बणान् ॥४१॥

राक्षस ! बिना काम किये ही अपनी तारीफ तुम किये जा रहे हो, तुम काम करके दिखाओ जिससे मैं तुम्हारी बातपर विश्वास करूँ ॥ २८ ॥ बिना कठोर वचन कहे, बिना निन्दा किये, बिना आत्मप्रशंसा किये, मनुष्य-भक्षी राक्षस, मैं तुमको मारूँगा ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर लक्ष्मणने कानतक खींचकर बड़े वेगसे पाँच बाण इन्द्रजित्‌की छातीमें मारे ॥ ३० ॥ सुन्दरपंख और वेगवाले, सर्पके समान प्रज्वलित वे बाण राक्षसकी छातीमें सूर्यकी किरणके समान मालूम पड़ते थे ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके द्वारा बाणोंसे आहत होकर रावणपुत्रने क्रोध किया, उसने सावधानीसे तीन बाण लक्ष्मणको मारे ॥ ३२ ॥ नरश्रेष्ठ लक्ष्मण और इन्द्रजित्‌के बल महाभयंकर युद्धमें तुमुल सङ्घर्ष हुआ, वे दोनों अपनी-अपनी जीत चाहते थे ॥ ३३ ॥ दोनों पराक्रम दिखा चुके थे, दोनों बली और पराक्रमी थे, दोनों बल और तेजमें बराबर थे, और दोनोंका जीतना कठिन था ॥ ३४ ॥ वे दोनों वीर आकाशस्थ दो ग्रहोंके समान लड़ते थे, इन्द्र और वृत्रके समान लड़ते थे, युद्धमें दोनोंका परास्त होना कठिन था ॥ ३५ ॥ वे दोनों महात्मा सिंहके समान लड़ते थे, बाणोंके समूहकी वे वृष्टि करते थे । नरश्रेष्ठ और राक्षसश्रेष्ठ दोनों प्रसन्न होकर युद्ध करते थे ॥ ३६ ॥ शत्रुघाती लक्ष्मणने बाण चढ़ाकर क्रुद्ध सर्पके समान फुफकारते हुए इन्द्रजित्‌पर बाण छोड़े ॥ ३७ ॥ लक्ष्मणके धनुषका शब्द सुनकर इन्द्रजित्‌का मुँह उतर गया, वह दुःखी हुआ और लक्ष्मणकी ओर देखने लगा ॥ ३८ ॥ रावणपुत्र इन्द्रजित् दुःखी हो रहा है यह देखकर युद्धमें लगे हुए लक्ष्मणसे विभीषण बोले ॥ ३९ ॥ इस रावणपुत्रमें जो लक्षण मैं देख रहा हूँ, इससे तुम शीघ्रता करो, यह अब हारता ही है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ लक्ष्मणने सर्पके समान बाणोंको चढ़ाया और विषैले सर्पके समान उन बाणोंको

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः । मुहूर्तमभवन्मूढः सर्वसंक्षुभितेन्द्रियः ॥४२॥
ददर्शावस्थितं वीरमाजौ दशरथात्मजम् । सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात्संरक्तलोचनः ॥४३॥
अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः । किं न स्मरसि तद्युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ॥
निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा युधि विचेष्टसे ॥४४॥
युवां खलु महायुद्धे वज्राशनिसमैः शरैः । शायितौ प्रथमं भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥४५॥
स्मृतिर्वा नास्ति ते मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् । गन्तुमिच्छसि यन्मां त्वमाधर्षयितुमिच्छसि॥४६॥
यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः । अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥४७॥
इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् । दशभिस्तु हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥४८॥
ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान् । क्रोधाद्द्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ॥४९॥
तद्दृष्ट्वेन्द्रजिता कर्म कृतं रामानुजस्तदा । अचिन्तयित्वा प्रहसन्नैतत्किंचिदिति ब्रुवन् ॥५०॥
मुमोच च शरान्घोरान्संगृह्य नरपुंगवः । अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ॥५१॥
नैवं रणगताः शूरा प्रहरन्ति निशाचर । लघवश्चाल्पवीर्याश्च शरा हीमे सुखास्तव ॥५२॥
नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे युद्धकाङ्क्षिणः । इत्येवं तं ब्रुवन्धन्वी शरैरभिववर्ष ह ॥५३॥
तस्य बाणैः सुविध्वस्तं कवचं काञ्चनं महत् । व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात् ॥५४॥

इन्द्रजितपर चलाया ॥ ४१ ॥ इन्द्रके वज्रके समान स्पर्शवाले लक्ष्मणके चलाये बाणोंसे इन्द्रजित् थोड़ी देरके लिए कर्तव्यज्ञानहीन हो गया, उसकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं ॥ ४२ ॥ युद्धमें सामने खड़े हुए वीर दशरथपुत्र लक्ष्मणको इन्द्रजित्ने देखा और क्रोधसे आँखे लाल कर बोला ॥ ४३ ॥ लक्ष्मणके पास आकर वह पुनः कठोर वचन बोला—उस पहले युद्धके मेरे पराक्रमका तुम्हें स्मरण नहीं है, जिस समय भाईके साथ तुमको मैंने बाँध दिया था और तुम छटपटा रहे थे ॥४४॥ उस युद्धमें वज्रतुल्य बाणोंसे तुमदोनों पृथिवीपर सो गये थे, पुनः अपने साथियोंके साथ मूर्च्छित हो गये थे ॥ ४५ ॥ उस युद्धका याद शायद तुमको नहीं है, अथवा स्पष्टही तुम यमराजके घर जाना चाहते हो, क्योंकि तुम मुझे पराजित करनेकी इच्छा रखते हो ॥ ४६ ॥ यदि उस पहलेवाले युद्धमें तुमने मेरा पराक्रम न देखा हो, तो सावधान होकर खड़े हो जाओ, आज मैं अपना पराक्रम दिखाता हूँ ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर सात बाणोंसे लक्ष्मणको मारा, तीखे और अच्छे दस बाणोंसे हनुमानको मारा ॥ ४८ ॥ क्रोधके कारण दूने प्रयत्न करके उसने सावधानीसे सौ बाण चलाकर विभीषणको छेद दिया ॥४९॥ इन्द्रजित्ने जो काम किया था उसे देखकर रामानुज लक्ष्मणने उधर ध्यानही नहीं दिया, हँसते-हँसते उन्होंने कहा—यह तो कुछ भी नहीं हुआ ॥ ५० ॥ भयङ्कर बाणोंको एकत्र करके नरश्रेष्ठ लक्ष्मणने क्रोधकरके निर्भय होकर इन्द्रजितपर चलाया ॥ ५१ ॥ राक्षस, युद्धक्षेत्रमें आये वीर इस प्रकार प्रहार नहीं करते, ये तुम्हारे बाण हलके और कमजोर हैं अतएव सुखकर हैं ॥ ५२ ॥ युद्धको पसन्द करनेवाले वीर युद्धमें इस तरह नहीं लड़ते, ऐसा कहकर धनुर्धारी लक्ष्मण इन्द्रजितपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५३ ॥ लक्ष्मणके बाणोंसे इन्द्रजित्का सोनेका कवच टूट गया और वह रथपर बिखर गया, मानो आकाशसे ताराओंका समूह गिरा हो ॥ ५४ ॥

विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः। इन्द्रजित्समरे वीरः प्रत्यूषे भानुमानिव ॥५५॥
ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः। विभेद समरे वीरो लक्ष्मणं भीमविक्रमः ॥५६॥
व्यशीर्यत महद्दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य तु। कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥५७॥
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ वै युध्येतां तुमुलौ युधि। शरसंकृत्तसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥
सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ॥५८॥
ततक्षतुर्महात्मानौ रणकर्मविशारदौ। बभूवतुश्चात्मजये यत्तौ भीमपराक्रमौ ॥५९॥
तौ शरौघैस्तथाकीर्णौ निकृत्तकवचध्वजौ। सृजन्तौ रुधिरं चोष्णं जलं प्रस्रवणाविव ॥६०॥
शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतोर्भीमनिःस्वनम्। सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ॥६१॥
तयोरथ महान्कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः। न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्युपजग्मतुः ॥६२॥
अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः। शरानुच्चावचाकारानन्तरिक्षे बबन्धतुः ॥६३॥
व्यपेतदोषमस्यन्तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च। उभौ तु तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ ॥६४॥
तयोः पृथक्पृथग्भीमः शुश्रुवे तुमुलः स्वनः। स कम्पं जनयामास निर्घात इव दारुणः ॥६५॥
तयोः स भ्राजते शब्दस्तथा समरयत्तयोः। सुघोरयोर्निःस्वनतोर्गगने मेघयोरिव ॥६६॥
सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैर्बलवन्तौ कृतव्रणौ। प्रसुस्रुवाते रुधिरं कीर्तिमन्तौ जये धृतौ ॥६७॥
ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खाः शरा युधि। असृग्दिग्धा विनिष्पेतुर्विविशुर्धरणीतलम् ॥६८॥

कवचके टूट जानेसे इन्द्रजितके शरीरमें बाणोंसे घाव हो गये। इन्द्रजित् प्रातःकालीन सूर्यके समान मालूम होता था ॥ ५५ ॥ अनन्तर भीमपराक्रमी रावणपुत्र इन्द्रजितने क्रोधकरके हजार बाणोंसे लक्ष्मणको मारा ॥ ५६ ॥ लक्ष्मणका विशाल और दिव्य कवच टूट गया। इस प्रकार उन दोनोंने शीघ्रही आपसमें सवालका जवाब दिया ॥ ५७ ॥ वे दोनों हाँफते हुए भयानक युद्ध करने लगे, बाणोंसे उन दोनोंके समस्त अंग कट गये और वे रुधिरसे भींग गये। बहुत देरतक वे दोनों वीर आपसमें लड़ते रहे ॥ ५८ ॥ युद्ध-निपुण वे दोनों महात्मा एक दूसरेको विदीर्ण करने लगे, भीमपराक्रमी वे दोनों अपनी-अपनी विजयका प्रयत्न करने लगे ॥ ५९ ॥ उन दोनोंके कवच और ध्वजा कट गयी थीं, वे बाणोंसे खूब विध गये थे, उनके शरीरसे गरम खून निकल रहा था, जैसे झरनेसे जल निकले ॥६०॥ वे दोनों घोर गर्जनके साथ बाणवृष्टि करने लगे, जिस प्रकार प्रलयकालके काले मेघ जलवर्षा करते हैं। उनलोगोंको युद्ध करते-करते बहुत समय बीत गया, पर उनमें कोई भी युद्धसे न हटा और न कोई थका ही ॥६१, ६२॥ अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वे बार-बार अपना अस्त्रकौशल दिखाने लगे और अनेक प्रकारके बाणोंको आकाशमें बाँधने लगे ॥ ६३ ॥ शीघ्र अद्भुत रीतिसे तथा सावधानीसे इस प्रकार निर्दोष रीतिसे बाण चलानेवाले वे दोनों मनुष्य और राक्षस तुमुल युद्ध करने लगे ॥६४॥ उन दोनोंके भयङ्कर शब्द अलग-अलग सुनायी पड़ते थे, उस शब्दसे लोग काँप जाते थे, जिस प्रकार वज्र गिरनेके शब्दसे लोग काँप जाते हैं ॥६५॥ युद्धमें प्रयत्नशील उनलोगोंके शब्द वैसे मालूम होते थे, जैसे भयानक दो मेघ आकाशमें गर्ज रहे हों ॥६६॥ सुवर्णपंखवाले बाणोंसे उन दोनों बली वीरोंके घाव हो गये थे और उनसे रुधिर निकल रहा था, वे दोनोंही कीर्तिमान थे और जयके लिए व्रत किये हुए थे ॥६७॥ युद्ध-

अन्ये सुनिशितैः शस्त्रैराकाशे संजघट्टिरे । बभञ्जुश्चिच्छिदुश्चैव तयोर्बाणाः सहस्रशः ॥६९॥
स बभूव रणे घोरस्तयोर्बाणमयश्चयः । अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्च यः ॥७०॥
तयोः कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः । सुपुष्पाविव निष्पत्रौ वने किंशुकशाल्मली ॥७१॥
चक्रतुस्तुमुलं घोरं संनिपातं मुहुर्मुहुः । इन्द्रजिल्लक्ष्मणश्चैव परस्परजयैषिणौ ॥७२॥
लक्ष्मणो रावणिं युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम् । अन्योन्यं तावभिघ्नन्तौ न श्रमं प्रतिपद्यताम् ॥७३॥
बाणजालैः शरीरस्थैरवगाढैस्तरस्विनौ । शुशुभाते महावीर्यौ प्ररूढाविव पर्वतौ ॥७४॥
ततो रुधिरसिक्तानि संवृतानि शरैर्भृशम् । बभ्राजुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ॥७५॥
तयोरथ महान्कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः । न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्यभिजग्मतुः ॥७६॥

अथ समरपरिश्रमं निहन्तुं समरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य ।
प्रियहितमुपपादयन्महात्मा समरमुपेत्य विभीषणोऽवतस्थे ॥७७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाशीतितमः सर्गः ॥८८॥



एकोननवतितमः सर्गः ८९

युध्यमानौ ततो दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ । प्रभिन्नाविव मातंगौ परस्परजयैषिणौ ॥ १ ॥
तयोर्युद्धं द्रष्टुकामो वरचापधरो बली । शूरः स रावणभ्राता तस्थौ संग्राममूर्धनि ॥ २ ॥

में सुवर्णपंखवाले बाण उनके शरीरपर गिरते थे और रुधिरसे भींगकर निकलते थे और पृथिवीमें घुस जाते थे ॥६८॥ उनके फेंके हुए दूसरे बाण तीखे अस्त्रोंसे आकाशमें टकरा जाते थे, वे अस्त्रोंको तोड़ डालते थे, काट डालते थे ॥६९॥ वह रण बड़ा भयानक हुआ, उसमें उनके बाणोंकी जो राशि हुई वह यज्ञमें प्रदीप्त दो अग्नियोंके साथ कुशाकी राशिके समान मालूम होती थी ॥७०॥ उन दोनों महात्माओंकी देह व्रण होनेके कारण शोभित हो रही थी, मानो वनमें पत्रहीन पलाश और सेमलके वृक्ष फूल रहे हों ॥७१॥ परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रजित् और लक्ष्मण बार-बार भयानक युद्ध करते थे ॥ ७२ ॥ युद्धमें लक्ष्मण इन्द्रजित् को, इन्द्रजित् लक्ष्मणको मारते थे और कोई थकता न था ॥७३॥ उन दोनों वेगवान् वीरोंके शरीरमें बाण घुस गये थे, जिससे वे दोनों पराक्रमी उस पर्वतके समान मालूम पड़ते थे जिसपर पेड़ उगे हों ॥ ७४ ॥ रुधिरसे भींगे और बाणोंसे ढँके उनके शरीर जलतेहुए अग्निके समान मालूम पड़ते थे ॥७५॥ उन दोनोंको युद्ध करते-करते बहुत समय बीत गया, पर उनमेंसे कोई युद्धसे न हटा और न कोई थका ॥ ७६ ॥ युद्धक्षेत्रमें जीते न गये लक्ष्मणका समर परिश्रम दूर करनेके लिए उनका प्रिय और हित सम्पादन करते हुए महात्मा विभीषण समरमें जाकर खड़े हुए ॥ ७७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अठासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८८ ॥



मतवाले लड़ाई करते हुए हाथियोंके समान परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले लक्ष्मण और इन्द्रजितको

ततो विस्फारयामास महद्धनुरवस्थितः। उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान्राक्षसेषु महाशरान् ॥ ३ ॥
ते शराः शिखिसंस्पर्शा निपतंतः समाहिताः। राक्षसान्दारयामासुर्वज्रा इव महागिरीन् ॥४॥
विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिशैः। चिच्छिदुः समरं वीरान्राक्षसान्राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥
राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु विभीषणः। बभौ मध्ये प्रधृष्टानां कलभानामिव द्विपः ॥ ६ ॥
ततः संचोदमानो वै हरीन्रक्षोवधप्रियान्। उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः ॥ ७ ॥
एकोऽयं राक्षसेन्द्रस्य परायणमवस्थितः। एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः ॥ ८ ॥
तस्मिंश्च निहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि। रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य बलं हतम् ॥ ९ ॥
प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः। कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः ॥१०॥
जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णवेगोऽशनिप्रभः। सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च राक्षसः ॥११॥
संह्रादी विकटोऽरिघ्नस्तपनो मन्द एव च। प्रघासः प्रघसश्चैव प्रजङ्घो जङ्घ एव च ॥१२॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान्। विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वश्च सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥१३॥
अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः। कम्पनः सत्त्ववन्तश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥१४॥
एतान्निहत्यातिबलान्बहून्राक्षससत्तमान्। बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु॥१५॥
एतावदेव शेषं वो जेतव्यमिति वानराः। हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥१६॥
अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य जनितुर्मम। घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम् ॥१७॥

देखकर, उन दोनोंके युद्ध देखनेकी इच्छासे उत्तम धनुष बाण धारणकरनेवाले बलवान् वीर रावणका भाई विभीषण युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए। १, २ ॥ अनन्तर वहाँ स्थितहोकर उन्होंने धनुष चढ़ाया और वे राक्षसोंपर बड़े-बड़े तीखे बाण छोड़ने लगे ॥ ३ ॥ सावधानीसे चलाये हुए और अग्निके समान गिरनेवाले वे बाण राक्षसोंको तोड़ने लगे, जिस प्रकार वज्र बड़े पर्वतोंको तोड़ता है ॥ ४ ॥ विभीषणके अनुचर जो श्रेष्ठ राक्षस थे, वे भी युद्धमें वीर राक्षसोंको शूल और पट्टिशसे छेदने लगे ॥ ५ ॥ उस समय उन राक्षसोंसे घिरे हुए विभीषण, ढीठ हाथीके बच्चोंके बीचमें हाथीके समान मालूम होते थे ॥ ६ ॥ राक्षसोंके वधमें उत्साह रखनेवाले, वानरोंको प्रेरित करनेकी इच्छासे, राक्षसराज विभीषण समय परखकर समयके अनुसार बोले ॥ ७ ॥ राक्षसराज रावणका यही सहारा बचा हुआ है, इसके नष्ट होनेसे उसकी समूची सेना नष्ट हो जायगी। वानरो! अब क्या देख रहे हो ॥ ८ ॥ युद्धमें इस पापीके मारे जानेपर रावणको छोड़कर इसकी समूची सेनाको मरी समझो ॥९॥ वीर प्रहस्त मारा गया, महाबली निकुम्भ, कुम्भकर्ण राक्षस धूम्राक्ष, तीक्ष्णवेग वज्रके समान प्रकाशमान् जम्बुमाली, महामाली, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, वज्रदंष्ट्र संह्रादी, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द प्रघास, प्रघस, प्रजङ्घ, जङ्घ, अग्निकेतु, दुर्धर्ष, वीर्यवान् रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, सूर्यपुत्र शत्रु अकम्पन, सुपार्श्व, चक्रमाली, कम्पन और बली देवान्तक नरान्तक ये राक्षस मारे गये॥१०—१४॥ अतिबली इन राक्षस श्रेष्ठोंको तुमलोगोंने मारा, हाथसे तैरकर तुमलोगोंने समुद्र पार किया, बचे हुए राक्षसोंको मारकर गोष्पदतुल्य इस सेनाका भी पार कर जाओ ॥ १५ ॥ वानरो! युद्धक्षेत्रमें आकर बली सब राक्षसोंको तुमलोगोंने मार डाला, यही इन्द्रजित्का वध करनाही जीतमें बाकी है ॥ १६ ॥ यद्यपि सहोदर

हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुध्यति । तमेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ॥१८॥
वानरा घ्नत संभूय भृत्यानस्य समीपगान् । इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः ॥१९॥
वानरेन्द्रा जहृषिरे लाङ्गूलानि च विव्यधुः । ततस्तु कपिशार्दूलाः क्ष्वेडन्तश्च पुनः पुनः ॥
मुमुचुर्विविधान्नादान्मेघान्दृष्ट्वेव बर्हिणः ॥ २० ॥
जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथ्यैरभिसंवृतः । तेऽश्मभिस्ताडयामासुर्नखैर्दन्तैश्च राक्षसान् ॥२१॥
निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः । परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः ॥२२॥
शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टिशैर्यष्टितोमरैः । जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम् ॥२३॥
स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् । देवासुराणां क्रुद्धानां यथा भीमो महास्वनः ॥२४॥
हनूमानपि संक्रुद्धः सालमुत्पाट्य पर्वतात् । स लक्ष्मणं स्वयं पृष्ठादवरोप्य महामनाः ॥२५॥
रक्षसां कदनं चक्रे दुरासदः सहस्रशः । स दत्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्यस्येन्द्रजिद्बली ॥२६॥
लक्ष्मणं परवीरघ्नः पुनरेवाभ्यधावत । तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ॥२७॥
शरौघानभिवर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् । अभीक्ष्णमन्तर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ ॥२८॥
चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ । नह्यादानं न संधानं धनुषो वा परिग्रहः ॥२९॥
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः । न मुष्टिप्रतिसंधानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ॥३०॥
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् । चापवेगप्रयुक्तैश्च बाणजालैः समन्ततः ॥३१॥

भाईके पुत्रका वध करना मेरे लिए अनुचित है, तथापि रामचन्द्रके लिए दयाका त्याग करके मैं भाईके पुत्रका वध करूँगा ॥ १७ ॥ इसको मारनेकी इच्छा रखनेवाले मेरी आँखें आँसूसे भर जाती हैं, महाबाहु लक्ष्मण इस आँसूको रोकेंगे ॥ १८ ॥ वानरो ! पास आये हुए राक्षसराजके अनुचरोंको मारो । अतियशस्वी विभीषणके इसप्रकार प्रेरित करनेपर वानर प्रसन्न हुए, वे पूँछ घुमाने लगे, पटकने लगे । अनन्तर प्रधान वानर कूदते-उछलते अनेक प्रकारके शब्द करने लगे, जिसप्रकार मेघको देखकर मोर बोलते हैं ॥ १९, २० ॥ वे वानर तथा अपने सैनिकोंके साथ जाम्बवान्, ये सब मिलकर, पत्थरोंसे नख और दाँतोंसे राक्षसोंको मारने लगे ॥ २१ ॥ विविध अस्त्र धारण करनेवाले महाबली राक्षस, प्रहार करनेवाले विभीषणका भय छोड़कर तिरस्कार करने लगे ॥ २२ ॥ जाम्बवान् राक्षसी सेनाको मारनेलगे और उनको राक्षस बाण, परशु, तीखे पट्टिश, लाठी और तोमरसे मारने लगे ॥ २३ ॥ राक्षस और वानरोंका बड़ युद्ध बड़ा भयानक हुआ, जिसप्रकारका गर्जन क्रुद्ध देवता और असुरोंके संग्राममें हुआ था ॥ २४ ॥ महामना हनुमानने भी अपनी पीठसे लक्ष्मणको उतारकर क्रोधकरके पर्वतका एक शिखर उखाड़ लिया ॥ २५ ॥ और वे राक्षसोंका नाश करने लगे, शत्रुसैनिकोंको मारनेवाला वह बली इन्द्रजित् अपने चाचासे भयंकर युद्धकरके पुनः लक्ष्मणके पास आया । वे दोनों लक्ष्मण और इन्द्रजित् युद्धके लिए उद्यत होकर बाणोंकी वृष्टि करते हुए परस्पर प्रहार करनेलगे । बार-बार महाबली वे दोनों बाणसमूहमें छिप जाते थे, ॥२६—२८॥ जिसप्रकार ग्रीष्मके अन्तमें अर्थात् वर्षाऋतुमें वेगवान् मेघोंसे चन्द्रमा और सूर्य छिप जाते हैं । किसने कब बाण उठाया, कब चढ़ाया, कब धनुषको बाएँ दहिने फेरा, कब बाण छोड़ा, कब धनुष खींचा, कब पैंतरा बदला, कब धनुषको मुट्ठीसे पकड़ा,

अन्तरिक्षेऽभिसंपन्ने न रूपाणि चकाशिरे। लक्ष्मणो रावणिं प्राप्य रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ॥३२॥
अव्यवस्था भवत्युग्रा ताभ्यामन्योन्यविग्रहे। ताभ्यामुभाभ्यां तरसा प्रसृष्टैर्विशिखैः शितैः ॥३३॥
निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसा वृतम्। तैः पतद्भिश्च बहुभिस्तयोः शरशतैः शितैः ॥३४॥
दिशश्च प्रदिशश्चैव बभूवुः शरसंकुलाः। तमसा पिहितं सर्वमासीत्प्रतिभयं महत् ॥३५॥
अस्तं गते सहस्रांशौ संवृते तमसा च वै। रुधिरौघा महानद्यः प्रावर्तन्त सहस्रशः ॥३६॥
क्रव्यादा दारुणा वाग्भिश्चिक्षिपुर्भीमनिःस्वनान्। न तदानीं ववौ वायुर्न च जज्वाल पावकः ॥३७॥
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जजल्पुस्ते महर्षयः। संपेतुश्चात्र संतप्ता गन्धर्वाः सह चारणैः ॥३८॥
अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान्कनकभूषणान्। शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥३९॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च। संपूर्णायतमुक्तेन सुपत्रेण सुवर्चसा ॥४०॥
महेन्द्राशनिकल्पेन सूतस्य विचरिष्यतः। स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना ॥४१॥
लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्शिरः कायादपाहरत्। स यन्तरि महातेजा हते मन्दोदरीसुतः ॥४२॥
स्वयं सारथ्यमकरोत्पुनश्च धनुरस्पृशत्। तदद्भुतमभूत्तत्र सामर्थ्यं पश्यतां युधि ॥४३॥
हयेषु व्यग्रहस्तं तं विव्याध निशितैः शरैः। धनुष्यथ पुनर्व्यग्रं हयेषु मुमुचे शरान् ॥४४॥
छिद्रेषु तेषु बाणौघैर्विचरन्तमभीतवत्। अर्दयामास समरे सौमित्रिः शीघ्रकृत्तमः ॥४५॥

कब निशाना साधा, यह सब उनकी क्षिप्रकारिताके कारण दीख न पड़ा। धनुषके वेगसे छोड़े गये बाणोंसे समस्त आकाश भर गया और किसीका रूप दिखायी न पड़ने लगा। लक्ष्मण जब इन्द्रजित्‌के पास जाते हैं और इन्द्रजित् जब लक्ष्मणके पास जाता है तब इन दोनोंके युद्धमें बहुत अधिक अव्यवस्था हो जाती है। उन दोनोंके द्वारा वेगसे छोड़े गये तीखे बाणोंसे आकाशमें अन्धकार छा गया। आकाशसे गिरनेवाले सैकड़ों तीखे बाणोंसे दिशाएँ और विदिशाएँ भर गयीं, अन्धकारसे सब ढँक गया और बड़ा भयानक मालूम पड़ने लगा ॥ २९—३५ ॥ सूर्यके अस्त होनेपर अन्धकार फैल गया और रुधिरकी धारा बहानेवाली हजारों नदियाँ बह निकलीं ॥ ३६ ॥ मांसभक्षी गीध आदि भयानक शब्द करने लगे, उससमय वायुका चलना और आगका जलना बन्द हो गया ॥३७॥ महर्षि कहने लगे कि संसारका कल्याण हो, गन्धर्व दुःखी होकर चारणोंके साथ वहाँ आये ॥३८॥ अनन्तर राक्षसराजके सुवर्णभूषण धारण किये हुए चारों काले घोड़ोंको चार बाणोंसे लक्ष्मणने मारा ॥३९॥ अनन्तर सुवर्णभूषित तीखे भल्लनामक बाणसे जो कानतक खींच-कर छोड़ा गया था, चमकीला था, तथा जिसके पंख उत्तम थे, ऐसे इन्द्रके वज्रके समान उस बाणरूपी वज्रसे जो तल (धनुषके आघात रोकनेके लिए लगा हुआ एक चमड़ा) के शब्दसे प्रतिध्वनित हो रहा था, भ्रमण करते हुए इन्द्रजित्‌के सारथिका सिर लक्ष्मणने शरीरसे काटकर अलगकर दिया। सारथिके मारे जानेपर मन्दोदरीपुत्र तेजस्वी इन्द्रजित् सारथिका काम स्वयं करने लगा और उसने धनुष उठाया। युद्ध देखनेवालोंके लिए उसका यह काम अद्भुत मालूम हुआ ॥४०—४३॥ जब उसके हाथ घोड़ोंको हाँकनेके लिए व्यग्र रहते, उस समय लक्ष्मण उसे तीखे बाणोंसे मारते, जब वह धनुष उठाकर युद्ध करना चाहता तब लक्ष्मण उसके घोड़ोंको मारते थे। निर्भीक होकर विचरण करनेवाले इन्द्रजित्‌को क्षिप्रकारी लक्ष्मणने बाणोंसे पीड़ित

निहतं सारथिं दृष्ट्वा समरे रावणात्मजः । प्रजहौ समरोद्धर्षं विषण्णः स बभूव ह ॥४६॥
विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं हरियूथपाः । ततः परमसंहृष्टा लक्ष्मणं चाभ्यपूजयन् ॥४७॥
ततः प्रमाथी रभसः शरभो गन्धमादनः । अमृष्यमाणाश्चत्वारश्चक्रुर्वेगं हरीश्वराः ॥४८॥
ते चास्य हयमुख्येषु तूर्णमुत्पत्य वानराः । चतुर्षु सुमहावीर्या निपेतुर्भीमविक्रमाः ॥४९॥
तेषामधिष्ठितानां तैर्वानरैः पर्वतोपमैः । मुखेभ्यो रुधिरं व्यक्तं हयानां समवर्तत ॥५०॥
ते हया मथिता भग्ना व्यसवो धरणीं गताः । ते निहत्य हयांस्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ॥
पुनरुत्पत्य वेगेन तस्थुर्लक्ष्मणपार्श्वतः ॥५१॥
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथिः । शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः ॥५२॥
ततो महेन्द्रप्रतिमः सलक्ष्मणः पदातिनं तं निहतैर्हयोत्तमैः ।
सृजन्तमाजौ निशिताञ्छरोत्तमान्भृशं तदा बाणगणैर्व्यदारयत् ॥५३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः ॥८९॥

नवतितमः सर्गः ९०

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः । इन्द्रजित्परमक्रुद्धः संप्रजज्वाल तेजसा ॥ १ ॥
तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम् । विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने गजवृषाविव ॥ २ ॥
निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षसवनौकसः । भर्तारं न जहुर्युद्धे संपतन्तस्ततस्ततः ॥ ३ ॥

किया ॥ ४५ ॥ युद्धमें सारथिका मारा जाना देखकर रावणपुत्र इन्द्रजित्ने युद्धका उत्साह छोड़ दिया और वह उदास हो गया ॥ ४६ ॥ राक्षसका मुँह उदास देखकर वानरसेनापति बहुत प्रसन्न हुए और उन लोगोंने लक्ष्मणकी स्तुति की ॥४७॥ प्रमाथी शरभ, रभस और गन्धमादन इन चार वानरोंने उत्साह दिखाया, क्योंकि इन्द्रजित्का जीता रहना ये सह नहीं सकते थे ॥४८॥ ये महाबली चारों कूदकर उसके चारों प्रधान घोड़ोंपर बड़े पराक्रमसे गिरे, अर्थात् उनपर आक्रमण किया ॥ ४९ ॥ पर्वतके समान विशाल उन वानरोंके चढ़नेसे उन घोड़ोंके मुँहसे खून निकलने लगा ॥ ५० ॥ उन वानरोंने घोड़ोंके अंग भंग कर दिये, वे चूर-चूर होकर मर गये और पृथिवीपर गिर पड़े । घोड़ोंको मारकर, रथको तोड़कर वे वानर पुनः कूदकर लक्ष्मणके पास आकर खड़े हो गये ॥ ५१ ॥ सारथि और घोड़ोंके मारे जानेपर इन्द्रजित् रथसे कूद पड़ा और उसने बाणवृष्टिके द्वारा लक्ष्मणपर आक्रमण किया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर घोड़ोंके मारे जानेपर पैदल चलता हुआ इन्द्रजित् युद्धमें तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा, इन्द्रतुल्य पराक्रमी लक्ष्मणने उसे बाणोंसे छेदा ॥ ५३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका नवासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८९ ॥

तेजस्वी इन्द्रजित् घोड़ोंके मारेजानेपर बहुत क्रुद्ध हुआ और जमीनमें खड़ा होकर वह तेजसे प्रज्ज्वलित हुआ ॥ १ ॥ लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों धनुषधारी बाणोंसे परस्पर मारनेकी इच्छा रखनेवाले

ततस्तान्राक्षसान्सर्वान्हर्षयन्रावणात्मजः । स्तुन्वानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः । नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥ ५ ॥
धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै । अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगे ॥ ६ ॥
तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे हि वनौकसः । न युध्येयुर्महात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः । प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥ ८ ॥
स रथं भूषयित्वाथ रुचिरं हेमभूषितम् । प्रासासिशरसंयुक्तं युक्तं परमवाजिभिः ॥ ९ ॥
अधिष्ठितं हयज्ञेन सूतेनाप्तोपदेशिना । आरुरोह महातेजा रावणिः समितिंजयः ॥१०॥
स राक्षसगणैर्मुख्यैर्वृतो मन्दोदरीसुतः । निर्ययौ नगराद्वीरः कृतान्तबलचोदितः ॥११॥
सोऽभिनिष्क्रम्य नगरादिन्द्रजित्परमौजसा । अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सविभीषणम् ॥१२॥
ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम् । वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः ॥१३॥
विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात्तस्य धीमतः । रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान् ॥१४॥
पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः । समण्डलीकृतधनू रावणिः समितिंजयः ॥१५॥
हरीनभ्यहनत्क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः । ते वध्यमाना हरयो नाराचैर्भीमविक्रमैः ॥१६॥
सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः । ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ॥
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥१७॥

विजयके लिए निकले, जिस प्रकार वनमें दो गजपति निकलते हैं ॥२॥ राक्षस और वानर परस्पर मार रहे थे। उन दोनों दलवालोंने अपने स्वामियोंको न छोड़ा, वे उनके साथही रहे ॥ ३ ॥ अनन्तर प्रसन्न होकर रावण-पुत्र राक्षसोंको प्रसन्न करनेके लिए इस प्रकार स्तुति करता हुआ बोला ॥ ४ ॥ गाढ़ अन्धकारसे ये सब दिशाएँ छिप गयी हैं, अपना और पराया दिखायी नहीं पड़ता ॥ ५ ॥ वानरोंको भुलावा देनेके लिए तुमलोग ढिठाईसे युद्ध करो, मैं रथपर चढ़कर युद्धमें शीघ्रही आता हूँ ॥६॥ आपलोग वैसा युद्ध करें, जिससे ये वानर मेरे नगरमें जानेके समय युद्ध करके विघ्न न डाल सकें ॥७॥ ऐसा कहकर शत्रुहन्ता रावणपुत्र वानरोंको धोखा देकर रथके लिए लंकामें गया ॥ ८ ॥ तेजस्वी रावणपुत्र लंकामें जाकर रथपर बैठा। वह रथ सोनेसे मढ़ा हुआ था, बड़ाही सुन्दर था, भाले तलवार और बाणोंसे वह सजाया गया था, उत्तम घोड़े जुते हुए थे, उसका सारथि अश्वविद्या जाननेवाला और हितोपदेश देनेवाला था ॥ ९, १० ॥ वह मन्दोदरीपुत्र प्रधान राक्षसोंके साथ नगरसे निकला, वह उस समय कालप्रेरित हो रहा था ॥११॥ नगरसे निकलकर इन्द्रजित् बड़े तेजसे, वेग-वान् घोड़ोंके द्वारा वहाँ गया, जहाँ विभीषण और लक्ष्मण थे ॥ १२ ॥ रावणपुत्रको रथपर देखकर लक्ष्मण, महाबली वानर और राक्षसविभीषण उसकी क्षिप्रकारिता देखकर बहुत विस्मित हुए। इन्द्रजित् क्रोधकरके सैकड़ों, हजारों वानरसेनापतियोंको बाणोंसे गिराने लगा, युद्धविजयी इन्द्रजित् धनुषको मण्डलाकार बना-कर बड़ीशीघ्रतासे वानरोंको क्रोधकरके मारने लगा, भयंकर नाराचबाणोंसे आहत वे वानर भी लक्ष्मणकी शरण गये, जिस प्रकार प्रजा प्रजापतिकी शरण जाती है। युद्धके कारण कुपित होकर लक्ष्मणने हाथकी शीघ्रता दिखाते हुए इन्द्रजित्का धनुष काट डाला ॥ १३—१७ ॥ उसने शीघ्रता करते हुए दूसरा लगा हुआ

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्जं चक्रे त्वरन्निव । तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत ॥१८॥
अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः । विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः ॥१९॥
ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः । निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः ॥२०॥
स छिन्नधन्वा रुधिरं वमन्वक्त्रेण रावणिः । जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम् ॥२१॥
स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः । ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरंदरः ॥२२॥
मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिंदमः । आवारयदसंभ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम् ॥२३॥
संदर्शयामास तदा रावणिं रघुनन्दनः । असंभ्रान्तो महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२४॥
ततस्तान्राक्षसान्सर्वांस्त्रिभिरेकैकमाहवे । अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं संप्रदर्शयन् ॥
राक्षसेन्द्रस्तु तं चापि बाणौघैः समताडयत् ॥२५॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना । असक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणाय बहूञ्शरान् ॥२६॥
तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद परवीरहा । सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः ॥२७॥
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा । असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः ॥२८॥
मण्डलान्यभिधावन्ति तदद्भुतमिवाभवत् । अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः ॥२९॥
प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन्रणे । अमर्षमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो रणे ॥३०॥
विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं रोमहर्षणम् । ते तस्य वज्रप्रतिमाः शराः सर्पविषोपमाः ॥
विलयं जग्मुरागत्य कवचं काञ्चनप्रभम् ॥३१॥

दूसरा धनुष लिया । उस धनुषको भी लक्ष्मणने तीन बाणोंसे काट डाला ॥१८॥ अनन्तर धनुषके कटजानेपर लक्ष्मणने सर्पके विषके समान विषैले पाँच बाणोंसे इन्द्रजित्की छातीमें मारा ॥१९॥ धनुषसे निकले वे बाण उसके शरीरको छेदकर लालसर्पके समान पृथिवीपर गिरे ॥२०॥ धनुषके कटजानेपर और बाणोंसे आहत होकर इन्द्रजित् मुँहसे खून उगलने लगा और उसने दूसरा बहुत मजबूत धनुष लिया, जिसकी ज्या भी बहुत मजबूत थी ॥ २१ ॥ लक्ष्मणको लक्ष्यकरके वह बड़ी शीघ्रतासे बाणवर्षा करने लगा, जिसप्रकार इन्द्र जलवृष्टि करता है ॥ २२ ॥ इन्द्रजित्के द्वारा चलायी उस भयंकर बाणवृष्टिको शत्रुविजयी लक्ष्मणने बिना घबड़ाये रोक दिया ॥ २३ ॥ उस समय बिना घबड़ाये तेजस्वी लक्ष्मणने इन्द्रजित्को अपना पराक्रम दिखाया, जिसको देखकर औरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २४ ॥ हस्तलाघव दिखाते हुए लक्ष्मणने उन सब राक्षसोंको, एक-एकको तीन-तीन बाणोंसे मारा । उस समय लक्ष्मण बड़े क्रोधमें थे और इन्द्रजित्ने उनको बाणोंसे मारा ॥२५॥ बलवान् शत्रुघाती लक्ष्मणके द्वारा अत्यन्त बिधा हुआ इन्द्रजितने लक्ष्मणपर शीघ्रही अनेक बाण चलाये ॥२६॥ शत्रु-हन्ता लक्ष्मणने उन बाणोंको पास पहुँचनेके पहलेही तीखे बाणोंसे काट डाला और रघुश्रेष्ठ लक्ष्मणने रथी इन्द्रजित्के सारथिका मस्तक और दोनों पैर, छोटी गाठवाले भल्लनामक बाणसे, काट डाले । सारथिके न रहने पर भी वे घोड़े बिना घबड़ाये रथ खींचते रहे ॥२७, २८॥ वे घोड़े चक्कर काटने लगे, यह देखकर लोगोंको आश्चर्य हुआ । पराक्रमी लक्ष्मणने क्रोधकरके भयभीत करते हुए इन्द्रजित्के घोड़ोंको मारा । रावणपुत्र लक्ष्मणके इस कामको क्षमा न कर सका, उसने बड़े बलके साथ लक्ष्मणको दस बाणोंसे मारा ।

अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः। ललाटे लक्ष्मणं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ॥३२॥
अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रमस्त्रं प्रदर्शयन्। तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ॥३३॥
रणाग्रे समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः। स तथाप्यर्दितो बाणै राक्षसेन तदा मृधे ॥३४॥
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः। विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले ॥३५॥
लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ। अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ विशिखैर्भीमविक्रमौ ॥३६॥
ततः शोणितदिग्धाङ्गौ लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ। रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥३७॥
तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ। घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावावुभौ जये ॥३८॥
ततः समरकोपेन संयुतो रावणात्मजः। विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे ॥३९॥
अयोमुखैस्त्रिभिर्विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं विभीषणम्। एकैकेनाभिविव्याध तान्सर्वान्हरियूथपान् ॥४०॥
तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान्। विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः ॥४१॥
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथिः। अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह ॥४२॥
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः। चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधापातयद्भुवि ॥४३॥
तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः। वज्रस्पर्शसमान्पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान् ॥४४॥
ते तस्य कायं भित्त्वा तु रुक्मपुङ्खा निमित्तगाः। बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगाः ॥४५॥
स पितृव्यस्य संक्रुद्ध इन्द्रजिच्छरमाददे। उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलम् ॥४६॥

वज्रके समान दृढ़ और सर्पविषके समान विषैले वे बाण लक्ष्मणके सुवर्णपुंखवाले कवचके पास आकर बुझ गये ॥२९—३१॥ लक्ष्मणका कवच अभेद्य है यह जानकर रावणपुत्रने पुंखवाले तीन बाणोंसे लक्ष्मणके मस्तकपर, हस्तलाघव दिखाता हुआ बड़े क्रोधसे, मारा। ललाटपर चले उन तीन बाणोंसे युद्धश्लाघी रघुनन्दन लक्ष्मण ऐसे शोभते थे जैसे तीन शृंगके पर्वत हों। फिर भी उस समय युद्धमें इन्द्रजित्ने लक्ष्मणको पीड़ित किया ॥ ३२—३४ ॥ लक्ष्मणने भी उसको पाँच बाणोंसे मारा और उसके दोनों कुण्डल काट डाले ॥ ३५ ॥ महाबली और बड़े धनुषवाले पराक्रमी इन्द्रजित् और लक्ष्मण परस्पर विशिखनामक बाणोंसे मारने लगे ॥ ३६ ॥ खूनसे लतपथ दोनों लक्ष्मण और इन्द्रजित् फूले पलाश-वृक्षके समान मालूम होते थे ॥ ३७ ॥ जय चाहनेवाले वे दोनों धनुर्धारी वीर परस्पर मिलकर भयङ्कर बाणोंसे समस्त शरीरमें बिंधाये ॥३८॥ अनन्तर युद्धके कारण क्रोध करके रावणपुत्रने तीन बाणोंसे विभीषणके मुँहमें मारा ॥ ३९ ॥ लोहमुख तीन बाणोंसे राक्षसराज विभीषणको मारकर इन्द्रजित्ने सब वानरोंको एक-एक बाण मारा ॥ ४० ॥ तेजस्वी विभीषण इससे बहुत क्रुद्ध हुए, रावणपुत्र दुरात्मा इन्द्रजित्के घोड़ोंको गदासे मारा ॥४१॥ सारथि और घोड़ोंके नष्ट हो जानेपर तेजस्वी इन्द्रजित् रथसे कूदकर नीचे आया और उसने अपने चाचापर शक्ति छोड़ी ॥ ४२ ॥ आती हुई उस शक्तिको देखकर सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंसे उसके दस टुकड़े करके जमीनपर गिरा दिये ॥४३॥ इन्द्रजित्के घोड़े मारे गये थे। दृढ़ धनुषवाले विभीषणने उसपर बड़ा क्रोध किया और वज्रके समान कठोर पाँच बाण उसकी छातीमें मारे ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणकी ओर जानेवाले सुवर्णपुंखवाले वे बाण उसका शरीर छेदकर खून लगनेसे लाल हो गये, मानों वे लाल साँप हों ॥ ४५ ॥ राक्षसोंके बीचमें

तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन संधितम् । लक्ष्मणोऽप्याददे बाणमन्यद्भीमपराक्रमः ॥४७॥
कुबेरेण स्वयं स्वप्ने यद्दत्तममितात्मना । दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥४८॥
तयोस्तु धनुषी श्रेष्ठे बाहुभिः परिघोपमैः । विकृष्यमाणे बलवत्क्रौञ्चाविव चुकूजतुः ॥४९॥
ताभ्यां तु धनुषि श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ । विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ॥५०॥
तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ । मुखेन मुखमाहत्य संनिपेततुरोजसा ॥५१॥
संनिपातस्तयोश्चासीच्छरयोर्घोररूपयोः । सधूमविस्फुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ॥५२॥
तौ महाग्रहसंकाशावन्योन्यं संनिपत्य च । संग्रामे शतधा यातौ मेदिन्यां चैव पेततुः ॥५३॥
शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि । व्रीडितौ जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ॥५४॥
स संरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे । रौद्रं महेन्द्रजिद्युद्धेऽप्यसृजद्युद्धविष्ठितः ॥५५॥
तेन तद्विहतं शस्त्रं वारुणं परमाद्भुतम् । ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः ॥
आग्नेयं संदधे दीप्तं सलोकं संक्षिपन्निव ॥५६॥
सौर्येणास्त्रेण तं वीरो लक्ष्मणः पर्यवारयत् । अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ॥५७॥
आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम् । तस्माच्चापाद्विनिष्पेतुर्भास्वराः कूटमुद्गराः ॥५८॥
शूलानि च भुशुण्ड्यश्च गदाः खड्गाः परश्वधाः । तद्दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रं सुदारुणम् ॥५९॥
अवार्यं सर्वभूतानां सर्वशस्त्रविदारणम् । माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥६०॥

वर्तमान इन्द्रजित्ने अपने चापपर क्रोधकरके यमराजका दिया उत्तम और दृढ़ अस्त्र लिया ॥ ४६ ॥ राक्षसने वह बड़ा बाण चढ़ाया है यह देखकर तेजस्वी भीमपराक्रमी लक्ष्मणने भी दूसरा बाण लिया ॥ ४७ ॥ अमितात्मा स्वयं कुबेरने वह बाण दिया था, वह दुर्जय था, इन्द्र, देवता और असुर भी उसे सह नहीं सकते थे ॥४८॥ उन दोनोंके उत्तम धनुष परिघके समान बाहुओंसे खींचे जानेपर क्रौंचपक्षीके समान शब्द करने लगे ॥ ४९ ॥ उन दोनों वीरोंके द्वारा उत्तम धनुषपर रखकर खींचे गये बाण अपनी शोभासे बहुत अधिक प्रकाशमान हुए ॥ ५० ॥ धनुषसे निकले हुए बाणोंने अपने प्रकाशसे आकाशको प्रकाशित कर दिया और वे दोनों बाण आपसमें टकराकर गिर पड़े ॥ ५१ ॥ उन दोनों भयङ्कर बाणोंके टकरसे भयानक आग उत्पन्न हुई, जिससे धूआँ निकलता था और चिनगारियाँ उड़ती थीं ॥ ५२ ॥ महाग्रहके समान वे दोनों बाण आपसमें टकराकर सैकड़ों टुकड़े हो गये और पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ५३ ॥ युद्धक्षेत्रमें दोनों बाण व्यर्थ हो गये—यह देखकर लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनोंको क्रोध हुआ और दोनोंही लज्जित हुए ॥ ५४ ॥ लक्ष्मणने क्रोधकरके वरुण अस्त्र लिया और उसे चलाया और युद्धमें स्थित इन्द्रजित्ने रुद्रास्त्र उठाया और चलाया ॥ ५५ ॥ उस अद्भुत वरुण अस्त्रको इन्द्रजित्ने व्यर्थ कर दिया और युद्धविजयी तेजस्वी इन्द्रजित्ने क्रोधकरके आग्नेय अस्त्र चलाया, मानों वह सब लोकोंको नष्ट करना चाहता हो ॥ ५६ ॥ वीर लक्ष्मणने सौर्य अस्त्रसे उसे रोक दिया। अपने अस्त्रका रोक दिया जाना देखकर, इन्द्रजित् क्रोधसे मूर्छित हो गया ॥५७॥ तबशत्रुको विदारण करनेवाला तीखा आसुर बाण उसने उठाया, उस समय इन्द्रजित्के धनुषसे चमकीले यन्त्रका मुद्गर, शूल, भुशुन्डी, गदा, खड्ग, परशु निकलने लगे। लक्ष्मणने युद्धमें उस भयङ्कर और कठोर अस्त्रको देखकर,

तयोः समभवद्युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन् ॥६१॥
भैरवाभिरुते भीमे युद्धे वानररक्षसाम् । भूतैर्बहुभिराकाशं विस्मितैरावृतं बभौ ॥६२॥
ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वगरुडोरगाः । शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥६३॥
अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं संदधे राघवानुजः । हुताशनसमस्पर्शं रावणात्मजदारणम् ॥६४॥
सुपत्रमनुवृत्ताङ्गं सुपर्वाणं सुसंस्थितम् । सुवर्णविकृतं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥६५॥
दुरावारं दुर्विषमं राक्षसानां भयावहम् । आशीविषविषप्रख्यं देवसंघैः समर्चितम् ॥६६॥
येन शक्रो महातेजा दानवानजयत्प्रभुः । पुरा देवासुरे युद्धे वीर्यवान्हरिवाहनः ॥६७॥
अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् । शरश्रेष्ठं धनुःश्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ॥६८॥
लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः । धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ॥
पौरुषे चाप्रतिद्वंद्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥६९॥
इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् । लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥
ऐन्द्रास्त्रेण समायुज्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥७०॥
तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् । प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥७१॥
तद्राक्षसतनूजस्य भिन्नस्कन्धं शिरो महत् । तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ॥७२॥

जिस अस्त्रको प्राणियोंमें कोई भी नहीं रोक सकता था और जो सब अस्त्रोंको नष्ट कर सकता था, उसको माहेश्वर अस्त्रसे रोका। उन दोनों अस्त्रोंसे बड़ा अद्भुत और रोमहर्षण युद्ध हुआ, उस समय आकाशके प्राणी आत्मरक्षाके लिए लक्ष्मणके पास आये ॥५७--६१॥ वानर और राक्षसोंके उस भयङ्कर युद्धके समय, जिसमें भयानक शब्द हो रहा था, विस्मित अनेक प्राणियोंसे आकाश भर गया और इस कारण वह शोभित होने लगा ॥ ६२ ॥ ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुड़, सर्प ये सब इन्द्रको आगे करके युद्धमें लक्ष्मणकी रक्षा करने लगे ॥ ६३ ॥ अनन्तर लक्ष्मणने दूसरा उत्तम बाण धनुषपर चढ़ाया, जिसका स्पर्श आगके समान था और जो रावणपुत्रको मारनेवाला था ॥ ६४ ॥ उस बाणके सुन्दर पंख थे, चढ़ाव उतराव था, सुन्दर गाँठे थीं, अच्छीतरह लगनेवाला था, सोनेका बना था और शरीरान्त कर देनेवाला था, वह बाण वीर लक्ष्मणने चढ़ाया ॥ ६५ ॥ उस बाणको कोई रोक नहीं सकता था और न कोई सह सकता था, राक्षसोंके लिए भयकारक था, सर्पके विषके समान उसका विष था और देवताओंके द्वारा प्रशंसित था ॥ ६६ ॥ हरे रङ्गके घोड़ेवाले तेजस्वी इन्द्रने पहले देवासुरसंग्राममें जिस अस्त्रसे दानवोंको जीता था, उस बाणश्रेष्ठ इन्द्रास्त्रको जो युद्धमें कभी हारा न था, उत्तम धनुषपर रखकर खींचते हुए लक्ष्मणने ऐसा कहा ॥ ६७, ६८ ॥ शोभायुक्त लक्ष्मण अपने मनोरथको सिद्ध करनेवाले ये वचन बोले--दशरथपुत्र रामचन्द्र यदि धर्मात्मा हैं, यदि वे सत्यप्रतिज्ञ हैं और पौरुषमें सर्वश्रेष्ठ हैं, तो अस्त्र! इस रावणपुत्रको तुम मारो ॥ ६९ ॥ ऐसा कहकर सीधा चलनेवाले उस बाणको कानतक खींचकर वीर लक्ष्मणने युद्धमें इन्द्रजित्पर छोड़ा। शत्रुहन्ता लक्ष्मणने इन्द्रके मन्त्रसे उस बाणको अभिमन्त्रित कर दिया था ॥ ७० ॥ पगड़ीके साथ उसके सुन्दर मस्तकको, जिसमें कुण्डल चमक रहे थे, शरीरसे काटकर पृथिवीपर उस अस्त्रने गिरा दिया ॥७१॥ राक्षसपुत्रका कन्धा-रहित बड़ा शिर, जो रुधिरसे भीग गया था, सुवर्णके समान पृथिवीपर दीख पड़ा

हतः स निपपाताथ धरण्यां रावणात्मजः । कवची सशिरस्त्राणो विप्रविद्धशरासनः ॥७३॥
चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणाः । हृष्यन्ते निहते तस्मिन्देवा वृत्रवधे यथा ॥७४॥
अथान्तरिक्षे भूतानामृषीणां च महात्मनाम् । जज्ञेऽथ जयसंनादो गन्धर्वाप्सरसामपि ॥७५॥
पतितं समभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः । वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः ॥७६॥
वानरैर्वध्यमानास्ते शस्त्राण्युत्सृज्य राक्षसाः । लङ्कामभिमुखाः सस्रुर्नष्टसंज्ञाः प्रधाविताः ॥७७॥
दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः । त्यक्त्वा प्रहरणान्सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ॥७८॥
केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः । समुद्रे पतिताः केचित्केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥७९॥
हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं च रणक्षितौ । राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित्प्रत्यदृश्यत ॥८०॥
यथास्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः । तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥८१॥
शान्तरश्मिरिवादित्यो निर्वाण इव पावकः । बभूव स महाबाहुर्व्यपास्तगतजीवितः ॥८२॥
प्रशान्तपीडाबहुलो विनष्टारिः प्रहर्षवान् । बभूव लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते तदा ॥८३॥
हर्षं च शक्रो भगवान्सह सर्वैर्महर्षिभिः । जगाम निहते तस्मिन्राक्षसे पापकर्मणि ॥८४॥
आकाशे चापि देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः । नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः ॥८५॥
ववर्षुः पुष्पवर्षाणि तदद्भुतमिवाभवत् । प्रशशाम हते तस्मिन्राक्षसे क्रूरकर्मणि ॥८६॥
शुद्धा आपो नभश्चैव जहृषुर्देवदानवाः । आजग्मुः पतिते तस्मिन्सर्वलोकभयावहे ॥८७॥

॥ ७२ ॥ मारे जानेपर वह रावणपुत्र कवच और पगड़ी पहने हुए पृथिवीपर गिरा, उसका धनुष छूटकर अलग हो गया था ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार वृत्रवध होनेपर देवता प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार इन्द्रजितके मारे जानेपर वानर प्रसन्न हुए, शब्द करने लगे ॥ ७४ ॥ आकाशस्थित प्राणी, महात्मा, ऋषि, गन्धर्व और अप्सराएँ जयजयकार करने लगे ॥ ७५ ॥ युद्धविजयी वानरोंके द्वारा आहत वह राक्षसी सेना इन्द्रजित्को पृथिवी-में गिरा देखकर दिशाओंमें भाग गयी ॥ ७६ ॥ वानर राक्षसोंको मारने लगे, तब राक्षस अस्त्र छोड़कर बेहोश लंकाकी ओर भागे ॥ ७७ ॥ पट्टिश, तलवार, परश्वध आदि अस्त्रोंको वहीं छोड़कर सैकड़ों राक्षस भयभीत होकर दिशाओंमें भाग गये ॥ ७८ ॥ वानरोंसे पीड़ित, डरे हुए कई राक्षस लंकामें गये, कई तो समुद्रमें कूद पड़े और कई पर्वतपर चढ़ गये ॥ ७९ ॥ इन्द्रजित् मारा गया और वह रणक्षेत्रमें सो रहा है, यह देखकर हजारों राक्षसोंमें वहाँ एक भी नहीं दीख पड़ा ॥ ८० ॥ जिसप्रकार सूर्यके अस्त होनेपर किरणें दिखायी नहीं पड़तीं, उसीप्रकार इन्द्रजित्के गिरनेपर वे सब राक्षस दिशाओंमें भाग गये ॥ ८१ ॥ नष्टकिरण सूर्यके समान, बुझे अग्निके समान वह मृत और विक्षिप्त शरीर इन्द्रजित् दिखायी पड़ा ॥८२॥ रावणपुत्र इन्द्रजित्के रणक्षेत्रमें गिरनेपर समस्त लोकोंकी पीड़ा शान्त होगयी, सबके शत्रु नष्ट हो गये, अतएव सभी प्रसन्न हुए ॥ ८३ ॥ पापी उस राक्षसके मारे जानेपर समस्त महर्षियोंके साथ भगवान् इन्द्र प्रसन्न हुए ॥ ८४ ॥ अप्सराओं तथा महात्मा गन्धर्वोंके नाचनेका शब्द और देवताओंकी दुन्दुभीका शब्द आकाशमें सुनायी पड़ा ॥ ८५ ॥ वह इन्द्रजित्का वध एक अद्भुत काम हुआ, इससे देवता पुष्पवृष्टि करने लगे, क्रूरकर्मा उस राक्षसके मारे जानेपर पृथिवीकी धूल शान्त होगयी ॥ ८६ ॥ जल स्वच्छ हुआ,

ऋचुश्च सहितास्तुष्टा देवगन्धर्वदानवाः। विज्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति ॥८८॥
ततोऽभ्यनन्दन्संहृष्टाः समरे हरियूथपाः। तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥८९॥
विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः। विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥९०॥
क्ष्वेडन्तश्च प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः। लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे ॥९१॥
लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः। लक्ष्मणो जयतीत्येव वाक्यं विश्रावयंस्तदा ॥९२॥
अन्योन्यं च समाश्लिष्य हरयो हृष्टमानसाः। चक्रुरुच्चावचगुणा राघवाश्रयसत्कथाः ॥९३॥

तदसुकरमथाभिवीक्ष्य हृष्टाः प्रियसुहृदो युधि लक्ष्मणस्य कर्म।
परममुपलभन्मनःप्रहर्षं विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः ॥९४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः। बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥ १ ॥
ततः स जाम्बवन्तं च हनूमन्तं च वीर्यवान्। संनिपत्य महातेजास्तांश्च सर्वान्वनौकसः ॥ २ ॥
आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ। विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ ३ ॥
ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च। तस्थौ भ्रातृसमीपस्थः शक्रस्येन्द्रानुजो यथा ॥ ४ ॥
निष्टनन्निव चागत्य राघवाय महात्मने। आचचक्षे तदा वीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥ ५ ॥

आकाश स्वच्छ हुआ और देवता प्रसन्न हुए। सबलोकोंके भयंकर उस राक्षसके मारे जानेपर सभी देवता वहाँ आये और देव दानव गन्धर्व सभी मिलकर तथा सन्तुष्ट होकर बोले—निर्भय और शान्तपाप होकर ब्राह्मण अब विचरण करें ॥८७,८८॥ अप्रतिद्वन्द्वी उस राक्षसको मृत देखकर वानर-सेनापति बड़े प्रसन्न हुए और उनलोगोंने लक्ष्मणकी प्रशंसा की ॥८९॥ विभीषण,हनुमान, ऋक्ष-सेनापति जाम्बवान्ने विजयके लिए लक्ष्मणका अभिनन्दन किया और उनकी स्तुति की ॥ ९० ॥ अवसर पाकर खेलते कूदते और गर्जते हुए वानर लक्ष्मणको घेरकर खड़े हो गये ॥ ९१ ॥ वानर पूँछ कँपाते और पटकते हुए "लक्ष्मणकी जय" यह वाक्य सुनाने लगे ॥ ९२॥ छोटे-बड़े सभी वानर प्रसन्न होकर परस्पर आलिङ्गन करके लक्ष्मणके सम्बन्धकी बातें करने लगे ॥ ९३ ॥ वह असाध्य काम अपने प्रियमित्र लक्ष्मणके द्वारा सम्पन्न हुआ देखकर इन्द्रके शत्रु रावणके पुत्रका मारा जाना सुनकर देवताओंका मन बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ९४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका नब्बेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९० ॥

शत्रुको जीतनेवाले इन्द्रजित्को युद्धमें मारकर शुभलक्षण लक्ष्मण प्रसन्न हुए,उनका शरीर रुधिरमें भींग गया था ॥ १॥ तेजस्वी वीर्यवान् लक्ष्मण जाम्बवान् हनुमान् और उन सब वानरोंको साथ लेकर तथा विभीषण और हनुमानपर भार देकर जहाँ सुग्रीव और रामचन्द्र थे वहाँ आये ॥ २, ३ ॥ लक्ष्मणने रामचन्द्रकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया और वे भाई के पास बैठ गये, जिसप्रकार इन्द्रके पास उपेन्द्र बैठते हैं ॥ ४ ॥

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना । न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥ ६ ॥
श्रुत्वैव तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम् । प्रहर्षमतुलं लेभे वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ७ ॥
साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म चासु करं कृतम् । रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥ ८ ॥
स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्धनम् । लज्जमानं बलात्स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥ ९ ॥
उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् । भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥१०॥
शल्यसंपीडितं शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम् । रामास्तु दुःखसंतप्तं तं तु निःश्वासपीडितम् ॥११॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् । उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥१२॥
कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा । अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥१३॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन्दुरात्मनि । रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ॥१४॥
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः । विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥१५॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद्विनिपातितः । निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ॥१६॥
बलव्यूहेन महता निर्यास्यति हि रावणः । बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥१७॥
तं पुत्रवधसंतप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् । बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥१८॥
त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे । न दुष्प्रापा हते तस्मिञ्शक्रजेतरि चाहवे ॥१९॥

विभीषण प्रसन्न होकर महात्मा रामचन्द्रके पास आये, मानों वे अपनी प्रसन्नताके द्वारा भयानक इन्द्रजित्‌का वध रामचन्द्रको बतला रहे हों ॥ ५ ॥ उससमय विभीषणने प्रसन्न होकर महात्मा लक्ष्मणके द्वारा इन्द्रजित्‌का सिर काटा जाना बतलाया ॥ ६ ॥ लक्ष्मणके द्वारा महाबली इन्द्रजित्‌का वध सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे इसप्रकार बोले ॥ ७ ॥ लक्ष्मण, धन्यवाद, मैं प्रसन्न हूँ, तुमने बड़ा कठिन काम किया, इन्द्रजित्‌के मारे जानेसे हमलोग जीत गये ऐसा समझो ॥ ८ ॥ कीर्तिवर्धन लक्ष्मणका उन्होंने सिर सूँघा, लक्ष्मण उस समय विनयलज्जित हो रहे थे, बली रामचन्द्रने उन्हें स्नेहपूर्वक जोरसे खींचकर गोदमें बैठाया ॥ ९ ॥ लक्ष्मणको गोदमें लेकर रामचन्द्रने उनको जोरसे छातीसे लगाया और प्रिय भाई लक्ष्मणको उन्होंने बार-बार देखा ॥ १० ॥ राक्षसोंको मारनेवाले लक्ष्मण बाणोंसे पीड़ित होकर लम्बी साँस ले रहे थे। रामचन्द्रने दुखी और सांस लेते हुए लक्ष्मणका माथा सूँघकर उनका समस्त शरीर हाथसे छुआ, और लक्ष्मणको धैर्य देते हुए पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र उनसे बोले ॥ ११, १२ ॥ दुष्कर काम करनेवाले तुमने बड़ाही शुभ काम किया है, युद्धमें पुत्रके मारे जानेसे रावण मारा गया—ऐसा मैं समझता हूँ ॥ १३ ॥ उस दुरात्माके मारे जानेपर आज मैं शत्रुपर विजयी हुआ। वीर, प्रसन्नताकी बात है कि तुमने क्रूर रावणका दाहिना हाथ काट लिया, वही उसका सहारा था, विभीषण और हनुमान्‌ने भी युद्धमें बड़ा काम किया ॥ १४, १५ ॥ तीन दिन और रातमें उस वीरको तुमने किसी तरह मारा, तुमने मुझे शत्रुहीन बना दिया, अब युद्धके लिए रावण निकलेगा ॥१६॥ बहुत बड़ी सेना लेकर रावण आवेगा जब वह सुनेगा कि बड़ी सेनाके साथ उसका पुत्र मारा गया ॥ १७ ॥ पुत्रवधसे दुखी युद्धके लिए आये उस राक्षसराजको बलसे आक्रमण करके मैं मारूँगा ॥ १८ ॥ उस इन्द्रजित्‌के मारेजानेपर सफलमनोरथ तुम्हारे लिए पृथिवी और सीता इनका मिलना कठिन

स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः। रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥२०॥
विशल्योऽयं महाप्राज्ञः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः। यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुदाचर ॥२१॥
विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिर्मित्रवत्सलः। ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ॥२२॥
ये चाप्यन्येऽत्र युध्यन्ति सशल्या व्रणिनस्तथा। तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियतां सुखिनस्तथा ॥२३॥
एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः। लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥२४॥
स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत। तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ॥२५॥
विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया। सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सामकरोत्तदा ॥२६॥
ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतक्लमः। सौमित्रिर्मुमुदे तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥२७॥

तदैव रामः प्लवगाधिपस्तथा विभीषणश्चर्क्षपतिश्च वीर्यवान्।
अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितं मुदा ससैन्याः जहर्षिरे ॥२८॥
अपूजयत्कर्म स लक्ष्मणस्य सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा।
बभूव हृष्टो युधि वानरेन्द्रो निशम्य तं शक्रजितं निपातितम् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ॥९१॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितो वधम्। आचचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥ १ ॥
युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः। विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः ॥ २ ॥

नहीं है, क्योंकि युद्धमें तुमने इन्द्रको जीतनेवालेको मारा है ॥ १९ ॥ भाईको समझाकर तथा आलिङ्गन करके रामचन्द्र प्रसन्न होकर सुषेणसे बोले ॥ २० ॥ मित्रवत्सल प्राज्ञ लक्ष्मणको नीरोग करो, जिसतरह वे अच्छे हों वैसा करो ॥२१॥ मित्रवत्सल लक्ष्मणको नीरोग करो, वृक्षोंसे युद्ध करनेवाले भालु और वानरोंको भी नीरोग करो, जो और युद्ध करनेवाले हों, जिन्हें बाण लगा हो, जिन्हें घाव हुआ हो, उन सबको प्रयत्न करके नीरोग करो ॥ २२, २३ ॥ महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर वानर-सेनापति सुषेणने लक्ष्मणकी नाकमें औषध डाली ॥ २४ ॥ उसकी गंधसे लक्ष्मणकी वेदना दूर हो गयी, उनके घाव भर गये ॥ २५ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे विभीषण आदि मित्रों तथा अन्य वानर-सेनापतियोंकी चिकित्सा सुषेणने की ॥ २६ ॥ बाणोंके निकल जानेसे लक्ष्मण सुस्थ हो गये, चिन्ता दूर होनेसे वे सुस्थ हो गये ॥ २७ ॥ रामचन्द्र, सुग्रीव, विभीषण, बली जाम्बवान्, लक्ष्मणको नीरोग होकर उठ खड़ा हुआ देखकर, सेनाके साथ अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२८॥ दसरथपुत्र महात्मा रामचन्द्रने लक्ष्मणके इस कठिन कामकी प्रशंसा की। युद्धमें इन्द्रजित् मारा गया यह सुनकर वानरराज प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९१ ॥

इन्द्रजित्का वध सुनकर उसके मन्त्रियोंने शीघ्रही बुद्धिहीन रावणसे यह संवाद सुनाया ॥ १ ॥

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः । लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित् ॥ ३ ॥
गतः स परमाँल्लोकाञ्शरैः संतर्प्य लक्ष्मणम् । स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ॥ ४ ॥
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् । उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुंगवः ॥ ५ ॥
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः । हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महाबल ॥ ६ ॥
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः । ननु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि॥ ७ ॥
मन्दरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि । अद्य वैवस्वतो राजा भूयो बहुमतो मम ॥ ८ ॥
येनाद्य त्वं महाबाहो संयुक्तः कालधर्मणा । एष पन्थाः सुयोधानां सर्वामरगणेष्वपि ॥
यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान्स्वर्गमृच्छति ॥ ९ ॥
अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः । हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ॥१०॥
अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना । एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे ॥११॥
अद्य नैर्ऋतकन्यानां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम् । करेणुसङ्घस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे ॥१२॥
यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परन्तप । मातरं मां च भार्याश्च क्व गतोऽसि विहाय नः॥१३॥
मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम् । प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥१४॥
स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च राघवे । मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः॥१५॥
एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् । आविवेश महान्कोपः पुत्रव्यसनसंभवः ॥१६॥

महाराज, विभीषणकी सहायता पाकर लक्ष्मणने हमलोगोंके सामनेही आपके पुत्रको मार डाला ॥२॥ युद्धोंमें अपराजित इन्द्रको जीतनेवाले तुम्हारे वीर पुत्रको वीर लक्ष्मणने बाणोंसे मारा, तुम्हारा पुत्र लक्ष्मणको बाणोंसे तृप्त करके उत्तम लोकोंमें गया। भयङ्कर हृदय छेदनेवाला, पुत्र इन्द्रजित्का वध सुनकर रावण मूर्छित हो गया। राक्षसराज रावण बहुत देरके बाद होशमें आया। वह अधीर हो गया, पुत्र-शोकसे व्याकुल होकर वह दीनतापूर्वक विलाप करने लगा। हा, राक्षस सेनाके प्रधान, हा, पुत्र, ॥ ३—६॥ तुमने इन्द्रको जीता था, आज तुम लक्ष्मणके वश कैसे हो गये? क्रोध करके तुम काल, यम और मन्दराचलके शिखरको भी तोड़ सकते थे, फिर लक्ष्मण तुम्हारे लिए क्या चीज है! आज मैंने यमराजको ठीक-ठीक जाना है, क्योंकि उसने तुमको भी कालधर्मसे युक्त करा दिया, तुमको भी मार दिया। देवताओं तकके उत्तम योद्धाओंकी यही रीति है, जो पुरुष स्वामीके लिए मारा जाता है, वह स्वर्गमें जाता है ॥७—६॥ आज देवता, सब लोकपाल तथा महर्षि, इन्द्रजित्का मारा जाना सुनकर, सुखकी नींद सोवेंगे ॥ १० ॥ तीनोंलोक, वनके साथ यह समूची पृथिवी एक इन्द्रजित्के बिना मुझे सूनी मालूम होती है ॥ ११ ॥ आज अपने अन्तःपुरमें राक्षस-कन्याओंके रोनेका शब्द मैं सुनूँगा, जिसप्रकार पर्वत कन्दराओंमें हथिनियोंका शब्द सुन पड़ता है ॥ १२ ॥ परन्तप! यौवराज्य, लंका, राक्षस, माता और मुझको तथा अपनी स्त्रियोंको छोड़कर आज तुम कहाँ गये? ॥१३॥ वीर, मेरे मरनेपर तुमको मेरा अन्तिम कृत्य करना चाहिए था, पर तुमने विपरीत करनेके लिए मुझको विवश किया, अब मुझेही तुम्हारा कृत्य करना पड़ेगा ॥१४॥ लक्ष्मण, राम और सुग्रीवके जीवित रहते ही और मेरे मनका दुःख बिना मिटाये ही, मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये? ॥१५॥ इस तरहके अनेक विलाप करते हुए

प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः । दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः ॥१७॥
कोपाद्विजृम्भमाणस्य वक्त्राद्व्यक्तमिवज्वलन् । उत्पपात सधूमाग्निर्वृत्रस्य वदनादिव ॥१८॥
स पुत्रवधसंतप्तः शूरः क्रोधवशं गतः । समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद्वधम् ॥१९॥
तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च । रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥२०॥
घोरं प्रकृत्या रूपं तत्तस्य क्रोधाग्निमूर्च्छितम् । बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव व्यवस्थितम् ॥२१॥
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः । दीपाभ्यामिव दीप्ताभ्यां सार्चिषः स्नेहबिंदवः ॥२२॥
दन्तान्विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्वनः । यन्त्रस्याकृष्यमाणस्य मथनतो दानवैरिव ॥२३॥
तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम् । वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपचक्रमुः ॥२४॥
ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः । अब्रवीद्रक्षसां मध्ये संस्तम्भयिषुराहवे ॥२५॥
मया वर्षसहस्राणि चरित्वा परमं तपः । तेषु तेष्ववकाशेषु स्वयंभूः परितोषितः ॥२६॥
तस्यैव तपसो व्युष्ट्या प्रसादाच्च स्वयंभुवः । नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन ॥२७॥
कवचं ब्रह्मदत्तं मे यदादित्यसमप्रभम् । देवासुरविमर्देषु न च्छिन्नं वज्रमुष्टिभिः ॥२८॥
तेन मामद्य संयुक्तं रथस्थमिह संयुगे । प्रतीयात्कोऽद्य मामाजौ साक्षादपि पुरंदरः ॥२९॥

राज रावणके मनमें पुत्रवधके कारण बहुत बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ रावण स्वभावसे ही क्रोधी था, उसपर पुत्रवधका क्रोध ! इसने सदा क्रोधसे जलनेवाले रावणको और भी प्रदीप्त कर दिया, जिसप्रकार ग्रीष्मऋतुमें किरणें सूर्यको असह्य बना देती हैं ॥ १७ ॥ क्रोधसे उसने जँभाई ली, उसके मुँहसे जलता हुआ अग्निपिण्ड निकला, जिससे धूआँ उठ रहा था, जिसप्रकार वृत्रके मुँहसे अग्निपिण्ड निकला था ॥ १८ ॥ पुत्रवधसे दुःखी रावणको बड़ा क्रोध आया, उसने सोच-विचार कर सीताका वध करनाही उत्तम समझा ॥ १९ ॥ स्वभावतः उसकी लाल लाल आँखें क्रोधाग्निके कारण और लाल हो गयीं । उसकी भयङ्कर आँखें चमकने लगीं ॥ २० ॥ उसके स्वाभाविक भयानक रूपको क्रोधाग्निने और भयानक बना दिया, अतएव वह क्रुद्ध रुद्रके समान मालूम होने लगा ॥ २१ ॥ क्रुद्ध रावणकी आँखोंसे अश्रुकी बूँदें गिरीं, जिसप्रकार जलते हुए दो दीपोंसे ज्वालायुक्त तैलकी बूँदें टपकती हैं ॥ २२ ॥ रावण जब अपने दाँत कटकटाता था, तब उसकी ध्वनि सुनायी पड़ती थी, मानो समुद्रमन्थनके समय दानवोंके घुमानेसे यन्त्र (मन्दर) का शब्द हो ॥ २३ ॥ यमराजके समान क्रुद्ध और स्थावरजंगमको खानेकी इच्छा रखनेवाला रावण सब दिशाओंकी ओर आँखे उठाकर देखता था, अतएव कोई राक्षस उसके पास नहीं जा सकता था ॥ २४ ॥ राक्षसाधिप रावण अत्यन्त क्रोध करके युद्धमें राक्षसोंको खड़ा करनेकी इच्छासे राक्षसोंके बीचमें बोला ॥ २५ ॥ हजार वर्ष तक मैंने कठोर तपस्या की है, जब-जब अवकाश मिला अर्थात् व्रतकी प्रत्येक समाप्तिपर मैंने ब्रह्माको प्रसन्न किया ॥२६॥ उस तपस्याके फलसे और ब्रह्माकी कृपासे देवता तथा असुर किसीसे भी मुझे भय नहीं है ॥ २७ ॥ सूर्यके समान चमकीला ब्रह्माका दिया जो मेरा कवच है, वह देवासुरयुद्धमें वज्रकी मूठसे भी न टूटा था ॥ २८ ॥ वही कवच पहनकर, रथपर चढ़कर, मैं युद्धमें जाऊँगा; उस समय साक्षात् इन्द्र भी मेरे सामने नहीं आसकता, फिर दूसरा कौन आ

यत्तदाभिप्रसन्नेन सशरं कार्मुकं महत्। देवासुरविमर्देषु मम दत्तं स्वयंभुवा ॥३०॥
अद्य तूर्यशतैर्भीमं धनुरुत्थाप्यतां मम। रामलक्ष्मणयोरेव वधाय परमाहवे ॥३१॥
स पुत्रवधसंतप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः। समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥३२॥
प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः। दीनो दीनस्वरान्सर्वांस्तानुवाच निशाचरान् ॥३३॥
मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम्। किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥३४॥
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः। वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ॥
इत्येवमुक्त्वा सचिवान्खड्गमाशु परामृशत् ॥३५॥
उत्प्लुत्य गुणसंपन्नं विमलाम्बरवर्चसम्। निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः ॥३६॥
रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः। संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ॥३७॥
व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं विचुक्रुशुः। ऊचुश्चान्योन्यमालिङ्गय संक्रुद्धं प्रेक्ष्य राक्षसम् ॥३८॥
अद्यैनं तावुभौ दृष्ट्वा भ्रातरौ प्रव्यथिष्यतः। लोकपाला हि चत्वारः क्रुद्धेनानेन निर्जिताः ॥
बहवः शत्रवश्चान्ये संयुगेष्वभिपातिताः ॥३९॥
त्रिषु लोकेषु रत्नानि भुङ्क्ते आहृत्य रावणः। विक्रमे च बले चैव नास्त्यस्य सदृशो भुवि ॥४०॥
तेषां संजल्पमानानामशोकवनिकां गताम्। अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४१॥
वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः। अभ्यधावत संक्रुद्धः खेग्रहो रोहिणीमिव ॥४२॥

सकता है ॥ २९ ॥ उस समय देवासुरयुद्धमें प्रसन्न होकर ब्रह्माने जो धनुष बाण मुझे दिये थे, उस धनुषको माङ्गलिक वाद्यके साथ आपलोग उठाकर ले आवें, क्योंकि उस धनुषसे युद्धमें राम और लक्ष्मणका वध करना है ॥३०, ३१॥ पुत्रवधसे दुःखी क्रूर रावण क्रोधके अधीन हो गया और उसने सोच-विचार कर सीताका वध करनाही निश्चित किया ॥ ३२ ॥ भयङ्कर प्रकृतिका और भयङ्कर रावण लाल आखोंवाला चारों ओर देखकर धीरे बोलनेवाले राक्षसोंसे दुःखी होकर बोला, ॥ ३३ ॥ वानरोंको धोखा देनेके लिए मेरे बच्चेने मायासे कोई दूसरी चीज काटकर दिखाया था, कि यही सीता है ॥ ३४ ॥ आज मैं इसको सत्य करता हूँ, क्योंकि यह मेरा प्रिय है, नीच क्षत्रियकी अनुरागिणी सीताका आज मैं नाश करूँगा। सचिवोंसे ऐसा कह-कर उसने अपनी तलवार उठायी ॥ ३५ ॥ गुणयुक्त निर्मल आकाशके समान उज्ज्वल तलवार लेकर वह सचिवों और स्त्रीके साथ वहाँ गया, जहाँ सीता थीं ॥ ३६ ॥ पुत्रशोकके कारण रावणकी चेतना नष्ट हो गयी थी, वह तलवार लेकर जहाँ सीता थीं वहाँ क्रोध करके गया ॥३७॥ रावण जा रहा है यह देखकर सचिवोंने सिंहनाद किया, रावणको क्रुद्ध देखकर परस्पर आलिङ्गन करके आपसमें बात करने लगे ॥ ३८ ॥ इसको युद्धमें देखकर वे दोनों भाई व्यथित होंगे, क्रोधकरके इसने चारों लोकपालोंको जीता है और अनेक शत्रुओंको इसने युद्धमें गिराया है ॥ ३९ ॥ तीनों लोकोंसे रत्न लाकर रावण उसका उपभोग करता है, विक्रम और बलमें इसके समान संसारमें दूसरा नहीं है ॥ ४० ॥ वे राक्षस आपसमें इस प्रकारकी बातें कर रहे थे, उसी समय अशोक-वाटिकामें जाकर रावण क्रोधकरके जानकीकी ओर दौड़ा ॥ ४१ ॥ हितचाहनेवाले मित्रोंने क्रुद्ध रावणको रोका, पर इसने, आकाशमें केतु जिस प्रकार रोहिणीपर आक्रमण करता है उसी

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता । ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥४३॥
तं निशम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा । निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनिवर्तिनम् ॥४४॥
सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् । यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ॥
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ॥४५॥
बहुशश्चोदयामास भर्तारं मामनुव्रताम् । भार्या मम भवस्वेति प्रत्याख्यातो ध्रुवं मया ॥४६॥
सोऽयं मामानुपस्थाने व्यक्तं नैराश्यमागतः । क्रोधमोहसमाविष्टो व्यक्तं मां हन्तुमुद्यतः ॥४७॥
अथवा तौ नरव्याघ्रौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । मन्निमित्तमनार्येण समरेऽद्य निपातितौ ॥४८॥
भैरवो हि महान्नादो राक्षसानां श्रुतो मया । बहूनामिह हृष्टानां तथा विक्रोशतां प्रियम् ॥४९॥
अहो धिङ्मन्निमित्तोऽयं विनाशो राजपुत्रयोः । अथवा पुत्रशोकेन अहत्वा रामलक्ष्मणौ ॥५०॥
विधमिष्यति मां रौद्रो राक्षसः पापनिश्चयः । हनूमतस्तु तद्वाक्यं न कृतं क्षुद्रया मया ॥५१॥
यद्यहं तस्य पृष्ठेन तदायास्यमनिर्जिता । नाद्यैवमनुशोचेयं भर्तुरङ्कगता सती ॥५२॥
मन्ये तु हृदयं तस्याः कौसल्यायाः फलिष्यति । एकपुत्रा यदा पुत्रं विनष्टं श्रोष्यते युधि ॥५३॥
सा हि जन्म च बाल्यं च यौवनं च महात्मनः । धर्मकार्याणि रूपं च रुदती संस्मरिष्यति ॥५४॥
निराशा निहते पुत्रे दत्त्वा श्राद्धमचेतना । अग्निमावेक्ष्यते नूनमपो वापि प्रवेक्ष्यति ॥५५॥
धिगस्तु कुब्जामसतीं मन्थरां पापनिश्चयाम् । यन्निमित्तमिमं शोकं कौसल्या प्रतिपत्स्यते ॥५६॥

प्रकार, सीतापर आक्रमण किया ॥ ४२ ॥ निर्दोष सुन्दरी सीता राक्षसियोंके द्वारा रक्षित हो रही थीं, उन्होंने क्रुद्ध राक्षसको तलवार लिये हुए देखा ॥ ४३ ॥ मित्र उसे बहुत रोक रहे थे, पर वह लौटता नहीं था। उस राक्षसको तलवार लेकर आते देखकर सीता बहुत दुःखी हुई ॥ ४४ ॥ सीता दुःखी होकर विलाप करती हुई इस प्रकार बोलीं, जिस प्रकार क्रोधकरके यह मेरी ओर दौड़ा आ रहा है इससे मालूम होता है कि यह सनाथा मुझको अनाथाके समान मारेगा ॥ ४५ ॥ अपने पतिमें अनुराग रखनेवाली मुझको इसने बहुत वार समझाया कि तुम मेरी स्त्री बनो, पर मैंने इसका तिरस्कार कर दिया ॥ ४६ ॥ यह निश्चित है कि मेरे अस्वीकार करनेसे यह निराश हो गया है, अतएव यह क्रोध और मोहसे युक्त होकर मुझे मारने आ रहा है यह निश्चित है ॥ ४७ ॥ अथवा नरश्रेष्ठ दोनों भाई राम और लक्ष्मणको मेरे कारण इस दुष्टने युद्धमें मार डाला है ॥ ४८ ॥ राक्षसोंका भयंकर नाद मैंने सुना है, बहुतसे राक्षस प्रसन्न होकर प्रियसूचक गर्जन कर रहे थे ॥ ४९ ॥ मुझको धिक्कार है, जिसके कारण राम और लक्ष्मण दोनों राजपुत्रोंका विनाश हुआ। अथवा पापी क्रूर यह राक्षस पुत्रशोकके कारण राम और लक्ष्मणको विना मारेही मुझे मारना चाहता है। मूर्खताके कारण मैंने हनुमानके वे वचन नहीं माने ॥ ५०, ५१ ॥ यदि मैं उस समय हनुमानकी पीठपर चली जाती, तो रावण मुझे न मारता और पतिके गोदमें रहनेके कारण मुझे इस प्रकार शोक करना न पड़ता ॥ ५२ ॥ मैं तो समझती हूँ कि एक पुत्रवाली कौशल्या जब अपने पुत्रविनाशकी बात सुनेगी तो अवश्यही उसका हृदय फट जायगा ॥५३॥ वे रोती हुई महात्मा रामचन्द्रका जन्म, बाल्य, यौवन उनके किये धार्मिककार्य तथा उनका रूप स्मरण करेगीं ॥ ५४ ॥ पुत्रके विनाशके कारण निराश होकर वे

इत्येवं मैथिलीं दृष्ट्वा विलपन्तीं तपस्विनीम् । रोहिणीमिव चन्द्रेण विनाग्रहवशंगताम् ॥५७॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्छुचिः । सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम् ॥
निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥५८॥

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज । हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य च ॥५९॥

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा । स्त्रियः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥६०॥

मैथिलीं रूपसंपन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव । तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥६१॥

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी । कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥६२॥

शूरो धीमान्रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः । हत्वा दाशरथिं भीमं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥६३॥

स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥६४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः । निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥ १ ॥

अब्रवीच्च स तान्सर्वान्बलमुख्यान्महाबलः । रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्शितः ॥ २ ॥

चेतनाशून्य हो जायँगी, वे उनका श्राद्धकरके स्वयं अग्निमें या जलमें प्रवेश करेंगी ॥ ५५ ॥ दुराचारिणी पापिनी कुब्जा मन्थराको धिक्कार, जिसके कारण कौसल्याको यह दुःख देखना पड़ेगा ॥ ५६ ॥ केतुके पंजेमें फँसी हुई चन्द्रहीन रोहिणीके समान विचारी सीताको विलाप करती देखकर, इसी अवसरमें रावणका सचिव पवित्र शीलवान् और बुद्धिमान् सुपार्श्व राक्षसराज रावणसे इस प्रकार बोला, यद्यपि उसको दूसरे सचिव रोक रहे थे ॥ ५७, ५८ ॥ दसग्रीव ! आप साक्षात् कुबेरके छोटे भाई हैं, आप धर्मको छोड़कर क्रोधके कारण सीताको मारना क्यों चाहते हैं ? ॥ ५९ ॥ आपने विधिपूर्वक वेदविद्याको अध्ययन करके उसको समाप्त किया है, अपने धार्मिक कर्ममें आप तत्पर रहते हैं, वीर राक्षसेश्वर! फिर आप स्त्रीका वध करना क्यों चाहते हैं ? ॥ ६० ॥ राजन् ! रूपवती सीताको देखो, अर्थात् इसको न मारो, अपना क्रोध हमलोगोंके साथ युद्धमें तुम उसी रामचन्द्रपर छोड़ो ॥ ६१ ॥ आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है, आजही युद्धका उद्योग प्रारम्भ कर दीजिए। अस्त्र-शस्त्र एकत्र कर रखिए, पुनः कल अमावास्याको सेना लेकर युद्धके लिए प्रस्थान कीजिए ॥ ६२ ॥ बुद्धिमान् और रथी आप उत्तम रथपर चढ़कर भयंकर रामचन्द्रको मारकर लौट आवेंगे ॥ ६३ ॥ मित्रके द्वारा कहा हुआ धर्मानुकूल वचन मानकर वह दुरात्मा रावण घर लौट गया, पुनः बली रावण मित्रोंके साथ सभामें गया ॥ ६४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका बानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९२ ॥

दीन और परमदुःखी राजा रावण सभामें जाकर क्रुद्ध सिंहके समान श्वास लेता हुआ मुख्य

सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः । निर्यात रथसङ्घैश्च हस्त्यश्वैश्चोपशोभिताः ॥ ३ ॥
एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ । प्रहृष्टाः शरवर्षाणि प्रावृट्काल इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥
अथवाहं शरैस्तीक्ष्णैर्भिन्नगात्रं महाहवे । भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः॥ ५ ॥
इत्येतद्वाक्यमादाय राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः । निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रैर्नानानीकैश्च संयुताः ॥ ६ ॥
परिघान्पट्टिशांश्चैव शरखड्गपरश्वधान् । शरीरान्तकरान्सर्वे चिक्षिपुर्वानरान्प्रति ॥
वानराश्च द्रुमाञ्छैलान्राक्षसान्प्रति चिक्षिपुः ॥ ७ ॥
स सङ्ग्रामो महाभीमः सूर्यस्योदयनं प्रति । रक्षसां वानराणां च तुमुलः समपद्यत ॥ ८ ॥
ते गदाभिश्च चित्राभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः । अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तदा वानरराक्षसाः ॥ ९ ॥
एवं प्रवृत्ते सङ्ग्रामे ह्यद्भुतं सुमहद्रजः । रक्षसां वानराणां च शान्तं शोणितविस्रवैः ॥१०॥
मातंगरथकूलाश्च शरमत्स्या ध्वजद्रुमाः । शरीरसंघाटवहाः प्रसस्रुः शोणितापगाः ॥११॥
ततस्ते वानराः सर्वे शोणितौघपरिप्लुताः । ध्वजवर्मरथानश्वान्नानाप्रहरणानि च ॥
आप्लुत्याप्लुत्य समरे वानरेन्द्रा बभञ्जिरे ॥१२॥
केशान्कर्णललाटं च नासिकाश्च प्लवंगमाः । रक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि व्यकर्तयन् ॥१३॥
एकैकं राक्षसं संख्ये शतं वानरपुंगवाः । अभ्यधावन्त पतितं वृक्षं शकुनयो यथा ॥१४॥
तदा गदाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः । निर्जघ्नुर्वानरान्घोरान्राक्षसाः पर्वतोपमाः ॥१५॥

आसनपर बैठा ॥१॥ पुत्रवधसे दुखी महाबली रावण हाथ जोड़कर सेनाके प्रधान राक्षसोंसे बोला ॥ २ ॥ आप सबलोग हाथी घोड़ा और रथोंको लेकर युद्धक्षेत्रमें जाँय ॥ ३ ॥ प्रधानतः एक रामचन्द्रकोही घेरकर आपलोग मारें, वर्षाऋतुमें जिसप्रकार मेघ जलवर्षा करते हैं, उसी प्रकार प्रसन्न होकर आपलोग बाण-वर्षा करें ॥ ४ ॥ अथवा यदि आपलोग रामको न मार सकें, तो आपके बाणोंसे भिन्नगात्र रामको कल मैं मारूँगा, सबलोगोंके देखते-देखतेही मारूँगा ॥ ५ ॥ राक्षसेन्द्रका यह वचन मानकर सभी राक्षस रथों-पर शीघ्रही निकले, उन लोगोंने अपने साथ अनेक सेनाएँ ले ली थीं ॥ ६ ॥ परिघ, पट्टिश, बाण, तलवार, परस्वध आदि शरीरको नष्ट करनेवाले अस्त्र राक्षस वानरोंपर फेंकने लगे । वानर वृक्ष और पत्थर राक्षसोंपर फेंकने लगे ॥ ७ ॥ वानरों और राक्षसोंका वह महाभयानक युद्ध सूर्यो-दय होनेतक हुआ ॥ ८ ॥ वे वानर और राक्षस विचित्र गदाओं, भालों, तलवारों, परशुओंसे युद्धमें आपसमें प्रहार करने लगे ॥ ९ ॥ इसप्रकार वह संग्राम हो रहा था, वहाँ अद्भुत बात यह हुई कि वानर और राक्षसोंके रुधिरसे पृथिवीकी धूल शान्त हो गयी ॥ १० ॥ उस युद्धक्षेत्रमें रुधिरकी नदी बही, हाथी और रथ उस नदीके दोनों किनारे थे, बाण मछलियाँ थीं, ध्वजाएँ वृक्ष थीं, मृतकोंके शरीर नौकाके समान थे ॥ ११ ॥ सभी वानर रुधिरकी धारासे भींग गये । वे राक्षसोंकी ध्वजा, कवच, रथ, घोड़े तथा अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र कूद-कूदकर तोड़ने लगे ॥ १२ ॥ राक्षसोंके केश, कान, ललाट तथा नाक वानरोंने तीखे दाँतों तथा नखोंसे काट लिये ॥ १३ ॥ एक-एक राक्षसोंपर सौ-सौ वानर दौड़े, जिसप्रकार फले वृक्षपर पक्षी दौड़ते हैं ॥ १४ ॥ पर्वतके समान विशालशरीर राक्षस, भयंकर वानरोंको बड़ी गदाओं, भालों, तल-

राक्षसैर्वध्यमानानां वानराणां महाचमूः। शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥१६॥
ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान्। प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष च ॥१७॥
प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे। नाधिजग्मुर्महाघोरा निर्दहन्तं शराग्निना ॥१८॥
कृतान्येव सुघोराणि रामेण रजनीचराः। रणे रामस्य ददृशुः कर्माण्यसुकराणि ते ॥१९॥
चालयन्तं महासैन्यं विधमन्तं महारथान्। ददृशुस्तेन वै रामं वातं वनगतं यथा ॥२०॥
छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम्। बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम् ॥२१॥
प्रहरन्तं शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम्। इन्द्रियार्थेषु तिष्ठन्तं भूतात्मानमिव प्रजाः ॥२२॥
एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान्। एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन्वाजिभिः सह ॥२३॥
इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान्रणे। अन्योन्यं कुपिता जघ्नुः सादृश्याद्राघवस्य तु ॥२४॥
न ते ददृशिरे रामं दहन्तमपि वाहिनीम्। मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥२५॥
ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः। पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥२६॥
भ्रमन्तीं काञ्चनीं कोटिं कार्मुकस्य महात्मनः। अलातचक्रप्रतिमां ददृशुस्ते न राघवम् ॥२७॥

बाणों, तथा परशुओंसे मारने लगे ॥ १५ ॥ राक्षसोंके द्वारा मारी जाती हुई वानरोंकी बड़ी सेना शरणागत-रक्षक दशरथपुत्र रामचन्द्रकी शरणमें गयी ॥ १६ ॥ अनन्तर तेजस्वी बली रामचन्द्र धनुषलेकर राक्षस-सेनापर बाणवर्षा करने लगे ॥ १७ ॥ राक्षसी सेनामें जाकर बाणाग्निसे रामचन्द्र राक्षसोंको जलाने लगे, इस बातका पता भयंकर राक्षसोंको न लगा, जिस प्रकार आकाशमें सूर्योदयका पता मेघोंको नहीं लगता ॥ १८ ॥ रामचन्द्रके कठोर और भयङ्कर कर्म राक्षसोंने हो जानेपर ही देखे अर्थात् रामचन्द्रके काम इतनी शीघ्रतासे होते थे कि होनेके पहले उन्हें कोई देख न सकता था ॥ १९ ॥ रामचन्द्र अपनी बड़ी सेनाका संचालन कर रहे थे, शत्रु महारथियोंको मार रहे थे, पर उन्हें कोई देख नहीं सकता था, केवल कार्योंके द्वारा उनके होनेका अनुमान किया जा सकता था, जिस प्रकार वायुका स्पर्श होता है, वह वृक्षोंको कँपा देती है, उखाड़ देती है, पर उसे कोई देख नहीं सकता, केवल उसका अनुमान होता है ॥ २० ॥ रामचन्द्रने राक्षसोंको काटा, फारा, टुकड़े किये और उनकी छाती वाणसे छेद दिये, इस प्रकार रामचन्द्र राक्षसी सेनाको देखते थे, पर राक्षसी सेना रामचन्द्रको नहीं देख सकती थी, क्योंकि वे बड़ी शीघ्रतासे युद्ध कर रहे थे ॥ २१ ॥ शरीरपर प्रहार करनेवाले रामचन्द्रको राक्षस नहीं देख सकते थे, जिस प्रकार इन्द्रियके विषयोंका अनुभव करनेवाले शरीरस्थ आत्माको प्रजा नहीं देखती ॥ २२ ॥ यह हाथियोंकी सेनाको मारता है, यह महारथियों-को मारता है, यह तीखे वाणोंसे घोड़ोंके साथ सैनिकोंको मारता है, इस प्रकार क्रोधित होकर राक्षस राक्षसों-को ही रामके समान समझकर मारने लगे, क्योंकि भयके कारण वे सबको रामही समझते थे ॥ २३, २४ ॥ महात्मा रामचन्द्रने दिव्य गन्धर्वास्त्रके द्वारा राक्षसोंको मोहित कर दिया था, इसी कारण वे सेनाको जलाने-वाले रामचन्द्रको देख नहीं सकते थे ॥ २५ ॥ वे राक्षस एकबार देखते कि युद्धमें हजारों राम हैं और वे पुनः एकही रामको देखते थे ॥ २६ ॥ महात्मा रामचन्द्रके धनुषका सोनेका सिरा जो मण्डलाकार घूम रहा था और लुकाठीके समान मालूम होता था, राक्षस उसेही देख सकते थे, रामचन्द्रको नहीं ॥ २७ ॥ रामचन्द्र

शरीरनाभिसत्त्वार्चिः शरीरं नेमिकार्मुकम् । ज्याघोषतलनिर्घोषं तेजोबुद्धिगुणप्रभम् ॥२८॥
दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तं निघ्नन् युधितं राक्षसान् । ददृशू रामचक्रं तत्कालचक्रमिव प्रजाः ॥२९॥
अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम् । अष्टादश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥३०॥
चतुर्दश सहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् । पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम् ॥३१॥
दिवसस्याष्टभागेन शरैरग्निशिखोपमैः । हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम् ॥३२॥
ते हताश्वा हतरथाः शान्ता विमथितध्वजाः । अभिपेतुः पुरीं लङ्कां हतशेषा निशाचराः ॥३३॥
हतैर्गजपदात्यश्वैस्तद्बभूव रणाजिरम् । आक्रीडभूमिः क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः ॥३४॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । साधुसाध्विति रामस्य तत्कर्म सम्प्रपूजयन् ॥३५॥
अब्रवीच्च तदा रामः सुग्रीवं प्रत्यनन्तरम् । विभीषणं च धर्मात्मा हनूमन्तं च वानरम् ॥३६॥
जाम्बवन्तं हरिश्रेष्ठं मैन्दं द्विविदमेव च । एतदस्त्रबलं भीमं मम वा त्र्यम्बकस्य वा ॥३७॥

निहत्य तां राक्षसराजवाहिनीं रामस्तदा शक्रसमो महात्मा ।
अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितक्लमश्च संस्तूयते देवगणैः प्रहृष्टैः ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥९३॥

———:o:———

सुदर्शन चक्रके समान हो गये थे। रामचन्द्रका शरीर चक्रके नाभिके समान मालूम पड़ता था (चक्रके मध्य भागको नाभि कहा गया है), बल ज्वाला था, वाण अराके समान (चक्रके बीचकी आड़ी लकड़ियाँ अरा कही जाती हैं) धनुष नेमि था (चक्रके बाहरवाली लकड़ी नेमि कही जाती है), धनुषकी डोरी और इसके प्रहार बचानेवाले यन्त्रका घोषही चक्रका गर्जन था। तेज और बुद्धिही चक्रके बीचका अक्ष था। दिव्यास्त्रका प्रभाव उसका पर्यन्तभाग था। जिसप्रकार कालचक्र प्रजाको मारता है, उसी प्रकार यह रामरूपी चक्र युद्धमें राक्षसोंको मारता था, राक्षसोंने उसे देखा ॥ २८, २९ ॥ वायुवेगवान् रथोंकी दस हजार सेना, शीघ्रगामी हाथियोंकी अट्ठारह हजार सेना, चौदह हजार घोड़े और घुड़सवार, और पूरे दो सौ हजार पैदल राक्षसी सेनाको एक रामचन्द्रने दिनके आठवें भागमें अग्निके समान वाणोंसे मारा ॥ ३०—३२ ॥ उन राक्षसोंमेंसे किसीके घोड़े, किसीके रथ नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये, जो राक्षस बच गये थे वे लंकामें भाग गये ॥ ३३ ॥ वह रण-भूमि मृत घोड़ों, हाथियों और पैदलोंके कारण क्रुद्ध महात्मा रुद्रकी क्रीड़ा-भूमिके समान मालूम होने लगी ॥ ३४ ॥ अनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और ऋषियोंने रामचन्द्रके इस कामकी साधु-साधु कहकर प्रशंसा की ॥३५॥ पासही खड़े सुग्रीव, विभीषण और हनुमान वानरश्रेष्ठ जाम्बवान, मैन्द और द्विविदसे बोले—ऐसा अस्त्रबल मेरा है या रुद्रका है ॥ ३६, ३७ ॥ इन्द्रतुल्य महात्मा रामचन्द्रने जब रावणकी सेनाको मारा, उस समय वे अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगसे बिलकुल नहीं थके और देवताओंने प्रसन्न होकर उनकी स्तुति की ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका तिरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९३ ॥

———*———

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४

तानि नागसहस्राणि सारोहाणि च वाजिनाम् । रथानां त्वग्निवर्णानां सध्वजानां सहस्रशः ॥ १ ॥
राक्षसानां सहस्राणि गदापरिघयोधिनाम् । काञ्चनध्वजचित्राणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥ २ ॥
निहतानि शरैर्दीप्तैस्तप्तकांचनभूषणैः । रावणेन प्रयुक्तानि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा च संभ्रान्ता हतशेषा निशाचराः । राक्षस्यश्च समागम्य दीनाश्चिन्तापरिप्लुताः ॥ ४ ॥
विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः । राक्षस्यः सह संगम्य दुःखार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥
कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी । आससाद वने रामं कंदर्पसमरूपिणम् ॥ ६ ॥
सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम् । तं दृष्ट्वा लोकवध्या सा हीनरूपा प्रकामिता ॥ ७ ॥
कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम् । सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी ॥ ८ ॥
जनस्यास्याल्पभाग्यत्वाद्वलिनी श्वेतमूर्धजा । अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम् ॥ ९ ॥
राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च । चकारामतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥१०॥
तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत् । वधाय सीता सा नीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥११॥
न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम् । बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण च ॥१२॥
वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम् । हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१३॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥१४॥

रावण द्वारा भेजे हजारों हाथियों, हजारों घोड़ों और सवारों, अग्निके समान उज्ज्वल ध्वजावाले हजारों रथों, तथा हजारों वीर राक्षसोंको जो गदा और परिघसे युद्ध करते थे, सुवर्ण-ध्वजाओंसे जो चित्रित थे और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे, अक्लिष्टकर्मा रामने सुवर्ण-भूषित तीखे बाणोंसे मारा ॥ १, २, ३ ॥ यह सब देख-सुनकर बचे हुए राक्षस, तथा राक्षसियाँ दीन तथा चिन्तायुक्त होकर बड़े दुःखसे एकत्र होकर विलाप करने लगीं। उन राक्षसियोंमें कई विधवा हो गयी थीं, कईओंके पुत्र मारे गये थे और कइओंके बान्धव ॥ ४, ५ ॥ बूढ़ी, भयङ्कर, पतलीकमरवाली शूर्पणखा कामदेवके समान सुन्दर रामचन्द्रके पास वनमें कैसे पहुँची, ॥६॥ सुकुमार, महाबली, सब प्राणियोंके हितकारक रामको देखकर कुरूपा और सबके वध करनेके योग्य राक्षसी कामवश हुई ॥ ७ ॥ सब गुणोंसे हीन दुर्मुखी राक्षसीने गुणी, पराक्रमी और सुमुख रामचन्द्रको कैसे चाहा, उनपर कैसे अनुरक्त हुई ॥ ८ ॥ बड़े पेट और सफेद बालवाली अयोग्य शूर्पणखाने लंकानिवासियोंके अभाग्यसे अयोग्य, उपहसनीय तथा लोकनिन्दित रामचन्द्रका अपमान राक्षसों तथा खरदूषणके नाशके लिए किया ॥ ९, १० ॥ उसी शूर्पणखाके कारण रामचन्द्रसे रावणने बहुत बड़ा वैर ठाना और राक्षस दशानन राक्षसोंके वधके लिए सीताको लंकामें ले आया ॥ ११ ॥ रावणको सीता तो मिली नहीं, पर बलवान् रामचन्द्रसे उसका विरोध हो गया। अर्थात् रावणका भी विनाश अवश्यम्भावी है ॥ १२ ॥ विराधने सीताके विषयमें अनुराग प्रकट किया था, उसे रामचन्द्रने एकही बाणसे मार डाला, रावणने यह दृश्य देखा है और उसके लिए यही उदाहरण है ॥ १३ ॥ भयङ्कर कर्मकरनेवाले चौदह

खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा । शरैरादित्यसंकाशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१५॥
हतो योजनबाहुश्च कबन्धो रुधिराशयः । क्रोधान्नादं नदन्सोऽथ पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१६॥
जघान बलिनं रामः सहस्रनयनात्मजम् । वालिनं मेघसंकाशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१७॥
ऋष्यमूके वसंश्चैव दीनो भग्नमनोरथः । सुग्रीवः प्रापितो राज्यं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१८॥
धर्मार्थसहितं वाक्यं सर्वेषां रक्षसां हितम् । युक्तं विभीषणेनोक्तं मोहात्तस्य न रोचते ॥१९॥
विभीषणवचः कुर्याद्यदि स्म धनदानुजः । श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लङ्का भविष्यति ॥२०॥
कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महाबलम् । अतिकायं च दुर्मर्षं लक्ष्मणेन हतं तदा ॥
प्रियं चेन्द्रजितं पुत्रं रावणो नावबुध्यते ॥२१॥
मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः । इत्येष श्रूयते शब्दो राक्षसीनां कुले कुले ॥२२॥
रथाश्वनागाश्च हतास्तत्र तत्र सहस्रशः । रणे रामेण शूरेण हताश्चापि पदातयः ॥२३॥
रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः । हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः ॥२४॥
हतप्रवीरा रामेण निराशा जीविते वयम् । अपश्यन्तो भयस्यान्तमनाथा विलपामहे ॥२५॥
रामहस्ताद्दशग्रीवः शूरो दत्तमहावरः । इदं भयं महाघोरं समुत्पन्नं न बुध्यते ॥२६॥
तन्न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः । उपसृष्टं परित्रातुं शक्ता रामेण संयुगे ॥२७॥
उत्पाताश्चापि दृश्यन्ते रावणस्य रणे रणे । कथयन्ति हि रामेण रावणस्य निबर्हणम् ॥२८॥

हजार राक्षसोंको रामचन्द्रने अग्नि-तुल्य बाणोंसे जनस्थानमें मारा ॥ १४ ॥ सूर्यके समान उज्ज्वल बाणोंसे रामचन्द्रने युद्धमें खरदूषण और त्रिशिराको मारा था, यह भी उत्तम उदाहरण है ॥१५॥ रामचन्द्रने योजन-बाहुको मारा, रुधिर पीनेवाले गर्जते हुए कवन्धको मारा, यह भी उदाहरण है ॥ १६ ॥ इन्द्रपुत्र मेघ-तुल्य बली वालीको रामचन्द्रने मारा, यह उत्तम उदाहरण है ॥ १७ ॥ ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करने-वाले दीन हतमनोरथ सुग्रीवको राज्य दिया, यह एक बड़ा उदाहरण है ॥ १८ ॥ विभीषणने धर्म-अर्थयुक्त सब राक्षसोंके हितकारी उचित वाक्य कहे थे, पर मोहके कारण रावणको वे वचन अच्छे न लगे ॥ १९ ॥ यदि कुबेरका छोटा भाई रावण विभीषणकी बात मान लेता, और उसके अनुसार कार्य करता, तो यह लंका दुःखिनी और श्मशान न होती ॥ २० ॥ रामचन्द्रने महाबली कुम्भकर्णको मारा, लक्ष्मणने क्रोधी अतिकायको मारा तथा राक्षसराजके प्रियपुत्र इन्द्रजित् को मारा, पर रावण आज भी नहीं समझता ॥ २१ ॥ मेरा पुत्र, मेरा भाई, मेरा पति युद्धमें मारा गया, घर-घर राक्षसियोंका यही शब्द सुन पड़ता था ॥ २२ ॥ हजारों रथ, घोड़े और हाथी रामचन्द्रने युद्धमें बाणसे मारे और शूर रामचन्द्र-ने पैदल सैनिकोंको भी मारा ॥ २३ ॥ रुद्र, विष्णु, इन्द्र या स्वयं यमराज रामरूपमें हमलोगोंको मार रहे हैं ॥ २४ ॥ रामचन्द्रने हमारे वीरोंको मार दिया, अब हमलोगोंको भी अपने जीवनकी आशा नहीं है, भय दूर होनेका कोई उपाय नहीं है, हम अनाथ होकर विलाप कर रही हैं ॥ २५ ॥ रामके हाथसे यह बहुत-ही दारुण भय हमलोगोंके लिए उत्पन्न हुआ है, पर वीर और वरप्राप्त रावण उसको समझ नहीं रहा है, उसके ध्यानमें वह भयानकता आ नहीं रही है ॥ २६ ॥ रामचन्द्र जब उस रावणको युद्धमें पकड़ेंगे, उस समय देवता, गन्धर्व, पिशाच या राक्षस कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता ॥२७॥ रावणके युद्धोंमें

पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः । रावणस्याभयं दत्तं मनुष्येभ्यो न याचितम् ॥२९॥
तदिदं मानुषं मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् । जीवितान्तकरं घोरं रक्षसां रावणस्य च ॥३०॥
पीड्यमानास्तु बलिना वरदानेन रक्षसा । दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहमपूजयन् ॥३१॥
देवतानां हितार्थाय महात्मा वै पितामहः । उवाच देवतास्तुष्ट इदं सर्वा महद्वचः ॥३२॥
अद्यप्रभृति लोकांस्त्रीन्सर्वे दानवराक्षसाः । भयेन प्रावृता नित्यं विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥३३॥
दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः । वृषध्वजस्त्रिपुरहा महादेवः प्रतोषितः ॥३४॥
प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद्वचोऽब्रवीत् । उत्पत्स्यति हितार्थं वो नारी रक्षःक्षयावहा ॥३५॥
एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुद्यथा दानवान्पुरा । भक्षयिष्यति नः सर्वान्राक्षसघ्नी सरावणान् ॥३६॥
रावणस्यापनीतेन दुर्विनीतस्य दुर्मतेः । अयं निष्टानको घोरः शोकेन समभिप्लुतः ॥३७॥
तं न पश्यामहे लोके यो नः शरणदो भवेत् । राघवेणोपसृष्टानां कालेनेव युगक्षये ॥३८॥
नास्ति नः शरणं किंचिद्भये महति तिष्ठताम् । दावाग्निवेष्टितानां हि करेणूनां यथा वने ॥३९॥
प्राप्त कालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना । यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः ॥४०॥

इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः परस्परं संपरिरभ्य बाहुभिः ।
विषेदुरार्तातिभयाभिपीडिता विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम् ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

जो उत्पात देखे जाते हैं, वे स्पष्ट रामके द्वारा रावणके पराजयकी बात कहते हैं ॥२८॥ प्रसन्न होकर पितामहने रावणको देवता, दानव और राक्षसोंसे अभयदान दिया, पर मनुष्योंसे अभय रावणने माँगाही नहीं ॥२९॥ मालूम होता है कि यह मनुष्यसम्बन्धी भय निःसन्देह समस्त राक्षसों तथा रावणके प्राण लेनेवाला है ॥३०॥ बली राक्षस रावण जब वलके प्रभावसे पीड़ा देने लगा, तब देवताओंने उग्र तपस्या द्वारा पितामह ब्रह्माकी पूजा की ॥ ३१ ॥ महात्मा ब्रह्मा, देवताओंके हितके लिए प्रसन्न होकर उनसे ये बातें बोले ॥ ३२ ॥ आजसे लेकर दानव और राक्षस तीनों लोकोंमें भयभीत होकर विचरण करेंगे ॥ ३३ ॥ पुनः इन्द्रके साथ सब देवताओंने मिलकर त्रिपुरहन्ता महादेवको प्रसन्न किया ॥ ३४ ॥ प्रसन्न होकर देवताओंसे महादेवने कहा—आपलोगोंके हितके लिए राक्षसोंका विनाश करनेवाली स्त्री उत्पन्न होगी ॥ ३५ ॥ पहले समयमें देवताओंसे प्रेरित होकर जिस प्रकार क्षुधाने दानवोंको खा डाला था, उसी प्रकार यह राक्षसोंको वध करनेवाली सीता रावणके साथ हमलोगोंको खा डालेगी ॥३६॥ दुर्विनीत और मूर्ख राक्षसराज रावणकी दुर्नीति और शोकसे युक्त यह नाश अब हमलोगोंपर आया ॥३७॥ हमलोग ऐसा किसीको नहीं देखतीं जो रामचन्द्रके आक्रमणसे बचनेके लिए हमलोगोंको शरण दें, जिसप्रकार प्रलयकालमें कालसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं रहता ॥३८॥ इस महान् भयमें वर्तमान हमलोगोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, जिस प्रकार दावाग्निसे घिरी हथिनीका रक्षक वनमें कोई नहीं होता ॥३९॥ महात्मा पौलस्त्य विभीषणने अवसर देखकर उचित काम किया, जिस रामचन्द्रसे उन्होंने भय देखा उसीकी शरण गये ॥४०॥ इस प्रकार सब राक्षसस्त्रियाँ परस्पर आलिङ्गन करके विषाद करने लगीं, वे दुःखी थीं और भयसे पीड़ित थीं, वे बड़े करुणस्वरमें चीत्कार करने लगीं ॥४१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका चौरानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमः सर्गः ९५

आर्तानां राक्षसीनां तु लङ्कायां वै कुलेकुले । रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिदेवितम् ॥ १ ॥
स तु दीर्घं विनिःश्वस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः । बभूव परमक्रुद्धो रावणो भीमदर्शनः ॥ २ ॥
संदश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः । राक्षसैरपि दुर्दर्शः कालाग्निरिव मूर्तिमान् ॥ ३ ॥
उवाच च समीपस्थान्राक्षसान्राक्षसेश्वरः । क्रोधाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ४ ॥
महोदरं महापार्श्वं विरूपाक्षं च राक्षसम् । शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते भयार्दिताः । चोदयामासुरव्यग्रान्राक्षसांस्तान्नृपाज्ञया ॥ ६ ॥
ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा भीमदर्शनाः । कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे ते रणाभिमुखा ययुः ॥ ७ ॥
प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते महारथाः । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥ ८ ॥
ततोवाच प्रहस्यैतान्रावणः क्रोधमूर्च्छितः । महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ ९ ॥
अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसंनिभैः । राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसादनम् ॥१०॥
खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा । करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम् ॥११॥
नैवान्तरिक्षं न दिशो न च द्यौर्नापि सागरः । प्रकाशत्वं गमिष्यन्ति मद्बाणजलदावृताः ॥१२॥
अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः । धनुषा शरजालेन वधिष्यामि पतत्रिणा ॥१३॥
अद्य वानरसैन्यानि रथेन पवनौजसा । धनुःसमुद्रादुद्भूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः ॥१४॥

लङ्कामें घर-घर दुःखिनी राक्षसियोंका करुणाशब्द और विलाप रावणने सुना ॥ १ ॥ दीर्घश्वास लेकर वह थोड़ी देरके लिए ध्यानस्थ हो गया, पुनः देखनेमें भयङ्कर रावणने बड़ा क्रोध किया ॥ २ ॥ क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयीं, उसने अपने ओंठ काटे, राक्षसोंके लिए भी उसकी ओर देखना कठिन हो गया । वह शरीरधारी कालाग्निके समान हो गया ॥ ३ ॥ राक्षसेश्वर रावण पासके राक्षसोंसे बोला, क्रोधके कारण बातें साफ नहीं निकलती थीं और आँखोंसे मानों जल रहा हो ॥ ४ ॥ महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष इन राक्षसोंसे कहो कि वे मेरी आज्ञासे शीघ्रही सेनाको प्रस्थानके लिए बाहर निकालें ॥५॥ भयभीत उन राक्षसोंने रावणके वचन सुनकर निश्चिन्त बैठे हुए राक्षसोंको राजाकी आज्ञासे निकलनेके लिए प्रेरित किया ॥ ६ ॥ उन राक्षसोंने राजाकी आज्ञा मानली । देखनेमें भयानक वे राक्षस स्वस्तिवाचन कराकर रणकी ओर चले ॥ ७ ॥ महारथी वे राक्षस विधिपूर्वक रावणकी पूजा करके स्वामीकी विजयकी इच्छासे उनकी आज्ञाके लिए हाथ जोड़कर खड़े रहे ॥८॥ अनन्तर क्रोधसे जलता हुआ रावण हँसकर महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष इन राक्षसोंसे बोला ॥९॥ आज प्रलयकालके मेघके समान तीक्ष्ण धनुषसे छूटे बाणोंसे राम और लक्ष्मणको यमराजके घर भेजूँगा ॥ १० ॥ आज मैं शत्रुका वध करके खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त तथा इन्द्रजित्के मरनेका बदला चुकाऊँगा ॥ ११ ॥ मेरे बाणरूपी मेघसे ढँककर अन्तरिक्ष दिशाएँ, आकाश तथा समुद्र कोई भी दिखायी नहीं पड़ेगा ॥ १२ ॥ आज वानरसेनापतियोंके यूथोंको टुकड़े-टुकड़े करके बाण-समूहसे मैं मारूँगा ॥१३॥ आज वायुवेगगामी रथपर चढ़कर धनुषरूपी समुद्रसे उत्पन्न बाण-रूपी लहरियोंसे

व्याकोशपद्मवक्त्राणि पद्मकेसरवर्चसाम् । अद्य यूथतटाकानि गजवत्प्रमथाम्यहम् ॥१५॥
सशरैरद्य वदनैः संख्ये वानरयूथपाः । मण्डयिष्यन्ति वसुधां सनालैरिव पङ्कजैः ॥१६॥
अद्य यूथप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम् । मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतं शतम् ॥१७॥
हतो भ्राता च येषां वै येषां च तनयो हतः । वधेनाद्य रिपोस्तेषां करोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥१८॥
अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैः प्रस्तीर्णैर्गतचेतनैः । करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम् ॥१९॥
अद्य काकाश्च गृध्राश्च ये च मांसाशिनोऽपरे । सर्वांस्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शराहतैः ॥२०॥
कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः । अनुप्रयान्तु मां युद्धे येऽत्र शिष्टा निशाचराः॥२१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोऽब्रवीद्वचः । बलाध्यक्षान्स्थितांस्तत्र बलं संत्वर्यतामिति ॥२२॥
बलाध्यक्षास्तु संयुक्ता राक्षसांस्तान्गृहे गृहे । चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः ॥२३॥
ततो मुहूर्तान्निष्पेतु राक्षसा भीमदर्शनाः । नन्दतो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः ॥२४॥
असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिर्मुसलैर्हलैः । शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः ॥२५॥
यष्टिभिर्विविधैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः । भिन्दिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः ॥२६॥
अथानयन्बलाध्यक्षाश्चत्वारो रावणाज्ञया । रथानां नियुतं साग्रं नागानां नियुतत्रयम् ॥२७॥
अश्वानां षष्टिकोट्यस्तु खरोष्ट्राणां तथैव च । पदातयस्त्वसंख्याता जग्मुस्ते राजशासनात् ॥२८॥
बलाध्यक्षाश्च संस्थाप्य राज्ञः सेनां पुरस्थिताम् । एतस्मिन्नन्तरे सूतः स्थापयामास तं रथम् ॥२९॥

वानरीसेनाको मथित करूँगा ॥ १४ ॥ तड़ागरूपी वानरयूथोंको आज मैं हाथीके समान मथित करूँगा। इस तड़ागमें वानरोंका मुखही विकसित कमल है, वानरोंका तेजही कमलकेसर है ॥ १५ ॥ आज युद्धमें वानरसेनापति बाण-युक्त अपने मुहोंसे पृथिवीको शोभित करेंगे, मानों नालयुक्त कमल हों ॥ १६ ॥ बहुत बड़ा यूथ रखनेवाले तथा पेड़ोंसे युद्ध करनेवाले सौ-सौ वानरोंको एक-एक बाणसे मैं मारूँगा ॥ १७ ॥ आज शत्रुवध करके मैं, जिनके भाई या पुत्र मारे गये हैं, उनके आँसू पोछूँगा ॥ १८ ॥ अपने बाणोंसे कटे हुए, अतएव अचेत न होकर पृथिवीपर फैले हुए वानरोंके द्वारा, मैं पृथिवीको प्रयत्नप्रेक्षणीय बना दूँगा अर्थात् पृथिवी ढँक जायगी और उसको देखनेके लिए प्रयत्न करना पड़ेगा ॥ १९ ॥ आज कौएँ, गीध तथा और जो मांस खानेवाले हैं उन सबको बाणसे मारे शत्रुओंके मांससे तृप्त करूँगा ॥ २० ॥ शीघ्र मेरा रथ तयार करो, शीघ्र मेरा धनुष लाओ, और बचे हुए राक्षस मेरे पीछे युद्धमें आवें ॥ २१ ॥ रावणके वचन सुनकर महापार्श्व सेनाके दारोगोंसे बोला––सेनाओंको शीघ्र तयार करो ॥ २२ ॥ सेनाके सब दारोगा मिलकर राक्षसोंके घर-घर गये और उनलोगोंने उन्हें प्रेरित किया, क्योंकि वे बड़े शीघ्रगामी थे ॥ २३ ॥ थोड़ीही देरमें देखनेमें भयानक सभी राक्षस वहाँ आकर एकत्र हुए, वे देखनेमें बड़े भयानक थे, उनके मुँह बड़े थे और वे हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिए हुए थे, ॥ २४ ॥ राक्षसोंके हाथोंमें ये सब अस्त्र-शस्त्र थे, तलवार, पट्टिश, शूल, गदा, मूसल, हल, तीखे धारवाली शक्ति, बड़े-बड़े कूटमुद्गर, लाठी अनेक प्रकारके तीखे चक्र, परश्वध, भिन्दिपाल, शतघ्नी, तथा अन्य अच्छे-अच्छे आयुध थे ॥ २५, २६ ॥ अनन्तर सेनाके चारों दारोगा रावणकी आज्ञासे दस हजार रथ और तीस हजार हाथी ले आये, छ करोड़ घोड़े और छ करोड़ ऊँट तथा गधे ले आये, पैदल सैनिक तो असंख्य चले ॥ २७, २८ ॥ सेनाके दारोगोंने रावणके आगे सेना लाकर

दिव्यास्त्रवरसंपन्नं नानालंकारभूषितम् । नानायुधसमाकीर्णं किङ्किणीजालसंयुतम् ॥३०॥
नानारत्नपरिक्षिप्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् । जाम्बूनदमयैश्चैव सहस्रकलशैर्वृतम् ॥३१॥
तं दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे विस्मयं परमं गताः । तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रावणो राक्षसेश्वरः ॥३२॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् । द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ॥
आरुरोह तदा भीमं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥३३॥
ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः । रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद्दारयन्निव मेदिनीम् ॥३४॥
ततश्चासीन्महानादस्तूर्याणां च ततस्ततः । मृदङ्गैः पटहैः शङ्खैः काहलैः सह रक्षसाम् ॥३५॥
आगतो रक्षसां राजा छत्रचामरसंयुतः । सीतापहारी दुर्वृत्तो ब्रह्मघ्नो देवकण्टकः ॥
योद्धुं रघुवरेणेति शुश्रुवे कलहध्वनिः ॥ ३६ ॥
तेन नादेन महता पृथिवी समकम्पत । तं शब्दं सहसा श्रुत्वा वानरा दुद्रुवुर्भयात् ॥३७॥
रावणस्तु महाबाहुः सचिवैः परिवारितः । आजगाम महातेजा जयाय विजयं प्रति ॥३८॥
रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ । विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥३९॥
ते तु हृष्टाभिनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् । नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥४०॥
ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः । निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥४१॥
ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः । द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥४२॥

खड़ी कर दी, इसी समय सारथि वह रथ भी ले आया ॥ २९ ॥ उस रथपर दिव्य उत्तम अस्त्र रखे हुए थे, अनेक अलंकारोंसे वह सजा हुआ था और बहुतसे आयुध थे, उसमें छोटी घंटी लगी हुई थी ॥ ३० ॥ उसमें जगह-जगह अनेक रत्न जड़े हुए थे, रत्नोंके खंभे थे, सोनेके हजारों कलश लगे हुए थे ॥ ३१ ॥ उस रथको देखकर सभी राक्षस बहुत विस्मित हुए। राक्षसराज रावण उस रथको देखकर शीघ्रही उठा और उस विशाल तथा अपने तेजसे प्रकाशित रथपर बैठा। वह रथ कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान था, अग्निके समान जल रहा था, उसपर सारथि बैठा हुआ था और उसमें आठ घोड़े जुते हुए थे ॥ ३२, ३३ ॥ बहुतसे राक्षसोंके साथ रावण शीघ्रही चला, वह बलकी अधिकताके कारण मानों पृथिवीको विदीर्ण कर रहा था ॥ ३४ ॥ उस समय इधर-उधरसे बाजोंका शब्द होनेलगा, मृदङ्ग, पटह और शंखके शब्दोंके साथ राक्षसोंके कलहका भी शब्द होने लगा ॥ ३५ ॥ देवशत्रु, सीतापहारी दुर्वृत ब्रह्मघाती राक्षसोंका राजा छत्रचामरसे युक्त होकर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए आया—ऐसा शब्द सुनायी पड़ने लगा ॥ ३६ ॥ उस बड़े शब्दसे पृथिवी काँप गयी, उस शब्दको सुनकर वानर डरसे भाग गये ॥ ३७ ॥ महाबाहु रावण अपने सचिवोंके साथ जयकी इच्छासे विजयके पास आया ॥ ३८ ॥ रावणकी आज्ञासे महापार्श्व, महोदर और दुर्धर्ष विरूपाक्ष ये रथपर चढ़े ॥ ३९ ॥ ये राक्षस प्रसन्न होकर गर्जन करते हुए, मानों पृथिवीको तोड़ रहे हों ऐसा घोर शब्द करते हुए, जयकी इच्छासे निकले ॥ ४० ॥ अनन्तर युद्धके लिए तेजस्वी और प्रलयकालके यमराजके समान भयङ्कर धनुष उठाकर राक्षसोंके साथ निकला ॥ ४१ ॥ महारथी रावण जिस रथपर बैठा हुआ था, उसके घोड़े

ततो नष्टप्रभः सूर्यो दिशश्च तिमिरावृताः। द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च संचचाल च मेदिनी ॥४३॥
ववर्ष रुधिरं देवश्चस्खलुश्च तुरंगमाः। ध्वजाग्रे न्यपतद्गृध्रो विनेदुश्चाशिवाः शिवाः ॥४४॥
नयनं चास्फुरद्वामं वामो बाहुरकम्पत। विवर्णवदनश्चासीत्किंचिदभ्रश्यत स्वनः ॥४५॥
ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः। रणे निधनशंसीनी रूपाण्येतानि जज्ञिरे ॥४६॥
अन्तरिक्षात्पपातोल्का निर्घातसमनिःस्वना। विनेदुरशिवा गृध्रा वायसैरभिमिश्रिताः ॥४७॥
एतानचिन्तयन्घोरानुत्पातान्समवस्थितान्। निर्ययौ रावणो मोहाद्वधार्थं कालचोदितः ॥४८॥
तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम्। वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥४९॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः। वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥५०॥
निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः। केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः ॥५१॥
निरुच्छ्वासा हताः केचित्केचित्पार्श्वेषु दारिताः। केचिद्विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विनाकृताः ॥५२॥
दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये।
ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं सोढुं न शेकुर्हरियूथपास्ते ॥५३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥९५॥

———:o:———

बड़े तेज थे। वह लङ्काके उस द्वारसे निकला जहाँ राम और लक्ष्मण थे ॥४२॥ उस समय सूर्यकी प्रभा क्षीण हो गयी, दिशाओंमें अन्धकार हो गया, पक्षी भयङ्कर रव करने लगे और पृथिवी काँपने लगी ॥ ४३ ॥ मेघ रुधिर बरसाने लगे, घोड़े फिसलने लगे, ध्वजापर गीध बैठ गया और सियारिनें अशुभ शब्द करने लगीं ॥ ४४ ॥ बायीं आँख फरकने लगी, बायाँ हाथ काँपने लगा, मुँह फिट्ट हो गया और शब्द धीमा पड़ गया ॥ ४५ ॥ राक्षस रावण जिस समय युद्धमें आ रहा था, उस समय रणमें होनेवाली उसकी मृत्युकी सूचना देनेवाले ये अशकुन हुए ॥ ४६ ॥ आकाशसे उल्का गिरी जिसका शब्द बिजली गिरनेके समान था, सियाहिरिनें कौओंके साथ अमङ्गल शब्द बोलने लगीं ॥ ४७ ॥ पर, अज्ञानके कारण, रावणने इन भयंकर उत्पातोंकी ओर ध्यान न दिया और वह कालप्रेरित होकर मरनेके लिए निकला ॥ ४८ ॥ महात्मा उन राक्षसोंके रथके शब्दसे वानरोंकी सेना भी युद्धके लिए लौटी। दोनों दलवाले क्रोधसे अपने प्रतिपक्षीको ललकार रहे थे और वे दोनों अपनी-अपनी विजय चाहते थे ॥ ४९ ॥ अनन्तर दशानन रावण क्रोध करके सुवर्णभूषित बाणोंसे वानरी सेनाका नाश करने लगा ॥ ५० ॥ रावणने कई वानरोंके सिर काट डाले, कइयोंके हृदय तोड़ दिये और कइयोंके कान काट लिये ॥ ५१ ॥ कइयोंको साँस लेनेके पहिले मार डाला, किसीको बगलसे फाड़ दिया, किसीका सिर फोड़ दिया और किसीकी आँखे फोड़ दीं ॥ ५२ ॥ क्रोधसे आँखें फाड़कर रावण युद्धमें जिधर-जिधर जाता था उधरही उधर वानरसेनापति उसके बाणोंकी मारको नहीं सह सकते थे ॥ ५३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका पंचानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९५ ॥

———×———

षण्णवतितमः सर्गः ९६

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः । बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥ १ ॥
रावणस्याप्रसह्यं तं शरसंपातमेकतः । न शेकुः सहितुं दीप्तं पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २ ॥
तेऽर्दिता निशितैर्बाणैः क्रोशन्तो विप्रदुद्रुवुः । पावकार्चिःसमाविष्टा दह्यमाना यथा गजाः ॥ ३ ॥
प्लवंगानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः । संययौ समरे तस्मिन्विधमन्रावणः शरैः ॥ ४ ॥
कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम् । आससाद ततो युद्धे त्वरितं राघवं रणे ॥ ५ ॥
सुग्रीवस्तान्कपीन्दृष्ट्वा भग्नान्विद्रावितान्रणे । गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः ॥ ६ ॥
आत्मनः सदृशं वीरं स तं निक्षिप्य वानरम् । सुग्रीवोऽभिमुखं शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥ ७ ॥
पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे वानरयूथपाः । अनुजह्रुर्महाशैलान्विविधांश्च वनस्पतीन् ॥ ८ ॥
ननर्द युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् । पोथयन्विविधांश्चान्यान्ममन्थोत्तमराक्षसान् ॥ ९ ॥
ममर्द च महाकायो राक्षसान्वानरेश्वरः । युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव ॥ १० ॥
राक्षसानामनीकेषु शैलवर्षं ववर्ष ह । अश्मवर्षं यथा मेघः पक्षिसङ्घेषु कानने ॥ ११ ॥
कपिराजविमुक्तैस्तैः शैलवर्षैस्तु राक्षसाः । विकीर्णशिरसः पेतुर्विकीर्णा इव पर्वताः ॥ १२ ॥
अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः । सुग्रीवेण प्रभग्नेषु नदत्सु च पतत्सु च ॥ १३ ॥
विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः । रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥ १४ ॥

रावणके बाणोंसे अनेक वानरोंके अङ्ग कट गये और उनसे युद्धक्षेत्रकी समस्त भूमि भर गयी ॥ १ ॥ न सहने योग्य रावणके बाणपातको वानर एक क्षण भी न सह सके, जिस प्रकार प्रदीप्त अग्निको पतंग एक क्षणके लिए भी नहीं सह सकते ॥ २ ॥ तीखे बाणोंसे पीड़ित होकर वे वानर चिल्लाते हुए भागे, जिस प्रकार आगकी ज्वाला लगनेसे जलता हुआ हाथी भागता है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार बड़े मेघोंको वायु उड़ा देता है, उसी प्रकार बाणोंसे वानरी सेनाको नष्ट करता हुआ रावण युद्धमें गया ॥ ४ ॥ राक्षसराज, वानरोंको शीघ्रतापूर्वक पीड़ित करके, शीघ्रही रामचन्द्रके पास गया ॥ ५ ॥ सुग्रीवने देखा कि वानरोंकी पंक्ति टूट गयी है और वे भाग रहे हैं, अनन्तर उन्होंने सेनाके मध्यभागकी रक्षाका भार सुषेणको देकर शीघ्रही युद्ध करनेमें मन लगाया ॥ ६ ॥ अपने समानही वीर वानरको वहाँ रखकर सुग्रीवने वृक्ष लेकर शत्रुके सामने प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ सुग्रीवके अगल-बगल तथा पीछेसे सभी वानरसेनापति बड़े-बड़े पत्थर तथा अनेक प्रकारके वृक्ष लेकर चले ॥ ८ ॥ महान् सुग्रीवने बड़े स्वरसे गर्जन किया, और युद्ध करके बचे हुए राक्षसोंको नष्ट करके प्रधान राक्षसोंका मथन किया ॥ ९ ॥ प्रलयकालमें बढ़ी हुई वायु जिस प्रकार पर्वतोंको उखाड़ फेंकती है, उसी प्रकार विशालशरीर वानरराजने राक्षसोंको मसल डाला ॥ १० ॥ राक्षसोंकी सेनापर वे पत्थरोंकी वर्षा करने लगे, जिस प्रकार मेघ वनमें पक्षियोंपर पत्थर बरसाते हैं ॥ ११ ॥ वानरराज सुग्रीवकी पत्थर-वर्षासे राक्षसोंके सिर अलग होकर पृथिवीपर गिर पड़े; वे ऐसे मालूम होते थे मानों पर्वत बिखरे पड़े हों ॥ १२ ॥ जब चारों ओर राक्षस मारे जाने लगे, सुग्रीवने जब उनकी पंक्ति तोड़ दी, जब वे चिल्लाने और गिरने लगे

स तं द्विपमथारुह्य विरूपाक्षो महाबलः । ननर्द भीमनिर्ह्रादं वानरानभ्यधावत ॥१५॥
सुग्रीवे स शरान्घोरान्विससर्ज चमूमुखे । स्थापयामास चोद्विग्नान्राक्षसान्संप्रहर्षयन् ॥१६॥
सोऽतिविद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा । चुक्रोश च महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे ॥१७॥
ततः पादपमुद्धृत्य शूरः संप्रधनो हरिः । अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तं महागजम् ॥१८॥
स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः । अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च ॥१९॥
गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् । राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥२०॥
आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः । भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥२१॥
स हि तस्यापि संगृह्य प्रगृह्य विपुलां शिलाम् । विरूपाक्षस्य चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥२२॥
स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः । अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत्तदा ॥२३॥
तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः । मुहूर्तमभवद्भूमौ निसंज्ञ इव वानरः ॥२४॥
सहसा स तदोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे । मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि ॥२५॥
मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः । तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ॥२६॥
कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत् । स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ॥२७॥
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिःस्वनम् । तलप्रहारं तद्रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ॥२८॥

तब धनुर्धारी राक्षस विरूपाक्षने अपने आनेकी घोषणा की और वह लड़ाका रथसे कूदकर हाथीपर चढ़ गया ॥ १३, १४ ॥ महाबली विरूपाक्षने हाथीपर चढ़कर भयङ्कर गर्जन किया और वह वानरोंकी ओर दौड़ा ॥ १५ ॥ युद्ध-क्षेत्रमें वह सुग्रीवपर भयङ्कर बाण छोड़ने लगा और उसने व्याकुल राक्षसोंको प्रसन्न करके युद्ध-क्षेत्रमें ठहरा दिया ॥ १६ ॥ वानरराज सुग्रीव उस राक्षसके तीखे बाणोंसे बहुत विध गये, उन्होंने घोर गर्जन किया और उसका वध करना निश्चित किया ॥ १७ ॥ उत्तम युद्ध करनेवाले सुग्रीव पेड़ उखाड़कर उसकी ओर बढ़े और उसके सामनेही उन्होंने उसके विशाल हाथीको मार डाला ॥१८॥ सुग्रीवकी मारसे आहत वह महागज एक धनुष पीछे हटा, वह पृथिवीपर गिरा और उसने गर्जन किया ॥१९॥ बलवान् वह राक्षस, उस आहत हाथीपरसे शीघ्रही उतरकर, शत्रु सुग्रीवके सामने बढ़कर, ऋषभ नामक बनैले पशुके चमड़ेकी ढाल और तलवार लेकर, निश्चल खड़े सुग्रीवका तिरस्कार करता हुआ उनके पास गया ॥२०, २१॥ विरूपाक्षके प्रहारको सहकर सुग्रीवने बड़ा भारी पत्थर उठाया, जो मेघके समान विशाल था । उसे उन्होंने विरूपाक्षपर चलाया ॥ २२ ॥ पराक्रमी वह राक्षसश्रेष्ठ आते हुए उस पत्थरको देखकर हट गया और उसने सुग्रीवपर तलवारसे प्रहार किया ॥ २३ ॥ बलवान् राक्षसके उस तलवारके आघातसे आहत होकर थोड़ी देरके लिए अचेतके समान वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २४ ॥ उस समय सुग्रीवने शीघ्रही उठकर उस महायुद्धमें मुक्का तानकर बड़े वेगसे उस राक्षसकी छातीमें मारा ॥ २५ ॥ सुग्रीवके मुष्टिप्रहारसे अभिहत होकर विरूपाक्ष राक्षसने क्रोध करके तलवारसे सुग्रीवका कवच काटकर गिरा दिया, इस प्रकार राक्षसके द्वारा आहत होकर सुग्रीव पैरोंके बल पृथिवीपर गिर पड़े । पुनः उन्होंने उठकर वज्रके समान भयानक शब्द करनेवाला "तल" राक्षसके लिए फेंका । जब राक्षसने सुग्रीवको तल उठाये देखा तब निपुणतासे उसने अपनेको तलसे

नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरसि ताडयत् । ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥२९॥
मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा । ददर्शानन्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ॥३०॥
ततोऽन्यं पातयत्क्रोधाच्छङ्खदेशे महातलम् । महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ ॥३१॥
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं हि समुद्गिरन् । स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव ॥३२॥
विवृत्तनयनं क्रोधात्सफेनं रुधिराप्लुतम् । ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥३३॥
स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम् । करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥३४॥

तथा तु तौ संयति संप्रयुक्तौ तरस्विनौ वानरराक्षसानाम् ।
बलार्णवौ सस्वनतुश्च भीमौ महार्णवौ द्वाविव भिन्नसेतू ॥३५॥
विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं महाबलं तं हरिपार्थिवेन ।
बलं समेतं कपिराक्षसानामुद्वृत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे । सरसीव महाघर्मे सूपक्षीणे बभूवतुः ॥ १ ॥
स्वबलस्य तु घातेन विरूपाक्षवधेन च । बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥
क्षीणं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं बलीमुखैः । बभूवास्य व्यथा युद्धे दृष्ट्वा दैवविपर्ययम् ॥ ३ ॥

बचा लिया और घूसासे सुग्रीवकी छातीमें मारा । इससे वानरराज सुग्रीव बहुत क्रुद्ध हुए ॥ २६—२९ ॥ सुग्रीवने अपने प्रहारसे राक्षसको बचा देखकर उसका वध करनेका अवसर देखा ॥ ३० ॥ पुनः उन्होंने क्रोध करके राक्षसके ललाटपर महातलका प्रहार किया । वज्रके समान उस तलसे आहत होकर वह राक्षस पृथिवीपर गिर पड़ा, रुधिरसे वह भींग गया और रुधिर उगलने लगा, जिस प्रकार सोतेसे जल निकलता है ॥३१, ३२॥ उसकी आँखें निकल आयीं, क्रोधसे फेनके साथ रुधिर निकलने लगा, उस समय विरूपाक्षकी आँखें और भी विकृत हो गयीं ॥३३॥ उस समय वानरोंने देखा कि वह राक्षस रुधिरमें लथ-पथ होकर ऊपर उछल रहा है, छटपटा रहा है और दीनतापूर्वक क्रन्दन कर रहा है ॥ ३४ ॥ वानर और राक्षसोंके युद्धमें बलवान् सुग्रीव और विरूपाक्ष ये दोनों सामने आये, वे दोनों बलके समुद्र थे, वे दोनों बन्धन तोड़े हुए दो समुद्रोंके समान बड़े जोरसे गर्जन कर रहे थे ॥ ३५ ॥ वानरराजके द्वारा महाबली विरूपाक्षका विनाश देखकर वानर और राक्षसोंकी वह समस्त सेना उन्मत्त गंगाके समान हो गयी ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका छानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९६ ॥

उस महायुद्धमें परस्पर मारे जानेके कारण वे दोनों सेनाएँ क्षीण हो गयीं, जिस प्रकार गर्मीके दिनोंमें तालाब क्षीण हो जाते हैं ॥ १ ॥ अपनी सेना नष्ट होने तथा विरूपाक्षवधसे राक्षसाधिप रावणने द्विगुण क्रोध किया ॥२॥ वानर सेनाको मार रहे हैं और वह घट रही है—यह देखकर तथा युद्धमें भाग्यका विपर्यय

उवाच च समीपस्थं महोदरमनन्तरम् । अस्मिन्काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥ ४ ॥
जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम् । भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्वेष्टुं साधु युध्यताम् ॥ ५ ॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः । प्रविवेशारिसेनां स पतङ्ग इव पावकम् ॥ ६ ॥
ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः । भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥ ७ ॥
वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः । प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते सर्वराक्षसान् ॥ ८ ॥
महोदरः सुसंक्रुद्धः शरैः काञ्चनभूषणैः । चिच्छेद पाणिपादोरु वानराणां महाहवे ॥ ९ ॥
ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसानां महामृधे । दिशो दश द्रुताः केचित्केचित्सुग्रीवमाश्रिताः ॥१०॥
प्रभग्नं समरे दृष्ट्वा वानराणां महाबलम् । अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम् ॥११॥
प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् । चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥१२॥
तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः । असंभ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद ततः शिलाम् ॥१३॥
रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृत्ता सा सहस्रधा । निपपात तदा भूमौ गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥१४॥
तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्च्छितः । सालमुत्पाट्य चिक्षेप तं स चिच्छेद नैकधा ॥१५॥
शरैश्च विददारैनं शूरः परबलार्दनः । स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ॥१६॥
आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् । परिघेणोग्रवेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥१७॥
तस्माद्धतहयाद्वीरः सोऽवप्लुत्य महारथात् । गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः ॥१८॥

देखकर रावणको बड़ा क्रोध आया ॥३॥ अनन्तर वह समीपस्थ महोदरसे बोला—महाबाहो ! इस समय तो तुम्हीं मेरी जयकी आशा हो ॥ ४ ॥ वीर ! अपना पराक्रम दिखाओ और शत्रुसेनाको मारो, यही समय स्वामीके उपकारोंका बदला चुकानेका उपस्थित हुआ है, इससे अच्छी तरह लड़ो ॥ ५ ॥ रावणकी आज्ञा मानकर राक्षसराज महोदरने शत्रुसेनामें प्रवेश किया, जिस प्रकार पतंग अग्निमें प्रवेश करता है ॥ ६ ॥ स्वामीकी आज्ञासे प्रेरित होकर वह राक्षस अपने पराक्रमसे वानरीसेनाका नाश करने लगा ॥ ७ ॥ महा-पराक्रमी वानर भी बड़ी-बड़ी शिला लेकर शत्रुसेनामें घुस गये और वे शत्रुसेनाका नाश करने लगे ॥ ८ ॥ क्रोधी महोदर सुवर्णमण्डित बाणोंसे युद्धमें वानरोंके हाथ पैर काटने लगा ॥ ९ ॥ राक्षसोंके उस महायुद्धसे वानर दसो दिशाओंमें भागने लगे और कई सुग्रीवकी शरण आये ॥१०॥ वानरोंकी बड़ी सेना युद्धसे भाग गयी—यह देखकर सुग्रीवने महोदरपर आक्रमण किया ॥११॥ बहुत बड़ी-बड़ी पर्वतके समान भयङ्कर शिला लेकर, उस राक्षसके वधके लिए, वानरराज महातेजस्वी सुग्रीव फेंकने लगे ॥१२॥ महोदरने सहसा देखा कि एक शिला हमारी ओर आ रही है, तब बिना घबड़ाये उसने उस शिलाको तोड़ दिया ॥ १३ ॥ राक्षसके बाणोंसे हजारों टुकड़े हुई वह शिला पृथिवीपर इधर-उधर गिरी, मानों गीधोंका झुण्ड गिरा हो ॥ १४ ॥ उस शिलाको टुकड़े-टुकड़े देखकर सुग्रीवने बड़ा क्रोध किया, उन्होंने सालवृक्ष उठाकर उसपर चलाया, राक्षसने उसे भी टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥ १५ ॥ शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाला वीर राक्षस बाणोंसे सुग्रीवको व्यथित करने लगा । उस समय क्रुद्ध सुग्रीवने पृथिवीपर पड़ा हुआ परिघ देखा ॥१६॥ प्रदीप्त उस परिघको उठाकर सुग्रीवने महोदरको दिखाया, पुनः उन्होंने उग्रवेग उस परिघसे राक्षसके घोड़ोंको मारा ॥१७॥ घोड़ोंके

गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः। नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ ॥१९॥
ततः क्रुद्धो गदां तस्य चिक्षेप रजनीचरः। ज्वलन्तीं भास्कराभासां सुग्रीवाय महोदरः ॥२०॥
गदां तां सुमहाघोरामापतन्तीं महाबलः। सुग्रीवो रोषताम्राक्षः समुद्यम्य महाहवे ॥२१॥
आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः। पपात तरसा भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥२२॥
ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीवो वसुधातलात्। आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥२३॥
स तमुद्यम्य चिक्षेप सोऽप्यस्य प्राक्षिपद्गदाम्। भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुस्तौ महीतले ॥२४॥
ततो भिन्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः। तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥२५॥
जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं नदन्तौ च पुनः पुनः। तलैश्चान्योन्यमासाद्य पेततुश्च महीतले ॥२६॥
उत्पेततुस्तदा तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम्। भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ ॥२७॥
जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परंतपौ। जहार च तदा खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ॥२८॥
ततो रोषपराताङ्गौ नदन्तावभ्यधावताम्। उद्यतासी रणे हृष्टौ युद्धे शस्त्रविशारदौ ॥२९॥
दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं संपरीयतुः। अन्योन्यमभिसंक्रुद्धौ जये प्रणिहिताबुभौ ॥३०॥
स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः। महावर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ॥३१॥
लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः। जहार स शिरस्त्राणं कुण्डलोपगतं शिरः ॥३२॥
निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले। तद्बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न दृश्यते ॥३३॥

मारे जानेपर वह वीर उस महारथसे कूद पड़ा। राक्षस महोदरने क्रोध करके गदा ली ॥१८॥ गदा और परिघ लेकर वे दोनों वीर युद्धमें सामने आये, वे साँड़ोंके समान गर्जते थे, और बिजुलीवाले मेघके समान मालूम पड़ते थे ॥ १९ ॥ महोदर राक्षसने क्रोधकरके जलती हुई वह गदा सुग्रीवपर चलायी, जिसका प्रकाश सूर्यके समान था ॥ २० ॥ महाभयानक गदा अपनी ओर आते देखकर सुग्रीवने क्रोधसे लाल आँखें करके परिघसे उसकी गदापर मारा, इससे परिघ टूट गया और वह पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ २१, २२ ॥ अनन्तर तेजस्वी सुग्रीवने पृथिवीपरसे एक भयङ्कर लोहेका मूसल उठाया, जिसपर सोना चढ़ा हुआ था ॥२३॥ सुग्रीवने राक्षसपर मूसल फेंका, राक्षसने उनपर गदा फेंकी, आपसमें टकराकर वे टूट गये और पृथिवी गिर पड़े ॥२४॥ तेज और बलसे युक्त वे दोनों प्रदीप्त अग्निके समान घूसोंसे लड़ने लगे ॥ २५ ॥ वे दोनों परस्पर मारने और गर्जन करने लगे, उन दोनोंने तलसे भी प्रहार किया और वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥ पुनः वे शीघ्र उठकर आपसमें मारने लगे, पराजित होनेके अयोग्य वे दोनों वीर हाथोंसे एक दूसरेको ढकेलने लगे ॥२७॥ बाहुयुद्ध करते-करते वे दोनों शत्रुतापी वीर थक गये, तब उन दोनोंने पासही रखी हुई तलवार उठायी ॥२८॥ शस्त्र-विशारद युद्धमें प्रसन्न वे दोनों क्रोधकरके और तलवार उठाकर गर्जते हुए एक दूसरेकी ओर दौड़े ॥२९॥ एक दूसरेपर क्रोध किये हुए और जयपानेके लिए सावधान वे दोनों वीर दाहिनी ओरसे पैंतरेपर चलकर भिड़े ॥ ३० ॥ उस वीर वेगवान् तथा बलकी प्रशंसा करनेवाले दुर्मति महोदरने सुग्रीवके कवचपर तलवार गिरायी ॥ ३१ ॥ महोदर सुग्रीवके कवचमें बिधी हुई तलवार निकाल रहा था, उसी समय वानरराज सुग्रीवने कुण्डल और पगड़ीसे सुशोभित उसका सिर तलवारसे काट लिया ॥ ३२ ॥ सिर कटनेपर वह पृथिवीमें गिर

हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः। चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः ॥३४॥
विषण्णवदनाः सर्वे राक्षसा दीनचेतसः। विद्रवन्ति ततः सर्वे भयवित्रस्तचेतसः ॥३५॥
महोदरं तं विनिपात्य भूमौ महागिरेः कीर्णमिवैकदेशम्।
सूर्यात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या सूर्यः स्वतेजोभिरिवाप्रधृष्यः ॥३६॥
अथ विजयमवाप्य वानरेन्द्रः समरमुखे सुरसिद्धयक्षसङ्घैः।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घैर्हरुपसमाकुलितैर्निरीक्षमाणः ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥९७॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः। सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ १ ॥
अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास मार्गणैः। स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि राक्षसः ॥ २ ॥
पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः। केषांचिदिषुभिर्बाहूंश्चिच्छेदाथ स राक्षसः ॥ ३ ॥
वानराणां सुसंरब्धः पार्श्वं केषांचिदाक्षिपत्। तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ॥ ४ ॥
विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः। निशम्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ॥ ५ ॥
वेगं चक्रे महावेगः समुद्र इव पर्वसु। आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ॥६॥

पड़ा—यह देखकर राक्षसराजको वह सेना वहाँ दिखायी न पड़ी ॥३३॥ महोदरको मारकर सुग्रीव वानरोंके साथ प्रसन्न हुए और गर्जन करने लगे, रावणने क्रोध किया और रामचन्द्र प्रसन्न होकर शोभित हुए ॥ ३४ ॥ राक्षसोंका मुँह उतर गया, उनका चित्त मलिन हो गया, वे भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे ॥ ३५ ॥ पर्वतके सड़े हुए एक बड़े शिखरके समान उस महोदरको पृथिवीपर गिराकर सूर्यपुत्र सुग्रीव विजयश्रीसे शोभित होने लगे, जिस प्रकार सूर्य अपने तेजसे शोभित होते हैं ॥ ३६ ॥ युद्धक्षेत्रमें विजय पाये हुए वानरराज सुग्रीव देवता, सिद्ध, यक्ष तथा पृथिवीवासी प्राणियोंसे, जो हर्षसे व्याकुल थे, अभिनन्दित हुए ॥३७॥

आदिकाव्य, वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सत्तानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९७ ॥

सुग्रीवने महोदरको मारा है यह देखकर महाबली महापार्श्वकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं ॥ १ ॥ उसने अङ्गदकी भयानक सेनाको बाणोंसे क्षुभित कर दिया। वह राक्षस प्रधान-प्रधान वानरोंका मस्तक शरीरसे गिराने लगा, जिस प्रकार वृन्तसे फल अलग किया जाता है (वृन्त वह गुच्छा है जिसमें फल या फूल लगे रहते हैं)। उस राक्षसने कइयोंके हाथ बाणोंसे काट डाले ॥२, ३॥ क्रोधी महापार्श्वने कई वानरोंके पंजर काट डाले, महापार्श्वकी बाणवृष्टिसे पीड़ित होकर वानर दुःखके कारण समरसे विमुख हो गये और वे सभी चेतनारहित हो गये। राक्षससे पीड़ित होकर सेना उद्विग्न हो गयी है—यह देखकर महावेगवान् अङ्गद पूर्णिमाके दिन समुद्रके समान बढ़े। सूर्यकिरणोंके समान उज्ज्वल लोहेका परिघ लेकर वानरश्रेष्ठ अङ्गदने महापार्श्वपर चलाया। उस प्रहारसे अचेत होकर महापार्श्व सारथिके साथ उस रथसे पृथिवीपर गिर

समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् । स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ॥
ससूतस्यन्दनात्तस्माद्विसंज्ञश्चापतद्भुवि ॥७॥
तस्यर्क्षराजस्तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः । निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वयूथान्मेघसंनिभात् ॥८॥
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः स विपुलां शिलाम् । अश्वाञ्जघान तरसा बभञ्ज स्यन्दनं च तम् ॥९॥
मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः । अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत ॥१०॥
जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे । ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ॥११॥
गवाक्षं जाम्बवन्तं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ । जग्राह परिघं घोरमङ्गदः क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥
तस्याङ्गदः सरोपाक्षो राक्षसस्य तमायसम् । दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम् ॥१३॥
द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्वा च वेगवत् । महापार्श्वाय चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः ॥१४॥
स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः । धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्राणं च पातयत् ॥१५॥
तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् । तलेनाभ्यहनत्क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ॥१६॥
स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः । करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ॥ १७॥
तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम् । राक्षसः परमक्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ॥१८॥
तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपातितम् । अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम् ॥१९॥
स वीरो वज्रसंकाशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः । संवर्तयत्सुसंक्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥२०॥
राक्षसस्य स्तनाभ्याशे मर्मज्ञो हृदयं प्रति । इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ॥२१॥

पड़ा ॥ ४—७ ॥ मेघके समान काले अपने दलसे निकलकर महाबली तेजस्वी और अंजनराशिके समान काले ऋक्षराज जाम्बवान्ने पर्वतशिखरके समान विशालशिला लेकर महापार्श्वके घोड़ोंको मार डाला और उसके रथको तोड़ डाला ॥ ८, ९ ॥ एक मुहूर्तके बाद होश आनेपर महाबली महापार्श्वने पुनः अङ्गदको अनेक बाणोंसे वेधा ॥ १० ॥ स्तनोंके बीच छातीमें उसने ऋक्षराज जाम्बवान्को तीन बाणोंसे मारा और गवाक्षको अनेक बाणोंसे मारा ॥ ११ ॥ गवाक्ष और जाम्बवान्को बाणपीड़ित देखकर अङ्गदने क्रोध-करके भयानक परिघ उठाया ॥ १२ ॥ अङ्गदकी आँखोंसे क्रोध टपक रहा था, सूर्यकिरणके समान चमकीला वह लोहेका परिघ उठाकर दूरस्थित उस राक्षसके वधके लिए दोनों हाथोंसे उस परिघको घुमाया और उसे वालिपुत्रने महापार्श्वपर चलाया ॥ १३, १४ ॥ बलवान् अङ्गदके हाथसे चलाये गये उस परिघने राक्षसके हाथसे बाणयुक्त धनुष और सिरकी पगड़ी गिरा दी ॥ १५ ॥ बली वालिपुत्र शीघ्रही उसके पास चले गये और उन्होंने क्रोधकरके उसके कुण्डलवाले कानकी जड़में तलसे मारा ॥१६॥ महावेगवान् महाद्युतिमान महापार्श्वने क्रोधकरके बहुत बड़ा एक परश्वध एक हाथसे उठाया ॥१७॥ बड़े क्रोधसे उस राक्षसने वह पत्थर-के समान कठोर दृढ़ और तेलसे साफ किया हुआ परश्वध अङ्गदपर चलाया ॥ १८ ॥ उस राक्षसके द्वारा बायें कन्धेपर चलाये उस परश्वधको अङ्गदने क्रोधपूर्वक निष्फल कर दिया ॥ १९ ॥ पिताके तुल्य पराक्रमी वीर अङ्गदने बड़े क्रोधसे बज्रतुल्य अपनी मुट्ठी बाँधी ॥ २० ॥ राक्षसके स्तनके पास हृदयमें मर्मज्ञ अङ्गदने

तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे । पफाल हृदयं चास्य स पपात हतो भुवि ॥२२॥
तस्मिन्विनिहते भूमौ तत्सैन्यं संप्रचुक्षुभे । अभवच्च महान्क्रोधः समरे रावणस्य तु ॥२३॥
वानराणां प्रहृष्टानां सिंहनादः सुपुष्कलः । स्फोटयन्निव शब्देन लङ्कां साट्टालगोपुराम् ।
सहेन्द्रेणेव देवानां नादः समभवन्महान् ॥२४॥
अथेन्द्रशत्रुस्त्रिदशालयानां वनौकसां चैव महाप्रणादम् ।
श्रुत्वा सरोषं युधि राक्षसेन्द्रः पुनश्च युद्धाभिमुखोऽवतस्थे ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

एकोनशततमः सर्गः ९९

महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा स रावणः । तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ॥ १ ॥
आविवेश महान्क्रोधो रावणं तु महामृधे । सूतं संचोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २ ॥
निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च । दुःखमेवापनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३ ॥
रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् । प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान्कुमुदो नलः ॥ ४ ॥
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अङ्गदो गन्धमादनः । हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः ॥ ५ ॥
स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् । नादयन्प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यधावत ॥ ६ ॥

इन्द्रके वज्रके समान कठोर अपनी मुट्ठीसे मारा ॥ २१ ॥ उस महायुद्धमें उस मुट्ठीके गिरनेसे उस राक्षसका हृदय फट गया और वह मरकर पृथिवीपर गिरा ॥ २२ ॥ महापार्श्वके मारे जानेपर उसकी सेना क्षुभित हो गयी और रावणको बड़ा क्रोध आया ॥ २३ ॥ प्रसन्न वानरोंका चारों ओर सिंहनाद होने लगा । उस सिंहनादसे लङ्कानगरी अपनी अटारियों और गोपुरके साथ मानों फटने लगीं, इन्द्रके साथ देवताओंने भी हर्ष-गर्जन किया ॥ २४ ॥ देवताओं और वानरोंका वह हर्षशब्द सुनकर इन्द्रशत्रु रावणने बड़ा क्रोध किया और वह युद्धके लिए तयार होकर युद्धभूमिमें खड़ा हो गया ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका अट्ठानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९८ ॥

महाबली वीर विरूपाक्षके मारे जानेपर महोदर और महापार्श्व भी मारे गये—यह देखकर युद्धक्षेत्रमें खड़े रावणको बड़ा क्रोध चढ़ा, उसने सारथिको रथ चलानेके लिए कहा और वह इस प्रकार बोला, ॥१, २॥ अपने सचिवोंके मारे जानेका और वानरोंके द्वारा लङ्कानगरीके घेरे जानेका दुःख आज मैं राम और लक्ष्मणको मारकर दूर करूँगा ॥ ३ ॥ आज मैं रामरूपी वृक्षका युद्धमें विनाश करूँगा । यह वृक्ष सीतारूपी पुष्पसे फल उत्पन्न करता है । इसकी शाखाएँ सुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अङ्गद, गन्धमादन, हनुमान, सुषेण तथा अन्य समस्त वानरसेनापति हैं ॥ ४, ५ ॥ वह अतिरथ रावण रथके शब्दसे दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ शीघ्र चला और रामचन्द्रकी ओर दौड़ा ॥ ६ ॥ रावणके

पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना । संचचाल मही सर्वा त्रस्तसिंहमृगद्विजा ॥ ७॥
तामसं सुमहाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् । निर्ददाह कपीन्सर्वांस्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥ ८॥
उत्पपात रजो भूमौ तैर्भग्नैः संप्रधावितैः । नहि तत्सहितुं शेकुर्ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ॥ ९ ॥
तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः । दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥१०॥
ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् । स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥११॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा । आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद्धनुः ॥१२॥
पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिंदमम् । ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली ॥१३॥
वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम् । समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥१४॥
विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् । महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥१५॥
रावणस्य च बाणौघै रामविस्फारितेन च । शब्देन राक्षसास्तेन पेतुश्च शतशस्तदा ॥१६॥
तयोः शरपथं प्राप्य रावणो राजपुत्रयोः । स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥१७॥
तमिच्छन्प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः । मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥१८॥
तान्मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता । बाणान्बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥१९॥
एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन्दशभिर्दश । लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥२०॥

रथशब्दसे पर्वत, वन और नदियोंके साथ पृथिवी प्रतिध्वनित हो गयी, पृथिवी काँपने लगी और सिंह तथा पशु-पक्षी डर गये ॥ ७ ॥ बड़ा भयङ्कर और कठोर केतुका अस्त्र उसने चलाया, जिससे वानर जलने लगे और वे इधर-उधर गिरने लगे ॥ ८ ॥ वानरीसेनाकी पँक्ति टूट गयी और वे भागने लगे, जिससे पृथिवीपर धूल उड़ी । वह अस्त्र स्वयं ब्रह्माका बनाया था इसलिए वानर उसे सह न सके ॥ ९ ॥ रावणके तीक्ष्ण बाणोंसे अनेक वानरीसेना भागने लगी, अपनी सैकड़ों सेनाओंको भागती देखकर भी रामचन्द्र युद्धमें डटे रहे ॥१०॥ राक्षसश्रेष्ठ रावणने वानरीसेनाको भगाकर रामचन्द्रको देखा, जो पराजित होनेके अयोग्य थे । वे बड़े धनुषपर भार देकर भाई लक्ष्मणके साथ खड़े थे, मानों इन्द्र अपने छोटे भाई विष्णुके साथ हों, मालूम होता था कि रामचन्द्र अपने धनुषसे आकाश छू रहे हों ॥ ११, १२ ॥ दीर्घ-बाहु, कमलदलके समान विशाललोचन, तेजस्वी, बली रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ देखा कि वानर भाग रहे हैं और रावण आ रहा है । यह देखकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होंने धनुषको बीचसे पकड़ा ॥१३, १४॥ बहुत शीघ्र बाण छोड़नेवाला तथा भयङ्कर शब्द करनेवाला धनुष रामचन्द्र चढ़ाने लगे, मानों वे पृथिवीको तोड़ देना चाहते हों ॥ १५ ॥ रावणके बाणोंके तथा रामचन्द्रके धनुषके टंकारके शब्दसे सैकड़ों राक्षस पृथिवी पर गिरे ॥ १६ ॥ वह रावण राजपुत्र राम और लक्ष्मणके समीप आया, उस समय वह मालूम होता था, जैसे सूर्य और चन्द्रमाके पास राहु हो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने रावणसे तीखे बाणोंके द्वारा पहले युद्ध करनेकी इच्छासे धनुष चढ़ाकर अग्निशिखाके समान बाण छोड़े ॥ १८ ॥ धनुर्धारी लक्ष्मणके बाण छोड़ते ही तेजस्वी रावणने अपने बाणोंसे उन बाणोंको रोक दिया ॥१९॥ रावणने लक्ष्मणके एक बाणको एक बाणसे, तीन बाणोंको तीन बाणोंसे, और दस बाणोंको दस बाणोंसे काट डाला और इस प्रकार उसने अपना हस्त-

अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिंजयः । आससाद रणे रामं स्थितं शैलमिवापरम् ॥२१॥
स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः । व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः ॥२२॥
शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः । दृष्ट्वैवापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥२३॥
ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः । दीप्यमानान्महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान ॥२४॥
राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा । अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः ॥२५॥
चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् । बाणवेगात्समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥२६॥
तयोर्भूतानि वित्रेसुर्युगपत्संप्रयुध्यतोः । रौद्रयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥२७॥
सततं विविधैर्बाणैर्बभूव गगनं तदा । घनैरिवातपापाये विद्युन्मालासमाकुलैः ॥२८॥
गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः । महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ॥२९॥
शरान्धकारमाकाशं चक्रतुः परमं तदा । गतेऽस्तं तपने चापि महामेघाविवोत्थितौ ॥३०॥
तयोरभून्महायुद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः । अनासाद्यमचिन्त्यं च वृत्रवासवयोरिव ॥३१॥
उभौ हि परमेष्वासावुभौ युद्धविशारदौ । उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः ॥३२॥
उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः । ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव ॥३३॥
ततः संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः । नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत ॥३४॥

लाघव दिखलाया ॥ २० ॥ युद्ध-विजयी रावण लक्ष्मणको छोड़कर रामचन्द्रके पास गया जो एक दूसरे पर्वतके समान युद्धक्षेत्रमें खड़े थे ॥२१॥ राक्षसराज रावण क्रोधसे आँखें लाल करके रामचन्द्रके पास गया और बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥२२॥ रावणके धनुषसे निकलकर बाणधारा आ रही है यह देखकर रामचन्द्रने शीघ्रही भल्लनामक बाण उठाये ॥ २३ ॥ उन समस्त बाणोंको रामचन्द्रने तीखे भल्लोंसे काट डाला, वे बाण बड़े भयङ्कर और चमकीले थे वे सर्पके समान क्रूर थे ॥ २४ ॥ रामचन्द्र रावणको और रावण रामचन्द्रको इस प्रकार दोनों परस्पर अनेक प्रकारके तीखे बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २५ ॥ बाणके वेगसे दूर हटाये गये और एक दूसरेके द्वारा पराजित होनेके अयोग्य राम और रावण बहुत देरतक दाहिने बायें मण्डला-कार घूमते रहे ॥ २६ ॥ यमराजके सदृश अत्यन्त भयङ्कर बाण छोड़नेवाले तथा युद्ध करनेवाले राम और रावणसे सब प्राणी डर गये ॥ २७ ॥ ग्रीष्मके बीतनेपर जिस प्रकार आकाश बिजुलीवाले मेघोंसे भर जाता है, उसी प्रकार अनेक प्रकारके बाणोंसे आकाश भर गया ॥ २८ ॥ तीखे गीधके पंखयुक्त वेगवान् अतएव ज चलनेवालेते बाणोंकी वृष्टिसे आकाश गवाक्षितके समान हो गया अर्थात् उसमें खिड़कियाँसी मालूम पड़ने लगीं ॥ २९ ॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर महामेघके समान उदित राम और रावणने बाणोंकी वृष्टिसे अन्धकार कर दिया । रात्रिमें अन्धकार होताही है, इनकी बाणवृष्टिसे और अन्धकार हो गया ॥ ३० ॥ परस्पर वध चाहनेवाले राम और रावणका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ, वैसा युद्ध दूसरोंके द्वारा असम्भव था, वह युद्ध वृत्र और इन्द्रके युद्धके समान अचिन्तनीय था ॥३१॥ दोनों बाण चलानेमें निपुण थे, दोनों युद्धविशारद थे, दोनों अस्त्र जाननेवालोंमें चतुर थे, दोनों युद्धमें विचरण करने लगे ॥३२॥ वे दोनों जिस-जिस मार्गसे जाते थे उस-उस मार्गमें बाणोंकी लहरियाँ उठती थीं, जिस प्रकार वायुके द्वारा उठायी हुई दो समुद्रोंकी लहरियाँ चलती हैं ॥३३॥ लोकको रुलानेवाला रावण बाण चलानेमें व्यस्त था, उसने रामचन्द्रके ललाटपर बाणोंकी

रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम् । शिरसा धारयद्रामो न व्यथामभ्यपद्यत ॥३५॥
अथ मन्त्रानपि जपन्रौद्रमस्त्रमुदीरयन् । शरान्भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ॥३६॥
मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् । ताञ्शरान्राक्षसेन्द्राय चिक्षेपाच्छिन्नसायकः ॥३७॥
ते महामेघसंकाशे कवचे पातिताः शराः । अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यथां जनयंस्तदा ॥३८॥
पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् । ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलोऽभिनत् ॥३९॥
ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः । श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलिताः ॥४०॥
निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्च्छितः । आसुरं सुमहाघोरमन्यदस्त्रं चकार सः ॥४१॥
सिंहव्याघ्रमुखांश्चापि कङ्ककोकमुखानपि । गृध्रश्येनमुखांश्चापि शृगालवदनांस्तथा ॥४२॥
ईहामृगमुखांश्चापि व्यादितास्यान्भयावहान् । पञ्चास्याल्लेलिहानांश्च ससर्ज निशिताञ्शरान् ॥४३॥
शरान्खरमुखांश्चान्यान्वराहमुखसंश्रितान् । श्वानकुक्कटवक्त्रांश्च मकराशीविषाननान् ॥४४॥
एतांश्चान्यांश्च मायाभिः ससर्ज निशिताञ्शरान् । रामं प्रति महातेजाः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥४५॥
आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुपुङ्गवः । ससर्जास्त्रं महोत्साहं पावकं पावकोपमः ॥४६॥
अग्निदीप्तमुखान्बाणांस्तत्र सूर्यमुखानपि । ग्रहनक्षत्रवर्णांश्च महोल्कामुखसंस्थितान् ॥४७॥
विद्युज्जिह्वोपमांश्चापि ससर्ज विविधाञ्छरान् । ते रावणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहताः ॥४८॥

माला छोड़ी ॥ ३४ ॥ भयंकर धनुषसे छोड़ेगये उन बाणोंको रामचन्द्रने मस्तकपर धारण किया। वे बाण रामचन्द्रको नीलकमलके पत्तेके समान मालूम हुए, उन्हें कोई व्यथा न हुई ॥ ३५ ॥ अनन्तर मन्त्रोंको जपते हुए, भयंकर अस्त्र छोड़ते हुए बली, तेजस्वी रामचन्द्रने क्रोधसे पुनः बाणोंको उठाकर और धनुषको नवाकर चलाया। उन्होंने वे बाण राक्षसराज रावणपर चलाये, रामचन्द्रका धनुष टूटा हुआ नहीं था ॥ ३६, ३७ ॥ वे बाण रावणके अभेद्य और मेघतुल्य कवचपर गिरे, पर इससे उसे व्यथा न हुई ॥ ३८ ॥ सब प्रकारके अस्त्रोंके चलानेमें निपुण रामचन्द्रने पुनः रथपर बैठेहुए उस राक्षसराजके मस्तकपर उत्तम अस्त्रसे मारा ॥ ३९ ॥ पाँच मस्तकवाले सर्पके समान वे बाण रावणके बाणोंको भेदकर और रावणके द्वारा निवारित होकर स्वाँस छोड़ते हुए पृथिवीमें घुसे ॥४०॥ रामचन्द्रके बाणको निष्फल करके क्रोधसे जलते हुए रावणने बड़ा भयंकर दूसरा असुरास्त्र उठाया ॥ ४१ ॥ सिंहमुख, व्याघ्रमुख, कङ्कमुख, कोकमुख, गृध्रमुख, श्येनमुख, शृगालमुख, वृकमुख, मृगमुख और सर्पमुख बाण रावणने रामचन्द्रपर छोड़े, ये तीखे बाण मुँह फैलाये बड़े भयानक थे ॥ ४२, ४३ ॥ गर्दभमुख, शूकरमुख, कुकुरमुख, कुक्कुटमुख, मकरमुख तथा सर्पमुख, ये तथा अन्य दूसरे प्रकारके बाण क्रुद्ध सर्पके समान श्वास लेते हुए तेजस्वी रावणने रामपर छोड़े ॥ ४४, ४५ ॥ रघुश्रेष्ठ रामचन्द्रपर जब असुरास्त्र चलाये गये तब अग्नितुल्य रामचन्द्रने तीव्रगामी आग्नेयास्त्र चलाया ॥ ४६ ॥ अनन्तर अग्निके समान और सूर्यके समान मुखवाले बाण रावणने छोड़े, तथा ग्रह और नक्षत्रोंके रंगवाले बाण रावणने छोड़े। इन बाणोंके मुँहमें अग्निज्वाला थी ॥४७॥ रावणने विद्युतके समान जीभवाले बाण छोड़े, इसप्रकार अनेक तरहके बाण उसने छोड़े,

विलयं जग्मुराकाशे जघ्नुश्चैव सहस्रशः। तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥४९॥
हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः। सुग्रीवाभिमुखा वीराः संपरिक्षिप्य राघवम् ॥५०॥
ततस्तदस्त्रं विनिहत्य राघवः प्रसह्य तद्रावणबाहुनिःसृतम्।
मुदान्वितो दाशरथिर्महात्मा विनेदुरुच्चैर्मुदिताः कपीश्वराः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनशततमः सर्गः ॥९९॥

शततमः सर्गः १००

तस्मिन्प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः। क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥ १ ॥
मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः। उत्स्रष्टुं रावणो भीमं राघवाय प्रचक्रमे ॥ २ ॥
ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च। कार्मुकाद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥ ३ ॥
मुद्गराः कूटपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा। निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये ॥ ४ ॥
तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः। जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः ॥ ५ ॥
तस्मिन्प्रतिहतेऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना। रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदीरयत् ॥ ६ ॥
ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च। कार्मुकाद्भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥ ७ ॥
तैरासीद्गगनं दीप्तं संपतद्भिः समन्ततः। पतद्भिश्च दिशो दीप्तैश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ८ ॥
तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि तु स राघवः। आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥ ९ ॥

ये सब भयंकर बाण रामचन्द्रके बाणसे कट गये ॥ ४८ ॥ जिन बाणोंने हज़ारों वानरोंको मारा था, वे बाण आकाशमें छिप गये। अक्लिष्टकर्मा रामने उन बाणोंको नष्ट कर दिया, यह देखकर कामरूपी सभी वानर प्रसन्न होकर सुग्रीवके सामने रामचन्द्रको घेरकर गर्जन करने लगे ॥ ४९, ५० ॥ रावण-बाहुसे निकले बाणों-को बलपूर्वक नष्ट करके महात्मा रामचन्द्र प्रसन्न हुए और प्रसन्न वानरोंने गर्जन किया ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका निन्नानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९९ ॥

उस अस्त्रके विफल होनेपर राक्षसाधिप रावणने दूना क्रोध किया, अनन्तर क्रोधसे दूना अस्त्र बरसाने लगा ॥१॥ महाद्युतिमान रावण मयका बनाया हुआ बड़ा ही भयंकर दूसरा अस्त्र रामचन्द्रपर छोड़नेके लिए तयार हुआ ॥ २ ॥ रावणके धनुषसे वज्रके समान दृढ़ जलते हुए शूल, गदाएँ और मूसल निकलने लगे ॥ ३ ॥ प्रलयकालके प्रचण्ड वायुके समान मुद्गर, कूट, पाश जलतेहुए वज्र तथा और अन्य प्रकारके तीखे अस्त्र निकले ॥ ४ ॥ उत्तम अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाद्युति श्रीमान् रामचन्द्रने गन्धर्व देवतावाले उत्तम अस्त्रसे उस अस्त्रको नष्ट कर दिया ॥ ५ ॥ महात्मा रामचन्द्रके द्वारा उस अस्त्रके नष्ट होनेपर रावणकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, फिर उसने और अस्त्र चलाया ॥ ६ ॥ प्रचण्ड वेगवाले बुद्धिमान् रावणके धनुषसे चमकीले और बड़े चक्र निकले ॥ ७ ॥ चारों ओर फैलनेवाले उन बाणोंसे आकाश प्रदीप्त हो गया, जिस प्रकार चन्द्र-सूर्य आदिके उदित होनेसे दिशाएँ प्रदीप्त हो जाती हैं ॥८॥ युद्धक्षेत्रमें रावणके जो

तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः। विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु ॥१०॥
स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः। रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥११॥
ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः। राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली। लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा ॥१३॥
तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः। ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥१४॥
सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम्। जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैर्ऋतस्य महाबलः ॥१५॥
तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम्। लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैस्तदा ॥१६॥
नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान्पर्वतोपमान्। जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥१७॥
हताश्वात्तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात्। कोपमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥१८॥
ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनीमिव। विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१९॥
अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः। अथोदतिष्ठत्संनादो वानराणां महारणे ॥२०॥
संपपात त्रिधा छिन्ना शक्तिः कांचनमालिनी। सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥२१॥
ततः संभाविततरां कालेनापि दुरासदाम्। जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥२२॥
सा वेगिता बलवता रावणेन दुरात्मना। जज्वाल सुमहातेजा दीप्ताशनिसमप्रभा ॥२३॥

विचित्र आयुध और चक्र आये उनको रामचन्द्रने काट डाला ॥ ९ ॥ अपने उस अस्त्रको नष्ट देखकर राक्षसाधिप रावणने रामचन्द्रके समस्त मर्मस्थानोंमें दस बाणोंसे मारा ॥ १० ॥ बड़े धनुषसे निकले हुए दस बाणोंसे रावणके द्वारा विद्ध होनेपर भी महातेजस्वी रामचन्द्र कम्पित न हुए ॥ ११ ॥ अनन्तर क्रोध-करके युद्धविजयी रामचन्द्रने रावणके समस्त अङ्गोंमें अनेक बाणोंसे मारा ॥ १२ ॥ इसके बाद रामचन्द्रके छोटे भाई शत्रुवीरहन्ता बली लक्ष्मणने सात बाण उठाये ॥ १३ ॥ महाद्युति लक्ष्मणने उन महावेगवान् बाणोंसे रावणकी वह ध्वजा काट डाली, जिसपर मनुष्यके सिरका चित्र था ॥ १४ ॥ महाबली श्रीमान् लक्ष्मणने राक्षस रावणके सारथिका मस्तक, जिसमें चमकीला कुण्डल था, बाणसे काट डाला ॥ १५ ॥ लक्ष्मणने राक्षसेन्द्र रावणके हाथीके सूँड़के समान धनुषको पाँच बाणोंसे काट डाला ॥ १६ ॥ इस रावणके उत्तम घोड़ोंको—जो पर्वतके समान ऊँचे थे और मेघके समान काले—विभीषणने कूदकर गदासे मारा ॥१७॥ घोड़ोंके मारे जानेपर उस बड़े रथसे शीघ्रतापूर्वक उतरकर रावणने अपने भाई विभीषणपर बड़ा क्रोध किया ॥ १८ ॥ शक्तिमान् प्रतापी राक्षसराजने वज्रके समान प्रदीप्त शक्ति विभीषणपर छोड़ी ॥ १९ ॥ पहुँचनेके पहलेही लक्ष्मणने उस शक्तिको तीन बाणोंसे काट डाला, इस कारण वहाँ युद्धक्षेत्रमें वानरोंका घोर गर्जन हुआ ॥२०॥ सोनेकी मालावाली वह शक्ति तीन टुकड़े होकर पृथिवीपर गिरी, मानों जलती हुई उल्का, जिससे चिनगारियाँ निकल रही हो, आकाशसे गिरी हो ॥२१॥ अमोघके नामसे प्रसिद्ध, कालके द्वारा भी जिसका नाश न हो सकता हो, ऐसी अपने तेजसे प्रदीप्त होनेवाली विशाल शक्ति रावणने ली ॥ २२ ॥ दुरात्मा बली रावणके द्वारा वह वेगपूर्वक चलायी गयी, प्रदीप्त वज्रके समान प्रभावाली तेजस्विनी वह

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् । प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥२४॥
तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः । रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥२५॥
कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना । स प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥२६॥
मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः । लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥२७॥
मोक्षितस्ते बलश्लाघिन्यस्मादेवं विभीषणः । विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते॥२८॥
एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा । मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥२९॥
इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् । मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥३०॥
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा । रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥३१॥
सा क्षिप्ता भीमवेगेन वज्राशनिसमस्वना । शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥३२॥
तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः । स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥३३॥
रावणेन रणे शक्तिः क्रुद्धेनाशीविषोपमा । मुक्ता शूरस्य भीतस्य लक्ष्मणस्य ममज्ज सा ॥३४॥
न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि । जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥३५॥
ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया । शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥३६॥
तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः । भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥३७॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः । बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः ॥३८॥

शक्ति प्रज्वलित हुई ॥ २३ ॥ विभीषणके प्राण संकटमें हैं—यह देखकर वीर लक्ष्मणने उनको छिपा लिया ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणने विभीषणको मुक्ति दिलानेके लिए धनुष नवाकर शक्तिहस्त रावणको बाणोंकी वृष्टिसे ढँक दिया ॥ २५ ॥ महात्मा लक्ष्मणके चलाये बाणोंसे जब रावण दब गया, तब उसने लक्ष्मणपर प्रहार करनेकी इच्छा की, क्योंकि उसका पराक्रम विफल हो गया था ॥ २६ ॥ भाईको लक्ष्मणने मुक्त कर दिया, यह देखकर रावण लक्ष्मणकी ओर मुँह करके बोला ॥२७॥ प्रशंसनीय बलवाले लक्ष्मण, तुमने विभीषणको छुड़ा दिया, इस कारण यह शक्ति राक्षसको छोड़कर तुमपर छोड़ी जायगी ॥२८॥ शत्रुओंका रुधिर पीनेवाली यह मेरे हाथसे छोड़ी गयी शक्ति तुम्हारा हृदय तोड़कर और प्राण लेकर जायगी ॥ २९ ॥ आठ घंटावाली अतएव बड़ी शब्द करनेवाली, मायाके द्वारा मयराक्षसकी बनायी हुई शत्रुघातिनी अमोघ वह शक्ति रावणने क्रोधकरके लक्ष्मणपर चलायी और गर्जन किया, वह शक्ति अपने तेजसे प्रज्वलित हो रही थी ॥ ३०, ३१ ॥ बड़े वेगसे चलायी गयी, वज्रके समान शब्द करनेवाली वह शक्ति लक्ष्मणपर गिरी ॥ ३२ ॥ आती हुई उस शक्तिको लक्ष्य करके रामचन्द्रने कहा—लक्ष्मणका कल्याण हो, तुम्हारा शक्ति-उद्योग व्यर्थ हो, तुम निष्फल होओ ॥ ३३ ॥ युद्धमें क्रुद्ध रावणके द्वारा चलायी गयी सर्पके समान प्राणहारिणी शक्ति निर्भय लक्ष्मणकी छातीमें शीघ्रही घुस गयी ॥ ३४ ॥ वेगवती वह शक्ति लक्ष्मणकी छातीपर गिरी, बड़े प्रकाशवाली चमकीली सर्पराजकी जीभके समान वह मालूम होती थी ॥३५॥ रावणके बलसे वह शक्ति लक्ष्मणके हृदयमें अधिक घुस गयी, उससे उनका हृदय फट गया और वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥ पासही खड़े हुए रामचन्द्र लक्ष्मणकी वह अवस्था देखकर भ्रातृप्रेमके कारण बहुत दुःखी हुए ॥ ३७ ॥ थोड़ी देरतक आँखोंमें आँसू भरकर उन्होंने सोचा और वे प्रलयकालकी अग्निके समान युद्धमें

न विषादस्य कालोऽयमिति संचिन्त्य राघवः । चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः ॥
सर्वयत्नेन महता लक्ष्मणं परिवीक्ष्य च ॥३९॥
स ददर्श ततो रामः शक्त्या भिन्नं महाहवे । लक्ष्मणं रुधिरादिग्धं सपन्नगमिवाचलम् ॥४०॥
तामपि प्रहितां शक्तिं रावणेन बलीयसा । यत्नतस्ते हरिश्रेष्ठा न शेकुरवमर्दितुम् ॥४१॥
अर्दिताश्चैव बाणौघैस्ते प्रवेकेण रक्षसाम् । सौमित्रेः सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ॥४२॥
तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् । बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान्विचकर्ष च ॥४३॥
तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा । शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥४४॥
अचिन्तयित्वा तान्बाणान्समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् । अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम् ॥४५॥
लक्ष्मणं परिवार्यैवं तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः । पराक्रमस्य कालोऽयं संप्राप्तो मे चिरेप्सितः ॥४६॥
पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः । काङ्क्षितं चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥४७॥
अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात्सत्यं प्रतिशृणोमि वः । अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ॥४८॥
राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम् । वैदेह्याश्च परामर्शो रक्षोभिश्च समागमम् ॥४९॥
प्राप्तं दुःखं महाघोरं क्लेशश्च निरयोपमः । अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये निहत्वा रावणं रणे ॥५०॥
यदर्थं वानरं सैन्यं समानीतमिदं मया । सुग्रीवश्च कृतो राज्ये निहत्वा वालिनं रणे ॥
यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे ॥५१॥

अधिक उत्साहवान् हुए ॥३८॥ रामचन्द्रने निश्चय किया कि यह दुःख करनेका समय नहीं है, ऐसा निश्चय करके रावणके वधके लिए सावधान होकर उन्होंने बड़े प्रयत्नसे लक्ष्मणको देखकर युद्ध किया ॥ ३९ ॥ रामचन्द्रने उस युद्धक्षेत्रमें शक्तिसे विधे लक्ष्मणको देखा, वे रुधिरसे भीग गये थे, वे सर्पसहित पर्वतके समान मालूम पड़ते थे ॥ ४० ॥ बलवान् रावणके द्वारा प्रेरित उस शक्तिको प्रयत्न करनेपर भी वानर लक्ष्मणके शरीरसे नहीं निकाल सके, क्योंकि वे राक्षसोंके स्वामीके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए थे। वह शक्ति लक्ष्मणको भेदकर पृथिवीमें घुस गयी थी ॥ ४१, ४२ ॥ बली रामचन्द्रने हाथसे पकड़कर उस शक्तिको निकाला और क्रोध करके उसे तोड डाला । (वह शक्ति शत्रुको मारकर रावणके पास चली जाती थी, इसीसे रामचन्द्रने उसे तोड़कर नष्ट कर दिया) ॥ ४३ ॥ रामचन्द्र लक्ष्मणके शरीरसे शक्ति खींच रहे थे, उस समय बलवान रावणने रामचन्द्रके समस्त शरीरपर मर्मभेदी बाण मारे ॥ ४४ ॥ उन बाणोंकी ओर ध्यान न देकर और लक्ष्मणका आलिङ्गन करके रामचन्द्र हनुमान और सुग्रीवसे बोले ॥ ४५ ॥ आपलोग लक्ष्मणको घेरकर खड़े रहें, यह पराक्रम दिखानेका समय है, जिसे मैं बहुत दिनोंसे चाहता था वह आज मिला है ॥ ४६ ॥ पापी इस राक्षसको मारना मैं चाहता था, आज यह मिला है जिस प्रकार ग्रीष्म-ऋतुके बाद चातक मेघको देखना चाहता है ॥ ४७ ॥ वानरो, तुमलोगोंके सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुमलोग शीघ्रही रावणहीन या रामहीन संसार देखोगे ॥ ४८ ॥ राज्यनाश, वनवास, दण्डकवनका भ्रमण, सीताका पराजय यह मैंने राक्षसोंसे पाया ॥ ४९ ॥ मैंने बड़ा कठोर मानसिक दुःख पाया और नरकतुल्य शारीरिक कष्ट पाया । आज युद्धमें रावणको मारकर इन सब दुखोंका नाश करूँगा ॥५०॥ जिसके लिए मैं वानरी सेना

सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः। चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति ॥५२॥
दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः। यथा वा वैनतेयस्य दृष्टिं प्राप्तो भुजंगमः ॥५३॥
सुखं पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुंगवाः। आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ॥५४॥
अद्य पश्यन्तु रामस्य रामत्वं मम संयुगे। त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥५५॥
अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः। सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥५६॥
एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः। आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥५७॥
तथा प्रविद्धैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः। अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥५८॥
रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम्। शराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥५९॥
विच्छिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः। अन्तरिक्षात्प्रदीप्ताग्रा निपेतुर्धरणीतले ॥६०॥
तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान्। त्रासनः सर्वभूतानां बभूवाद्भुतदर्शनः ॥६१॥

विकीर्यमाणः शरजालवृष्टिर्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः।
भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो यथानिलेनाभिहतो बलाहकः ॥६२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥



यहाँ लाया हूँ, वालिको मारकर सुग्रीवको राज्यपर बैठाया है, जिसके लिए समुद्र पार किया है और समुद्रमें सेतु बाँधा है, आज युद्धक्षेत्रमें वह पापी मेरी आँखोंके सामने आया है। मेरे सामने आकर यह अब जी नहीं सकता ॥५१, ५२॥ दृष्टिविष (जिसकी आँखोंमें ही विष हो) सर्पके समान आया मनुष्य जिसप्रकार जीवित नहीं बचता, जिसप्रकार सर्पके सामने सर्प जीवित नहीं बचता, उसी प्रकार रावण नहीं बचेगा ॥ ५३ ॥ पराजित होनेके अयोग्य वानरश्रेष्ठ पर्वतशिखरोंपर बैठकर मेरा और रावणका यह युद्ध सुखपूर्वक देखें ॥ ५४ ॥ आज युद्धमें तीनों लोक, गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि रामका रामत्व देखें ॥५५॥ आज मैं वह काम करूँगा जिसको चर अचर सभी प्राणी और देवता लोग जबतक पृथिवी रहेगी तबतक एकत्र होकर जिसप्रकार यह युद्ध हुआ है वह सब कहेंगे ॥ ५६ ॥ ऐसा कहकर और सावधान होकर रामचन्द्रने सुवर्णभूषित तीखे बाणोंसे रावणको मारा ॥ ५७ ॥ उस समय रावणने रामचन्द्रपर नाराच और मूसलोंकी वर्षा की, जिस प्रकार मेघ जलकी वृष्टि करता है ॥५८॥ राम और रावणके छोड़े उत्तम बाण परस्पर टकराकर नष्ट हो जाते थे और उनका बड़ा भयंकर शब्द होता था ॥ ५९ ॥ राम और रावणके बाण टूटकर तथा बिखरकर आकाशसे पृथिवीपर गिरे, उनका अग्रभाग जलता हुआ था ॥ ६० ॥ राम और रावणके धनुषके टंकारसे सब प्राणी भयभीत हो गये और वह अद्भुत था ॥६१॥ दीप्तधनुर्धारी महात्मा रामचन्द्रने बाणोंकी वृष्टि की। उससे पीड़ित होकर रावण भयसे भाग गया, जिसप्रकार वायुसे आहत होकर मेघ भाग जाते हैं ॥६२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका सौवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः १०१

शक्त्या निपातितं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा। लक्ष्मणं समरे शूरं शोणितौघपरिप्लुतम् ॥१॥
स दत्त्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दुरात्मनः। विसृजन्नेव बाणौघान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥२॥
एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितो भुवि। सर्पवच्चेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन् ॥३॥
शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम। पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥४॥
अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः। यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा ॥५॥
लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः। सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥६॥
अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव। चिन्ता मे वर्तते तीव्रा मुमूर्षा चोपजायते ॥७॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना। विष्टनन्तं तु दुःखार्तं मर्मण्यभिहतं भृशम् ॥८॥
परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः। भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु ॥९॥
विजयोऽपि हि मे शूर न प्रियायोपकल्पते। अचक्षुर्विषयश्चन्द्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति ॥१०॥
किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते। यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ॥११॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः। अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥१२॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः। इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥१३॥
देशेदेशे कलत्राणि देशेदेशे च बान्धवाः। तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥१४॥

बलवान रावणने शक्तिप्रहारके द्वारा शूर लक्ष्मणको युद्धमें गिरा दिया और वे रुधिरसे भींग गये हैं, यह देखकर रामचन्द्र दुरात्मा रावणसे भयङ्कर युद्ध करते हुए उसपर बाण छोड़तेहुएही सुषेणसे इस प्रकार बोले, ॥ १, २ ॥ ये लक्ष्मण रावणके बलसे पृथिवीपर गिरे हुए हैं, ये सर्पके समान रेंग रहे हैं, और मेरा शोक बढ़ा रहे हैं ॥ ३ ॥ मेरे प्राणोंसे भी प्रिय इस वीरको रुधिरसे भींगा देखकर मेरा मन व्याकुल हो गया है, क्या युद्ध करनेकी मुझमें शक्ति है ॥ ४ ॥ यह शुभलक्षण मेरा भाई युद्धसे बड़ा प्रेम करता है, यह यदि आज मर गया तो मेरे प्राण रहनेसे क्या लाभ और सुखसे क्या लाभ ? ॥ ५ ॥ मेरा बल लज्जित हो रहा है, हाथसे धनुष छूट रहा है, मेरे बाण फटसे रहे हैं, और आँखें आँसूसे भर रही हैं ॥ ६ ॥ दुःस्वप्न देखनेवाले मनुष्यके शरीरके समान मेरा शरीर अवश हो गया है, मुझे तीव्र चिन्ता उत्पन्न हुई है, और मरनेकी इच्छा हो रही है ॥ ७ ॥ दुरात्मा रावणके द्वारा भाईका वध देखकर, मर्मस्थानके आघातकी पीड़ाके समान उनका दुःख देखकर तथा उनके मुँहसे निकले हुए विकृत शब्द सुनकर, ॥ ८ ॥ युद्धक्षेत्रकी धूलिमें भाईको गिरा देखकर रामचन्द्रको बड़ा विषाद हुआ, वे व्याकुल होकर विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ वीर ! विजय भी अब मेरे प्रियका कारण नहीं हो सकता, आँखकी ओटका चन्द्रमा किस प्रकार प्रसन्नता दे सकता है ॥ १० ॥ मुझे युद्धसे क्या करना है, प्राणोंसे भी क्या लाभ, अब युद्धका कोई काम नहीं है, क्योंकि युद्धक्षेत्रमें तो लक्ष्मण निहत होकर सो रहे हैं ॥ ११ ॥ जिसप्रकार वनमें आते समय लक्ष्मणने मेरा अनुगमन किया था, उसी प्रकार परलोक जाते हुए लक्ष्मणका मैं अनुगमन करूँगा ॥ १२ ॥ ये लक्ष्मण मेरे प्रिय बन्धु थे, सदा मेरे अनुगामी थे, छलसे युद्धकरनेवाले राक्षसोंने उनकी यह अवस्था की है ॥१३॥

किं नु राज्येन दुर्धर्ष लक्ष्मणेन विना मम । कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम् ॥१५॥
उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं दत्तं सुमित्रया । किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम्॥१६॥
भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम् । सह तेन वनं यातो विना तेनागतः कथम् ॥१७॥
इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम् । किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि ॥१८॥
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः । हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो ॥१९॥
एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि । विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे ॥२०॥
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा । शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च ॥२१॥
विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम । राममेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम् ॥२२॥
आश्वासयन्नुवाचेदं सुषेणः परमं वचः । त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम् ॥२३॥
शोकसंजननीं चिन्तां तुल्यां बाणैश्चमूमुखे । नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥२४॥
नह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम् । सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम् ॥२५॥
पद्मपत्रतलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने । नेदृशं दृश्यते रूपं गतासूनां विशांपते ॥२६॥
विषादं मा कृथा वीर सप्राणोऽयमरिंदम । आख्याति तु प्रसुप्तस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले ॥२७॥
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः । एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः ॥२८॥

प्रत्येक देशमें स्त्रियाँ मिल सकती हैं, प्रत्येक देशमें बन्धु मिल सकते हैं, पर वैसे देशको मैं नहीं जानता जहाँ सहोदर भाई मिलता हो ॥ १४ ॥ लक्ष्मणके विना राज्य मेरे किस कामका, पुत्रवत्सला माता सुमित्रासे मैं कैसे बातें करूँगा ? ॥ १५ ॥ पुत्रनाशके कारण सुमित्रा मेरी निन्दा करेगी, मैं उसे कैसे सह सकूँगा ? माता कौशल्या और माता केकयीको मैं क्या कहूँगा ? ॥ १६ ॥ भरत और महावली शत्रुघ्नसे मैं क्या कहूँगा, जब वे पूछेंगे कि लक्ष्मणके साथ तुम वन गये थे, उसके विना कैसे लौट आये ? ॥ १७ ॥ यहीं मर जाना अच्छा है, पर भाईकी निन्दा सुनना अच्छा नहीं, न मालूम पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा बड़ा पाप किया था, ॥ १८ ॥ जिससे मेरा धर्मात्मा भाई मेरे सामने ही मारा गया । हा, मनुजश्रेष्ठ, हा, शूरश्रेष्ठ, हा, भाई, ॥ १९ ॥ मुझे अकेला छोड़कर तुम परलोक जा रहे हो, भाई, मैं तुम्हारे लिए विलाप कर रहा हूँ और तुम मुझसे बोलते नहीं, यह क्यों ? ॥ २० ॥ उठो, क्यों सो रहे हो, एकबार दुःखी मुझको देखो । पर्वतों और वनोंमें जब मैं शोकसे पीड़ित होकर उन्मत्त हो जाता था, जब मैं विषादयुक्त होता था, उस समय, महावाहो ! तुमहीं मुझे धीरज बँधाते थे, शोकसे व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करनेवाले रामचन्द्रको आश्वासन देते हुए सुषेणने यह सत्य वचन कहे—नरश्रेष्ठ ! दुःख देनेवाली इस समझको छोड़ दो, यह शोक उत्पन्न करनेवाली चिन्ता वाणोंके समान हैं, इसे छोड़ दो, लक्ष्मिवर्धन लक्ष्मण मरे नहीं हैं ॥ २१--२४ ॥ इनका मुँह विकृत नहीं हुआ है और न वह काला हुआ है । देखिए, इनका मुँह चमक रहा है और वह प्रसन्न है ॥ २५ ॥ इनकी दोनों हथेलियाँ कमलपत्रके समान लाल हैं, आँखें साफ हैं, राजन् ! मृतकोंका ऐसा रूप नहीं देखा जाता ॥ २६ ॥ अरिन्दम वीर, आप विषाद न करें, ये जीवित हैं, ये पृथिवीपर सो रहे हैं, इनके अङ्ग शिथिल हो रहे हैं, इनका हृदय काँप रहा है, जो इनका जीवित होना बतला रहा है । महाबुद्धिमान सुषेण रामचन्द्रसे ऐसा कहकर वे पास खड़े महाकपि हनुमानसे

समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम् । सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ॥२९॥
पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता तव । दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय ॥३०॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा । संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम् ॥३१॥
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय । इत्येवमुक्तो हनुमान्गत्वा चौषधिपर्वतम् ॥
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्ता महौषधीः ॥३२॥
तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः । इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥३३॥
अस्मिंस्तु शिखरे जातामोषधीं तां सुखावहाम् । प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणो ह्येवमब्रवीत् ॥३४॥
अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् । कालात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥३५॥
इति संचिन्त्य हनुमान्गत्वा क्षिप्रं महाबलः । आसाद्य पर्वतश्रेष्ठं त्रिः प्रकम्प्य गिरेस्ततम् ॥३६॥
फुल्लनानातरुगणं समुत्पाट्य महाबलः । गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥३७॥
स नीलमिव जीमूतं तोयपूर्णं नभस्तलात् । उत्पपात गृहीत्वा तु हनूमाञ्शिखरं गिरेः ॥३८॥
समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः । विश्रम्य किंचिद्धनुमान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥३९॥
औषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव । तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥४०॥
एवं कथयमानं तु प्रशस्य पवनात्मजम् । सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीः ॥४१॥
विस्मितास्तु बभूवुस्ते सर्वे वानरपुंगवाः । दृष्ट्वा तु हनुमत्कर्म सुरैरपि सुदुष्करम् ॥४२॥

बोले—भाई, यहाँसे शीघ्रही महोदय पर्वतपर जाकर उसके दक्षिण शिखरपर उत्पन्न महौषधि यहाँ ले आओ, उस महौषधिके विषयमें जाम्ववान्ने तुमसे पहले कहा है ॥ २७—३० ॥ विशल्यकरणी (घाव भरनेवाली और दर्द दूर करनेवाली), सावर्ण्यकरणी (पहलेके समान शरीरका वर्ण करनेवाली), संजीवकरणी (मूर्च्छा हटानेवाली), सन्धानी (टूटे अङ्गोंको जोड़नेवाली) इन ओषधियोंको लक्ष्मणको जिलानेके लिए तुम ले आओ। सुषेणके ऐसा कहनेपर हनुमान ओषधियोंके पर्वतपर गये, पर उन ओषधियोंके न जाननेके कारण वे चिन्तित हुए ॥ ३१, ३२ ॥ उस समय अमितपराक्रमी हनुमानके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, पर्वतके इस शिखरकोही लेकर मैं जाऊँगा ॥ ३३ ॥ पर्वतके इसी शिखरपर वह सुखदायिनी ओषधि है, यह मैं अपने तर्कसे समझता हूँ, क्योंकि सुषेणने इसीके लिए कहा था ॥ ३४ ॥ विशल्यकरिणी ओषधिको बिना लिए मैं चला जाऊँगा, या दूसरी ओषधि लेकर जाऊँगा, तो विलम्ब होनेके कारण अनर्थ हो जायगा और इससे बहुत बड़ी गड़बड़ी हो जायगी ॥ ३५ ॥ ऐसा विचार करके महाबली हनुमान शीघ्रही पर्वतशिखरके पास गये और उस पर्वतशिखरको उन्होंने तीन बार कँपाया ॥ ३६ ॥ जिस शिखरपर अनेक वृक्ष फूले हुए थे, उसको उखाड़कर वानरश्रेष्ठने हाथोंसे उठाया ॥ ३७ ॥ जलपूर्ण नीले मेघके समान उस शिखरको उखाड़कर हनुमान आकाशमार्गसे उड़े ॥ ३८ ॥ वेगवान् हनुमान, लंकामें पहुँचकर, सुषेणके पास उस पर्वतशिखरको रखकर तथा थोड़ी देर विश्राम करके, सुषेणसे इस प्रकार बोले ॥ ३९ ॥ वानरश्रेष्ठ, उस ओषधिको मैं नहीं पहचानता, इसलिए पर्वतके समूचे शिखरकोही मैं ले आया हूँ ॥ ४० ॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर सुषेणने उनकी प्रशंसा की और उन्होंने ओषधियाँ उखाड़कर लीं ॥ ४१ ॥ देवताओंके लिए भी दुष्कर हनुमानका वह काम देखकर सभी वानर

ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः । लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः ॥४३॥
सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा । विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥४४॥
समुत्थितं तु हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् । साधुसाध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन् ॥४५॥
एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा । सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥४६॥
अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा । दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ॥४७
नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा । को हि मे जीवितेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥४८॥
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महात्मनः । खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रमः । लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥५०॥
नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः । लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥५१॥
नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ । वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥५२॥
न जीवन्यास्यते शत्रुस्तव बाणवशं गतः । नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः ॥५३॥
अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः । यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥५४॥

यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये यदि च कृतां हि तवेच्छसि प्रतिज्ञाम् ।
यदि तव राजसुताभिलाष आर्य कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥५५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

विस्मित हुए ॥ ४२ ॥ वानरश्रेष्ठ महाद्युति सुषेणने पीसकर वह ओषधि लक्ष्मणकी नाकमें दी ॥ ४३ ॥ बाणसे पीड़ित शत्रुहन्ता लक्ष्मण उस ओषधिको सूँघकर, बाणपीड़ा-रहित हो गये, नीरोग हो गये और शीघ्रही पृथिवीसे उठकर खड़े हो गये ॥ ४४ ॥ लक्ष्मण पृथिवीसे उठकर खड़े हुए—यह देखकर प्रसन्न होकर वानर साधु साधु कहने लगे और उनलोगोंने लक्ष्मणका अभिनन्दन किया, उनके उठ खड़े होनेपर प्रसन्नता प्रकट की ॥४५॥ रामचन्द्रने कहा—आओ, आओ । शत्रुहन्ता रामचन्द्रने लक्ष्मणका गाढ़ आलिङ्गन किया, उस समय उनकी आँखें आँसूसे भींग गयी थीं ॥४६॥ आलिङ्गन करके रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—वीर प्रसन्नताकी बात है, कि मरकर लौटे हुए तुमको मैं पुनः देख रहा हूँ ॥ ४७ ॥ मुझे जीनेसे कोई मतलब नहीं, सीतासे और विजयसे कोई मतलब नहीं, तुम्हारे मर जानेपर मेरे जीनेसे क्या लाभ ? ॥४८॥ महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर थके हुए लक्ष्मण धीरे-धीरे इस प्रकार बोले ॥४९॥ सत्यपराक्रम ! पहले वैसी प्रतिज्ञा करके अब दुर्बल छोटे आदमीके समान आपको ऐसा नहीं बोलना चाहिये ॥५०॥ सत्यवादी अपनी प्रतिज्ञाको व्यर्थ नहीं करते, प्रतिज्ञाका पालन करना महत्त्वका लक्षण है ॥५१॥ निष्पाप, मेरे कारणसे आपको निराश नहीं होना चाहिए, रावणको मारकर आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए ॥ ५२ ॥ आपके बाणके पंजेमें आया हुआ शत्रु जीता नहीं बच सकता, जिस प्रकार गर्जनेवाले तीक्ष्णदन्तसिंहके पंजेमें आया हाथी नहीं बचता ॥५३॥ मैं इस दुरात्माका वध शीघ्र चाहता हूँ, जबतक सूर्य भ्रमण करके अस्ताचलपर नहीं जाते, तभी तक मैं इसका वध चाहता हूँ ॥५४॥ यदि आप युद्धमें रावणका वध चाहते हैं, यदि आप अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं, यदि आप राजसुता सीताको पाना चाहते हैं, तो आप शीघ्र मेरे कहे अनुसार कीजिए ॥५५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौएक सर्ग समाप्त ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः १०२

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः । संदधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १ ॥
रावणाय शरान्घोरान्विससर्ज चमूमुखे । अथान्यं रथमास्थाय रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥
अभ्यधावत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् । दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥
आजघान महाशैलं धाराभिरिव तोयदः ॥ ३ ॥
दीप्तपावकसंकाशैः शरैः काञ्चनभूषणैः । अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४ ॥
भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः । न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वकिंनराः ॥ ५ ॥
ततो देववरः श्रीमाञ्श्रुत्वा तेषां वचोऽमृतम् । आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम् । आहूय भूतलं यातः कुरु देवहितं महत् ॥ ७ ॥
इत्युक्तो देवराजेन मातलिर्देवसारथिः । प्रणम्य शिरसा देवं ततो वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
शीघ्रं यास्यामि देवेन्द्र सारथ्यं च करोम्यहम् । ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गः किङ्किणीशतभूषितः ॥ ९ ॥
तरुणादित्यसंकाशो वैदूर्यमयकूबरः । सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः ॥१०॥
हरिभिः सूर्यसंकाशैर्हेमजालविभूषितैः । रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान्देवराजरथो वरः ॥११॥
देवराजेन संदिष्टो रथमारुह्य मातलिः । अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात् ॥१२॥
अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः । प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः ॥१३॥

लक्ष्मणके ये वचन सुनकर शत्रुसैनिकोंको मारनेवाले वीर रामचन्द्रने धनुष लेकर चाढ़या ॥ १ ॥ युद्धक्षेत्रमें भयंकर बाण उन्होंने रावणपर चलाये । रावण दूसरे रथपर बैठकर रामचन्द्रपर दौड़ा, जैसे राहु सूर्यपर दौड़ता है । रथपर बैठा हुआ रावण वज्रतुल्य बाणोंसे रामचन्द्रको मारने लगा, मानो मेघ धारासे पर्वतको मार रहा हो ॥ २,३ ॥ सोना मढ़े और प्रज्वलित अग्निके समान बाणोंसे रामचन्द्रने सावधान होकर रावणपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥ देवता, गन्धर्व और किन्नर कहने लगे कि रामचन्द्र भूमिपर हैं और रावण रथपर, यह युद्ध बराबरका युद्ध नहीं है ॥५॥ उनलोगोंका अमृततुल्य यह वचन सुनकर देवराज इन्द्रने मातलिको बुलाकर उन्हे यह आज्ञा दी ॥ ६ ॥ पृथिवीपर खड़े रामचन्द्रके पास मेरे रथसे तुम शीघ्र जाओ। भूतलपर पहुँचकर रामचन्द्रको बुलाकर तुम कहो कि आप देवताओंका कल्याण करें अर्थात् इस रथपर बैठकर रावणको मारें ॥ ७ ॥ इन्द्रके ऐसा कहनेपर इन्द्रसारथि मातलि इन्द्रको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके बोला ॥ ८ ॥ देवेन्द्र ! हरे घोड़ोंको उत्तम रथमें जोत कर मैं शीघ्र जाऊँगा और सारथिका काम करूँगा। इन्द्रके उस रथमें सुवर्णके चित्र बने हुए थे, छोटी-छोटी घंटियाँ लगीहुई थीं ॥ ९ ॥ वह रथ तरुण सूर्यके समान प्रकाशमान था, वैदूर्यका युगन्धर (जुआ रखनेकी लकड़ी) था। सुवर्णके अलंकारवाले उत्तम घोड़े उसमें जुते थे और श्वेत चामर लगे थे ॥ १० ॥ घोड़े हरे रंगके थे, सूर्यके समान प्रकाशमान थे, सुवर्ण-जालसे विभूषित थे, सुवर्णदण्डमें ध्वजा लगी थी, ऐसा वह इन्द्रका उत्तम रथ था ॥ १०, ११ ॥ देवराजकी आज्ञा पाकर मातलि रथपर बैठा और स्वर्गसे उतरकर रामचन्द्रके पास पहुँचा ॥ १२ ॥ मातलि कोड़ा लेकर

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते । दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्शत्रुनिवर्हण ॥१४॥
इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसंनिभम् । शराश्चादित्यसंकाशाः शक्तिश्च विमला शिवा ॥१५॥
आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम् । मया सारथिना देव महेन्द्र इव दानवान् ॥१६॥
इत्युक्तः संपरिक्रम्य रथं तमभिवाद्य च । आरुरोह तदा रामो लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन् ॥१७॥
तद्बभौ चाद्भुतं युद्धं द्वैरथं रोमहर्षणम् । रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः ॥१८॥
स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥१९॥
अस्त्रं तु परमं घोरं राक्षसं राक्षसाधिपः । ससर्ज परमक्रुद्धः पुनरेव निशाचरः ॥२०॥
ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः । अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥२१॥
ते दीप्तवदना दीप्तं वमन्तो ज्वलनं मुखैः । राममेवाभ्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानकाः ॥२२॥
तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः । दिशश्च संतताः सर्वा विदिशश्च समावृताः ॥२३॥
तान्दृष्ट्वा पन्नगान्रामः समापतत आहवे । अस्त्रं गारुत्मतं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम् ॥२४॥
ते राघवधनुर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिखिप्रभाः । सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ॥२५॥
ते तान्सर्वाञ्शराञ्जघ्नुः सर्परूपान्महाजवान् । सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ॥२६॥
अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः । अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥२७॥
ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम् । अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥२८॥

रथपर बैठा था। इन्द्रका सारथि हाथ जोड़कर रामसे बोला, ॥ १३ ॥ महासत्त्व, शत्रुनाशक काकुत्स्थ, यह रथ विजय करनेके लिए इन्द्रने आपके पास भेजा है ॥ १४ ॥ यह इन्द्रका बड़ा धनुष है, यह अग्नितुल्य कवच है, सूर्यके समान ये बाण हैं और कल्याणमयी यह उज्ज्वल शक्ति है ॥ १५ ॥ वीर इस रथका मैं सारथि रहूँगा, इस रथपर बैठकर आप राक्षस रावणको मारें, जिसप्रकार इन्द्र दानवोंको मारते हैं ॥ १६ ॥ मातलिके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रने उस रथकी परिक्रमा की और उसे प्रणाम किया. पुनः वे लोकोंको विजयलक्ष्मीसे प्रकाशित करते हुए उस रथपर बैठे ॥ १७ ॥ दो रथवालोंका वह अद्भुत युद्ध बड़ा रोमहर्षण हुआ, महाबाहु रामका और राक्षसका ॥१८॥ अस्त्रवेत्ता रामचन्द्रने रावणके गान्धर्व अस्त्रको गान्धर्वसे और दैव अस्त्रको दैव अस्त्रसे काट दिया ॥ १९ ॥ पुनः राक्षसराज निशाचरने क्रोध करके अत्यन्त भयानक राक्षस अस्त्र छोड़ा ॥ २० ॥ रावणके धनुषसे छूटे हुए वे सोनेसे मढ़े बाण विषैले साँप होकर रामचन्द्रके पास पहुँचे ॥ २१ ॥ वे बाणरूपी सर्प बड़े भयानक थे, वे मुँह बाये हुए थे, उनका मुखमण्डल प्रदीप्त था और वे आग उगल रहे थे, वे रामके पास पहुँचे ॥ २२ ॥ विषैले बड़े शरीरवाले तथा वासुकिके समान स्पर्शवाले उन बाणसर्पोंसे दिशाएँ व्याप्त हो गयीं और विदिशाएँ ढँक गयीं ॥ २३ ॥ उन सर्पोंको आते देखकर रामचन्द्रने भयंकर गारुड़ अस्त्रका प्रयोग किया ॥ २४ ॥ रामचन्द्रके धनुषसे निकले हुए सुवर्णपुंखवाले अग्नितुल्य वे बाण सुवर्णके सर्पशत्रु गरुड़ होकर विचरण करने लगे ॥ २५ ॥ बड़े वेगसे चलनेवाले उन सर्परूप बाणोंको रामचन्द्रके उन कामरूपी बाणोंने गरुड़ होकर नष्ट कर दिया ॥ २६ ॥ अस्त्रके नष्ट होनेपर क्रुद्ध होकर राक्षसाधिप रावण रामचन्द्रपर भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ २७ ॥ हज़ार बाणोंसे पुण्य-

चिच्छेद केतुमुद्दिश्य शरेणैकेन रावणः । पातयित्वा रथोपस्थे रथात्केतुं च काञ्चनम् ॥२९॥
ऐन्द्रानपि जघानाश्वाञ्शरजालेन रावणः । विषेदुर्देवगन्धर्वचारणा दानवैः सह ॥३०॥
राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः । व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः ॥३१॥
रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा । प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ॥३२॥
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामहितावहः । सधूमपरिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ॥३३॥
उत्पपात तदा क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् । शस्त्रवर्णः सुपरुषो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ॥३४॥
अदृश्यत कबन्धाङ्कः संसक्तो धूमकेतुना । कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्राग्निदैवतम् ॥३५॥
आहत्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखमपि चाम्बरे । दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥३६॥
अदृश्यत दशग्रीवो मैनाक इव पर्वतः । निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा ॥३७॥
नाशक्नोदभिसंधातुं सायकान्रणमूर्धनि । स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किंचित्संरक्तलोचनः ॥३८॥
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव राक्षसान् । तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ॥
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी ॥३९॥
सिंहशार्दूलवाञ्छैलः संचचाल चलद्रुमः । बभूव चापि क्षुभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥४०॥
खराश्च खरनिर्घोषा गगने परुषा घनाः । औत्पातिकाश्च नर्दन्तः समन्तात्परिचक्रमुः ॥४१॥
रामं दृष्ट्वा सुसंक्रुद्धमुत्पातांश्चैव दारुणान् । वित्रेसुः सर्वभूतानि रावणस्याभवद्भयम् ॥४२॥

कर्मा रामचन्द्रको पीड़ित करके उसने बाणसमूहसे मातलिको वेधा ॥ २८ ॥ ध्वजाको लक्ष्यकरके चलाये गये एक बाणसे उसने ध्वजा काट दी, उस सोनेकी ध्वजाको उसने रथके ऊपरसे रथमें गिरा दिया ॥ २९ ॥ इन्द्रके घोड़ोंको भी रावणने बाणोंसे मारा। इससे देवता, गन्धर्व, चारण तथा दानव दुःखी हुए॥३०॥ उस समय रामको पीड़ित देखकर सिद्ध, ऋषि, वानरसेनापति और विभीषण दुःखी हुए ॥ ३१ ॥ रामरूपी चन्द्रमाको जिससमय रावणरूपी राहु ग्रस रहा था, उससमय चन्द्रमाकी प्रियभार्या प्रजापति देवतावाले रोहिणी नक्षत्रके पास बुध पहुँच गया, इस योगसे जगत्को बहुत पीड़ा होती है। समुद्रसे धूएँके साथ लहरियाँ उठने लगीं, मानों वह जल रहा हो, वह समुद्र ऊपर उठा, मानों सूर्यको छूना चाहता हो, सूर्य काला, कठोर, मन्दरश्मि, धूमकेतुसे युक्त दीख पड़ा, उसके अंकमें कवन्ध (कटा मूँडवाला शव) था, इक्ष्वाकुवंशियोंके नक्षत्र विशाखाको; जिसके देवता इन्द्र और अग्नि हैं, आक्रमण करके मंगल स्थित हुआ। उस समय आकाशमें ये उत्पात हुए। उस समय बीस हाथ और दस मस्तकवाला रावण, जिसके हाथमें धनुष था, मैनाकपर्वतके समान मालूम पड़ा। राक्षस दशाननकी रुकावटके कारण रामचन्द्र रणक्षेत्रमें धनुषपर बाण नहीं चढ़ा सके। तब रामने क्रोधकरके भृकुटी चढ़ाई, उनकी आँखें थोड़ी लाल हो गयीं। उन्होंने बड़ा क्रोध किया, मानों समस्त राक्षसोंको जलाना चाहते हों। बुद्धिमान् रामचन्द्रके क्रोधित मुँह देखकर सब प्राणी डर गये और पृथिवी काँपने लगी ॥ ३२—३९ ॥ पर्वत काँपने लगे, जिनपर वृक्ष और बाघ सिंह थे। नदियोंके स्वामी समुद्र भी क्षुभित हुए ॥ ४० ॥ आकाशमें मेघ रूखे देख पड़ने लगे, उनका गर्जन रूखा मामूल पड़ने लगा, वे उत्पातसूचक गर्जन करते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥४१॥ क्रुद्ध रामचन्द्रको तथा भयंकर

विमानस्थास्तदा देवगन्धर्वाश्च महोरगाः । ऋषिदानवदैत्याश्च गरुत्मन्तश्च खेचराः ॥४३॥
ददृशुस्ते तदा युद्धं लोकसंवर्तसंस्थितम् । नानाप्रहरणैर्भीमैः शूरयोः संप्रयुध्यतोः ॥४४॥
ऊचुः सुरासुराः सर्वे तदा विग्रहमागताः । प्रेक्षमाणा महायुद्धं वाक्यं भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥४५॥
दशग्रीवं जयेत्याहुरसुराः समवस्थिताः । देवा राममथोचुस्ते त्वं जयेति पुनः पुनः ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद्राघवस्य च रावणः । प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन्प्रहरणं महत् ॥४७॥
वज्रसारं महानादं सर्वशत्रुनिबर्हणम् । शैलशृङ्गनिभैः कूटैश्चित्तदृष्टिभयावहम् ॥४८॥
सधूममिव तीक्ष्णाग्रं युगान्ताग्निचयोपमम् । अतिरौद्रमनासाद्यं कालेनापि दुरासदम् ॥४९॥
त्रासनं सर्वभूतानां दारणं भेदनं तथा । प्रदीप्त इव रोषेण शूलं जग्राह रावणः ॥५०॥
तच्छूलं परमक्रुद्धो जग्राह युधि वीर्यवान् । अनीकैः समरे शूरै राक्षसैः परिवारितः ॥५१॥
समुद्यम्य महाकायो ननाद युधि भैरवम् । संरक्तनयनो रोषात्स्वसैन्यमभिहर्षयन् ॥५२॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च प्रदिशस्तथा । प्राकम्पयत्तदा शब्दो राक्षसेन्द्रस्य दारुणः ॥५३॥
अतिकायस्य नादेन तेन तस्य दुरात्मनः । सर्वभूतानि वित्रेसुः सागरश्च प्रचुक्षुभे ॥५४॥
स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद्रावणो महत् । विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत् ॥५५॥

उत्पातोंको देखकर सब प्राणी भयभीत हो गये और रावणको भी भय मालूम हुआ ॥४२॥ उससमय विमानपर बैठे देवता, गन्धर्व, सर्प, ऋषि, दानव, दैत्य, गरुड़, आकाशचारी पक्षियोंने उस युद्धको देखा, जिसका दृश्य प्रलयकालके समान था । भयंकर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे वे दोनों वीर युद्ध कर रहे थे, उसको देखकर देवता और असुर दोनोंही प्रसन्नके समान परस्पर विरोधी वचन बोले, वे एक साथ उस महायुद्धको देख रहे थे ॥४३—४५॥ वहाँ स्थित असुरोंने रावणसे कहा कि जीतो और देवताओंने रामचन्द्रसे बार-बार कहा कि जीतो ॥ ४६ ॥ इसी समय क्रोधकरके दुष्टात्मा रावणने रामचन्द्रको मारनेकी इच्छासे बहुत बड़े अस्त्रका स्पर्श किया ॥ ४७ ॥ वह वज्रके समान दृढ़ था, बड़ा शब्द करनेवाला था, समस्त शत्रुओंको नष्ट करनेवाला था, पर्वतशिखरके समान उस शूल अस्त्रके अग्रभागसे चित्त और दृष्टि दोनों भयभीत हो जाते थे, धूमके समान उसका अग्रभाग तीखा था, वह प्रलयकालकी अग्निराशिके समान था, वह बड़ा कठोर था, कालसे भी परास्त होनेवाला न था, सब प्राणियोंको भयभीत, दारण और भेदन करनेवाला था। ऐसे शूलको क्रोधसे जलते हुएके समान रावणने उठाया ॥ ४८—५० ॥ युद्धक्षेत्रमें अत्यन्त क्रोध करके बली रावणने उस शूलको लिया, उस समय रावण वीर राक्षसी सेनासे घिरा हुआ था ॥ ५१ ॥ विशाल-शरीर रावणने उस शूलको उठाकर भयंकर गर्जन किया, जिससे उसके सैनिक प्रसन्न हुए । उस समय रावण-की आँखे क्रोधसे लाल हो गयी थीं ॥ ५२ ॥ रावणके उस भयंकर शब्दने पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशाओं और विदिशाओंको कँपा दिया ॥ ५३ ॥ विशालशरीर उस दुरात्मा रावणके शब्दसे सब प्राणी डर गये और समुद्र क्षुभित हुआ ॥ ५४ ॥ महाबली रावण उस बड़े शूलको लेकर और जोरका गर्जन करके रामचन्द्रसे कठोर वचन बोला ॥ ५५ ॥ राम, यह शूल वज्रके समान कठोर है, क्रोध करके मैंने तुम्हारे लिए उठाया है,

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः । तव भ्रातृसहायस्य सम्यक्प्राणान्हरिष्यति ॥५६॥
रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे । त्वां निहत्य रणश्लाघी करोमि तरसा समम् ॥५७॥
तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव । एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः ॥५८॥
तद्रावणकरान्मुक्तं विद्युन्मालासमावृतम् । अष्टघण्टं महानादं वियद्गतमशोभत ॥५९॥
तच्छूलं राघवो दृष्ट्वा ज्वलन्तं घोरदर्शनम् । ससर्ज विशिखान्रामश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥६०॥
आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः । उत्पतन्तं युगान्ताग्निं जलौघैरिव वासवः ॥६१॥
निर्ददाह स तान्बाणान्रामकार्मुकनिःसृतान् । रावणस्य महाञ्शूलः पतङ्गानिव पावकः ॥६२॥
तान्दृष्ट्वा भस्मसाद्भूताञ्शूलसंस्पर्शचूर्णितान् । सायकानन्तरिक्षस्थान्राघवः क्रोधमूर्च्छितः ॥६३॥
स तां मातलिना नीतां शक्तिं वासवसंमताम् । जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः ॥६४॥
सा तोलिता बलवता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना । नभः प्रज्वालयामास युगान्तोल्केव सप्रभा ॥६५॥
सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्छूले पपात ह । भिन्नः शक्त्या महाञ्शूलो निपपात गतद्युतिः ॥६६॥
निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान् । रामः क्ष्णिशितैर्महावेगैर्बाणवद्भिरजिह्मगैः ॥६७॥
निर्बिभेदोरसि तदा रावणं निशितैः शरैः । राघवः परमायत्तो ललाटे पत्रिभिस्त्रिभिः ॥६८॥
स शरैर्भिन्नसर्वाङ्गो गात्रप्रस्रुतशोणितः । राक्षसेन्द्रसमूहस्थः फुल्लाशोक इवाबभौ ॥६९॥

यह तुम्हारे और तुम्हारे भाईके प्राण अच्छीतरह हरण करेगा ॥ ५६ ॥ इस रणक्षेत्रमें तुमने अनेक वीर राक्षसोंको मारा है, रणको पसन्द करनेवाला मैं आज तुमको मारकर बराबर करूँगा, अर्थात् उसका बदला लूँगा ॥ ५७ ॥ राघव, ठहरो, अभी तुमको इस शूलसे मारता हूँ—ऐसा कहकर राक्षसराजने रामचन्द्रपर शूल फेंका ॥ ५८ ॥ वह शूल रावणके हाथसे छूटकर आकाशमें जाकर शोभित होने लगा, उसके चारों ओर बिजलीकी मालाएँ शोभित थीं, उसमें आठ घंटे लगे थे और उसका शब्द बड़ा भारी था ॥ ५९ ॥ उस जलते हुए भयंकर शूलको देखकर बली रामचन्द्रने धनुष नवाकर बाण छोड़े ॥ ६० ॥ आते हुए उस शूलको रामचन्द्रने बाणोंसे रोका, जिस प्रकार उठती हुई प्रलयाग्निको वृष्टिके धारा से इन्द्र रोकते हैं ॥ ६१ ॥ रावणके उस महाशूलने रामचन्द्रके धनुषसे निकले बाणोंको जला दिया, जिसप्रकार आग पतंगोंको जला देती है ॥ ६२ ॥ वे आकाशमें गये रामचन्द्रके बाण शूलसे टकराकर चूर हो गये, जल गये, यह देखकर रामचन्द्रको बड़ा क्रोध आया ॥ ६३ ॥ तब बड़े क्रोधसे रघुनन्दन रामचन्द्रने इन्द्रकी प्यारी और मातलिकी लायी शक्ति उठायी ॥ ६४ ॥ बलवान् रामचन्द्रने जब वह शक्ति उठायी, तब उसके घंटे बज उठे, आकाश प्रकाशित हो गया, मानों प्रलयकालकी उल्का हो ॥ ६५ रामचन्द्रके द्वारा चलायी वह शक्ति रावणके शूलपर गिरी। शक्तिसे वह शूल नष्ट हो गया, उसकी शोभा जाती रही और वह पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६६॥ अनन्तर रामचन्द्रने बड़े वेगवाले और सीधा चलनेवाले बाणोंसे रावणके वेगवान् घोड़ोंको छेदा ॥ ६७ ॥ अत्यन्त सावधान होकर रामचन्द्रने तीखे बाणोंसे रावणकी छातीमें मारा और तीन बाणोंसे उसके ललाटपर मारा ॥६८॥ बाणोंसे उसका समस्त शरीर छिद गया, खून निकलने लगा, राक्षसोंके बीचमें वह पुष्पित अशोकवृक्षके

स रामबाणैरतिविद्धगात्रो निशाचरेन्द्रः क्षतजार्द्रगात्रः ।
जगाम खेदं च समाजमध्ये क्रोधं च चक्रे सुभृशं तदानीम् ॥७०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥१०२॥

—:o:—

त्र्यधिकशततमः सर्गः १०३

स तु तेन तदा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो भृशम् । रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ १ ॥
स दीप्तनयनोऽमर्षाच्चापमुद्यम्य वीर्यवान् । अभ्यर्दयत्सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ २ ॥
बाणधारासहस्रैस्तु सतोयद इवाम्बरात् । राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ३ ॥
पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे । महागिरिरिवाकम्प्यः काकुत्स्थो न प्रकम्पते ॥ ४ ॥
स शरैः शरजालानि वारयन्समरे स्थितः । गभस्तीनिव सूर्यस्य प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥ ५ ॥
ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः । निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः । दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान्किंशुकद्रुमः ॥ ७ ॥
शराभिघातसंरब्धः सोऽभिजग्राह सायकान् । काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः ॥ ८ ॥
ततोऽन्योन्यं सुसंरब्धौ तावुभौ रामरावणौ । शरान्धकारे समरे नोपलक्षयतां तदा ॥ ९ ॥
ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः । उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥१०॥

समान मालूम पड़ता था ॥ ६९ ॥ राक्षसराजका समस्त शरीर रामचन्द्रके बाणोंसे बिध जानेके कारण रुधिरसे भीग गया । राक्षसोंके बीचमें उसने बड़ा दुःख किया और उस समय उसे बड़ा क्रोध आया ॥ ७० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ दूसरा सर्ग समाप्त ॥ १०२ ॥

—:x:—

उस समय रामचन्द्रके द्वारा अत्यन्त क्रोधसे पीड़ित रावणने बड़ा क्रोध किया, वह युद्ध करना बहुत उत्तम समझता था ॥ १ ॥ रावणकी आँखें जल रही थीं, उसने क्रोधसे धनुष उठाकर क्रोधकरके रामचन्द्रको पीड़ित किया ॥ २ ॥ मेघ जिसप्रकार आकाशसे जलधारा बरसाकर तलावोंको भर देता है, उसी प्रकार रावणने बाणवर्षासे रामचन्द्रको भर दिया ॥ ३ ॥ धनुषसे छूटे बाणोंसे रामचन्द्रका शरीर भर गया तौभी अकम्पनीय पर्वतके समान रामचन्द्र कम्पित न हुए ॥ ४ ॥ युद्धक्षेत्रमें स्थित होकर रामचन्द्रने रावणके बाणोंको अपने बाणोंसे रोका और अन्य बाणोंको उन्होंने सूर्यकी किरणोंके समान ग्रहण किया ॥ ५ ॥ अनन्तर महात्मा रामचन्द्रकी छातीमें राक्षसने क्रोधकरके हजारों बाण मारे, क्योंकि वह अत्यन्त शीघ्र बाण चलानेवाला था ॥ ६ ॥ लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्र खूनसे भींग गये, इससे वे वनमें पुष्पित विशाल किंशुकवृक्षके समान मालूम पड़ते थे ॥ ७ ॥ बाणोंके आघातसे उनको बड़ा क्रोध आया, अतएव तेजस्वी रामने प्रलयकालके सूर्यके समान प्रचण्ड बाण उठाये ॥ ८ ॥ क्रुद्ध राम और रावण दोनों बाणान्धकारयुद्धमें एक दूसरेको नहीं पहचान सकते थे ॥ ९ ॥ अनन्तर क्रोधयुक्त होकर दशरथपुत्र धीर रामचन्द्र हँसकर रावणसे

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम । हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान् ॥११॥
मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने । वैदेहीं प्रसभं हृत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे ॥१२॥
स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शनम् । कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥१३॥
भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित । दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे ॥१४॥
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च । श्लाघनीयं महत्कर्म यशस्यं च कृतं त्वया ॥१५॥
उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च । कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत्फलम् ॥१६॥
शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते । नैव लज्जास्ति ते सीतां चौरवद्व्यपकर्षतः ॥१७॥
यदि मत्संनिधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् । भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥१८॥
दिष्ट्यासि मम मन्दात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः । अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥१९॥
अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम् । क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु ॥२०॥
निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण । पिबन्तु रुधिरं तर्षाद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥२१॥
अद्य मद्बाणभिन्नस्य गतासोः पतितस्य ते । कर्षन्त्वन्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान् ॥२२॥
इत्येवं स वदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः । राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥२३॥
बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे । रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥२४॥
प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः । प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥२५॥

कठोर वचन बोले ॥१०॥ राक्षसाधम, मेरी अनुपस्थितिमें लाचार मेरी स्त्रीका तुमने जनस्थानसे हरण किया, अतएव तुम बली नहीं हो सकते ॥ ११ ॥ मुझसे विरहित दयनीय और वनमें वर्तमान सीताका तुमने बलपूर्वक हरण किया, इसलिए तुम अपनेको वीर समझ रहे हो ! ॥ १२ ॥ पतिविरहित स्त्रियोंपर शूरता दिखाते हो, परस्त्रियोंका अपमान कापुरुषके समान करते हो और यह कापुरुषोचित काम करके तुम अपनेको वीर समझते हो ! ॥ १३ ॥ मर्यादा तोड़नेवाले निर्लज्ज, दुश्चरित्र, अहंकारके कारण मृत्युका ग्रहण करके अपनेको वीर समझते हो ॥ १४ ॥ कुबेरके वीर भाईने सेनाओंके साथ यह बहुत बड़ा प्रतिष्ठाका काम किया है, क्यों ? ॥ १५ ॥ तुमने अहंकारसे ऐसा निन्दित काम किया है, यह तुम्हारे लिए अहित है, आज उसका कठोर फल तुम भोगो ॥ १६ ॥ मूर्ख, तुम अपनेको मूर्ख समझ रहे हो, पर सीताको चोरके समान लाते हुए तुम्हें लज्जा न आयी ! ॥ १७ ॥ यदि मेरे सामने तुम बलपूर्वक सीताका अपमान करते तो मेरे बाणोंसे मरकर अपने भाई खरको देखते ॥ १८ ॥ नीच ! यह प्रसन्नताकी बात है कि तुम आज मेरी आँखोंके सामने आये हो, आज तुमको मैं तीखे बाणोंसे यमराजके घर पहुँचाऊँगा ॥ १९ ॥ आज मेरे बाणोंसे कटकर चमकीले कुण्डलवाला तुम्हारा सिर युद्धक्षेत्रकी धूलमें सियार कुकुर घसीटेंगे ॥२०॥ जमीनपर पड़जानेपर गीध तुम्हारी छातीपर बैठकर बाणके छेदसे निकला रुधिर प्याससे पीएँगे ॥२१॥ आज मेरे बाणसे बिधकर तुम मर जाओगे, जमीनपर गिर पड़ोगे, और तुम्हारी आँतोंको गरुड सर्प समझकर खींचेंगे ॥२२॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले रामचन्द्रने इस प्रकारकी बातें कहकर समीपस्थ रावणपर बाण-वर्षा की ॥ २३ ॥ शत्रुका वध चाहनेवाले रामचन्द्रके वीर्य, बल, हर्ष और अस्त्रबल दूने हो गये ॥ २४ ॥ आत्मतत्त्वज्ञ रामचन्द्रके सामने सभी अस्त्रोंके

शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः। भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥२६॥
हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्। हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥२७॥
यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम्। नास्य प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥२८॥
क्षिप्ताश्चाशु शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च। मरणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालोऽभ्यवर्तत ॥२९॥
सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम्। शनैर्युद्धादसंभ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥३०॥

रथं च तस्याथ जवेन सारथिर्निवार्य भीमं जलदस्वनं तदा।
जगाम भीत्या समरान्महीपतिं निरस्तवीर्यं पतितं समीक्ष्य ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥



चतुरधिकशततमः सर्गः १०४

स तु मोहात्सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः। क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥
हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम्। भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा ॥ २ ॥
विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम्। मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे ॥ ३ ॥
किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च। त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥ ४ ॥

देवता प्रकट हुए और तेजस्वी रामचन्द्रके हाथ प्रसन्नताके कारण बड़ी शीघ्रतासे चलने लगे ॥ २५ ॥ अपने सम्बन्धमें होनेवाले इन लक्षणोंको शुभ समझकर राक्षसोंका नाश करनेवाले रामचन्द्रने रावणको पुनः पीड़ित किया ॥ २६ ॥ वानरोंके पत्थरोंसे और रामचन्द्रके बाणोंसे आहत रावणका हृदय घूम गया ॥ २७ ॥ जब रावणने बाण नहीं चलाये, जब धनुष नहीं खींचे, मन व्याकुल होनेके कारण रामचन्द्रके बलका प्रतीकार नहीं किया, रावणके छोड़े बाणों तथा विविध शस्त्रोंसे जब युद्धका कोई काम न हुआ अर्थात् जब उसके बाण व्यर्थ होने लगे, तब रथ चलानेवाला उसका सारथि रावणका मृत्युकाल समीप समझकर, बिना घबड़ाये, धीरे-धीरे इसका रथ रणक्षेत्रसे बाहर ले गया ॥ २८—३० ॥ राजा रावणको बलहीन तथा गिरा हुआ देखकर युद्ध-क्षेत्रसे डरकर बड़े वेगसे रथ लेकर बाहर गया और मेघके समान रथका शब्द सारथिने रोक दिया ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ तीसरा सर्ग समाप्त ॥ १०३ ॥



रावणके सिरपर काल नाच रहा था, अतएव उसकी बुद्धि मारी गयी थी, क्रोधसे आँखें लाल करके वह सारथिसे बोला ॥ १ ॥ तुमने मुझे निर्बल, शक्तिहीन, पुरुषार्थरहित, डरपोक, छोटा, तेजहीन, मायाज्ञानसे-वंचित और अस्त्र-ज्ञान-शून्य मुझको समझा है, मूर्ख! इसीसे मुझसे न पूछकर तुमने अपनी बुद्धिके अनुसार कार्य किया है ॥ २, ३ ॥ मेरा तिरस्कार करके, मेरा अभिप्राय न जानकर, शत्रुओंके सामनेसे तुमने

त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम् । यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥ ५ ॥
शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः । पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥ ६ ॥
यत्त्वं कथमिदं मोहान्न चेद्वहसि दुर्मते । सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः ॥ ७ ॥
नहि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः । रिपूणां सदृशं त्वेतद्यत्त्वयैतदनुष्ठितम् ॥ ८ ॥
निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः । यदि वाध्युषितोऽसि त्वं स्मर्यन्ते यदि मे गुणाः ॥ ९ ॥
एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना । अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ १० ॥
न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः । न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥ ११
मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता । स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम् ॥ १२ ॥
नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम् । कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥
श्रूयतां प्रतिदास्यामि यन्निमित्तं मया रथः । नदीवेग इवाम्भोभिः संयुगे विनिवर्तितः ॥ १४ ॥
श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा । नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रकर्षं नोपधारये ॥ १५ ॥
रथोद्वहनखिन्नाश्च भग्ना मे रथवाजिनः । दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥ १६ ॥
निमित्तानि च भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः । तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥

मेरा रथ युद्ध-क्षेत्रसे क्यों हटाया ? ॥ ४ ॥ अनार्य ! मेरा बहुत दिनोंका उपार्जित यश, वीर्य, तेज और विश्वासका नाश किया है ॥ ५ ॥ प्रख्यातपराक्रमी शत्रुको मैं अपने पराक्रमसे प्रसन्न करना चाहता था, मैं उससे युद्ध करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक था, पर तुमने उसके सामनेही मुझे कापुरुष बना दिया ॥ ६ ॥ यह रथ तुम शत्रुके सामने नहीं ले जा रहे हो, भूलकर भी तुम इस रथको शत्रुकी ओर नहीं लेजा रहे हो, इस कारण मेरा यह विचार सत्य मालूम पड़ता है कि तुमने शत्रसे घूस खाया है ॥ ७ ॥ हित चाहनेवाले मित्रका यह काम नहीं हो सकता, आज जो काम तुमने किया है वह शत्रुके समान है, शत्रुही ऐसा काम कर सकता है ॥ ८ ॥ यदि तुमने बहुत दिनोंतक मेरे यहाँ निवास किया हो, यदि तुम्हें मेरे गुण—उपकार—स्मरण हों तो शीघ्रही मेरा रथ लौटाओ, जबतक शत्रु भाग न जाय ॥ ९ ॥ बुद्धिहीन रावणके ऐसा कठोर वचन कहनेपर हित चाहनेवाला सारथि विनयपूर्वक हितकारी वचन बोला ॥ १० ॥ मैं डरा हुआ नहीं हूँ, न मूर्ख हूँ और शत्रुपक्षमें भी मिला हुआ नहीं हूँ, मैं पागल नहीं हूँ और न आपके प्रति स्नेह-हीन । आपके उपकार भी मैं नहीं भूल सका हूँ ॥ ११ ॥ आपके हितकरनेकी इच्छासे, आपके यशकी रक्षा करनेके लिए, स्नेहके कारण आपका अप्रिय भी हित समझकर मैंने यह काम किया ॥ १२ ॥ मैं जो आपको युद्धसे बाहर ले आया हूँ—यह आपका हित समझकर ही ले आया हूँ, इसलिए आप मुझे नीच अनार्य आदि न समझें, इस विषयमें मुझे आप दोषी न समझें ॥ १३ ॥ जलकी बाढ़के कारण बढ़े हुए नदीवेगके समान युद्धक्षेत्रसे जो मैंने आपका रथ हटा लिया, उसका कारण मैं कहता हूँ आप सुनें ॥ १४ ॥ भयंकर युद्धके कारण आपको मैंने थका हुआ जाना और शत्रुकी अपेक्षा वीर्यकी अधिकता आपमें उस समय मैंने नहीं देखी ॥ १५ ॥ रथके घोड़े रथ खींचनेके कारण थक गये थे, वर्षा पड़नेके कारण गौके समान वे दीन हो गये थे ॥ १६ ॥ हमलोगोंके लिए इस समय अधिकतासे जो शकुन हो रहे हैं उनको देखकर मैं समझता हूँ कि हमलोगोंका अमङ्गल होनेवाला है ॥ १७ ॥

देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीङ्गितानि च । दैन्यं हर्षश्च खेदश्च रथिनश्च महाबल ॥१८॥
स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च । युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम् ॥१९॥
उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम् । सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना ॥२०॥
तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम् । रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥२१॥
स्वेच्छया न मया वीर रथोऽयमपवाहितः । भर्तुः स्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं प्रभो ॥२२॥
आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन । तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥२३॥
संतुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः । प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥२४॥
रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं नय । नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥२५॥
एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः । ददौ तस्य शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ॥
श्रुत्वा रावणवाक्यानि सारथिः संन्यवर्तत ॥२६॥
ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोदयामास हयान्स सारथिः ।
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥



देश-काल जानना चाहिए, शुभ-अशुभ लक्षणोंको समझना चाहिए, मुखकी चेष्टा देखनी चाहिए, युद्धमें उत्साह तथा अनुत्साह देखना चाहिए तथा थकावट पहचानना चाहिए, युद्धके समय कहाँकी भूमि ऊँची है, कहाँकी नीची, कहाँकी सम है और कहाँकी ऊँची-नीची है यह देखना चाहिए और शत्रुकी कमजोरियोंको भी देखना चाहिए, कब शत्रुके पास जाना चाहिए, कब बगलमें जाना चाहिए, कब सामने खड़ा रहना चाहिए तथा कब हट जाना चाहिए आदि बातोंका ध्यान, रथपर बैठनेवालोंको रखना चाहिए ॥ १८—२० ॥ आपके और इन घोड़ोंके विश्रामके लिए तथा क्रूर विषाद दूर करनेके लिए मैंने जो यह किया है, उचित किया है ॥२१॥ वीर ! अपनी इच्छासे मैं इस रथको यहाँ नहीं लाया हूँ, किन्तु स्वामीके स्नेहके अधीन होकर मैंने ऐसा किया है ॥ २२ ॥ आप जो काम करनेकी आज्ञा देंगे वह मैं आपका उपकार आपकी रक्षाकरके चुका दूँ यह समझ कर करूँगा ॥ २३ ॥ सारथिके इस वचनसे रावण प्रसन्न हुआ उसकी बहुत प्रशंसा करके युद्धके लिए उत्सुक रावण इस प्रकार बोला ॥ २४ ॥ सूत ! शीघ्रही यह रथ रामकी ओर ले चलो, शत्रुको बिना मारे रावण युद्धक्षेत्रसे नहीं लौटता ॥ २५ ॥ रथपर बैठे हुए सारथिसे ऐसा कहकर राक्षसराज रावणने उसको एक उत्तम हस्ताभरण दिया । रावणके वचन सुनकर सारथि लौटा ॥२६॥ रावणके द्वारा प्रेरित होकर सारथिने घोड़ोंको हाँका, शीघ्रही राक्षसराजका वह विशाल रथ युद्धक्षेत्रमें रामचन्द्रके सामने आया ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ चौथा सर्ग समाप्त ॥ १०४ ॥

———०:*:०———

पञ्चाधिकशततमः सर्गः १०५

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् । रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ १ ॥
दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् । उपागम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥ २ ॥
रामराम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् । येन सर्वानरीन्वत्स समरे विजयिष्यसे ॥ ३ ॥
आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् । जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् । चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ५ ॥
रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् । पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥ ६ ॥
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः । एष देवासुरगणाँल्लोकान्पाति गभस्तिभिः ॥ ७ ॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः । महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपांपतिः ॥ ८ ॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः । वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥ ९ ॥
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् । सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥१०॥

युद्धके लिए आगे खड़ा रावणको देखकर, युद्धसे थके और चिन्ताकी मुद्रासे युद्धमें स्थित रामचन्द्रसे, देवताओंके साथ युद्ध देखनेके लिए आये हुए भगवान् अगस्त्य बोले ॥ १, २ ॥ राम, महाबाहो राम, सनातन (वेदके समान नित्य) रहस्य सुनो, वत्स ! जिस रहस्यसे तुम युद्धमें सब शत्रुओंको जीत सकोगे ॥ ३ ॥ आदित्यहृदय (सूर्यको प्रसन्न करना) ही वह रहस्य है, वह पाठ करनेवालोंको पवित्र करनेवाला है, समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला है । आदित्यहृदयका नित्यपाठ जय देनेवाला है, अक्षय फल देनेवाला तथा मुक्ति देनेवाला है ॥ ४ ॥ यह सब मङ्गलोंका मङ्गल है, अर्थात् सबका कल्याण करनेवाला है, सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला है, आधि-व्याधिको दूर करनेवाला है और आयु बढ़ानेवाला है ॥ ५ ॥ अनेक किरणोंवाले भुवनोंके स्वामी, देवता और असुरोंके द्वारा पूजित भास्कर विवस्वान्‌का उदय होते समय पूजन करो ॥ ६ ॥ यह समस्त देवताओंकी आत्मा है, यह अपनी किरणोंसे सबकी रक्षा करता है । यह तेजस्वी देवता असुर तथा समस्त लोकोंकी रक्षा अपनी किरणोंसे करता है ॥७॥ ये सूर्य सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं, संसारपालक विष्णु हैं, प्रलयकर्ता शिव हैं, देवशत्रुनाशक देवसेनापति स्कन्द हैं, सब प्रकारकी वायुओंके उत्पन्न करनेवाले प्रजापति हैं, देवराज इन्द्र हैं, सबको चेतनतारूप धन देनेवाले कुबेर हैं, कर्म-साक्षी काल हैं, सर्वान्तर्यामी यम हैं, सदा शक्तिके साथ रहनेवाले चन्द्रमा हैं, सृष्टिमूलभूत आप (जल) के स्वामी वरुण हैं ॥ ८ ॥ ये सबके बीजदाता पिता हैं, वसु हैं, साध्य (देवविशेष) हैं, अश्विनोंके समान व्यापक हैं, अनर्थोंके दूर करनेवाले वायु हैं, सर्वज्ञ मनु हैं, ज्ञाता और ज्ञापक वायु हैं, अपनी महिमामें स्थित होकर सब वस्तुओंका सार वहन करनेवाले वह्नि हैं, उत्तमजन्म धारण करनेवाली प्रजा हैं, प्राण धारण करनेवाले प्राण हैं, वसन्त आदि ऋतुओंको उत्पन्न करनेवाले हैं और प्रभाके आकर हैं ॥ ९ ॥ सब पदार्थोंके ग्रहण करनेवाले आदित्य हैं और अदितिके पुत्र हैं, किरणोंके द्वारा मेघ बनाकर अन्न आदिके उत्पन्न करनेवाले सविता हैं, सर्वव्यापक सूर्य हैं, आकाशमें भ्रमण करनेवाले सूर्य हैं, स्थापन करनेवाले पूषा हैं, क्रिया धारण करनेवाले हैं, सुवर्णके समान मूर्तिवाले हैं, प्रकाशक हैं, तेजरूपी संसारकी उत्प-

हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् । तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टा मार्तण्डकोंऽशुमान् ॥११॥
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः । अग्निगर्भो दितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥१२॥
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः । घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवंगमः ॥१३॥
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः । कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥१४॥
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः । तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते ॥१५॥
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः । ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥१६॥
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः । नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥१७॥
नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः । नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥१८॥
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे । भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥१९॥
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने । कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥२०॥
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे । नमस्तमोभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥२१॥

त्तिका बीज धारण करनेवाले हैं और प्रकाश करनेवाले हैं ॥ १० ॥ इनके घोड़े हरे रंगके हैं, अथवा ये दिशाओंमें व्यापक हैं, अनन्त तेजधारी हैं, सात प्राणोंको उत्पन्न करने वाले हैं, किरणोंके धारण करनेवाले हैं, अज्ञान और अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, कल्याणके उत्पादक हैं, भक्तोंके अनर्थोंमें कमी करते हैं, ब्रह्माण्डको चेतना देनेवाले हैं और अंशधारी हैं ॥ ११ ॥ संसारकी उत्पत्ति-स्थिति और प्रलयकर्ता ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्ररूप हैं, सुखकर स्वभाववाले हैं, स्वभावतः सबके स्वामी हैं, दिनके उत्पादक हैं, उपदेश देनेवाले हैं, कालाग्निरूप रुद्रको गर्भमें धारण करनेवाले हैं, ब्रह्मविद्यारूपिणी अदितिके पुत्र हैं, आनन्दरूप और आकाशरूप हैं, जड़ताको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ आकाशके स्वामी, अज्ञानके नाशक, ऋग्, यजु और सामवेदोंके ज्ञाता हैं । समस्त वृष्टिके प्रवर्तक तथा चैतन्य देनेवाले या जल देनेवाले हैं, विन्ध्याचलके गहन मार्गमें चलनेवाले हैं ॥ १३ ॥ जगत्-निर्माणके संकल्पवाले, किरणोंके मण्डलवाले, सबको मृत्युतक पहुँचानेवाले, पीले वर्णवाले, सबका संहार करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वरूप, महत्तेजोरूप, सबको प्रसन्न रखनेवाले, और समस्त कार्योंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥ १४ ॥ अन्तर्यामी होनेके कारण नक्षत्र, ग्रह और ताराओंके स्वामी हैं, समस्त वस्तुओंके उत्पादक हैं, तेजोंको भी तेज देनेवाले हैं, ऐसे द्वादशमास रूप सूर्यको नमस्कार ॥१५॥ पूर्वके पर्वत—उदयगिरि—को नमस्कार, अस्तगिरिको नमस्कार । आकाशके ज्योतिर्गणके अधिपतिको नमस्कार और दिनपतिको नमस्कार ॥ १६ ॥ सब प्रकारके जय देनेवाले, ब्रह्मादि लोकोंकी विजयसे प्राप्त होनेवाले आनन्दरूप, हरे घोड़ोंवालेको नमस्कार । संसारके समस्त प्राणी जिसकी किरण है, उस आदित्यको नमस्कार ॥ १७ ॥ इन्द्रियोंके जीतनेवाले शिवस्वरूप, इन्द्रियोंको कार्यमें लगानेवाले प्रणवप्रतिपाद्यको नमस्कार । कमलोंको विकसित करनेवाले, सर्व शक्तिमानको नमस्कार ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, शिव और विष्णुके स्वामी सूर्यको नमस्कार, देवताओंके ज्ञानरूप भास्वान्को नमस्कार । सर्वभक्षी रौद्रशरीरधारीको नमस्कार ॥ १९ ॥ अज्ञानरूपी तम और जड़ताको नष्ट करनेवालेको नमस्कार, शत्रुनाशक अमितात्मा (जिसके शरीरकी माप न हो सके) को नमस्कार, कृतघ्नोंके नाशक प्रकाशोंके स्वामी देवताको नमस्कार ॥ २० ॥ तप्तसुवर्णसदृश वर्णवाले विश्वके उत्पादक हरिको नमस्कार । अन्धकारके नाशक,

नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभुः। पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥२२॥
एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः। एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥२३॥
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च। यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥२४॥
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च। कीर्तयन्पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥२५॥
पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्। एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यति ॥२६॥
अस्मिन्क्षणे महाबाहो रावणं त्वं हनिष्यसि। एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम् ॥२७॥
एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा। धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥२८॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्। त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥२९॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागमत्। सर्वयत्नेन महता वृतस्तस्य वधेऽभवत् ॥३०॥

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः १०६

सारथिः स रथं हृष्टः परसैन्यप्रधर्षणम्। गन्धर्वनगराकारं समुच्छ्रितपताकिनाम् ॥ १ ॥

दीप्तिमान् लोकसाक्षीको नमस्कार ॥ २१ ॥ यह प्रभु अपनी किरणोंसे प्राणियोंका नाश करता है, उनकी सृष्टि करता है, उनकी रक्षा करता है, तपता है और वृष्टि करता है ॥ २२ ॥ यह प्राणियोंके सोनेपर भी जागता रहता है, क्योंकि यह उनमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित है, यह अग्निहोत्र है और अग्निहोत्रियोंका फल है अर्थात् फलदाता है ॥ २३ ॥ देवता, यज्ञ, यज्ञोंके फल तथा समस्त लोकोंमें जो कुछ कार्य हैं उन सबका यह स्वामी है ॥२४॥ घोर संकटके समय बीहड़वनमें भयके समय इनका स्मरण करनेसे, रामचन्द्र! कोई दुःखी नहीं होता ॥ २५ ॥ इन देव-देव जगत्पतिको एकाग्र होकर पूजो। इस आदित्यहृदयका तीन वार पाठ करनेसे युद्धमें विजय पाओगे ॥ २६ ॥ महाबाहो, इसी क्षण तुम रावणका वध कर सकोगे—ऐसा कहकर वे अगस्त्य जहाँसे आये थे, वहाँ चले गये ॥ २७ ॥ यह आदित्यहृदय सुननेके पश्चात् तेजस्वी रामचन्द्रका शोक नष्ट हो गया और वे प्रसन्न हुए, उन्होंने शुद्धान्तःकरण होकर आदित्यहृदयका धारण किया ॥ २८ ॥ सूर्यकी ओर देखकर आदित्यहृदयका पाठ कर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। बली रामचन्द्रने शुद्ध होकर तीन वार आचमन किया और रावणको देखकर धनुष लेकर प्रसन्नतासे विजय करनेके लिए आये, और सब प्रकारके प्रयत्नोंसे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २९, ३० ॥ देवताओंके मध्यमें वर्तमान सूर्य, रावणका नाश जानकर और प्रसन्न होकर, रामचन्द्रसे बोले "जल्दी करो" ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०५ ॥

प्रसन्न होकर रावणके सारथिने रथ हाँका, वह रथ गन्धर्वनगरके समान अद्भुत और शत्रुसेनाको

युक्तं परमसंपन्नैर्वाजिभिर्हेममालिभिः । युद्धोपकरणैः पूर्णं पताकाध्वजमालिनम् ॥ २ ॥
ग्रसन्तमिव चाकाशं नादयन्तं वसुंधराम् । प्रणाशं परसैन्यानां स्वसैन्यस्य प्रहर्षणम् ॥ ३ ॥
रावणस्य रथं क्षिप्रं चोदयामास सारथिः । तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महाध्वजम् ॥ ४ ॥
रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह । कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा ॥ ५ ॥
दीप्यमानमिवाकाशे विमानं सूर्यवर्चसम् । तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधप्रभम् ॥ ६ ॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धाराधरमिवाम्बुदम् । स दृष्ट्वा मेघसंकाशमापतन्तं रथं रिपोः ॥ ७ ॥
गिरेर्वज्राभिमृष्टस्य दीर्यतः सदृशस्वनम् । विस्फारयन्वै वेगेन बालचन्द्रानतं धनुः ॥ ८ ॥
उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम् । मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः ॥ ९ ॥
यथापसव्यं पतता वेगेन महता पुनः । समरे हन्तुमात्मानं तथानेन कृता मतिः ॥१०॥
तदप्रमादमातिष्ठ प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः । विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम् ॥११॥
अविक्लवमसंभ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम् । रश्मिसंचारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम् ॥१२॥
कामं न त्वं समाधेयः पुरंदररथोचितः । युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये ॥१३॥
परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः । प्रचोदयामास रथं सुरसारथिरुत्तमः ॥१४॥
अपसव्यं ततः कुर्वन्रावणस्य महारथम् । चक्रसंभूतरजसा रावणं व्यवधूनयत् ॥१५॥

नष्ट करनेवाला था। उसपर पताका फहरा रही थी, उसमें अच्छे घोड़े जुते हुए थे, उन घोड़ोंके गलेमें सोनेकी माला थी, उसमें युद्धकी सामग्रियाँ रखी हुई थीं और ध्वजा-पताकाओंकी माला लगी हुई थी। अपनी विशालतासे मानों वह आकाशको निगल रहा हो, पृथिवीको प्रतिध्वनित कर रहा हो, वह शत्रुसेनाका नाश करनेवाला और अपनी सेनाको प्रसन्न करनेवाला था। बड़ी ध्वजावाले शब्द करते हुए राक्षसराजके उस रथको आते हुए मनुष्यराज रामचन्द्रने देखा। उस रथमें काले घोड़े जुते हुए थे, और उसका तेज बड़ा भयानक था ॥ १—५ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी, आकाशस्थ विमानके समान रामचन्द्रने उस रथको देखा। बिजुलीके समान अनेक पताकाएँ उसमें लगी थीं, वह रथ इन्द्र-धनुषके समान मालूम पड़ता था। जिस प्रकार मेघ घोर जलधारा बरसाता है उसी प्रकार वह रथ (रथी) बाणवृष्टि कर रहा था, मेघके समान शत्रुके आते हुए रथको रामचन्द्रने देखा ॥ ६, ७ ॥ वज्राघातके कारण पर्वतके फटनेके समान उस रथका शब्द हो रहा था, उसको देखकर बालचन्द्रमाके समान धनुषका टंकार करते हुए रामचन्द्र इन्द्रके सारथि मातलिसे बोले—मातलि ! देखो, शत्रुकारथ वेगसे आ रहा है ॥ ८, ९ ॥ यह रावण बाईं ओरसे बड़ेवेगसे आ रहा है, इससे मालूम होता है कि इसने स्वयं अपना वध करनेकी इच्छा कर ली है ॥ १० ॥ इस कारण सावधान हो जाओ, शत्रुके रथके पास अपना रथ ले चलो। जिस प्रकार उठते हुए मेघका नाश वायु करता है उसी प्रकार मैं इसका नाश करूँगा ॥ ११ ॥ बिना डरे, बिना भ्रमके और आँख तथा हृदयको सावधान रखकर, घोड़ोंकी रास ठीक कर रथको शीघ्र चलाओ ॥१२॥ अथवा इन्द्रका रथ हाँकनेका तुम्हें अभ्यास है इसलिए तुम्हें सिखाने की जरूरत नहीं है, परन्तु मैं एकाग्र होकर युद्ध करता हूँ इस कारण तुम्हें मैंने स्मरण कराया है, शिक्षा नहीं दी है ॥ १३ ॥ देवताका श्रेष्ठ सारथि मातलि रामचन्द्रके इस वाक्यसे प्रसन्न हो गया और उसने रथ चलाया ॥ १४ ॥ रावणके विशाल रथको बाईं ओर करके मातलिने पहिएके

ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः । रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत् ॥१६॥
धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेण लम्भयन् । जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ॥१७॥
शरांश्च सुमहावेगान्सूर्यरश्मिसमप्रभान् । तदुपोढं महद्युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ॥
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥१८॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । समीयुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः ॥१९॥
समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः । रावणस्य विनाशाय राघवस्योदयाय च ॥२०॥
ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि । वाता मण्डलिनस्तीव्रा व्यपसव्यं प्रचक्रमुः ॥२१॥
महद्गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभःस्थले । येनयेन रथो याति तेनतेन प्रधावति ॥२२॥
संध्यया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया । दृश्यते संप्रदीप्तेव दिवसेऽपि वसुंधरा ॥२३॥
सनिर्घाता महोल्काश्च संप्रपेतुर्महास्वनाः । विषादयंस्ते रक्षांसि रावणस्य तदा हिताः ॥२४॥
रावणश्च यतस्तत्र प्रचचाल वसुंधरा । रक्षसां च प्रहरतां गृहीता इव बाहवः ॥२५॥
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः । दृश्यन्ते रावणस्याग्रे पर्वतस्येव धातवः ॥२६॥
गृध्रैरनुगताश्चास्य वमन्तो ज्वलनं मुखैः । प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः ॥२७॥
प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून्समुत्किरन् । तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन्दृष्टिविलोपनम् ॥२८॥

उड़ायी धूलके द्वारा रावणको कँपा दिया ॥१५॥ अनंतर रावणने क्रोध किया, उसने लाल लाल आँखें फाड़ीं और रथके सामने बैठे रामचन्द्रको बाणोंसे कँपादिया ॥१६॥ रामचन्द्रने उस तिरस्कारसे क्रोध किया, क्रोधके साथ धैर्य धारण करके उन्होंने अत्यन्त वेगवान् इन्द्रका धनुप उठाया और सूर्यकी किरणोंके समान प्रभावाले तथा वेगवान् बाण उन्होंने उठाये। आमने सामने खड़े हुए बलशाली दो सिंहोंके समान एक दूसरेका बध चाहनेवाले राम और रावणका भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ॥ १७, १८ ॥ रावणका नाश चाहनेवाले देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि उस द्वैरथ युद्धको देखनेके लिए आये ॥१९॥ अनन्तर बड़े भयंकर रोंगटे खड़े करनेवाले उत्पात होने लगे, जिनसे रावणका नाश और रामचन्द्रका आभ्युदय सूचित होता था॥ २० ॥ रावणके रथपर मेघ रुधिर बरसाने लगे। बाईं ओरसे चक्कर काटकर तेज हवा चलने लगी ॥ २१ ॥ रावणका रथ जिस ओरसे जाता था उसी ओर गीधोंका समूह आकाशमें घूमता हुआ दौड़ता था ॥२२॥ जपापुष्पके समान लालसंध्यामें लंका छिपगयी। पृथिवी दिनमें भी जलती हुईसी दीख पड़ने लगी ॥ २३ ॥ बड़े भयंकर शब्दके साथ बड़ी-बड़ी उल्काएँ रावणके आगे गिरीं, रावणके नाशको सूचना देनेके कारण शत्रु बनी उन उल्काओंने राक्षसोंको दुःखी कर दिया ॥२४॥ रावण जहाँ जाता था वहाँ पृथिवी काँपने लगती थी, जो राक्षस शत्रुओं-पर प्रहार करना चाहते थे उनके हाथ मानों बँधसे जाते थे ॥ २५ ॥ सूर्यकी किरणें लाल, पीली, काली और श्वेत होकर रावणके आगे गिरती थीं, मानों वे पर्वतकी धातु हों ॥ २६ ॥ मुखोंसे आग उगलते हुए अमंगल-सूचक शृगाल गीधोंके साथ रावणका मुँह देखते हुए मानों क्रोधसे अमंगल शब्द करने लगे ॥ २७ ॥ उल्टी हवा चलने लगी, धूल उड़ने लगी जिससे राक्षसराज रावणकी आँखें ढँक गयीं ॥ २८ ॥

निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः। दुर्विषह्यस्वरा घोरं विना जलधरोदयम् ॥२९॥
दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः। पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत् ॥३०॥
कुर्वत्यः कलहं घोरं सारिकास्तद्रथं प्रति। निपेतुः शतशस्तत्र दारुणा दारुणारुताः ॥३१॥
जघनेभ्यः स्फुलिङ्गाश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि संततम्। मुमुचुस्तस्य तुरगास्तुल्यमग्निं च वारि च ॥३२॥
एवं प्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः। रावणस्य विनाशाय दारुणाः संप्रजज्ञिरे ॥३३॥
रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शिवानि च। बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः ॥३४॥
निमित्तानीह सौम्यानि राघवस्य जयाय वै। दृष्ट्वा परमसंहृष्टो हतं मेने च रावणम् ॥३५॥
ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो रणे निमित्तानि निमित्तकोविदः।
जगाम हर्षं च परां च निर्वृतिं चकार युद्धे ह्यधिकं च विक्रमम् ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः १०७

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा। सुमहद्द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ १ ॥
ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम्। प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समवर्तत ॥ २ ॥
संप्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ। व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ३ ॥

रावणकी सेनापर चारों ओरसे इन्द्रके वज्र गिरने लगे, जिनका शब्द असह्य था और ये वज्र बिना मेघकेही गिरे ॥ २९ ॥ दिशाएँ और विदिशाएँ अन्धकारसे ढँक गयीं, अधिक धूल उड़नेके कारण आकाशका दिखायी पड़ना कठिन हो गया ॥ ३० ॥ कठोर शब्द करनेके कारण भयंकर बनी हुई सैकड़ों सारिकाएँ लड़ती हुई रावणके रथपर गिरीं ॥ ३१ ॥ रावणके घोड़े जंघोंसे चिनगारियाँ और आँखोंसे आँसू सदा बरसाते थे, इस कारण वे घोड़े साथ ही आग और पानी दोनों बरसाते थे ॥ ३२ ॥ इस-प्रकारके अनेक भयंकर उत्पात हुए जो रावणके विनाशके सूचक थे ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रको जो शकुन हुए वे सौम्य मंगलमय और जय-सूचक हुए ॥ ३४ ॥ मंगलमय शकुनोंको देखकर रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने रावणको मरा हुआ समझा ॥ ३५ ॥ निमित्तों को समझनेवाले रामचन्द्र अपने निमित्तोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए, अधिक सन्तुष्ट हुए और युद्धमें उन्होंने अधिक पराक्रम दिखाया ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

अनन्तर राम और रावणका द्वैरथ (दो रथवालोंका) युद्ध जो बड़ाही क्रूर तथा सब लोकोंके लिए भयंकर था, प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥ राक्षसोंकी सेना और वानरोंकी बड़ी सेना अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित होनेपर निश्चेष्ट खड़ी रही, अर्थात् सैनिक भी युद्ध देखनेमें लीन हो गये थे ॥ २ ॥ मनुष्य और राक्षस दोनों युद्ध करनेके लिए तयार हुए हैं—यह देखकर वे विस्मित हो गये और उनका हृदय इस युद्धकी ओर

नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः । तस्थुः प्रेक्ष्य च सर्वे ते नाभिजग्मुः परस्परम् ॥ ४ ॥
रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् । पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥ ५ ॥
तौ तु तत्र निमित्तानि दृष्ट्वा राघवरावणौ । कृतबुद्धी स्थिरामर्षौ युयुधाते ह्यभीतवत् ॥ ६ ॥
जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः । धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥ ७ ॥
ततः क्रोधाद्दशग्रीवः शरान्संधाय वीर्यवान् । मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥ ८ ॥
ते शरास्तमनासाद्य पुरंदररथध्वजम् । रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले ॥ ९ ॥
ततो रामोऽपि संक्रुद्धश्चापमाकृष्य वीर्यवान् । कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा संप्रचक्रमे ॥१०॥
रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं शरम् । महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११॥
रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम् । जगाम स महीं भित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥१२॥
स निकृत्तोऽपतद्भूमौ रावणस्यन्दनध्वजः । ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः स महाबलः ॥१३॥
संप्रदीप्तोऽभवत्क्रोधादमर्षात्प्रदहन्निव । स रोषवशमापन्नः शरवर्षं ववर्ष ह ॥१४॥
रामस्य तुरगान्दीप्तैः शरैर्विव्याध रावणः । ते दिव्या हरयस्तत्र नास्खलन्नापि बभ्रमुः ॥१५॥
बभूवुः स्वस्थहृदयाः पद्मनालैरिवाहताः । तेषामसंभ्रमं दृष्ट्वा वाजिनां रावणस्तदा ॥१६॥
भूय एव सुसंक्रुद्धः शरवर्षं मुमोच ह । गदाश्च परिघांश्चैव चक्राणि मुसलानि च ॥१७॥

आकृष्ट हो गया ॥ ३ ॥ उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे और उनके वे हाथ युद्ध करनेके लिए व्यग्र थे, फिरभी वे अपने स्वामियोंको युद्ध-निरत देखकर विस्मित हो गये और उनलोगोंने परस्पर आक्रमण नहीं किया ॥ ४ ॥ रावणको देखनेसे राक्षसोंकी और रामचन्द्रको देखनेसे वानरोंकी इन्द्रियाँ विस्मित हो गयीं, अतएव ये दोनों सेनाएँ चित्रलिखितके समान भासित होने लगीं ॥ ५ ॥ उन युद्धक्षेत्रमें होनेवाले शकुनोंको देखकर राम और रावणने भावी फलका निश्चय कर लिया था, अतएव निर्भय होकर दृढ़ क्रोधसे दोनों युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ रामचन्द्रको निश्चय था कि मेरी जीत होगी, रावणको निश्चय था कि मेरी मृत्यु होगी, अतएव दोनोंने युद्धमें उस समय अपने प्रकृष्ट बलका परिचय दिया ॥ ७ ॥ अनन्तर बली रावणने क्रोधसे बाण चढ़ाकर रामचन्द्रके रथकी ध्वजाको लक्ष्य करके उसे छोड़ा ॥ ८ ॥ वे बाण इन्द्रके रथकी ध्वजाको न छू सके और रथके एक भागको छूकर वे पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ९ ॥ तब बली रामचन्द्रने भी क्रोध करके धनुष चढ़ाया, उन्होंने रावणसे बदला लेनेका मनमें निश्चय किया ॥ १० ॥ उन्होंने रावणकी ध्वजाको लक्ष्यकरके अपना तीखा बाण छोड़ा, वह सर्पके समान असह्य था और अपने तेजसे जल रहा था ॥ ११ ॥ तेजस्वी रामने जो बाण रावणकी ध्वजाको लक्ष्यकरके चलाया था वह बाण ध्वजाको काटकर पृथिवीमें घुस गया ॥१२॥ रावणके रथकी ध्वजा कटकर पृथिवीपर गिर पड़ी, ध्वजाका गिरना देखकर महाबली रावण क्रोध और अमर्षसे जल उठा और वह जलता हुआसा क्रोधकरके बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १३, १४ ॥ रामचन्द्रके घोड़ोंको रावणने प्रदीप्त बाणोंसे मारा, पर वे घोड़े देवलोकके थे, इसलिए वे न तो विचलित हुए और न घबड़ाये ॥ १५ ॥ जिसप्रकार कमलनालके आघातसे किसीको पीड़ा नहीं होती, उसी प्रकार उन घोड़ोंको भी कुछ पीड़ा न हुई, उन घोड़ोंको स्वस्थ देखकर रावणने पुनः क्रोध किया और

गिरिशृङ्गाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान् । मायाविहितमेतत्तु शस्त्रवर्षमपातयत् ॥
सहस्रशस्तदा बाणानभ्रान्तहृदयोद्यमः ॥१८॥
तुमुलं त्रासजननं भीमं भीमप्रतिस्वनम् । तद्वर्षमभवद्युद्धे नैकाशस्त्रमयं महत् ॥१९॥
विमुच्य राघवरथं समन्ताद्वानरे बले । सायकैरन्तरिक्षं च चकार सुनिरन्तरम् ॥२०॥
मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना । व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे ॥२१॥
प्रहसन्निव काकुत्स्थः संदधे निशिताञ्छरान् । स मुमोच ततो बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥
तान्दृष्ट्वा रावणश्चक्रे स्वशरैः खं निरन्तरम् । ताभ्यां नियुक्तेन तदा शरवर्षेण भास्वता ॥२३॥
शरबद्धमिवाभाति द्वितीयं भास्वदम्बरम् । नानिमित्तोऽभवद्बाणो नानिर्भेत्ता न निष्फलः ॥२४॥
अन्योन्यमभिसंहत्य निपेतुर्धरणीतले । तथा विसृजतोर्बाणान्रामरावणयोर्मृधे ॥२५॥
प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् । चक्रतुश्च शरैर्घोरैर्निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥२६॥
रावणस्य हयान्रामो हयान्रामस्य रावणः । जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ ॥२७॥
एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् । मुहूर्तमभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥२८॥
तौ तथा युध्यमानौ तु समरे रामरावणौ । ददृशुः सर्वभूतानि विस्मितेनान्तरात्मना ॥२९॥
अर्दयन्तौ तु समरे तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ । परस्परमभिक्रुद्धौ परस्परमभिद्रुतौ ॥३०॥

वह बाणोंकी वर्षा करने लगा । गदा, परिघ, चक्र, मूसल, पर्वत शिखर, वृक्ष, शूल, परशु आदि अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा । विना हताश हुए वह रावण मायारचित इन अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा और बाण भी बरसाने लगा ॥ १६, १८ ॥ उस युद्धमें अनेक अस्त्र-शस्त्रोंकी बड़ी भयंकर वृष्टि हुई, वह वृष्टि अनेक प्रकारकी हुई, लोगोंको भयभीत करनेवाली हुई और भयंकर शब्दवाली हुई ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके रथको छोड़कर उसने वानरी सेनापर बाणवृष्टि की, उसने बाणोंसे आकाशको पाटदिया ॥ २० ॥ रावणने किसी प्रकारकी आशा न रखकर बाण छोड़े। रणमें तत्पर रावण बाणवृष्टिका विस्तारकर रहा है-यह देखकर रामचन्द्रने तीखे बाणोंका सन्धान किया और उन्होंने सैकड़ों हजारों बाण छोड़े ॥ २१, २२ ॥ उन बाणोंको देखकर रावणने अपने बाणोंसे आकाशको पाट दिया । उन दोनोंके द्वारा की हुई चमकीली बाणवर्षासे एक दूसरा बाणोंका आकाश बन गया, जो बहुत ही प्रकाशमान था । उस युद्धमें विना मतलबका कोई बाण न चलाया गया, ऐसा कोई बाण न था जो छेदनेवाला न हो और न कोई निष्फलही था ॥ २३, २४ ॥ युद्धमें उस प्रकार बाण चलाते हुए राम और रावणके बाण आपसमें टकराकर पृथिवीपर गिर पड़ते थे ॥२५॥ दहिने बायें बाण छोड़ते हुए वे निरन्तर युद्ध करने लगे, उन दोनोंने भयंकर बाणोंसे आकाशको भर दिया ॥ २६ ॥ रामके घोड़ोंको रावणने और रावणके घोड़ोंको रामने मारा, मानों एकने दूसरेका अनुकरण किया हो ॥ २७ ॥ इसप्रकार वे बहुत उत्तम युद्ध करने लगे, एक मुहूर्तके लिए वह युद्ध बड़ाही तुमुल और रोमहर्षण हुआ ॥ २८ ॥ युद्धक्षेत्रमें उस प्रकार युद्ध करते हुए राम और रावणको सब प्राणियोंने विस्मित होकर देखा ॥ २९ ॥ राम और रावणके रथ एक दूसरेपर क्रोधकरके दौड़े, मानों वे एक दूसरेको मसल डालना चाहते हों । एक दूसरेका वध करना चाहते हों, इस तरह वे दोनों रथ बड़े भयंकर हो गये थे । वे रथ कभी गोलाकार

परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः । मण्डलानि च वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च ॥३१॥
दर्शयन्तौ बहुविधां सूतौ सारथ्यजां गतिम् । अर्दयन्रावणं रामो राघवं चापि रावणः ॥३२॥
गतिवेगं समापन्नौ प्रतिवेगनिवर्तने । क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ॥३३॥
चेरतुः संयुगमहीं सासारौ जलदाविव । दर्शयित्वा तदा तौ तु गतिं बहुविधां रणे ॥३४॥
परस्परस्याभिमुखौ पुनरेव च तस्थतुः । धुरं धुरेण रथयोर्वक्त्रं वक्त्रेण वाजिनाम् ॥३५॥
पताकाश्च पताकाभिः समीयुः स्थितयोस्तदा । रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥३६॥
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तान्हयान्प्रत्यपसर्पयत् । स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ॥३७॥
मुमोच निशितान्बाणान्राघवाय दशाननः । सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ॥३८॥
जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत् । चिक्षेप च पुनर्बाणान्वज्रसारसमस्वनान् ॥३९॥
सारथिं वज्रहस्तस्य समादिश्य दशाननः । मातलेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः शराः ॥४०॥
न सूक्ष्ममपि संमोहं व्यथां वा प्रददुर्युधि । तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथात्मनः ॥४१॥
चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम् । विंशतिं त्रिंशतिं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः ॥४२॥
मुमोच राघवो वीरः सायकान्स्यन्दने रिपोः । रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ॥४३॥
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे । तत्प्रयुक्तं पुनर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥४४॥
गदानां मुसलानां च परिघाणां च निःस्वनैः । शराणां पुङ्खवातैश्च क्षुभिताः सप्त सागराः ॥४५॥
क्षुब्धानां सागराणां च पातालतलवासिनः । व्यथिता दानवाः सर्वे पन्नगाश्च सहस्रशः ॥४६॥

चक्कर काटते, कभी सीधे दौड़ते, कभी आगे बढ़कर पीछे हटते, इस प्रकार वे रथ सारथिकी निपुणता बतलाते हुए तरह-तरहका गमन करते थे। रावण रामको पीड़ित करता था और राम रावणको। इसप्रकार वे तेजीसे आगे बढ़ते और पीछे लौट जाते। अनवरत बाण चलानेवाले राम और रावणके दोनों रथ रणक्षेत्रमें भ्रमण करते हों, मानों जलवृष्टि करनेवाले मेघ हों, इस प्रकार वे दोनों युद्धमें अनेक प्रकारकी गति (पैतरा) दिखाकर दोनों आमने सामने जाकर खड़े हो गये, रथोंके धुरे धुरेके सामने, घोड़ोंके मुँह घोड़ोंके मुँहके सामने और पताका पताकासे मिल गयीं। अनन्तर रामचन्द्रके धनुषसे छूटे तीखे बाणोंने रावणके तेज चारों घोड़ोंको हटा दिया। घोड़ोंके हटजानेसे रावणने बड़ा क्रोध किया, उसने रामचन्द्रपर तीखे बाण छोड़े। बलवान रावणके द्वारा वे अत्यन्त विद्ध हो गये, पर वे इससे क्रुद्ध नहीं हुए और न वे व्यथित ही हुए। पुनः रामचन्द्रने वज्रके समान शब्द करनेवाले बाण छोड़े॥ ३०—३९॥ वे बाण उसने इन्द्रके सारथिको लक्ष्य करके छोड़े। वे वेगवान् बाण मातलिके शरीरपर पड़े, पर उनसे थोड़ी भी व्यथा उन्हें न हुई और न वे बेहोश हो हुए। मातलिके तथा अपने तिरस्कारसे रामचन्द्रने क्रोध तो नहीं किया, परन्तु बाणोंसे उन्होंने शत्रुका मुँह फेर दिया। बीस, तीस, साठ, सौ तथा हजारों बाण वीर रामचन्द्रने शत्रुके रथपर फेंके। रथपर बैठा हुआ राक्षसराज रावणने भी क्रोधकरके गदा और मूसलकी वर्षा करके शत्रुको युद्धमें पीड़ित किया। इस कारण वह युद्ध पुनः रोमहर्षण और भयंकर हो गया॥ ४०, ४४॥ गदा, मूसल और परिघके शब्दोंसे तथा बाणोंकी हवासे सातों समुद्र क्षुभित हो गये॥ ४५॥ समुद्रोंके क्षुभित होनेपर पातालवासी सभी दानव तथा हजारों सर्प व्यथित हुए॥ ४६॥ पर्वत और वनके साथ पृथिवी

चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना । भास्करो निष्प्रभश्चासीन्न ववौ चापि मारुतः ॥४७॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिंनरमहोरगाः ॥४८॥
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः । जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥४९॥
एवं जपन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा । रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥५०॥
गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम् । सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ॥५१॥
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव । एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम् ॥५२॥
ततः क्रोधान्महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः । संधाय धनुषा रामः शरमाशीविषोपमम् ॥५३॥
रावणस्य शिरोऽच्छिन्दच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् । तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥५४॥
तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः । तत्क्षिप्रं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ॥५५॥
द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संहतिसायकैः । छिन्नमात्रं च तच्छीर्षं पुनरेव प्रदृश्यत ॥५६॥
तदप्यशनिसंकाशैश्छिन्नं रामस्य सायकैः । एवमेव शतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम् ॥५७॥
न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये । ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥५८॥
मार्गणैर्बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः । मारीचो निहतो यैस्तु खरो यैस्तु सदूषणः ॥५९॥
क्रौञ्चावटे विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने । यैः साला गिरयो भग्ना वाली च क्षुभितोऽम्बुधिः॥६०॥
त इमे सायकाः सर्वे युद्धे मात्ययिका मम । किं नु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः ॥६१॥

काँपने लगी, सूर्यकी प्राभा जाती रही, वायुका चलना बन्द हो गया ॥४७॥ अनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध ऋषि, किन्नर, सर्प आदि बहुतही चिन्तित हुए ॥ ४८ ॥ गौ और ब्राह्मणोंका कल्याण हो, सनातन लोकोंकी रक्षा हो, राक्षसराज रावणको रामचन्द्र युद्धमें जीतें, इस प्रकार कहते हुए देवता, ऋषि आदि राम-रावणका भयंकर युद्ध देखने लगे ॥ ४९, ५० ॥ गन्धर्व और अप्सराओंके समूह, राम-रावणके उस अनुपम युद्धको देखकर, कहने लगे कि समुद्र आकाशके समान हो सकता है और आकाश समुद्रके समान हो सकता है अर्थात् इन दोनोंमें तुलना की जा सकती है पर राम और रावणका युद्ध अपनेही समान है, यह अतुलनीय है ॥ ५१, ५२ ॥ अनन्तर क्रोध करके रघुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले महाबाहु रामचन्द्रने सर्प-तुल्य बाण धनुषपर चढ़ाया और उससे सुन्दर तथा उज्ज्वल कुण्डलवाला रावणका सिर काटा। रावणका सिर पृथिवीपर गिरा—यह तीनों लोकोंने देखा ॥ ५३, ५४ ॥ पर रावणके उसी सिरके समान दूसरा सिर पुनः उत्पन्न हो गया, शीघ्र बाण चलानेवाले रामने उस दूसरे सिरको शीघ्रही बाणोंसे काट डाला, पर कटतेही वहाँ दूसरा सिर पुनः उत्पन्न हो गया ॥ ५५, ५६ ॥ उस सिरको भी वज्रसमान रामचन्द्रके बाणोंने काट डाला। इस प्रकार रावणके समानरूपवाले सौ मस्तक रामके बाणोंने काटे ॥५७॥ पर रावणके मरनेके लिए उसके मस्तकोंका अन्त न दीख पड़ा। तब समस्त अस्त्रोंके ज्ञाता कौसल्यानन्द-वर्धन रामचन्द्र अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त होनेपर भी विचारमें पड़ गये। जिन बाणोंसे मारीचको मारा, खर और दूषणको मारा, क्रौंच वनके गढ़ेमें विराधको मारा, दण्डकवनमें कबन्धको मारा, जिनसे साल वृक्ष और पर्वतोंको छेदा था, वालिको मारा था, समुद्रको क्षुभित किया था, ये सब मेरे बाण युद्धमें

इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे। ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि ॥६२॥
रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः। गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ॥६३॥
तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्। अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि ॥६४॥
देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्। पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत ॥६५॥
नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम्। रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥६६॥
दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोस्तयोर्जयमनवेक्ष्य रणे स राघवस्य।
सुरवररथसारथिर्महात्मा रणरतराममुवाच वाक्यमाशु ॥६७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८

अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा। अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥ १ ॥
विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो। विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥ २ ॥
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः। जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ ३ ॥
यं तस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः। ब्रह्मदत्तं महद्बाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥ ४ ॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा। दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥

अमोघ हैं, पर इसका क्या कारण है कि रावणके सामने इनका तेज धीमा पड़ गया है ॥५८—६१॥ युद्धमें सावधान होकर रामचन्द्र इस प्रकार चिन्ता करने लगे और रावणकी छातीपर बाणवर्षा करने लगे ॥६२॥ अनन्तर रथपर बैठा हुआ राक्षसराज रावणभी क्रोधकरके गदा और मूसलकी वृष्टि करके रामचन्द्रको पीड़ित करने लगा ॥ ६३ ॥ अनन्तर बड़ा तुमुल और रोमहर्षण युद्ध प्रारम्भ हुआ। आकाश, पृथिवी और पर्वत-शिखरपर वह युद्ध होने लगा ॥ ६४ ॥ देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, सर्प और राक्षसोंके देखते-देखते वह युद्ध समूची रात होता रहा ॥ ६५ ॥ न रात न दिन, न मुहूर्त न एक क्षणका भी राम-रावणके उस युद्धका विराम हुआ ॥ ६६ ॥ राम और रावण इन दोनोंके युद्धमें रामचन्द्रकी विजय न देखकर देवराज इन्द्रका सारथि महात्मा मातलि युद्धमें लगे हुए रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला ॥ ६७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०७ ॥

उस समय मातलिने रामचन्द्रको स्मरण कराया कि वीर आप अज्ञानके समान क्यों इसका अनुवर्तन कर रहे हो अर्थात् इसके अस्त्र चलानेका उत्तर अस्त्र चलाकर दे रहे हो। प्रभो, आप इसपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करें, देवताओंने इसके विनाशका जो समय बतलाया है वह आज उपस्थित हुआ है ॥२॥ मातलिके वाक्यसे रामचन्द्रको स्मरण हुआ। उन्होंने स्वाँस छोड़ते हुए सर्पके समान दीप्तमान बाण उठाया ॥ ३ ॥ वह अस्त्र भगवान अगस्त्य ऋषिने पहले दिया था। वही ब्रह्माका दिया हुआ था, वह अमोघ बाण युद्धमें बड़ा पराक्रमी था ॥४॥ अमिततेजस्वी ब्रह्माने उस बाणको इन्द्रके लिए बनाया था और त्रिलोक जीतनेकी इच्छा

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ । शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ ६ ॥
जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम् । तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥ ७ ॥
सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषोपमम् । नरनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥ ८ ॥
द्वाराणां परिघाणां च गिरीणां चापि भेदनम् । नानारुधिरदिग्धाङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥ ९ ॥
वज्रसारं महानादं नानासमितिदारणम् । सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥१०॥
कङ्कगृध्रबकानां च गोमायुगणरक्षसाम् । नित्यभक्षप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ॥११॥
नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम् । वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः ॥१२॥
तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम् । द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ॥१३॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः । वेदप्रोक्तेन विधिना संदधे कार्मुके बली ॥१४॥
तस्मिन्संधीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे । सर्वभूतानि संत्रेसुश्चचाल च वसुंधरा ॥१५॥
स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् । चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम् ॥१६॥
स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः । कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥१७॥
स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः । बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१८॥
रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः । रावणस्य हरन्प्राणान्विवेश धरणीतलम् ॥१९॥

रखनेवाले इन्द्रको उन्होंने दिया था, ॥ ५ ॥ जिसके वेगमें वायु, धारमें अग्नि और सूर्य थे, शरीर आकाशमय था और मेरु तथा मन्दरपर्वतके समान भारी था ॥ ६ ॥ उसका पंख सुन्दर था, सोनेसे मढ़ा हुआ था, और वह जल रहा था, समस्त तत्त्वोंके तेजसे वह बना था और सूर्यके समान उज्ज्वल था ॥ ७ ॥ धूमसहित प्रलयकालकी अग्निके समान और क्रुद्ध सर्पके समान था, वह शीघ्र अपना काम करनेवाला था, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंको भेदनेवाला था ॥ ८ ॥ नगरद्वार, परिघ और पर्वतोंको भेदनेवाला था, अनेक तरहके रुधिर उसके शरीरमें लिपटे हुए थे, और चर्बी लगी हुई थी, वह देखनेमें बड़ा भयंकर था ॥ ९ ॥ वज्रके समान दृढ़, भयंकर शब्द करनेवाला, अनेक समूहोंको नष्ट करनेवाला, सबको भयभीत करनेवाला और श्वास छोड़ते हुए सर्पके समान भयंकर था ॥ १० ॥ कंक, गीध, बक, शृगाल और राक्षसोंको सदा भोजन देनेवाला तथा युद्धमें यमराजके समान भयंकर था ॥ ११ ॥ वह बाण वानरोंको प्रसन्न करनेवाला और राक्षसोंका विनाश करनेवाला था, अनेक प्रकारके चित्रित गरुड़के अनेक पंख उसमें लगे थे ॥ १२ ॥ वह बाण लोकोंका तथा राम-पक्षवालोंका भय दूर करनेवाला था, शत्रुओंकी कीर्ति हरण करनेवाला और अपनेको प्रसन्न करनेवाला था ॥ १३ ॥ महाबली रामचन्द्रने उस बाणको अभिमन्त्रित किया, और धनुर्वेदोक्त विधानसे उसको धनुषपर चढ़ाया ॥ १४ ॥ जिस समय रामचन्द्र उस बाणको धनुषपर चढ़ाने लगे, उस समय सब प्राणी डर गये और पृथिवी काँपने लगी ॥ १५ ॥ अत्यन्त सावधान होकर रामचन्द्रने क्रोधसे धनुष नवाया और मर्मभेदन करनेवाला बाण रावणपर छोड़ा ॥ १६ ॥ इन्द्रके हाथसे छोड़ा गया वज्रके समान दुर्धर्ष (वारण करनेके अयोग्य) और यमराजके समान अनिवार्य वह बाण रावणकी छातीपर गिरा ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके धनुषसे छूटकर प्राणान्त करनेवाले वेगवान उस बाणने दुरात्मा रावणका हृदय तोड़ दिया ॥ १८ ॥ शीघ्रतापूर्वक शरीर-नाश करनेवाला वह बाण

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः । कृतकर्मा निभृतवत्स तूणीं पुनराविशत् ॥२०॥
तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं चापि सायकम् । निपपात सह प्राणैर्भ्रंश्यमानश्च जीवितात् ॥२१॥
गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः । पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥२२॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः । हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः संप्रदुद्रुवुः ॥२३॥
सर्वतश्चाभिपेतुस्तान्वानरा द्रुमयोधिनः । दशग्रीववधं दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः ॥२४॥
अर्दिता वानरैर्भ्रष्टा लङ्कामभ्यपतन्भयात् । हताश्रयत्वात्करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः ॥२५॥
ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः । वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥२६॥
अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः । दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥२७॥
निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि । किरन्ती राघवरथं दुरावापा मनोहरा ॥२८॥
राघवस्तवसंयुक्ता गगने च विशुश्रुवे । साधुसाध्विति वागग्र्या देवतानां महात्मनाम् ॥२९॥
आविवेश महान्हर्षो देवानां चारणैः सह । रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयंकरे ॥३०॥
ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च विभीषणम् । चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुंगवम् ॥३१॥

ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणा दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत् ।
मही चकम्पे न च मारुतो ववौ स्थिरप्रभश्चाप्यभवद्दिवाकरः ॥३२॥

रुधिरसे भींग गया और रावणका प्राणनाश करके वह पृथिवीमें घुस गया ॥ १९ ॥ उस बाणने रावणको मारा, रुधिरसे भींगनेके कारण उसकी शोभा बढ़ गयी, रामचन्द्रका काम करके वह चुपचाप पुनः रामचन्द्रके तूणीरमें आ गया ॥ २० ॥ हत रावणके हाथसे शीघ्रही धनुष और बाण गिर गये और रावण भी प्राणोंके साथ प्राण-धारण करनेवाली शक्तिसे गिर गया, अर्थात् मर गया ॥२१॥ महाद्युतिमान् भीमवेग राक्षसराज प्राणहीन होकर रथसे पृथिवीपर गिर पड़ा, जिस प्रकार वृत्रासुर वज्रसे निहत होकर गिरा था ॥ २२ ॥ रावणको पृथिवीपर गिरते देखकर बचे हुए राक्षस, स्वामीके मारे जानेसे, भयभीत हो गये और वे इधर-उधर भागने लगे ॥ २३ ॥ रावणका वध देखकर वानर विजयसे प्रसन्न हो गये और वृक्षोंसे युद्ध करनेवाले वानरोंने उन राक्षसोंका पीछा किया ॥ २४ ॥ आश्रयके मारे जानेसे राक्षस बड़े ही दुःखी हो गये थे, उनकी आँखोंसे आँसूके पनाले बहते थे, वे वानरोंके द्वारा पीड़ित होनेपर भयभीत होकर लंकामें भाग गये ॥ २५ ॥ अनन्तर वानर प्रसन्न होकर गर्जन करने लगे, रामचन्द्रकी जय और रामके द्वारा होनेवाला रावणवधको घोषित करने लगे ॥ २६ ॥ उसी समय आकाशमें मधुर दुन्दुभिनाद हुआ, दिव्य गन्ध लेकर सुखकारी वायु बहने लगा ॥२७॥ आकाशसे पुष्प-वृष्टि पृथिवीपर और रामचन्द्रके रथपर होने लगी, वह मनोहर पुष्पवृष्टि दूसरोंके लिए असम्भव थी ॥ २८ ॥ रामचन्द्रकी स्तुतिके साथ 'साधु-साधु', यह महात्मा देवताओंका श्रेष्ठ वचन आकाशमें सुनायी पड़ा ॥ २९ ॥ समस्त लोकोंके भयंकर क्रूर रावणके मारे जानेपर देवता चारणोंके साथ प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ रामचन्द्रने राक्षसराजको मारकर सुग्रीव, अङ्गद और बिभीषणको सफल मनोरथ किया और वे स्वयं प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥ अनन्तर देवता निर्भय

ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदाः सुहृद्भिशिणाः सहलक्ष्मणस्तदा ।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन् ॥३३॥
स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः स्वजनबलाभिवृतो रणे बभूव ।
रघुकुलनृपनन्दनो महौजास्त्रिदशगणैरभिसंवृतो महेन्द्रः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥



नवाधिकशततमः सर्गः १०९

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे । शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥ १ ॥
वीरविक्रान्त विख्यात प्रवीण नयकोविद । महार्हशयनोपेत किं शेषे निहतो भुवि ॥ २ ॥
निक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितौ । मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा ॥ ३ ॥
तदिदं वीर संप्राप्तं यन्मया पूर्वमीरितम् । काममोहपरीतस्य यत्तन्न रुचितं तव ॥ ४ ॥
यन्न दर्पात्प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः । न कुम्भकर्णोऽतिरथो नातिकायो नरान्तकः ॥
न स्वयं बहु मन्येथास्तस्योदर्कोऽयमागतः ॥ ५ ॥
गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः । गतः सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता ॥ ६ ॥

हो गये, दिशाएँ प्रसन्न हुईं और आकाश निर्मल हुआ, पृथिवीका काँपना बन्द हुआ, सुखकर हवा चलने लगी, सूर्यकी प्रभा स्वच्छ हुई ॥ ३२ ॥ अनन्तर मित्रोंके साथ सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद और लक्ष्मणने एकत्र होकर विजयकी प्रसन्नताके कारण विधिपूर्वक अभिराम रामचन्द्रकी पूजा की ॥ ३३ ॥ शत्रुको मारकर स्थिरप्रतिज्ञ रघुकुलराजनन्दन ओजस्वी रामचन्द्र, अपने स्वजनोंसे युक्त होकर, शोभित हुए, जिस प्रकार देवताओंसे युक्त इन्द्र शोभित होते हैं ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

———०:*:०———

भाई मारा गया, वह हारकर सोतेके समान रणक्षेत्रमें पड़ा है—यह देखकर विभीषण शोकके वेगसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे ॥ १ ॥ पराक्रमी वीर, प्रसिद्ध, दक्ष और नीतिनिपुण आप बहुमूल्य शय्यापर सोनेवाले हैं, जमीनपर क्यों सो रहे हैं ॥ २ ॥ लम्बी, चेष्टाहीन आपकी भुजाएँ फैली हुई हैं, सूर्यके समान चमकीला आपका मुकुट अपने स्थानसे हट गया है ॥ ३ ॥ वीर ! आज वही समय आ गया, जिसकी सूचना मैंने आपको पहले दी थी, पर उस समय आप काम और मोहसे घिरे हुए थे, जिससे मेरी बात आपको रुची नहीं ॥ ४ ॥ अहङ्कारके कारण प्रहस्त, इन्द्रजित तथा और लोगोंने भी मेरी बातोंपर ध्यान न दिया, कुम्भकर्ण, अतिरथ, अतिकाय, नरान्तक तथा स्वयं आपने भी मेरी बातोंपर ध्यान न दिया, उसका फल आज आ गया ॥ ५ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ इस वीरके गिरनेपर धार्मिकोंकी मर्यादा चली गयी,

आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः । चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ॥
अस्मिन्निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रभृतां वरे ॥ ७ ॥
किं शेषमिह लोकस्य गतसत्त्वस्य संप्रति । रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु ॥ ८ ॥
धृतिप्रवालः प्रसभाग्र्यपुष्पस्तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः ।
रणे महान्राक्षसराजवृक्षः संमर्दितो राघवमारुतेन ॥ ९ ॥
तेजोविषाणः कुलवंशवंशः कोपप्रसादापरगात्रहस्तः ।
इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेहः सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती ॥१०॥
पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चिर्निःश्वासधूमः स्वबलप्रतापः ।
प्रतापवान्संयति राक्षसाग्निर्निर्वापितो रामपयोधरेण ॥११॥
सिंहर्क्षलाङ्गूलककुद्विषाणः पराभिजिद्गन्धनगन्धवाहः ।
रक्षोवृषश्चापलकर्णचक्षुः क्षितीश्वरव्याघ्रहतोऽवसन्नः ॥१२॥
वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थनिश्चयम् । रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥१३॥
नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः । अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः ॥१४॥
नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः । वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥१५॥
येन सेन्द्रास्त्रयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता । अस्मिन्कालसमायुक्ते न कालः परिशोचितुम् ॥१६॥

धर्मका शरीर नष्ट हुआ, बलका संग्रह जाता रहा और वीरोंका आश्रय नष्ट हो गया। सूर्य पृथिवीपर गिर पड़ा, चन्द्रमा अन्धकारमें लीन हो गया, अग्निकी ज्वाला कम हो गयी और उत्साह निरर्थक हो गया ॥ ६, ७ ॥ राक्षससिंह रावणके युद्धभूमिकी धूलमें सोजानेपर आज लङ्कावासियोंका क्या बाकी रहा ? उनके तो प्राणही निकल गये ॥ ८ ॥ रामचन्द्ररूपी वायुने राक्षसराजरूपी विशाल वृक्षको युद्धमें मसल दिया, धैर्य इस वृक्षके पत्र था, सहनशीलता पहला पुष्प थी, तपस्या बल थी और शूरता जड़ थी ॥९॥ रावणरूपी मतवाला हाथी, रामचन्द्ररूपी सिंहके पंजेमें आजानेके कारण, जमीनपर पड़ा हुआ है। तेजस्विता इसके दाँत हैं, कुलपरम्परा इसकी पीठकी हड्डी है, क्रोध और प्रसन्नता इसके अन्य शरीर और सूँड हैं ॥ १० ॥ रामचन्द्ररूपी मेघने प्रतापी राक्षसरूपी अग्निको युद्धमें बुझा दिया, पराक्रम और उत्साहरूपी इसकी ज्वाला फैली हुई थी, विश्वास इसका धूँआ था, और अपना बल ही इसका प्रताप था ॥ ११ ॥ राक्षसरूपी बैलको राजा रामचन्द्ररूपी बाघने मार डाला, जिससे वह बैल शक्तिहीन होकर पड़ा है। इस रावणरूपी बैलकी पूँछ, ककुत् और सींग राक्षसही हैं। शत्रुजयी वीरोंको नष्ट करनेके लिए यह मतवाला हाथी है ॥ १२ ॥ इस प्रकार शोकयुक्त होकर विभीषण बोल रहा था, उसकी बातें कारणयुक्त थीं और उसका उद्देश्य अथवा सिद्धान्त निश्चित था, रामचन्द्र उससे बोले, ॥ १३ ॥ यह पराक्रमहीन होकर युद्धमें मारा नहीं गया है, किन्तु युद्धमें इसने बड़ा पराक्रम दिखाया है। उन्नत उत्साहवाला यह रावण मृत्युभयसे निर्भय होकर युद्धमें मारा गया है। अर्थात् जबतक यह जीता रहा, निडर होकर बड़े उत्साहसे युद्ध करता रहा ॥ १४ ॥ इस तरह क्षात्रधर्मपर चलनेवाले यदि नष्ट भी हो जाँय, तो उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए। परलोकमें उत्तम स्थानकी अथवा इसी लोकमें उन्नतिकी इच्छासे युद्ध करनेवाले यदि

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन । परैर्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे ॥१७॥
इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसंमता । क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥१८॥
तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः । यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥१९॥
तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः । उवाच शोकसंतप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥२०॥

योऽयं विमर्देष्वविभग्नपूर्वः सुरैः समस्तैरपि वासवेन ।
भवन्तमासाद्य रणे विभग्नो वेलामिवासाद्य यथा समुद्रः ॥२१॥
अनेन दत्तानि वनीपकेषु भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः ।
धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराण्यमित्रेषु निपातितानि ॥२२॥
एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः ।
एतस्य यत्प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥२३॥
स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा संबोधितः साधु विभीषणेन ।
आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥२४॥

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् । क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

युद्धमें मारे जाँय तो उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए ॥ १५ ॥ जिस बुद्धिमानने इन्द्र सहित तीनों लोकोंको भयभीत कर दिया था, वह यदि आज कालवश हुआ है, मारा गया है, तो उसके लिए शोक करना उचित नहीं ॥ १६ ॥ आजतक युद्धमें किसीकी विजय निश्चित नहीं रही है । युद्धमें पराक्रमी वीर या तो शत्रुओंके द्वारा मारा जाता है, या वही शत्रुओंको मारता है ॥ १७ ॥ मनु आदि प्राचीनोंने इसी गतिका उपदेश दिया है और क्षत्रियोंने भी इसे उत्तम समझा है । युद्धमें मारे गये क्षत्रियके लिए शोक नहीं करना चाहिए ॥ १८ ॥ इस निश्चयको समझकर तथा निश्चित तत्त्वका अवलम्बन करके तुम शोक-रहित हो जाओ और इसके सम्बन्धमें आगेके करनेके काम तुम निश्चित करो, उन्हींको सोचो ॥ १९ ॥ पराक्रमी राजपुत्र रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर शोकपीड़ित विभीषणने भाईके कल्याणके लिए उस समयका कर्तव्य बतलाया ॥ २० ॥ यह रावण युद्धमें समस्त देवताओंके साथ इन्द्रके द्वारा भी नहीं जीता गया, वही रावण युद्धमें आपके द्वारा पराजित हुआ, जिस प्रकार समुद्र तटके कारण बँध जाता है, आगे नहीं बढ़ता ॥ २१ ॥ इसने याचकोंको दान दिया है, भोग भोगे हैं और सेवकोंका पालन किया है । इसने मित्रोंको धन दिया है और शत्रुओंपर वैर गिराया है ॥ २२ ॥ इसने अग्निहोत्र धारण किया था, यह महातपस्वी था, वेदान्तका ज्ञाता और कर्मपालनमें दक्ष था । प्रेत हो जानेपर मरनेपर इसके लिए जो कर्तव्य हो वह आपकी आज्ञासे मैं करना चाहता हूँ ॥ २३ ॥ विभीषणके द्वारा आर्त वचनोंसे सम्बोधित होकर महात्मा पराक्रमी रामचन्द्रने रावणकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेकी आज्ञा दी ॥ २४ ॥ मृत्युके साथही विरोधका अन्त हो जाता है, हम लोगोंका उद्देश्य सिद्ध हुआ । इसकी अन्त्येष्टि क्रिया करो, अब यह जैसा तुम्हारा है वैसाही मेरा है ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ नवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमः सर्गः ११०

रावणं निहतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना। अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥ १ ॥
वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यो रणपांसुषु। विमुक्तकेश्यः शोकार्ता गावो वत्सहता यथा ॥ २ ॥
उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः। प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥ ३ ॥
आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः। परिपेतुः कबन्धाङ्कां महीं शोणितकर्दमाम् ॥ ४ ॥
ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः। करिण्य इव नर्दन्त्यः करेण्वो हतयूथपाः ॥ ५ ॥
ददृशुस्ता महाकायं महावीर्यं महाद्युतिम्। रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ६ ॥
ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु। निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वनलता इव ॥ ७ ॥
बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह। चरणौ काचिदालम्ब्य काचित्कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥ ८ ॥
उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद्भूमौ सुपरिवर्तते। हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ९ ॥
काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती। स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥१०॥
एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि। चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद्भूयस्ताः पर्यदेवयन् ॥११॥
येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः। येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥१२॥
गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम्। भयं येन रणे दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥१३॥

महात्मा रामचन्द्रके द्वारा रावण मारा गया—यह देखकर शोकपीड़ित राक्षसियाँ अन्तःपुरसे निकलीं ॥ १ ॥ बार बार उन्हे धूलमें लोटनेके लिए मना किया गया, पर वे धूलमें लोटने लगीं, उनके बाल खुल गये, वे इस प्रकार शोकपीड़ित हो गयीं, जिस प्रकार बछड़ेके मारे जानेपर गौ होती हैं ॥ २ ॥ उत्तरके द्वारसे सब राक्षसोंके साथ निकलकर वे भयंकर युद्धक्षेत्रमें गयीं और अपने मृतपतिको ढूँढ़ने लगीं ॥ ३ ॥ हा आर्यपुत्र, हा नाथ ऐसा कहती हुईं वे चारों ओरसे युद्धभूमिमें आयीं, जहाँ कबन्ध पड़े थे और जहाँ रुधिरसे कीचड़ हुआ था ॥ ४ ॥ उनकी आँखें आँसूसे भर गयी थीं, वे पतिशोकसे विह्वल थीं, यूथपतिके मारे जानेपर हथिनीके समान विलाप करती थीं ॥ ५ ॥ उनलोगोंने विशालशरीर महापराक्रमी महाद्युति रावणको, जो अंजनके समान काला था, जमीनमें पड़ा देखा ॥ ६ ॥ युद्धभूमिकी धूलमें पतिको पड़ा देखकर वे उसके शरीरपर गिर पड़ीं, जिस प्रकार कटी वनलता जमीनपर गिरती है ॥ ७ ॥ बड़े आदरसे रावणका आलिङ्गन करके कोई स्त्री रोने लगी, कोई उसके पैर पकड़कर और कोई उसका गला पकड़कर रोने लगी ॥ ८ ॥ कोई अपने दोनों हाथ फैलाकर भूमिमें लोटने लगी और कोई मृतपतिका मुँह देखकर मूर्च्छित हो गयी ॥ ९ ॥ कोई रावणका सिर गोदमें रख उसका मुँह देखती हुई रोने लगी और उसका मुँह अपने आँसुओंसे धोने लगी, मानों बर्फसे कमलपुष्प धोया जाता हो ॥ १० ॥ पति रावण मरकर जमीनमें पड़ा हैं यह देखकर वे विलाप करने लगीं, शोककी अधिकताके कारण वे बार-बार विलाप करने लगीं ॥ ११ ॥ जिसने इन्द्रको भयभीत किया, यमराजको भयभीत किया और जिसने राजा वैश्रवण (कुबेर) का पुष्पक विमान छीन लिया था, ॥ १२ ॥ गन्धर्वों, ऋषियों तथा महात्मा देवताओंको जिसने युद्धमें भयभीत कर दिया था,

असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योऽपि वा तथा । भयं यो न विजानाति तस्येदं मानुषाद्भयम् ॥१४॥
अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् । हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥१५॥
यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा । सोऽयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्भितः ॥१६॥
एवं वदन्त्यो रुरुदुस्तस्य ता दुःखिताः स्त्रियः । भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः ॥१७॥
अशृण्वता तु सुहृदां सततं हितवादिनाम् । मरणायाहृता सीता राक्षसाश्च निपातिताः ॥
एता सममिदानीं ते वयमात्मा च पातितः ॥१८॥
ब्रुवाणोऽपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता विभीषणः । दृष्टं परुषितो मोहात्त्वयात्मवधकाङ्क्षिणा ॥१९॥
यदि निर्यातिता ते स्यात्सीता रामाय मैथिली । न नः स्याद्व्यसनं घोरमिदं मूलहरं महत् ॥२०॥
वृत्तकामो भवेद्भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् । वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ॥२१॥
त्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात् । राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम् ॥२२॥
न कामकारः कामं वा तव राक्षसपुङ्गव । दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते ॥२३॥
वानराणां विनाशोऽयं राक्षसानां च ते रणे । तव चैव महाबाहो दैवयोगादुपागतः ॥२४॥
नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न चाज्ञया । शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥२५॥

वह आज युद्धमें मारा जाकर सो रहा है ॥ १३ ॥ असुरों, देवताओं तथा नागोंसे जिसको कभी भय न था, किसी प्रकारकी शंका न थी, उसे आज इस एक मनुष्यसे भय प्राप्त हुआ, अर्थात् वह एक मनुष्यके द्वारा मारा गया ॥ १४ ॥ जो देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंके द्वारा अवध्य था, वह पैदल चलनेवाले एक मनुष्यके द्वारा मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥ १५ ॥ जो देवताओं, यक्षों तथा राक्षसोंके द्वारा भी नहीं मारा जा सकता था, वही एक साधारण दुर्बल प्राणीके समान एक मनुष्यके द्वारा मारा गया ॥ १६ ॥ इस प्रकार कहती हुई रावणकी वे दुःखिनी स्त्रियाँ रोने लगीं, पुनः दुःखसे पीड़ित होकर वार-वार विलाप करने लगीं ॥ १७ ॥ हित-उपदेश देनेवाले, मित्रोंका उपदेश न सुनकर तुमने मरनेके लिए सीताका हरण किया था, तुमने राक्षसोंका वध कराया, हम सबको तथा स्वयं अपनेको तुमने एक साथही नष्ट कर दिया ॥१८॥ तुम्हारा भाई विभीषण तुम्हें हित-परामर्श दे रहा था, तुम्हारे कल्याणकी वातें समझा रहा था, पर अज्ञानके कारण तुमने उसे अप्रसन्न कर दिया, क्योंकि तुम तो अपना वध चाहते थे ॥१९ ॥ यदि तुम रामचन्द्रके पास सीताको लौटा देते तो हमलोगोंको ऐसा कष्ट न होता, हमलोगोंका ऐसा सर्वनाश न होता ॥२०॥ विभीषणकी बात मान लेनेपर विभीषणका मनोरथ पूरा हो जाता, रामचन्द्र हमलोगोंके मित्र हो जाते, हमलोग विधवा न होतीं और शत्रुओंके मनोरथ पूरे न होते ॥ २१ ॥ पर क्रूर तुमने बलपूर्वक सीताको अपने यहाँ रोक रखा, जिससे तुमने राक्षसोंका, हमलोगोंका तथा स्वयं अपना नाश किया ॥ २२ ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ ! अथवा यह जो कुछ हुआ है वह तुम्हारी इच्छासे नहीं हुआ है, भाग्य ही सब कराता है, भाग्यके द्वारा मारे गये मनुष्यकाही लोग वधकरते हैं ॥ २३ ॥ तुम्हारे इस युद्धमें राक्षसों और वानरोंका जो नाश हुआ है, महाबाहो, वह सब भाग्यके कारण हुआ है ॥ २४ ॥ धनसे, इच्छासे, पराक्रमसे तथा आज्ञासे लोकमें

विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः। कुरर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशाधिकशततमः सर्गः ॥११०॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः १११

तासां विलपमानानां तदा राक्षसयोषिताम्। ज्येष्ठपत्नी प्रिया दीना भर्तारं समुदैक्षत ॥ १ ॥
दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा। पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥ २ ॥
ननु नाम महाबाहो तव वैश्रवणानुज। क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरंदरः ॥ ३ ॥
ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः। ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥ ४ ॥
स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः। न व्यपत्रपसे राजन्किमिदं राक्षसेश्वर ॥ ५ ॥
कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम्। अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥ ६ ॥
मानुषाणामविषये चरतः कामरूपिणः। विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥ ७ ॥
न चैतत्कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे। सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥ ८ ॥
अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः। मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥ ९ ॥
अथवा वासवेन त्वं धर्षितोऽसि महाबल। वासवस्य तु का शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे ॥१०॥

भाग्य नहीं पलटा जा सकता है ॥ २५ ॥ राक्षसराज रावणकी स्त्रियाँ दुःखिनी होकर तथा आँखोंमें आँसू भरकर दुःखिनी कुररीके समान विलाप करने लगीं ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११० ॥

वे सब राक्षसस्त्रियाँ इस प्रकार जिस समय विलाप कर रही थीं उसी समय रावणकी प्रधान स्त्रीने दुःखी होकर अपने पतिको देखा ॥ १ ॥ रामचन्द्र रावणको मार सकेंगे यह सोचा भी नहीं गया था, पर रामहीके द्वारा रावणको मरा देखकर मन्दोदरी दुःखसे विलाप करने लगी ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! कुबेरानुज, आपके क्रोधके समय इन्द्र भी आपके सामने खड़ा नहीं रह सकता ॥ ३ ॥ बड़े-बड़े ऋषि तथा यशस्वी गन्धर्व भी आपसे तङ्ग आकर दिशाओंमें भाग गये हैं ॥४॥ वे ही आप केवल एक मनुष्य रामचन्द्रसे युद्धमें हार गये, राक्षसेश्वर राजन्, क्या आप इससे लज्जित नहीं होते ॥ ५ ॥ आपने तीनों लोकोंपर आक्रमण किया है अर्थात् उन्हें जीता है, जिससे आप लक्ष्मीवान् और पराक्रमी प्रसिद्ध हुए हैं, आपका पराक्रमको कोई वीर सहन भी नहीं कर सकता, फिर एक वनवासी मनुष्य आपका वध कैसे कर सका ! ॥ ६ ॥ जहाँ मनुष्य आ नहीं सकते वहाँ आप रहते हैं, आप इच्छानुसार रूप भी बदल सकते हैं, फिर युद्धमें रामके द्वारा आपका वध कैसे सम्भव हो सकता है ! ॥ ७ ॥ युद्धमें आप सब तरहसे योग्य थे, आपकी विजय होनी थी, पर रामचन्द्रके द्वारा आपका विनाश हुआ, मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होता ॥ ८ ॥ अथवा आपके नाशके लिए समझमें न आनेवाली माया करके स्वयं यमराज रामरूपसे आये हैं ऐसा मैं समझती हूँ ॥ ९ ॥ महाबल, क्या इन्द्रने तुम्हारा नाश किया है, पर कैसे कहें, इन्द्रमें तो यह शक्ति नहीं है, वह तो

महाबलं महावीर्यं देवशत्रुं महौजसम् । व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ॥११॥
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् । तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ॥१२॥
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः । मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥१३॥
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः । सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ॥१४॥
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम् । इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ॥१५॥
स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः । यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥१६॥
खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुषः । यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ॥१७॥
प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् । क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥१८॥
उच्यमानं न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता । अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुंगव ॥१९॥
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च । अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ॥२०॥
सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम् । वसुधाया हि वसुधां श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम् ॥२१॥
सीतां सर्वानवद्याङ्गीमरण्ये विजने शुभाम् । आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनात्मस्वदूषणम् ॥२२॥

युद्धमें तुम्हारी ओर देख भी नहीं सकता, क्योंकि आप महाबली पराक्रमी देवताओंके शत्रु और बड़े उत्साही हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि यह कोई महायोगी है, मानवी समस्त शक्तियाँ इसके अधीन हैं और सर्वदा वर्तमान रहनेवाला परमात्मा है ॥ १०—११ ॥ इनका न तो जन्म होता है, न वृद्धि और न नाशही होता है, ये महान्से भी महान् हैं, ये प्रकृतिके प्रवर्तक हैं, सृष्टि करनेवाले हैं और शंख चक्र तथा गदा धारण करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ ये हृदयमें श्रीवत्स धारण करनेवाले है, इनकी शोभा सदा वर्तमान रहती है, ये जीते नहीं जा सकते है, अतएव ये निश्चय सनातन परमात्मा हैं। ये सत्यपराक्रमी स्वयं विष्णु हैं। मनुष्यरूप धरकर, वानरशरीर धारण किये हुए देवताओंको साथ लेकर, लोककल्याणके लिए लोक स्वामीने तुम्हारा वध किया है—ऐसा मैं समझती हूँ। तुमने पहले इन्द्रियोंको जीतकर त्रिभुवनविजय की थी, अर्थात् इन्द्रियोंको वशकरके तपस्या की और फिर त्रिभुवनको जीता ॥ १३—१५ ॥ मालूम होता है कि उसी पुराने वैरका स्मरण करके पुनः इन्द्रियोंने तुम्हें जीत लिया, तुम इन्द्रियोंके अधीन हो गये। जब मैंने सुना कि अनेक राक्षसोंके साथ तुम्हारे भाई खरको रामने मार दिया, उसी समय मैंने समझा कि रामचन्द्र साधारण मनुष्य नहीं है। जिस लंकामें देवता भी प्रवेश नहीं कर सकते उसी लंकामें हनुमान पराक्रमपूर्वक घुस आये, उसी समय लोग दुःखी हो गये, अनिष्टकी आशंका हो गयी। रामचन्द्रसे विरोध मत करो, मेरा यह कहना तुमने न माना उसीका फल यह मिला है। राक्षसश्रेष्ठ, बिना किसी कारणके तुम सीतापर अनुरक्त हुए, मानो ऐश्वर्य, देह और स्वजनोंके विनाशके लिएही तुम सीतापर अनुरक्त हुए। मूर्ख अरुन्धती और रोहिणीसे भी श्रेष्ठ और मान्य सीताका अपमान करके तुमने बहुत बुरा किया। ये सीता वसुधाकी भी वसुधा हैं अर्थात् जगत्को धारण करनेवाली पृथिवीको भी धारण करनेवाली हैं और लक्ष्मीकी पूज्य हैं ॥१६—२१॥ सर्वाङ्गसुन्दरी सीता निर्जन वनमें थीं, वहाँसे छल करके तुम अपने यहाँ ले आये, सीताके सम्बन्धमें जो तुमने मनोरथ किया था, जो तुम्हारे लिए बड़ा कलङ्क था, वह भी पूरा नहीं हुआ। प्रभो, मैं समझती हूँ कि

अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसंगमे कृतम् । पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥२३॥
तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् । देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः॥२४॥
अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः । भर्तः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥२५॥
शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते । विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम् ॥२६॥
सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः । अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुद्ध्यसे ॥२७॥
न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली । मयाधिका वा तुल्या वा तत्तु मोहान्न बुद्ध्यसे॥२८॥
सर्वदा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः । तव तद्वदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥२९॥
सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः । मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥३०॥
अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे । कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ॥३१॥
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया । विमानेनानुरूपेण यायाम्यतुलया श्रिया ॥३२॥
पश्यन्ती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा । भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात्तव ॥३३॥
सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चञ्चलां श्रियम् । हा राजन्सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वक्समुन्नसम् ॥३४॥
कान्तिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरैः । किरीटकूटोज्ज्वलितं ताम्रास्यं दीप्तकुण्डलम् ॥३५॥
मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु । विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं शुभम् ॥३६॥

उसी पतिव्रताकी तपस्यासे तुम्हारा नाश हुआ है ॥ २२, २३ ॥ इन्द्र, अग्नि-प्रमुख सब देवता तुमसे डरते हैं इसीसे तुमने जिस समय सीताका अपमान किया था उस समय तुम जलनेसे बच गये ॥ २४ ॥ पापकर्मोंको फल अवश्य ही समय आनेपर कर्ताको मिलता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २५ ॥ जो अच्छा करता है उसे अच्छा फल मिलता है, और जो बुरा करता है उसे बुरा फल मिलता है । विभीषण सुखी हुआ और तुम्हारा नाश हुआ ॥ २६ ॥ सीतासे सुन्दरी बहुतसी स्त्रियाँ तुमको चाहनेवाली थीं, पर अज्ञानके कारण तुम इस बातको समझ न सके ॥२७॥ कुल, रूप तथा विद्यासे सीता न तो मेरे बराबर है और न अधिक, पर अज्ञानके कारण तुम इस बातको नहीं समझते ॥ २८ ॥ प्राणियोंकी मृत्यु विना किसी कारणके नहीं होती, यह सदाकी बात है, तुम्हारी इस मृत्युका भी कारण सीता है ॥ २९ ॥ सीताके कारण होनेवाली मृत्युको तुम बहुत दूरसे ले आये, अर्थात् मृत्युके कारण सीताको तुम दूरसे ले आये । अब सीता शोकरहित होकर रामचन्द्रके साथ विहार करेगी ॥ ३० ॥ अभागिनी मैं घोर शोकसागरमें पड़ी हूँ । कैलास, मन्दर पर्वत, चैत्ररथ वन तथा समस्त देवोद्यानोंमें उत्तम विमानपर बैठकर बड़े ठाट-बाटसे जो तुम्हारे साथ विहार करती थी और चित्रित वस्त्र तथा माला धारण करके अनेक देशोंको देखती थी, वीर ! वही मैं आज तुम्हारे वध होनेके कारण कामभोगसे विरत हो गयी हूँ ॥ ३१—३३ ॥ वही मैं आज दूसरी हो गयी हूँ । राजाओंकी लक्ष्मी कितनी चञ्चल है, उसको धिक्कार । राजन्, आपके उस सुकुमार मुखकी, जिसकी भौंएँ सुन्दर थीं, त्वचा कोमल थी, नाक ऊँची थी, जो मुह कान्ति, शोभा और दीप्तिके कारण चन्द्रमा, कमल और सूर्यके समान था उसकी, कलँगीवाले किरीटसे शोभा बढ़ रही थी, उसमें चमकीले कुण्डल शोभित हो रहे थे । आपका वह लाल और सुन्दर मुँह जो पानभूमि (शराब पीनेकी जगह) में

तदेवाद्य तवैवं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो । रामसायकनिर्भिन्नं रक्तं रुधिरविस्रवैः ॥३७॥
विशीर्णमेदोमस्तिष्कं रूक्षं स्यन्दनरेणुभिः । हा पश्चिमा मे संप्राप्ता दशा वैधव्यदायिनी ॥३८॥
या मयासीन्न संबुद्धा कदाचिदपि मन्दया । पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ॥३९॥
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम् । दृप्तारिमथनाः क्रूराः प्रख्यातबलपौरुषाः ॥४०॥
अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्ध्रुवा । तेषामेवं प्रभावाणां युष्माकं राक्षसर्षभाः ॥४१॥
कथं भयमसंबुद्धं मानुषादिदमागतम् । स्निग्धेन्द्रनीलनीलं तु प्रांशु शैलोपमं महत् ॥४२॥
केयूराङ्गदवैदूर्यमुक्ताहारस्रगुज्ज्वलम् । कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं संग्रामभूमिषु ॥४३॥
भात्याभरणभाभिर्यद्विद्युद्भिरिव तोयदः । तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नैकशरैश्चितम् ॥४४॥
पुनर्दुर्लभसंस्पर्शं परिष्वक्तुं न शक्यते । श्वाविधः शललैर्यद्वत् लग्नैर्बाणैर्निरन्तरम् ॥४५॥
स्वर्पितैर्मर्मसु भृशं संछिन्नस्नायुबन्धनम् । क्षितौ निपतितं राजञ्श्यामं वै रुधिरच्छवि ॥४६॥
वज्रप्रहारमभितो विकीर्ण इव पर्वतः । हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः ॥४७॥
त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः कथं मृत्युवशं गतः । त्रैलोक्यवसुभोक्तारं त्रैलोक्योद्वेगदं महत् ॥४८॥
जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शंकरस्य च । दृप्तानां निग्रहीतारमाविष्कृतपराक्रमम् ॥४९॥

अनेक प्रकारकी मालाएँ धारण करता था, जो मधुर मुस्कानके साथ सुन्दर बातें बोलता था तथा मदके कारण जिसकी आँखे चंचल रहती थीं, वह मुँह आज रामचन्द्रके बाणोंसे भिद जानेसे रुधिर और चर्बीसे लाल हो गया है और पहलेके समान शोभित नहीं होता। रथकी धूलसे रूखा हो गया है और मांस तथा मज्जा उससे निकल रहा है। हाय, मुझे विधवा बनानेवाली तुम्हारी अन्तिम दशा प्राप्त हुई। तुम्हारी मृत्यु आ गयी॥ ३४—३८॥ मूर्खा मैंने अपने वैधव्यकी बात सोची भी नहीं थी। मेरे पिता दानवराज मय हैं, पति राक्षसेश्वर रावण हैं और मेरा पुत्र इन्द्रको जीतनेवाला है, इसकारण मैं सदा अहंकारमें फूली रहती थी। अहंकारी, शत्रुको दमन करनेवाले, प्रख्यात बली और पुरुषार्थी, किसीसे न डरनेवाले मेरे रक्षक हैं—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास था। हे राक्षसश्रेष्ठो! आपलोगोंके समान शक्तिमानोंके रहते यह मनुष्यके द्वारा अज्ञात भय कैसे उत्पन्न हुआ! आपका जो शरीर चिकने इन्द्रनील मणिके समान नीला था, पवनके समान ऊँचा था, केयूर अंगद, वैदूर्य, मुक्तामाल और पुष्पमालासे सुशोभित था, जो आपका शरीर विहारभूमिमें कोमल और सङ्ग्राममें कठोर हो जाता था, वह अलंकारोंसे ऐसा सुशोभित होता था जैसा बिजुलीसे मेघ शोभते हैं। वही शरीर आज तीखे अनेक बाणोंसे छिद गया है, इसका पुनः स्पर्श दुर्लभ हो गया है, अब इसका आलिङ्गन नहीं किया जा सकता, क्योंकि बाणोंसे छिदा होनेके कारण काटोंवाले साहिलके शरीरके समान हो गया है॥ ३९—४५॥ मर्मोंमें बाणोंके खूब धँसे होनेके कारण, जोड़ ढीले पड़ गये हैं, रुधिर लगनेसे लाल वर्णका वह हो गया है, राजन्! आपका वह शरीर पृथिवीपर पड़ा हुआ है; ॥ ४६॥ मानों वज्रके लगनेसे पर्वत बिखर गया हो। यह तुम्हारी मृत्यु स्वप्न है अथवा सत्य! हाय, रामके द्वारा तुम कैसे मारे गये॥ ४७॥ तुम तो मृत्युके भी मृत्यु थे फिर मृत्युवश कैसे हुए! त्रैलोक्यकी सम्पत्ति भोगनेवाले थे और त्रिलोकको खूब पीड़ित करनेवाले थे॥ ४८॥ लोकपालोंको जीतनेवाले, महादेवको उठानेवाले,

लोकक्षोभयितारं च साधुभूतविदारणम् । ओजसा दृप्तवाक्यानां वक्तारं रिपुसंनिधौ ॥५०॥
स्वयूथभृत्यगोप्तारं हन्तारं भीमकर्मणाम् । हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः ॥५१॥
निवातकवचानां तु निग्रहीतारमाहवे । नैकयज्ञविलोप्तारं त्रातारं स्वजनस्य च ॥५२॥
धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्रष्टारमाहवे । देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ॥५३॥
शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं स्वजनस्य च । लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम् ॥५४॥
अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम् । एवं प्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम् ॥५५॥
स्थिरास्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया । शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर ॥५६॥
इह कस्मात्प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुगुण्ठितः । यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्युधि ॥५७॥
तदा त्वभिहता तीव्रमद्य त्वस्मि निपातिता । साहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन च त्वया ॥५८॥
विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः । प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम् ॥५९॥
नय मामपि दुःखार्तां न वर्तिष्ये त्वया विना । कस्मात्त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि ॥६०॥
दीनां विलपतीं मन्दां किं च मां नाभिभाषसे । दृष्ट्वा न खल्वभिक्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम् ॥६१॥
निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो । पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान् ॥६२॥
बहिर्निष्पतितान्सर्वान्कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि । अयं क्रीडासहायस्तेऽनाथो लालप्यते जनः ॥६३॥

अहंकारियोंका दमन करनेवाले, पराक्रम प्रकाशित करनेवाले, लोकोंको क्षुभित करनेवाले, सज्जनों और प्राणियोंको दुःख देनेवाले, शत्रुके सामने ओजके साथ अहंकृत वचन बोलनेवाले, अपने दल और भृत्योंको पालनेवाले, भयंकर काम करनेवालोंका वध करनेवाले, हजारों यक्षों और दानवोंको मारनेवाले, निवातकवचदलके राक्षसोंको युद्धमें दमन करनेवाले, अनेक यज्ञोंको नष्ट करनेवाले, अपने वंशजोंकी रक्षा करनेवाले, धर्ममर्यादाको नष्ट करनेवाले, युद्धमें माया उत्पन्न करनेवाले, इधर-उधरसे देवता, असुर और मनुष्य-कन्याओंका हरण करनेवाले, शत्रुस्त्रियोंको शोक देनेवाले, स्वजनोंके संचालक, लंकाद्वीपके रक्षक और भयंकर कर्म करनेवाले और हमलोगोंको कामभोग देनेवाले रथिश्रेष्ठ अपने पतिको, जिसका ऐसा प्रभाव था, मैं रामके द्वारा पृथिवीमें गिराया देख रही हूँ ॥ ४९—५५ ॥ मैं आज भी स्थिर हूँ, पतिके मारे जानेपर भी शरीर धारण कर रही हूँ। राक्षसश्रेष्ठ, बहुमूल्य पलंगोंपर आप सो चुके हैं, आज आप धूलिलिपटे पृथिवीमें क्यों सो रहे हैं? जिस समय मेरे पुत्र इन्द्रजित्‌को लक्ष्मणने युद्धमें मारा, उस समय तुमने मुझे बड़े जोरसे आघात किया था, आज तो मैं गिरा दी गयी। आज मैं अपने स्वजनोंसे तथा, स्वामी! तुमसे हीन हूँ ॥ ५६—५८ ॥ अब मैं कामभोगसे रहित होकर सदाके लिए शोकमग्न हो गयी हूँ। राजन् दुर्गम लम्बे रास्तेमें मुझ दुःखिनीको भी साथ ले चलिए, तुम्हारे विना मैं जी नहीं सकती, मुझ बिचारीको यहाँ छोड़कर तुम क्यों जाना चाहते हो ॥ ५९,६० ॥ मैं अभागिनी, दुःखिनी विलाप कर रही हूँ, तुम मुझसे बातें क्यों नहीं करते? यहाँ विना पर्देके मुझे देखकर तुमने क्रोध तो नहीं किया है? मैं नगरद्वारसे बाहर निकलकर पैदल यहाँ आयी हूँ, क्या इस लिए आप क्रुद्ध हैं। हे अपनी पत्नियोंसे प्रेम करनेवाले, देखो, तुम्हारी पत्नियाँ सभी बेपर्द हो गयी हैं ॥ ६१, ६२ ॥ हम सबको बाहर निकली देखकर तुम क्रोध क्यों नहीं

न चैनमाश्वासयसि किं वा न वहुमन्यसे । यास्त्वया विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः ॥६४॥
पतिव्रताधर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः । ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ॥६५॥
त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तस्तदागतम् । प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ॥६६॥
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले । कथं च नाम ते राजँल्लोकानाक्रम्य तेजसा ॥६७॥
नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौटीर्यमानिना । अपनीयाश्रमाद्रामं यन्मृगच्छद्मना त्वया ॥६८॥
आनीता रामपत्नी सा अपनीय च लक्ष्मणम् । कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित्संस्मराम्यहम् ॥६९॥
तत्तु भाग्यविपर्यासान्नूनं ते पक्वलक्षणम् । अतीतानागतार्थज्ञो वर्तमानविचक्षणः ॥७०॥
मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा ध्यात्वा निःश्वस्य चायतम् । सत्यवाक्स महाबाहो देवरो मे यदब्रवीत् ॥७१॥
अयं राक्षसमुख्यानां विनाशः पर्युपस्थितः । कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना ॥७२॥
निवृत्तस्त्वत्कृते नार्थः सोऽयं मूलहरो महान् । त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं राक्षसं कुलम् ॥७३॥
नहि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः । स्त्रीस्वभावात्तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते ॥७४॥
सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः । आत्मानमनुशोचामि त्वद्विनाशेन दुःखिताम् ॥७५॥
सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया । भ्रातॄणां चैव कार्त्स्न्येन हितमुक्तं दशानन ॥७६॥

करते ? क्रीड़ामें तुम्हारा साथ देनेवाली ये लोग विलाप कर रही हैं ॥ ६३ ॥ आप इन्हें समझाते क्यों नहीं ? अथवा अब आपका इनपर प्रेमही नहीं रहा। राजन् ! जिन अनेक कुलस्त्रियोंको आपने विधवा बनाया है, जो पतिव्रता धर्मचारिणी तथा बड़ोंकी सेवा करनेवाली थी, उन्हींने शोकसे तप्त होकर आपको शाप दिया है, जिससे आपकी यह अवस्था हुई है ॥ ६४, ६५ ॥ तुमने जिनको पराजित किया है अथवा जिनका अपमान किया है, उस पराजिय अथवा अपमानके समय उनलोगोंने जो शाप दिया है, उसका फल मिल रहा है "पतिव्रताओंके आँसू पृथिवीपर अनर्थक नहीं गिरते" यह कहावत आप-पर ठीक घटती है। राजन् ! आपने अपने तेजसे समस्त लोकोंपर आक्रमण किया था, फिर शूरताका अभिमान रखनेवाले आपने स्त्री चुरानेका छोटा काम क्यों किया ? तुमने मृगाके कपटसे रामचन्द्रको आश्रमसे दूर हटाया और लक्ष्मणको भी दूर हटाकर रामचन्द्रकी स्त्रीको तुम ले आये। युद्धमें तुमने कभी कायरता दिखायी है, इसका मुझे स्मरण नहीं है ॥ ६६, ६७ ॥ फिर भी स्त्री चुरानेकी जो कायरता आपमें आ गयी थी, वह भाग्यदोषसे आयी थी और वह विनाशका संकेत था। अतीत और अनागत विषयोंके जाननेवाले, वर्तमानके यथार्थ वक्ता, सत्यवादी मेरे देवरने "हरण करके सीताको ले आनेपर" सोचकर तथा लम्बी साँस लेकर जो कहा था, कि प्रधान-प्रधान राक्षसोंका अब विनाश उपस्थित हुआ। काम-क्रोधसे उत्पन्न आपके किये हुए परस्त्रीहरणरूपी अपराधसे समस्त ऐश्वर्यका नाश हुआ, जो हमलोगोंका सर्वनाश ही है। आप समस्त राक्षस-कुलका नाश कर दिया ॥ ७०—७३ ॥ आपके लिए कोई शोक नहीं है; क्योंकि आप प्रसिद्ध बली और पुरुषार्थी थे, फिर भी स्त्री होनेके कारण मेरी बुद्धि हीनताकी ओर झुकती है ॥ ७४ ॥ पाप और पुण्यको साथ लेकर आपने तो अपने मार्गमें प्रस्थान किया, अतः तुम्हारे लिए शोक नहीं है, मैं आपके नाशसे दुःखिनी होकर अपने लिए सोच रही हूँ ॥ ७५ ॥ दसानन, मित्रों तथा भाइयोंने

हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम् । विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत्त्वया ॥७७॥
मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तथा । न कृतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ॥७८॥
नीलजीमूतसंकाश पीताम्बर शुभाङ्गद । स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिरावृतः ॥७९॥
प्रसुप्त इव शोकार्तां किं मां न प्रतिभाषसे । महावीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः ॥८०॥
यातुधानस्य दौहित्रीं किं मां न प्रतिभाषसे । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे नवे परिभवे कृते ॥८१॥
अद्य वै निर्भया लङ्कां प्रविष्टाः सूर्यरश्मयः । येन सूदयसे शत्रून्समरे सूर्यवर्चसा ॥८२॥
वज्रं वज्रधरस्येव सोऽयं ते सततार्चितः । रणे बहुप्रहरणो हेमजालपरिष्कृतः ॥८३॥
परिघो व्यवकीर्णस्ते बाणैश्छिन्नः सहस्रधा । प्रियामिवोपसंगृह्य किं शेषे रणमेदिनीम् ॥८४॥
अप्रियामिव कस्माच्च मां नेच्छस्यभिभाषितुम् । धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा ॥८५॥
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीड़ितम् । इत्येवं विलपन्ती सा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥८६॥
स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत् । कश्मलाभिहता सन्ना बभौ सा रावणोरसि ॥८७॥
संध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवोज्ज्वला । तथागतां समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशातुराः ॥८८॥
पर्यवस्थापयामासू रुदत्यो रुदतीं भृशम् । किं ते न विदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ॥८९॥

आपको जो हितोपदेश किया था, वह आपने सुना नहीं ॥ ७६ ॥ कोमल कल्याणकारी कारण और फल-युक्त वचन विभीषणने कहे थे, पर आपने उस फलवान् वचनको नहीं सुना ॥ ७७ ॥ मारीच, कुम्भकर्ण तथा मेरे पिताने जो वचन कहे थे आपने बलोन्मत्त होकर उनका पालन नहीं किया, जिसका आपको ऐसा फल मिला ॥ ७८ ॥ हे नीलमेघ-सदृश, पीताम्बरधारी, शुभाङ्गद (हाथमें उत्तम गहना पहनेवाले), आपने शरीरको बिखेरकर रुधिरसे भींगे हुए पृथिवीमें क्यों सो रहे हो ? ॥ ७९ ॥ शोकपीड़ित मुझसे बोलते क्यों नहीं, जैसे सो रहे हो, महाबली, निपुण, युद्धसे न भागनेवाले यातुधान सुमालीके दौहित्री (नातिन) मुझसे तुम बोलते क्यों नहीं, रामचन्द्रके द्वारा इस पहले पराजयके होनेपर तुम सो क्यों रहे हो ? उठो, उठो, देखो तो निर्भय होकर सूर्यकी किरणें आज लंकामें प्रवेशकर रही हैं (रावणके समयमें सूर्यकिरणोंको भी निर्भय होकर प्रवेश करनेका अधिकार नहीं था), सूर्यके समान चमकीले जिस परिघसे युद्धमें तुम शत्रुओंका नाश करते थे, जैसे इन्द्रको वज्र प्रिय है, वैसे ही जो तुम्हारा प्रिय रहा है, युद्धमें जिसने बहुतोंको मारा है, जिसमें सोनेकी जाली लगी है, वही तुम्हारा परिघ बाणोंसे हजारों टुकड़े होकर फैला हुआ है। युद्धभूमिका प्रियाके समान आलिङ्गन करके क्यों सो रहे हो ? ॥ ८०—८४ ॥ अप्रियाके समान मुझसे बोलना क्यों नहीं चाहते ? मुझे धिक्कार है, जिसका शोकपीड़ित हृदय आपके मरनेपर हजारों टुकड़े नहीं हो जाता ! इस प्रकार विलाप करते-करते उसका हृदय शोकसे भर गया, आँखें आँसूसे भर गयीं और वह मूर्च्छित हो गयी, मूर्च्छासे आहत होकर वह रावणकी छातीपर गिर पड़ी, मानो सन्ध्यासे रक्त मेघपर बिजली चमक रही हो। घबड़ाई हुई उसकी सौतोंने शीघ्रही मन्दोदरीको उठाया ॥ ८५—८८ ॥ रोते-रोते, वे रोती हुई मन्दोदरीको समझाने लगीं । देवि ! क्या आपको मालूम नहीं है, कि संसारकी यही गति है। पुण्य और पापके कारण राजाओंकी स्थिति सदा चञ्चल होती है । उन लोगोंके ऐसा कहनेपर मन्दोदरी

दशाविभागपर्याये राज्ञां वै चञ्चलाः श्रियः । इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह ॥९०॥
स्नपयन्ती तदास्रेण स्तनौ वक्त्रं सुनिर्मलम् । एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ॥९१॥
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम् । तमुवाच ततो धीमान्विभीषण इदं वचः ॥९२॥
विमृश्य बुद्ध्या प्रश्रितं धर्मार्थसहितं हितम् । त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ॥९३॥
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम् । भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः ॥९४॥
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् । नृशंस इति मां राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ॥९५॥
श्रुत्वा तस्याऽगुणान्सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः । तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः ॥९६॥
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञं वाक्यकोविदः । तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावान्मया जितम् ॥९७॥
अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर । अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः ॥९८॥
तेजस्वी बलवाञ्छूरः संग्रामेषु च नित्यशः । शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ॥९९॥
महात्मा बलसंपन्नो रावणो लोकरावणः । मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥१००॥
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव । त्वत्सकाशान्महाबाहो संस्कारं विधिपूर्वकम् ॥१०१॥
क्षिप्रमर्हति धर्मेण त्वं यशोभाग्भविष्यसि । राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ॥१०२॥
संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम् । स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥१०३॥

चिल्लाकर रोने लगी। उस समय आँसूसे उसका निर्मल मुख और स्तन भींग गये। इसी समय रामचन्द्र विभीषणसे बोले ॥ ८९—९१ ॥ भाईका संस्कार करो, स्त्रियोंको समझाओ। तब बुद्धिमान विभीषण उनसे इस प्रकार बोला, ॥ ९२ ॥ विभीषणके वचन धर्म और अर्थसे युक्त हितकारी और विनययुक्त थे। जिसने धर्म और व्रतका त्याग किया है, जो क्रूर और झूठा था, तथा परस्त्रियोंको दुःख देनेवाला था, उसका संस्कार मैं नहीं करना चाहताहूँ। सबका अहित करनेवाला यह भाईके रूपमें मेरा शत्रु था। ॥ ९३, ९४ ॥ यद्यपि बड़ा होनेके कारण रावण मेरा पूज्य है, तथापि वह मुझसे पूजा पानेके योग्य नहीं है। रामचन्द्र, मेरे संस्कार न करनेपर मनुष्य अवश्य ही मुझे नृशंस कहेंगे, क्रूर कहेंगे, ॥ ९५ ॥ पर रावणके दुर्गुणोंको सुनकर वे मुझे पुण्यात्मा कहेंगे। यह सुनकर धार्मिकश्रेष्ठ रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ९६ ॥ और वाक्य बोलनेमें निपुण रामचन्द्र वाक्यार्थ समझनेवाले विभीषणसे इस प्रकार बोले— मुझे तुम्हारा भी प्रिय करना है अर्थात् तुम्हारा राज्याभिषेक करना है; क्योंकि तुम्हारेही प्रभावसे मेरी जीत हुई है ॥ ९७ ॥ राक्षसेश्वर ! अतएव उसके योग्य जो काम हैं वह मुझे तुमको बतलाना चाहिए। भलेही यह निशाचर पापी हो, झूठा हो, पर तेजस्वी था, बली था, शूर था और सुना जाता है कि इन्द्र-प्रभृति देवताओंसे भी यह युद्धमें पराजित नहीं हुआ था। लोकको दुःख देनेवाला महात्मा रावण बलवान था। वैर मरने तकही रहता है, मरनेपर वैर समाप्त हो जाता है। हमलोगोंका प्रयोजन भी सिद्ध हो गया ॥ ९८, १०० ॥ अब इसका संस्कार करो, यह जैसा मेरा है वैसा ही तुम्हारा है। महाबाहो, तुम्हारे द्वारा विधिपूर्वक इसका शीघ्र संस्कार होना चाहिए, यही तुम्हारा धर्म है, तुम्हारा यश होगा। रामचन्द्रके वचन सुनकर विभीषण शीघ्रतापूर्वक मरे हुए अपने भाई रावणका संस्कार करने लगे।

रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् । शकटान्दारुरूपाणि अग्नीन्वै याजकांस्तथा ॥१०४॥
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च । अगरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा ॥१०५॥
मणिमुक्ताप्रवालानि निर्यापयति राक्षसः । आजगाम मुहूर्तेन राक्षसैः परिवारितः ॥१०६॥
ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः । सौवर्णीं शिविकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम् ॥१०७॥
रावणं राक्षसाधीशमश्रुपूर्णमुखा द्विजाः । तूर्यघोषैश्च विविधैः स्तुवद्भिश्चाभिनन्दितम् ॥१०८॥
पताकाभिश्च चित्राभिः सुमनोभिश्च चित्रिताम् । उत्क्षिप्य शिविकां तां तु विभीषणपुरोगमाः ॥१०९॥
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे । अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाध्वर्युसमीरिताः ॥११०॥
शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात्तस्य ते ययुः । अन्तःपुराणि सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् ॥१११॥
पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वतः । रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः ॥११२॥
चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः । ब्राह्मया संवर्तयामासू राङ्कवास्तरणावृताम् ॥११३॥
प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम् । वेदिं च दक्षिणाप्राचीं यथास्थानं च पावकम् ॥११४॥
पृषदाज्येन संपूर्णं स्रुवं स्कन्धे प्रचिक्षिपुः । पादयोः शकटं प्रापुरूर्वोश्चोलूखलं तदा ॥११५॥
दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम् । दत्त्वा तु मुसलं चान्यं यथास्थानं विचक्रमुः ॥११६॥
शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च । तत्र मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥११७॥
परिस्तरणिकां राज्ञो घृताक्तां समवेशयन् । गन्धैर्माल्यैरलंकृत्य रावणं दीनमानसाः ॥११८॥

राक्षसराज विभीषणने लंकापुरीमें जाकर शीघ्रतापूर्वक रावणके अग्निहोत्रको समाप्त किया। शकट, लकड़ियाँ, अग्नि, चन्दनकी लकड़ियाँ, अन्य प्रकारकी लकड़ियाँ, सुगन्धित अगरु, अन्य गन्धवान् पदार्थ, मणि, मुक्ता, मूँगा आदिको विभीषणने एकत्र किया और वह राक्षसोंके साथ शीघ्र ही वहाँ चले आये ॥१०१—१०६॥ अनन्तर माल्यवानके साथ विभीषणने रावणकी क्रिया की। रावणको रेशमी वस्त्र पहिनाकर सोनेकी सवारीपर रोतेहुए ब्राह्मण राक्षसोंने रखा। बाजा बजने लगे और अनेक प्रकारकी स्तुतियाँ होने लगीं ॥ १०७, १०८ ॥ विचित्र पताकाओं तथा पुष्पोंसे सुशोभित पालकी उठाकर विभीषण आदि राक्षस लकड़ी लेकर दक्षिण दिशाकी ओर गये। अध्वर्युके द्वारा प्रेरित होनेपर वे अग्नि जलने लगे ॥ १०९, ११० ॥ अग्निहोत्रके तीनों अग्नि रावणके आगे-आगे चले। रावणकी समस्त स्त्रियाँ रोती हुई रावणके पीछे-पीछे चलीं। चलनेका अभ्यास न होनेके कारण वे कूदती हुई सी जा रही थीं। पवित्र स्थान-पर रावणको रखकर नितान्त दुःखी विभीषण आदिने चन्दनकी लकड़ियों, पद्मकाष्ठ और खसकी चिता बनाई और उसपर दुशाला बिछाया। यह सब उनलोगोंने वैदिक विधिसे किया ॥ १११, ११२, ११३ ॥ रावणका पितृमेध विधिके साथ उनलोगोंने किया। दक्षिण और पूर्व उनलोगोंने वेदी बनायी। उसपर यथास्थान अग्नि-स्थापन किया। दही और घीसे भरा हुआ स्रुवा रावणके कन्धेपर रखा। पैरोंपर शकट, जंघोंपर ओखल, अन्य लकड़ीके पात्र, अरणि उत्तरारणि और मूसल उन सबको यथास्थान रखा ॥ ११४, ११५, ११६ ॥ शास्त्र-कथित और कल्पसूत्रोक्त विधिके अनुसार वहाँ रावणके लिए पवित्र पशुका वध करके उसकी वपा (मज्जा) घीके साथ मिलाकर रावणके मुखमें रखी गयी। पुनः दुखित मनसे उन-

विभीषणसहायास्ते वस्त्रैश्च विविधैरपि । लाजैरवकिरन्ति स्म बाष्पपूर्णमुखास्तथा ॥११९॥
स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः । स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान् ॥१२०॥
उदकेन च संमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् । ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनःपुनः ॥१२१॥
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः । प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥
रामपार्श्वमुपागम्य समतिष्ठद्विनीतवत् ॥१२२॥
रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः । हर्षं लेभे रिपुं हत्वा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥१२३॥
ततो विमुक्त्वा सशरं शरासनं महेन्द्रदत्तं कवचं स तन्महत् ।
विमुच्य रोषं रिपुनिग्रहात्ततो रामः स सौम्यत्वमुपागतोऽरिहा ॥१२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकादशाधिकशततमः सर्गः ॥१११॥

—:०:—

द्वादशाधिकशततमः सर्गः ११२

ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः । जग्मुः स्वैः स्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः ॥१॥
रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम् । सुयुद्धं वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥२॥
अनुरागं च वीर्यं च मारुतेर्लक्ष्मणस्य च । पतिव्रतात्वं सीताया हनूमति पराक्रमम् ॥३॥
कथयन्तो महाभागा जग्मुर्हृष्टा यथागतम् । राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम् ॥४॥

लोगोंने गंध-माल्यसे रावणको अलंकृत किया। विभीषणके साथ रोते हुए उनलोगोंने अनेक प्रकारके वस्त्र उसको पहनाए। पुनः उसपर लावाकी वर्षा की ॥ ११७, ११८, ११९ ॥ विभीषणने विधिपूर्वक अग्नि प्रदान किया। स्नान करके भींगे वस्त्रसे तिल-कुश-युक्त जल दिया। बारबार समझाकर स्त्रियोंको लौटाया ॥ १२०, १२१ ॥ 'आपलोग जाँय', ऐसा सुनकर स्त्रियाँ नगरमें चली आयीं। स्त्रियोंके नगरमें जानेपर राक्षसराज विभीषण रामचन्द्रके समीप आकर विनयपूर्वक बैठा ॥ १२२ ॥ रामचन्द्र समस्त सेना, सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ खूब प्रसन्न हुए, जिस प्रकार वृत्रका वध करके इन्द्र प्रसन्न हुए थे ॥ १२३ ॥ अनन्तर धनुष बाण और इन्द्रका दिया हुआ वह कवच छोड़कर शत्रुहन्ता रामचन्द्र शत्रुके परास्त हो जानेसे क्रोध त्याग करके सौम्य हो गये ॥ १२४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

—×—

देवता, गन्धर्व और दानव रावणका वध होना देखकर अनेक प्रकारकी बातें करते हुए अपने-अपने विमानोंपर लौट गये ॥ १ ॥ रावणका भयंकर वध, रामचन्द्रका पराक्रम, वानरोंका उत्तम युद्ध, सुग्रीवकी सलाह, हनुमान और लक्ष्मणकी रामचन्द्रमें भक्ति, इनका पराक्रम, सीताका पातिव्रत्य, हनुमानका बल आदिका वर्णन करते हुए वे प्रसन्नतापूर्वक जहाँसे आये थे, वहाँ चले गये। रामचन्द्रने

अनुज्ञाप्य महाबाहुर्मातलिं प्रत्यपूजयत् । राघवेणाभ्यनुज्ञातो मातलिः शक्रसारथिः ॥ ५ ॥
दिव्यं तं रथमास्थाय दिवमेवोत्पपात ह । तस्मिंस्तु दिवमारूढे सरथे रथिनां वरः ॥ ६ ॥
राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे । परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेनाभिवादितः ॥ ७ ॥
पूज्यमानो हरिगणैराजगाम बलालयम् । अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम् ॥ ८ ॥
सौमित्रिं मित्रसंपन्नं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ॥ ९ ॥
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् । एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् ॥१०॥
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् । एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ॥११॥
तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे । तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ॥१२॥
व्यादिदेश महासत्त्वः समुद्रसलिलं तदा । अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः ॥१३॥
आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः । ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ॥१४॥
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यपिञ्चद्विभीषणम् । लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ॥१५॥
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गणसमावृतः । अभ्यपिञ्चंस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तथा ॥१६॥
प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टुवू राममेव हि । तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ॥१७॥
दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ॥१८॥
सान्त्वयित्वा प्रकृतयस्ततो राममुपागमत् । दध्यक्षतान्मोदकांश्च लाजाः सुमनसस्तथा ॥१९॥

अग्निके समान चमकीला इन्द्रका भेजा हुआ रथ लौटा लेजानेके लिए मातलिको आज्ञा दी और उनका आदर किया। रामचन्द्रसे आज्ञा पाकर इन्द्रका सारथि मातलि उस दिव्य रथको लेकर स्वर्ग चला गया। रथके साथ मातलिके स्वर्ग जानेपर रथिश्रेष्ठ रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और सुग्रीवका उन्होंने आलिङ्गन किया। सुग्रीवके आलिङ्गन करनेपर लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया। वानरोंके द्वारा सम्मान पाते हुए रामचन्द्र सेनाके स्थानपर आये। अनन्तर रामचन्द्र समीपवर्ती शुभलक्षण सुमित्रापुत्र लक्ष्मणसे बोले—सौम्य, इस विभीषणका लङ्का-राज्यपर अभिषेक करो ॥ ५—९ ॥ यह मेरा प्रेमी-भक्त और पहलेका उपकारी है। मेरा यह श्रेष्ठ मनोरथ है कि रावणके छोटे भाई विभीषणको लङ्काराजपर अभिषिक्त देखूँ। महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने कहा कि बहुत अच्छा। अनन्तर, सोनेका घड़ा उन्होंने उठाया। वह घड़ा बहुत शीघ्र चलनेवाले वानरोंके हाथमें देकर महाबली लक्ष्मणने समुद्रजल ले आनेकी आज्ञा दी। मनके समान शीघ्र चलनेवाले वे वानर अति शीघ्र जाकर और समुद्रसे जल लेकर लौट आये। पुनः एक घड़ा लेकर और विभीषणको उत्तम आसनपर बैठाकर लक्ष्मणने उस घड़ेसे लङ्कामें, राक्षसोंके बीचमें, रामचन्द्रकी आज्ञासे विभीषणका अभिषेक किया ॥ १०—१५ ॥ अनन्तर वैदिक विधानके अनुसार राक्षस और वानरोंने मित्रोंके साथ विभीषणका अभिषेक किया ॥ १६ ॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर वे रामचन्द्रकी स्तुति करने लगे। विभीषणके सचिव तथा उनके भक्त राक्षस बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषणको लङ्कामें अभिषिक्त देखकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१८॥ विभीषणने नगरवासी तथा राज्यवासी प्रजाको प्रसन्न किया। पुनः वे रामचन्द्रके समीप चले। उसी समय दही अक्षत

आजह्रुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः । स तान्गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ॥२०॥
माङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान् । कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ॥
प्रतिजग्राह तत्सर्वं तस्यैव प्रतिकाम्यया ॥२१॥
ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् । उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवंगमम् ॥२२॥
अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् । प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम् ॥२३॥
वैदेह्या मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् । आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे ॥२४॥
प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर । प्रतिगृह्य तु संदेशमुपावर्तितुमर्हसि ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥११२॥



त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ११३

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः । प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥ १ ॥
प्रविश्य च पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य विभीषणम् । ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान्वृक्षवाटिकाम् ॥ २ ॥
संप्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः । ददर्श मृजया हीनां सातङ्कां रोहिणीमिव ॥ ३ ॥
वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः परीवृताम् । निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा समागतं देवी हनूमन्तं महाबलम् । तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टाभवत्तदा ॥ ५ ॥

लड्डू लावा फूल लेकर पुरवासी राक्षस प्रसन्नतापूर्वक आये । उन सब वस्तुओंको लेकर विभीषणने रामचन्द्रको समर्पित कर दिया । वह सब मङ्गलकी वस्तु मङ्गल हो, इस बुद्धिसे रामचन्द्र और लक्ष्मणको दिया । कार्य होनेसे सन्तुष्ट विभीषणको देखकर रामचन्द्रने विभीषणकी प्रसन्नताके लिए ही वे सब वस्तु लेली ॥ १९, २०, २१ ॥ अनन्तर पर्वतके समान ऊँचे, हाथ जोड़कर खड़े हुए वीर वानर हनुमानसे रामचन्द्र इस प्रकार बोले, ॥ २२ ॥ सौम्य, महाराज विभीषणकी आज्ञा लेकर लङ्कापुरीमें जाओ और सीतासे कुशलसंवाद कहो ॥ २३ ॥ मेरा, सुग्रीवका और लक्ष्मणका कुशल सीतासे कहो । हे वाग्मिश्रेष्ठ युद्धमें रावण मारा गया यह भी कहो ॥ २४ ॥ वानरराज, यह प्रियसंदेश जानकीसे कहो और उनका सन्देश लेकर लौट आओ ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११२ ॥

इस प्रकार रामचन्द्रका सन्देश लेकर वायुपुत्र हनुमानने लङ्कामें प्रवेश किया । रास्तेमें राक्षसोंने उनका सन्मान किया ॥ १ ॥ लङ्कापुरीमें जाकर हनुमानने विभीषणसे आज्ञा माँगी, उनसे आज्ञा लेकर हनुमान वृक्ष-वाटिकामें गये, सीताने उन्हें पहिचान लिया । हनुमानने देखा कि सीताके अङ्गोंका कोई संस्कार नहीं हुआ है । भयभीत रोहिणीके समान वे मालूम होती थीं ॥ २, ३ ॥ वे वृक्षके नीचे राक्षसियोंसे घिरी हुई आनन्दहीन बैठी थीं । बिना आहट दिये विनीत भावसे हनुमान सीताके पास गये और उन्होंने प्रणाम किया ॥ ४ ॥ महाबली हनुमानको आया देखकर देवी सीता चुप रहीं । पुनः समीप आनेपर हनुमान-

सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान्प्लवगोत्तमः । रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥
वैदेहि कुशली रामः सुग्रीवः सहलक्ष्मणः । कुशलं त्वाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित् ॥ ७ ॥
विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह । निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥ ८ ॥
प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये । तव प्रभावाद्धर्मज्ञे महान्रामेण संयुगे ॥ ९ ॥
लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा । रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता ॥१०॥
मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये । प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥११॥
संभ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये । विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥१२॥
तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे । अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥१३॥
एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना । प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥१४॥
ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम् । किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे ॥१५॥
एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता । अब्रवीत्परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा ॥१६॥
प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् । प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥१७॥
नहि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवंगम । आख्यानकस्य भवतो दातुं प्रत्यभिनन्दनम् ॥१८॥
न च पश्यामि सदृशं पृथिव्यां तव किंचन । सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत्सुखम् ॥१९॥

को पहचानकर प्रसन्न हुईं ॥ ५ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान सीताका कोमल मुख देखकर रामचन्द्रकी कही सब बातें कहने लगे ॥ ६ ॥ वैदेहि, रामचन्द्र कुशलसे हैं । सुग्रीव और लक्ष्मण भी कुशलसे हैं । उन्होंने अपना आपसे कुशल कहा है । शत्रुको जीतनेवाले रामचन्द्रका मनोरथ शत्रुके मारे जानेसे पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥ देवि, विभीषणकी सहायतासे लक्ष्मण और वानरोंके साथ रामचन्द्रने बली रावणका वध किया ॥ ८ ॥ देवि, यह प्रिय सन्देश मैं आपको सुनाता हूँ । आपको मैं पुनः प्रसन्न करता हूँ । आपके प्रभावसे युद्धमें रामचन्द्रने यह बहुत बड़ी विजय पायी है । आप प्रसन्न हो जायँ, दुख दूर करें । शत्रु रावण मारा गया और लङ्का रामचन्द्रके अधीन हुई ॥ ९, १० ॥ देवि, शत्रुके हाथसे आपको लौटा लेनेकी जो दृढ़ प्रतिज्ञा मैंने की थी, बिना सोये—बिना विश्राम किए—समुद्रपर पुल बाँधकर मैंने अपनी उस प्रतिज्ञाका पालन किया ॥११॥ अब रावणके नगरमें रहनेके कारण आप भय न करें, क्योंकि लङ्काका समस्त ऐश्वर्य विभीषणके अधीन कर दिया गया है ॥ १२ ॥ इस कारण आप धैर्य रखें, आप निर्भय हो जायँ, आप अपने घरमें ही हैं । यह विभीषण आपके दर्शनके लिए उत्सुक प्रसन्न होता हुआ आ रहा है ॥ १३ ॥ चन्द्रानना देवी सीता हनुमानकी बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं । उनका गला बन्द हो गया, वे बोल न सकीं ॥ १४ ॥ अनन्तर हनुमान सीतासे उत्तर न पाकर बोले—देवि, आप क्या सोच रही हैं, मुझसे बोलती क्यों नहीं ? ॥ १५ ॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर धर्ममार्गमें स्थित सीता बड़ी प्रसन्नतासे बोलीं । बोलनेके समय उनका गला भर आया ॥ १६ ॥ अपने पतिकी विजयकी बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हो गयी और थोड़ी देरके लिए मेरी बोली बन्द हो गयी ॥ १७ ॥ वानर, बहुत सोचनेपर भी मैं ऐसी कोई चीज नहीं देखती हूँ, जो तुम्हारे इस सन्देशके कहनेके बदले तुम्हें दी जा सके ॥ १८ ॥ मैं इस पृथिवीमें ऐसी कोई वस्तु नहीं देखती, जो इस

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च । राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतान्नार्हति भाषितम् ॥२०॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः । प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥२१॥
भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि । स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते २२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा । ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥२३॥
अतिलक्षणसंपन्नं माधुर्यगुणभूषणम् । बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥२४॥
श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परमधार्मिकः । बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ॥२५॥
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः । एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभना ॥२६॥
अथोवाच पुनः सीतामसंभ्रान्तो विनीतवत् । प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥२७॥
इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे । हन्तुमिच्छामि ताः सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥२८॥
क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम् । घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥२९॥
इह श्रुता मया देवि राक्षस्यो विकृताननाः । असकृत्परुषैर्वाक्यैर्वदन्त्यो रावणाज्ञया ॥३०॥
विकृताविकृताकाराः क्रूराक्रूरकचेक्षणाः । इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥३१॥
राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत्प्रयच्छ मे । मुष्टिभिः पार्ष्णिघातैश्च विशालैश्चैव बाहुभिः ॥३२॥

प्रिय सन्देशके कहनेके बदलेमें तुम्हें देकर मैं सुखी हो सकूँ ॥ १९ ॥ चाँदी, सोना तथा अनेक प्रकारके रत्न और तीनों लोकोंका राज्य तुम्हारे इस वचनके बराबर नहीं हैं ॥ २० ॥ सीताके ऐसा कहनेपर हनुमान प्रसन्नताके कारण सीताके सामने हाथ जोड़कर खड़े होकर बोले ॥ २१ ॥ पतिका प्रिय तथा कल्याण चाहनेवाली, पतिकी विजय चाहनेवाली, आपहीके मुहसे ऐसा कोमल वचन निकल सकता है ॥ २२ ॥ हनुमानके वचन सुनकर जनकपुत्री सीता मधुर वचन हनुमानसे बोलीं ॥ २३ ॥ व्याकरणके लक्षणोंसे युक्त माधुर्यगुणयुक्त और बुद्धिके आठ गुणोंसे* युक्त वचन तुम्हीं बोल सकते हो ॥२४॥ तुम वायुके श्लाघनीय पुत्र हो, परम धार्मिक हो । बल, शूरता, शास्त्र-ज्ञान, दृढ़ता, पराक्रम, दक्षता, तेज, क्षमा, धृति, स्थिरता और विनय निःसन्देह ये सब अनेक गुण तुम्हीमें वर्तमान हैं ॥ २५, २६ ॥ पुनः हनुमान सीताके सामने हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रसन्नतापूर्वक विनयसे इस प्रकार बोले, ॥ २७ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो मैं इन राक्षसियोंको मारना चाहता हूँ, जिन्होंने पहले आपको बहुत धमकाया है, दुःख दिया है ॥ २८ ॥ पतिव्रता आप अशोकवाटिकामें आकर दुःख पा रही थीं, उस समय भयंकर आचरणवाली, डरावनी आँखोंवाली, क्रूर इन भद्दे मुँहवाली राक्षसियोंने रावणके कहनेसे बार-बार आपको कठोर वचन कहे हैं ॥ २९, ३० ॥ विकृत आकार वाली, रूखे केश और आँखोंवाली इन दारुण राक्षसियोंको मैं अनेक तरहकी मारोंसे मारना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ घूसोंसे, धक्केसे, लम्बे हाथोंसे, जङ्घा और घुटनोंसे, दाँतोंके आघातसे कान और नाकके काटनेसे, बालोंको नोचनेसे, कठोर बोलनेवाली इन अपकार करनेवाली राक्षसियोंको गिराकर मारना चाहता हूँ। यशस्विनि, इस तरहके अनेक प्रहारोंसे आहत करके मैं इनका वध करना चाहता हूँ, जिन्होंने पहले आपको धमकाया है। आप इसके लिए मुझे वर दें, आज्ञा दें।

* सुननेकी इच्छा, सुनना, समझना, स्मरण रखना, ऊहापोह (निर्णय करना) अर्थज्ञान और तत्वज्ञान ये बुद्धिके आठ गुण हैं। 'शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहापोहोऽर्थ विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥'

जङ्घाजानुप्रहारैश्च दन्तानां चैव पीडनैः। भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा ॥३३॥
निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः। एवं प्रहारैर्बहुभिः संप्रहार्य यशस्विनि ॥३४॥
घातये तीव्ररूपाभिर्याभिस्त्वं तर्जिता पुरा। इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला ॥३५॥
हनूमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च। राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ॥३६॥
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम। भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥३७॥
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते। मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ॥३८॥
प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम्। दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥३९॥
आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्। हते तस्मिन्न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज ॥४०॥
अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः। ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निबोध प्लवंगम ॥४१॥
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥४२॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥४३॥
लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्। कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥४४॥
एवमुक्तस्तु हनुमान्सीतया वाक्यकोविदः। प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥४५॥

हनुमानके ऐसा कहनेपर दीनोंपर प्रेम करनेवाली तपस्विनी सीता बोलीं ॥ ३२—३५ ॥ सोच-विचारकर सीता हनुमानसे बोलीं—जो राजसेवासे पराधीन हैं, दूसरोंकी आज्ञासे काम करते हैं, वानरश्रेष्ठ! उन आश्रित दास-दासियोंपर क्रोध कौन करता है? भाग्य-दोषसे अथवा पूर्वजन्मके पापोंसे मैंने यह सब दुःख पाया है। मनुष्य अपना किया हुआ ही पाता है। महाबाहो, तुम ऐसा मत कहो। यह सब भाग्यकी लीला है ॥ ३६—३८ ॥ भाग्यदोषसे मुझे यह सब दुःख भोगना निश्चित था। रावणकी दासियोंका अपराध मैं क्षमा करती हूँ ॥ ३९ ॥ राक्षस (रावण) की आज्ञा पाकर राक्षसियाँ हमें धमकाती थीं, वायुपुत्र, उसके मारे जानेपर अब तो नहीं धमकातीं ॥ ४० ॥ यह पुरानी धर्म-मर्यादा है, भालुने बाघसे कहा था, वानर तुम उस कथाको समझो* ॥ ४१ ॥ पापियोंके पापोंकी ओर धर्मात्मा पुरुष ध्यान नहीं देते। इस मर्यादाकी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सज्जनोंका भूषण चरित्र ही है ॥४२॥ पापी हो, पुण्यात्मा हो, अथवा वधके योग्यही क्यों न हो सज्जनोंको उनपर दया करनी चाहिए, क्योंकि अपराध सभीसे हो जाता है ॥ ४३ ॥ जो क्रूर पापी हिंसासेही प्रसन्न होते हैं और पाप करते रहते हैं उनको भी दण्ड नहीं देना चाहिए ॥ ४४ ॥ सीताके ऐसा कहनेपर वाक्यार्थ समझनेवाले हनुमान रामपत्नी अनिन्दित सीतासे इस

---

* किसी बाघसे डरकर एक व्याध पेड़पर चढ़ गया। उसी पेड़पर पहलेसे एक भालू बैठा था, बाघने भालूसे कहा कि तुम इस व्याधको नीचे गिरा दो यह हमारा और तुम्हारा दोनोंका शत्रु है। भालूने नाहीं कर दी। उसने कहा—यह मेरा अतिथि है। मैं इसका अपकार न करूँगा। इसके पश्चात् भालू सो गया। बाघने व्याधसे कहा—इसको नीचे गिरा दो। उसने ऐसा ही किया, पर भालू गिरा नहीं, डाल पकड़कर वह पेड़ परही रह गया। बाघने भालूसे कहा इसने तुम्हारा अपकार किया है, तुम इसे नीचे गिरा दो। पर भालूने उसे न गिराया। उसने कहा यद्यपि इसने अपराध किया है, पर तुमको न दूँगा। इस प्रकार उसने व्याधकी रक्षा की।

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता । प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥४६॥
एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा । साब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥४७॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः । हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महामतिः ॥४८॥
पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम् । स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥४९॥
तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् । आजगाम महातेजा हनूमान्यत्र राघवः ॥५०॥

सपदि हरिवरस्ततो हनूमान्प्रतिवचनं जनकेश्वरात्मजायाः ।
कथितमकथयद्यथाक्रमेण त्रिदशवरप्रतिमाय राघवाय ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ११४

समुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवंगमः । रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥
यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः । तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥ २ ॥
सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा । मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकाङ्क्षति ॥ ३ ॥
पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया । द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा ॥ ४ ॥
एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः । आगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥

प्रकार बोले ॥ ४५ ॥ गुणवती आप रामचन्द्रके योग्य उनकी धर्मपत्नी हैं। आप मुझे रामचन्द्रके लिए सन्देश दें, मैं रामचन्द्रके पास जाऊँ ॥ ४६ ॥ जनकपुत्री सीता हनुमानके ऐसा कहनेपर बोलीं, मैं भक्तवत्सल पतिका दर्शन करना चाहती हूँ ॥ ४७ ॥ सीताके वचन सुनकर वायुपुत्र बुद्धिमान हनुमान सीताको प्रसन्न करते हुए बोले ॥ ४८ ॥ पूर्णचन्द्रमुख रामचन्द्रको लक्ष्मणके साथ आजही आप देखेंगी। शत्रुको मारकर मित्रोंके साथ बैठे हुए उन्हें आप देखेंगी, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रको देखती हैं ॥ ४९ ॥ साक्षात् लक्ष्मीके समान शोभमान् सीतासे ऐसा कहकर तेजस्वी हनुमान जहाँ रामचन्द्र थे वहाँ आये ॥ ५० ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानने जानकीका सन्देश इन्द्रसदृश रामचन्द्रको यथाक्रम सुनाया ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११३ ॥

महाबुद्धिमान् वानर हनुमान कमलपत्राक्ष समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रको प्रणाम करके बोले ॥१॥ जिसके लिए हमलोगोंका यह उद्योग हुआ है, जो हमलोगोंके कर्मोंकी सिद्धि है, उस देवी शोकपीड़ित सीताको आप देखें ॥ २ ॥ सीता जो शोकपीड़ित थीं, जिनकी आँखें आँसूसे भरी थीं, आपकी विजय सुनकर प्रसन्न हुई हैं और आपको देखना चाहती हैं ॥ ३ ॥ पहलेके परिचयके कारण मुझपर विश्वास करके कहा है कि मैं पतिको देखना चाहती हूँ, यह कहनेके पश्चात् उनकी आँखें भर आयी थीं ॥ ४ ॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर धार्मिकश्रेष्ठ रामचन्द्र शीघ्रही ध्यानस्थ हो गये और उनकी आँखोंमें

स दीर्घमभिनिःश्वस्य जगतीमवलोकयन् । उवाच मेघसंकाशं विभीषणमुपस्थितम् ॥ ६ ॥
दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् । इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः । प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभिरचोदयत् ॥ ८ ॥
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः । मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः श्रीमान्विनीतो राक्षसेश्वरः॥ ९ ॥
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता । यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥१०॥
एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम् । अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर ॥११॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः । यथाह रामो भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥१२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता । भर्तृभक्त्या वृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥१३॥
ततः सीतां शिरःस्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा । महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥१४॥
आरोप्य शिबिकां सीतां राक्षसैर्बहनोचितैः । राक्षसैर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥१५॥
सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वापि ध्यानमास्थितम्। प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥१६॥
तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् । रोषं हर्षं च दैन्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥१७॥
ततो यानगतां सीतां सविमर्शं विचारयन् । विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥१८॥
राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत । वैदेही संनिकर्षं मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥१९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य विभीषणः । तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥२०॥

जल आ गया ॥ ५ ॥ लम्बी साँस छोड़कर पृथिवीकी ओर देखते हुए वे मेघके समान काले पास खड़े हुए विभीषणसे बोले ॥ ६ ॥ दिव्य अङ्गरागों और आभरणोंसे भूषित करके तथा मस्तकसे स्नान कराके शीघ्र यहाँ सीताको ले आओ ॥ ७ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर विभीषण शीघ्रतापूर्वक रनिवासमें गया और अपनी स्त्रियोंके द्वारा अपने आनेकी खबर उसने जनायी ॥ ८ ॥ श्रीमान् राक्षसराज विभीषण मस्तकपर हाथ जोड़कर सीताको देखकर उनसे बोले ॥ ९ ॥ जानकि ! दिव्य अङ्गरागों और आभूषणोंसे भूषित होकर आप सवारीपर बैठें । आपके पति आपको देखना चाहते हैं ॥ १० ॥ सीताने विभीषणकी बातें सुनकर उनसे कहा—राक्षसराज बिना स्नान किए ही मैं पतिको देखना चाहती हूँ ॥ ११ ॥ सीताके ऐसे वचन सुनकर विभीषणने कहा कि आपके पति रामचन्द्रने जैसा कहा है वैसाही आपको करना चाहिए ॥ १२ ॥ विभीषणकी बात सुनकर पतिको देवता समझनेवाली साध्वी सीताने पति-भक्तिके कारण उनकी आज्ञा मान ली ॥ १३ ॥ अनन्तर, सीताने शिरसे स्नान किया, शृङ्गार किया । बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र धारण किये । तब विभीषण सीताको पालकी ढोनेवाले राक्षसोंके द्वारा उन्हें रामचन्द्रके समीप ले गये ॥ १४,१५ ॥ महात्मा रामचन्द्रको ध्यानस्थ जानकर भी नम्र और प्रसन्न विभीषणने उनके समीप जाकर सीताके आनेकी खबर दी ॥ १६ ॥ राक्षसके घरमें बहुत दिन रहनेके बाद सीता आयी है, यह सुनकर रामचन्द्रके हृदयमें क्रोध, हर्ष और दीनता तीनोंने स्थान पाये ॥ १६ ॥ सवारीपर बैठी हुई सीताके संबधमें विचार करके बिना किसी प्रसन्नताके रामचन्द्र विभीषणसे बोले ॥ १८ ॥ सौम्य, राक्षसराज तथा मेरी विजयकी कामना करने-वाले, सीता मेरे पास शीघ्र आवे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर विभीषण शीघ्रही वहाँके लोगोंको

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः । उत्सारयन्तस्तान्योधान्समन्तात्परिचक्रमुः ॥२१॥
ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः । वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्तस्थुरन्ततः ॥२२॥
तेषामुत्सार्यमाणानां निःस्वनः सुमहानभूत् । वायुनोद्धूयमानस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥२३॥
उत्सार्यमाणान्दृष्ट्वाथ जगत्यां जातसंभ्रमान् । दाक्षिण्यात्तदामर्षाच्च वारयामास राघवः ॥२४॥
संरम्भाच्चाब्रवीद्रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव । विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥२५॥
किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः । निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥२६॥
न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया । नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥२७॥
व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे । न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ॥२८॥
सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता । दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥२९॥
विसृज्य शिबिकां तस्मात्पद्भ्यामेवापसर्पतु । समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः ॥३०॥
एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः । रामस्योपानयत्सीतां संनिकर्षं विनीतवत् ॥३१॥
ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमांश्च प्लवंगमः । निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥३२॥
लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली । विभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥३३॥
विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता । उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥३४॥

हटाने लगे ॥ २० ॥ चपकन पगड़ी पहिने हुए, फटी बेंत धारण करनेवाले शीघ्रही सब वीरोंको चारों ओरसे हटाने लगे ॥ २१ ॥ वानरों, भालुओं, राक्षसोंका समूह, हटजानेकी आज्ञा पाकर, वहाँसे दूर चला गया ॥ २२ ॥ उनके हटानेके कारण वहाँ बहुत बड़ा शोरगुल हुआ, जिस प्रकार वायुके झोंकेसे समुद्रमें शोरगुल होता है ॥ २३ ॥ जो लोग हटाये जा रहे थे, वे बहुत घबड़ा गये थे। यह देखकर रामचन्द्रने उदारता और क्रोधसे हटानेवालोंको रोक दिया ॥ २४ ॥ क्रोध करके आँखोंसे जलाते हुएके समान रामचन्द्रने विभीषणसे तानेके तौरपर यह कहा ॥ २५ ॥ बिना मुझसे पूछे, तुम क्यों इन लोगोंको तकलीफ दे रहे हो। यह उद्वेगजनक कार्य बन्द करो, ये लोग मेरे स्वजन हैं ॥ २६ ॥ घर, वस्त्र, चारदिवारी आदि स्त्रियोंके लिए परदा नहीं है और न लोगोंको हटाये जानेका राजोचित यह व्यवहार ही परदा हो सकता है। किन्तु उनका आचरण ही परदा है ॥ २७ ॥ दुःखमें, विपत्तिमें, युद्धमें, स्वयंवरमें, यज्ञमें, विवाहमें स्त्रियोंका देखना दूषित नहीं समझा जाता। सीता आज विपत्ति-ग्रस्त हैं। ये मानसिक दुःखसे दुःखिनी हैं। इनको देखनेमें दोष नहीं है, विशेषकर हमारे समीप तो दोष नहीं है ॥ २९ ॥ अतएव पालकी छोड़कर सीता पैरोंसे मेरे पास आवें। सीताको ये वानर आज देखें ॥ ३० ॥ रामके ऐसा कहनेपर विभीषण शंकित होकर नम्रतापूर्वक सीताको रामचन्द्रके पास ले गये ॥ ३१ ॥ अनन्तर, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान रामचन्द्रके ये वचन सुनकर बहुत दुःखी हुए ॥ ३२ ॥ लज्जासे अपने ही शरीरमें छिपती हुई सीता विभीषणके साथ अपने पतिके पास गयीं ॥ ३३ ॥ पतिको देवता समझनेवाली सीताने विस्मय हर्ष और स्नेहसे पतिका मुँह देखा ॥ ३४ ॥ बहुत दिनोंसे न देखे हुए पतिका मुँह देखकर सीताने मनके

अथ समपनुदन्मनःक्लमं सा सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तं विमलशशाङ्कनिभानना तदासीत् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्थदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः ११५

तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् । हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे । पौरुषाद्यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम् ॥ २ ॥
गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा संप्रमार्जिता । अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥ ३ ॥
अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः । अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥ ४ ॥
या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा । दैवसंपादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥ ५ ॥
संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति । कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥ ६ ॥
लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम् । सफलं तस्य च श्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः ॥ ७ ॥
युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतस्तथा । सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥ ८ ॥
विभीषणस्य च तथा सफलोऽद्य परिश्रमः । विगुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः॥ ९ ॥
इत्येवं वदतः श्रुत्वा सीता रामस्य तद्वचः । मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥१०॥

कष्टको दूर किया । पूर्णचन्द्रमाके समान प्रिय रामचन्द्रका मुँह देखकर सीताका मुख निर्मल चन्द्रमाके समान हो गया ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११४ ॥

विनयपूर्वक पास खड़ी हुई सीताको देखकर रामचन्द्र हृदयके भीतरी भावोंको कहने लगे ॥ १ ॥ कल्याणि, युद्धक्षेत्रमें शत्रुको जीतकर मैंने तुम्हारा उद्धार किया, तुम्हें लौटाया, या पराक्रमके द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह मैंने किया ॥२॥ मेरे क्रोधका अन्त हो गया, अपमानका बदला चुक गया, अपमान और शत्रु दोनोंको मैंने साथही मार गिराया ॥ ३ ॥ आज मेरा पराक्रम प्रकाशित हुआ, आज मेरा परिश्रम सफल हुआ, आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई है, अब मेरा अपनेपर अधिकार हुआ है, अर्थात् अब मैं क्रोध आदिके अधीन नहीं हूँ ॥ ४ ॥ मेरे अनुपस्थित रहनेपर चञ्चल चित्तवाले राक्षसने तुम्हारा हरण किया था, यह भाग्यका दोष था, भाग्यके कारण ऐसा हुआ था, उस दोषको मनुष्य होकर मैंने दूर किया ॥ ५ ॥ जो मनुष्य अपमानको तेजके द्वारा नहीं हटाता, उसके बहुत बड़े पुरुषार्थका भी क्या अर्थ है, उस क्षुद्र-बुद्धिका पुरुषार्थ व्यर्थ है ॥ ६ ॥ समुद्रका पार करना, लङ्काका जलाना आदि हनुमानने जो काम किये थे, आज वे सब सफल हुए ॥ ७ ॥ युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले तथा उचित और हितकारी परामर्श देनेवाले सेनासहित सुग्रीवका परिश्रम आज सफल हुआ ॥ ८ ॥ अपराधी अपने भाईको छोड़कर जो मेरे यहाँ स्वयं उपस्थित हुआ था, उस विभीषणका भी परिश्रम आज सफल हुआ ॥ ९ ॥ इस प्रकार कहते हुए रामचन्द्रके

पश्यतस्तां तु रामस्य समीपे हृदयप्रियाम् । जनवादभयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा ॥११॥
सीतामुत्पलपत्राक्षीं नीलकुञ्चितमूर्धजाम् । अवदद्वै वरारोहां मध्ये वानररक्षसाम् ॥१२॥
यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता । तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकाङ्क्षिणा ॥१३॥
निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना । अगस्त्येनदुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥१४॥
विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः । सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥१५॥
रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः । प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता ॥१६॥
प्राप्तचारित्रसंदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता । दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ॥१७॥
तद्गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे । एता दशदिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥१८॥
कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् । तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लोभेन चेतसा ॥१९॥
रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा । कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत् ॥२०॥
यदर्थं निर्जिता मे त्वं सोऽयमासादितो मया । नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामिति ॥२१॥
तदद्य व्याहृतं भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना । लक्ष्मणे वाथ भरते कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥२२॥
शत्रुघ्ने वाथ सुग्रीवे राक्षसे वा विभीषणे । निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मनः ॥२३॥

वचन सुनकर सीताकी मृगीके समान बड़ी आँखें आँसूसे भर गयीं ॥ १० ॥ हृदयप्रिया सीता रामचन्द्रके पास खड़ी थी, उसको देखकर तथा जनापवादका ध्यान करके उनका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया ॥ ११ ॥ वानरों और राक्षसोंके सामने कमलनेत्र, काले और घुँघुराले बालोंवाली सुन्दरी सीतासे रामचन्द्रने इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥ बदला चुकानेके लिए मनुष्यका जो कर्त्तव्य है वह, रावणको मारकर, मैंने किया। मैंने अपने सम्मानकी रक्षा की ॥ १३ ॥ तपस्याके द्वारा शुद्धात्मा अगस्त्य मुनिने दक्षिण दिशाको जीता था, जिसका जीतना दूसरेके द्वारा सम्भव न था, उसी प्रकार मैंने भी तुमको जीता है ॥ १४ ॥ तुम्हारा कल्याण हो। तुमको यह जान लेना चाहिए कि, जो मैंने यह युद्ध तुम्हारे लिए जीता है वह मित्रोंके पराक्रमसे जीता है, मैंने नहीं जीता है ॥ १५ ॥ अपने चरित्रकी रक्षा करते हुए अपवादको दूर करते हुए तथा प्रसिद्ध अपने कुलका कलङ्क हटाते हुए यह युद्ध मैंने मित्रोंके पराक्रमसे जीता है ॥ १६ ॥ तुम्हारे चरित्रमें सन्देहका अवसर उपस्थित हुआ है और तुम हमारे सामने खड़ी हो, आँखोंके रोगीको जिस प्रकार दीपक बुरा मालूम होता है उसी प्रकार तुम भी बुरी मालूम होती हो ॥ १७ ॥ हे जनकपुत्रि! तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ। ये दसों दिशाएँ खुली पड़ी हैं, अब मुझे तुम्हारा कोई काम नहीं है ॥ १८ ॥ कौन कुलीन और तेजस्वी मनुष्य दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीका एक साथी मिलनेके लोभसे ग्रहण कर सकता है ॥ १९ ॥ तुम रावणके गोदमें जा चुकी हो, तुमको उसने बुरी नजरसे देखा है, अपने महान् कुलका ध्यान रखकर मैं पुनः तुम्हारा ग्रहण कैसे कर सकता हूँ ॥ २० ॥ जिस कारणसे मैंने तुम्हारा उद्धार किया है, वह मैंने पा लिया, मेरा बदला चुक गया, मेरी आसक्ति अब तुममें नहीं है, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ ॥ २१ ॥ भद्रे, बहुत सोच-विचारकर मैंने तुमसे यह कहा है, लक्ष्मण या भरतके पास तुम जा सकती हो ॥ २२ ॥ शत्रुघ्न, सुग्रीव या राक्षस विभीषणके पास तुम रहो अथवा

नहि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् । मर्षयत्यचिरं सीते स्वगृहे पर्यवस्थिताम् ॥२४॥
ततः प्रियार्हश्रवणा तदप्रियं प्रियादुपश्रुत्य चिरस्य मानिनी ।
मुमोच बाष्पं रुदती तदा भृशं गजेन्द्रहस्ताभिहतेव वल्लरी ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः ॥११५॥

———:०:———

षोडशाधिकशततमः सर्गः ११६

एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् । राघवेण सरोषेण श्रुत्वा प्रव्यथिताभवत् ॥ १ ॥
सा तदाश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली । श्रुत्वा भर्तुर्वचो घोरं लज्जयावनताभवत् ॥ २ ॥
प्रविशन्तीव गात्राणि स्वानि सा जनकात्मजा । वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ३ ॥
ततो बाष्पपरिक्लिन्नं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् । शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥
किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् । रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ५ ॥
न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि । प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ६ ॥
पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशङ्कसे । परित्यजैनां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥ ७ ॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो । कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ८ ॥
मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते । पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी ॥ ९ ॥

जहाँ तुम्हें सुख मालूम पड़े वहाँ तुम रहो ॥ २३ ॥ सीते ! अपने घरमें रहनेके समय, तुम्हारा मनोहर दिव्यरूप देखकर, रावण कभी तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता ॥ २४ ॥ अनन्तर प्रिय वचन सुननेके योग्य सीता अपने प्रियसे वैसे अप्रिय वचन देरतक सुनकर रोने लगीं । हाथीकी सूँड़से आहत लताके समान उसकी दशा हो गयी ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥११५॥

———×———

रामचन्द्रके क्रोधसे ऐसे रोंगटे खड़े करनेवाले कठोर वचन सुनकर सीता व्यथित हुईं ॥ १ ॥ उस बड़े जनसमूहमें कभी न सुनी हुई पतिकी कठोर बातें सुनकर सीता लज्जासे झुक गयीं ॥ २ ॥ उन वचन-रूपी तीखे बाणोंसे सीता स्वयं अपने शरीरमेंही सिमिटकर सिकुड़ने लगीं और आँसू बहाने लगीं ॥ ३ ॥ अनन्तर आँसूसे भीगे अपने मुँहको पोछती हुई सीता धीरे-धीरे तथा रुक-रुककर इस प्रकार बोलने लगीं ॥ ४ ॥ वीर ! अयोग्य, कानोंको फाड़नेवाले ऐसे कठोर वचन आप क्यों सुना रहे हैं, ऐसी बातें तो छोटे आदमी छोटी स्त्रियोंको कहा करते हैं ॥ ५ ॥ महाबाहो, आप जैसी मुझे समझ रहे हैं, वैसी मैं नहीं हूँ; आप मेरी बातपर विश्वास कीजिये, मैं आपसे अपने चरित्रकी शपथ करके कहती हूँ ॥ ६ ॥ छोटे दरजेकी स्त्रियोंको देखकर आप यदि स्त्रीजातिपर सन्देह कर रहे हों तो इस सन्देहको हटा दें, यदि आपने मेरी परीक्षा ली हो, यदि आपको मेरा परिचय हो ॥७॥ रावणके शरीरसे मेरा शरीर छू गया है, पर मैं विवश थी; वैसा मैंने इच्छाकरके नहीं किया है, यह भाग्यका दोष है मेरा नहीं ॥ ८ ॥ मेरा अधिकार हृदयपर है और

सह संवृद्धभावेन संसर्गेण च मानद । यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥१०॥
प्रेषितस्ते महावीरो हनुमानवलोकक: । लङ्कास्थाहं त्वया राजन्किं तदा न विसर्जिता॥११॥
प्रत्यक्षं वानरस्यास्य तद्वाक्यसमनन्तरम् । त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया॥१२॥
न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात्संशये न्यस्य जीवितम् । सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥१३॥
त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्तता । लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥१४॥
अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् । मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम् ॥१५॥
न प्रमाणीकृत: पाणिर्बाल्ये मम निपीडित: । मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठत: कृतम् ॥१६॥
इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी । उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरायणम् ॥१७॥
चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् । मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥१८॥
अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि । या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥१९॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मण: परवीरहा । अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥२०॥
स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् । चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥२१॥
नहि रामं तदा कश्चित्कालान्तकयमोपमम् । अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्यशकत्सुहृत् ॥२२॥

वह आज भी आपमें अनुरक्त है । शरीर पराधीन है, उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं । मैं दुर्बल उनकी रक्षा कैसे कर सकती ॥ ९ ॥ मानद, हम और आप साथ-साथ बढ़े हैं, इसपरभी यदि आपने मुझे नहीं पहचाना तो मैं सदाके लिए मारी गयी, अब मेरी रक्षा नहीं ॥ १० ॥ मुझे देखनेके लिए महावीर हनुमानको आपने लङ्कामें भेजा था, राजन् ! उसी समय आपने लङ्कामें ही मेरा त्याग क्यों न कर दिया । अर्थात् हनुमानसे ही आपने त्यागकी बात क्यों न कहवा दी ॥ ११ ॥ वीर ! इस वानरके सामनेही, इसके त्यागकी बात कहनेपर-ही, आपके त्यागकी बात सुनतेही, मैं अपने प्राण त्याग देती ॥ १२ ॥ फिर अपने जीवनको संकटमें डाल-कर यह परिश्रम न करना पड़ता और आपके मित्रोंको यह व्यर्थ कष्ट भी न होता ॥ १३ ॥ राजसिंह, क्रोधके अधीन होकर आपने तो साधारण मनुष्योंके समान स्त्रीत्वकोही सामने रखा । स्त्रियाँ ऐसीही होती होंगी यह समझ लिया ॥ १४ ॥ जनकने मेरा पालन किया है, मैं जनकके वंशकी हूँ, पृथिवीसे उत्पन्न हुई हूँ, मेरा चरित्र शुद्ध रहा है, इन बातोंकी ओर आपने ध्यान नहीं दिया है ॥१५॥ बाल्यावस्थामें आपने मेरा पाणि-ग्रहण किया था, इसका भी विचार नहीं किया । मेरी भक्ति, मेरा शील सबको आपने भुला दिया ॥ १६ ॥ इस प्रकार कहती हुई, रोनेके कारण रुक-रुककर बोलती हुई सीता ध्यानमग्न दुःखी लक्ष्मणसे बोली ॥१७॥ लक्ष्मण ! मेरे लिए चिता तयार कर दो, वही मेरे इस कष्टकी दवा है, मिथ्या कलङ्कसे कलङ्कित होकर मैं जीना नहीं चाहती ॥ १८ ॥ मेरे गुणोंसे मेरे पति प्रसन्न नहीं हुए, उन्होंने जनसमाजमें मेरा त्याग किया, ऐसी स्त्रियोंके लिए जो उचित मार्ग है उसमें जानेके लिए मैं अग्निप्रवेश करूँगी ॥ १९ ॥ सीताके ऐसा कहनेपर शत्रुहन्ता लक्ष्मणने क्रोधकरके रामचन्द्रकी ओर देखा ॥ २० ॥ इशारोंके द्वारा रामचन्द्रके मनका अभिप्राय समझकर पराक्रमी लक्ष्मणने रामचन्द्रकी इच्छाके अनुसार चिता तयार की ॥ २१ ॥ उस समय प्रलयकालके यमराजके समान भयङ्कर रामचन्द्रसे कोई भी उनका मित्र कुछ कह नहीं सकता था, न उनकी

अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम् । उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥२३॥
प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली । बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥२४॥
यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् । तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥२५॥
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः । तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥२६॥
एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् । विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशङ्केनान्तरात्मना ॥२७॥
जनश्च सुमहांस्तत्र बालवृद्धसमाकुलः । ददर्श मैथिलीं दीप्तां प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥२८॥
सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा । पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य संनिधौ ॥२९॥
ददृशुस्तां विशालाक्षीं पतन्तीं हव्यवाहनम् । सीतां सर्वाणि रूपाणि रुक्मवेदिनिभां तदा ॥३०॥
ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम् । ऋषयो देवगन्धर्वा यज्ञे पूर्णाहुतीमिव ॥३१॥
प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने । पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ॥३२॥
ददृशुस्तां त्रयो लोका देवगन्धर्वदानवाः । शप्तां पतन्तीं निरये त्रिदिवाद्देवतामिव ॥३३॥
तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः । रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥११६॥



ओर देख सकता था और न उनसे कोई प्रार्थना ही कर सकता था ॥ २२ ॥ नीचे सिर झुकाकर बैठे हुए रामचन्द्रकी प्रदक्षिणा करके जलती आगकी ओर सीता बढ़ीं ॥ २३ ॥ देवताओं और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके हाथ जोड़कर सीता अग्निके समीप जाकर इस प्रकार बोलीं ॥ २४ ॥ यदि मेरा हृदय रामचन्द्रके अतिरिक्त अन्य किसी दूसरी जगह न गया हो तो लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब प्रकारसे रक्षा करें ॥२५॥ मेरा चरित्र शुद्ध है पर रामचन्द्र मुझे दुश्चरित्रा समझ रहे हैं, मुझ निष्कलङ्किनीको कलङ्किनी समझ रहे हैं, यदि मैं निष्कलङ्किनी होऊँ तो लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब तरहसे रक्षा करें ॥२६॥ ऐसा कहकर तथा अग्निदेवकी परिक्रमा करके सीताने निःशङ्क होकर जलती आगमें प्रवेश किया ॥२७॥ बालक वृद्धोंकी बड़ी भीड़ने दीप्तिमयी सीताको अग्नि प्रवेश करते देखा ॥ २८ ॥ चमकीले सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित स्वयंतप्त काञ्चनतुल्य सीता सबलोगोंके सामने ही अग्निमें गिर पड़ीं ॥ २९ ॥ विशालाक्षी सीताको अग्निप्रवेश करते सबने देखा। सीता सुवर्णकी वेदीके समान मालूम पड़ती थीं ॥३०॥ महाभागा सीताको अग्निप्रवेश करते हुए ऋषि देवता और गन्धर्वोंने पूर्णाहुतिके समान देखा ॥ ३१ ॥ आगमें गिरती सीताको देखकर सब स्त्रियाँ विलाप करने लगीं । मन्त्रोंके द्वारा संस्कृत यज्ञकी वसुधाराके समान सीता अग्निमें गिर पड़ीं ॥ ३२ ॥ तीनों लोकके देवता, दानव और गन्धर्वोंने सीताको आगमें पड़ते देखा, मानों स्वर्गकी देवी शापके कारण नरकमें गिरती हो ॥ ३३ ॥ सीताके अग्निप्रवेश करते समय राक्षसों और वानरोंका अद्भुत हाहाकार हुआ ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ११७

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैवं वदतां गिरः। दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ १ ॥
ततो वैश्रवणो राजा यमश्च पितृभिः सह। सहस्राक्षश्च देवेशो वरुणश्च जलेश्वरः ॥ २ ॥
षडर्धनयनः श्रीमान्महादेवो वृषध्वजः। कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ३ ॥
एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसंनिभैः। आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥ ४ ॥
ततः सहस्ताभरणान्प्रगृह्य विपुलान्भुजान्। अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठा राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ ५ ॥
कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः। उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ॥
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्ध्यसे ॥ ६ ॥
ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः। त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ ७ ॥
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः। अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ ॥ ८ ॥
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परंतप। उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥ ९ ॥
इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः। अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठान्रामो धर्मभृतां वरः ॥१०॥
आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्। सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद्ब्रवीतु मे ॥११॥
इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। अब्रवीच्छृणु मे वाक्यं सत्यं सत्यपराक्रम ॥१२॥
भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः। एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥१३॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव। लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥१४॥

विलापमें कही हुई लोगोंकी बातें सुनकर रामचन्द्र दुखी हुए। धर्मात्मा रामचन्द्र आँखोंमें आँसू भरकर थोड़ी देर तक विचार करते रहे ॥ १ ॥ अनन्तर राजा वैश्रवण, पितरोंके साथ यमराज, देवराज इन्द्र, जलराज वरुण, त्रिनेत्र वृषभवाहन महादेव, सबलोकोंके कर्ता और वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा ये सब सूर्यके समान दीप्तिमान् विमानोंसे लंकानगरीमें आये और वे रामचन्द्रके पास उपस्थित हुए ॥ २—४ ॥ वे देवता हाथ जोड़कर खड़े हुए, रामचन्द्रके आभूषण भूषित विशाल हाथोंको पकड़कर उनसे बोले ॥ ५ ॥ लोककर्ता ज्ञानिश्रेष्ठ विभु! आप आगमें गिरी सीताकी उपेक्षा क्यों करते हैं, आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हो इस बातको क्यों नहीं समझते हो ॥ ६ ॥ पहले ऋतधामा नामके वसु थे, जो वसुओंके प्रजापति थे, आदि पुरुष थे, वे तीनों लोकोंके उत्पादक थे, वे ही आप हैं ॥ ७ ॥ रुद्रोंमें आप आठवें रुद्र हैं और साध्योंमें पाँचवें साध्य हैं। दोनों आश्विनकुमार तुम्हारे कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं ॥ ८ ॥ आप सृष्टिके आदि अन्त और मध्यमें दिखायी पड़ते हैं, वे आप साधारण मनुष्यके समान सीताकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ॥ ९ ॥ देवताओंके ऐसा कहनेपर लोकस्वामी धर्मात्मा रामचन्द्र उन देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ मैं अपनेको मनुष्य समझता हूँ, मैं दशरथ-पुत्र राम हूँ, मैं यथार्थमें जो होऊँ, जहाँसे आया होऊँ वह आपलोग कहें ॥ ११ ॥ ककुत्स्थवंशी रामचन्द्रसे श्रेष्ठ वेदज्ञ ब्रह्मा बोले—हे सत्यपराक्रम! आप मेरी सत्य बातें सुनें ॥१२॥ आप चक्र धारण करनेवाले नारायण देव हैं, आप एकदन्त वाराह हैं, जो भूत और भावी देव-शत्रुओंको जीतनेवाले हैं ॥ १३ ॥ आप अविनाशी सत्यब्रह्म हैं, आप

शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः । अजितः खड्गधृग्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥१५॥
सेनानीर्ग्रामणीः सर्व त्वं बुद्धिस्त्वं क्षमा दमः । प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥१६॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् । शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥१७॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः । त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥१८॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परात्परः ॥१९॥
प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति । दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥२०॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च । सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक् ॥२१॥
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् । अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥२२॥
त्रींल्लोकान्धारयन्राम देवगन्धर्वदानवान् । अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥२३॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो । निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥२४॥
संस्कारास्त्वभवन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना । जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥२५॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः । त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥२६॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम् । सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥२७॥

सृष्टिके मध्य और अन्तमें वर्तमान रहते हैं, आप लोकोंके परमधर्म हैं, आप विष्वक्सेन हैं, चतुर्भुज हैं ॥१४॥ शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, पुरुष, पुरुषोत्तम, अजित खड्गधारी विष्णु और बृहद् बलधारी कृष्ण आपही हैं ॥१५॥ आप सेनापति हैं, ग्रामणी हैं, आपही बुद्धि हैं, क्षमा हैं, दया हैं, आपही उत्पादक और विनाशक हैं, आपही इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्र हैं और मधुसूदन हैं ॥ १६ ॥ उज्ज्वल कर्म करनेवाले आप महेन्द्र हैं, युद्धोंको समाप्त करनेवाले पद्मनाभ हैं, आप शरणदाता हैं, शरणमें आये हुएके रक्षक हैं, ऐसा दिव्य महर्षि कहते हैं ॥ १७ ॥ आप हजार शृङ्ग, सौ मस्तकवाले वेदस्वरूप महावृषभ हैं, आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता हैं ॥ १८ ॥ सिद्धों और साध्योंके आप आश्रयदाता तथा पूर्वज हैं, आप यज्ञ हैं, वषट्कार हैं, ओंकार है और आप श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ आपकी उत्पत्ति और विनाशकी कोई बात नहीं जानता, आप कौन हैं यह भी नहीं जानता। आप सब प्राणियोंमें, गौओंमें और ब्राह्मणोंमें दीख पड़ते हैं ॥ २० ॥ सब दिशाओं, आकाश, पर्वतों और नदियोंमें आप व्याप्त हैं। आपके हजार चरण हैं, सौ मस्तक हैं और हजार नेत्र हैं ॥ २१ ॥ आप सब प्राणियोंको धारण करते हैं, पृथिवी और पर्वतोंको धारण करते हैं। पृथिवीके अन्त होनेपर प्रलयके समय आप जलमें सर्प रूपसे दीख पड़ते हैं ॥ २२ ॥ देवता, गन्धर्व और दानवोंके साथ तीनों लोकोंको धारण करते हुए हम आपके हृदयरूपसे वर्तमान हैं और आपकी जिह्वा सरस्वती देवी हैं ॥ २३ ॥ आपके शरीरके रोम देवमय ब्रह्माने पहले बनाये थे। आपका निमेष (आँखोंका झपना) रात है और उन्मेष (आँखोंका खुलना) दिन है ॥ २४ ॥ समस्त वेद आपके संस्कार हैं, स्मृति हैं, आपके विना यह सब कुछ भी नहीं हैं, समस्त संसार आपका शरीर है और आपकी स्थिरता पृथिवी है ॥ २५ ॥ अग्नि आपका क्रोध है और चन्द्रमा आपकी प्रसन्नता है। पहले आपने तीन पैरोंसे आपने तीनों लोकोंको माप लिया था ॥ २६ ॥ अजेय बलिको बाँधकर आपने इन्द्रको राजा

वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर ॥२८॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम। अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः ॥२९॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः। अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥३०॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्। प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥३१॥
इममार्षं स्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम्। ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ११८

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम्। अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ॥ १ ॥
विधूयाथ चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः। उत्तस्थौ मूर्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥ २ ॥
तरुणादित्यसंकाशां तप्तकाञ्चनभूषणाम्। रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ३ ॥
अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम्। ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ ४ ॥
अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः। एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ ५ ॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा। सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा ॥ ६ ॥
रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा। त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने सती ॥ ७ ॥

बनाया। सीता लक्ष्मी हैं, आप विष्णु हैं, आप प्रजापति कृष्ण हैं ॥ २७ ॥ रावणके वधके लिए मर्त्यलोकमें आपने मनुष्य-शरीर धारण किया है। धार्मिकश्रेष्ठ, हमलोगोंका यह काम आपने कर दिया ॥ २८ ॥ रामचन्द्र, रावणको आपने मार दिया, अब आप प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गारोहण कीजिए। देव! आपका बल अमोघ है, आपके पराक्रम कभी व्यर्थ नहीं होते ॥ २९ ॥ रामचन्द्र, आपका दर्शन, आपका परिचय अमोघ है, आपके पृथिवीके भक्त भी अमोघ होंगे ॥ ३० ॥ पुराण पुरुषोत्तम! आपके जो भक्त होंगे, वे इस लोक तथा परलोकमें सब मनोरथोंको पावेंगे ॥ ३१ ॥ यह आर्षकी कही स्तुति है, दिव्य इतिहास है, जो मनुष्य इसका कीर्तन करेगा, उसका पराजय नहीं होगा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११७ ॥

ब्रह्माके कहे इन शुभ वाक्योंको सुनकर अग्निदेव सीताको गोदमें उठाकर निकले ॥ १ ॥ उस चिताको फोड़कर अग्निदेव शरीर धरकर सीताको लेकर निकले ॥ २ ॥ मध्याह्न सूर्यके समान दीप्तिमती, उज्ज्वल सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित, रक्तवस्त्रधारिणी, नीले घुंघराले बालोंवाली, अम्लानमालाधारिणी और अनिन्दित सीताको हाथमें उठाकर अग्निदेवने रामचन्द्रको दिया ॥ ३, ४ ॥ लोकसाक्षी अग्निदेव रामचन्द्रसे बोले—यह सीता आपकी है, यह निष्पाप हैं ॥ ५ ॥ वचन, मन, बुद्धि और आँखोंसे भी इसने अपना चरित्र नष्ट नहीं किया है, इस सदाचारिणीने आपपर अत्याचार नहीं किया है ॥६॥ बलोन्मत्त राक्षस

क्रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा । रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः ॥ ८ ॥
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली । नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् । न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥१०॥
ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैवं वदतां वरः । दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः ॥११॥
एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः । उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥१२॥
अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति । दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥१३॥
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः । इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ॥१४॥
अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् । अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥१५॥
इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा । रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥१६॥
न च शक्तः सुदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् । प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव ॥१७॥
नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती । अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥१८॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा । न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥१९॥
अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम् । स्निग्धानां लोकनाथानामेवं च वदतां हितम् ॥२०॥

रावणने इसका हरण किया था, उस समय यह गरीबिन निर्जन वनमें थी, आप भी उसके पास नहीं थे ॥७॥ रावणने अन्तःपुरमें इसे रोक रखा, यहाँ भी इसका चित्त तुममें था, तुम्हारी चिन्ता किया करती थी। क्रूर बुद्धिवाली क्रूर राक्षसियोंके द्वारा इसकी रखवाली होती थी, इससे और भी विवश थी ॥ ८ ॥ इसको बहुतसे प्रलोभन दिये गये, बहुत यह धमकायी गयी, फिर भी यह रावणकी ओर आकृष्ट नहीं हुई, क्योंकि इसका चित्त तुममें लगा हुआ था ॥ ९ ॥ इसके भाव शुद्ध हैं, यह पापहीन है, इसका तुम ग्रहण करो, इससे कुछ भी न कहना यह मेरी आज्ञा है ॥ १० ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र इससे प्रसन्न हुए, धर्मात्मा रामचन्द्रने थोड़ी देर तक विचार किया। उस समय हर्षसे उनकी आँखें व्याकुल हो गयी थीं ॥११॥ अग्निके ऐसा कहनेपर महापराक्रमी, धीर, तेजस्वी रामचन्द्र देवश्रेष्ठ अग्निदेवसे इस प्रकार बोले ॥ १२ ॥ सीताकी पवित्रताकी परीक्षा लोगोंके लिए आवश्यक थी, क्योंकि यह बहुत दिनोंतक रावणके घरमें रही है ॥ १३ ॥ जानकीकी पवित्रताकी परीक्षा यदि मैं न करता तो लोग मेरे लिए यही कहते कि यह दशरथका पुत्र रामचन्द्र कामी है, मूर्ख है ॥ १४ ॥ जानकीका हृदय सदा मुझमें ही लगा रहता है, यह सदा मेरी इच्छाओंका अनुवर्तन करती है, यह मैं भी जानता हूँ ॥ १५ ॥ विशालाक्षी सीता स्वयं अपने तेजसे रक्षित थी, रावण इसका अपमान नहीं कर सकता, इसकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता, जिस प्रकार समुद्र तीरको अतिक्रमण नहीं करता ॥१६॥ दुष्टात्मा रावण मनसे भी सीतापर आक्रमण नहीं कर सकता, क्योंकि उसके लिए सीताका पाना असम्भव है, जिस प्रकार प्रदीप्त अग्निशिखाको कोई अपने वशमें नहीं कर सकता ॥ १७ ॥ रावणके भी घरमें इसका तिरस्कार नहीं हो सकता, कोई उसपर अत्याचार नहीं कर सकता, क्योंकि वह केवल मेरीही है जिस प्रकार प्रभा सूर्यकी है ॥ १८ ॥ जनकपुत्री सीताकी पवित्रता तीनों लोकोंने स्वीकार की, मैं इसे छोड़ कैसे सकता, जिस प्रकार आत्माभिमानी पुरुष कीर्तिको नहीं छोड़ता ॥ १९ ॥ आप

इत्येवमुक्त्वा विजयी महाबलः प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामः प्रियया महायशाः सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ११९

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं राघवेणानुभाषितम् । ततः शुभतरं वाक्यं व्याजहार महेश्वरः ॥ १ ॥
पुष्कराक्ष महाबाहो महावक्षः परंतप । दिष्ट्या कृतमिदं कर्म त्वया धर्मभृतां वर ॥ २ ॥
दिष्ट्या सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः । अपवृत्तं त्वया संख्ये रामरावणजं भयम् ॥ ३ ॥
आश्वास्य भरतं दीनं कौसल्यां च यशस्विनीम् । कैकेयीं च सुमित्रां च दृष्ट्वा लक्ष्मणमातरम् ॥ ४ ॥
प्राप्य राज्यमयोध्यां च नन्दयित्वा सुहृज्जनम् । इक्ष्वाकूणां कुले वंशं स्थापयित्वा महाबल ॥ ५ ॥
इष्ट्वा तुरगमेधेन प्राप्य चानुत्तमं यशः । ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा त्रिदिवं गन्तुमर्हसि ॥ ६ ॥
एष राजा दशरथो विमानस्थः पिता तव । काकुत्स्थ मानुषे लोके गुरुस्तव महायशाः ॥ ७ ॥
इन्द्रलोकं गतः श्रीमांस्त्वया पुत्रेण तारितः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥ ८ ॥
महादेववचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत्पितुः ॥ ९ ॥
दीप्यमानं स्वया लक्ष्म्या विरजोऽम्बरधारिणम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं प्रभुः ॥१०॥

लोकपाल लोग मेरे हितैषी है आपलोग जो कह रहे हैं वह अवश्य ही मुझे करना चाहिए ॥ २० ॥ इस प्रकार विजयी महाबली रामचन्द्रने कहा, उन्होंने जो काम किये थे उसके लिए देवताओंने उनकी प्रशंसा की। यशस्वी रामचन्द्र सीताको साथ लेकर सुखका अनुभव करने लगे, क्योंकि वे सुखभोगके योग्य थे ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायणके युद्धकाण्डका एकसौअठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११८ ॥

रामचन्द्रके कहे इस उत्तम वचनको सुनकर महादेवने हितकारी वचन कहे ॥ १ ॥ कमलनेत्र, महाबाहो, विशालवक्षी रामचन्द्र, यह प्रसन्नताकी बात है कि तुमने यह काम किया ॥ २ ॥ समस्त संसारके लिए यह बड़ाभारी अन्धकार था। आपने रावणजनित उग्र भयको युद्धमें दूर किया ॥ ३ ॥ बिचारे भरत, यशस्विनी कौशल्या, कैकयी और लक्ष्मणकी माता सुमित्राको धैर्य देकर, अयोध्याका राज्य पाकर, मित्रोंको प्रसन्नकर, इक्ष्वाकुकुलमें अपना वंश स्थापितकरके, अश्वमेध यज्ञ करके, उत्तम यश पाकर, ब्राह्मणोंको धन देकर आपको स्वर्ग जाना चाहिए ॥ ४, ६ ॥ ये तुम्हारे पिता राजा दसरथ विमानपर बैठे हुए हैं। ये महायशस्वी मनुष्यलोकमें तुम्हारे गुरु थे, पिता थे ॥ ७ ॥ ये इन्द्रलोकमें निवास करते हैं, पुत्र होकर तुम्हींने इनका उद्धार किया है। तुम अपने भाई लक्ष्मणके साथ इनको नमस्कार करो ॥ ८ ॥ महादेवके वचन सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ विमानपर बैठे हुए अपने पिताको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ राजा दसरथ अपनी शोभासे शोभित हो रहे थे, उनमें मलीनता न थी, वस्त्र पहने हुए थे। प्रभु रामचन्द्रने भाई लक्ष्मणके

हर्षेण महताविष्टो विमानस्थो महीपतिः । प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा पुत्रं दशरथस्तदा ॥११॥
आरोप्याङ्के महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे ॥१२॥
न मे स्वर्गो बहुमतः संमानश्च सुरर्षभैः । त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥१३॥
कैकेय्या यानि चोक्तानि वाक्यानि वदतां वर । तव प्रव्राजनार्थानि स्थितानि हृदये मम ॥१४॥
त्वां तु दृष्ट्वा कुशलिनं परिष्वज्य सलक्ष्मणम् । अद्य दुःखाद्विमुक्तोऽस्मि नीहारादिव भास्करः ॥१५॥
तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना । अष्टावक्रेण धर्मात्मा कहोलो ब्राह्मणो यथा ॥१६॥
इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः । वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
सिद्धार्था खलु कौसल्या या त्वां राम गृहं गतम् । वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यते शत्रुसूदनम् ॥१८॥
सिद्धार्थाः खलु ते राम नरा ये त्वां पुरीं गतम् । राज्ये चैवाभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ते वसुधाधिपम् ॥१९॥
अनुरक्तेन बलिना शुचिना धर्मचारिणा । इच्छेयं त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥२०॥
चतुर्दश समाः सौम्य वने निर्यातितास्त्वया । वसता सीतया सार्धं मत्प्रीत्या लक्ष्मणेन च ॥२१॥
निवृत्तवनवासोऽसि प्रतिज्ञा पूरिता त्वया । रावणं च रणे हत्वा देवताः परितोषिताः ॥२२॥
कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन । भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥२३॥
इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् । कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥२४॥
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया । स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो ॥२५॥

साथ अपने पिताको देखा ॥ १० ॥ विमानपर बैठे हुए राजा दसरथ प्राणोंसे भी प्रिय अपने पुत्रोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ सिंहासनपर बैठे हुए दसरथने पुत्रोंको गोदमें ले लिया, भुजाओंसे उनका आलिङ्गन करके वे बोले ॥ १२ ॥ रामचन्द्र, तुम्हारे बिना यह स्वर्ग मुझे अच्छा नहीं लगता और न देवताओंके द्वारा होनेवाला सम्मान ही अच्छा लगता है, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥१३॥ तुम्हें वन भेजनेके लिए केकयीने जो बातें कही थीं, वे सब बातें मेरे हृदयमें आज भी बैठी हुई हैं ॥ १४ ॥ लक्ष्मणके सहित तुमको कुशली देखकर तथा तुमलोगोंका आलिङ्गन कर मैं दुःखसे छूट गया हूँ, जिस प्रकार सूर्य कुहरेसे निकल जाता है ॥१५॥ पुत्र! तुम महात्मा पुत्रने मेरा उद्धार कर दिया, जिस प्रकार अष्टावक्रने अपने पिता धर्मात्मा कोहल ब्राह्मणका उद्धार किया था ॥ १६ ॥ सौम्य, आज मुझे मालूम हुआ है, देवताओंके द्वारा खबर मिली है, रावणके वधके लिए तुम्हारे रूपमें छिपकर पुरुषोत्तम विष्णुने अवतार लिया है ॥१७॥ राम! कौशल्या भाग्यवती है, उसीका मनोरथ पूरा होगा, जो शत्रुको मारकर वनसे लौटनेपर तुम्हें घरमें देखेगी ॥ १८ ॥ रामचन्द्र! अयोध्यानिवासी वे पुरुष भी धन्य हैं, जो राज्याभिषेक होनेपर राजाके रूपमें तुम्हें देखेंगे ॥ १९ ॥ तुम्हारे अनुगामी, पवित्र, बली, धर्मात्मा भरतके साथ मैं तुमको देखना चाहता हूँ ॥ २० ॥ सौम्य! मेरी प्रसन्नताके लिए सीता और लक्ष्मणके साथ तुमने वनमें चौदह वर्ष बिता दिया ॥ २१ ॥ तुम्हारे वनवासकी अवधि पूरी हुई, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई, युद्धमें रावणको मारकर तुमने देवताओंको सन्तुष्ट किया ॥ २२ ॥ तुमने काम किये, तुमने यश पाया। राज्य पाकर भाइयोंके साथ दीर्घायु हो ॥ २३ ॥ दशरथके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रने हाथ जोड़कर कहा—धर्मज्ञ, केकयी और भरतपर आप प्रसन्न हों ॥ २४ ॥ आपने केकयीको शाप दिया है

तथेति स महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम् । लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥२६॥
धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि । रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथोत्तरम् ॥२७॥
रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन । रामः सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सदा ॥२८॥
एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः । अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२९॥
एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम् । देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥३०॥
अवाप्तं धर्माचरणं यशश्च विपुलं त्वया । एवं शुश्रूषता व्यग्रं वैदेह्या सह सीतया ॥३१॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं राजा स्नुषां बद्धाञ्जलिं स्थिताम् । पुत्रीत्याभाष्य मधुरं शनैरेनामुवाच ह ॥३२॥
कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति । रामेणेदं विशुद्ध्यर्थं कृतं वै त्वद्धितैषिणा ॥३३॥
सुदुष्करमिदं पुत्रि तव चारित्रलक्षणम् । कृतं यत्तेऽन्यनारीणां यशो ह्यभिभविष्यति ॥३४॥
न त्वं कामं समाधेया भर्तृशुश्रूषणं प्रति । अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥३५॥
इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां च राघवः । इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो नृपः ॥३६॥

विमानमास्थाय महानुभावः श्रिया च संहृष्टतनुर्नृपोत्तमः ।
आमन्त्र्य पुत्रौ सह सीतया च जगाम देवप्रवरस्य लोकम् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥११९॥

कि पुत्रके साथ मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ—यह भयङ्कर शाप कैकयीको स्पर्श न करे, उसपर न लगे ॥ २५ ॥ दसरथने रामचन्द्रकी प्रार्थना भी स्वीकार की। हाथ जोड़कर खड़े राम और लक्ष्मणका आलिङ्गन करके दसरथ लक्ष्मणसे बोले ॥ २६ ॥ धर्मज्ञ, तुम धर्म पाओगे और पृथिवीमें विपुल यश पाओगे। रामके प्रसन्न रहनेसे तुम स्वर्ग और महत्व पाओगे ॥ २७ ॥ हे सुमित्रानन्दवर्धन, तुम रामकी सेवा करो, राम सब प्राणियोंकी सदा भलाई करते हैं ॥ २८ ॥ ये इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध और महर्षि पुरुषोत्तम महात्मा रामचन्द्रको प्रणाम करके उनकी पूजा करते हैं ॥ २९ ॥ ये रामचन्द्र वे हैं जो अक्षर अव्यक्त तथा वेद-वर्णित कहे जाते हैं। ये रामचन्द्र देवताओंके हृदय हैं, रहस्य हैं ॥ ३० ॥ वैदेही सीताके साथ रामचन्द्रकी सेवा करते हुए तुमने धर्माचरण किया और विपुल यश पाया ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर राजा दसरथ हाथ जोड़कर खड़ी हुई पुत्रवधू सीताको 'पुत्री' कहकर उससे इस प्रकार बोले ॥ ३२ ॥ पुत्रि ! तुम्हें रामचन्द्रपर क्रोध नहीं करना चाहिए और न इनका त्यागही करना चाहिए। तुम्हारा हित करनेके लिए और तुम्हारी पवित्रता घोषित करनेके लिए इन्होंने ऐसा किया है ॥ ३३ ॥ पुत्रि ! तुमने चरित्ररक्षाके लिए जो यह दुष्कर कर्म किया है, उससे दूसरी स्त्रियोंका यश छिप जायगा ॥ ३४ ॥ पतिसेवाके विषयमें मुझे तुमसे कुछ कहना नहीं है, अर्थात् इस विषयमें तुम स्वयं दक्ष हो, पर इतना तो मैं अवश्य कहता हूँ कि यह तुम्हारे लिए सर्वश्रेष्ठ देवता हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार दोनों पुत्रों और सीताको सन्देश देकर राजा दसरथ विमानपर इन्द्रलोक चले गये ॥ ३६ ॥ महानुभाव दसरथ प्रसन्नचित्तसे विमानपर चढ़कर पुत्रों और सीतासे विदा होकर देवराज इन्द्रके लोकमें गये ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११९ ॥

विंशाधिकशततमः सर्गः १२०

प्रतिप्रयाते काकुत्स्थे महेन्द्रः पाकशासनः। अब्रवीत्परमप्रीतो राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥१॥
अमोघं दर्शनं राम तवास्माकं नरर्षभ। प्रीतियुक्ताः स्म तेन त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् ॥२॥
एवमुक्तो महेन्द्रेण प्रसन्नेन महात्मना। सुप्रसन्नमना हृष्टो वचनं प्राह राघवः ॥३॥
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि ते विबुधेश्वर। वक्ष्यामि कुरु मे सत्यं वचनं वदतां वर ॥४॥
मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम्। ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥५॥
मत्कृते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च वानराः। तान्प्रीतमनसः सर्वान्द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥६॥
विक्रान्ताश्चापि शूराश्च न मृत्युं गणयन्ति च। कृतयत्ना विपन्नाश्च जीवयैतान्पुरंदर ॥७॥
मत्प्रियेष्वभिरक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति ये। त्वत्प्रसादात्समेयुस्ते वरमेतमहं वृणे ॥८॥
नीरुजो निर्व्रणांश्चैव संपन्नबलपौरुषान्। गोलाङ्गूलांस्तथर्क्षांश्च द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥९॥
अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि च फलानि च। नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥१०॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्य राघवस्य महात्मनः। महेन्द्रः प्रत्युवाचेदं वचनं प्रीतिसंयुतम् ॥११॥
महानयं वरस्तात यस्त्वयोक्तो रघूत्तम। द्विर्मया नोक्तपूर्वं च तस्मादेतद्भविष्यति ॥१२॥
समुत्तिष्ठन्तु ते सर्वे हता ये युधि राक्षसैः। ऋक्षाश्च सह गोपुच्छैर्निकृत्ताननबाहवः ॥१३॥
नीरुजो निर्व्रणाश्चैव संपन्नबलपौरुषाः। समुत्थास्यन्ति हरयः सुप्ता निद्राक्षये यथा ॥१४॥

राजा दशरथके लौट जानेपर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न होकर रामचन्द्रसे बोले। रामचन्द्र हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े थे ॥ १ ॥ नरश्रेष्ठ राम, तुम्हारा दर्शन हमलोगोंके लिए अमोघ है, इससे हमलोग बहुत प्रसन्न हैं, जो तुम चाहो वह मुझसे माँगो ॥ २ ॥ महात्मा इन्द्रके प्रसन्न होकर ऐसा कहनेपर रामचन्द्र हर्षित होकर प्रसन्नमनसे उनसे बोले ॥ ३ ॥ देवराज ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं जो कहता हूँ उस मेरे वचनको सत्य कर दीजिए, अर्थात् मेरी बातको पूर्ण कीजिए ॥ ४ ॥ मेरे लिए पराक्रम करके जो वानर यमलोकमें गये हैं, वे सब पुनः जीवित होकर उठ खड़े हों ॥ ५ ॥ क्योंकि मेरे लिए जो वानर अपनी स्त्रियों और पुत्रोंसे वियुक्त हुए हैं, हे मानद ! उन प्रसन्नचित्त वानरोंको मैं देखना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ वे पराक्रमी हैं, वीर हैं, मृत्युको कुछ नहीं समझते, उनलोगोंने मेरे लिए विपत्ति उठायी और विपत्तिमें पड़े, इन्द्र ! आप उनलोगोंको जीवित कर दें ॥७॥ जो मेरा प्रिय काम करनेके लिए तत्पर हैं और मृत्युको भी कुछ नहीं समझते, वे सब आपकी कृपासे मुझसे आकर मिलें—यही वर मैं चाहता हूँ ॥८॥ मानद, नीरोग, बल-पराक्रमयुक्त तथा अगारक्षित वानरों और भालुओंको मैं देखना चाहता हूँ ॥ ९ ॥ वे वानर जहाँ रहें वहाँ समय न रहनेपर भी फलफूल, मूल इत्यादि वर्तमान रहें और विमल जलवाली नदियाँ रहें ॥१०॥ महात्मा रामचन्द्रके ये वचन सुनकर प्रसन्न होकर इन्द्रने उनको यह उत्तर दिया ॥ ११ ॥ रघुश्रेष्ठ ! तुमने जो यह वर माँगा है, वह बहुत बड़ा है; पर मैं एक बात कहकर फिर दूसरी बात नहीं कहता, अतएव तुम जैसा चाहते हो वैसा होगा ॥ १२ ॥ सब वानर उठ खड़े हों, जो युद्धमें राक्षसोंके द्वारा मारे गये हैं, जिनके हाथ मुँह आदि कटे हैं, वे वानर और भालू जी उठें ॥ १३ ॥ वे सब वानर आदि उठ खड़े होंगे, उनके घाव भर जायँगे, वे पहलेके

सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव ज्ञातिभिः स्वजनेन च। सर्वे एव समेष्यन्ति संयुक्ताः परया मुदा ॥१५॥
अकाले पुष्पशबलाः फलवन्तश्च पादपाः। भविष्यन्ति महेष्वास नद्यश्च सलिलायुताः ॥१६॥
सव्रणैः प्रथमं गात्रैरिदानीं निर्व्रणैः समैः। ततः समुत्थिताः सर्वे सुप्त्वेव हरिसत्तमाः ॥१७॥
बभूवुर्वानराः सर्वे किं त्वेतदिति विस्मिताः। काकुत्स्थं परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ॥१८॥
अब्रुवन्परमप्रीताः स्तुत्वा रामं सलक्ष्मणम्। गच्छायोध्यामितो राजन्विसर्जय च वानरान् ॥१९॥
मैथिलीं सान्त्वयस्वैनामनुरक्तां यशस्विनीम्। भ्रातरं भरतं पश्य त्वच्छोकाद्व्रतचारिणम् ॥२०॥
शत्रुघ्नं च महात्मानं मातॄः सर्वाः परंतप। अभिषेचय चात्मानं पौरान्गत्वा प्रहर्षय ॥२१॥
एवमुक्त्वा सहस्राक्षो रामं सौमित्रिणा सह। विमानैः सूर्यसंकाशैर्ययौ हृष्टः सुरैः सह ॥२२॥
अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वांस्तांस्त्रिदशोत्तमान्। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत्तदा ॥२३॥

ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी।
श्रिया ज्वलन्ती विरराज सर्वतो निशा प्रणीतेव हि शीतरश्मिना ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे विंशाधिकशततमः सर्गः ॥१२०॥

एकविंशाधिकशततम सर्गः १२१

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिंदमम्। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥१॥

समान पराक्रमी और बलवान् होंगे, बिलकुल निरोग हो जाँयगे, वे मानों नींदसे उठ रहे हों इस तरह उठ खड़े होंगे ॥ १४ ॥ मित्रों, बान्धवों स्वजनों और साथियोंके साथ अत्यन्त प्रसन्न होकर वे सब मिलेंगे ॥१५॥ धनुर्धारी ! समय न रहनेपर भी वृक्ष पुष्पोंसे चित्रित हो जाँयगे और वे फलवान् होंगे और नदियाँ भी जल-से पूर्ण रहेंगी ॥ १६ ॥ जिनके शरीरमें पहले घाव था अच्छे हो जाँयगे, सोकर उठे हुएके समान वे सभी उठ खड़े होंगे ॥ १७ ॥ मृत वानरोंको पुनः जीवित देखकर अन्य वानर चकित हुए। पूर्णमनोरथ रामचन्द्र-से सभी देवता प्रसन्न होकर तथा लक्ष्मणके साथ उनकी स्तुति करके बोले—अब तुम यहाँसे अयोध्या जाओ और वानरोंको विदा कर दो ॥१८—१९॥ यशस्विनी सीताको धैर्य दो, वह तुममें अनुराग रखती है, भाई भरतको भी जाकर देखो जो तुम्हारे शोकमें व्रतानुष्ठान कर रहा है, महात्मा शत्रुघ्न और सब माताओंको भी देखो, अपना अभिषेक कराओ तथा नगरवासियोंको प्रसन्न करो ॥२०—२१॥ राम और लक्ष्मणसे इस प्रकार कहकर सूर्यके समान उज्ज्वल विमानोंपर चढ़कर देवताओंके साथ इन्द्र चले गये ॥२२॥ उन समस्त देवताओं-को लक्ष्मणके साथ प्रणाम करके रामचन्द्रने विश्राम करनेकी आज्ञा दी ॥२३॥ लक्ष्मण और रामचन्द्रके द्वारा पालित वह विजयिनी महासेना शोभित होने लगी, जिस प्रकार चन्द्रमाके द्वारा रात्रि शोभित होती है ॥२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२० ॥

अरिन्दम रामचन्द्रने उस रात्रिको विश्राम किया, प्रातःकाल सुखपूर्वक उनके करनेपर विभीषणने

स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च । चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च ॥२॥
अलंकारविदश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः । उपस्थितास्त्वां विधवत्स्नापयिष्यन्ति राघव ॥३॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् । हरीन्सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥४॥
स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः । सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः ॥५॥
तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् । न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥६॥
एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् । अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥७॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः । अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥८॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम् । मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा ॥९॥
हृतं निर्जित्य सङ्ग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् । त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥१०॥
तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति । येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥११॥
अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् । वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥१२॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या भार्यया सह । अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि ॥१३॥
प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः । सत्क्रियां राम मे तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥१४॥
प्रणयाद्बहुमानाच्च सौहार्देन च राघव । प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते ॥१५॥

कुशल प्रश्न पूछकर और हाथ जोड़कर उनसे यह कहा ॥१॥ स्नानके जल, अङ्गराग (उबटन, तैल आदि) शरीरमें लगानेके सुगन्धद्रव्य, वस्त्र, भूषण, चन्दन, अनेक तरहकी मालाएँ उपस्थित हैं, शृङ्गारकी कला जाननेवाली कमलनेत्रा ये स्त्रियाँ उपस्थित हैं, ये आपको विधिपूर्वक स्नान करावेंगी ॥२,३॥ विभीषणके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रने उनसे कहा—सुग्रीव आदि वानरोंको स्नान करनेके लिए कहो ॥ ४ ॥ सुखके अभ्यासी धर्मात्मा भरत मेरे लिए दुःख उठा रहे हैं, सुकुमार महाबाहु भरत बड़े ही सत्यवादी हैं ॥५॥ केकयीपुत्र धर्मात्मा भरतके बिना विधिवत् स्नान करना, वस्त्र आभूषण पहनना मैं पसन्द नहीं करता ॥६॥ अब हम शीघ्रही यहाँसे अयोध्या लौट जाना चाहते हैं, पर वहाँ का मार्ग बड़ाही कठिन है ॥ ७ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर विभीषण उनसे बोले—राजपुत्र, एक दिनमें मैं आपको उस नगरीमें पहुँचा दूँगा ॥८॥ आपका कल्याण हो, पुष्पक नामका विमान, जो सूर्यके समान चमकीला है, मेरे भाई कुबेरका है। बली रावणने कुबेरको युद्धमें जीतकर वह विमान छीन लिया है। वह दिव्य विमान जहाँ इच्छा हो वहाँ ले जाया जा सकता है। अतुल-विक्रम, यह आपके लिए रखा है ॥ ९, १० ॥ मेघके तुल्य वह विमान यही है, जिसपर सवार होकर निश्चिन्त आप अयोध्या जा सकेंगे ॥ ११ ॥ यदि मैं अनुग्रह करनेके योग्य होऊँ, यदि आप मेरे गुणोंको स्मरण करें और यदि आपका मुझमें प्रेम हो, तो हे प्राज्ञ, आप यहीं निवास करें ॥ १२ ॥ भाई लक्ष्मण तथा भार्या सीताके साथ जब आपकी सब प्रकारसे पूजा हो लेगी तब आप यहाँसे जाँय ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, सैनिकों और मित्रोंके साथ आप मुझ प्रेमीके द्वारा किया गया सत्कार ग्रहण करें। मैं सत्कार करनेके लिए उद्यत हूँ ॥ १४ ॥ प्रेमसे, सम्मानसे तथा मित्रतासे मैं आपसे सत्कार ग्रहण करनेकी प्रार्थना करता हूँ,

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् । रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥१६॥
पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च । सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च ॥१७॥
न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर । तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥१८॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः । शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥१९॥
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् । गुहं च सुहृदं चैव पौराञ्जानपदैः सह ॥२०॥
अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण । मन्युर्न खलु कर्तव्यः सखे त्वां चानुमानये ॥२१॥
उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर । कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह संमतः ॥२२॥
एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः । विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः ॥२३॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यमणिवेदिकम् । कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥२४॥
पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम् । काञ्चनं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हेमपद्मविभूषितैः ॥२५॥
प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षकम् । घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥२६॥
तं मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा । बृहद्भिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतशोभितैः ॥२७॥
तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः । महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥२८॥
उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम् । निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥२९॥

मैं आपका सेवक हूँ, मैं आपको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ ॥ १५ ॥ विभीषणके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र, समस्त राक्षसों और वानरोंके सामने, बोले ॥ १६ ॥ वीर, मेरा सचिव बनकर तुमने बड़ा सत्कार किया है, सब तरह-के प्रयत्नों और मित्रताके द्वारा तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया है ॥ १७ ॥ पर हे राक्षसराज, मैं तुम्हारा यह वचन मान नहीं सकता, क्योंकि भाई भरतको देखनेके लिए मेरा मन उत्सुक हो रहा है ॥ १८ ॥ मुझे लौटा ले जानेके लिए वह चित्रकूट आया था, उसने सिर झुकाकर मुझसे प्रार्थना की थी, पर मैंने उसकी प्रार्थना स्वीकार न की ॥ १९ ॥ कौसल्या, सुमित्रा, केकयी, मित्र गुह, नगरवासी तथा प्रजाको देखनेके लिए मेरा मन उत्सुक हो रहा है ॥ २० ॥ विभीषण, आप मुझे जानेकी अनुमति दें, मैं आपके द्वारा सत्कृत हो चुका हूँ। मित्र, तुम अप्रसन्न न हो, मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ ॥२१॥ राक्षसराज, मेरे लिए शीघ्र विमान मँगवाओ। काम समाप्त हो जानेपर मेरा यहाँ ठहरना कैसे उचित होगा ॥ २२ ॥ रामके ऐसा कहनेपर राक्षसराज विभीषणने सूर्यतुल्य विमान शीघ्र मँगाया ॥ २३ ॥ उस विमानमें सुवर्णके द्वारा चित्र बने हुए थे, वैदूर्य मणिकी वेदिकाएँ बनी थीं, जहाँ-तहाँ गुप्तगृह उसमें बने हुए थे, चाँदीके समान वह चमकीला था ॥ २४ ॥ पीली पताकाओं और ध्वजाओंसे वह शोभित था, उसमें सोनेकी अटारियाँ बनी हुई थीं और सोनेके कमल लगे हुए थे, ॥२५॥ इधर-उधर छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हुई थीं, खिड़कियोंपर मोती टँके हुए थे। जगह-जगह घंटा लगे हुए थे, जिनमेंसे मधुर शब्द निकल रहे थे ॥ २६ ॥ वह विमान विश्वकर्माका बनाया हुआ था और मेरु-शिखरके समान ऊँचा था। उसमें बड़े-बड़े कमरे बने हुए थे, जो मोती और चाँदीसे शोभित थे ॥ २७ ॥ उसमेंकी फर्श स्फटिकसे बनी हुई थी और वैदूर्य मणिके सुन्दर आसन बने हुए थे। उन आसनोंपर दामी बिछौने बिछे हुए थे ॥ २८ ॥ मनके समान चलनेवाला, कहीं न रुकनेवाला विमान रामके सामने

तत्पुष्पकं कामगमं विमानमुपस्थितं भूधरसंनिकाशम् ।
दृष्ट्वा तदा विस्मयमाजगाम रामः ससौमित्रिरुदारसत्त्वः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशाधिकशततमः सर्गः १२२

उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् । अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥ १ ॥
स तु बद्धाञ्जलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः । अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥ २ ॥
तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः । विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥
कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः । रत्नैरर्थैश्च विविधैः संपूज्यन्तां विभीषण ॥ ४ ॥
सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर । हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिभिः॥ ५ ॥
त इमे कृतकर्माणः सर्व एव वनौकसः । धनरत्नप्रदानैश्च कर्मैषां सफलं कुरु ॥ ६ ॥
एवं संमानिताश्चैते नन्द्यमाना यथा त्वया । भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः ॥ ७ ॥
त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम् । सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः संबोधयामि ते ॥ ८ ॥
हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे । सेना त्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर ॥ ९ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान्विभीषणः । रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥१०॥

उपस्थित करके विभीषण वहाँ खड़े हो गये ॥ २९ ॥ पर्वत-सदृश, कामगामी उस विमानको उपस्थित देखकर महाबली रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ विस्मित हुए ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायणके युद्धकाण्डका एकसौइकीसवाँसर्ग समाप्त ॥ १२१ ॥

पुष्पभूषित उस पुष्पक विमानको रामके सामने उपस्थित करके विभीषण पासही खड़े होकर रामचन्द्रसे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥ हाथ जोड़कर राक्षसराज विभीषणने विनयपूर्वक शीघ्रतासे कहा—मैं क्या करूँ ॥२॥ लक्ष्मणके सामने तेजस्वी रामचन्द्रने उनसे स्नेहपूर्वक विचार करके कहा ॥ ३ ॥ इन सभी वानरोंने खूब उद्योग किया है, बड़ी मेहनत की है, इनका सत्कार रत्नोंसे तथा धनसे करो ॥ ४ ॥ राक्षसेश्वर ! प्रसन्नतापूर्वक प्राणभय छोड़कर संग्रामसे न लौटनेवाले इन वानरोंके साथही तुमने लंका जीती है, अर्थात् इनकी सहायतासे ही तुमने लंकापर विजय पायी है ॥ ५ ॥ इन सभी वानरोंने काम किये हैं, अतएव धन रत्न देकर इनके कामोंको सफल करो ॥ ६ ॥ इस प्रकार तुम्हारे द्वारा सम्मानित और अभिनन्दित होकर ये वानरसेनापति तुम्हारे कृतज्ञ हो जाँयगे ॥ ७ ॥ दान देनेवाले, संग्रह करनेवाले, दयालु और जितेन्द्रिय तुमपर सभी स्नेह करेंगे, सभी तुमको चाहेंगे, इसीलिए मैं तुमसे यह कह रहा हूँ ॥ ८ ॥ राजन् ! अनुरागके समस्त गुणोंसे हीन और युद्धमें प्रहार करनेवाले राजाको व्याकुल होकर सेना छोड़ देती है ॥ ९ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर राजा विभीषणने उन समस्त वानरोंको रत्न और धन देकर अभिनन्दित किया

ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रत्नार्थैर्हरियूथपान् । आरुरोह तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥११॥
अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥१२॥
अब्रवीत्स विमानस्थः पूजयन्सर्ववानरान् । सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥१३॥
मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः । अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥१४॥
यत्तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥१५॥
किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः । स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ॥
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥१६॥
अयोध्यां प्रति यास्यामि राजधानीं पितुर्मम । अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः ॥१७॥
एवमुक्तास्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः॥१८॥
अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् । मुमुक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च ॥१९॥
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्हं कौसल्यामभिवाद्य च । अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान्नृपसत्तम ॥२०॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः । अब्रवीद्वानरान्रामः ससुग्रीवविभीषणान् ॥२१॥
प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः । सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥२२॥
क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः । त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ॥२३॥
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः । आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥२४॥

॥ १० ॥ अनन्तर वानरसेनापति धन-रत्नसे सम्मानित हुए—यह देखकर रामचन्द्र उस श्रेष्ठ विमानपर सवार हुए ॥ ११ ॥ गोदमें लज्जाशीला मनस्विनी सीताको लेकर पराक्रमी भाई लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र उस विमानपर सवार हुए ॥ १२ ॥ समस्त वानरों, सुग्रीव और विभीषणसे महावली काकुत्स्थ रामचन्द्र विमानपर बैठकर बोले ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ वानरो, आपलोगोंने मित्रके काम किये, अब मेरी सम्मतिसे आपलोग अपने स्थानको जाँय ॥ १४ ॥ स्नेही और हितकारी मित्रको जो काम करना चाहिए, सुग्रीव ! अधर्म-भीरु आपने वह सब काम किये ॥ १५ ॥ अब आप अपनी सेनाके साथ किष्किन्धा लौट जाँय । विभीषण ! तुम अपने राज्य लंकामें निवास करो, यह राज्य मैंने तुमको दिया है । इन्द्र आदि देवता भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते ॥ १६ ॥ अब मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्यामें लौट जाना चाहता हूँ; अतएव आप सबलोगोंसे विदा माँग रहा हूँ ॥ १७ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर सभी वानर, वानर-सेनापति और राक्षस विभीषण हाथ जोड़कर बोले ॥ १८ ॥ हमलोग भी अयोध्या चलना चाहते हैं, आप हमलोगोंको भी ले चलें, हमलोग प्रसन्नतापूर्वक वहाँ वनों उपवनोंमें भ्रमण करेंगे ॥ १९ ॥ राजश्रेष्ठ ! आपका अभिषेक देखेंगे, कौशल्याको प्रणाम करेंगे और शीघ्रही वहाँसे लौट आवेंगे ॥ २० ॥ वानरों और विभीषणके ऐसा कहनेपर रामचन्द्र उनलोगोंसे बोले ॥ २१ ॥ मैंने प्रियसे भी प्रिय वस्तु पायी है, क्योंकि मुझे मित्रोंका साथ मिला है, आपलोगोंके साथसे अयोध्यामें मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी ॥ २२ ॥ सुग्रीव ! वानरोंके साथ शीघ्र विमानपर सवार हो जाओ, राक्षसराज विभीषण ! अपने सचिवोंके साथ तुम भी सवार हो जाओ ॥ २३ ॥ अनन्तर वानरोंके साथ सुग्रीव और अमात्योंके

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् । राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥२५॥
खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता । प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥२६॥
ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः । यथा सुखमसंबाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाविंशाधिकशततमः सर्गः ॥१२२॥

———:०:———

त्रयोविंशाधिकशततमः सर्गः १२३

अनुज्ञातं तु रामेण तद्विमानमनुत्तमम् । हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम् ॥ १ ॥
पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः । अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ २ ॥
कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् । लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥
एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् । हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ४ ॥
एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः । तव हेतोर्विशालाक्षि निहतो रावणो मया ॥ ५ ॥
कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः । धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता ॥ ६ ॥
विद्युन्माली हतश्चात्र सुषेणेन महात्मना । लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥ ७ ॥
अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नाम राक्षसः । विरूपाक्षश्च दुष्प्रेक्षो महापार्श्वमहोदरौ ॥ ८ ॥
अकम्पनश्च निहतो बलिनोऽन्ये च राक्षसाः । त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ ९ ॥

साथ विभीषण प्रसन्नतापूर्वक विमानपर सवार हुए ॥ २४ ॥ उन सबके सवार हो जानेपर कुबेरका वह श्रेष्ठ विमान रामचन्द्रकी आज्ञासे आकाशमें उड़ा ॥ २५ ॥ उस विमानमें हंस बनाये गये थे, जिनसे आकाशमें जाकर वह विमान अत्यन्त शोभित हुआ। प्रसन्न और विमानके गुणोंपर विश्वासी रामचन्द्र कुबेरके समान मालूम होने लगे ॥ २६ ॥ वे सब वानर, भालू तथा महाबली राक्षस सुखपूर्वक फैलकर उस विमानपर बैठे ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौबाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥१२२॥

———

रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर हंसोंवाला वह बड़ा विमान घोर शब्द करता हुआ आकाशमें उड़ा ॥ १ ॥ चारों ओर देखकर रामचन्द्र चन्द्रानना सीतासे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥ कैलास-शिखरके समान विशाल इस त्रिकूटपर स्थित लंकाकी शोभा देखो। यह नगरी विश्वकर्माकी बनायी हुई है ॥ ३ ॥ यह युद्धक्षेत्र देखो, जिसमें माँस और रुधिरका कीचड़ हुआ है। राक्षसों और वानरोंका महान वध यहीं हुआ था ॥ ४ ॥ यह वर पाया हुआ सबको दुःख देनेवाला राक्षसराज सो रहा है। विशालाक्षि, तुम्हारे लिए मैंने रावणका वध किया है ॥ ५ ॥ यहाँ कुम्भकर्ण और राक्षस प्रहस्तको मैंने मारा, और हनुमानने यहाँ धूम्राक्षको मारा ॥ ६ ॥ यहाँ महात्मा सुषेणने विद्युन्मालीको मारा। लक्ष्मणने रावणके पुत्र इन्द्रजितको युद्धमें यहाँ मारा ॥ ७ ॥ विकट नामका राक्षस अङ्गदके द्वारा यहाँ मारा गया, विरूपाक्ष, दुष्प्रेक्ष महापार्श्व और महोदर यहाँ मारे गये ॥ ८ ॥ अकम्पन, त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक आदि ली राक्षस

युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च राक्षसप्रवरावुभौ। निकुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भकर्णात्मजौ बली ॥१०॥
वज्रदंष्ट्रश्च दंष्ट्रश्च बहवो राक्षसा हताः। मकराक्षश्च दुर्धर्षो मया युधि निपातितः ॥११॥
अकम्पनश्च निहतः शोणिताक्षश्च वीर्यवान्। यूपाक्षश्च प्रजङ्घश्च निहतौ तु महाहवे ॥१२॥
विद्युज्जिह्वोऽत्र निहतो राक्षसो भीमदर्शनः। यज्ञशत्रुश्च निहतः सुप्तघ्नश्च महाबलः ॥१३॥
सूर्यशत्रुश्च निहतो ब्रह्मशत्रुस्तथापरः। अत्र मन्दोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत् ॥१४॥
सपत्नीनां सहस्रेण साग्रेण परिवारिता। एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ॥१५॥
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम्। एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे ॥१६॥
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः। पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् ॥१७॥
अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्तिसमाकुलम्। हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि ॥१८॥
विश्रमार्थं हनुमतो भित्त्वा सागरमुत्थितम्। एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् ॥१९॥
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः। एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥२०॥
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्। एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥२१॥
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः। एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ॥२२॥
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः। अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥२३॥

यहाँ मारे गये ॥ ९ ॥ युद्धोन्मत्त और मत्त ये दोनों प्रधान राक्षस थे, निकुम्भ और कुम्भ ये दोनों कुम्भकर्णके पुत्र थे और बली थे, वज्रदंष्ट्र, दंष्ट्र आदि बहुतसे राक्षस मारे गये। मकराक्षको युद्धमें मैंने गिराया ॥ १०, ११ ॥ अकम्पन और बली शोणिताक्ष भी मारा गया, यूपाक्ष और प्रजङ्घ भी महायुद्धमें मारे गये ॥ १२ ॥ देखनेमें भयंकर विद्युज्जिह्व नामका राक्षस यहाँ मारा गया, यज्ञशत्रु और सुप्तघ्न मारे गये ॥ १३ ॥ ब्रह्मशत्रु तथा सूर्यशत्रु भी मारे गये। यहाँ रावणकी स्त्री मन्दोदरीने अपनी हजारों सौतोंके साथ पतिके लिए विलाप किया था। सुन्दरि, यह समुद्रका तीर दिखायी पड़ता है ॥ १४, १५ ॥, जहाँ समुद्रपार करके हमलोगोंने उस रातको विश्राम किया था। यह क्षारसमुद्रमें मैंने पुल बाँधा था ॥ १६ ॥ विशालाक्षि, तुम्हारे लिए नलने यह सेतु बनाया था, इसका बनाना बड़ाही कठिन है। वैदेहि, वरुणके निवासस्थान समुद्रको देखो, कोई इसको पार नहीं कर सकता ॥ १७ ॥ शंख और शक्तियोंसे भरा हुआ यह समुद्र गर्ज रहा है, यह हिरण्यनाभ नामका सुवर्ण पर्वत है, इसे तुम देखो ॥ १८ ॥ यह पर्वत हनुमानके विश्रामके लिए समुद्रसे निकला था, इसीके ऊपर समुद्रमें मेरी सेनाने विश्राम किया था ॥ १९ ॥ पहले यहाँ विभु महादेवने कृपा की थी। यह महात्मा सागरका तीर दीख पड़ रहा है ॥२०॥ यह स्थान सेतुबन्धके नामसे प्रसिद्ध है और त्रैलोक्यमें पूजित है, यह अत्यन्त पवित्र है और महापातकोंका नाश करनेवाला है ॥ २१ ॥ यहाँ राक्षसराज विभीषण आकर हमसे मिले थे। सीते, यह किष्किन्धा नगरी दीख पड़ती है, जहाँ बड़े विचित्र वन हैं ॥ २२ ॥ यह सुग्रीवकी रमणीय नगरी है, यहाँ मैंने वालीको मारा था। वालिके द्वारा पालित किष्किन्धा नगरीको देखकर प्रेमसे घबराई हुई सीता विनीत वचन बोली—राजन्,

अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा । सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ॥२४॥
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम् । गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥२५॥
एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम् । एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः॥२६॥
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह । ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान्वानरपुंगवान् ॥२७॥
स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया । तथा त्वमेभिः सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ॥२८॥
अभित्वरस्य सुग्रीव गच्छामः प्लवगाधिप । एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ॥२९॥
वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः । प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥३०॥
प्रिये त्वं सह नारीणां वानराणां महात्मनाम् । राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया ॥३१॥
त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः । अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥३२॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना । आहूय चाब्रवीत्सर्वा वानराणां तु योषितः ॥३३॥
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः । मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन च ॥३४॥
प्रवेशं चैव रामस्य पौरजानपदैः सह । विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ॥३५॥
तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः । नेपथ्यविधिपूर्वं तु कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥३६॥
अध्यारोहन्विमानं तत्सीतादर्शनकाङ्क्षया । ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ॥३७॥
ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् । दृश्यतेऽसौ महान्सीते सविद्युदिव तोयदः ॥३८॥
ऋष्यमूको गिरिवरः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः । अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः ॥३९॥

तारा आदि सुग्रीवकी प्रिय स्त्रियों तथा अन्य वानर राजोंकी स्त्रियोंको लेकर मैं आपके साथ अयोध्या जाना चाहती हूँ ॥ २३—२५ ॥ सीताके वचन सुनकर रामचन्द्रने कहा 'ठीक है'। किष्किन्धा पहुँचकर उन्होंने विमान ठहराया। सुग्रीवकी ओर देखकर वे बोले—वानरराज, सभी प्रधान वानरोंसे कहो, ॥ २६, २७॥ वे सब अपनी-अपनी स्त्रियोंको लेकर सीताके साथ अयोध्या चलें। इसी प्रकार महाबल, तुम भी इन अपनी स्त्रियोंके साथ चलो। वानरराज, शीघ्रता करो, हमलोग अयोध्या चलें। तेजस्वी रामचन्द्रके ऐसा कहने पर वानरराज सुग्रीव उन सबके साथ अन्तःपुरमें गये, और शीघ्र ताराको देखकर बोले ॥२८—३०॥ प्रिये, तुमको तथा अन्य वानरस्त्रियोंको अयोध्या चलनेके लिए, सीताकी प्रसन्नताके लिए, रामचन्द्रने आज्ञा दी है ॥ ३१ ॥ शीघ्रता करो, तुम तथा अन्य वानर स्त्रियाँ चलें। उनलोगोंको हम अयोध्या दिखायेंगे और दशरथकी स्त्रियोंसे भेट करायेंगे ॥ ३२ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरी ताराने सुग्रीवके वचन सुनकर वानरस्त्रियोंको बुलाकर उनसे कहा, ॥ ३३ ॥ सुग्रीवकी आज्ञासे वानरोंके साथ हमलोगोंको भी चलना होगा और इस प्रकार अयोध्या देखनेका हमारा प्रिय मनोरथ पूरा होगा ॥ ३४ ॥ पुरवासियों तथा प्रजाओंके साथ रामचन्द्रका नगरप्रवेश और दशरथकी स्त्रियोंकी विभूति वहाँ चलकर हमलोग देखेंगी ॥ ३५ ॥ ताराकी आज्ञासे वानरस्त्रियोंने शृङ्गार करके विमानकी प्रदक्षिणा की और सीताको देखनेकी उत्कण्ठासे वे सब विमानपर सवार हुईं। उनके साथ विमानको आकाशमें उठा देखकर ऋष्यमूकपर्वतके पास रामचन्द्र सीतासे पुनः बोले—सीते, विद्युद्युक्त मेघके समान यह जो बड़ा दीख रहा है वह ऋष्यमूक पर्वत है, यह सुवर्ण तथा

समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया । एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ॥४०॥
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः । अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ॥४१॥
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया । दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान्सीते वनस्पतिः ॥४२॥
जटायुश्च महातेजास्तव हेतोर्विलासिनि । रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली ॥४३॥
एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि । पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने ॥४४॥
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् । एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा ॥४५॥
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव दृश्यते कदलीवृतः । दृश्यते चैव वैदेहि शरभङ्गाश्रमो महान् ॥४६॥
उपायतः सहस्राक्षो यत्र शक्रः पुरंदरः । एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे ॥४७॥
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः । अस्मिन्देशे महाकायो विराधो निहतो मया ॥४८॥
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी । असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ॥४९॥
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः । एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना ॥५०॥
भरद्वाजाश्रमः श्रीमान्दृश्यते चैष मैथिलि । इयं च दृश्यते गङ्गा पुण्या त्रिपथगा नदी ॥५१॥
शृङ्गवेरपुरं चैतद्गुहो यत्र सखा मम । एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ॥
अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ॥५२॥
ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसाः सविभीषणाः । उत्पत्योत्पत्य संहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा ॥५३॥

अन्य धातुओंसे भरा है । यहाँ मैं वानरराज सुग्रीवसे मिला था ॥ ३६—३९ ॥ वालिका वध करनेकी मैंने प्रतिज्ञा की, यह पम्पासर दीख रहा है जहाँ कमलिनीका वन है और जहाँका वन विचित्र है ॥ ४० ॥ तुम्हारे बिना बहुत दुःखी होकर मैंने विलाप किया था । इसी सरोवरके तीरपर धर्मचारिणी शबरीको मैंने देखा था ॥ ४१ ॥ यहाँ मैंने योजनबाहु कबन्धको मारा था । जनस्थानमें वह पेड़ दीख रहा है, ॥ ४२ ॥ विलासिनी, तुम्हारे लिए पक्षियोंका राजा प्रबल पराक्रमी महातेजस्वी जटायु रावणके द्वारा जहाँ मारा गया ॥ ४३ ॥ वरवर्णिनि, यह हमलोगोंका आश्रय है । शुभदर्शने, यह हमलोगोंकी सुन्दर पर्णशाला है, ॥ ४४ ॥ जहाँसे राक्षसराज रावणने बलपूर्वक तुम्हारा हरण किया था । यह रमणीय गोदावरी है, जिसका जल निर्मल है ॥ ४५ ॥ अगस्त्यका आश्रम भी दीख पड़ रहा है, जो चारो ओरसे कदली वृक्षोंसे घिरा है । वैदेहि, शरभंगका भी वह महान् आश्रम दीख रहा है, ॥ ४६ ॥ जहाँ सहस्राक्ष इन्द्र आये थे । देवि, ये वे सब तपस्वी दीख रहे हैं, ॥ ४७ ॥ सूर्य और अग्नितुल्य तेजस्वी अत्रि जहाँ कुलपति हैं । इस स्थानपर विशाल शरीरवाले विराधका मैंने वध किया था ॥ ४८ ॥ सीते, यहाँ तुमने धर्मचारिणी तापसीको देखा था । सुतनु, यह पर्वतराज, चित्रकूट दिखायी पड़ने लगा ॥ ४९ ॥ यहाँ कैकयीके पुत्र भरत मुझे मनानेके लिए आये थे । यह रमणीय यमुना है, इसके पास विचित्र वन है ॥ ५० ॥ मैथिलि, यह भरद्वाजका सुन्दर आश्रम दीख रहा है । ये पवित्र त्रिपथगा गङ्गा दीखती हैं ॥ ५१ ॥ यह शृङ्गवेरपुर है, जहाँ मेरा मित्र गुह रहता है । सीते, यह मेरे पिताकी राजधानी दीखने लगी, यह अयोध्या है, वैदेहि, इसे तुम प्रणाम करो; क्योंकि तुम यहाँ पुनः लौट आयी हो ॥ ५२ ॥ अनन्तर वे सभी वानर और विभीषणके साथ सभी

ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीं विशालकक्ष्यां गजवाजिभिर्वृताम् ।
पुरीमपश्यन्प्लवगाः सराक्षसाः पुरीं महेन्द्रस्य यथामरावतीम् ॥५४॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशाधिकशततमः सर्गः १२४

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः । भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥ १ ॥
सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् । शृणोषि कच्चिद्भगवन्सुभिक्षानामयं पुरे ॥ २ ॥
कच्चित्स युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः । एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ॥
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत् ॥ ३ ॥
आज्ञावशत्वे भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते । पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥ ४ ॥
त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम् । स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम् ॥ ५ ॥
पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितृनिर्देशकारिणम् । सर्वभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा तु करुणापूर्वं ममासीत्समितिंजय । कैकयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम् ॥७॥
सांप्रतं तु समृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम् । समीक्ष्य विजितारिं च ममाभूत्प्रीतिरुत्तमा ॥ ८ ॥
सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव । यत्त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थाननिवासिना ॥ ९ ॥

राक्षस उछल-उछलकर प्रसन्नतापूर्वक उस राजधानीको देखने लगे ॥ ५३ ॥ अनन्तर सफेद अटारियों-वाली, बड़े-बड़े महलोंवाली, हाथी घोड़ोंसे युक्त उस नगरीको वानर तथा राक्षस इन्द्रकी अमरावती नगरीके समान देखने लगे ॥ ५४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ तेईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२३ ॥

चौदहवें वर्षके पूर्ण होनेपर पञ्चमीतिथिको लक्ष्मणके बड़े भाई रामचन्द्रने भरद्वाजके आश्रममें जाकर नियमपूर्वक उनको प्रणाम किया ॥ १ ॥ तपस्वी भरद्वाजको प्रणाम करके उन्होंने उनसे पूछा— भगवन्, क्या आपने सुना है कि अयोध्या नगरीमें सुभिक्ष है और वहाँके वासी नीरोग हैं ? ॥ २ ॥ भरत क्या कर्तव्यपरायण हैं, माताएँ जीवित हैं ? रामचन्द्रके ऐसा पूछनेपर महामुनि भरद्वाज मुस्कुराकर प्रसन्नके समान रामचन्द्रसे बोले ॥ ३ ॥ भरत तुम्हारा आज्ञाकारी है, वह तुम्हारी पादुका रखकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, नगरमें और सब कुशल है ॥ ४ ॥ पहले चीर वस्त्र धारण करके तुम महावनमें जा रहे थे। तुम दो भाई और तीसरी स्त्री थी, तुम राज्यसे हटा दिये गये थे। केवल धर्मपालनके लिए वनमें जा रहे थे। सर्वस्व छोड़कर पिताकी आज्ञासे पैदल जा रहे थे। तुमने सब भोगोंको छोड़ दिया था, मानो स्वर्ग-च्युत कोई देवता हो। कैकयीके वचन पालन करनेवाले, फल-मूलका आहार करनेवाले तुमको देखकर उस समय मुझे दया आयी थी ॥ ५—७ ॥ इस समय तुमको पूर्णमनोरथ, मित्र बान्धवोंसे युक्त देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ, इस समय तुमने शत्रुपर विजय पायी है ॥ ८ ॥ रामचन्द्र ! जनस्थानमें रहनेके समय जो

ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षतः सर्वतापसान्। रावणेन हृता भार्या बभूवेयमनिन्दिता ॥१०॥
मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च। कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ॥११॥
सुग्रीवेण च ते सख्यं यत्र वाली हतस्त्वया। मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ॥१२॥
विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः। यथा चादीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ॥१३॥
सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः। तथा च निहतः संख्ये रावणो बलदर्पितः ॥१४॥
यथा च निहते तस्मिन्रावणे देवकण्टके। समागमश्च त्रिदशैर्यथा दत्तश्च ते वरः ॥१५॥
सर्वं ममैतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल। संपतन्ति च मे शिष्याः प्रवृत्त्याख्याः पुरीमितः॥१६॥
अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर। अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ॥१७॥
तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः। बाढमित्येव संहृष्टः श्रीमान्वरमयाचत ॥१८॥
अकालफलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः। फलान्यमृतगन्धीनि बहूनि विविधानि च ॥१९॥
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः। तथेति च प्रतिज्ञाते वचनात्समनन्तरम् ॥२०॥
अभवन्पादपास्तत्र स्वर्गपादपसंनिभाः। निष्फलाः फलिनश्चासन्विपुष्पाः पुष्पशालिनः ॥२१॥
शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः। सर्वतो योजनास्तिस्रो गच्छतामभवंस्तदा ॥२२॥

ततः प्रहृष्टाः प्लवगर्षभास्ते बहूनि दिव्यानि फलानि चैव।
कामादुपाश्नन्ति सहस्रशस्ते मुदान्विताः स्वर्गजितो यथैव ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्विंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

सुख-दुःख तुमने उठाये हैं, रामचन्द्र, वह सब मुझको मालूम है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंकी रक्षामें तुम लगे थे, समस्त तपस्वियोंकी तुम रक्षा कर रहे थे। उसी समय तुम्हारी निर्दोष पत्नी सीताका रावणने हरण किया ॥ १० ॥ मारीचका दीख पड़ना, सीताका हरण, कबन्धदर्शन, पम्पासरपर जाना, सुग्रीवसे मैत्री, वालिवध, सीताकी खोज, हनुमानका वह काम, सीताका पतापानेपर नलका सेतुबन्ध करना, प्रसन्नतापूर्वक वानरोंके द्वारा लंकाका जलाया जाना, पुत्रों, बान्धवों, अमात्यों, सेनाओं, हाथी घोड़ोंके साथ बलोन्मत्त रावणका मारा जाना, देवशत्रु रावणके मारे जानेपर देवताओंसे तुम्हारी भेंट, वर पाना, हे धर्मवत्सल, तपस्याके द्वारा हमको यह सब मालूम है। समाचार कहनेवाले मेरे शिष्य यहाँसे नगरमें आते-जाते रहते हैं ॥११, १६॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र मैं भी तुम्हें वर देता हूँ। आज मेरा अर्घ्य ग्रहण करो, अयोध्या कल जाना ॥ १७ ॥ भरद्वाजका यह वचन सिर झुकाकर रामचन्द्रने ग्रहण किया, पुनः प्रसन्न होकर उन्होंने वर माँगा ॥१८॥ भगवन् यहाँसे अयोध्या जानेके मार्गके सभी वृक्ष अकालमें भी फलवान् हों, उनके फल अमृतके समान मीठे हों, अनेक प्रकारके फल हों और वे अधिक परिमाणमें हों, रामचन्द्रके यह कहतेही मुनिने कहा—ऐसाही होगा ॥१९, २०॥ वहाँके वृक्ष स्वर्गके वृक्षके समान हो गये। फलहीन वृक्ष फलवान् हो गये, पुष्पहीन वृक्ष पुष्पित हो गये ॥२१॥ सूखे वृक्षोंमें पत्ते निकल आये, वृक्षोंसे मधु चूने लगा। चारों ओर वहाँसे तीन योजन तक ऐसाही हो गया ॥ २२ ॥ अनन्तर वानर प्रसन्नतापूर्वक इच्छानुसार दिव्य फल-मूल खाने लगे और प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौचौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२४ ॥

पञ्चविंशाधिकशततमः सर्गः १२५

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः । प्रियकामः प्रियं रामस्ततस्त्वरितविक्रमः ॥ १ ॥
चिन्तयित्वा ततो दृष्टिं वानरेषु न्यपातयत् । उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवंगमम् ॥ २ ॥
अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम । जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥ ३ ॥
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् । निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम ॥ ४ ॥
श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम् । भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥ ५ ॥
अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च । निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥ ६ ॥
भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम । सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥ ७ ॥
हरणं चापि वैदेह्या रावणेन बलीयसा । सुग्रीवेण च संवादं वालिनश्च वधं रणे ॥ ८ ॥
मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा चाधिगता त्वया । लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम् ॥ ९ ॥
उपयानं समुद्रस्य सागरस्य च दर्शनम् । यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः ॥१०॥
वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च । महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ॥११॥
उपायातं च मां सौम्य भरताय निवेदय । सह राक्षसराजेन हरीणामीश्वरेण च ॥१२॥
जित्वा शत्रुगणान्रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः । उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥१३॥
एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः । स च ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यच्चापि मां प्रति ॥१४॥

शीघ्रतापूर्वक विक्रम प्रकाशित करनेवाले प्रियकाम रामचन्द्रने अयोध्याको देखकर विचार करना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ विचार करके उन्होंने वानरोंकी ओर देखा, बुद्धिमान और तेजस्वी रामचन्द्र वानर हनुमानसे बोले ॥ २ ॥ वानरश्रेष्ठ, शीघ्रही अयोध्या जाकर जानो कि राजमहलके सबलोग सकुशल तो हैं ॥ ३ ॥ शृङ्गवेरपुरमें जाकर वनवासी निषादराज गुहसे मिलो और उनसे मेरी ओरसे कुशल कहो ॥ ४ ॥ मैं सकुशल हूँ, नीरोग हूँ, निश्चित हूँ—यह जानकर गुह बड़ा प्रसन्न होगा, क्योंकि वह मेरा मित्र है, वह मेरे समान है ॥ ५ ॥ प्रसन्न होकर निषादराज गुह तुम्हें अयोध्याका मार्ग बतलावेगा और भरतका समाचार कहेगा ॥ ६ ॥ भरतसे तुम मेरी ओरसे मेरा कुशल कहना, सीता और लक्ष्मणके साथ मेरा मनोरथ पूरा हुआ ॥ ७ ॥ उनसे बलवान रावणके द्वारा सीताके हरणका भी वृत्तान्त कहना, सुग्रीवसे मैत्री और रणमें वालिका वध भी उन्हें बतलाना ॥ ८ ॥ जलराज समुद्र लाँघकर सीताका पता लगाना तथा उनका प्राप्त होना, समुद्रके पास जाना, उनका दर्शन होना, सेतु बाँधना, रावणका वध—भरतसे कहना ॥९॥ इन्द्र, ब्रह्मा और वरुणसे वर पाना, महादेवकी कृपासे पिताका दर्शन होना कहकर उनसे कहना कि मैं राक्षसराज विभीषण और वानरराज सुग्रीवके साथ अयोध्याके पास आ गया हूँ ॥ १०, ११ ॥ सौम्य, राक्षसराज विभीषण और वानरराज सुग्रीवके साथ मैं यहाँ आ गया हूँ, यह तुम भरतसे कहो ॥ १२ ॥ शत्रुओंको जीतकर तथा यशस्वी होकर रामचन्द्र बड़ी सेना तथा मित्रोंके साथ पूर्णमनोरथ होकर आ रहे हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारी बातें सुननेपर भरतकी जैसी मुखमुद्रा हो उसपर तुम ध्यान रखना और मुझसे कहना ॥ १४ ॥

ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च । तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभापितेन च ॥१५॥
सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम् । पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥१६॥
संगत्या भरतः श्रीमान्राज्येनार्थी स्वयं भवेत् । प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः ॥१७॥
तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर । यावन्न दूरं याताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥१८॥
इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः । मानुषं धारयन्रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ ॥१९॥
अथोत्पपात वेगेन हनूमान्मारुतात्मजः । गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन्भुजगोत्तमम् ॥२०॥
लङ्घयित्वा पितृपथं विहगेन्द्रालयं शुभम् । गङ्गायमुनयोर्भीमं समतीत्य समागमम् ॥२१॥
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान् । स वाचा शुभया हृष्टो हनूमानिदमब्रवीत् ॥२२॥
सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः । ससीतः सह सौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥२३॥
पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः । भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यत्रैव राघवम् ॥२४॥
एवमुक्त्वा महातेजाः संप्रहृष्टतनूरुहः । उत्पपात महावेगाद्वेगवानविचारयन् ॥२५॥
सोऽपश्यद्रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा । वरूथीं गोमतीं चैव भीमं शालवनं तथा ॥२६॥
प्रजाश्च बहुसाहस्रीः स्फीताञ्जनपदानपि । स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ॥२७॥
आससाद द्रुमान्फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपगान् । सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान् ॥२८॥
स्त्रीभिः सपुत्रैः पौत्रैश्च रममाणैः स्वलंकृतैः । क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥२९॥

वहाँकी सब बातें जानना और भरतके इशारोंको भी समझना, मुँह, आँखें और वचनोंसे उनके भावोंका पता लगाना ॥ १५ ॥ जहाँ सब मनोरथ पूरे हो सकते हैं, जहाँ हाथी, घोड़े भरे पड़े हैं, वैसा पिता-पितामहका राज्य पाकर किसका मन नहीं बदल जाता ॥ १६ ॥ यदि साथियोंके परामर्शसे भरत स्वयं राज्य चाहने लगे हों तो वे समूची पृथिवीका शासन करें ॥ १७ ॥ जबतक हमलोग और पास न चले आवें, तभी तक भरतके विचार जानकर तुम शीघ्र लौट आओ ॥ १८ ॥ वायुपुत्र हनुमान रामचन्द्रसे ऐसा सन्देश पाकर और मनुष्यका रूप बनाकर वे शीघ्र अयोध्या चले ॥ १९ ॥ हनुमान बड़े वेगसे वहाँसे चले, जिस प्रकार गरुड़ सर्पोंको पकड़नेके लिए वेगसे चलता है ॥ २० ॥ पितर-मार्गको डाँककर, पक्षि-मार्गको डाँककर और गंगा-यमुनाकी संगम पार कर, हनुमान शृङ्गवेरपुर आये, गुहसे मिलकर बली हनुमान प्रसन्न होकर सुन्दर वचनोंके द्वारा उससे यह बोले ॥ २१, २२ ॥ सत्यपराक्रमी काकुत्स्थवंशी रामचन्द्रने, जो तुम्हारे मित्र हैं उन्होंने, सीता और लक्ष्मणके साथ कुशल कहा है ॥ २३ ॥ पाँच रात मुनि भरद्वाजके आश्रममें निवासकर आज उनकी आज्ञासे रामचन्द्र चले हैं, तुम आजही उनको देखोगे ॥ २४ ॥ तेजस्वी पुलकित-शरीर हनुमान इस प्रकार गुहसे कहकर निश्चिन्त होकर चले ॥ २५ ॥ उन्होंने रामतीर्थ, वालुकिनी, वरूथी और गोमती नदियोंको देखा, आगे उन्होंने विशाल शालवन देखा ॥ २६ ॥ हजारों प्रजाओं और समृद्ध जनपदोंको देखते हुए वानरश्रेष्ठ हनुमान शीघ्रही बहुत दूर चले गये ॥ २७ ॥ हनुमान नन्दिग्रामके पासवाले पुष्पित वृक्षोंके पास पहुँचे, चैत्ररथके वृक्षोंके समान वहाँके वृक्ष शोभित हो रहे थे ॥ २८ ॥ वहाँके वासी अलङ्कृत होकर अपनी स्त्रियों, पुत्रों और पौत्रोंके साथ खेल रहे थे। अयोध्यासे एक कोस इधर हनुमानने

दद‍र्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् । जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ॥३०॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् । समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ॥३१॥
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् । पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुंधराम् ॥३२॥
चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् । उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ॥३३॥
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः । नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥३४॥
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः । तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहवन्तमिवापरम् ॥३५॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः । वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ॥३६॥
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कौशलमब्रवीत् । प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम्॥३७॥
अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह संगतः । निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ॥३८॥
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः । लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ॥
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥ ३९ ॥
एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः । पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत् ॥४०॥
ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः । हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥४१॥
अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य संभ्रमात् । सिषेच भरतः श्रीमान्विपुलैरश्रुबिन्दुभिः ॥४२॥
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः । प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥४३॥

भरतको देखा, वे चीर और कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए थे, दुबले और खिन्न हो गये थे, वे आश्रममें निवास कर रहे थे, जटा बढ़ी हुई थी, शरीरपर मैल जम गयी थी और भाईके शोकसे कृश हो गये थे, ॥ २९, ३० ॥ धर्मपूर्वक वे तपस्या कर रहे थे, इन्द्रियोंको वश करके फल-मूलका वे आहार करते थे, मस्तकपर लम्बी जटा थी, वल्कल और मृगचर्मका वस्त्र था, वे विनयपूर्वक रहते थे, विशुद्धचित्त थे, ब्रह्मर्षिके समान तेजस्वी थे, रामचन्द्रकी दो चरणपादुका आगे रखकर पृथिवीका शासन कर रहे थे ॥ ३१, ३२ ॥ चतुर्वर्णकी रक्षा सब तरहके भयोंसे करते थे । अमात्य, पवित्र पुरोहित और सेनापति गैरिक वस्त्र धारण करनेवाले भरतके साथ रहते थे । चीर कृष्णाचर्म धारण करनेवाले उस राजपुत्रको धर्मप्रेमी पुरवासी छोड़ नहीं सकते, वे स्वयं धर्मज्ञ थे, शरीरधारी दूसरे धर्मके समान थे ॥ ३३—३५ ॥ वायुपुत्र हनुमान भरतसे हाथ जोड़कर बोले—चीर-जटा धारण करनेवाले जिस दण्डकारण्यवासीकी सोच आप कर रहे हैं उन्होंने आपसे कुशल कहा है । भयंकर शोक छोड़िए, मैं आपसे प्रिय वृत्तान्त कहता हूँ ॥ ३६,३७ ॥ शीघ्रही आप अपने भाई रामचन्द्रसे मिलेंगे । रावणको मारकर, सीताको लेकर, पूर्णमनोरथ रामचन्द्र बली मित्रोंकेसाथ आ रहे हैं । तेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी वैदेही भी उनके साथ हैं । इन्द्रके साथ शचीके समान रामचन्द्रके साथ सीता मालूम पड़ती हैं ॥३८, ३९॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर केकयीपुत्र भरत सहसा पृथिवीपर गिर पड़े, वे हर्षके कारण बेहोश हो गये ॥ ४० ॥ एक मुहूर्तमें उठकर और होशमें आकर भरत प्रियवादी हनुमानसे इस प्रकार बोले ॥ ४१ ॥ प्रीतिमय बड़े-बड़े अश्रुबिन्दुओंसे भरत हनुमानका आलिङ्गन करके उनका अभिषेक करने लगे ॥४२॥ तुम देवता हो या मनुष्य, जो तुम कृपाकर आये हो, तुमने मुझे प्रिय संवाद

गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् । सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडश ॥४४॥
हेमवर्णाः सुनासोरूः शशिसौम्याननाः स्त्रियः । सर्वाभरणसंपन्नाः संपन्नाः कुलजातिभिः ॥४५॥
निशम्य रामागमनं नृपात्मजः कपिप्रवीरस्य तदाद्भुतोपमम् ।
प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभवत्पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद्वचः ॥४६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंशाधिकशततमः सर्गः ॥१२५॥

——०※०——

षड्विंशाधिकशततमः सर्गः १२६

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् । शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ १ ॥
कल्याणी वत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ २ ॥
राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः । कस्मिन्देशे किमाश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥ ३ ॥
स पृष्टो राजपुत्रेण बृस्यां समुपवेशितः । आचचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने ॥ ४ ॥
यथा प्रव्राजितो रामो मातुर्दत्तौ वरौ तव । यथा च पुत्रशोकेन राजा दशरथो मृतः ॥ ५ ॥
यथा दूतैस्त्वमानीतस्तूर्णं राजगृहात्प्रभो । त्वयायोध्यां प्रविष्टेन यथा राज्यं न चेप्सितम् ॥ ६ ॥
चित्रकूटगिरिं गत्वा राज्येनामित्रकर्शनः । निमन्त्रितस्त्वया भ्राता धर्ममाचरता सताम् ॥ ७ ॥
स्थितेन राज्ञो वचने यथा राज्यं विसर्जितम् । आर्यस्य पादुके गृह्य यथासि पुनरागतः ॥ ८ ॥

सुनाया है, उसके लिए मैं तुम्हें पारितोषिक देता हूँ ॥ ४३ ॥ सौ हजार गौ, सौ गाँव, उत्तम आचरणवाली तथा कुण्डलधारण करनेवाली सौ कन्याएँ भार्या बनानेको देता हूँ ॥ ४४ ॥ उनका रङ्ग सुवर्णके समान है, उनकी नाक सुन्दर हैं और जंघा सुन्दर है । उनके मुँह चन्द्रमाके समान हैं और वे सब उत्तम कुलवाली हैं ॥ ४५ ॥ वानर-श्रेष्ठ हनुमानसे रामचन्द्रके आगमनका शुभ संवाद सुनकर, राजपुत्र भरत बहुत प्रसन्न हुए, वे रामचन्द्रको देखनेके लिए उत्कंठित हुए । वे हर्षसे पुनः बोले ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायणके युद्धकाण्डका एकसौपच्चीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२५॥

मेरे स्वामी रामचन्द्रको वन गये बहुत वर्ष हो गये । आज मैं उनका प्रसन्न करनेवाला नाम सुन रहा हूँ ॥ १ ॥ यह लौकिक कहावत मुझे सची मालूम होती है—जीते हुए मनुष्यको आनन्द मिलताही है चाहे वह सौ वर्षोंमें ही क्यों न मिले ॥ २ ॥ रामचन्द्रका वानरोंसे साथ कैसे हुआ, किस स्थानपर और किस कारणसे साथ हुआ, यह ठीक-ठीक मुझसे कहो ॥ ३ ॥ राजपुत्र भरतने हनुमानको आसनपर बैठाया । हनुमान रामचन्द्रके वनका चरित्र कहने लगे ॥ ४ ॥ आपकी माताने दो वरोंके बल रामचन्द्रको वनमें भेजा, उसी पुत्रशोकमें राजादसरथकी मृत्यु हुई, दूत भेजे गये और उनके साथ आप अयोध्यामें आये, अयोध्या आकर आपने राजग्रहण करनेसे इन्कार किया, चित्रकूट पर्वतपर जाकर धर्मात्मा आपने शत्रुघाती भाईसे राज्यग्रहण करनेके लिए अनुरोध किया, पिताकी आज्ञामें दृढ़ रहकर रामचन्द्रने राज्यका त्याग किया, अपने

सर्वमेतन्महाबाहो यथावद्विदितं तव। त्वयि प्रतिप्रयाते तु यद्वृत्तं तन्निबोध मे ॥ ९ ॥
अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम्। परिद्यूनमिवात्यर्थं तद्वनं समपद्यत ॥१०॥
तद्धस्तिमृदितं घोरं सिंहव्याघ्रमृगाकुलम्। प्रविवेशाथ विजनं स महद्दण्डकावनम् ॥११॥
तेषां पुरस्ताद्बलवान्गच्छतां गहने वने। विनदन्सुमहानादं विराधः प्रत्यदृश्यत ॥१२॥
तमुत्क्षिप्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम्। निखाते प्रक्षिपन्ति स्म नदन्तमिव कुञ्जरम् ॥१३॥
तत्कृत्वा दुष्करं कर्म भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। सायाह्ने शरभङ्गस्य रम्यमाश्रममीयतुः ॥१४॥
शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः। अभिवाद्य मुनीन्सर्वाञ्जनस्थानमुपागमत् ॥१५॥
चतुर्दश सहस्राणि जनस्थाननिवासिनाम्। हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ॥१६॥
एकेन सह संगम्य रामेण रणमूर्धनि। अह्नश्चतुर्थभागेन निःशेषा राक्षसाः कृताः ॥१७॥
महाबला महावीर्यास्तपसो विघ्नकारिणः। निहता राघवेणाजौ दण्डकारण्यवासिनः ॥१८॥
राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे। दूषणं चाग्रतो हत्वा त्रिशिरास्तदनन्तरम् ॥१९॥
पश्चाच्छूर्पणखा नाम रामपार्श्वमुपागता। ततो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ॥२०॥
प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः। ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता ॥२१॥
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः। लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः ॥२२॥
सा राममब्रवीद्दृष्ट्वा वैदेही गृह्यतामिति। अयं मनोहरः कान्त आश्रमो नो भविष्यति ॥२३॥

बड़े भाईकी चरणपादुका लेकर आप लौट आये ॥ ५—८ ॥ महाबाहो, ये बातें आपको ठीक-ठीक मालूम हैं, आपके लौट आनेपर जो हुआ वह आप मुझसे सुनें ॥९॥ आपके लौट आनेपर वह वन खिन्नसा हो गया, वहाँके पशु-पक्षी व्याकुल हो गये ॥ १० ॥ रामचन्द्र उस वनसे दण्डकारण्य वनमें गये, जिसे हाथियोंने उजाड़ डाला था और जो सिंह बाघ आदिके कारण बड़ा भयंकर था ॥ ११ ॥ वे उस गहन वनमें जा रहे थे, उस समय उनके आगे भयंकर गर्जन करता हुआ विराध दीख पड़ा ॥१२॥ उसके हाथ ऊपरकी ओर और मुँह नीचेकी ओर करके तथा उठाकर गढ़ेमें फेंक दिया, उस समय वह गर्जन कर रहा था, मानों कोई बड़ाभारी हाथी गर्जन करता हो ॥ १३ ॥ इस दुष्कर कामको करके राम और लक्ष्मण दोनों भाई शरभंगके रमणीय आश्रमपर पहुँचे ॥ १४ ॥ शरभंगके स्वर्ग जानेपर सत्यपराक्रमी रामचन्द्र वहाँके समस्त मुनियोंको प्रणाम करके अर्थात् उनसे विदा होकर जनस्थानमें आये ॥ १५ ॥ वहाँ रहकर रामचन्द्रने चौदह हजार जनस्थान-निवासी राक्षसोंका वध किया ॥ १६ ॥ एक रामचन्द्रने रणक्षेत्रमें जाकर दिनके चौथे भागमें समस्त राक्षसोंको समाप्त कर दिया ॥ १७ ॥ महाबली और पराक्रमी तपस्यामें विघ्न करनेवाले दण्डकारण्यवासी राक्षसोंको रामचन्द्रने मारा ॥ १८ ॥ रामचन्द्रने राक्षसोंको पीस डाला, खरको युद्धमें मार डाला, पहले दूषणको मारकर पुनः त्रिशिराको मारा ॥ १९ ॥ अनन्तर शूर्पणखा रामचन्द्रके पास आयी, रामचन्द्रकी आज्ञासे शीघ्रही उठकर लक्ष्मणने तलवार उठायी और उसके कान नाक काट लिये, वहाँसे तिरस्कृत और पीड़ित होकर वह स्त्री रावणके पास आयी ॥ २०, २१ ॥ रावणका सेवक मारीच नामके राक्षसने, जो भयंकर था, रत्नमृग होकर सीताको लुभाया ॥ २२ ॥ उस मृगको देखकर सीताने कहा

ततो रामो धनुष्पाणिर्मृगं तमनुधावति । स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा ॥२४॥
अथ सौम्य दशग्रीवो मृगयां याति राघवे । लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा ॥२५॥
जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव । त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥२६॥
प्रगृह्य सहसा सीतां जगामाशु स राक्षसः । ततस्त्वद्भुतसंकाशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ॥२७॥
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः । ददृशुर्विस्मिताकारा रावणं राक्षसाधिपम् ॥२८॥
ततः शीघ्रतरं गत्वा तद्विमानं मनोजवम् । आरुह्य सह वैदेह्या पुष्पकं स महाबलः ॥२९॥
प्रविवेश तदा लङ्कां रावणो राक्षसेश्वरः । तां सुवर्णपरिष्कारे शुभे महति वेश्मनि ॥३०॥
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः। तृणवद्भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुंगवम् ॥३१॥
अचिन्तयन्ती वैदेही ह्यशोकवनिकां गता । न्यवर्तत तदा रामो मृगं हत्वा तदा वने ॥३२॥
निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा गृध्रं स विव्यथे । गृध्रं हतं तदा दृष्ट्वा रामः प्रियतरं पितुः ॥३३॥
मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः । गोदावरीमनुचरन्वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ॥३४॥
आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् । ततः कबन्धवचनाद्रामः सत्यपराक्रमः ॥३५॥
ऋष्यमूकगिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः । ततः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ॥३६॥
भ्राता निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा । इतरेतरसंवादात्प्रगाढः प्रणयस्तयोः ॥३७॥

कि इसे पकड़ो, इससे हमारा आश्रम मनोहर और सुन्दर हो जायगा ॥ २३ ॥ अनन्तर धनुष लेकर रामचन्द्रने उस मृगका पीछा किया । उस दौड़ते हुए मृगको रामचन्द्रने बाणोंसे मारा ॥ २४ ॥ सौम्य, अनन्तर इस प्रकार रामचन्द्रके शिकारमें जानेके समय तथा लक्ष्मणके भी आश्रमसे हटजानेके समय दसग्रीव रावणने उस आश्रममें प्रवेश किया ॥ २५ ॥ उसने बलपूर्वक सीताको पकड़ा जिस प्रकार आकाशमें राहु रोहिणीको पकड़ता है, जटायुने सीताकी रक्षा करनी चाही, रावणने उसे भी मारा, सीताको लेकर वेगपूर्वक राक्षस रावण वहाँसे चला गया, अनन्तर अद्भुत आकारके काले वन्दर पर्वतके शिखरपर बैठे थे, उन पर्वतके समान विशाल वानरोंने सीताको लेकर जाते हुए राक्षसराज रावणको देखा ॥ २६—२८ ॥ वह शीघ्रही मनके समान बेगवाले पुष्पक विमानपर सीताके साथ चढ़ गया, राक्षसराज रावणने शीघ्रही लंकापुरीमें प्रवेश किया, सुवर्णकी कारीगरीसे सुशोभित एक बड़े मकानमें रावणने सीताको रखा और वह सीताको मधुर वचनोंके द्वारा समझाने लगा, अशोकवाटिकामें निवास करनेवाली सीताने रावणके वचनों तथा स्वयं उस राक्षसराजको तृणके समान समझा, उस समय मृगको मारकर रामचन्द्र पुनः आश्रममें लौट आये ॥२९—३२॥ लौटते हुए रामचन्द्र गीधको देखकर दुःखी हुए, पिताके प्रिय गीधको मरा देखकर वे दुखी हुए ॥ ३३ ॥ गोदावरीके तीरपर तथा वहाँके पुष्पित वनोंमें रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ सीताको ढूँढने लगे ॥ ३४ ॥ वनमें घूमते समय उन दोनों भाइयोंने कबन्ध नामके राक्षसको देखा, कबन्धके कहनेसे सत्यपराक्रम रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर सुग्रीवसे मिले, उन दोनोंकी वह मैत्री हार्दिक मैत्री हुई ॥३५—३६॥ वालिने अपने भाई सुग्रीवको निकाल दिया था, रामचन्द्र और सुग्रीव दोनोंमें अपनी-अपनी

रामः स्वबाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् । वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ॥३८॥
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः । रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्यास्तु मार्गणम्॥३९॥
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना । दश कोटयः प्लवंगानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः॥४०॥
तेषां नो विप्रनष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे । भृशं शोकाभितप्तानां महान्कालोऽत्यवर्तत ॥४१॥
भ्राता तु गृध्रराजस्य संपातिर्नाम वीर्यवान् । समाख्याति स्म वसतीं सीतां रावणमन्दिरे॥४२॥
सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् । आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः॥
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ॥४३॥
कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम् । तया समेत्य विधिवत्पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ॥४४॥
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाङ्गुलीयकम् । अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥४५॥
मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान्स महामणिः ॥४६॥
श्रुत्वा तां मैथिलीं रामस्त्वाशशंसे च जीवितम् । जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः ॥४७॥
उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे लङ्कावधे मनः । जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वांल्लोकान्विभावसुः॥४८॥
ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत् । अतरत्कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥४९॥
प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः । लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥५०॥
सशक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च । महेश्वरः स्वयंभूभ्यां तथा दशरथेन च ॥५१॥

कथा कहनेसे गाढ़ प्रेम हो गया ॥ ३७ ॥ रामचन्द्रने बाहुबलसे सुग्रीवको राज्य दिलवाया, महाबली वालिको युद्धमें रामने मारा ॥ ३८ ॥ राज्य मिलनेपर सुग्रीवने समस्त वानरोंके साथ सीताको ढूँढनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ३९ ॥ वानरराज महात्मा सुग्रीवकी आज्ञासे दस करोड़ वानर सब दिशाओंमें भेजे गये ॥ ४० ॥ हमलोग पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचलपर जाकर भूल गये, अतएव दुःखसे पीड़ित हमलोगोंका बहुतसा समय बीत गया ॥ ४१ ॥ गृध्रराज जटायुका भाई सम्पाति था, वह बड़ा पराक्रमी था, उसने हमलोगोंसे रावणके यहाँ सीताका रहना बतलाया ॥ ४२ ॥ अनन्तर दुःखी अपने बान्धवोंका दुःख दूर करनेके लिए मैं अपने पराक्रमपर भरकरके सौ योजनका समुद्र पार कर गया, लंकामें जाकर अशोकवाटिकामें मैंने सीताको अकेली देखा ॥ ४३ ॥ रेशमी वस्त्र पहने हुए मलिन, शृङ्गारहीन, पातिव्रत्यमें दृढ़ सीताको मैंने देखा, अनिन्दिता सीतासे मिलकर मैंने उनसे सब बातें पूछीं ॥ ४४ ॥ रामनामसे अङ्कित अगूँठी मैंने परिचयमें दी, सीताका अभिज्ञान मणि लेकर, कृतार्थ होकर मैं लौट आया ॥ ४५ ॥ लौट आकर पुण्यात्मा रामचन्द्रको मैंने अभिज्ञान मणि दी ॥ ४६ ॥ उस मणिको पाकर रामचन्द्रने जीनेकी इच्छा की, जिस प्रकार मरता हुआ रोगी अमृत पाकर जी उठता है ॥ ४७ ॥ लंकाके नाश करनेके उद्योगमें रामचन्द्रने मन लगाया, मानों प्रलयकालमें अग्निदेव समस्त लोकोंका नाश करनेके लिए उद्यत हुए हों ॥ ४८ ॥ पुनः वे समुद्रतीरपर गये और वहाँ नल नामक वानरके द्वारा सेतु बँधवाया, वानरोंकी सेनाने उस सेतुसे समुद्र पार किया ॥ ४९ ॥ नीलने प्रहस्तको मारा, कुम्भकर्णको रामचन्द्रने मारा, लक्ष्मणने रावणके पुत्रको मारा और स्वयं रामचन्द्रने रावणको मारा ॥५०॥ उस समय इन्द्र, वरुण, यम, शिव, ब्रह्मा और राजा दशरथ वहाँ आये ॥ ५१ ॥

तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतैः । सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराँल्लेभे परंतपः ॥५२॥
स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतः । पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥५३॥
तां गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ । अविघ्नं पुण्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥५४॥
ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः ।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥५५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षड्विंशाधिकशततमः सर्गः ॥१२६॥



सप्तविंशाधिकशततमः सर्गः १२७

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः । हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥
दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च । सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥ २ ॥
सूताः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैतालिकास्तथा । सर्वे वादित्रकुशला गणिकाश्चैव सर्वशः ॥ ३ ॥
राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनाङ्गनागणाः । ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥४॥
अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् । भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ॥ ५ ॥
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास भागशः । समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च ॥ ६ ॥
स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम् । सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा ॥ ७ ॥
ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः । समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे ॥ ८ ॥

इनलोगोंने रामचन्द्रको वर दिये, वहाँ आये हुए ऋषियों और देवर्षियोंसे भी रामचन्द्रने वर पाये ॥ ५२ ॥ प्रेमपूर्वक उनलोगोंके दिये वर पाकर, वानरोंके साथ पुष्पक विमानपर, रामचन्द्र किष्किन्धा आये ॥५३॥ वहाँसे आकर गंगातीरपर रहनेवाले मुनिके पास रामचन्द्र इस समय हैं । कल पुण्य योगमें निर्विघ्न आप रामचन्द्रको देख सकेंगे ॥ ५४ ॥ अनन्तर हनुमानके वचनोंको सुनकर भरत अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे हाथ जोड़कर मनको प्रसन्न करनेवाले वचन बोले—बहुत दिनोंका हमारा मनोरथ पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२६ ॥



बड़े आनन्दका यह संवाद सुनकर सत्यपराक्रम परवीरहा भरतने प्रसन्न होकर शत्रुघ्नको आज्ञा दी ॥ १ ॥ समस्त देवताओं तथा नगरके देवस्थानोंकी पूजा शुद्ध मनुष्य, सुगन्धद्रव्य, पुष्पमाला और बाजोंसे करें ॥ २ ॥ स्तुति पुराण जाननेवाले वन्दी, वैतालिक, बाजा बजानेवाले, वेश्याएँ, रानियाँ, अमात्य, सैनिक, उनकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, चौधुरी ये सभी रामचन्द्रका मुखचन्द्र देखनेके लिए नगरसे बाहर चलें । भरतकी आज्ञा सुनकर शत्रुघ्नने कई हजार बेगारोंको कई हिस्सोंमें बाँटकर आज्ञा दी—गढ़ोंको बराबर कर दो और ऊँची जगहको बराबर कर दो ॥३—६॥ यहाँसे नन्दीग्रामतकके मार्ग सफा कर दो और वर्फके समान ठंढे जलसे रास्तेको सींच दो ॥७॥ लावा और फूल रास्तेमें बिखेर दो, नगरकी गलियोंमें झंडे लगा दो ॥८॥

शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति। स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पञ्चवर्णकैः ॥९॥
राजमार्गमसंबाधं किरन्तु शतशो नराः। ततस्तच्छासनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदान्विताः ॥१०॥
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थसाधकः। अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः ॥११॥
मत्तैर्नागसहस्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः। अपरे हेमकक्षाभिः सगजाभिः करेणुभिः ॥१२॥
निर्ययुस्तुरगाक्रान्ता रथैश्च सुमहारथाः। शक्त्यृष्टिपाशहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् ॥१३॥
तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यतरान्वितैः। पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः ॥१४॥
ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः। कौशल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः ॥१५॥
द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः। माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥१६॥
शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः। आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥१७॥
पाण्डरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम्। शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥१८॥
उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः। भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः ॥१९॥
प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैः सह। अश्वानां खुरशब्दैश्च रथनेमिस्वनेन च ॥२०॥
शङ्खदुन्दुभिनादेन संचचालेव मेदिनी। गजानां बृंहितैश्चापि शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥२१॥
कृत्स्नं तु नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत्। समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥२२॥
कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता। नहि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परंतपम् ॥२३॥

सूर्योदयके पहले मकान सजा दिये जाँय। मालाएँ, फूल और सुवर्णमय वस्तुओंसे वे सजा दिये जाँय ॥ ९ ॥ राजमार्गपर भीड़ न होने पावे, शत्रुघ्नकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नतापूर्वक धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल तथा सुमन्त्र मस्त हाथियोंपर चढ़कर, जिनपर झंडे लगे हुए थे तथा सजे हुए थे, चले। दूसरे हाथियों हथिनियोंपर चढ़कर, जिनकी रस्सी सुवर्णकी थीं, चले ॥१०,१२॥ कई घोड़ोंपर चढ़कर और महारथ रथपर चढ़कर चले। शक्ति, ऋष्टि और पाशसे सजे हुए, ध्वजा-पताकाओंसे शोभित हजारों घोड़े, जो प्रधान तथा अप्रधान थे, चले। वीरगण हजारों पैदलोंके साथ चले ॥ १३, १४ ॥ पुनः दसरथकी स्त्रियाँ कौशल्या और सुमित्राको आगे करके सवारीपर चढ़कर चलीं ॥ १५ ॥ धर्मात्मा भरतके साथ प्रधान-प्रधान ब्राह्मण थे, भिन्न-भिन्न जातियोंके चौधरी थे, वेदपाठी थे, फूल मिठाई लिये अमात्य थे ॥ १६ ॥ शंख और भेरी बज रहे थे, वन्दि स्तुति कर रहे थे। धर्मवेत्ता भरतने अपने बड़े भाईकी चरण-पादुका मस्तकपर रखा था, ॥ १७ ॥ जिसपर पीला छाता और सफेद मालाएँ लगी हुई थीं, सोनेसे मढ़े हुए राजयोग्य दो सफेद चँवर वे लिये हुए थे ॥१८॥ उपवासके कारण वे दुबले हो गये थे, वल्कल वस्त्र और मृग-चर्म धारण किये हुए थे, भाईके आनेका वृत्तान्त सुनतेही वे हर्षसे गदगद हो गये थे ॥ १९ ॥ महात्मा भरत अमात्योंके साथ रामचन्द्रकी अगवानीके लिए चले, घोड़ोंके चलनेके शब्दसे, रथके पहियोंकी घड़घड़ाहट और शंख-भेरीके शब्दसे पृथिवी डग-मगाने लगी। हाथियोंके गर्जन तथा बाजोंके शब्दोंसे भी पृथिवी डग-मगाने लगी ॥२०,२१॥ अयोध्या नगरीके समस्त मनुष्य नन्दिग्राममें आ गये, यह देखकर भरतने हनुमानसे कहा ॥ २२ ॥ तुमने जो संवाद मुझसे कहा है वह क्या वानरी चंचलताके कारण तो नहीं कहा है अर्थात्

कच्चिन्न चानुदृश्यन्ते कपयः कामरूपिणः । अथैवमुक्ते वचने हनूमानिदमब्रवीत् ॥२४॥
अर्थ्यं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम् । सदाफलान्कुसुमितान्वृक्षान्प्राप्य मधुस्रवान् ॥२५॥
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् । तस्य चैव वरो दत्तो वासवेन परंतप ॥२६॥
ससैन्यस्य तदातिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम् । निःस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ॥२७॥
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् । रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य सालवनं प्रति ॥२८॥
मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवंगमाः । तदेतद्दृश्यते दूराद्विमानं चन्द्रसंनिभम् ॥२९॥
विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् । रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना ॥३०॥
तरुणादित्यसंकाशं विमानं रामवाहनम् । धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतन्मनोजवम् ॥३१॥
एतस्मिन्भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ । सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः ॥३२॥
ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् । स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥३३॥
रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः । ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥३४॥
प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः । यथार्थेनार्घ्यपाद्याद्यैस्ततो राममपूजयत् ॥३५॥
मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने भरताग्रजः । रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवामरः ॥३६॥
ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा । ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥३७॥

रामचन्द्रका आना विना कारणही तुमने समझ लिया हो; क्योंकि परन्तप श्रीरामचन्द्रजीको मैं नहीं देखता, वे अभी तक नहीं आये ॥ २३ ॥ कामरूपी वानर भी दिखायी नहीं पड़ते, भरतके ऐसा कहनेपर हनुमान इसप्रकार बोले ॥ २४ ॥ सत्यपराक्रम भरतसे हनुमान अर्थयुक्त अर्थात् सत्य वचन बोले—भरद्वाज मुनिकी कृपासे सदा फलनेवाले, कुसुमित, मधुस्रावी, भ्रमरगुंजरित वृक्षोंको पाकर वानर रुक गये हैं, इन्द्रने भी रामचन्द्रको यह वर दिया था। मुनि भरद्वाजने ससैन्य रामचन्द्रका बड़ाही सुन्दर आतिथ्य किया था। प्रसन्न वानरोंका यह कोलाहल सुनायी पड़ता है ॥ २५—२७ ॥ मालूम होता है कि वानरसेना गोमतीनदी पार कर रही है। उधर सालवनकी ओर देखिए, वहाँ धूल उड़ रही है ॥ २८ ॥ मालूम होता है कि रमणीय सालवनको वानर हिला रहे हैं। वह दूरसे चन्द्रमाके समान विमान दीख पड़ता है ॥ २९ ॥ यह पुष्पक विमान देवताओंका है, ब्रह्माने इसे बनाया है, बान्धवोंके साथ रावणको मारकर महात्मा रामचन्द्रने इसे पाया है ॥ ३० ॥ यह विमान तरुण सूर्यके समान प्रकाशमान है। इसपर रामचन्द्र सवार हैं। कुबेरकी कृपासे यह मनके समान शीघ्रगामी है ॥३१॥ इस विमानमें वीर दोनों भाई राम और लक्ष्मण सीताके साथ हैं। तेजस्वी सुग्रीव और विभीषण इसी विमानमें हैं ॥ ३२ ॥ "यह रामचन्द्र आये" ऐसा सुननेपर बालक वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबने बहुहर्ष कोलाहल किया। वह शब्द आकाशतक फैल गया ॥३३॥ हाथी घोड़े और रथसे वे पृथिवीपर उतर आये, वे विमानपर बैठे रामचन्द्रको देखने लगे, जिस प्रकार जनता आकाशस्थ चन्द्रमाको देखती है ॥ ३४ ॥ प्रसन्न होकर, हाथ जोड़कर भरतने यथार्थ अर्घ्य, पाद्य आदिसे रामचन्द्रकी पूजा की ॥ ३५ ॥ ब्रह्माने मनसे इस विमानका निर्माण किया था, उसपर बैठे हुए विशालाक्ष रामचन्द्र वज्रधारी इन्द्रके समान मालूम पड़ते थे ॥ ३६ ॥ अनन्तर विमानके आगे बैठे हुए भाई रामचन्द्रको भरतने

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् । हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥३८॥
आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः । राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥३९॥
तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् । अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥४०॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः । अथाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥४१॥
सुग्रीवं कैकयीपुत्रो जाम्ववन्तमथाङ्गदम् । मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥४२॥
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् । शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे ॥४३॥
ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः । कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा ॥४४॥
अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् । परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥४५॥
त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीवपञ्चमः । सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥४६॥
विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् । दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥४७॥
शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् । सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत् ॥४८॥
रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम् । जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन् ॥४९॥
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् । स मातॄश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥५०॥
स्वागतं ते महाबाहो कौशल्यानन्दवर्धन । इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥५१॥

भक्तिभावसे प्रणाम किया, जिस प्रकार मनुष्य मेरुपर्वतस्थ सूर्यको प्रणाम करते हैं ॥ ३७ ॥ रामचन्द्रकी आज्ञासे हंसोंवाला वह श्रेष्ठ विमान भूमिपर उतरा ॥ ३८ ॥ सत्यपराक्रमी रामचन्द्रने भरतको उस विमान-पर बैठा लिया । रामके पास पहुँचकर भरतने प्रसन्न होकर रामचन्द्रको पुनः प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ बहुत दिनोंपर मिले हुए भरतको गोदमें उठाकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनका आलिङ्गन किया ॥ ४० ॥ पुनः परन्तप भरतने लक्ष्मण और जानकीके पास जाकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनलोगोंको प्रणाम किये और अपना नाम बतलाया ॥ ४१ ॥ केकयीपुत्र भरतने सुग्रीव, जाम्बवान, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील और ऋषभका आलिङ्गन किया ॥ ४२ ॥ सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनसका भी आलिङ्गन किया ॥ ४३ ॥ कामरूप उन सब वानरोंने मनुष्यका रूप धर लिया, प्रसन्न होकर उनलोगोंने भरतसे कुशलसंवाद पूछा ॥ ४४ ॥ धार्मिकश्रेष्ठ तेजस्वी राजपुत्र भरत वानरराज सुग्रीवका आलिङ्गन करके उनसे बोले ॥ ४५ ॥ सुग्रीव, तुम हमारे चारो भाइयोंमें पाचवें भाई हो । स्नेह रखनेवालाही मित्र होता है और अपकार करनेवाला शत्रु होता है ॥ ४६ ॥ विभीषणसे भी भरत नम्रतापूर्वक इस प्रकार बोले—प्रसन्नताकी बात है कि तुम्हारी सहायतासे रामचन्द्रने यह कठोर कर्म सम्पादित किया ॥ ४७ ॥ शत्रुघ्नने भी रामचन्द्र और लक्ष्मणको प्रणाम करके, विनयपूर्वक सीताके दोनों चरणोंपर प्रणाम किये ॥ ४८ ॥ शोक-कृश मलिन माताके पास जाकर रामचन्द्रने उनके दोनों पैर पकड़ लिये और इस प्रकार उनके मनको प्रसन्न किया ॥ ४९ ॥ सुमित्रा यशस्विनी केकयी तथा अन्य माताओंको प्रणाम करके रामचन्द्र पुरोहितके पास आये ॥ ५० ॥ महाबाहो रामचन्द्र ! आपका स्वागत, कौशल्यानन्दवर्धन, आपका

तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः । व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः ॥५२॥
पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् । चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥५३॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः । एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥५४॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः । यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥५५॥
अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् । भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥५६॥
तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् । मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥५७॥
ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः । ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥५८॥
भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा । अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥५९॥
अब्रवीत्तु तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् । वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ॥६०॥
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् । उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम् ॥६१॥
विमानं पुष्पकं दिव्यं संगृहीतं तु रक्षसा । अगमद्धनदं वेगाद्रामवाक्यप्रचोदितम् ॥६२॥

पुरोहितस्यात्मसखस्य राघवो बृहस्पतेः शक्र इवामराधिपः ।
निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे सहैव तेनोपविवेश वीर्यवान् ॥६३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

स्वागत—अयोध्यावासियोंने हाथ जोड़कर रामचन्द्रसे ऐसा कहा ॥ ५१ ॥ मुकुलित कमलके समान नगरवासियोंकी हजारों अञ्जलियोंको रामचन्द्रने देखा ॥ ५२ ॥ भरतने रामचन्द्रकी पादुकाको स्वयं उठाकर उनके चरणोंमें पहना दिये ॥ ५३ ॥ उस समय हाथ जोड़कर रामचन्द्रसे भरतने कहा—यह समस्त राज्य आपका है, मैंने थाती लौटा दी ॥ ५४ ॥ आज मेरा जन्म सार्थक हुआ, आज मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो मैं आज आपको अयोध्यामें पुनः लौटे और राजाके रूपमें देखता हूँ ॥ ५५ ॥ खजाना, कोठार, घर और सेना आप देख लें, आपके प्रतापसे मैंने सब दसगुना बढ़ा दिया है ॥ ५६ ॥ इसप्रकार कहते हुए भ्रातृप्रेमी भरतको देखकर वानरों तथा राक्षस विभीषणकी आँखोंमें आँसू आगये ॥ ५७ ॥ अनन्तर प्रसन्न होकर रामचन्द्रने भरतको गोदमें ले लिया और सेनाके साथ विमानपर बैठकर वे भरतके आश्रममें गये ॥ ५८ ॥ भरताश्रममें पहुँचकर सेनाके साथ रामचन्द्र विमानसे उतरे और वे भूमिपर बैठ गये ॥ ५९ ॥ उस श्रेष्ठ विमानसे रामचन्द्र बोले—कुबेरकी सवारीमें रहो, मैं आज्ञा देता हूँ जाओ ॥ ६० ॥ अनन्तर रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर वह श्रेष्ठ विमान उत्तर दिशाकी ओर कुबेरके स्थानपर गया ॥ ६१ ॥ वह श्रेष्ठ विमान, जिसे राक्षसराज रावण ले गया था, रामचन्द्रकी आज्ञासे वेगपूर्वक कुबेरके पास गया ॥६२॥ देवराज इन्द्रके पुरोहित बृहस्पतिके समान अपने हितकारी पुरोहितका चरण वन्दन करके और दूसरा आसन उन्हें देकर रामचन्द्र बैठे ॥ ६३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौसत्ताईसवांसर्ग समाप्त ॥१२७॥

अष्टविंशाधिकशततमः सर्गः १२८

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दिवर्धनः। बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥
पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम। तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥ २ ॥
धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषभेण वलीयसा। किशोरवद्गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥ ३ ॥
वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन्। दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥ ४ ॥
गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः। नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिंदम ॥ ५ ॥
यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने। महानपि दुरारोहो महास्कन्धः प्रशाखवान् ॥ ६ ॥
शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन्। तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोपितः ॥ ७ ॥
एषोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्तुमर्हसि। यद्यस्मान्मनुजेन्द्र त्वं भर्ता भृत्यान्न शाधि हि ॥ ८ ॥
जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव। प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ ९ ॥
तूर्यसंघातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिःस्वनैः। मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व शेष्व च ॥१०॥
यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुंधरा। तावत्त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तय ॥११॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरंजयः। तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥१२॥
ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः। सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन् ॥१३॥
पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले। सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥१४॥

केकयीपुत्र भरत हाथ जोड़कर बड़े भाई सत्यपराक्रम रामचन्द्रसे बोले ॥ १ ॥ आपने मेरी माताका आदर किया और यह राज्य मुझे दिया। वह राज्य पुनः मैं आपको देता हूँ, जिसप्रकार आपने मुझे दिया था ॥ २ ॥ बलवान् बैलने जिस भारी बोझको उठाया था, उसको बछड़ा नहीं उठा सकता था, उसी प्रकार मैं भी इस गुरुभारको नहीं उठा सकता ॥ ३ ॥ जिसप्रकार वेगवान् प्रवाहसे बाँध टूट जाता है, उसमेंसे जल बाहर निकलने लगता है, उसीप्रकार राज्यकी रक्षा करना भी कठिन है, इसमें अनेक छिद्र होते हैं ॥ ४ ॥ जिसप्रकार घोड़ेकी चाल गधा नहीं चल सकता, जिसप्रकार हंसकी चाल कौआ नहीं चल सकता, वीर! उसीप्रकार आपकी चाल चलनेकी शक्ति मुझमें भी नहीं है ॥५॥ किसीने वृक्ष रोपा, वह बढ़ा, ऊँचा हुआ, कनखे हुए, उसकी बड़ी-बड़ी डालें हुईं, फूल आये और सड़ गये, फल न आये, उस वृक्षका लाभ उसको नहीं हुआ, जिसके लिए वह वृक्ष रोपा गया था ॥ ६, ७ ॥ यही बात यहाँ भी घटती है, इसका मतलब आप समझें। हमलोग आपके भृत्य हैं, आज्ञा-पालक हैं, यदि आप हमलोगोंको आज्ञा न दें तो फिर वही बात समझी जायगी ॥ ८ ॥ रामचन्द्र, सबलोग आज आपका राज्याभिषेक देखें, जिस प्रकार मध्याह्नमें दीप्ततेज सूर्य तपता है ॥ ९ ॥ बाजोंकी ध्वनिसे, स्त्रियोंकी करधनी और पायजेबके मधुर शब्दसे तथा गानसे आप सोवें और जगें ॥ १० ॥ जबतक नक्षत्र-मण्डल है, जब तक पृथिवी है, तबतक आप इस संसारके स्वामी बने रहें ॥ ११ ॥ भरतके वचन सुनकर शत्रुपुरविजयी रामचन्द्रने उसे ग्रहण किया और वे एक सुन्दर आसनपर बैठे ॥ १२ ॥ अनन्तर शत्रुघ्नकी आज्ञासे दाढ़ी बनानेवाले आये, उनके हाथ कोमल थे और वे सुशील थे, दक्ष थे ॥ १३ ॥ भरत, महाबली लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव और

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः। महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥१५॥
प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान्। लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥१६॥
प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः। आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥१७॥
ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्। चकार यत्नात्कौशल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥१८॥
ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः। योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥१९॥
अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम्। आरुरोह महाबाहू रामः परपुरंजयः ॥२०॥
सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती। स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥२१॥
सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः। सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥२२॥
अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च। पुरोहितं पुरस्कृत्या मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥२३॥
अशोको विजयश्चैव सिद्धार्थश्च समाहिताः। मन्त्रयन्रामवृद्ध्यर्थं वृत्त्यर्थं नगरस्य च ॥२४॥
सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः। कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥२५॥
इति ते मन्त्रिणः सर्वे संदिश्य च पुरोहितः। नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥२६॥
हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः। प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥२७॥
जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे। लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥२८॥

राक्षसराज विभीषणके स्नान करनेपर रामचन्द्रने अपनी जटा साफ की, स्नान किया, चन्दन लगाया, माला धारण की, दामी वस्त्र पहने और शोभित होने लगे ॥ १४, १५ ॥ इक्ष्वाकुकुलवर्धन भरतने रामचन्द्रका और लक्ष्मणका शृङ्गार कराया ॥ १६ ॥ दसरथकी समस्त स्त्रियोंने सीताका शृङ्गार किया, उन मनस्विनी स्त्रियोंने सीताका मनोहर शृङ्गार किया ॥ १७ ॥ अनन्तर समस्त वानर स्त्रियोंका शृङ्गार बड़े प्रयत्नसे पुत्रवत्सला कौशल्याने प्रसन्नतापूर्वक किया ॥ १८ ॥ अनन्तर शत्रुघ्नकी आज्ञासे सारथि सुमन्त्र सर्वाङ्ग-सुन्दर रथ तयार कर ले आया ॥ १९ ॥ सूर्य और अग्निके समान उज्ज्वल दिव्य रथको उपस्थित देखकर शत्रुपुरविजयी रामचन्द्रने उसपर आरोहण किया ॥ २० ॥ इन्द्रके समान तेजस्वी सुग्रीव और हनुमान भी रामचन्द्रके साथ चले, उनलोगोंने स्नान कर लिये थे, सुन्दर वस्त्र पहने थे और सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए थे ॥ २१ ॥ सब आभूषण पहने हुईं, सुन्दर कुण्डल धारण किये हुईं, सुग्रीवकी स्त्रियाँ और सीता नगर देखनेके लिए उत्सुकतापूर्वक चलीं ॥ २२ ॥ उधर अयोध्यामें राजा दसरथके मन्त्री पुरोहितको साथ लेकर अर्थयुक्त विचार करने लगे ॥ २३ ॥ अशोक, विजय और सिद्धार्थ ये मन्त्री सावधान होकर रामचन्द्रकी अभिवृद्धि और नगरवासियोंकी जीविकाके लिए विचार करने लगे ॥ २४ ॥ विजयी रामचन्द्रके राज्याभिषेकके लिए जो-जो माङ्गलिक कृत्य हैं वे सब आपलोग करें ॥ २५ ॥ इसप्रकार वे सब मन्त्री तथा पुरोहित नगरवासियोंको सन्देश देकर रामचन्द्रको देखनेके लिए नगरसे बाहर निकले ॥ २६ ॥ जिसप्रकार घोड़ेके रथपर सवार होकर सहस्राक्ष इन्द्र चलते हैं, उसी प्रकार निष्पाप रामचन्द्र रथपर बैठकर नगरको चले ॥ २७ ॥ भरतने घोड़ोंकी लगाम पकड़ी, शत्रुघ्नने छाता लिया; लक्ष्मण पंखा लेकर उनपर हवा करने लगे

श्वेतं च वालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः। अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥२९॥
ऋषिसङ्घैस्तदाकाशे देवैश्च समरुद्गणैः। स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥३०॥
ततः शत्रुंजयं नामकुञ्जरं पर्वतोपमम्। आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥३१॥
नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः। मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥३२॥
शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः। प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥३३॥
ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम्। विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥३४॥
ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः। अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥३५॥
अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः। श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥३६॥
स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः। प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि वृतो ययौ ॥३७॥
अक्षतं जातरूपं च गावः कन्याः सहद्विजाः। नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥३८॥
सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे। वानराणां च तत्कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥३९॥
श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः। वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद्बलम् ॥४०॥
द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंयुतः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश सः ॥४१॥
ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराः पताकाश्च गृहे गृहे। ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥४२॥
अथाब्रवीद्राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम्। अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥४३॥

॥ २८ ॥ चन्द्रमाके सदृश श्वेत छोटा चँवर बगलमें खड़े हुए विभीषणने लिया ॥ २९ ॥ उससमय आकाशमें देवता, मरुत और ऋषिगण रामचन्द्रकी स्तुति करते थे, जिसकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती थी ॥ ३० ॥ अनन्तर शत्रुञ्जय नामक पर्वतके समान विशाल हाथीपर तेजस्वी वानरराज सुग्रीवने आरोहण किया ॥ ३१ ॥ नौ हजार हाथियोंपर चढ़कर वानर गये, वानरोंने मनुष्यका रूप बना लिया था और वे सब आभूषण पहने हुए थे ॥ ३२ ॥ अटारियोंकी माला धारण करनेवाली अयोध्यापुरीमें उन पुरुषसिंहोंने शंख और दुन्दुभिके शब्दके साथ प्रवेश किया ॥ ३३ ॥ अयोध्यावासियोंने रामचन्द्रको आगे करके उन-लोगोंको आते देखा, अतिरथ रामचन्द्र रथपर विराजमान थे और शोभित हो रहे थे ॥ ३४ ॥ उनलोगोंने रामचन्द्रका अभिनन्दन किया, रामचन्द्रने उनका उत्तर दिया, पुनः वे उनके पीछे-पीछे चले ॥ ३५ ॥ अमात्यों, ब्राह्मणों और प्रजाओंसे घिरे होनेके कारण रामचन्द्र नक्षत्रोंसे घिरे चन्द्रमाके समान शोभित होने लगे ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रके आगे बाजावाले जा रहे थे, वे प्रसन्न होकर मंगलगान गा रहे थे और उनके बीच रामचन्द्र जा रहे थे ॥ ३७ ॥ अक्षत, सुवर्ण, गौ, ब्राह्मणोंके साथ कुमारिकाएँ और हाथमें मिठाई लिए पुरुष रामचन्द्रके आगे-आगे जा रहे थे ॥ ३८ ॥ सुग्रीवकी मित्रता, हनुमानका प्रभाव तथा वानरोंके भिन्न-भिन्न काम रामचन्द्रने मन्त्रियोंसे कहे ॥ ३९ ॥ वानरोंके वे कर्म और राक्षसोंके बलका वर्णन सुनकर अयोध्या-वासी विस्मित हुए ॥ ४० ॥ ये सब बातें कहकर द्युतिमान् रामचन्द्रने वानरोंके साथ अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया, जहाँके मनुष्य हृष्ट-पुष्ट थे ॥ ४१ ॥ अनन्तर नगरवासियोंने अपने-अपने घरोंमें पताकाएँ ऊँची कीं। रामचन्द्रने अपने पिताके महलमें प्रवेश किया ॥ ४२ ॥ अनन्तर राजपुत्र रामचन्द्रने धार्मिकश्रेष्ठ

पितुर्भवनमासाद्य प्रवेश्य च महात्मनः। कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च ॥४४॥
तच्च गद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्। मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥४५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः। हस्ते गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥४६॥
ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च। गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥४७॥
उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः। अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥४८॥
सौवर्णान्वानरेन्द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान्। ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥४९॥
तथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम्। पूर्णैर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः ॥५०॥
एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः। उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडा इव शीघ्रगाः ॥५१॥
जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानरः। ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन् ॥५२॥
नदीशतानां पञ्चानां जलं कुम्भैरुपाहरन्। पूर्वात्समुद्रात्कलशं जलपूर्णमथानयत् ॥५३॥
सुषेणः सत्त्वसंपन्नः सर्वरत्नविभूषितम्। ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राज्जलमानयत् ॥५४॥
रक्तचन्दनकर्पूरैः संवृतं काञ्चनं घटम्। गवयः पश्चिमात्तोयमाजहार महार्णवात् ॥५५॥
रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रमः। उत्तराच्च जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः ॥५६॥
आजहार स धर्मात्मानिलः सर्वगुणान्वितः। ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य तज्जलम् ॥५७॥
अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह। पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥५८॥
ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह। रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत् ॥५९॥

भरतसे अर्थयुक्त मधुर वचन कहा ॥ ४३ ॥ पिताके भवनमें उन सबके साथ जाकर और कौशल्या तथा सुमित्राको प्रणाम करके रामचन्द्रने भरतसे कहा—मेरा सुन्दर भवन, जिसमें अशोकवाटिका है, जिसमें मुक्ता वैदूर्यका काम किया हुआ है वह, सुग्रीवको बतला दो, अर्थात् उन्हें रहनेके लिए दो ॥ ४४, ४५ ॥ उनके वचन सुनकर सत्यविक्रम भरतने सुग्रीवका हाथ पकड़कर उस घरमें प्रवेश किया ॥४६॥ शत्रुघ्नकी आज्ञासे दीपक, पलंग, बिछौने लेकर भृत्योंने उस घरमें रखे ॥४७॥ तेजस्वी भरतने सुग्रीवसे कहा—प्रभो, रामचन्द्रके अभिषेकके लिए अपने दूतोंको आप आज्ञा दें ॥४८॥ सुग्रीवने चार वानरोंको चार सुवर्णके घड़े दिये, उन घड़ोंमें सब रत्न रखे हुए थे ॥४९॥ प्रातःकालके समय चारों समुद्रोंके जलसे भरे घड़े लेकर तुमलोग यहाँ प्रतीक्षा करो; अर्थात् यहाँ उपस्थित हो जाओ ॥५०॥ हाथीके समान विशाल वानर सुग्रीवकी आज्ञासे आकाशमें उड़े, जिसप्रकार शीघ्रगामी गरुड़ उड़ता है ॥ ५१ ॥ जाम्बवान्, हनुमान, वेगदर्शी तथा ऋषभ घड़े भरकर ले आये ॥५२॥ पाँचसौ नदियोंके जल घड़े भरकर मँगवाये गये, पूर्व समुद्रका जल घड़ेमें भरकर बली सुषेण ले आये, उस जलमें रत्न भी थे। ऋषभ दक्षिण समुद्रसे जल लेकर शीघ्र आया ॥ ५३, ५४ ॥ रक्तचन्दन कपूर आदिसे युक्त सोनेके घड़ेमें गवय पश्चिम समुद्रसे जल ले आया ॥ ५५ ॥ गरुड़ और वायुके समान पराक्रमी गुणी अनिल उत्तर समुद्रसे बड़े रत्नघटमें शीतल जल भरकर ले आये। उन वानरोंके द्वारा लाये जलको देखकर अर्थात् जल आ गया, यह जानकर रामचन्द्रका अभिषेक करनेके लिए सचिवोंके साथ शत्रुघ्नने पुरोहितसे तथा मित्रोंसे कहा ॥ ५६—५८ ॥ अनन्तर वृद्ध ब्राह्मण वसिष्ठने संयत होकर सीताके साथ

वसिष्ठो विजयश्चैव जावालिरथ काश्यपः। कात्यायनो गौतमश्च वामदेवस्तथैव च ॥६०॥
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना। सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥६१॥
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा। योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते संप्रहृष्टैः सनैगमैः ॥६२॥
सर्वौषधिरसैश्चापि दैवतैर्नभसि स्थितैः। चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च संगतैः ॥६३॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम्। अभिषिक्तः पुरा येन मनुस्तं दीप्ततेजसम् ॥६४॥
तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद्येनाभिषेचिताः। सभायां हेमक्लृप्तायां शोभितायां महाधनैः ॥६५॥
रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रितायां सुशोभनैः। नानारत्नमये पीठे कल्पयित्वा यथाविधि ॥६६॥
किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना। ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥६७॥
छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्। श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥६८॥
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः। मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ॥६९॥
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः। सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम् ॥७०॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः। प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥७१॥
अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः। भूमिः सस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः ॥७२॥
गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवू राघवोत्सवे। सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ॥७३॥
ददौ शतवृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः। त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥७४॥
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः। अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ॥७५॥

रामचन्द्रको रत्नपीठपर बैठाया ॥५९॥ वसिष्ठ, विजय, जावालि, काश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेवने नरसिंह रामचन्द्रका अभिषेक स्वच्छ तथा सुगन्धित जलसे किया, जिसप्रकार वसुओंने वासव—इन्द्रका अभिषेक किया था ॥ ६०,६१ ॥ ऋत्विक्, ब्राह्मणों, कन्याओं, मन्त्रियों, सैनिकोंने प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रका अभिषेक पहले किया ॥ ६२ ॥ आकाशस्थित देवताओं समस्त लोकपालोंने देवोंके साथ ओषधियोंके रसोंसे रामचन्द्रका अभिषेक किया ॥ ६३ ॥ रत्न जड़ा जो किरीट ब्रह्माने पहले बनाया था और जिससे तेजस्वी मनुका अभिषेक हुआ था, और मनुवंशी राजाओंका जिससे अभिषेक हुआ था, वह किरीट सुवर्ण-शोभित तथा मूल्यवान् रत्नजड़ित सभाभवनमें रत्नमय पीठपर विधिपूर्वक रखा गया ॥ ६४—६६ ॥ पुनः वह किरीट महात्मा वसिष्ठने ऋत्विजों और ब्राह्मणोंके साथ रामचन्द्रको पहनाया ॥ ६७ ॥ सफेद छत्र शत्रुघ्नने उठाया और श्वेत चँवर वानरराज सुग्रीवने लिया ॥ ६८ ॥ दूसरा चँवर राक्षसराज विभीषणने लिया। सोनेकी उज्ज्वल माला, जिसमें सौ कमल बने हुए थे, इन्द्रकी आज्ञासे वायुने रामचन्द्रको दी। सब रत्नों और मणियोंसे युक्त मोतियोंकी माला इन्द्रके कहनेसे वायुने राजा रामचन्द्रको दी। देवगन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥६९—७१॥ बुद्धिमान् और अभिषेकके योग्य रामचन्द्रके अभिषेकके समय पृथिवी सस्यपूर्ण हुई और वृक्ष फलवान् हुए ॥ ७२ ॥ उस रामचन्द्रोत्सवके समय पुष्प सुगन्धित हो गये। राजाने दस हजार घोड़े और एक हजार गौ, सौ साँड़ोंके साथ ब्राह्मणोंको दी। तीस करोड़ सुवर्ण ब्राह्मणोंको दिये ॥७३,७४॥ मूल्यवान् अनेक तरहके गहने, वस्त्र, मणियोंसे बनी सूर्यकिरणके समान चम-

सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः। वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते ॥७६॥
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ। मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम् ॥७७॥
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्। अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ॥७८॥
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे। अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ॥७९॥
अवैक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं च मुहुर्मुहुः। तामिङ्गितज्ञः संप्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ॥८०॥
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि। अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥८१॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः। पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥८२॥
हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः। चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥८३॥
सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः। वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥८४॥
विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा। सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥८५॥
यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः। प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥८६॥
ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परंतपः। सर्वान्कामगुणान्वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥८७॥
दृष्ट्वा सर्वे महात्मानस्ततस्ते वानरर्षभाः। विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धां समुपागमन् ॥८८॥
सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम्। पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत्पुरीम् ॥८९॥
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैरृतर्षभैः। लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥९०॥

कीली सोनेकी माला राजा रामचन्द्रने सुग्रीवको दी। वालिपुत्र अङ्गदको रामचन्द्रने दो अङ्गद (बाजूबन्द) दिये, उनपर वैदूर्यमणि जड़े हुए थे और चन्द्रमाकी किरणें बनी हुई थीं। रामचन्द्रने सीताको एक मूल्यवान् मोतियोंकी माला दी, इसमें ऊँचे दर्जेके मणि लगे हुए थे, यह माला चन्द्रकिरणोंके समान चमकीली थी। कभी मैले न होनेवाले दो वस्त्र तथा अनेक भूषण भी रामचन्द्रने सीताको दिये ॥ ७५—७८ ॥ जनकनन्दिनी सीताने अपने गलेसे निकालकर वह माला वायुपुत्र हनुमानकी ओर देखकर उन्हें दे दी ॥ ७९ ॥ हनुमानको माला देकर सीता अपने पति रामचन्द्र तथा समस्त वानरोंकी ओर देखने लगीं। इङ्गित समझनेवाले रामचन्द्र सीताको देखकर उनसे बोले ॥ ८० ॥ सुभगे, तुम जिसपर सन्तुष्ट हो उसे यह हार दे दो। असितेक्षणा सीताने वह हार हनुमानको दिया, जिस हनुमानमें तेज, धैर्य, यश, दक्षता, सामर्थ्य, विनय, नय, पौरुष, विक्रम, बुद्धि ये सदा रहते हैं ॥ ८१, ८२ ॥ चन्द्रकिरणोंके समान उज्ज्वल उस हारसे हनुमान शोभित हुए, जिस प्रकार श्वेत मेघसे पर्वत शोभित होता है ॥ ८३ ॥ सब प्रधान वानर, जो वीर थे, उन सबका यथायोग्य सन्मान वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा किया गया ॥८४॥ विभीषण, सुग्रीव, हनुमान जाम्बवान्, आदि सभी प्रधान वानरोंका सत्कार शुद्धकर्मा रामचन्द्रने किया, उन्होंने उनके मनोरथ पूरे किये, बहुत रत्न आदि दिये, वे सब भी प्रसन्न होकर अपने अपने स्थानको गये ॥ ८५, ८६ ॥ अनन्तर राजा रामचन्द्रने द्विविद और मैन्दके समस्त मनोरथ पूरे किये ॥ ८७ ॥ सभी महात्मा वानरोंको रामचन्द्रने विदा किया और वे किष्किन्धा नगरीमें लौट आये ॥ ८८ ॥ रामचन्द्रका अभिषेक देखकर तथा उनके द्वारा सत्कृत होकर वानरराज सुग्रीवने किष्किन्धानगरीमें प्रवेश किया ॥ ८९ ॥ अपना कुल, धन पाकर

स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः । राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ॥
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ ९१ ॥
आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं यथा त्वं पितृभिः पुरस्तात्तैर्यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥९२॥
सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥९३॥
पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजिमेधेन चासकृत् । अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत्पार्थिवात्मजः ॥९४॥
राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः । दशाश्वमेधानाजह्रे सदश्वान्भूरिदक्षिणान् ॥९५॥
आजानुलम्बिबाहुः स महावक्षाः प्रतापवान् । लक्ष्मणानुचरो रामः शशास पृथिवीमिमाम् ॥९६॥
राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुतभ्रातृबान्धवः ॥९७॥
न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् । न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥९८॥
निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् । न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥९९॥
सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत् । राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥१००॥
आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः । निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥१०१॥
नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः । कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥१०२॥

राक्षसराज विभीषण भी राक्षसोंके साथ लङ्का नगरीमें आये ॥ ९० ॥ शत्रुओंका नाश करके यशस्वी, परम उदार रामचन्द्र प्रसन्नताके साथ राज्यका शासन करने लगे ॥ ९१ ॥ रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—हमारे पूर्वपुरुषोंने इस राज्यका शासन बलपूर्वक किया है, धर्मज्ञ, तुम इस काममें मेरा साथ दो, मैं तुम्हारा बड़ा हूँ, उनके समयमें तुम जैसा करते, वैसेही मेरे साथ तुम युवराजपदका भार लो ॥ ९२ ॥ लक्ष्मणको युवराज-का पद देनेके लिए रामचन्द्रने उन्हें बहुत समझाया, पर लक्ष्मणने स्वीकार न किया, तब महात्मा रामचन्द्रने भरतको युवराजका पद दिया ॥ ९३ ॥ राजा रामचन्द्रने पौण्डरीक, अश्वमेध तथा अन्य यज्ञोंका कई बार अनुष्ठान किया ॥९४॥ दस हजार वर्षोंतक रामचन्द्रने राज्यका पालन किया और उन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ किये, जिनमें अच्छे घोड़े छोड़े गये और भूरि दक्षिणा दी गयी ॥ ९५ ॥ आजानुबाहु, विशालवक्षा रामचन्द्रने अनुगामी लक्ष्मणके साथ इस समग्र पृथिवीका शासन किया ॥ ९६ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रने भी श्रेष्ठ राज्य पाकर भाई, बेटों और बान्धवोंके साथ अनेक यज्ञ किये ॥ ९७ ॥ रामचन्द्रके राज्यके समयमें विधवाओंके विलाप नहीं सुनायी पड़ते थे, दुष्ट जन्तुओंका भय न था और न किसी रोगका ही भय था ॥ ९८ ॥ कोई चोरी नहीं करता था, कोई अनर्थ नहीं करता था और न बूढ़ोंको बालकोंका अन्तिम संस्कार करना पड़ता था ॥ ९९ ॥ सभी प्रसन्न थे, सभी धर्मात्मा थे, रामकी ओर देखकर उस समयके लोग परस्पर ईर्षा-द्वेष नहीं करते थे ॥ १०० ॥ रामराज्यमें लोग हजार वर्ष जीते थे, उनके हजारों पुत्र-पौत्र होते थे, न कोई रोगी होता था और न कोई दुःखी ॥ १०१ ॥ वृक्षोंकी जड़ें दृढ़ होती थीं, उस समयके वृक्ष सदा फूलते थे, फलते थे, इच्छानुसार वृष्टि होती थी, वायु सुखकारी चलता था ॥ १०२ ॥

स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः । आसन्प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ॥१०३॥
सर्वे लक्षणसंपन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः । दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१०४॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् । आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१०५॥
यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते । पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥१०६॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् । महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥१०७॥
राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च । भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥१०८॥
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति । रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥१०९॥
शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् । श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥११०॥
समागम्य प्रवासान्ते रमन्ते सह बान्धवैः । शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१११॥
ते प्रार्थितान्वरान्सर्वान्प्राप्नुवन्तीह राघवात् । श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते संप्रशृण्वताम् ॥११२॥
विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठति यस्य वै । विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् ॥११३॥
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान्सूयुरनुत्तमान् । पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ॥११४॥
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् । प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् ॥११५॥
ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः । रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ॥११६॥

सभी अपने कर्मोंमें सन्तुष्ट थे और अपने कर्म करते थे। रामके शासनके समयमें प्रजा धर्मात्मा थी, कोई असत्यवादी न था ॥ १०३ ॥ उस समय सभी सुलक्षण होते थे, सभी धर्मात्मा होते थे। दस हजार वर्षों तक रामने राज्यपालन किया था ॥ १०४ ॥

धर्म, यश, आयु बढ़ानेवाला और राजाओंको विजय देनेवाले इस काव्यकी रचना पहले वाल्मीकिने की ॥ १०५ ॥ जो मनुष्य सदा इस काव्यको सुनता है, वह पाप मुक्त होता है। पुत्रार्थी पुत्र और धनार्थी धन रामचन्द्रका राज्याभिषेकका वृत्तान्त सुनकर पाता है। राजा पृथिवी जीतता है और शत्रुको वश करता है ॥ १०६, १०७ ॥ स्त्रियाँ इस रामायणको सुनकर दीर्घायु होती हैं, और उनके पुत्र, कौशल्याके रामचन्द्र, सुमित्राके लक्ष्मण और केकयीके भरतके समान चिरंजीवी होते हैं। अक्लिष्टकर्मा रामके विजय-वृत्तान्त सुननेका यह फल है ॥ १०८, १०९ ॥ क्रोध जीतकर श्रद्धापूर्वक जो इस वाल्मीकिकृत काव्यको सुनता है, वह सब विपत्तियोंको पार करता है ॥ ११० ॥ प्रवाससे लौटकर बान्धवोंके साथ सुख भोगता है। जो वाल्मीकिकृत इस काव्यको सुनते हैं, ॥ १११ ॥ वे अभीष्ट समस्त वरोंको रामचन्द्रसे पाते हैं, जो लोग इस रामायणको सुनते हैं, उनपर देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ११२ ॥ जिसके घरमें यह काव्य रहता है, उसके विघ्न नष्ट हो जाते हैं। राजा विजयी होता है और प्रवासी कुशली होता है ॥ ११३ ॥ रजस्वला स्त्रियाँ इस काव्यको सुनकर पुत्र उत्पन्न करती हैं। इस पुरातन इतिहासके सुनने और पढ़नेसे समस्त पाप छूट जाते हैं और दीर्घ आयु प्राप्त होती है। क्षत्रियोंको प्रतिदिन ब्राह्मणसे इसको सुनना चाहिए और इसको प्रणाम करना चाहिए ॥ ११४, ११५ ॥ इस समस्त रामायणको सुनने

प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः । आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ॥११७॥
एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः । प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥११८॥
देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहणाच्छ्रवणात्तथा । रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरः सदा ॥११९॥
भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् । ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१२०॥

कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च ।
श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम् ॥१२१॥
आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च ।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥१२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥



और पढ़नेवालेको ऐश्वर्य और पुत्र प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ११६ ॥ इसके पठनसे, श्रवणसे रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं, जो सनातन विष्णु हैं, जो आदिदेव, हरि, नारायण हैं ॥ ११७ ॥ आपलोगोंका कल्याण है, यही पुरातन आख्यान है, जो इस प्रकार है। निश्चिन्त होकर इसका पाठ करो जिससे विष्णुका बल बढ़े ॥ ११८ ॥ इसके समझने और सुननेसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। रामायण सुननेसे पितर तृप्त होते हैं ॥ ११९ ॥ रामचन्द्रमें भक्ति रखकर ऋषिकृत इस संहिताको जो मनुष्य लिखते हैं, उनका स्वर्गमें निवास होता है ॥ १२० ॥ गम्भीरार्थ इस श्रेष्ठ काव्यको सुननेसे मनुष्योंकी कुटुम्ब-वृद्धि, धन-धान्य-वृद्धि, सुन्दरी स्त्रियाँ तथा उत्तम सुख होता है और अर्थ-सिद्धि होती है ॥१२१॥ यह काव्य आयु, आरोग्य, यश, भ्रातृप्रेम और शुभ-बुद्धि देता है। अतएव समृद्धि चाहनेवाले सज्जनोंको ओज देनेवाले इस काव्यका नित्य श्रवण करना चाहिए ॥ १२२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डका एकसौ अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२८ ॥

युद्धकाण्ड समाप्त।

कुल पृष्ठ-संख्या ४५३+३+८=४६४=

साधारण साइजके ६२८ पृष्ठ

हिन्दी साहित्यके अमूल्य रत्न

विनय-पत्रिका सटीक

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता ? गोस्वामी-जीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनयपत्रिका है। विनय-पत्रिकाका-सा भक्ति-ज्ञानका दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्रकी स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ़ तत्त्वोंका समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका सम्मेलन-पत्रिकाके सम्पादक तथा साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, संक्षिप्त सूरसागर आदि ग्रन्थोंके लेखक तथा संकलनकर्ता लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगी-हरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तर्कथाएँ, अलंकार, शंकासमाधान आदिके साथ-ही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसङ्गपुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। इन सब बातों के कारण टीका अद्वितीय हुई है। पृष्ठ-संख्या लग-भग ७००। मूल्य २॥), सजिल्द २॥।), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ३)।

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(सम्पादक—श्री वियोगीहरिजी)

इसमें जगन्मान्य गोस्वामी तुलसीदासजी-प्रणीत समस्त ग्रन्थोंकी चुनी हुई अनूठी उक्तियोंका संग्रह किया गया है। जो लोग समयाभाव या अन्य कारणोंसे गोस्वामीजीके सभी ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं कर सकते, उन लोगोंको इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे गोस्वामीजीके समस्त ग्रन्थोंके पढ़नेका आनन्द आ जायगा। इस पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं—१ चरित-बिन्दु, २ ध्यान-बिन्दु, ३ विनय-बिन्दु, ४ तीर्थ-बिन्दु, ५ अध्यात्म-बिन्दु, ६ साधन-बिन्दु, ७ पुरुष-परीक्षा-बिन्दु, ८ उद्बोध-बिन्दु, ९ व्यवहार-बिन्दु, १० निज-निवेदन-बिन्दु, ११ विविध-सूक्ति-बिन्दु। इसमें आपको राजनीति, समाज-नीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी विषयोंपर अच्छी-से-अच्छी उक्तियाँ बिना प्रयास एक ही जगह मिल जायँगी। साहित्यिक छटाके लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। इसके तो तुलसीदासजी आचार्य ही ठहरे। साहित्यके अध्येता तथा जनसाधारण दोनों ही इसके पाठसे लाभ उठा सकते हैं। इसमें प्रारम्भमें आलोचनात्मक विशद भूमिका भी संपादकजीने पाठकोंके सुभीतेके लिए जोड़ दी है। पादटिप्पणीमें कठिन स्थलोंकी व्याख्या भी कर दी गयी है। मूल्य २)।

अनुराग-वाटिका

(प्रणेता—श्रीवियोगीहरिजी)

वियोगीहरिजीसे हिन्दी-साहित्य-प्रेमीगण भली भाँति परिचित हैं। साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, ब्रज-माधुरीसार, कविकीर्तन, तरंगिणी आदि ग्रन्थोंके देखनेसे उनकी असाधारण प्रतिभाका परिचय मिल जाता

है। इस पुस्तिकामें इन्हीं वियोगीहरिजी-प्रणीत व्रजभाषाकी कविताओंका संग्रह है। कविताके एक-एक शब्द अमूल्य रत्न हैं, कवि-प्रतिभाके द्योतक हैं। अनुरागवाटिकाका कुछ अंश सम्मेलन, सरस्वती आदि पत्रिकाओंमें निकल चुका है और साहित्य-रसिकों द्वारा सम्मानित भी हो चुका है। छपाई सुन्दर। मूल्य ।-)

विहारी-सतसई सटीक

(७०० सातो सौ दोहों की पूरी टीका)

(टीका० लाला भगवानदीन)

हिन्दी-संसारमें श्रृंगाररसकी इसके जोड़की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज २५० वर्षों में ही इस ग्रन्थपर ४०-५० टीकाएँ बन चुकी हैं। किन्तु उनमें प्रायः सभी प्राचीन ढंगकी हैं जो समझ में जरा कम आती हैं। इसी कठिनाई-को दूर करने के लिये कविवर लाला भगवानदीनजी, प्रो० हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी, ने अर्वाचीन ढंगकी नवीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी, इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नामसे ही करलें। इसमें विहारीके प्रत्येक दोहेके नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचननिरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातोंका समावेश किया गया है। जगह-जगह पर सूचनाएँ दी गयी हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीकामें आ गयी हैं। तीसरे परिवर्द्धित तथा संशोधित संस्करणका मूल्य १॥)

'सरस्वती', 'सौरभ', 'शारदा', 'विद्यार्थी' आदि पत्रिकाओं तथा बड़े-बड़े विद्वानोंने इस पुस्तककी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

देशकी बात

भारतमें अँगरेजी-राज्यका इतिहास इसमें लिखा है। अँगरेजी-राज्यके पहले भारतकी क्या अवस्था थी और अब किस प्रकार और किस ढङ्गसे हमारा ह्रास हो रहा है; इस पुस्तकके पढ़नेसे मालूम हो जायगा। विशेष लोकप्रिय होनेके कारण इसके कई संस्करण थोड़े ही दिनोंमें हाथों-हाथ बिक गये। अब, गरीब जनतामें भी इसका प्रचार करनेके लिए, पौने चार सौ पृष्ठोंकी सुनहरी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ढाई रुपयेकी जगह डेढ़ रुपया किया गया है।

आहार-विज्ञान

(लेखक—हनुमानप्रसाद शर्मा, वैद्यशास्त्री)

भोजन ही जीवनका आधार है। प्रत्येक दीर्घायुकामी मनुष्यको भोजन सम्बन्धी सभी बातों एवं नियमों तथा भोज्य वस्तुओंके गुण दोषका पूरा ज्ञान होना अनिवार्य है। किन्तु इस पुस्तकके सिवा, किसी अन्य पुस्तक में ये सभी बातें आपको न मिलेंगी। साथ ही इसमें अनेक सुलभ, हर समय प्राप्त होने वाली घरेलू औषधियोंका भी वर्णन है; जिससे सहज ही बड़े-बड़े रोगोंको वैद्य-डाक्टरोंके बिना भी आप भगा सकेंगे। ४०० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य २)। इसकी उपयोगिता देखकर ही अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं धुरन्धर विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रसंशा की है। उनमेंसे एक पढ़िए।

कविराज पं० गोपीनाथजी एम०ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी लिखते हैं—

"मैंने पुस्तक बहुत आनन्दपूर्वक पढ़ी, यह एक मूल्यवान् रचना है। यह सर्व-साधारणको इस बातका ज्ञान प्राप्त करानेके लिये लिखी गई है कि मनुष्यके दैनिक व्यवहारमें आनेवाले साधारण खाद्य पदार्थोंका कितना महत्व और क्या उपयोगिता है। इसमें कुछ प्रयोग तो ऐसे हैं जो बहुत गुणकारी तथा उपयोगी प्रसिद्ध हैं।"

रहीम-रत्नावली

[रहिमनविलासका संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण]

यों तो रहीम की कविताओं के संग्रह कई स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करणमें कई विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओंके कारण इसका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। मेरा अनुरोध है कि एक बार इसे आप अवश्य देखें। इस संस्करणकी विशेषताएँ—

१—इसमें संग्रहीत दोहोंकी संख्या लगभग ३०० के है।

२—नगर-शोभा वर्णन नामक १४४ दोहोंका नया ग्रन्थ खोजमें मिला है।

३—नायिकाभेदके बरवे तथा नये मिले हुए सवा सौ बरवे दोनों ही इसमें हैं।

४—मदनाष्टकके सम्बन्धमें भी बड़ी छान-बीन की गयी है।

५—शृङ्गार-सोरठ, रहीम काव्यके श्लोक तथा अन्य फुटकर प्राप्त पद्योंका भी संग्रह इसमें है।

६—अनेक हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाकर इसका पाठ शुद्ध किया गया है। पाठान्तर भी दिये गये हैं।

७—समान आशयवाले (Parallel Quotations) अन्य कवियोंके छन्द भी टिप्पणीके साथ दिये गये हैं।

13.1.85

मुद्राराक्षस सटीक

[सं० ब्रजरत्नदास बी० ए०]

भारत-भूषण भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी वर्तमान हिन्दी-साहित्यके जन्मदाता माने जाते हैं। आपने जो काम हिन्दी जगतका किया है, उसे हिन्दी-भाषी यावज्जीवन भूल नहीं सकते। आपने ही महाकवि विशाख-दत्तके संस्कृत नाटक मुद्राराक्षसका अनुवाद गद्य-पद्यमय हिन्दी भाषामें किया है। यह अनुवाद मूल ग्रन्थसे कितना ही आगे बढ़ गया है, इसमें मौलिकता आगयी है। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ है कि भारतकी प्रायः सभी युनिवर्सिटियों तथा साहित्य-विद्यालयोंमें पाठ्यगून्थ रखा गया है। हमने विद्यार्थियोंके लाभार्थ इसी पुस्तकका शुद्ध तथा उपयोगी संस्करण निकाला है। आजकल बाजारमें जो संस्करण बिक रहा है, वह अत्यन्त अशुद्ध है। उससे लाभके बदले उलटी हानि ही होती है। इस संस्करणमें अध्येताओंके लिए ८० अस्सी पृष्ठकी आलोचनात्मक भूमिका भी प्रारम्भमें दे दी गयी है, जिसमें कविप्रतिभा, नाटकका इतिहास, लेखन-शैली आदिपर गवेषणापूर्ण आलोचना की गयी है। अन्तमें करीब १५० डेढ़ सौ पृष्ठोंमें भरपुर टिप्पणी की गयी है जिसमें नाटकमें आये हुए पद्यांशोंकी पूरी टीका तथा गद्यांशोंके कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं, अलंकार आदि बतलाये हैं, स्थल-स्थलपर तुलनाके लिए संस्कृत मूल भी उद्धृत किये गये हैं, प्रमाणके लिए साहित्य-दर्पण, काव्य-प्रकाश आदि गून्थोंके अवतरण भी दिये गये हैं। कहनेका मतलब यह कि सभी आवश्यकीय बातें समझा दी गयी हैं। इसका संशोधन पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा बा० श्याम-सुन्दरदासजी बी० ए० प्रो० हिन्दू-विश्वविद्यालयने किया है। संपादन, नागरी प्रचारिणी सभाके मन्त्री, ब्रजरत्नदासजी बी० ए० ने किया है। पृष्ठ-संख्या ३५० के लगभग, मूल्य १) मात्र।

मँगाने का पता—

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी।